Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113021

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

36

फरवरी, अप्रैल, मई, सितम्बर
अक्तूबर १९४९ ई. — ५ अंक
फरवरी, अप्रैल, मई, जुलाई, अगस्त
सितम्बर, अक्तूबर, नम्बर
दिसम्बर १९५० ई० ९ अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

२] आगरा—दिसम्बर १९५० [अङ्क ६

सम्पादक
ाबराय एम० ए०
एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

*

प्रकाशक
प-रत्न-भण्डार, आगरा

*

मुद्रक
हित्य-प्रेस, आगरा

*

ल्य ४), एक अङ्क का ।=)

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचार-धारा	सम्पादक	
२—अप्रस्तुत योजना के आधार	श्री रामकुमार मिश्र बी०	साहित्याच
३—कला निर्माण का उद्देश्य पक्ष	श्री देवीप्रसादसिंह बी० ए०	
४—आज के कलाकार	श्री चन्द्रमाप्रसाद खरे	
५—कलाकार बर्नार्ड शॉ	श्री मोहनलाल एम० ए० साहित्यरत्न	
६—प्रियप्रवास की राधा और साकेत की उर्मिला	श्री शिवप्रसाद लोहानी बी० ए०	
७—कवितावली और हनुमान्नाटक	श्री देवीदत्त शर्मा 'देव' साहित्यरत्न	
८—यशोधरा की 'यशोधरा'	श्री चाँदमल कर्णावट बी० ए०	
९—कामायनी की एक महत् भावना : समन्वय	श्री रामनरायन परमार एम० ए०,	
१०—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की शैली	श्री विजयशङ्कर वाजपेई बी० ए०	
११—साहित्य-परिचय		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१—साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधा जनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है। इसका वार्षिक मूल्य ४) है।

२—महीने की ३० तारीख तक साहित्य सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर के साथ कार्यालय में भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।

३—किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोष जनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।

४—फुटकर अंक मँगाने पर चालू वर्ष [illegible] का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।

५—ग्राहक अपना पता बदलने की सूचना १५ दिन पूर्व भेजें; अस्थाई पता बदलने का नियम नहीं है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : दिसम्बर १९५०

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं।

आलोचना

अयोध्या काण्ड दिगदर्शन—
श्री 'सलिल' साहित्य रत्न ।।।)
निर्गुणधारा—श्री बैजनाथ : विश्वनाथ ३)
बृजभाषा साहित्य का ऋतु सौन्दर्य—
श्री प्रभूदयाल मीतल ४)
मीरा स्मृति ग्रन्थ—सम्पादित १५)
आचार्य शुक्ल और उनकी त्रिवेणी— १।।)

कविता

गीतोपहार—श्री सु० शंकरराजू नायडू १)
अंगार—श्री विमल १।)
[illegible]—श्री ब्रजकिशोर "नारायण" १।।)
[illegible] के फूल—डा०राकेश एम. ए. डी फिल २।)

उपन्यास

[illegible] चोर और चान्द—श्री बलवन्तसिंह ७)
मेरी कमला—श्री के० एम० मुन्शी ४)
पशु और मानव—अनु० श्री मोहनलाल ३।।)

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र का प्रारंभिक ज्ञान—
श्री गिरजाशंकर नागर २।।)

राजनीति और जीवनी

भारतीय संविधान और नागरिक जीवन—
श्री ओमप्रकाश केला ४)

नया काश्मीर—
राष्ट्रीयता और समाजवाद—श्री आचर्य नरेन्द्र १०)
गांधीजी के जीवन प्रसंग—
अनु० श्री यशवन्त तेंडुलकर ६)

निबन्ध

ज्ञानभारती—श्री महाबीरप्रसाद द्विवेदी १।।।)

धार्मिक

स्तुति विद्या—स्वामी समन्तभद्र १।।)

बालोपयोगी

मोती की माला—मतवाला ।।=)

स्फुट

राजस्थानी कहावताँ भाग १—
श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ३)
राजस्थानी कहावताँ भाग २—
श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ३)
राजस्थानी भाग १—श्री नरोत्तमदास स्वामी २।।।)
" भाग २— " " ३)
देश दर्शन—श्री बाबूलाल उपाध्याय 'बोलू' ।।)
हमारा देश—श्री भास्करराव विद्वांस,
रसिकलाल परीख ४)
इतिहास शिक्षण—
श्री चिम्बक पंढरीनाथ तेलंग २)
गणित शिक्षा के सिद्धांत तथा शिक्षण प्रणाली—
श्री के० ऐल० किचलू २)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मंगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १२] आगरा—दिसम्बर १९५० [अङ्क ६

हमारी विचार-धारा

साहित्य सन्देश के लेखक—

साहित्य-सन्देश की ग्राहक संख्या बढ़ने से उसके लेखकों की संख्या भी बहुत बढ़ गई है। हमारे अनेक पाठक स्वयं भी लिखने की प्रेरणा पाकर लिखते हैं और ऐसे लेख हमारे पास भेजते हैं। यह बहुत शुभ चिह्न है। अपने इन नवीन लेखकों को प्रोत्साहन देने के लिए हम ऐसे लेख छापते भी हैं। साहित्य-सन्देश ने इस प्रकार कितने ही लेखकों को जन्म दिया है और उनमें से कुछ की तो आज प्रथम श्रेणी के लेखकों में गणना है। परन्तु अधिकतर लेख ऐसे आते है जिन्हें हम छाप नहीं पाते। उनमें विचारों की परिपक्वता, वर्णन में सुसम्बद्धता और शैली में प्रौढ़ता की बहुत कमी दिखाई देती है। 'काता और ले दौड़े' जैसी बात उनके लेखों से न प्रकट हो इसके लिए आवश्यक है कि हमारे नवीन लेखक अपने लेखों को सीधा हमारे पास भेजने से पहले उन्हें अपने अध्यापकों, गुरुओं या निकटतर विद्वानों को दिखा लिया करें और उनसे स्वीकृति पाकर ही हमारे पास भेजा करें।

एक गुजराती प्रकाशन संस्था—

हिन्दी के प्रसिद्ध पुरातत्व लेखक श्री अगरचन्दजी नाहटा ने एक गुजराती प्रकाशन संस्था का परिचय हमारे पास भेजने की कृपा की है। यह है अहमदाबाद की 'सस्तु साहित्य बर्द्धक कार्यालय'। सन् १९०७ में यह संस्था स्वामी अखंडानन्दजी ने स्थापित की थी। तब से अब तक पाँच सौ से ऊपर पुस्तकें इसने प्रकाशित की हैं। इसके प्रकाशन की दो विशेषताएँ हैं एक तो यह गन्दा साहित्य नहीं छापती, स्वस्थ साहित्य छापती है। दूसरे पुस्तकों का मूल्य बहुत कम रखती है। आज के मँहगाई के युग में भी सौ पृष्ठ का लगभग चार आना मूल्य रखती है। बहुत कम है। हिन्दी वाले साधारणतः सौ पृष्ठ का मूल्य एक रुपया रखते हैं। कुछ प्रकाशक तो डेढ़ दो रुपया तक लेते हैं। इसके लेखक गुजराती के प्रायः सभी प्रसिद्ध लेखक हैं और प्रायः सभी विषयों पर महत्व पूर्ण पुस्तकें यहाँ से निकली हैं। हिन्दी में ऐसी कोई संस्था नहीं है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशन के क्षेत्र में बड़ी सेवा की है पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उसका यह कार्य शिथिल है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इधर प्रकाशन पर बहुत जोर दिया है पर उसका दृष्टिकोण व्यापारिक जैसा है। सम्मेलन से अधिक सस्ती पुस्तकें छापने की आशा की जाती है। सस्ता साहित्य मण्डल स्वस्थ साहित्य प्रकाशित करता है पर उसकी पुस्तकों का मूल्य उसके नाम को सार्थक नहीं करता। गोरखपुर का गीताप्रेस जरूर सस्ती पुस्तकें अपेक्षित [illegible] उसका क्षेत्र धार्मिक पुस्तकों तक ही सीमित है। [illegible] कोई संस्था आज इस ओर प्रवृत्त नहीं है। राष्ट्रभाषा हिन्दी को आज एक नहीं अनेक ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है जो सस्ता साहित्य वर्द्धक कार्यालय की तरह केवल सेवा भाव से प्रकाशन करे।

वर्ष बोध—

अँग्रेजी साहित्य में ईयर बुक (Year Book) के नाम से अनेक वर्ष बोध प्रति वर्ष छपते हैं और उनका काफी प्रचार होता है। भारत में कई वर्षबोध अँग्रेजी में छप रहे हैं। हिन्दी में ऐसी पुस्तक का अभी तक अभाव था। प्रसन्नता की बात है कि पिछले दिनों राज कमल प्रकाशन, दिल्ली से राजकमल वर्ष बोध नाम से इस प्रकार की पुस्तक प्रकाशित हुई है। बहुत कमियाँ होते हुए भी हिन्दी [illegible] लिए यह बहुत उपयोगी चीज है। हम आशा करेंगे कि राज कमल प्रकाशन के सञ्चालक सन् ६५० के संस्करण को भी शीघ्र ही निकालकर इस [illegible] स्थाई बना देंगे। अभी हाल ही में जय [illegible] से लोकवाणी युगान्तर प्रकाशन मन्दिर लि० [illegible] लोकवाणी वर्ष कोश प्रकाशित किया है। यह अपेक्षाकृत छोटा है, किन्तु फिर भी इसमें अनेक उपयोगी बातों का समावेश हुआ है। हमारी सरकार ने 'तीसरा वर्ष' शीर्षक पुस्तक निकाल कर स्वतन्त्र भारत के तीसरे वर्ष का कार्य विवरण दिया है। यह विवरण सरकार के कार्यों तक सीमित होते हुए भी उपयोगी है। हम ऐसे प्रकाशनों का हृदय से स्वागत करते हैं।

दक्षिण-यात्रा का सांस्कृतिक उद्योग—

हम जुलाई के अङ्क में उत्तर-दक्षिण के सांस्कृतिक सम्पर्क की आवश्यकता बता चुके हैं। सितम्बर के तीसरे सप्ताह में काशी से तीन विद्वान तामिल, आन्ध्र कन्नड़ आदि दक्षिणी प्रदेशों की यात्रा के लिए गए थे—श्री चन्द्रवली पाण्डेय, श्री रामनरायण मिश्र, बाबा राघवदास। इनका उद्देश्य हिन्दी-प्रचार था, जो निर्विवाद श्लाघनीय है। हमें आशा है कि इस यात्री विद्वन्मण्डल ने दक्षिण-निवासियों की मनोस्थिति को भली प्रकार समझा होगा। आज का नागरिक किसी का भी कोई दबाव स्वीकार नहीं करना चाहता। हिन्दी को दक्षिण में प्रेम और पारस्परिक सहयोग के भाव से प्रिय बनाने की के चेष्टा करनी है, किसी अहंकार के आधार पर नहीं। भारत के सांस्कृतिक और राजनैतिक ऐक्य की प्रतिष्ठा का अनिवार्य साधन एक राष्ट्र भाषा है और हिन्दी ही वह भाषा हो सकती है। हिन्दी को प्रत्येक भारतवासी अहिन्दी भाषी को अपनी मातृभाषा की बहिन के समान स्वीकार करना चाहिए। यह यात्रीदल सम्मेलन की प्रेरणा का परिणाम था और एक विशेष मिशन के साथ गया था। हम तो ऐसे सांस्कृतिक सम्पर्क के बड़े पोषक हैं जिसमें विद्वान् और संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान स्वतन्त्र भाव से दक्षिण में जाँ, और वहाँ के निवासियों से केवल सांस्कृतिक चर्चा करें, एक माता के दो पुत्रों की भाँति मिलें, एक दूसरे को समझने की चेष्टा करें, दोनों में जो श्रेष्ठ है उसे ग्रहण करें और अपनी भाषा का भण्डार भरें। यथार्थ सांस्कृतिक सम्पर्क तभी सफल हो सकता है, जब हिन्दी भाषी भी दक्षिण भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करलें। इसके लिए आवश्यक है कि जिस तरह दक्षिण के विद्यार्थी हिन्दी सीखने आगरा आते हैं उसी तरह उत्तर भारत के लोग दक्षिण की भाषाएँ सीखने वहाँ जायँ। और ऐसी सांस्कृतिक यात्राएँ बराबर जारी रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद और पुरानी मान्यतायें—

प्रसाद का बहुत अध्ययन हुआ है—और आगे भी बहुत अध्ययन होगा। यहाँ हम हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के एक पत्र से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर आलोचकों का ध्यान उसके नवनिर्देश की ओर करना चाहते हैं :

'कालिदास के प्रणय चित्रण में भी कर्म की प्रेरणा है। दुष्यन्त और शकुन्तला, शिव और पार्वती के प्रणय का फल भी पुत्र है, जिस फल के लिए कालिदास ने रघुवंश के राजाओं के बारे में कहा है "प्रजा में गृह नामिजाम्।" प्रसाद के नाटकों के प्रणय का फल पुत्र कहीं नहीं है। स्वगत् शब्दाडम्बर, हत्या की भावनाओं के बीच में किशोर वयस जैसी गीतों की अवतारणा शेक्सपीरियन है। कालिदास से उसका कहीं भी लगाव नहीं।..... समर्थ समालोचकों को इस दृष्टि से अब अधिक देखना है कि हमारा साहित्य कम से कम अपनी पुरानी मान्यताओं को तो बचाले। आश्चर्य होता है यह देख कर कि हमारे बड़े समालोचक 'प्रसाद के साहित्य' का निश्चित भेद इस देश के समूचे पुराने साहित्य से क्यों नहीं देख पाते? भावावेश विवेक कैसे बन रहा है?—'भारतीय संस्कृति के उद्घाटक और पोषक प्रसाद के सम्बन्ध में यह विचार-दृष्टि निस्सार नहीं प्रतीत होती।

हिन्दी में नयी व्याख्यायें—

प्राचीन कथानकों की नयी आवश्यकताओं के अनुसार नयी व्याख्यायें नये कवि करते ही रहते हैं। हिन्दी के आरम्भ काल में ये व्याख्यायें मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से होती थीं। 'प्रियप्रवास' में 'कृष्ण-राधा' का एक उदाहरण है। फिर विशेष बौद्धिकता बढ़ी, और दृष्टि उदार हुई। इसमें लांछित व्यक्तियों का पृष्ठपोषण होने लगा और उनके कार्यों का एक उचित कार्य-कारण परम्परा बद्ध वर्णन दिया जाने लगा। ऐसी व्याख्याओं में 'कैकेयी' आती है। किसी ने कैकेयी को मातृधर्म के वश दिखाया है—"भरत से सुत पर भी सन्देह' (साकेत) का मानसिक मूल स्वीकार किया। कोई-कोई तो यहाँ तक बढ़ गये हैं कि 'कैकेयी' को कुशल राजनीतिज्ञ चित्रित कर रहे हैं—और 'राम को वनवास' भिजवाना दोष नहीं गुण सिद्ध कर रहे हैं। (ब्रजरत्नदास कृत 'कलंकमार्जन') ऐसी ही व्याख्याओं में विकसित व्याख्यायें भी हैं—जैसे सीता को रावण [illegible] रता थी, उतना राम नहीं। (अशोकवन) एक गोपी का त्याग कर बुद्ध ने कायरता दिखायी (भारतभूषण)। स्त्रियों का अपमान किया। विक्रमादित्य की [illegible] ही व्याख्यायें कलाकारों ने प्रस्तुत की हैं। वस्तुतः इन समस्त कलाकारों द्वारा प्रस्तुत की गयी भारतीय प्राचीन परम्पराओं की नवीन व्याख्याओं के आज तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता है।

तुलसीदासजी की जन्म भूमि—

तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों है—इस सम्बन्ध में हमारा भी मत कुछ असन्दिग्ध हो चला है। सोरों में तुलसी के जन्म का स्थान इस समय तो एक फूँस की झोपड़ी है जो मुसलमानों के अधिकार में है। उसके जन्मस्थान होने का यही प्रमाण है कि जनश्रुति के अनुसार उस घर की मिट्टी कनवर दवाई के काम में आती है। इस जनश्रुति की पुष्टि वहाँ के अड़ोस-पड़ोस के मुसलमान भी करते हैं और रत्नावलिचरित्र के लेखक चतुर्वेदी मुरलीधर [illegible] गव से भी होती है। तुलसीदास और नन्ददास [illegible] भाई होनेकी पुष्टि कई कृष्ण भक्ति प्रधान ग्रन्थों से होती है। नन्ददासजी के वंशज भी उसी मुहल्ले में रहते हैं और उनका गाँव श्यामपुर भी वहाँ के निकट ही है। गोस्वामीजी के सोरों निवासी होने के 'कथा सुनी सु सूकर क्षेत्र' के अतिरिक्त और भी गवाही जैसे शाहजहाँ कालीन—कवि कान्हराय ब्रह्म भट्ट की दी जाती है। जन्मस्थान का श्रेय लेने में राजपुर ही सोरों का प्रतिद्वन्द्वी है किन्तु वहाँ का गजटियर स्वयं सोरों को श्रेय देता है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Rajapur was founded in the reign of Akbar by Tulsi Dass a devotee from Soron who erected a temple and attracted many followers".

ऐसी अवस्था में यू० पी० सरकार को चाहिए कि विद्वानों की एक कमेटी नियुक्त कर सोरों के पक्ष की सामग्री की वैज्ञानिक जाँच करावे और उसके निर्णय के अनुसार यदि तुलसीदास का जन्म स्थान वही ठहरे तो उस स्थान को खरीद कर उसकी रक्षा की जाय।

जैसलमेर का ज्ञान भण्डार

काशी में कुछ दिन से भारतीय ज्ञानपीठ नाम से एक जागरूक संस्था का जन्म हुआ हैं जिसकी ओर से कुछ महीनों से 'ज्ञानोदय' नामक एक महत्व-पूर्ण मासिक पत्र निकलने लगा है। इस पत्र में साहित्य और संस्कृति तथा धर्म और दर्शन विषयक गम्भीर लेख निकलते हैं। इसके सितम्बर के अङ्क में प्रकाशित एक सम्पादकीय टिप्पणी हम यहाँ देते हैं:—

"साहित्यसंरक्षण श्रमण संस्कृति में अत्यन्त आवश्यक माना गया है। विश्व ज्ञान प्राप्ति के समस्त ग्रन्थ परिश्रमपूर्वक श्रमणों ने लिखे, लिखवाये। ऐसे भण्डारों की संख्या यों तो कम नहीं हैं, परन्तु प्राचीन संग्रहालयों में जैसलमेर का संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इसकी स्थापना खरतर-गच्छीय आचार्य श्री जिनभद्र सूरिजी ने १६वीं शताब्दी में की थी। यहाँ हजारों की संख्या में तो केवल ताड़पत्र पर लिखे हुए ग्रन्थ ही हैं। इनमें से अधिकत स्वर्णाक्षरों से लिखे व चित्रित किये गये हैं। कागजों पर लिखे हुए ग्रंथों की संख्या अपरिमित है। भारतीय चित्रकलाकी, राजपूत-पूर्वकालीन विकसित ढङ्ग पर प्रकाश डालनेवाली प्राचीन व मौलिक सामग्री अद्यावधि वहाँ पर सुरक्षित है। कुछ ग्रन्थ चर्मपर भी पाये गये हैं। श्रद्धाजीवी श्रावकों की सज्जनता का लाभ अन्वेषण के बहाने मुनियोंने भली भाँति उठाया, जिसके फलस्वरूप यहाँ की सुन्दर कृतियाँ आज गुजरात के सरकारी एवं गैर सरकारी संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। अस्तु—

आज से २४ वर्ष पूर्व आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्र सूरिजीने अपने सुयोग्य शिष्य उपाध्याय मुनि सुखसागर जी आदि मुनिराजों की सहायता से, दो वर्ष जैसलमेर में रहकर अस्त-व्यस्त प्रतियों की व्यवस्था एवं जीर्णप्राय ग्रन्थों का पुनर्लेखन करवाया था तथा सर्वथा नष्टप्राय ग्रन्थों के फोटो भी उतरवाये थे। १५ लिपिकों के बावजूद भी दो वर्षों में कुछ ही काम हुआ। तदनन्तर पुरातत्वाचार्य श्री जिनविजयजी विद्वन्मण्डलयुक्त छह मास तक वहीं रहे। आपने बहुसंख्यक अमूल्य कृतियाँ एवं भारतीय मध्यकालीन इतिहास पटपर प्रकाश डालनेवाली सहस्रों पुष्पिकाएँ संग्रहीत कीं। वर्तमान में, जैन साहित्य के अनन्य अन्वेषक मुनि श्री पुण्यविजयजी कई विद्वानों के साथ वहाँ सूक्ष्म अवलोकन कर रहे हैं। आपके सद् प्रयत्नों द्वारा कुछेक भण्डार सर्व प्रथम खोले गये। समाचार पत्रों से एवं वैयक्तिक सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि मुनिजी को जैन साहित्य की शोभा बढ़ाने वाले बहुत से नवीन व महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिले हैं। प्राप्त वैदिक ग्रन्थ भी कुछ ऐसे मिले हैं जिनसे संशोधन की नई दिशा का सूत्रपात होता है।

जैन भण्डारों के महत्त्व को अभी तक विद्वत्-समाज ठीक से नहीं समझ पाया। आंशिक दोष समाज का भी है। आज के वैज्ञानिक युग में भी महत्वपूर्ण ज्ञान भण्डारों को इस प्रकार बचाया जारहा है कि अन्वेषक की दृष्टि उन पर न पड़े। यह बड़े खेद की बात है। हम अत्यन्त विनम्रता के साथ संकीर्ण विचारवाले व्यवस्थापकों की सेवामें निवेदन कर देना चाहते हैं कि अधिकृत ज्ञान-भण्डारों को खुलवाकर जैसलमेर के समान ही ऐतिहासिक दृष्टि से छान-बीन करवावें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रस्तुत-योजना के आधार

श्री रामकुमार मिश्र बी० ए०, साहित्याचार्य

अपने अनुभूति-प्रवण अन्तःकरण में कवि जिस सौन्दर्य समन्वित मनोमुग्धकारी भाव को प्रत्यक्ष करता है, उसके पूर्ण प्रभाव और वेग को प्रकट करने के लिए विनिःसृत अपने वाक्प्रवाह में वह बहुत से अप्रस्तुत पदार्थों का भी सम्मिश्रित वर्णन कर जाता है। भावोद्रेक के इस प्रकार प्रकट हो जाने से उसे एक शान्ति, भारमुक्तता या प्रसूति—उत्तर कालीन स्फूर्ति का सा अनुभव होता है।

अतएव सच्चे भावुक कवि की अन्तः प्रेरणा द्वारा रचित कविता की अप्रस्तुत योजना में हमें कभी भी ऐसे उपमान दिखलाई न पड़ेंगे जो भाव के वेग से अलग छिटके हुये हों और ऊपर से बलात् लादे हुए ज्ञात होते हों। किन्तु जहाँ अनुभूति सच्ची नहीं है, वाणी में भाव का आवेग नहीं है, वहाँ अलङ्कार केवल पच्चीकारी का ही काम दे सकते हैं। उनमें हृदय को मग्न और आप्लावित कर देने वाला गुण नहीं होता। यदि वक्ता स्वयं अनुभूति रसाप्लावित होकर, उसी भावना से तरङ्गित होकर कथन नहीं कर रहा है तो श्रोता भी उस धारा में नहीं बह सकता। कवि वास्तव में हिम मण्डित एक शिखरी के समान है जहाँ से रस की शीतल पावन धारायें बहती रहती हैं। और साधारण सहृदय श्रद्धालु भक्तों के समान उस धारा में निमज्जन करके सुख प्राप्त करते हैं।

मेरा अनुमान है कि अलङ्कार योजना, अप्रस्तुत विधान और लाक्षणिक वक्रता पूर्ण वचन भङ्गिमा का कारण यही मानसिक उल्लास अथवा अनुभूति-प्रेरित वेग ही होता है। साधारण व्यावहारिक वार्तालाप में भी आवेश आजाने पर लोग व्यङ्गमयी अनूठी उक्तियों का प्रयोग कर जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह उक्तियाँ भावना के प्रभाव और आवेश द्वारा प्रसूत होने के कारण उनके अनुकूल ही होती हैं।

एक

यदि प्रयत्न करके ऐसी अप्रस्तुत-योजना की जाय तो भावना के प्रभाव के अवरुद्ध हो जाने की आशंका सदैव बनी रहेगी और इस प्रकार कवि के अत्यन्त सिद्ध हस्त होने पर भी उसकी वह रचना साधारण सूक्ति बन कर रह जायगी। काव्य का प्रधान गुण रससञ्चार ऐसे स्थान पर अवकाश न पा सकेगा। केवल कौतूहल वृत्ति को शान्त करने वाला वैचित्र्य भाव ही उठ कर रह जायेगा।

अप्रस्तुत योजना का मुख्य आधार रूप, गुण क्रिया एवं प्रभाव की समता है। इसमें रससञ्चार की दृष्टि से प्रभाव समता ही मुख्य है। यदि रूप आदि में सदृश होते हुए भी आरोपित वस्तु में प्रस्तुत भाव को तीव्र करने की क्षमता नहीं है तो वह सर्वथा अनुपयोगी है। समप्रभाव उत्पन्न कर सकने वाली सामान्यतः ज्ञात तथा सर्व साधारण द्वारा अनुभव में लाई हुई वस्तुओं से सम्बन्धित करते हुये ही प्रस्तुत वस्तु का वर्णन किया जाता है। इसी परिचय तथा समरूपता के कारण सर्व साधारण को इष्ट भाव की अनुभूति में सहायता मिलती है।

प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत का समावेश काव्य में अनेक सम्बन्धों से होता है। इस सम्बन्ध की भिन्नता के कारण ही सादृश्य मूलक अलङ्कारों के अनेक भेद होगये हैं। उपमा में अप्रस्तुत प्रस्तुत के समकक्ष रहता है, रूपक में वह प्रस्तुत को आक्रान्त कर लेता है, अपह्नुति में छिपा लेता है, परिणाम में पचा लेता है। अलङ्कारों में अधिकाँश इसी अप्रस्तुत के अनेक सम्बन्धों द्वारा ही प्रसूत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ में काव्य मीमांसकों की दृष्टि शब्दों की विशिष्टता के साथ अर्थ की इस विशिष्टता की ओर भी गयी। अर्थ वैचित्र्य उत्पन्न करने वाली उपमा आदि की शैली में कही हुई उक्ति ही प्रारम्भ में काव्य समझी जाती रही। चन्द्रालोक के रचयिता ने तो अलङ्कार रहित काव्य का अस्तित्व उसी प्रकार अस्वीकार किया है जिस प्रकार उष्णता रहित अग्नि का।

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥

यद्यपि वक्रोक्ति की परिभाषा को कुन्तक ने विस्तृत रखा है, परन्तु शब्दार्थ की भङ्गिमा तथा वैचित्र्य उनकी दृष्टि में भी विशिष्ट स्थान रखता है। यद्यपि रस-प्रतिष्ठा और ध्वनि निरूपण के पश्चात् अलङ्कारों का वह महत्व न रहा किन्तु उनका उचित प्रयोग काव्य की शोभा को संवर्धित कर देता है—इसे तो कोई भी अस्वीकार नहीं करता।

अप्रस्तुत योजना में भी समय के साथ परिवर्तन होते गये हैं। पहले बाहर की ओर ही दृष्टि रहने के कारण साम्य निरूपण के लिए स्थूल वस्तुएँ ही सम्मुख लाई गईं। एक वस्तु अथवा व्यापार के प्रवाह को तीव्र बनाने के लिए दूसरी वस्तु या व्यापार सामने रखा गया। किन्तु पीछे धीरे धीरे संश्लिष्ट वस्तु-व्यापार के गुँथे हुए खण्ड चित्रों की तुलना में वैसे ही चित्र उपस्थित करने का प्रयास होने लगा। साङ्ग रूपक, दृष्टान्त तथा निदर्शना आदि की रचना सीधी उपमाओं के काव्य में प्रतिष्ठित हो जाने के अनन्तर ही हुई है।

साम्य के आधार पर स्थित अलङ्कारों में कहीं तो साम्य का निर्देश एक बार ही किया जाता है और प्रस्तुत अप्रस्तुत की समता का आधार यही साम्य होता है। ऐसे स्थान पर यह साम्य या धर्म अनुगामी कहा जाता है। जैसे—

"साँवरे गोरे सलौने सुभाय
मनोहरता जिति मन लियो है।"

यहाँ पर सौन्दर्य के परम प्रसिद्ध देवता को भी पराजित दिखाकर प्रस्तुत राजकुमारों की सुन्दरता की अनुभूति कराने का प्रयत्न किया गया है। मनोहरता धर्म दोनों ओर अन्वित होता है अतः अनुगामी है।

कहीं पर धर्म औपचारिक होता है वास्तविक नहीं। ऐसा धर्म बहुधा अमूर्त भावों की अभिव्यक्ति के लिये लाया जाता है। अप्रस्तुत-योजना का यह स्वरूप भी बड़ा मार्मिक होता है। राम को बन जाते देख गाँव की सरल हृदया भावुक नारियाँ कैकेयी के हृदय की कुटिलता की तुलना पत्थर तथा कुलिश से करती हैं।

"रानी मैं जानी अजानी महा
पवि पाहन हूते कठोर हियो है।"

यहाँ पर हृदय में कठोरता औपचारिक हैं। हृदय की कठोरता और पत्थर की कठोरता दोनों एक श्रेणी की नहीं हैं।

कहीं कहीं धर्म अनुगामी रूप में अर्थात् एक शब्द द्वारा निर्दिष्ट होकर नहीं आता अपितु वस्तु प्रति वस्तु भावापन्न होकर आता हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वहाँ पर यद्यपि धर्म एक ही रहता है किन्तु उसका निर्देश विभिन्न शब्दों द्वारा होता है।

"उसका विमल यश शारद शशि की समता करता है।" यहाँ यश की शुभ्रता विमल शब्द से तथा शशि की शारद शब्द से प्रकट होती है। वस्तुतः शुभ्रता धर्म एक ही है परन्तु विभिन्न आश्रयों के कारण भिन्न भिन्न शब्दों से कहा गया हैं।

धर्म का एक अन्य रूप भी है। समान गुण धारण करने वाली वस्तु के सम्बन्ध से दूसरे स्थान पर भी उसी गुण को धारण करने वाली अन्य वस्तु को देखकर उससे तुलना की जाती है। ऐसे स्थान पर धर्म को बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से युक्त कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। यहाँ साम्य एकाएक स्फुट नहीं हो जाता किन्तु कुछ विचार सापेक्ष रहता है। जैसे कि भवभूति के इस पद्य में—

यान्त्या मुहुर्वलित कन्धर मानन्नं तम्
आवृत्त वृन्त्त शत पत्र निभं वहन्त्याः।.....

(जाते हुये ग्रीवा मोड़ कर मेरी ओर देखने पर उसका मुख वायुवेग से घुमाये हुये नाल वाले कमल के समान हो गया।)

यहाँ ग्रीवा तथा वृन्त में विम्ब प्रतिविम्ब भाव है। इसके साथ ही झुकाव की सदृश परिस्थिति जिन दो विभिन्न (मोड़ना, घुमाना) शब्दों द्वारा कही गई है उनमें वस्तु प्रतिवस्तु भाव ही रहेगा। वास्तव में विभिन्न दो वस्तुओं में समान गुणों के कारण जहाँ समता प्रतीत होती हो वहाँ विम्ब और प्रतिविम्ब भाव होता है। और वास्तव में एक किन्तु आश्रय भेद के कारण भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा कहे गये दो (गुण या व्यापार रूप) पदार्थों में जहाँ समता की प्रतीति होती है वहाँ वस्तु प्रतिवस्तु भाव होता है।

इनके अतिरिक्त कहीं कहीं पर साम्य का आधार केवल शब्द ही रहता है। शब्द की क्रीड़ा में ही मग्न रहने वाले कवि इसका बहुधा आश्रय लेते हैं। कभी कभी इसका अत्यन्त सुन्दर रूप देखने को मिलता है। तुलसीदासजी दुष्ट मनुष्यों की स्तुति करते हुये उनकी तुलना इन्द्र से इसी आधार पर करते हैं।—

"बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही—
सन्तत सुरानीक हित जेही।"

यह शब्द साम्य चमत्कारी कवियों का विशेष अस्त्र रहा है। जिसके द्वारा एक गर्हित मद्यप भी शक्र की पदवी प्राप्त कर सकता हो—नई सृष्टि के विधाता कवि ऐसे साधन को हथियाने से क्यों चूक जायें। यही शब्द साम्य श्लेष तथा समासोक्ति में भी अनेक अपूर्व रचनाओं का साधन रहा है। सेनापति इसी के बल पर सिंह और बकरे को एक घाट एक जो पिलाते दिखाई देते हैं। दाता और सूम को एक सार करने वाली उनकी वचन चातुरी देखिये।:—

नाहीं नाहीं करै थोरी माँगे सब दैन कहैं,
अंगन को देखि पट देत बार बार हैं।
जिनको मिले वे भला प्रापति की घटी,
सदा सब जन मन भाये निरधार हैं।

इसी विषय पर विचार करते हुये संस्कृत के प्रसिद्ध आलोचक पण्डितराज जगन्नाथ ने साम्य का एक अत्यन्त नवीन आधार खोज निकाला है। उनका कथन है कि कहीं कहीं पर साम्य का आधार स्वयं दूसरा साम्य या अलङ्कार होता है। और 'निर्माम नूतन मुदाहरणानुरूपं काव्यं मयात्र निहितं न परस्यकिञ्चित्' की गर्वोक्ति करने वाले इस सिद्धहस्त आलोचक ने इसका अत्यन्त रोचक उदाहरण भी स्वयं बनाकर रखा है।

यथा लतायास्तबकान्तायाः
स्तनावनम्रे नितरांसमासि।
तथा लता पल्लविनी सगर्वे
शोणाधरायाऽसदृशी तथपि॥

यहाँ उत्तरार्ध में आई हुई उपमा का आधार पूर्वार्ध की उपमा है।

———

साहित्य-सन्देश के सात हजार ग्राहकों में किसी ग्राहक को ढूँढ़ निकालना तभी संभव है जब उसकी ग्राहक संख्या विदित हो। अतएव ग्राहक महोदय पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखने की कृपा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला-निर्माण का उद्देश्य-पक्ष

श्री देवप्रसाद सिंह बी० ए०

उद्देश्य सृजन का संबल है। यह हमारी सोई शक्तियों को स्फुरित करती है, कार्योन्मुखी बनाती है। कलात्मक सृष्टियाँ भी निरुद्देश्य [illegible] हो सकतीं। अब देखना यह है कि कला-सृजन में कौन सा उद्देश्य निहित है।

'स्वान्तः सुखाय' 'बहुजन-हिताय' विचारकों ने उद्देश्य को दो भागों में विभक्त किया है, पहले का आधार सम्भवतः तुलसी की यह उक्ति 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' है। परन्तु भक्त-प्रवर तुलसी की यह बात उतनी अबूझ पहेली नहीं थी जितनी आज के कलाकारों की है। ये तो इसकी तह में कला को वैयक्तिकता की संकुचित सीमा में बद्ध करना चाहते हैं। व्यक्तिगत वासना इत्यादि मलिन विकारों को प्रश्रय दे, छन्दावृत्त कर उस पर 'स्वान्तः सुखाय' का मुलम्मा चढ़ा देते हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए कि तुलसी ने यह भी कहा था—

जे कवित्त बुध नहीं आदरहीं।
ते श्रमवादि बालकवि करहीं॥

वास्तव में बात यह है कि समग्र श्रेष्ट एवं शाश्वत कला रचना की मूल 'बहुजन हिताय' है। विश्व के घात-प्रतिघातों से ऊबा कलाकार के करुणा-कलित हृदय में जब विकल रागिनी बजने लगती है तब वह कह उठता है —

'होता है हित के लिए सभी।
करते हैं हरि क्या अहित कभी?'

अतः जिस कला में मानव निश्रेयस की भावना निहित नहीं है उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। कलाकार के अन्तरतम का सुख जग को सुखी देखना है। इस प्रकार उस का स्वान्तः सुख भी बहुतजनहिताय ही हो जाता है।

यहाँ पर एक शङ्का मन में उठती है। गुप्त-कालीन चित्र-कला-परिणतियाँ आखिर किस ओर संकेत करती हैं? रीतिकालीन शृङ्गार-वलयित काव्य-सम्पदा किस प्रेरणा की देन है? भक्तिकालीन काव्योत्कर्ष में कौन सी संवेदना छिपी है? देखने से तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि धन-धान्य की विपुलता में ही कला का वैभव देदीप्यमान हो उठता है। इसलिए व्यक्तिगत सुख की सम्पन्नता ही कला-सम्पन्नता है। इसमें बहुजन हिताय की भावना का अभाव है। पर यह हमारा स्थूल दृष्टि-कोण होगा। थोड़ी देर के लिए भले ही हम भौतिक उपकरणों की उपलब्धि पर इठला लें, इतरा लें; उसके चाक्य-चिक्य पर मस्त होलें, मुग्ध होलें। पर कवि की इस वाणी—

जग बदलेगा किन्तु न जीवन!
क्या न करेंगे उर में क्रन्दन,
जन्म-मरण के प्रश्न चिरन्तन,
हल कर लेंगे जब रोटी का-
मसला जगती के नेतागण?

इत्यादि में ऐसा सत्य निहित है जो हिमालय की धवल श्रेणियों से भी प्रांशु और रत्नाकर के गम्भीर गहराई से भी अगाध है। चित्रकला हो या काव्य-कला, संगीत-कला हो या नृत्य-कला सबों का सम्बन्ध जीवन से है, जग से नहीं। जग से सम्बद्ध कला कालान्तर में परिस्थिति विशेषवश अपनी महत्ता खो देती है। असन-वसन की समस्या दूर हो जाने पर 'वसन कहाँ सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं है' की पुकार मन्द पड़ जायगी पर

'तुम मुझे पूछते हो जाऊँ'
मैं क्या जबाब दूँ तुम्हीं कहो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जा' कहते रुकती है जुबान,
किस मुँह से तुमसे कहूँ रहो ?
× × ×
मैं सदा रूठती ही आई
प्रिय तुम्हें न मैंने पहचाना।
वह मान बाण सा लगता है,
अब देख तुम्हारा यह जाना ॥'

में प्रेम-प्रणय की पीड़ा जो कला की अबाध स्रोत में फूट पड़ी है. कभी भी मन्द नहीं पड़ सकती है। तो यह निश्चय है कि जीवन स्पर्शिता ही कला की सजीवता है, अमरता है।

जीवन-स्पर्शिता की महत्ता जीवन के वेदना-पक्ष से हैं। पनडुब्बी लवण-उदधि में ही पैठकर विश्व के लिए रत्न-राशि बटोर लाता है, उसी तरह कलाकार वेदना-उदधि में ही पैठकर कला की रत्न-राशि एकत्र करता है। वह कामियिनी की श्रद्धा है। जिन दुःखों से हम भयभीत हो जाते हैं उसका वह स्वागत करता है। वह हमें कहता है—

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं की मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत जाओ इसको भूल ॥

इसीलिए तो हमारा मधुरतम गान वेदनापूर्ण अभिव्यक्तियों में है। 'मानिषाद प्रतिष्ठात्वम्' का मौलिक आधार यही है। शेक्सपीयर के उन चालीस नाटकों में हैमलेट, मैकबेथ इत्यादि दुखान्त अभिनय ही महान् साहित्यिक विभूतियाँ हैं।

अब मुख्य प्रश्न यही है कि वेदना तो व्यक्तिगत विभूति है। तब इस कलागत वेदना और कला-सृजन का उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' में क्या सम्बन्ध है ? कलाकार की वेदना अन्वीक्षण यन्त्र है। उस छोटी सी चीज से वह विश्व में व्याप्त वेदना को देख लेता है, और कह उठता है—

'जग पीड़ित रे अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से'

और फिर मानव कल्याण-कामना से गाकर इच्छा प्रकट करता है—

मानव जग में बंट जावे
सुख दुख से औ दुख सुख से'

एक बात बहुजन हिताय के सम्बन्ध में कह देने से बची खुची भ्रान्तियाँ दूर हो जायँगी। इसका सम्बन्ध केवल भौतिक साधनों की प्रचुर आयतन से ही नहीं है। श्रान्त, क्लान्त मन की विश्रान्ति के लिए नाटक का अभिनय भी उसी उद्देश्य से है। कोई रूप सी रमणी अपने को सुसज्जित अलंकृत स्वान्तः सुखाय ही करती है, पर उसके नूपुरों की रुनझुन से यही प्रतीत होता है कि उस साज अलंकार से वह लोगों को आकृष्ट और परितुष्ट भी करना चाहती हैं। गुलाब का गन्ध-प्रसरण अपनी आन्तरिक सन्तुष्टि हो तो हो पर उसकी कोमल पंखुड़ियों का भी कुछ उद्देश्य है। इस कसौटी पर कसने से गुप्त कालीन चित्र-कला एवं रीतिकालीन काव्य-कला का उद्देश्य सार्वजनिक हित ही समझा जायगा।

कलागत वेदना से मेरा तात्पर्य कलाकार के हृदय स्थित अभिव्यक्ति के निमित्त आवेग मयी आकुलता से है। ताज-निर्माण के लिए शाहजहाँ के हृदय में असीम वेदना थी। अतः कलाकार के लिए वेदना आत्माभिव्यक्ति की इच्छा है; चाहे वह सुखानुभूति की हो या दुखानुभूति की, तो मेरा ख्याल है कि प्रत्येक कला-सृजन का समवायी कारण 'स्वान्तः सुखाय' असमवायी 'बहुजन हिताय' और निमित्त स्वयं कलाकार है। अतः कला के में दो पक्ष नहीं है वरन् प्रत्येक उद्भूत कला में दोनों पक्ष हैं।

हिन्दी साहित्य में साहित्य-सन्देश के समान लोक-प्रिय और बहुजनपठित
मासिक-पत्र साहित्य-सन्देश ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज के कलाकार !

श्री चन्द्रमाप्रसाद खरे

संक्रान्ति काल के कलाकार को सतर्क रहने की आवश्यकता है। प्रतिक्रियात्मक विद्रोह-भावनाएँ उसके रक्त को उष्ण कर देती हैं। उसमें नवीन स्फूर्ति, नवीन उत्साह एवं नवीन साहस का सञ्चार होने लगता है। इसी समय रूढ़िवाद एवं सङ्कीर्ण-वाद दो समस्याओं के रूप में सामने आता है और इन्हीं के चक्कर में पड़कर कलाकार आत्म-चिन्तन से दूर स्पर्धा एवं मताग्रह की सङ्कीर्णता में फँस जाता है। वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और साहित्य मानवता का व्यापक सत्य भूल कर राज-नीति के क्षेत्र में जा गिरता है। इसी समय कलाकार की परीक्षा होती है। उसकी प्रतिभा इसी समय प्रकृत रूप में आलोकित होती है। कलाकार का स्वतन्त्र अस्तित्व और चैतन्य इसी समय प्रकट होता है।

जीवन की गति सरिता सी स्वच्छन्द है—उन्मुक्त है। सरिता बढ़ती जाती है श्रान्ति, क्लान्ति करती हुई पर जैसे ही प्रवाह रुका कि 'जीवन' अपेय बन गया! साहित्य की भी यही गति है। विभिन्न युगों में विभिन्न परिस्थितियाँ रहती हैं अतः युग के साहित्य की चिन्ता-धारा विशिष्ट दिशा की ओर रहती है। परन्तु मानवता के व्यापक सत्य की सर्वत्र प्रतिष्ठा रहती है। यदि ऐसा नहीं है तो वह साहित्य एकाङ्गी है, एक पक्षी है, उसमें वर्ग-विशेष की भावनाओं का प्राधान्य हैं, वह स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। यह सत्य है कि युग के अनुसार सत्साहित्य अपने धर्म का पालन करता है परन्तु उसे संघर्ष करना पड़ता है निर्माण के लिए, समाज को—मानव को चेतना प्रदान करने के लिए। अतः निश्चय ही साहित्य को वर्ग विशेष या दल विशेष का विषय बना देना पाप है क्योंकि उससे जीवन में सङ्कीर्णता आती है जो मानवता के लिए सबसे घातक है।

साहित्यकार युग की परिस्थितियों से मुँह नहीं मोड़ सकता। युग की चिन्ता-धारा सङ्कीर्ण—पुलिनों को पार कर स्वच्छन्द गति से बह चलती है—निर्माण की ओर, व्यापक सत्य की ओर। कलाकार की वैयक्तिक भावनाओं का उन्नयन हो जाता है क्योंकि वह सजग रहता है और कोई भी सजग व्यक्ति अपनी विचार-धारा को युग के प्रभाव से मुक्त नहीं कर सकता। आज की आर्थिक विषमता ने कलाकारों के हृदय को हिला दिया है। अर्द्धनग्न एवं बुभुक्षा से जर्जरित मानव-कङ्काल उसके सामने हैं अतः कोई भी सजग कलाकार उन्नत उरोज-नयन-सरोज में खोया नहीं रह सकता। वह मानवता के कल्याण के लिए सचेष्ट हो जाता है। प्रगतिवाद बढ़ा सिंह-गर्जन के साथ। मानव के नेत्र खुले, विद्रोह की लहर प्रबल हो उठी और साहित्य-क्षेत्र दहल उठा। इस प्रतिक्रिया को युग की आवश्यकता कह सकते हैं परन्तु इसमें युग की आवश्यकता और साहित्य के धर्म का कहाँ तक सामञ्जस्य है, यह नहीं कहा जा सकता। इस सङ्घर्षकाल में मताग्रह, अन्धानुकरण और विद्रोह-भावना का क्या प्रभाव पड़ा यह स्वतन्त्र चिन्तन का विषय है। यहाँ तो केवल यही तात्पर्य है कि केवल आर्थिक-साम्य के आधार पर ही मानव-जीवनपूर्ण नहीं बनाया जा सकता। प्रगतिवाद का आदर्श अभारतीय रहे, उसमें सांस्कृतिक-पक्ष की अवहेलना रहे हमें ग्राह्य है पर उसका अन्धानुकरण करने वाले कवि अपना अस्तित्व न खो बैठें, इसी का हमें भय है। भाषा का स्वरूप बदल जाय, अभिव्यक्ति का ढङ्ग भी बदल जाय पर विचारों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थैर्य हो, स्वस्थता हो, प्रांजल्य हो—यही आवश्यक है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने एक विशुद्ध कलाकार की तरह मार्क्सवाद की प्रशंसा की। उनकी सजग आत्मा कह उठी—"वाह्य नहीं आंतरिक साम्य !" वर्ग-भावना के सङ्कीर्ण घेरे में बन्द कलाकारों को यह एक चेतावनी है। प्रगतिवादी आलोचकों के विषय में यही कहना यथेष्ट है कि उनमें थोड़ा सहृदयता का अंश भी आवश्यक है। यह कहना कि 'ग्राम्या' के पश्चात् पन्तजी पुनः 'वज पायल बज छम छम' में लीन हो गये, सत्य प्रतीत नहीं होता। 'नव मानवता का निर्माण करो' कहने मात्र से नव मानवता का निर्माण नहीं हो सकता। उसके लिए कवि को सचेष्ट होना चाहिए। यही सचेष्टता पन्तजी की 'स्वर्ण-किरण' व 'स्वर्ण-धूलि' में वर्तमान है। इसका महत्व भविष्य में ही प्रकट हो सकेगा। पन्तजी आज के कलाकार का आह्वान करते हैं आज के सङ्घर्ष एवं वर्ग वाद के आग्रह के सङ्कीर्ण बन्धन तोड़ कर उन्मुक्त गगन में। उनका प्रयत्न कितना स्तुत्य है ! यदि इस पर भी हमारी आँखें न खुलीं तो इसमें युग के कलाकार का दोष नहीं। इस विषय में उसकी सबसे महत्वपूर्ण पंक्तियाँ ये हैं—

उसी सर्वगत पर केन्द्रित,
रहे मनुज का अन्तर।
हंस रहें जग में मयूर औ,
वायस रहें परस्पर॥
सब के साथ अपायविद्ध,
स्थित-प्रज्ञ रहे नर।

कवि केवल आध्यात्मिकता में ही नहीं बह जाना चाहता। वह चाहता है कि मनुज का अन्तर आत्मोन्मुख रहे। इसके साथ साथ वाह्य साम्य भी वह अत्यन्त आवश्यक समझता है। हंस, मयूर और वायस न्याय, हिंसा एवं धूर्तता के प्रतीक हैं—मानव-स्वभाव वैचित्र्य की ओर संकेत करते हैं। इनके 'परस्पर' रहने में सांस्कृतिक साम्य आ जाता है। उसमें आर्थिक साम्य आदि अन्य आवश्यक तत्व भी आ जाते हैं। 'अपायविद्ध' में आज संघर्ष और अन्धानुकरण में व्यस्त मानव को मार्ग प्रदर्शन का स्पृहणीय प्रयत्न है जो युग को सत्साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करता है। कवि की भी वैयक्तिक अनुभूतियाँ हैं, उसकी भी आवश्यकताएँ हैं पर उसकी विचार-धारा में उनका उन्नयन हो गया है। युग के विशुद्ध कलाकार में यही आवश्यक है।

युग के कलाकार के समक्ष अतीत का गौरव और भविष्य का उत्साह रहता है। वह युग का विश्लेषण कर भविष्य-निर्माण की ओर बढ़ता है। सत्य एवं आदर्श का प्रतिपादन करता है। परन्तु सत्य को पहचानने और उसे ग्रहण करने के लिए साहस एवं निरपेक्ष दृष्टि चाहिए—मानसिक संतुलन चाहिए। इसके लिए विलास-प्रियता एवं दोष-दर्शन की भावना दोनों ही घातक हैं। चाहिए केवल आत्म-चिन्तन। साहित्य में—निर्माण में—उच्छृङ्खलता नहीं संयम चाहिए। यह तभी आ सकता है जब कि कलाकार विशुद्ध दृष्टि से स्थिर रहे—आत्म-चिन्तन से स्थिर विचार लेकर प्रवेश करे न कि वायु के प्रबल झोंके के साथ अपना रुख कर ले। उसके एक हाथ में हो अतीत का गौरव और दूसरे में हो भविष्य का उत्साह। उसकी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण हो कि वर्तमान को पार कर भविष्य की स्वर्ण रेखाओं पर जा लगे। उसके स्वर में इतनी प्रेरणा हो कि वह जन-मन के अणु-अणु में व्याप्त हो जावे। तभी उसके व्यक्तित्व में सत्य एवं आनन्द के साथ चैतन्य अथवा विवेक का उदय हो सकेगा। कलाकार के व्यक्तित्व में यह स्थैर्य बिना चिन्तन के नहीं आ सकता। उसे सजग रहना आवश्यक है।

कलाकार को यह न भूलना चाहिए कि संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा के युग में केवल वह ही मानव को मानव बनाने की क्षमता रखता है। अतः वह बढ़े इस ओर।

11302

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकार बर्नार्ड शॉ

श्री मोहनलाल एम० ए०, साहित्य-रत्न

बर्नार्ड शॉ युग-पुरुष नहीं, युग-युग का पुरुष था। लगभग एक शताब्दी जिसमें सिमट चली हो, जो अनेक युगों का समकालीन कलाकार रहा हो, जिसने समय की सीमाओं-मूल्यों का अतिक्रमण किया हो, जिसका व्यक्तित्व एक दीर्घ काल का इतिहास रहा हो, वह एक युग का नहीं, युग-युग का पुरुष है। अपने लंबे जीवन में शॉ ने अनेक परिवर्तन देखे। साहित्य का रूप बदला, समाज की धारणा बदली, नीति का मान बदला, पर शॉ अन्त तक एक निष्ट, सत्य-निष्ठ रहा। निर्भय पर्वत की तरह जिसके अंदर लावा का विक्षोभ और ताप हो, और जिसने समय के प्रबल थपेड़े सहे हों जीवन के गरल को पचाए संसार की विभीषिकाओं के बीच उन पर हँसता हुआ शॉ अन्त तक अचल, निर्द्वन्द्व खड़ा रहा।

लेखक के रूप में विनम्र भाव से शॉ ने अपनी प्रतिष्ठा की। 'सीजर एन्ड क्लिओपाट्रा' में एक अत्यंत मनोरंजक कथन है है जो शॉ की सफलता के रहस्य पर प्रकाश डालता है—

Cleopatra—No, no, it is not that I am so clever, but that the others are so stupid.

Pothinus—(musingly) Truly that is the great se et.

जब शॉ ने लिखना आरंभ किया था, उसे अपनी निपुणता पर कम, लोगों की मूढ़ता पर अधिक विश्वास था। किन्तु उसकी निपुणता संदिग्ध नहीं। उसने एक बार यह कहा था कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में केवल दो ही प्रमुख घटनाएँ हुई हैं—एक तो उसका जन्म और दूसरी कवि टेनिसन की यह पंक्ति—God fulfils Himself in many ways. (ईश्वर अनेक प्रकार से—अनेक रूपों में—अपनी पूर्ति करता है।) अनेक रूपों में शॉ हमारे सम्मुख आया—विचारक, आलोचक, नाट्यकार, उपन्यासकार, समीक्षक, साम्यवादी, सब तो वह रहा है। लोगों ने उसकी कला के विकास-सूत्र को शॉपेनहार, नीशे, स्ट्रिंडबर्ग, टॉल्सटॉय, सेमुएल बटलर, इब्सन आदि व्यक्तियों में खोजने की चेष्टा की है, पर शॉ ने ऐसे लोगों को इस प्रकार के विकास-सूत्र पर अधिक बल न देने की सम्मति दी है, कारण उसके कलाकार ने शिव अशिव की नैतिक धारणा का उल्लङ्घन कर कला के रूढ़िगत मूल्यों को चुनौती दी है। है। उसका जीवन-दर्शन मौलिक है। जीवन की वास्तविकता को उसने ऊपर से नहीं अन्दर से देखा है, और उसके मान स्थिर किए हैं।

विशाल लन्दन की किसी छोटी-मोटी गली के दुर्गन्ध-युक्त वातावरण में शॉ की कला ने सर्व प्रथम आँखें खोलीं। उसने पाँच अध-कचरे उपन्यास लिखे। जिनका साहित्यिक मूल्य इतना ही है कि वे शॉ की कृतियाँ हैं। मिट्टी उनके ऊपर जम चुकी है और उसे तंग न करना ही अच्छा है। मालूम होता है उपन्यास के विधान में कोई ऐसा तत्व है जो शॉ की कला के साथ मेल नहीं खाता। परिस्थिति का निर्माण वह कर सकता है, पर कथानक के तंत्र को साधना उसके बूते के बाहर है। सभी उपन्यास शिथिल, अनावश्यक कथा-प्रसंगों से पूर्ण और शुष्क उपदेशों से बोझिल हैं। इनसे तो उसकी कहानियाँ और व्यंग-चित्र ही अधिक सुन्दर हैं। इसी अर्से में उसने कला और संगीत के समीक्षक का भी कार्य किया। पर इन सब किसी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी शॉ की उस कला के दर्शन नहीं होते जिसने अंग्रेजी साहित्य के नाटकों को जीवन की नई गति दी है।

शेक्सपीयर और उसके समकालीन नाट्यकारों की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजी नाटक का विकास अवरुद्ध सा हो गया था। १७ वीं शताब्दी में कान्ग्रीव, और १८ वीं में शेरडिन तथा गोल्डस्मिथ के नाटकों में कुछ गति दिखाई पड़ी थी, पर उसके समुचित विकास के लिए अभी गहरी प्रतीक्षा अपेक्षित थी। १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तो मेधावी कलाकारों ने साहित्य के इस अंग की अत्यंत उपेक्षा की। रंगमञ्च से बहिष्कृत होकर वह गीति-नाट्य तक सीमित रह गया। जीवन की यथार्थ चेतना आधुनिक नाटक में इब्सन, स्ट्रिन्डबर्ग हॉप्तमेन, चेकॉव, ब्रिू आदि लेखकों के द्वारा आई। इङ्गलैण्ड में इस नवीन परिवर्तन का श्रेय राबर्टसन, पिनेरो और जोन्स को है। पर शॉ के समय तक नाटक रसिकता और रोमांस की अतिरञ्जित कहानी-मात्र थे। शॉ ने इस कथा वस्तु का परिमार्जन किया। उसने एक नवीन प्रकार के नाटक का सूत्रपात किया जिसे हम सुखान्त वादात्मक नाटक (Comedy of Debate) कह सकते हैं। प्रिस्टले के शब्दों में शॉ का यह प्रतिनिधि नाटक उस रुकावट भरी दौड़ की तरह है जिसे साधने के लिए अत्यन्त सक्रिय मानसिक व्यायाम की आवश्यकता है।* इसके लिये शॉ ने जिस शैली का निर्माण किया, वह स्वयं उत्तेजक और प्रभावशालिनी है, उसमें व्यंग, विदग्धता और चुनौती है। वाद-विवाद के लिए शायद वह सर्वोत्कृष्ट शैली है। यद्यपि जिस वातावरण में वह बसती है वहाँ सदा मध्याह्न की तिलमिलाहट है, संध्या या उषा की स्निग्धता नहीं, किन्तु उसमें इतनी तीक्ष्णता है कि वह सीधे वस्तु के मर्म तक पहुँच जाती है।

शॉ ने अपनी कला में प्रचार और विज्ञापन को अधिक महत्व दिया है।* कला के लिये कला का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। इस सिद्धान्त के लिए वह एक भी पंक्ति लिखने का कष्ट नहीं उठा सकता। उसने स्वयं कहा है कि लन्दन को शिक्षित बनाने के उद्देश्य से उसने लिखना प्रारंभ किया। जब उसने नाटक लिखने के लिए लेखनी उठाई तो दो वस्तुयें उसे अखरीं। एक भावुकता अर्थात् अरुचिकर वस्तुओं से सामना करने में असमता, दूसरी शेक्सपीयर की पूजा अर्थात् कलाकार की सृजन-शक्ति के लिए कुण्ठा। उसने एक साथ दोनों पर आघात किया। यथार्थवाद के अस्त्र से भावुकता पर प्रहार और इब्सन के नाम से शेक्सपीयर की अवज्ञा।

शॉ की कृतियों का मूल्यांकन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहाँ तक उनमें उसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है और कहाँ तक उसका साहित्य कला की दृष्टि से प्रभावशाली हो सका है। एक ओर तो शॉ एक गम्भीर दार्शनिक है जिसे सामाजिक समस्याओं ने तात्विक विवेचन करने को विवश किया है, दूसरी ओर वह एक विनोदी नाट्यकार है जिसे हास्य की अर्द्ध-चेतन प्रवृत्ति ने जीवन पर मर्मांतक व्यंग करने की स्वीकृति दी है। इस प्रकार उसकी कला में इब्सन की गंभीरता और विकॅरली की विनोदप्रियता है।

* "The typical Shaw-play is a kind of obstacle race demanding a tremendous mental athlete to run it successfully."

* All the highest literature is journalism....And to let others cultivate what they call literature.... journalism for me ? (The Sanity of Art)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका संवेदनशील हृदय दरिद्र और बेबसी की तंग परिस्थितियों का उपहास नहीं कर सकता, सोने और रुपे के महलों पर ही उसके भीषण अट्टहास लगते हैं। अन्य नाट्यकारों ने तो सामाजिक दोषों को मिटाने के लिए सीधे समस्याओं को लिया है, पर शॉ घेरे डालता है, इसीलिए वहाँ उलझन और विषमता हैं। कभी-कभी तो यह भी नहीं पता लगता कि नाट्यकार क्या कहना चाहता है। पर जहाँ उसने समस्याओं का सम्मुख सामना किया है, वहाँ किसी प्रकार की विषमता नहीं उपस्थित होती। उसके नाटकों को इस बात का गर्व हो सकता है कि वहाँ वैयक्तिक प्रयास और सामाजिक जड़ता का संघर्ष मूर्त हो सका है।

शॉ ने इतने अधिक ग्रन्थ लिखे हैं कि उनका विशद विवेचन यहाँ नहीं किया जा सकता। अध्ययन के सुभीते के लिए हम उन्हें तीन वर्गों में बाँट सकते हैं—

१—समस्यात्मक नाटक (Problem Plays)

२—अतिमानव नायक से सम्बन्धित नाटक (Super Man-Hero Plays)

३ परा-प्राणतत्वदर्शी नाटक (Meta-biological Plays)

प्रथम कोटि में वे नाटक आते हैं जिनका आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक या अन्य किसी समस्या से कोई सम्बन्ध है। घर की समस्या ने शॉ के चिन्तन पर अधिक प्रभाव डाला है। वह यह अनुभव करता है कि नारी के साथ मनुष्य ने सबसे बड़ा अनाचार किया है। वह बच्चे पैदा करती है, उन्हें पालती है, पोसती है, पर इनके बदले उसे कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। व्यावसायिक क्षेत्र में उसके परिश्रम का कम मूल्य दिया जाता है और घर के क्षेत्र में तो उसक सेवाओं का उसे कोई मूल्य ही नहीं मिलता। औद्योगिक केन्द्रों के इस शोषण ने उसे 'मिसेज वारेन्स प्रोफेशन' लिखने की उत्तेजना दी। श्रीमती वारेन की वेश्या-वृत्ति सामाजिक शिष्टाचार की विडम्बना है। यह तो घर के बाहर का कोलाहल हुआ, पर घर के अन्दर तो और भी अधिक अशान्ति है जो 'कैण्डिडा' में मूर्त्त हो गई है। भावुकता के आवेश, आडम्बर की प्रवृत्ति और मान-प्रदर्शन की रुचि के कारण विवाह-संस्था ने घर के अन्दर घुटन और बाहर इन्द्रजाल पैदा कर दिया है। विवाह संस्था प्राण-शक्ति (Life Force) के मूल्यों को भूल गई है, अतः उसके मूल्य स्वयं मान्यता खो रहे हैं। 'गेटिंग मेरिड' और 'फाइलैंडरर' में भी शॉ ने इन्हीं मूल्यों का विवेचन किया है।

राजनीतिक समस्याओं पर भी शॉ ने कई नाटक लिखे हैं। 'दी एपल कार्ट', 'आन दी रॉक्स' और 'हार्ट-ब्रेक हाऊस' में उसने पूँजीवादी शासन-पद्धति का विवेचन किया है और आधुनिक समाज-विधान की जर्जरता पर प्रकाश डाला है। जिस प्रकार साम्राज्यवादी शासन-तन्त्र से उसे चिढ़ है, उसी तरह उसे धार्मिक रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों से भी घृणा है। 'प्राणशक्ति' ही उसके लिए मान्य है, उसकी आज्ञा ही उसका धर्म है; शेष धर्म-चक्र तो पूँजीवादी की धुरी पर घूर्मित होता रहता है। वह धर्म मनुष्य की आत्मा की रक्षा नहीं कर सकता, कारण उसकी आत्मा स्वयं चाँदी के टुकड़ों पर बिक चुकी है। 'मेजर बारबेरा' में शॉ ने इसी तथ्य को सामने रखा है। धर्म के लिए वह आतङ्क और रक्तपात को भी अवाञ्छित समझता है। 'एन्ड्रोक्लिज एण्ड दी लाइन' में नाट्यकार ने इसी धार्मिक विडम्बना की हँसी उड़ाई है। डाक्टर की वृत्ति से भी शॉ को चिढ़ है। बीमारियाँ अधिकतर दरिद्रता और उत्पीड़न के कारण होती हैं। अतः डाक्टर को बीमारी पर जीवन-यापन करने का कोई अधिकार नहीं है। इन समस्यात्मक नाटकों में शॉ के सिद्धांतों का तार्किक प्रतिपादन मिलता है। उसके विचार सुदृढ़ और तथ्य स्पष्ट हैं। इन विचारों ने समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जो बौद्धिक उत्तेजना दी है, वह असंदिग्ध है।

दूसरी कोटि में शॉ के अतिमानव नायक से सम्बन्ध रखने वाले नाटक आते हैं। परम्परागत नायक की धारणा बाह्य और आन्तरिक संघर्ष पर आश्रित है। वहाँ नायक एक प्रभावशाली व्यक्ति है जिसके चारों ओर नाटक के पात्र और घटनाएँ घूमती हैं। संघर्ष में शॉ की आस्था नहीं। उसकी दृष्टि में वास्तविक संघर्ष अहं (Self) की विजय में है। शॉ के अधिकांश नाटकों में यह बाह्य संघर्ष अत्यन्त कम है। शॉ तो उत्कृष्ट नायक उसे मानता है जिसमें नैतिकता के किसी मौलिक मूल्य की चेतना हो। उसके नायक मेधावी और आत्म-संयमी हैं—आध्यात्मिक संघर्ष उन्हें करना नहीं पड़ता, कारण उनकी नैतिक चेतना रीतिबद्ध नहीं, क्रियात्मक और मौलिक है। नेपोलियन और सीजर इसी प्रकार के अतिनायक हैं। सैंट जोन के चरित्र में भी यही अति-नायकत्व मिलता है। सफलता इन चरित्रों के पाँव चूमती है, इसका कारण यह नहीं कि वे महापुरुष हैं, बल्कि यह कि उनमें जो नैतिक चेतना है वह संकल्प-निष्ठ है। अति-नायकों से सम्बन्धित उसके अन्य नाटकों में 'डेविल्स डिसाइप्ल' और 'आर्म्स एण्ड दी मैन' आते हैं, जिनके नायक हैं तो साधारण व्यक्ति, पर जिनकी नैतिक चेतना असाधारण और क्रिया-शील है।

तीसरे वर्ग में शॉ के परा प्राणतत्वदर्शी नाटक आते हैं। उसकी यह धारणा है कि आधुनिक युग में उसने ही यथार्थ यौन-सम्बन्धी नाटक लिखे हैं। उसका 'मैन एन्ड सुपर मैन' वास्तव में यौन-नाटक है, पर शॉ के प्राणतत्व ज्ञान ने यौन आकर्षण के बीच रुकावट उपस्थित कर दी है। जहाँ वह यौन आकर्षण को रोमांस की दासता से मुक्त करता है, वहाँ प्राण शक्ति की इच्छा से उसे अनुशासित भी कर देता है। टैनर ऐन से दूर दूर भागने का प्रयत्न करता है, पर 'प्राण-शक्ति' की इच्छा के आगे उसे नत होना ही पड़ता है।

'मैन एन्ड सुपर मैन' में नाटक वहीं समाप्त हो जाता है जहाँ नायक 'प्राण-शक्ति' की आज्ञा मान लेता है। इस बात का आभास वहाँ नहीं मिलता कि प्राण-शक्ति किस प्रकार की संतान चाहती है। "बैक टू मेथुजेलाह" में लेखक ने इस ओर संकेत किया है। पुस्तक मानों प्राण शक्ति की गति-विधि का विस्तृत इतिहास है। इसकी कथा-वस्तु का श्री गणेश आदम के प्रादुर्भाव से होता है, और इतिश्री उस सुदूर भविष्य में जहाँ पहुँच कर मनुष्य शरीर के चोले से मुक्त हो गया, किन्तु फिर भी वह निरन्तर विकासशील है। यह पुस्तक शॉ की कल्पना-शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शॉ में मूलतः दो विचार-धाराओं का समन्वय है। जीवन को सुन्दर और गौरवपूर्ण बनाने के लिए एक ओर वह समाज के आदर्श को बदलना चाहता है, दूसरी ओर वह मनुष्य में ही परिवर्तन अपेक्षित मानता है। प्रथम वर्ग में उसके अरुचिकर (Unpleasant plays) आते हैं, दूसरे में परा-प्राण तत्व दर्शी नाटक (Mata-Biological plays) 'अरुचिकर' शॉ यथार्थवादी है, परा-प्राणतत्वज्ञ आदर्शवादी। उसकी कला में इसी यथार्थ और आदर्श का द्वन्द्व है। समय ने शायद यही स्थिर किया है कि 'अरुचिकर' शॉ के ही मान ठीक हैं। भविष्य के जिन रंगीन चित्रों की कल्पना 'परा-प्राणतत्वज्ञ' ने की है, वास्तव में वह नैराश्य की विभीषिका है—यही उसका यथार्थ है।

यथार्थवादी कलाकार प्रमुखतः वस्तु का छाया-चित्र देने की कोशिश करते हैं, पर साहित्य में वस्तु की पूर्ण छाया नहीं आ सकती, कारण कला के सृजनात्मक और विवेचनात्मक दोनों पक्ष हैं। युग की जिस अनुभूति में शॉ ने साँस ली, जोला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गाल्सवर्दी के साहित्य में भी उसने ही प्राण फूँके हैं। समाज की कुरीतियों का यथा तथ्य वर्णन उनके साहित्य में मिलता है, पर शॉ में जोला और गाल्सवर्दी की तटस्थता नहीं, जिहाद की ज्वाला है। उसका पर्यवेक्षण तीव्र और पारदर्शी है—बाहर की तहों को बेधता हुआ वह उस मर्म पर आघात करता है जहाँ विनाश के कीटाणु वस्तु की जड़ काटने में लगे हैं। इस लिए समाज की चिकित्सा वह उन इधर-उधर बिखरे रोगों के उन्मूलन द्वारा नहीं करना चाहता, वह तो अपना नस्तर उस अङ्ग पर लगाना चाहता है जो प्राण शक्ति के भ्रामक आधार पर पुष्ट हो रहा है।

शॉ का यह यथार्थवाद मनुष्य की सहज बौद्धिक प्रकृति पर आश्रित है। रोमांस और भावुकता के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है। जिस प्राण-शक्ति में उसका निश्चल विश्वास है, वह निरन्तर विकासशील है। उस विकासक्रम में मनुष्य का आविर्भाव एक प्रयत्न-मात्र है—वह पूर्ण हो, यह आवश्यक नहीं। रूढ़िबद्ध नैतिक धारणाओं का इस प्राण-शक्ति की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं केवल एक ही वस्तु उसके लिए सत्य और शाश्वत है—विकास प्रवृत्ति। मनुष्य इसी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है, और यदि उसने प्राण-शक्ति की अवज्ञा की तो उसके स्थान पर वह अति-मानव (Super Man) को प्रतिष्ठित कर सकती है। शॉ ने देखा कि समाज की कुत्सित व्यवस्था मनुष्य के विकास में बाधक हो रही है, उसकी रीतिबद्ध संस्थाएँ उसकी गति को अवरुद्ध किये हुए है। अतः जीवन एक विराट् उपहास (Huge Joke) हो गया है और जिस पर उसने सदैव तद्रूप किया उसने अन्त में उसकी आँखें बन्द कर दीं।

हिन्दी नाटक पर शॉ का प्रभाव—इस महान् कलाकार की नाट्यकला और उसके चिन्तन ने हिन्दी के आधुनिक नाट्य-साहित्य को अत्यन्त प्रभावित किया है। अंग्रेजी नाटकों का एक प्रभाव हिन्दी पर शेक्सपियर और एलिजबिथन नाट्यकारों का पड़ा था, पर रोमाण्टिसिज्म की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हिन्दी के लेखकों का ध्यान जीवन की उन समस्याओं की ओर आकृष्ट हुआ जिनकी उपेक्षा युग के बौद्धिक चिन्तन में हो ही नहीं सकती थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृथ्वीनाथ शर्मा, भुवनेश्वरप्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास आदि के नाटकों में इस युग का विचार-संघर्ष मिलता है। जिन समस्याओं का इन नाट्यकारों ने विवेचन किया है, उनमें प्रमुख हैं व्यक्ति और समाज की समस्या, स्त्री और पुरुष की समस्या, घर और बाहर की समस्या शासन और राजतन्त्र की समस्या। अन्तिम समस्या का सम्बन्ध राजनीति से है। भारत की राजनीति को गाँधी से जो दिशा और व्यवस्था मिली है, वह एक प्रकार के आध्यात्मिक समष्टिवाद की वस्तु है जो शॉ की विचारधारा के बहुत अनुकूल नहीं, किन्तु उसके मूल में मानव के प्रति जो संवेदनशीलता मिलती है, उसमें निश्चय ही उसकी भी गहन आस्था है। अतः सेठ गोविन्ददास और उनकी कोटि के नाट्यकारों पर जिन्होंने राजनीतिक समस्याओं को उठाया है, शॉ की केवल बौद्धिक उत्तेजना का प्रभाव पड़ा है, उनके चिन्तन की धारा मूलतः गाँधी भी है। पर उन नाट्यकारों पर, विशेषतः लक्ष्मीनारायण मिश्र पर जिन्होंने व्यक्ति और उससे गूँथी हुई सैक्स, समाज और घर की समस्याओं को लिया है, शॉ का प्रभाव अधिक है। इन नाटकों में घर के जो ढहते हुए मूल्य दिखाए गए हैं, व्यक्ति का सामाजिक जड़ता से जो संघर्ष दिखाया गया है, सैक्स-समस्या से जो व्यग्रता और विषण्णता उठ रही है उसे उपस्थित किया गया है, उनमें शॉ के विचारों का बहुत दूर तक प्रभाव पड़ा है। यद्यपि यह सत्य है कि हिन्दी के नाट्यकारों में इस भूमि के प्राचीन मूल्यों के प्रति सम्मान की जो भावना है, उसके

(शेषांश देखिए २४२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियप्रवास की राधा और साकेत की उर्मिला

श्री शिवप्रसाद लोहानी बी० ए०, साहित्य रत्न

'हरिऔध' और गुप्त जी अपने काल के प्रमुख कवि हैं। 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' क्रमशः इनकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ हैं और राधा तथा उर्मिला उनके प्रमुख पात्र। इन दोनों पात्रों के विरह हिन्दी-काव्य-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्हीं पर प्रकाश डालना इस लेख का उद्देश्य है।

वियोग रात्रि-सम कालिमामय और संयोग दिन-सम उज्ज्वल माने जाते रहे हैं। 'प्रियप्रवास' का प्रारम्भ ही कवि ने दिवस के अवसान के समीप वाले क्षण से कराया है और ब्रजवासियों के उर भी आसन्न कृष्ण-वियोग से व्यथित दिखाये गये हैं। राधा का प्रथम दर्शन वियोग की स्थिति जताता है। इसके विपरीत 'साकेत' में परम्परानुगत मंगलाचरण के अनन्तर राम जन्म की खुशियाली दिखलायी गयी है। उर्मिला-लक्ष्मण के मधुर प्रेमालाप द्वारा कवि के युगल दम्पति के प्रेम का मुखर शाब्दिक चित्र खींचने का प्रयास किया है। संयोग के ये सुखद क्षण वियोग की तीव्रानुभूति कराने में सहायक हुए हैं। हाँ, 'साकेत' के दशम सर्ग में उर्मिला भी 'प्रियप्रवास' की राधा की भाँति पूर्व स्मृतियों की चर्चा करती है।

कृष्ण-काव्य की परम्परा में 'प्रियप्रिवास' की राधा एक नया अध्याय जोड़ती है। राधा का लोक संग्रही रूप उसमें दिखाया गया है। जहाँ पूर्ववर्त्ती हिन्दी कवियों की राधाएँ अपने वियोग से मुख्यतया व्यथित हैं, वहाँ 'प्रियप्रवास' की राधा दूसरे के दुःख से भी द्रवित है, वह कहती है:—

जी से बातें सकल सुनना आर्त्त उत्पीड़ितों की
रोगी प्राणी व्यथित जन की लोक उन्नायकों की;
सच्छास्त्रों का श्रवण सुनना वाक्य सत्संगियों का,
जानी जाती श्रवण अविधा भक्ति है सज्जनों में।

'साकेत' की उर्मिला गुप्त जी की प्रथम उद्भावना है जिसके अभाव की ओर विश्व-कवि रवीन्द्र एवं आचार्य द्विवेदी इंगित कर चुके थे। पूर्व के राम-काव्यों में उर्मिला के नाम भर आते हैं। यद्यपि समग्र रूप से 'हरिऔध' की अपेक्षा गुप्त जी में लोक संग्रह का दृष्टिकोण कुछ अधिक ही पाया जाता है तथापि 'साकेत' की उर्मिला से 'प्रियप्रवास' की राधा का लोक-संग्रही स्वरूप अधिक स्पष्ट और मुखर है। गुप्त जी की उर्मिला दुःखियों की सेवा निज करों से नहीं करती और न उनकी स्थिति जानने के लिये स्वयं बाहर ही होती है। हाँ, दूसरे के द्वारा जानने की जिज्ञासा अवश्य करती है:—

पूछी थी सुकाल दशा मैंने आज देवर से—
कैसी हुई उपज कपास, ईख, धान की।
बोले—"इस बार देखने में भूमि पर
दुगुनी दया-सी हुई इन्द्र भगवान की;
पूछा यही मैंने एक ग्राम में तो कृषक ने
अन्न, गुड़, गोरस की वृद्धि की बखान की,
किन्तु स्वाद कैसा है न जाने इस वर्ष हाय
यह कह रोई एक अबला किसान की।"

'प्रिय प्रवास' की राधा के साथ वैसी बात नहीं वह स्वयं दुखियों से मिलती है, उनका समुचित उपचार करती है। वन-उपवन एवं कुञ्ज की गलियों में घूम-घूम कर उनकी स्थिति जानने को आकुल रहती है। कवि कहता है:—

वह सहृदयता से ले किसी मूर्च्छिता को,
नित अति उपयोगी अङ्क में यत्न द्वारा
मुख पर उसके वह डालती वारि छींटे
कर व्यजन डुलाती थी कभी तन्मयी हो।

उर्मिला तो प्रोषित पतिकाओं को भी अपने यहाँ लाने का आदेश सखियों को देती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए कि उनके दुख को देख कर उसका दुख कुछ कम हो –

प्रोषित पतिकायें हों
जितनी भी सखि, उन्हें निमन्त्रण देआ,
समदुःखिनी मिलें तो
दुःख बँटे, जा प्रणय पुरस्सर ले आ।

राधा का विवेक जाग्रत रहता है। कृष्ण वहिर्गमन-जन्य वियोग से आक्रान्त होने पर उसके उर में जो भाव जगते हैं उनमें जग-हित की भावना सन्निविष्ट होने के कारण उसे संतोष मिलता है :—

प्यारे आवें सुवचन कह प्यार से गोद लेवें
ठण्डे होंगे नयन दुःख हो दूर मैं मोद पाऊँ,
ए भी हैं भाव मम उर के और वे भाव भी हैं
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें।

उर्मिला परिणीता पत्नी है, राधा प्रेमिका। राधा को स्वतन्त्रता थी स्वरुचि के अनुसार पति-वरण करने की फिर भी कृष्ण-प्रेम में वह तन्मय है। केवल वही नहीं ब्रज के सभी निवासी कृष्ण-वियोग से दुखी हैं किन्तु यशोदा का वात्सल्य और ...का प्रेम बड़े तलस्पर्शी हैं। राधा कहती है:—

हृदय चरण में तो मैं चढ़ा ही चुकी हूँ,
सविधि वरण की थी कामना और मेरी।

पर परिणय नहीं होने के कारण राधा के प्रेम में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता। वह एकान्त भाव से कृष्ण प्रेम में अहर्निश डूबी रहती है, प्रेम का नशा उतरता नहीं दिखाई देता। हाँ, जैसा कि ऊपर कहा गया है यह नशा लोक-हित में परिणत हो गया है।

उर्मिला और राधा दोनों को प्रकृति के वे विभिन्न उपकरण प्रफुल्लित नहीं करते जिनसे पहिले हृदय में आनन्द की रश्मियाँ जाग्रत हो जाती थीं। राधा को बाल-सूर्य कामिनी का रक्त-सा दीखता है—

क्षितिज निकट कैसी लालिमा दीखती है,
वह रुधिर रहा है कौन-सी कामिनी का?

तो उर्मिला को नैश गगन के तारे फफोले से लगते हैं:—

नैश गगन के गात्र में पड़े फफोले हाय!
तो क्या मैं निःश्वास भी न लें आज निरूपाय?

किन्तु प्रकृति के जिस मुक्त वातावरण में राधा विचरण करती है वैसा उर्मिला को सुलभ नहीं। उर्मिला का क्रीड़ा क्षेत्र गृह और उससे सम्बन्धित उपवन है और राधा का ब्रज की विस्तृत गोचर भूमि। राधा बन में घूम घूम कर प्रकृति के सारे पादपों, सुमनों एवं वल्लरियों से कृष्ण का पता पूछती है और वे भी उसके जैसे नैराश्य-रंग में रंगित दीखते हैं:—

आके तेरे निकट कुछ भी मोद पाती न मैं हूँ,
तेरी तीखी महंक मुझको कष्टिता है बनाती।

उर्मिला राज घराने की बधू है और उसकी राजकीय मर्यादा उसे राज्यानुकूल कार्य करने को विवश करती है। फलतः उसमें राधा-सा प्रकृति निरीक्षण एवं तज्जन्य अनुभूति के व्यापक दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है। राधा का व्यापक दृष्टिकोण कालान्तर में विश्व प्रेम उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुआ है। उर्मिला का मिलन चौदह वर्षों के अनन्तर तो निश्चित था और दिन प्रति दिन अवधि का गुरु भार हलका होता जाता था—

अवधि शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी दृग जल धार।

पर राधा का आराध्य मिलन अनिश्चित था। बल्कि दिनानुदिन मिलन की संभावना कम होती गयी। कृष्ण मथुरा से द्वारिका चले गये, तीन कोस से सैकड़ों कोस दूर। एक बार जो ब्रज से विदा हुए पुनः वहाँ पैर नहीं रखा। उर्मिला को तो भारत के ननिहाल से लौटने पर वन में जाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मण से दर्शन करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ, भले ही लक्ष्मण ने कर्त्तव्य-भाव से प्रेरित होकर उर्मिला से भेंट करने में उत्सुकता न दिखायी हो और उर्मिला को कहना पड़ा होः –

हा स्वामी कहना था क्या क्या,
कह न सकी कर्मों का दोष;
पर जिसमें संतोष तुम्हें हो
मुझे उसी में है संतोष।

ऐसी सुविधा में नहीं होने पर भी राधा मानस संतुलन नहीं खोती और कृष्ण प्रेम का एकांगी स्वरूप विशाल विश्व-प्रेम में परिवर्त्तित हो जाता हैः—

मेरे जी में अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा,
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में।

कृष्ण का रूप परमात्मा के समष्टि रूप में विलीन हो जाता हैः—

पाती हूँ विश्व प्रियतम विश्व में प्राण प्यारा,
ऐसे मैंने जगति पति को श्याम में है बिलोका।

इस भाँति राधा के वैयक्तिक विरह से कीच में कमल की भाँति विश्व-प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। राधा कहती है—

पाई जाती विविध जितनी वस्तुएँ जो सबों में
मैं प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूँ,
तो मैं कैसे उन सब को प्यार जी से करूँगी?
यों है मेरे हृदय तल में विश्व का प्रेम जागा।

राधा का वैयक्तिक प्रेम विश्व-प्रेम में परिवर्त्तित होकर उसके महत्व को बढ़ा देता है अवश्य, पर 'प्रियप्रवास' का विप्रलम्भ करुण में परिणत होकर शोक की उद्भावना भी करता है। 'प्रियप्रवास' में विशुद्ध विप्रलम्भ का परिपाक नहीं हुआ है पर साकेत उस स्थिति को नहीं प्राप्त करता।

मनोवैज्ञानिकता के दृष्टिकोण से उर्मिला की मानसिक उद्विग्नता चरम सीमा पर पहुँची-सी लगती है पर जैसे कवि को उसकी मनस्थिति को विविध रूपों में व्यञ्जित करने की बलवती इच्छा है। यही कारण है कि किसी भी एक स्वरूप पर उर्मिला ध्यानस्थ नहीं होती और उसका विरह सरोवर के उथले जल-सा भासित होता है। कुछ पंक्तियों में पहले गृहवाणी की चर्चा, दूसरे में चन्द्रकान्त मणि की, तीसरे में मानस-अर्चा की, चौथे में दीप-कर्पूर और पाँचवे में हृदयस्थ भावनाओं के गीति-रूप की। इस भाँति विरह भावनाओं की एकात्मता और एक रसता में विशृङ्खलपन पग-पग पर मालूम पड़ता है। यह सम्भवतः इसलिए भी कि काव्य की प्रबन्धात्मकता में कम से कम व्यवधान डाले बिना उर्मिला के विरह वर्णन किये जायँ और पूर्णरूपेण। इस प्रकार रामकथा का सर्वांश प्रायः 'साकेत' में व्यञ्जित है। 'प्रियप्रवास' की राधा में विरह की गहराई को उसके अनुरूप ही चित्रित किया गया है। उसमें सरोवर सा उथलापन नहीं, कूप की गहराई है। राधा हृदय की सारी भावनाओं के साथ विरह-निवेदन तन्मय होकर करती है। कृष्ण के मात्र उस स्वरूप का जो व्रज-क्रीड़ा में व्यतीत किया गया, 'प्रिय-प्रवास' का प्रतिपाद्य होने से कवि की प्रबन्धात्मकता में बाधा पड़ने की कोई वैसी बात नहीं थी।

स्मरणीय है कि 'प्रिय प्रवास' वर्णवृत्त छन्दों में लिखा गया है और वर्णवृत्त में काव्य-रचयिताओं को अक्षर-अक्षर पर लघु-गुरू का शासन स्वीकार करना पड़ता है। फिर भी राधा हृदय की व्यथा को स्वाभाविक रूप से कहती जाती है। हाँ, भाव को अखंड तैल पारावत रखने के लिए संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया है जिससे सर्व साधारण को सम्यक् भाव-बोध में कठिनाई हो सकती है। उर्मिला की भाषा में वैसी दुरूहता अपेक्षाकृत कम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवितावली और हनुमान्नाटक

श्री देवीदत्त शर्मा 'देव' साहित्य रत्न

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस की तरह यद्यपि अपनी 'कवितावली' में संस्कृत ग्रन्थों का ऋण स्वीकार न किया हो, किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उनकी इस रचना पर हनुमान्नाटक आदि संस्कृत ग्रन्थों का प्रभाव कुछ अवश्य पड़ा है। हनुमान्नाटक में कुछ स्थल ऐसे मिल जाते हैं जिनके भाव कवितावली के कुछ पद्यों से बहुत कुछ टकरा जाते हैं। उदाहरणार्थ हनुमान्नाटक की निम्नलिखित पंक्तियों को देखिए—

सद्यः पुरी परिसरेषुशिरीषमृद्धी
गत्वा जवात्रि चतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति क्रियदित्य सकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्"

पद्म कमल रजोभिर्युक्त पाषाण देहा
मल भत यद् हल्यां गौतमो धर्मपत्नीम्।
त्वयि चरति विशीर्णं ग्राव विंध्याद्रिपादे
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्त ॥

(तृतीयोऽङ्क हनुमान्नाटक)

प्रथम श्लोक का भावार्थ इस प्रकार है—"सिरस फूल के समान कोमलांगी सीता अयोध्या-पुरी के समीप की भूमि शीघ्रता से चार पग चल-कर तथा श्री रामचन्द्रजी के आँसुओं का थम जन्म कराती हुई इस प्रकार बार-बार पूछने लगी कि हे नाथ! अब कितना मार्ग और चलना है।"

पञ्चवटी प्रसंग से सम्बन्धित द्वितीय श्लोक का भावार्थ भी इस प्रकार है—(सीताजी कहती हैं) "हे नाथ! जब गौतम ऋषि के शाप से शिला रूप अहिल्या ने आपके चरण-कमल की रज से पाषाण रूप त्याग दिव्य शरीर प्राप्त किया तब अब जिनमें चारों ओर शिला फैली पड़ी हैं ऐसी इस विंध्याचल की तलहटी पर आपके विचरने के कारण न जाने कितने तपस्वी स्त्री वाले हो जायँगे अर्थात् जैसे पूर्व में शिला रूप अहिल्या दिव्य शरीर वाली होगईं; वैसे ही अब जिन-जिन शिलाओं को आप अपने चरण-कमलों से स्पर्श करेंगे वे भी दिव्य स्त्रियाँ बनकर ऋषि पत्नियाँ बन जावेंगी।

उपर्युक्त श्लोकों के साथ कवितावली के निम्न सवैयों को मिलाकर पढ़िए—

पुर ते निकसी रघुबीर बधू
धरि धीर दये मग में डग द्वै,
झलकी भरि भाल कनी जल की
पुटि सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक,
पर्णकुटी करिहौ कितह्वै,
तिय की लखि आतुरता, पिय की
अखियाँ अति चारु चली जल च्वै॥

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रत-
धारी महा बिनु नारि दुखारे,
गौतम तीय तरी 'तुलसी' सौं
कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्र मुखी,
परसे पद मंजुल कंज तिहारे,
कीन्हीं भली रघुनायक जू,
करुना करि काननु कौं पगु धारे॥

कवितावली के इन दोनों सवैय्यों का अर्थ सरल ही है। प्रायः सभी समालोचक अन्तिम सवैये को तुलसीदासजी की विनोद वृत्ति की उपज बतलाते हैं जो सम्भवतः ठीक नहीं। कवितावली के उक्त सवैय्यों की रचना करते समय गोस्वामीजी का ध्यान हनुमान्नाटक के उक्त श्लोकों

(शेष पृष्ठ २४५ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यशोधरा' की यशोधरा

श्री चाँदमल कर्णावट बी० ए०, साहित्यालङ्कार

राष्ट्र-कवि गुप्तजी खड़ीबोली उदयकालीन धारा से अद्यावधि साहित्य रचना करते आ रहे हैं। इनकी रचनाएँ राष्ट्र की एक परम निधि हैं। सुबोधगम्य सरल भाषा में उत्कृष्ट भावों का अङ्कन गुप्तजी की एक अपनी विशेषता है। इनकी रचनाओं से राष्ट्र निवासियों के हृदय राष्ट्र प्रेम की लता हरी भरी हुई है। हमारे देश की प्राचीन गौरव गाथा वर्तमान के वर्णन और भविष्य की सुनहरी भूमिका का निर्माण इनकी भारत-भारती का वर्ण्य विषय है। इनके साकेत सदृश्य महाकाव्य को पाकर साहित्य-क्षेत्र जगमगा उठा है। तपस्विनी उर्मिला का चरित्र अन्यान्य काव्यों में यथा रामचरित-मानस सदृश्य महाकाव्य में भी नहीं उठ पाया और करीब-करीब अपूर्ण सा ही रहा। ऐसे महान नारी चरित्र को राष्ट्र में प्रभावपूर्ण ढङ्ग से प्रगट करना गुप्तजी की ही लेखनी की करामात है। पुरुष चरित्र के साथ नारी चरित्र हमारे साहित्य रचना क्षेत्र में कुछ अपूर्ण सा ही रहा है, परन्तु गुप्तजी द्वारा साहित्य प्रवाह की धारा ने इसको विकसित किया है। यशोधरा की रचना भी इसी का शुभ परिणाम है।

यशोधरा काव्य का नामाङ्कन गुप्तजी की उत्कृष्ट रचनाओं में किया जाता है। इस काव्य का प्रधान पात्र 'यशोधारा' ही है। गौतम तो केवल प्रारम्भ में और ग्रन्थ की समाप्ति में ही अवतरित होते हैं। यशोधरा में यशोधरा का चरित्र गौतम के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात से ग्रन्थ के सम्पूर्ण होने तक है। और इसमें यशोधरा पत्नी, गर्भिणी गोपा, विरहिणी आधुनिक नारी, विदुषी तथा सर्वश्रेष्ठ आदर्श माता के रूप में वर्णित है। ये सारे रूप यशोधरा को यशः धरा अर्थात् यश धारण करने वाली रूप में सिद्ध करने में किञ्चित भी न्यूनता नहीं रखते।

अज्ञात रूप में गौतम के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् यशोधरा द्वारा यह कथन—

"सिद्ध हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा आघात
सखी वे मुझसे कहकर जाते"

अवश्य ही अनुभव योग्य है। सम्भव हो सकता था कि यशोधरा उर्मिला के पाद पद्मों का अनुसरण नहीं करती परन्तु उसी समय उसके गौरवपूर्ण हृदय का प्रतीक उसके प्रियतम प्रिय हृदय में भारतीय ललना का गौरव जागृत होता है। पतिप्रेम में आदर्श व क्षात्र-धर्म का परिचय देते हुए वह कहती है—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र-धर्म के नाते
जाँय सिद्धि वे पायें सुख से,
दुखी न हों इस जनके दुख से,

यद्यपि गौतम का महाभिनिष्क्रमण यशोधरा की अज्ञात अवस्था में ही हो चुका है, पर यशोधरा इसे भी हृदय से ग्रहण करती है। उसका हृदय इन शब्दों में बोल उठता है—

"बस सिन्दूर बिन्दु से मेरा, जगा रहे यह भाल।
वह जलता अङ्गार जलादे, उनका सब जञ्जाल॥"

बड़ी उलझनों और संघर्षों के बाद भी यशोधरा के हृदय का स्वच्छ व आकर्षक प्रतिबिम्ब प्रगट हुए बिना नहीं रह सकता। उसका शुद्ध रूप तभी देखने को मिला जब यशोधरा कह बैठी—

जाओ नाथ अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी"

इसके अतिरिक्त यद्यपि गोपा या यशोधरा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्र कवि के द्वारा अवश्य ही एक गर्बिली स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है परन्तु रचना के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि कवि ने पत्नी रूप में भी उसकी महता को समय-समय पर अवश्य स्मरण कर लिया है। फलस्वरूप अल्प-अल्प भाषणान्तर गोपा के हृदयान्तर्गत पति-प्रेम व पति-भक्ति के सरस भाव फूट पड़ते हैं जिससे पाठक यह निश्चय सा कर लेता है कि गोपा का चरित्र केवल गर्विली स्त्री के रूप में ही नहीं है, यशोधरा शुद्ध यशोधरा है। वह कहती है:—

"मेरी नयन मालिके माना, तूने बन्धन तोड़ा।
पर तेरा मोती न बने हा प्रिय के पथ का रोड़ा॥"

इसी प्रकार वह अपने विशाल हृदय का प्रभावपूर्ण परिचय देती हुई वर्णित है! सखियों के मध्य अपने पति के सम्बन्ध में वार्तालाप करते हुए वह कहती है—

"सारा विश्व जिनका कुटुम्ब है, उन्हें मातृभूमि का बन्धन कैसे बाँध सकता है।"

यह है यशोधरा के हृदय की विशालता का चित्र और यही है भारतीय आदर्श, जिस पर विश्व को गर्व होना चाहिए। अपने पति को परोक्ष में दे, अपनी हार्दिक बहुमूल्य सम्मति प्रेषित करती है। एक पतिव्रता का हृदय उसमें सदैव जाग्रत रहता है। उसके हृदय से आविर्भूत यह सन्देश-प्रेषण चाहे उसके गर्वपूर्ण हृदय का भी परिचायक क्यों न हो परन्तु अतीव प्रभावपूर्ण व अनुकरणीय है।

'गये हो तो यह ज्ञात रहे
बहे उधर गङ्गा की धारा,
इधर तुम्हारी गिरा अपारा।
प्लावित करदे अघ जगसारा,
हाँ युग-युग अवदात रहे॥"

तभी तो ग्रन्थ की समाप्ति में मिलन के समय उसके हृदय-सागर को हम स्पष्ट देखते हैं। कवि की लेखनी यहाँ यशोधरा के चरित्र को स्पष्ट कर कितनी सम्मानपूर्ण हुई है, इसका परिचय तब ज्ञात होता है, जब यशोधरा भक्त रूप में विश्व सम्मानित आराध्य का इन शब्दों में कीर्तन करती है—

पधारो भव भव के भगवान!
पुलक पद्य परिगीत हुए ये,
पद रज पोंछ पुनीत हुए ये।
रोम-रोम शुचि शीत हुए ये,
पाकर पर्व स्नान।

गौतम की धर्मपत्नी के अतिरिक्त यशोधरा का माता का रूप बड़ा ही हृदयहारी और सुखकर है। यद्यपि यह रूप अवश्य ही उर्मिला के सन्त-जीवन का दूसरा पट है परन्तु फिर भी यशोधरा इसी रूप के ही कारण जीवित रह सकी है। वह सुपुत्रवती होने के नाते कहती है—

"मेरी मालिन गुदड़ी में भी,
है राहुल सा लाल।"

माता के रूप में यशोधरा राहुल जननी के नाम से अभिहित है। राहुल-जननी का रूप अत्यन्त आनन्द-प्रद है। राहुल को प्राप्त कर यशोधरा यशोधरा बन गई और उर्मिला इसके अभाव में अवश्य ही दुखी रही होगी।

ठहर बाल-गोपाल कन्हैया,
राहुल राजा भैया।
आ मेरी गोदी में आजा,
मैं हूँ दुखिनी मैया।
रोने से यह रिस ही अच्छी,
तिली लिली ताथैया।

इस प्रकार वह अपने पुत्र राहुल की—क्रीड़ाओं को लक्ष्य कर अपना सम्पूर्ण संसार सुख पूर्ण मानती है। इस रूप में उसका चरित्र मननीय है तथा आदर्श स्थापन करने वाला है। माता-पुत्र का वार्तालाप सहज स्वाभाविक और साफल्य को लिए हुए होने से पाठक को अपना भान भुला देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षित माताएँ अपने अज्ञजात पुत्रों को कैसा मधुर उपदेश देतीं व उनके जीवन का निर्माण कर एक आदर्श समाज अबाध रूप से वर्तमान रख सकती है इसका महान् आनन्द-पूर्ण समाधान राहुल जननी के चरित्र से स्पष्ट है। तात्त्विक वार्तालाप के पश्चात् यशोधरा राहुल को कहती है—

"वत्स यही मन जब निश्चलता पाता है।
आकर इसीमें तब सत्य समा जाता है॥"

वार्तालाप हीं में राहुल—'

"मानवों को पङ्ख क्यों विधाता ने नहीं दिये"

राहुल जननी—पङ्खों के बिना ही उड़ें चाहें तो, इसीलिए।

राहुल—पंखों के बिना ही अम्ब ?

राहुल जननी—और नहीं ?

राहुल—कैसे मां ? ओहो, हनुमान उड़े जैसे मां क्योंकर उड़े वे भला ?

राहुल जननी – बेटा योग बल से !

राहुल—मैं भी योग-साधना करूँगा अम्ब कल से।

एक माता सौ शिक्षकों के तुल्य है। यह तो यहाँ निर्विवाद सिद्ध हो जाता है। राहुल के साथ राहुल-जननी के वार्तालाप का प्रसङ्ग कवि की एक श्रेष्ठ रचना है इसको पढ़ कर मातृ हृदय फूट पड़ता है, उन्मत्त हो नृत्य करने लगता है। राहुल जननी के हृदय से प्रेम की अनेक धाराएँ बह निकलती हैं जिनमें अवगाहन परमसुख का कारण बन जाता है। मातृ-हृदय फूल उठता है और यशोधरा अन्त में अपने पुत्र को यह आशीर्वाद देती है—

'तुम कवि होने के साथ
कविता के विषय बन जाओ।"

फलस्वरूप हम यह कहने के लिए बाध्य हो जाते हैं 'माता के हृदय के समान माता का हृदय ही है। वह इस अवस्था में विश्व-राज्य का सुख अनुभव कर रही है। उसका यह प्रेम किसके हृदय को हरण नहीं करेगा।

खेले मन्द-पवन अलकों से,
पहुँचूँ मैं उनके पलकों से,
छद-रद की छवि की छलकों से,
पुलक पूर्ण शिशु यौवन सो।
सो मेरे अञ्चल धन सो।

"तप ही मनुष्यत्व है बेटा"। पुरुषों के लिए स्वावलम्बी होना ही अच्छा है दूसरों का भार बनना अपने पाप का अनादर करना है" इन उपदेशों की दावी यशोधरा ही के हाथों में राहुल का जीवन है। ये उपदेश कितने ग्राह्य हैं।

अन्त में कल्याण-कारिणी विश्व-माता का रूप दृष्टिगोचर होता है। मातृहृदय यहाँ पूर्णता को प्राप्त हो जाता है और उत्कृष्ट आदर्श का स्थापन करता है। यशोधरा कहती है:—

मेरे दुख में भरा विश्व-सुख,
क्यों न भरूँ मैं फिर हामी॥
बुद्धम् शरणम्, धम्मम् शरणम्
संघम् शरणम् [illegible]॥

यशोधरा राहुल जननी के रूप में अवश्य अ... विरह को प्रगटित नहीं होने देती। पर उसका हृदय विरह से आकुल है। उसको विरह तो तभी से सताने लग जाता है, जब वह कहती है:—

'सखी वे मुझसे कहकर जाते'

महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् तथा शुद्धोधन, महाप्रजापति आदि के द्वारा दुखानुभव की अवधि में ही यशोधरा का विरह वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। विरहिणी होने के कारण वह पागल सी दिखाई देती है:—

जाओ मेरे सिर के बाल।
आलि कर्त्तरी ला, मैंने क्या पाले काले व्याल ?
डसें न हाय ! मुझे एड़ी तक, विस्तृत यह विकराल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इस विरह की व्याप्ति अपने हृदय से बाहर भी देखती है। और उस समय अवश्य ही उसका हृदय विरह से परिपूर्ण है और जल रहा है।

मेरा ताप और उनका तप,
जलती है यह जठरमही।
मैंने ही क्या सहा सभी ने,
मेरी बाधा व्यथा सही।

इसी प्रकार निर्झर उसे गौतम को खोजने के लिए ही छूटे से दिखाई देते हैं।

'उन्हें खोजने ही को मानो नूतन निर्झर छूटे'

विरह का भी अन्त होता है और संयोग का प्रादुर्भाव। यशोधरा प्रफुल्लित हो जाती है। उसका संयोगिनी का रूप पूर्ण शुद्ध चित्रित नहीं हो पाया है इसका कारण है उसका गर्विणी गोपा का रूप। परन्तु फिर भी लेखक उस स्थल का वर्णन करके अवश्य ही यशोधरा के हृदय की वास्तविक स्थिति का परिचय प्रदान करता है। संधान में यशोधरा अपने पति के संवाद सुनने को उत्सुक है:—

'[illegible] हा लाभ' यह कैसी खरीबात है,
आली कुछ और सुनने की चाह होती है।

उसकी अंतः स्थिति का परिचय तो उसके सखियों के साथ वार्तालाप के अवसर पर प्राप्त होता है। यशोधरा फूले अंग नहीं समा रही है, बीच बीच में अनायास बोल उठती है। वह उसको अनुचित समझ कर ही उसका समाधान करती है जो उसके चरित्र का भी परिचायक है—

बार बार बीच में जो बोल उठती हूँ मैं,
उसको क्षमा कर तू आली सांस लेती हूँ।

उसकी श्वांस फूल रही है। वह अत्यधिक प्रसन्न है। भला पत्नि को पति के आगमन का संवाद क्यों न सुखकर होगा। गौतम बुद्ध के पधारने के संवाद अगर सत्य हैं तो वह कृतकृत्य है। तभी तो सहसा यह शब्दावली उसके मुँह से फूट पड़ती है:—

यदि यह सत्य है तो मैं भी कृतकृत्य हूँ
आज सुख से भी निज दुःख मुझे प्यारा है।

यशोधरा के इन पूर्वोक्त रूपों के अतिरिक्त उसका एक रूप, जिसके विषय में गुप्तजी साधारणीकरण सत्य सा ही प्रतीत हुआ है और लक्षित होता है। यशोधरा का चरित्र आधुनिक गर्वीली और तर्कपूर्ण नारी के रूप में भी चित्रित किया गया है। यशोधरा का हृदय एक गर्वीली स्त्री का भी हृदय है इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। जैसा कि वह स्वयं ही इसका प्रमाण प्रस्तुत करती है:—

हा गर्विता तुम्हारी मौन रहूँगी सहूँगी मैं

ज्यों ज्यों ग्रंथ में वर्णन अग्रसर होता जाता है यशोधरा के भावों को अन्तर्दृष्टा की तरह ही पहचानता है। यशोधरा को इस बात का गर्व है कि वह उर्मिला की भाँति यद्यपि अपनी पति की अनुपस्थिति में अवश्य है परन्तु मातृत्व को धारण किये हुए है। गर्वोन्मत्त होकर कहती है:—

मेरी मलिन गुदड़ी में भी है राहुल सा लाल
क्या है अंजन अंगराग जब मिलो विभूति विशाल

इतना ही नहीं उसका गर्व तो तब बाल्यगत होता है जब वह कहती है:—

पहुँचाती मैं उन्हें सजाकर,
गये स्वयं वे मुझे लजाकर
लुँगी कैसे वाद्य बजाकर,
लेंगे जब उनको सब लोग
विदा न लेकर स्वागत से भी
वंचित यहाँ किया है
हन्त! अन्त में यह अविनय भी
तुमने मुझे दिया है।

उसके समक्ष अपने पाणिग्रहण का सम्पूर्ण दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता है और उसे स्मरण करती हुई वह वर्तमान वातावरण में भी विचरण करती है तब उसके हृदयांतर्गत गर्व अपना एकाधिपत्य जमा लेता है। वह गौतम के अप्रत्यक्ष में यह कहती हुई गर्व करती है—

सिद्धि मार्ग की बाधा नारी,
तो उसकी क्या गति है
अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ
मेरी भी कुछ मति है
मैं भी नहीं अनाथ जगत में
मेरा भी प्रभु पति है।

अंत में संयोग के समय

यदि वे चल आए हैं इतना
तो दो पग उनको है कितना
क्या भारी वह मुझको जितना

गौतम बुद्ध भी दर्शन देने स्वयं आते हैं तो कहते हैं—

मानिनि, मान तजो, लो रही तुम्हारी बानी
द्वानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तव तत्र भवान

यशोधरा का यह गर्व अवश्य ही अनुभव करने योग्य है परन्तु इसके प्रथम और सबसे पहले उसका पतिप्रेम सर्वोच्च ठहरता है। और प्रमाण स्वरूप वह यह पूछे जाने पर कि—

त्याग कर बोल तू क्या पायगी बह

यशोधरा कहती है:—

'उनका अभीष्ट मात्र और कुछ भी नहीं'

यह अनन्यता देखकर शुद्धोधन को भी यह कहना पड़ता है:—

तेरे अश्र लेकर ही मुक्ति मुक्ता छोड़ूँगा
तेरे अर्थ ही तो मुझे उसकी उपेक्षा है
'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको'

(पृष्ठ २३६ का शेष)

कारण उनके चिन्तन में एक प्रकार का पूर्व और पश्चिम का द्वन्द्व सा ही अधिक है, किन्तु फिर भी उन्होंने पश्चिम की जिस बौद्धिक उत्तेजना को ग्रहण किया है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

नाटकीय विधान की दृष्टि से भी इन नाटकों पर शॉ का प्रभाव कई रूपों में पड़ा है। एक तो ये नाटक घटना-बहुल या पात्र-बहुल नहीं हैं, वे विचार नाट्य (Drama of ideas) हैं। वे चिन्तन के मंथन हैं। दूसरे, उनकी शैली यथार्थवाद की है। वहाँ जो है सो है। शॉ की तरह यह शैली कहीं-कहीं वादात्मक भी है। उसमें तीक्ष्ण व्यंग, विदग्धता, विक्षोभ और तिलमिलाहट है। तीसरे, उनमें रंगमंच के लिए पर्याप्त निर्देश दिए गए हैं जो पश्चिम की देन हैं। इस प्रकार शॉ की प्रतिभा ने हिन्दी के नाट्यकारों की चेतना का स्पर्श किया है।

(पृष्ठ २४० का शेष)

की ओर अवश्य गया होगा। लेकिन कवि ने अपने पांडित्य तथा काव्य-कौशल से [illegible] को ऐसा सँवारा कि वे एकदम उसकी मौलिक रचना के अन्तर्गत आ जाते हैं। "झलकी भरी भाल कनी जलकी, पुटि सूखि गये मधुराधर वै" आदि शब्द तथा कोमल कांत पदावली ने इन भावों को तुलसी की संपत्ति बना डाला। साथ ही इनसे कवि की पूर्ण मौलिकता का परिचय भी मिलता है। इसी प्रकार दूसरे श्लोक में जहाँ सीताजी श्रीरामजी से ऐसी विनोद की बात कहती हैं; कवितावली में तुलसीदासजी वही बात मुनियों द्वारा कहलवा देते हैं। इससे विनोद वृत्ति का सुन्दर परिपाक हुआ है। काव्य वैभव की दृष्टि से भी उक्त दोनों सवैये हनुमान्नाटक के दोनों श्लोकों से किसी प्रकार भी कम नहीं, प्रत्युत बढ़कर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी की एक महत् भावना : समन्वय

श्री रामनारायण परमार एम० ए०, एल० एल० बी०

'कामायनी' इस युग की एक महान् कृति है। 'मानस' के बाद 'कामायनी' जैसे महत् काव्य-ग्रन्थ पाकर हम अनुभव करते हैं कि 'कामायनी' इस युग का 'मानस' है। स्वर्गीय कविवर 'प्रसाद' महान् लोक-नायक 'तुलसी' के सदृश गहरे जीवन-द्रष्टा थे। 'कामायनी' में 'मानस' जैसा जीवन का बहुव्यापी एवं संश्लिष्ट विश्लेषण तो नहीं है (और आदि पुरुष के जीवन चित्रण में ऐसा होना संभव भी नहीं था, उस समय जीवन इतना उलझा हुआ तथा जीवन-सम्बन्ध इतने व्याप्त नहीं थे) किन्तु जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह अपने में पूर्ण, सत्य, एवं चिरन्तन है। 'प्रसाद' ने जीवनोदधि के आतलतम में प्रवेश कर, शोध तथा अनुसन्धान कर, अमूल्य रत्नों को प्राप्त कर उनकी विश्व को भेंट दी। 'प्रसादजी' भारत-भक्त-चूड़ामणि 'तुलसी' के समान भारतीय संस्कृति के अन्यतम भक्त थे। और यही कारण है कि उनकी दृष्टि आज के इस बुद्धिवादी युग से विमुख होकर अतीत की ओर भारतीय संस्कृति के स्वर्ण-काल की ओर गई और उन्होंने उस युग को विश्व के सम्मुख अपने पूर्ण समुज्वल रूप में दिखलाया।

'प्रसादजी' ने देखा कि भारतीय संस्कृति का ह्रास, पतन हो रहा है। नर-नारी अधिकार-अधिकारी शासक-शासित, व्यक्ति तथा समाज में सर्वत्र सामञ्जस्य के अभाव में घोर संघर्ष तथा विद्रोह की भावना ही दिखाई पड़ती है। श्रद्धायुक्त नारी को पुरुष के अहं ने, अधिकार भावना से अपदस्थ कर रखा है। बुद्धिवादी सभ्यता की व्याधियों से विश्व पीड़ित है। सर्वत्र पीड़ा, विषमता हाहाकार का साम्राज्य है। सृष्टि का प्रयोजन आनन्दोपलब्धि है। अतः कवि के करुणार्द्र हृदय में पीड़ित, त्रासित विश्व को देख आनन्द के सत्स्वरूप दिखाने, जीवन के पूर्ण, चिरन्तन सत्य, स्थायी सन्देश देने की कामना का स्फुरण हुआ। उसने जीवन की उलझनों को, ग्रन्थियों को, सुलझाना चाहा और इस दिशा में किये गये प्रयत्न का परिणाम कामायनी-प्रणयन हुआ। उन्होंने कामायनी के द्वारा पीड़ित विश्व को जीवन के अन्तिम रहस्य आनन्द का दर्शन कराया। प्रसादजी ने जीवन की सब विषमताओं, दुखों को दूर करने का एक मात्र हल, अपने जीवन के गहन अध्ययन के पश्चात्, पाया समन्वय, समरसता, सामञ्जस्य में। समन्वय की भावना इस युग के लिए शाश्वत चिरन्तन, दिव्य सन्देश है। इस समरसता के सिद्धान्त का प्रतिपादन कामायनी में विभिन्न स्थलों तथा क्षेत्रों में—सांस्कृतिक, मानसिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक—समन्वय स्थापित करने की भावना की अभिव्यक्ति के द्वारा हुआ है। समन्वय की भावना प्रसादजी की ही अपनी अनुभूति अथवा अभिव्यक्ति नहीं है, वरन; 'समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति का प्रधान अङ्ग है और यह भावना समस्त भारतीय साहित्य के मूल में स्थित सबसे बड़ी विशेषता है।'—डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी साहित्य।

'कामायनी' का साध्य विषय समरसता या तत्प्रसूत आनन्द ही है। जल-प्लावन के पश्चात् एक पुरुष भीगे नयनों से हिमगिरि के उच्च शिखर पर शिला की शीतल छाँह के नीचे स्थित प्रलय प्रवाह देख रहा था। नीचे जल तथा ऊपर हिम था; एक तरल दूसरा सघन था। उसे प्रथम दृष्टि में भिन्न प्रकार की दो वस्तुएँ दृष्टिगोचर हुईं। कवि का उद्देश्य तो समरसता अथवा सामञ्जस्य का प्रचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। अतः उसने कहा, उसे जड़ या चेतन कुछ भी कहो किन्तु उनमें एक ही तत्त्व की प्रधानता है।

मनु केवल अपनी हिंसक वृत्ति तथा लोभ के तोष के हेतु निरीह मृग-शावकों का वध करते हैं। कामायनी जिसने स्वयं को मनु को समर्पण कर दिया था, उन्हें अप्रसन्न नहीं करना चाहती थी; अतः वह अपना समन्वयपूर्ण विचार मनु के सम्मुख अभिव्यक्त करती है:—

"अपनी रक्षा करने में जो
चल जाय तुम्हारा कहीं अस्त्र;
वह तो कुछ समझ सकी हूँ मैं
हिंसक से रक्षा करे शस्त्र।
पर जो निरीह जीकर भी कुछ,
उपकारी होने में समर्थ;
वे क्यों न जियें उपयोगी बन
इसका मैं समझ सकी न अर्थ।
चमड़े उनके आवरण रहें
जूतों से मेरा चले काम;
वे जीवित हों मांसल बनकर
हम अमृत दुहें वे दुग्ध धाम।
वे द्रोह न करने के स्थल हैं
जो पाले जा सकते सहेतु;
पशु से यदि हम कुछ ऊँचे हैं
तो भव जलनिधि में बने सेतु।"

बिना समरसता के जीवन में आनन्द की, शान्ति की, तृप्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। समरसता के अभाव में जीवन अशान्त विक्षुब्ध तथा अपूर्ण रहता है। केवल विलास और स्वार्थ एवं निर्बाध अधिकार की भावना के कारण, नारी (श्रद्धा और इड़ा) से असहयोग करने से मनु को किसी से भी तृप्ति नहीं मिली, उल्टे उन्हें दुखद परिणाम भोगने पड़े। मनु अपने अहं में यह भूल गये कि:—

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में
कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है संबंध बनी
अधिकार और, अधिकारी की॥"

इसीलिए प्रसादजी के समन्वय तथा तज्जन्य आनन्दवाद की प्रतीक कामायनी हृदय तथा बुद्धि (श्रद्धा एवं इड़ा) के समन्वय के अर्थ मानव (कुमार) को इड़ा को सौंपते हुए उसे समरसता का प्रचार करने का उपदेश देती है :—

"हे सौम्य! इड़ा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा भार,
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय;
इसका तू सब संताप निचय,
हरके, हो मानव भाग्य उदय,
सब की समरसता कर प्रचार,
मेरे सुत! सुन माँ की पुकार।"

जीवन परिवर्तनशील है और संघर्ष, द्वयता इसका एक अनिवार्य अंग है। कहीं भी सुख या दुख की केवल एक मात्र सत्ता नहीं होती है। सुख दुख जीवन डोरी के दो छोर हैं।

"अरे सर्ग-अंकुर के दोनों
पल्लव हैं ये भले बुरे,
एक दूसरे की सीमा हैं
क्यों न युगल को प्यार करें।"

जीवात्मा इस दुख-सुख की धूप-छाँह में जीवन का खेल खेलता है। अतः यह आवश्यक है कि इन दो विपरीत परिस्थितियों में गुणातीत पुरुष की भाँति एक रस, समन्वय आनन्द-पूर्ण रहें। 'जीवन के मध्य पथ से लो गति सुधार।'

× × ×

अरे मधुर हैं कष्टपूर्ण भी
जीवन की बीती घड़ियाँ।
जब निस्संबल होकर कोई
जोड़ रहा बिखरी कड़ियाँ॥

सुख दुख की समरसता की इस बात को हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर 'पन्त' के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं :—

"मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख
सुख दुख की खेल मिचौनी,
खोले जीवन अपना मुख।
सुख दुख के मधुर मिलन से,
यह जीवन हो परिपूरन।
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।
जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से।
मानव जग में बँट जावे,
दुख सुख से औ सुख दुख से।
अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न!
दुख सुख की निशा दिवा में,
सोता जगता जग जीवन!
यह साँझ उषा का आँगन,
आलिंगन विरह मिलन का,
चिर हास अश्रुमय आनन,
रे इस मानव जीवन का।"

श्रद्धा समरसता के सिद्धान्त के प्रतिपादन द्वारा आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करती हुई, मनु को आश्वासन देती हुई, उनका दुख कम करती है।—

"दुख की पिछली रजनी बीच,
विकसता सुख का नवल प्रभात
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।

× × ×

नित्य समरसता का अधिकार,
उभड़ता कारण जलधि समान;
व्यथा से नीली लहरों बीच,
बिखरते सुखमणि गण द्युति मान॥"

पीड़ित विश्व के लिए करुणा की नितान्त आवश्यकता है। अवसादमय विश्व में जीवन ही सत्य है। अतः जीवन में सेवा, सहानुभूति, साहचर्य समर्पण की आवश्यकता है। हम आकर्षण से हीन आत्म-विस्तार नहीं कर सकते। हमें दुख का गहन पाठ पढ़कर सहानुभूति का अर्थ ही समझना पड़ता है, अतः विकल मानवता का समन्वय करना ही आनन्दप्राप्ति का साधन है।:—

"समर्पण लो सेवा का सार।
सजल संसृति का यह पतवार।
दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।

× × ×

विश्व की दुर्बलता बल बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार।
हँसाता रहे उसे सविलास,
शक्ति का क्रीड़ामय संचार।
शक्ति से विद्युत्कण, जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयिती मानवता हो जाय।"

इसी भावना का दूसरा रूप 'जीओ और जीने दो' (Live and let live) के सिद्धांत में मिलता है। मनु ने सारस्वत प्रदेश में अपनी बुद्धि से भौतिक उन्नति के समस्त साधन उपलब्ध किये किन्तु उनकी निर्बाध अधिकार लालसा के कारण उनका प्रजा के हृदय पर शासन न हो सका। इड़ा मनु से कहती है। :—

"ताल ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें,
तुम न विवादी स्वर छेड़ो इसमें।
लोक सुखी हो आश्रय ले यदि उस छाया में
प्राण सदृश ही रमो राष्ट्र की इस काया में।"

× × ×

"क्यों इतना आतङ्क ठहर जा ओ गर्वीले।
जीने दो सबको फिर तू भी सुख से जीले।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति तथा समाज में समन्वय करने के हेतु मानव को अपनी संकुचित दृष्टि को त्याग कर विस्तृत समन्वयपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा; नहीं तो अनर्थ तो होगा ही :—

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि।
द्वयता में लगी निरन्तर ही
वर्णों की करती रहे वृष्टि।
अनजान समस्याएँ गढ़ती
रचती हो अपनी ही विनष्टि।
कोलाहल कलह अनन्त चले,
एकता नष्ट हो, बढ़े भेद।
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे,
हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।
हृदयों का हो आवरण सदा
अपने वक्षस्थल की जड़ता।
पहचान सकेंगे नहीं परस्पर
चले विश्व गिरता पड़ता।
तब कुछ भी हो पास धरा
पर दूर रहेगी सदा तुष्टि।
दुख देगी यह संकुचित दृष्टि।

जब इड़ा अपनी बाँधी हुई अधिकार व्यवस्था के भयंकर परिणाम को देखकर अपना साहस छूटने की बात कहती है तो श्रद्धा उसे यह कहती है कि हृदय तथा मस्तिष्क की एकतानता के अभाव के कारण ही ऐसी विषय परिस्थिति का निर्माण हुआ है।:—

"सिर चढ़ी रही, पाया न हृदय,
तू विकल कर रही है अभिनय।
अपनापन चेतन का सुखमय,
खो गया, नहीं आलोक उदय;
× × ×
सुख दुख की मधुमय छूप-छाँह,
तूने छोड़ी यह सरल राह।
चेतनता का भौतिक विभागकर,
जग को बाँट दिया विराग;
चिति का स्वरूप यह नित्य जगत्,
वह रूप बदलता है शत शत;
कण विरह-मिलन-मय नृत्य निरत,
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत।"

'काम' सर्ग में रति और काम के चित्रण में भी समन्वय की भावना दृष्टिगोचर होती है।:—

"हम भूख प्यास से जाग उठे,
आकांक्षा तृप्ति समन्वय में;
रति काम बने उस रचना में,
जो रही नित्य यौवन वन में;
+ × ×
मैं तृष्णा था विकसित करता,
वह तृप्ति दिखाती थी उनको,
आनन्द समन्वय होता था,
हम ले चलते पथ पर उनको।"

'कामायनी का आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का अद्भुतमिश्रण होगया है।' सांकेतिक अर्थ के ग्रहण करने से ज्ञान, इच्छा और कर्म का समन्वय ही इस ग्रन्थ का मूल [illegible] प्रतीत होता है। केवल इच्छा अपना मार्ग अनुसरण नहीं कर सकती; उसे ज्ञान-रूपी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है, तथा बिना कर्म के वह पंगु है। केवल ज्ञान में बिना इच्छा के कर्म की भावना ही न उठेगी और बिना कर्म के वह निष्क्रिय होकर निरुपयोगी बना पड़ा रहेगा। बिना ज्ञान के केवल कर्म भी अपना मार्ग नहीं बना सकता और मार्ग बनाने पर भी बिना इच्छा के उस पर अग्रसर होने की इच्छा नहीं होगी। अभेद की स्थापना के हेतु अतिवाद को दूर कर सर्व क्षेत्रों में समभाव की, समन्वय की आवश्यकता है। तर्कयुक्ति बुद्धि बिना श्रद्धा के विफल होती है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम राग विराग करो सबसे,
अपने को कर शतशः विभक्त।
मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध,
दोनों में हो सद्भाव नहीं।
वह चलने को जब कहे कहीं,
तब हृदय विकल चल जाय कहीं।"

जीवन से सामञ्जस्य न बनाये रखने के कारण मनु को जिस संघर्ष और विद्रोह का सामना करना पड़ा, उससे उन्हें निर्वेद उत्पन्न हुआ और वे सबको छोड़ शान्ति के हेतु अकेले हिमालय की ओर चले गये। श्रद्धा ने ढूँढते-ढूँढते उन्हें पा लिया और उनको मार्ग में त्रिपुर (इच्छा—जीवन की मध्य-भूमि जो रसधारा से सिंचित होती है, कर्म—संघर्ष तथा श्रममय, कोलाहल तथा पीड़नपूर्ण भूमि (इसमें आधुनिक युग के असत् पक्ष का भीषण चित्रण अधिक है) और ज्ञान लोक जहाँ :—

"यहाँ प्राप्य मिलता है केवल
तृप्ति नहीं कर भेद बाँटती।
बुद्धि, विभूति सकल सिकता सी
प्यास लगी है ओस चाटती।

× ×

सामञ्जस्य चले करने ये,
किन्तु विषमता फैलाते हैं।
मूल स्वत्व कुछ और बताते,
इच्छाओं को झुठलाते हैं।"

के दर्शन हुए जहाँ नटेश नृत्य कर रहे थे। इस मङ्गलमयी विश्वमूर्ति का दर्शन कर मनु अपने को समष्टि में लीन करने के लिए उस तक चलने के लिए श्रद्धा को कहते हैं :—

"यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक दे निज संबल;
सब पाप पुण्य जिसमें जल-जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल।
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखंड आनन्द वेश।"

कवि श्रद्धा की स्मिति मात्र के सहारे से जीवन की विडम्बना:—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।"

को दूर करने का संकेत करते हैं:—

"स्वप्न स्वाय, जागरण भस्म हो
इच्छा किया ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।"

कामायनी के अन्त में अहं का इदं में पर्यवसान है, प्रकृति तथा पुरुष (जड़, चेतन) सभी समरस हैं, आनन्द में लीन है :—

"समरस थे जड़ या चेतन,
सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक बिलसती,
आनन्द अखण्ड घना था।"

क्यों कि उस आनन्द लोक में :—

एक दिन जगत ज्वाला से विकल एक मनस्वी आया था। उसके आँसू जग का मंगल करने को वरदान बने। वह सारा वन-प्रान्त तापरहित होकर शीतल सुखद होगया। वह युगल (मनस्वी तथा उसकी अर्द्धांगिनी श्रद्धा) अब भी वहीं बैठा संसृति की सेवा कर रहा है मनु ही नहीं इड़ा भी सम-न्वय की ओर जाती है। वह श्रद्धा से कहती है "हे भगवति मैं यहाँ आकर धन्य हुई हूँ। मुझे केवल सबको भुलाने का ही अभ्यास था। अब इन सब एक कुटुम्ब बनाकर इस वन में यात्रा करने आये हैं, जिसमें सब पाप छूट जाते हैं।" मनु ने कैलाश की ओर दिखलाया और कहा कि देखो यहाँ कोई भी पराया नहीं है सर्वत्र हम ही हम हैं।—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शापित न यहाँ है कोई,
तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है,
समरस है जो कि जहाँ है।
समुद्र में जीवन,
लहरों सा बिखर पड़ा है;
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना
निर्मित आकार खड़ा है।

× × ×

अपने दुख सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर;
चिति का विराट वपु मङ्गल,
यह सत्य सतत चिर सुन्दर।
सब की सेवा न पराई,
वह अपनी सुख संसृति है;
अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।

× × ×

सब भेद भाव भुलवा कर,
दुख सुख को दृश्य बनाता;
मानव कह रे 'यह मैं हूँ'
यह विश्व नीड़ बन जाता।

× × ×

सङ्गीत मनोहर उठता,
मुरली बजती जीवन की।
संकेत कामना बनकर,
बतलाती दिशा मिलन की।

× × ×

प्रतिफलित हुई सब आँखें,
उस प्रेम ज्योति विमला से।
सब पहचाने से लगते,
अपनी ही एक कला से।

'कामायनी' का मुख्य विषय श्रद्धा और मनु के संयोग से अभिनव मानव सृष्टि का विकास दिखाना है। प्रसाद के सदृश जीवन के सफल चितेरे कम ही मिलते हैं। 'प्रसादजी मानव-संसार के सत्य के कवि हैं, हम उन्हें मानवीय रहस्य का कवि कह सकते हैं।' इसी कारण उनकी तूलिका से मानव-जीवन के इतने सुन्दर, काव्य, चटकते, सजीव, सत्य तथा पूर्ण चित्र चित्रित हो सके हैं। 'भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की रक्षा के साथ अभिनव भावनाओं (राष्ट्र-भावना, गृह-उद्योग आदि की भावना) का समावेश कर प्रसादजी ने मध्यपथ का अनुसरण किया है।' वैसे ही कामायनी में दर्शन और इतिहास, वाच्यार्थ तथा सांकेतिक अर्थ, का भी सुन्दर सम्मिश्रण, समन्वय है। कामायनी की महत् सामञ्जस्य, समन्वय-भावना—आनन्दवाद—में आधुनिक युग के आर्तस्वर का प्रत्युत्तर [illegible] रूप में छिपा है। यदि विश्व प्रसादजी के इस चिरन्तन शाश्वत सत्य—जीवन रहस्य—के दर्शन से, समरसता के महान् जीवन सन्देश को ग्रहण कर तदनुसार अपनी भावनाओं को मोड़कर कर्मशील बन जावे तो कितना विश्व-कल्याण—विश्व मैत्री—हो जाय!

सूफी साधक की सबसे बड़ी साधना यही होती है कि वह बिश्व के समस्त व्यापारों को भूल जाय, यहाँ तक कि अपने अस्तित्व को भी भुलाकर वह परमात्मा में अपने को खो देना चाहता है। सूफी साधक अल-शिबली का कहना है कि "प्रेम प्रज्वलित अग्नि के समान है जो परम प्रियतम की इच्छा के सिवा हृदय की समस्त वस्तुओं को जलाकर खाक कर डालता है।" अतएव रहस्यवादी साधक सीमा के समस्त बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर असीम को पाने के लिए व्याकुल रहता है।

—श्री रामपूजन तिवारी एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की शैली

श्री विजयशंकर वाजपेयी बी० ए०

साहित्य सृजन के मूल में कलाकार के भावों की प्रेरक शक्ति काम किया करती हैं। साहित्यकार युग द्रष्टा ऋषि की भाँति इन भावों व विचारों को साध लेता है। पर उन्हें अपने तक ही सीमित नहीं रखता। वस्तुतः साहित्य इन विचारों का प्रतिफलन है। एक ओर वह व्यक्ति का आत्म-बोध है दूसरी ओर वह व्यक्ति का आत्मदान। उसके अन्दर कलाकार की प्रवृति, प्रगति और अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। साहित्य वास्तव में कलाकार की इस प्रवृति, प्रगति, व अभिव्यक्ति की चेतना है वह कलाकार के व्यक्तित्व का परिचायक है। एक फ्रेंच विद्वान के शब्दों में शैली स्वयं व्यक्ति है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शैली कलाकार की अभिव्यञ्जनात्क पद्धति है।

जिस व्यक्ति की जैसी रुचि होगी, जैसी प्रकृति होगी, जैसा व्यक्तित्व होगा उसकी शैली भी वैसी ही [illegible] है निश्चित तथ्य है। किसी व्याख्यानदाता की व्याख्यान शैली में उसके व्यक्तित्व की निहिति व उसका प्रभाव अवश्य रहता है। विषय व शैली का सम्बन्ध घनिष्ट है। जैसा विषय होगा वैसी ही शैली होगी—श्री प्रेमचन्द की निबन्धों की गद्य-शैली व कहानी की गद्य शैली में भिन्नता है। जब तक किसी की भाषा इतनी सशक्त न होगी कि वह अपने भाव व विचारों को व्यक्त कर सके तब तक शैली का कोई आधार नहीं खड़ा किया जा सकता।

शुक्लजी की परिष्कृत व साहित्यिक रुचि की शैली से कोई अपरिचित नहीं। उनके गंभीर व साथ ही हास्य व्यंग विनोदमय व्यक्तित्व से सभी परिचित हैं। उस समय हिन्दी-साहित्य उन्नति के पथ पर था हिन्दी गद्य की भाषा प्रौढ़ हो चली थी स्वयं शुक्लजी की भाषा उत्तरोत्तर समृद्ध होती गई व अन्त में उन्होंने साहित्यिक भाषा का उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया।

शुक्लजी की शैली में शैलीगत सौष्ठव, सौन्दर्य प्रभावात्मकता आदि सभी विशेषतायें उनकी गद्य शैली में प्राप्त होती हैं। उनकी गद्य शैली की कुछ प्रमुख विशिष्टताओं का उद्घाटन हो जाना चाहिए।

उनकी भाषा बड़ी समृद्ध है उसमें प्रभावात्मकता की पूरी शक्ति है प्रभावात्मकता की सिद्धि के लिए उनकी भाषा में रूप योजना व मूर्तिमत्ता का संनिवेश लक्षित होता है। योजना करते हुए इनकी दृष्टि इसकी सांगता व पूर्णता पर सर्वत्र है। उदाहरणार्थ—दिव्य प्रेम संगीत की धारा में इस लोक का सुखद पक्ष निखर आया है और जमती हुई उदासी या खिन्नता बह गई। (भ्रमर गीत)

कहीं कहीं वर्णनात्मक शैली के अन्तर्गत कुछ संश्लिष्ट वर्णन में भी शुक्लजी का चमत्कार दर्शनीय है "इसी प्रकार जो केवल मुक्ताभास हिम विन्दु मण्डित मरकताभ शाद्वल जल अत्यन्त विशाल गिरि शिखर से गिरते हुये जल प्रपात के गम्भीर गर्त से उठी हुई सीकर निहारिका के बीच विविध वर्ण स्फुरण की विशाल भव्यता और विचित्रता वे ही अपने हृदय में पाते हैं वे तमासवीन हैं सच्चे भावुक व सहृदय नहीं। (चिन्तामणि)

कहीं कहीं शुक्लजी ने समासिक पदावली व तत्सम शब्दों का भी धूम बाँध दी है और वह स्वाभाविक सी प्रतीत होती है "लहराते हुए नीले जल के ऊपर कहीं गोल हरे पत्तों के समूह के बीच कमल नाल निकले हैं जिनके झुके हुये छोरों पर रक्ताभ कमल दल छितरा कर फैले हुए हैं।

(तुलसीदास)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी भाषा में बड़ी सरलता व अपनापन का भाव निहित है। उदाहरणार्थ :—

'शानदार अमीर लोग गरीबों से क्यों नहीं मिलते? उनकी लघुता के ही भय से न? यही न डरते हैं कि इतने छोटों से बातें करते देख लोग क्या कहेंगे" (तुलसीदास)

गद्यशैली का प्रधान लक्ष्य है प्रभावोत्पादन—जिससे पाठक प्रभावित हो जाय। यह गुण कलाकार की शिक्षा दीक्षा पर निर्भर है। इसी प्रभावोत्पादन के लिए शुक्लजी ने विरोधाभास का रूप दे कर भ्रमरगीत में दिखाया है—"वात्सल्य व शृङ्गार क्षेत्र का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं।"

अपने लेखों को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए शुक्लजी ने श्लेष का भी अनुकरण किया है। शुक्लजी की गद्यशैली में वाक्य के भीतर एक ही तुक के कई शब्द तथा एक से ही वाक्यों का भी दर्शन मिलता है उनकी गद्यशैली में इस प्रकार की वाक्य रचना का प्रयोग जिसके भीतर दो निर्देशक चिन्हों के बीच अन्तर्गति की योजना होती है बहुत मिलते हैं। उदाहरणार्थ "धर्म व सदाचार को दृढ़ करने वाले भाव को—चाहे वह कितना ही ऊँचा हो—वे भक्ति नहीं मानते" (तुलसीदास)

शुक्लजी के अध्ययन मनन से कोई भी अपरिचित नहीं। इस अध्ययन से उन्होंने कुछ धारणाएँ बनाली हैं उन्हें वे बड़ी बलवती शक्ति में व्यक्त करते हैं "पद्मिनी क्या सचमुच सिंहल की थी..... पद्मिनी सिंहल की हो नहीं सकती"

(जायसी ग्रंथावली)

शुक्लजी ने कटूक्ति का भी जहाँ तहाँ उपयुक्त स्थान पर प्रयोग किया है। यथा प्रसङ्ग संयत भावात्मक शैली का प्रयोग करते हैं उसमें गांभीर्य होता है हल्कापन नहीं—"किसी गम्भीर विचारात्मक लेख के भीतर कोई मार्मिक स्थल आ जाने पर लेखक की मनोवृति भावोन्मुख हो जाती है और वह काव्य की भावात्मक शैली का अवलम्बन करता है" (जायसी ग्रन्थावली)

हम अब हास्य व व्यंग के पुट का भी निरीक्षण करते हैं। "अपनी कहानी का आरम्भ ही उन्होंने (इन्शाअल्लाह ने) इस ढङ्ग से किया कि लखनऊ के भाँड़ घोड़ा दौड़ाते हुए महफिल में आते हैं"।

"हनुमानजी कभी कभी भक्त मण्डली में किसी सेवक के सिर आजाया करते हैं।

(इन्दौर वाला भाषण)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की शैली पटुता, उसकी उपयुक्तता, उसके सौष्ठव और उसकी प्रभावात्मकता की साधारण अभिज्ञता हो गई होगी। हिन्दी साहित्य में शैली निर्माण कार्य में आचार्य जी का प्रमुख हाथ है, वे हिन्दी साहित्य के सर्व श्रेष्ट शैली निर्माता गिने जाते हैं।

साहित्य सन्देश का भारतेन्दु अङ्क

यह अंक साधारण अङ्कों से बहुत अधिक छपा था—किन्तु इधर जुलाई से ग्राहक संख्या में वृद्धि इतनी अधिक हो रही है कि यह विशेषांक शीघ्र ही समाप्त होने की आशा है। अतः जो सज्जन यह विशेषांक लेना चाहें वे तुरन्त ग्राहक बनने के लिए ४) का मनिआर्डर भेजदें। बिना ग्राहक बने अब यह विशेषांक किसी को नहीं भेजा जायगा। —मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

राजस्थानी भाषा और साहित्य—ले० पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०, प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। पृ० सं० ३१५, मूल्य ६)

इस पुस्तक में राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास वर्णित है। आठ प्रकरणों में पुस्तक विभाजित है। पहले प्रकरण में भूमिका, तीन प्रकरणों में क्रमशः प्रारम्भिक, पूर्व और मध्यकाल, एक में सन्त साहित्य और एक में आधुनिक काल (पद्य) का तथा एक में प्राचीन और अर्वाचीन गद्य की चर्चा है। अन्तिम प्रकरण उपसंहार रूप में है। इस प्रकार ३१५ पृष्ठों में यह पुस्तक समाप्त हुई है।

राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास सबसे पहले श्री मेनारियाजी ने ही प्रस्तुत किया, इस दृष्टि से उनके कार्य का अत्यन्त महत्त्व है किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में कुछ ऐसी भ्रान्तियाँ हैं जिनकी ओर मैं विद्वान पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक समझता हूँ—

(१) श्री मेनारियाजी लिखते हैं कविराजा सूरजमल की मृत्यु सं० १९२० में हुई थी। (पृष्ठ-संख्या २३८), श्री मिश्रबन्धुओं ने भी अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' में महाकवि की निधन-तिथि १९२० ही मानी है, ऐसा किस आधार पर माना है, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु वस्तुतः देखा जाय तो महाकवि का निधन आषाढ़ शुक्ला ११ सोमवार वि० सं० १९२५ में हुआ था। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—भूमिका पृ० १२-१५ 'वीर सतसई' बङ्गाल हिन्दी मण्डल द्वारा प्रकाशित और लीडर प्रेस प्रयाग द्वारा मुद्रित। श्री मेनारियाजी की पुस्तक 'वीर सतसई' के बाद प्रकाशित हुई है। और 'वीर सतसई' की एक प्रति मण्डल द्वारा श्री मेनारियाजी के पास भी भिजवादी गई थी।

(२) पृ० २४० पर विद्वान् लेखक लिखते हैं "सूरजमलजी के तीसरे ग्रन्थ 'बलबन्त विलास' में रतलाम के महाराजा बलबन्तसिंह का चरित वर्णन है।" किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी है, श्री सूर्यमल्लजी ने 'बलवद्विलास' नामक ग्रन्थ लिखा था, उसमें भिणाय राजा श्री बलवन्तसिंहजी का वर्णन है और सती चरित्र के कवित्त भी उसीके अन्तर्गत प्रसङ्गवश आये हैं। रतलाम नरेश श्री बलवन्तसिंह जी के विषय में सूर्यमल्लजी-रचित कुछ पद्यों के अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ देखने में नहीं आया। आशा है श्री मेनारियाजी इसका स्पष्टीकरण करेंगे कि श्री सूर्यमल्लजी ने भिणाय राजा बलवन्तसिंहजी तथा रतलाम नरेश बलवन्तसिंहजी को लेकर क्या दो ग्रन्थ लिखे थे।

(३) 'हालाँ झालाँ रा कुण्डलिया' वीर रस की अत्युत्कृष्ट रचना है। इसी का दूसरा नाम सूर सतसई है। परन्तु यह नाम भ्रामक है। क्योंकि सतसई नाम से इसमें सात सौ पद्यों का होना सूचित होता है, जो इसमें नहीं है। इसमें सिर्फ ४२ पद्य, कुण्डलियाँ हैं। पृ० ११७

'हालाँ झालाँ रा कुण्डलिया' शीर्षक हाल ही में प्रकाशित अपनी पुस्तक की भूमिका में श्री मेना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रियाजी लिखते हैं—'अनुमान होता है कि मूल ग्रंथ ५० पद्यों का (पचासा ?) था। अतएव प्राचीन लिखित जिन प्रतियों में ५० से अधिक पद्य हैं उनको किसी दूसरे ने बनाकर उनमें जोड़ दिया है और जिनमें ५० से कम पद्य हैं, वे अधूरी हैं। भूमिका पृ० १६

स्पष्ट है कि दोनों पुस्तकों में जहाँ तक संख्या का प्रश्न है, श्री मेनारियाजी दो भिन्न-भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। सम्भव है 'हालाँ झालाँ रा कुण्डलिया' का सम्पादन करते समय 'संख्या के सम्बन्ध में उनका मत परिवर्तित हो गया हो किन्तु 'पचासा' का उल्लेख जो मेनारियाजी ने दिया है, उसके सम्बन्ध में क्या वे स्पष्ट करने की कृपा करेंगे कि डिंगल में 'पचासा' लिखने की परम्परा क्या कभी रही है ?

(४) कहीं-कहीं पद्यों का विचित्र अर्थ श्री मेनारियाजी ने किया है। उदाहरणार्थ—

"किण विध पाऊँ आणियौ, बोलंता जल लाव।
वाँटै सास बलोबली, भालाँ हन्दा घाव॥"

एक बार कोई युवक किसी युद्ध में गया। उसकी माँ उसी युद्ध में स्वयंसेविका के तौर पर घायलों को जल पिलाने का काम करती थी। दुर्भाग्यवश जब युद्ध समाप्त हुआ तब वह घायलों को जल देने के लिए अपने घर से रवाना हुई। उसके साथ उसकी पुत्रवधू भी थी। पुत्रवधू के सर पर पानी का एक घड़ा था और माँ के हाथ में एक करवा। दोनों रणक्षेत्र में पहुँचीं। मां को आई देख कर घायल बेटे ने पुकारा—'माँ पानी' इस पर माँ ने पूछा 'तुम्हारे कितने घाव हैं बेटा।' 'सात घाव' बेटे ने उत्तर दिया। इतने में कोई दूसरा घायल चिल्ला उठा—'मेरे दस घाव हैं।' माँ ने झुककर उसे पानी पिलाया। इस तरह माँ अधिक-अधिक घाव वाले योद्धाओं को जल देती रही और बेटे की बारी नहीं आई। बेटा घावों की पीड़ा, दुपहर की गर्मी और मारे प्यास के तड़फ रहा था। माँ की तरफ से निराश होकर उसने अपनी स्त्री को इशारा किया। परन्तु वह क्या करती। विवश थी! पानी पिलाने की 'ड्यूटी' माँ की थी। अपनी असहायता प्रकट करती हुई उसने ऊपर का दोहा कहा। "तुम्हारे यह कहने पर कि मुझे जल पिला, कैसे मैं तुम्हें जल लाकर पिलादूँ। सास तो एक के बाद दूसरे को भालों के घावों के अनुपात से जल दे रही है।" पाद—टि० पृ० ५६

उक्त दोहे का सही अर्थ है—"पत्नी कहती है—'जल ला' कहते ही लाया हुआ पानी अब किस प्रकार पिलाऊँ? हा! भालों के घावों ने श्वास को चारों ओर बाँट लिया!" 'आणियौ' भूत कृदन्त (Past participle) है, 'सास' का अर्थ है 'श्वास' और बलोबली का अर्थ है 'चारों ओर से'।

क्या विज्ञ लेखक दूसरे संस्करण में इस ओर ध्यान देंगे? —कन्हैयालाल सहल

पञ्चवटी-समीक्षा—लेखक-श्री पुरुषोत्तमदासजी भार्गव, एम० ए०। प्रकाशक-हिन्दी भवन लंश्कर। पृष्ठ ५८, मूल्य ॥=)

महाकवि मैथिलीशरणजी गुप्त की पञ्चवटी हिन्दी की अनेकों परीक्षाओं में पाठ्य ग्रन्थ है। इस पुस्तक में पहले कवि का परिचय दिया गया है पीछे पञ्चवटी की कथा का परिचय देते हुए उसकी सभी प्रकार की विशेषताओं पर अलग-अलग प्रकाश डाला गया है।

मीरा मन्दाकिनी—सम्पादक-श्री नरोत्तम स्वामी एम० ए०, प्रकाशक-गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा। पृष्ठ ३३ + १२५, मूल्य २)

मीरा के श्रेष्ठ १६१ पदों का सङ्कलन करके विद्वान सम्पादक ने अन्त में उन पर टिप्पणियाँ लिखी हैं और प्रारम्भ में ३३ पृष्ठ की भूमिका में उनके काव्य की आलोचना और मीरा के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। सङ्कलन सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु मुकुर—भारतेन्दुजी की जन्म शती पर प्रेमोपहार। प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। पृष्ठ ८०, बिना मूल्य।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्म शती पर सम्मेलन ने यह छोटी पुस्तक निकाल कर बड़ा शुभ कार्य किया है। इस पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहले में भारतेन्दुजी के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं की चर्चा है। दूसरे में उनके समकालीन लेखकों का परिचय है। तीसरे में उनके काव्य का रसास्वादन कराया गया है। सङ्कलन बहुत अच्छा है।

निबन्ध

कला की कलम—लेखक—श्री रघुवीर शरण 'मित्र'। प्रकाशक—अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य प्रकाशन परिषद्, मेरठ। मूल्य ३)

'जननायक' के प्रसिद्ध लेखक श्रीमित्रजी के १६ निबन्धों का सङ्कलन प्रस्तुत पुस्तक में हुआ है जिनमें से 'छायावाद की भूमि', 'रहस्यवाद', 'अनुभूति और काव्य', 'कल्पना और यथार्थ' आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं। लेखक के शब्दों में 'जब कवि खोया-खोया-सा अपनी आन्तरिक छाया प्रकृति के [illegible]दनों में अङ्कित करता है तभी उसकी कविता छाया वादी कहलाती है।.....जब परमात्मा की सत्ता आत्मा की सत्ता में तादात्म्य हो साकार दिखाई देती है तभी छाया की आकृति उदित होती है।.....छायावाद काव्य में कोई आज या कल की वस्तु नहीं। जब से काव्य है तभी से छाया, और जब से छाया है तभी से काव्य।' रहस्यवाद के सम्बन्ध में लेखक की धारणा है कि 'चिन्तन जगत में जो दार्शनिक ब्रह्मवाद अथवा अद्वैतवाद है, भावना जगत् में वही रहस्यवाद है।' इस परिभाषा में आचार्य शुक्लजी के विचारों की प्रतिध्वनि है। छायावाद और रहस्यवाद का अन्तर बतलाते हुए श्री मित्रजी कहते हैं—'जीवात्मा की छाया परमात्मा में लीन होती है तो रहस्यवाद प्रकट होता है और यदि हृदय की छाया विराट् की असीम छाया पर पड़ती है तो छायावाद छिटकने लगता है।'..... 'अनुभव, व्याख्या एवं मीमांसा से मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि छायावाद एक सूक्ष्म शैली का नाम है। अनुभूति के कलात्मक चित्रों को ही छायावाद कहना चाहिए।.....मैं यह कदापि नहीं कह सकता कि यह शैली पश्चिम से आई है।' यहाँ पर मित्रजी स्वर्गीय प्रसादजी के विचारों से साम्य स्थापित करते हुए जान पड़ते हैं। छायावाद और रहस्यवाद के सम्बन्ध में मित्रजी ने जो विचार प्रकट किये हैं उनमें परस्पर सामञ्जस्य स्थापित कर सकना सभी के वश का रोग नहीं है। सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए भी मित्रजी अपने कवि को नहीं भूल सके हैं। अनुभूति को वे काव्य की मूल प्रेरणा मानते हैं। काव्य तब लिखा जाता है जब कवि के आँसू बहुत रोकने पर भी कागजों पर बिखर पड़ते हों। 'बच्चन' की भाषा में 'मैं फूट पड़ा, तुम कहते छन्द बनाना।' सच्चे कवि के हृदय से कोई न कोई नया छन्द अवश्य निकलता है। कवि अनुभूतियों के मर्म में जितना तैरता है, उतनी ही ज्वलंत कल्पना को वह साकारता प्रदान करता है। 'देवताओं की लोकसभा में' शीर्षक लेख अपनी अनूठी शैली में लिखा हुआ है जो सामयिक होने के साथ साथ मनोरञ्जक और प्रभावक भी है। लोक-सभा के व्यासजी ने ठीक ही कहा है कि 'दूसरे देशों में कलाकार का राजमुकुट से अधिक मूल्य है, और भारतवर्ष में कलाकारों का मूल्य भिखारी की झोली से भी करुण है।' कलम में जो शक्ति है, वह किसी बम में नहीं। यही विचार-धारा पुस्तक के शीर्षक को सार्थकता प्रदान कर रही है। सैद्धान्तिक विवेचन करते समय भावुकतामयी काव्यात्मक शैली का अनुसरण करने से मनोरञ्जकता और रमणीयता तो आती है किन्तु तथ्य-निरूपण उतना नहीं हो पाता। यह ध्यान देने की बात है कि स्वर्गीय प्रसादजी का कवि क्या नाटक, क्या कहानी, क्या उपन्यास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या महाकाव्य सभी में अनिवार्यतः उनके साथ रहा किन्तु उन्होंने जो निबन्ध लिखे हैं उनमें उनका कवि उनके साथ नहीं है, वहाँ वे एक मौलिक विचारक और विद्वान् के रूप में ही साहित्य-जगत् के समक्ष उपस्थित हुए हैं। क्या 'कला की कलम' का धनी इस ओर भी कुछ दृष्टिपात करेगा ?

—कन्हैयालाल 'सहल'

रूप और स्वरूप—लेखक—श्री घनश्यामदास बिड़ला प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली। पृष्ठ ४६, मूल्य ॥=)

इस संग्रह में बिड़ला जी के चार निबन्ध हैं। रूप और स्वरूप, लोक और परलोक, स्थूल और सूक्ष्म तथा गति और प्रगति। ये सभी लेख एक मौलिक दार्शनिक चिन्तन का परिचय देते हैं। इनमें परिणाम की खोज की अपेक्षा जिज्ञासा अधिक है। समस्या है थोड़ा हल भी है किन्तु उस पर कट्टर पन्थी आग्रह नहीं है। रूप और स्वरूप में लेखक ने साधारण मनुष्य की रूप उपासना और तत्व वेत्ता का स्वरूप अर्थात निजी या वास्तविक रूप के दर्शन दोनों को महत्व दिया है। लोक परलोक में आवागमन और मुक्ति की एक नई व्याख्या है। गति और प्रगति सापेक्षतावाद से प्रभावित है किन्तु उस से यह मालूम होता है कि बिड़ला स्वयं गति के पक्ष में हैं वे वायुयानी प्रगति के पक्ष में नहीं हैं वायुयानी प्रगति में उनको सब से बड़ी कठिनाई यही है कि उनका कलकत्ते का मन दिल्ली से एक साथ अनुकूलता प्राप्त नहीं कर सकता है। बड़े आदमियों को इतने चंचल मन का होना भी नहीं चाहिए। वे रेगिस्तानी ऊँट के अधिक प्रशंसक प्रतीत होते हैं।

पञ्च दशी (निबन्ध-संग्रह) सम्पादक—श्री वियोगी हरि। प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली। पृष्ठ १२७, मूल्य १॥)

पञ्च दशी वेदान्त शास्त्र का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यदि उसके आगे निबन्ध-संग्रह न लिखा होता तो शायद यह भ्रम हो जाता कि उस पर यह कोई प्रवचन है। नामानुकूल इस संग्रह में १५ निबन्ध हैं। प्रायः सभी निबन्ध पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अशोक के फूल को छोड़कर (जो साहित्यिक और सांस्कृतिक खोज से संबंध रखता है) प्रायः सभी निबन्ध गांधीवादी विचार धारा से प्रभावित हैं। कुछ लेख देखने में गांधीवादी नहीं है तथापि उनकी अन्तरात्मा गांधीवाद से प्रभावित है। रामा में महादेवी जी के करुणा कलित हृदय का परिचय मिलता है, धरती में पुरातत्व के पंडित वासुदेवशरण जी द्वारा किसान का पक्ष समर्थन है। बहस की बात में भी सियारामशरण जी ने भेदों के होते हुए समझौते की नीति का पोषण किया है। भदन्तजी के आतिथ्य में अपेक्षाकृत सम्पन्नों के आतिथ्य पर बड़ा मधुर व्यङ्ग्य और तुलना में भिखमंगे को ऊँचा उठाया गया है। राजेन्द्रबाबू के गाँव का जीवन में गांधीजी के प्रेमास्पद गांधीजी के गाँवों का यशगान है। जैनेन्द्र जी की 'राम की युद्धनीति' भी गांधीवाद के आदर्शों से (यद्यपि कुछ खींचतान के साथ) अनुप्राणित है। पंडित जवाहरलाल की दो मसजिदें भारत के कट्टरपन और मुस्तफा [illegible] की धार्मिक उपेक्षा की द्योतक है। धार्मिक सहिष्णु सराहनीय है किन्तु मुस्तफा कमाल की सी धार्मिक उपेक्षा शायद भारत में चरितार्थ न हो सके।

इस संग्रह में अनेक शैलियाँ हैं। काका कालेलकर हिन्दुस्तानी के समर्थक होते हुए भी पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल की सी पांडित्य पूर्ण शैली से लगा कर गाँधीजी और राजेन्द्र बाबू की उर्दू हिन्दी मिली हुई शैली तक मौजूद है। पंडितजी की शैली चाहे उर्दू हो किन्तु उसमें योरोप के इतिहास की बड़ी सुन्दर झाँकी है।

इस संग्रह के प्राय सभी निबन्ध वास्तव में निबन्ध कहलाने योग्य है। उनमें एक निजीपन और स्वच्छन्दता है और वे अति साहित्यिकता से बोझिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। लेखों में हास्य-व्यङ्ग्य की मात्रा पर्याप्त है जो उनमें एक सुखद हलकापन ले आता है।

—गुलाबराय

निर्गुण-धारा—लेखक-द्वय सर्व श्री बैजनाथ-विश्वनाथ, प्रकाशक—मानसरोवर प्रकाशन, गया। पृ० २५६, मूल्य ३)

पुस्तक के आरम्भ में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'आशीर्वचन' पटना कालेज के प्रो० उपेन्द्रनाथ शर्मा की 'अवतरणिका' और लेखक की 'अपनी बात' दी हुई, लेखकों ने अपनी 'एम० ए०' की परीक्षा के लिए विशेष अध्ययन के लिए 'सन्त मत' लिया, उसके लिए जो परिश्रम उन्होंने किया था, वही इस प्रकार पुस्तकाकार प्रस्तुत है। लेखकों का यह उद्योग अन्य विद्यार्थियों के लिए प्रेरणाप्रद होगा। लेखकों ने 'सन्त मत' अथवा निर्गुण-धारा का साधारण दृष्टि से अध्ययन नहीं किया, उन्होंने यह अनुभव किया है कि 'लोक गीतों' और लोक वार्त्ताओं का अपूर्ण अध्ययन ही हमें निर्गुण-साहित्य की हद तक नहीं पहुँचने देता।' इस दृष्टि से 'लोक गीत और लोकवार्त्ता' का आधार पकड़ने की लेखकों ने चेष्टा की है। यद्यपि लोकगीत और लोकवार्ता का [illegible] प्रकार से निर्गुण धारा को समझने में उपयोग नहीं कर सके, फिर भी यत्न श्लाघ्य है, और अधिकारी विद्वान द्वारा गम्भीर और विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखता है। फिर भी निर्गुणधारा का—सन्त मत और सूफी मत का विशद अध्ययन इस पुस्तक के द्वारा हो जाता है। पुस्तक पठनीय है।

धर्म और दर्शन

श्री शंकराचार्य—लेखक—प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य। प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद। पृ० सं० ३०४, मूल्य ७॥)

बौद्ध धर्म से तथा अन्य अवैदिक अथवा वैदिकाभास वाले मार्गों से सर्वतोभावेन ग्रसित भारत को वैदिक-धर्म प्रतिपादित 'अद्वैत' वाद का सन्देश देने वाले, और इस प्रकार वैदिक-परम्परा के धर्मों को प्रोत्साहन देने वाले महा प्रतिभाशाली 'शङ्कर' के नाम से कौन परिचित नहीं? धर्म और दर्शन के क्षेत्र में 'शङ्कर' आज भी अपना प्रभुत्व बनाये हुए हैं। किन्तु 'शङ्कर' से यथार्थ परिचय आज बहुत कम व्यक्तियों को है। कुछ साम्प्रदायिक तो असम्बद्ध विलक्षण घटनाओं से शङ्कर के चरित्र को आवृत्त मानकर विश्वास करते हैं, कुछ ऐसे हैं जिनका ज्ञान इधर-उधर से पढ़ी-सुनी बातों पर निर्भर है। हिन्दी में अभी तक श्री शङ्कराचार्य पर सुसंबद्ध पुस्तक का एकान्त अभाव था। हर्ष है कि उस अभाव की पूर्ति हिन्दी के यशस्वी दार्शनिक प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय की लेखनी से इस ग्रन्थ के द्वारा होरही है।

यह पुस्तक चार खण्डों में विभाजित है। पहला खण्ड प्रवेश खण्ड है, इसमें चार परिच्छेद हैं—'विषय प्रवेश' में विषय के वैज्ञानिक प्रतिपादन सम्बन्धी कठिनाइयों पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे में चरित सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री की परीक्षा है, तीसरे में शङ्करपूर्व भारत की धार्मिक और दार्शनिक स्थिति का संक्षिप्त परिचय है, और चौथे में शङ्कर के आविर्भाव के समय का परिचय। चरित्र-खण्ड में ६ परिच्छेदों में जन्म से मृत्यु तक का विवरण है।

तीसरे रचना खण्ड के तीन अध्यायों में शङ्कराचार्य के ग्रन्थों, शिष्यों, तथा मठों, का प्रामाणिक वर्णन है, और चौथे दर्शन खण्ड में शङ्कर के अद्वैत वेदान्त का स्पष्टीकरण किया गया है और अन्य तत्कालीन दार्शनिक वादों से संक्षेप में तुलना भी की गई है।

हिन्दी-साहित्य के आरम्भ से लेकर रीति-काल पूर्वतक की भावधारा के मर्म को समझने के लिए शङ्कर और शाङ्कर मत का परिचय अनिवार्य है। बिना शाङ्कर मत का ठीक-ठीक परिचय हुए, न तो नाथ और सिद्ध साहित्य को समझा जा सकता है, न हिन्दी के भक्ति-सम्प्रदाय को। यह पुस्तक इस दिशा में भी सहायक होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्कर के जीवन पर उपाध्यायजी ने एक आस्तिक की भाँति विचार किया है, उनका विवेचन विज्ञान आस्तिक-विज्ञान है—उन्होंने प्रवेश खण्ड में इसे यों व्यक्त किया है। 'इस विषय में एक महत्व-पूर्ण प्रश्न की ओर हम पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। इन शङ्कर दिग्विजयों में ऐसी अनेक घटनाएँ वर्णित हैं जो साधारणतया अलौकिक तथा अद्भुत कही जा सकती हैं'।—प्रश्न यह है कि इनका क्या हो? लेखक ने प्रकट किया है कि 'यदि इतिहास की भ्रान्त धारणा के अनुसार इन्हें काट छाँट साधारण 'जायस्व म्रियस्व' की कोटि में ला दिया जाय तो क्या उनके साथ घोर अन्याय न होगा? इतिहास की सच्ची भावना हम से यही चाहती है कि हम उन घटनाओं में विश्वास रखें तथा जीवन-वृत्त में अवश्य उल्लेखित करें, जिनकी सचाई के विषय में आधार ग्रंथों का प्रबल प्रमाण उपस्थित हो। महापुरुषों की महनीयता इसी विषय में है।

इस बुद्धि के साथ विद्वान लेखक ने शङ्कर के बिखरे और विवादास्पद चरित्र को सुशृङ्खलित और सुसम्बद्ध करने की स्तुत्य चेष्टा की है। दार्शनिक सिद्धान्तोंके प्रतिपादन में तो लेखक अत्यन्त स्पष्ट, मर्मदर्शी और सुलभ है, और इस प्रकार अपने पूर्वार्जित यश को इसमें भी अक्षुण्ण रखा है।

हिन्दी में ऐसे ठोस, अध्ययन परक वैज्ञानिक ग्रन्थों के प्रकाशन से उज्ज्वल भविष्य के दर्शन होते हैं।

नाथ-सम्प्रदाय—लेखक—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक-हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद। पृ० सं० २११, मूल्य ४॥)

एकेडेमी द्वारा प्रकाशित यह दूसरी पुस्तक भी बहुत महत्वपूर्ण है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की विद्वत्ता, सारग्राहिता और लेखनी का लोहा हिन्दी-जगत में आज सर्वमान्य है। 'शांति निकेतन' में हिन्दी पीठ के अध्यक्ष रह कर वे कवीन्द्र और क्षितिमोहन सेन से प्रेरित होकर सन्तों की ओर आकर्षित हुए, फिर कबीर की ओर, कबीर के साथ वे सन्त-मत की पृष्ठभूमि तक पहुँचे और वहाँ गोरख के 'अलख' को लख कर चमत्कृत हुए। हिन्दी-साहित्य की आरम्भिक भूमिका में 'गोरख' कितने गहरे व्याप्त हैं, इसको अभी तक भली प्रकार हृदयंगम नहीं किया जा सका था। जैसा डा० धीरेन्द्र वर्मा ने वक्तव्य में लिखा है, कुछ बिखरे उद्योग हुए, डा० पीताम्बर दत्त बर्थवाल ने सबसे पहले इधर ध्यान आकृष्ट कराया, फिर राहुल सांकृत्यायनजी ने। किन्तु द्विवेदी जी का यह उद्योग सब से आगे है। इसमें अब तक की समस्त सामग्री के आधार पर 'नाथ-सम्प्रदाय' का एक व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नाथ-सम्प्रदाय का विधिवत् अध्ययन शोध, वैज्ञानिक बुद्धि और अनवरत परिश्रम की अपेक्षा रखता था—कारण यह है कि नाथ-सम्प्रदाय विशेषतः उत्तरी भारत में सर्वत्र लोक-व्याप्त है—निम्न वर्ग में अपठित वर्ग में और लोक-वार्त्ता (फोक लोर) के रूप में ही विशेषतः जीवित है। उधर शिष्ट मानस की उसके प्रति [illegible] रही है, और तुलसी-सूर के समय से वह निरन्तर बढ़ती चली आयी है—'तुलसी अलखहिं का लखै राम नाम जप नीच'—में नीच शब्द 'तुलसी' के मनोभाव को बहुत स्पष्ट कर रहा है—और यह भाव भक्ति-सम्प्रदाय के साथ बढ़ता ही गया है। तो शोधक को उस निम्न लोक स्तर तक उतर कर ही इस सम्प्रदाय की सामग्री लानी पड़ेगी और वैज्ञानिक बुद्धि से ऐतिहासिक साक्षियों का सहारा लेकर उनकी भूलें मिलानी पड़ेंगी। डा० द्विवेदी ने अपनी यशस्विनी अधिकार प्राप्त लेखनी से यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है। इससे नाथ-सम्प्रदाय का स्वरूप तो स्पष्ट होता ही है, लोक-प्रचलित अनेकों वार्त्ताओं का भी रूप और मूल्य निर्धारित हो जाता है। अनेकों भावधारायें जो हमें साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में और अन्यथा प्रचलित मिलती हैं, उनके मूल स्वरूप का भी ज्ञान हो जाता है—वस्तुतः इस पुस्तक के द्वारा इस सुयोग्य लेखक ने ठोस प्रामाणिकता के बल के आधार पर एक अदृष्ट रहस्यमय लोक का बज्र-द्वरा खोल दिया है—अब तक जो बातें, घटनायें और चरित्र परी-लोक की वस्तुएँ थीं, वे इतिहास की यथार्थता से अभिशिक्त हो उठी हैं—और 'लोक'—साधारणजन—तक पहुँचने और उनको समझने में भी यह पुस्तक सहायक होगी। १५ अध्याय हैं जिनमें नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय के आन्तरिक स्वरूप, उसके विश्वास, और गोरखनाथ द्वारा किये गये विराट-सङ्गठन का ही ज्ञान प्राप्त नहीं होता, अन्य अनेक सम्प्रदायों का भी परिचय मिलता है-लेखक ने प्रत्येक विषय के मूल, विस्तार और व्याप्ति पर भली प्रकार विचार किया है। और प्रत्येक बात की प्रामाणिकता की भली प्रकार परीक्षा करने की चेष्टा की है।

हम ऐसे ग्रन्थ रत्न का हिन्दी में हार्दिक स्वागत करते हैं, डा० धीरेन्द्र वर्मा का हिन्दी जगत विशेष कृतज्ञ होगा कि एकेडेमी के द्वारा वे ऐसी शोध का प्रवर्त्तन [illegible] सके हैं। —सत्येन्द्र

[illegible] माता—लेखक, अनुवादक तथा सम्पा-[illegible]—महात्मा गान्धी, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल। पृष्ठ ५७४, मूल्य ४)

गांधीजी ने गीता को माता कहा है क्योंकि उससे सङ्कट के समय बोध और शान्ति मिलती है। वे लिखते हैं—आज गीता मेरे लिए केवल बाइबिल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिए वह माता हो गई है। मुझे जन्म देने वाली माता तो चली गई, पर सङ्कट के समय में गीता माता के पास जाना सीख गया हूँ। मैंने देखा है जो कोई इस माता की शरण जाता है उसे ज्ञानामृत से वह तृप्त करती है।

इस ग्रन्थ में श्रीमद्भागवद्गीता का केवल पाठ और अनुवाद ही नहीं वरन् उसके सम्बन्ध में गान्धीजी ने विचार टिप्पणी रूप से, प्रवचन रूप से, पत्र रूप से दिये हुए हैं। इसीलिए गान्धीजी को मैंने लेखक अनुवादक और सम्पादक कहा है। इसमें गान्धीजी का दृष्टिकोण अहिंसावादी कर्मयोगी का है। उन्होंने महाभारत के भौतिक युद्ध को महत्व नहीं दिया है वरन् उसे मानसिक संघर्ष का रूपक माना है इस सम्बन्ध में बहुत से लोग उनसे सहमत नहीं होंगे किन्तु उन्होंने जो उसके द्वारा कर्तव्य और सेवा की शिक्षा दी है उसमें दो मत नहीं हो सकते। उन्होंने उसमें बतलाये स्थिति-प्रज्ञ तथा दैवी सम्पत्तियों के लक्षणों पर विशेष बल दिया है क्योंकि वे मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं। वास्तव में यह स्थिति प्रज्ञ दर्शन है। इसमें अध्यात्मिक आधार की दृढ़ भित्ति पर कर्तव्य का शिलान्यास किया गया है।

—गुलाबराय

रीति-शास्त्र

सभाष्या रत्न मञ्जूषा—लेखक—अज्ञात, सम्पादक—प्राध्यापक हरिदामोदर वेलाकर। प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठ सं० ७०, मूल्य २)

भारतीय ज्ञानपीठ जैन साहित्य में विशेष अनुसंधान करा रहा है। यह रत्न मञ्जूषा भी किसी जैन विद्वान की लिखी होगी, क्यों कि भाषाकार जैन हैं। यह रत्न मञ्जूषा छन्द ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ गवर्नमेन्ट आरिन्टियल लाइब्रेरी मैसूर में रखी हुई दो प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। वे प्रतियाँ भोजपत्र पर हैं, और कन्नाड़ में हैं। इस प्रकार अनुसंधान और परिश्रम से यह संस्कृत में छन्द-शास्त्र का एक दुर्लभ ग्रन्थ तय्यार किया गया है। पाठ-संशोधन तथा अन्य छन्द शास्त्रों से तुलना और प्रमाण से ही इसे उपयोगी नहीं बनाया गया। अन्त में अध्यायानुसार अंग्रेजी में टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। इससे विषय बहुत स्पष्ट हो जाता है। अब तो ऐसी टिप्पणियाँ हिन्दी में ही दी जाया करें तो ये ग्रंथ अधिक लाभप्रद हों। —सत्येन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अब इस वर्ष

जुलाई, अगस्त और सितम्बर मास से

ग्राहक न बना सकेंगे

पिछले मास हमने यह सूचना दी थी कि जुलाई और अगस्त के अंक समाप्त हो गये हैं और इस एक महीने में इतने नये ग्राहक बने कि सितम्बर का अङ्क भी समाप्त हो गया। अब हम

भारतेन्दु विशेषांक

से नये ग्राहक बना सकेंगे—लेकिन इस विशेषांक के भी जल्दी समाप्त होने की आशा है। अतः जो सज्जन भारतेन्दु अङ्क प्राप्त करना चाहें वे आज ही ४) मनीआर्डर से भेज कर इसके वार्षिक ग्राहक बन जायँ।

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों की सुन्दर छपाई

के लिये

एक बार हमें लिखिये

हमारे यहाँ पुस्तक, लेटर पेपर, कार्ड, रसीद बुक, आदि की सुन्दर छपाई होती है।

साहित्य-प्रेस, ४, गांधी मार्ग, आगरा।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी की महत्वपूर्ण पुस्तकें

१—शेर-ओ-शायरी—[उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज्म]	....	मूल्य ८)
२—मुक्तिदूत—[पौराणिक रोमांस] (द्वितीय संस्करण)	....	५)
३—पथचित्र—[स्मृति रेखायें और निबन्ध]	....	२)
४—मिलनयामिनी—[गीत] कविवर बच्चन	....	४)
५—वैदिक साहित्य—लेखक—पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	....	६)
६—दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ—डा० जगदीशचन्द्र जैन	....	३)
७—आधुनिक जैन कवि—श्रीमती रमारानी जैन	....	३॥)
८—हिन्दी जैन साहित्य का सं० इतिहास—श्री कामताप्रसाद जैन	....	२॥=)
९—जैन शासन—[जैनधर्म का परिचय कराने वाली पुस्तक] (द्वितीय संस्करण)		३)
१०—कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न—	....	२)
११—महाबन्ध—(महाधवल) प्रथमभाग (हिन्दी अनुवाद सहित)	....	१२)
१२—तत्वार्थ वृत्ति—(हिन्दी सार साहित्य) प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	....	१६)
१३—न्यायाविनिश्चय विवरण—[प्रथमा १ भाग]	....	१५)
१४—मदन-पराजय—स० प्रो० राजकुमार जैन साहित्याचार्य	....	८)
१५—नाममाला सभाष्य—	....	३॥)
१६—केवल ज्ञान प्रश्न चूड़ामणि—[ज्योतिष ग्रन्थ] पं० नेमिचन्द्र जैन		४)
१७—सभाष्य रत्न मंजूषा—छन्द ग्रन्थ	....	२)
१८—कन्नड़प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ सूची—	....	१२)
१९—करल कवण - [सामुद्रिक शास्त्र]	...	१)

प्राप्तिस्थान— { १—भारतीय ज्ञानपीठ काशी दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।
२—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपया अब आर्डर न भेजें।

हम अपने पिछले दो अङ्कों में विज्ञप्ति निकाल चुके हैं, कि साहित्य-सन्देश की १९४९-५० की फाइल के लिए अब मनीआर्डर न भेजें, लेकिन हमारे कृपालु ग्राहक अब भी बराबर मनीआर्डर भेज रहे हैं, जो हमें वापिस करने पड़ते हैं, अतः पुनः निवेदन है कि अब कोई भी सज्जन किसी भी पुरानी फाइल का आर्डर अथवा मनीआर्डर भेजने की कृपा न करें, अब हमारे यहाँ कोई भी फाइल उपलब्ध नहीं है—

विशेषांक भी उपलब्ध नहीं हैं,

हमारे पिछले विशेषाङ्कों में परीक्षांक और विद्यार्थी अङ्क भी अब समाप्त हो गये हैं। लेकिन उनकी माँग बराबर आ रही है। यह दोनों विशेषांक तथा कुछ और उपयोगी और आवश्यक निबन्ध जोड़ कर हमने एक नई पुस्तक

परीक्षार्थी प्रबोध, द्वितीय खंड,

के नाम से इसी मास में प्रकाशित की है, पृष्ठ सं० लगभग ३०० मूल्य ३) रु०

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को यह पुस्तक पौने मूल्य में दी जायगी।

जल्दी ही आर्डर भेज कर मंगालें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

भेंट करने योग्य पुस्तकें

यदि आप विवाहों त्यौहारों पर तथा विद्यार्थियों को हिन्दी की पुस्तकें भेंट करना चाहते हैं, तो आप हमें यह लिख भेजें कि आप किस अवसर पर कितने मूल्य की पुस्तकें किसको भेंट करना चाहते हैं। हम उतने मूल्य की पुस्तकें अपने यहाँ से छाँट कर आप को भेज देंगे। आप पहले से लिख देंगे तो वैसी पुस्तकों की सूची भेज देंगे।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के पिछले विशेषांक

परीक्षांक और विद्यार्थी अंक

के लिये अब तक बराबर मांग आ रही है उन ग्राहकों के आग्रह पर हमने

परीक्षार्थी प्रबोध द्वितीय खण्ड

प्रकाशित की है जिसमें उक्त दोनों अङ्क भी सम्मिलित हैं—अतः अब उन्हें यह पुस्तक मँगाकर अपने पास रखनी चाहिए। यह पुस्तक परीक्षार्थीयों के लिये बड़ी उपयोगी है।

पृष्ठ संख्या लगभग ३००, मूल्य ३)

पुस्तक मिलने का पता—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

राम-चरित मानस (संक्षिप्त)

सुनहरी छपा हुआ टाइटिल, मूल्य १।)

यह रामायण अभी प्रकाशित हुई है।

साहित्य सन्देश के ग्राहक जो हमें १) मनीआर्डर से भेज देंगे उन्हें यह पुस्तक पोस्टल सार्टीफिकिट द्वारा हम अपने पोस्टेज से भेज देंगे।

आज ही १) भेज कर पुस्तक मंगालें।

गीता मन्दिर प्रेस, ५ गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी प्रबोध द्वितीय खण्ड

की

विषय-सूची

१—चन्द और पृथ्वीराज रासौ—श्री शमनलाल अग्रवाल एम० ए० साहित्य रत्न
२—कबीर और सृष्टि विज्ञान—प्रो० कैलाशचन्द्र मिश्र एम० ए०
३—जायसी का प्रेम काव्य—श्री शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०
४—सूर का वियोग शृङ्गार—श्री चिरंजीलाल 'एकाकी'
५—तुलसीदासजी का दार्शनिक व धार्मिक दृष्टि कोण—श्री ब्रजमोहन गुप्त एम० ए०
६—केशव की काव्यकला—श्री प्रकाशचन्द्र जैन
७—सेनापति का कवित्त-रत्नाकर—प्रो० अम्बिकाचरण एम० ए०
८—कामायनी—प्रो० विशम्भरदयाल 'मानव' एम० ए०
९—साकेत पर एक दृष्टि—श्री भारतभूषण अग्रवाल एम० ए०
१०—प्रसादजी का चन्द्रगुप्त—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
११—सेवा सदन—प्रो० मुंशीराम शर्मा 'सोम' एम० ए०
१२—प्रेमचन्द और गोदान—श्री ओमप्रकाश शर्मा एम० ए०
१३—रस और दोष—श्री गुलाबराय एम० ए०
१४—काव्य के दोष—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०
१५—भारत वर्ष की आधुनिक भाषाएँ—प्रो० राममूर्ति महरोत्रा एम० ए०
१६—पृथ्वीराज रासो और उसकी प्रामाणिकता—प्रो० नरोत्तम स्वामी एम० ए०
१७—तुलसी की काव्य सुषमा—प्रो० जगन्नाथ तिवारी एम० ए०
१८—हिन्दी के प्रमुख कहानीकार—श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी बी० ए०
१९—त्रिवेणी-अवगाहन—श्री मथुराप्रसाद दुबे श्री ओमप्रकाश माथुर बी० ए०
२०—जायसी और उसका प्रेम काव्य—श्री चिरंजीलाल 'एकाकी' बी० ए०
२१—प्रसादजी का अजात शत्रु—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
२२—हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार—श्री मोहनलाल एम० ए०
२३—नरोत्तमदास कृत 'सुदामाचरित'—प्रो० शम्भूप्रसाद बहुगुना एम० ए०
२४—कबीर का साधना पक्ष—श्री० गुलाबराय एम० ए०
२५—'स्कन्द गुप्त' के प्रमुख पात्र—प्रो०मोहनलाल एम० ए०
२६—साकेत पर एक दृष्टि—श्रीमती ब्रजरानी बालूपुरी बी० ए०
२७—प्रगतिवाद—डा० सत्येन्द्र एम०ए०
२८—विनय पत्रिका—संक्षिप्त अध्ययन—श्री गुलाबराय एम० ए०
२९—शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध—श्री गुलाबराय एम० ए०
३०—प्रसादजी के उपन्यास—श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी प्रबोध का द्वितीय खण्ड

प्रकाशित हो गया

परीक्षार्थी प्रबोध हिन्दी साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तय्यार की गयी है। प्रथमा-मध्यमा-उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-भूषण-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण-साहित्यालङ्कार, विद्यालंकार, इन्टर बी० ए० तथा एम० ए० आदि परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है। विद्यार्थी और परीक्षार्थीयों के लिए सदैव साथ रखने योग्य पुस्तक है।

परीक्षार्थी प्रबोध का पहला खण्ड

गत वर्ष नवम्बर मास में प्रकाशित हुआ था जिसका पहला संस्करण १ महीने में ही समाप्त हो गया था। पहले भाग के दूसरे संस्करण की अब थोड़ी सी प्रतियाँ बची हैं।

"परीक्षार्थी प्रबोध" का द्वितीय खण्ड

अभी छप कर तैयार हुआ है जिसमें साहित्य सन्देश के परीक्षांक और विद्यार्थी अङ्क भी सम्मिलित हैं। इसके प्रथम संस्करण की भी शीघ्र ही निकल जाने की आशा है। अतः आज ही आर्डर भेज कर मंगालें।

प्रत्येक भाग की पृष्ठ संख्या लगभग ३०० है और प्रत्येक भाग का मूल्य ३) है।

साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

परीक्षार्थी प्रबोध के दोनों खण्ड साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में दिये जायँगे। दोनों भाग एक साथ लेने पर ४।) में मिलेंगे। पोस्टेज पृथक। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

द्वितीय खण्ड की विषय सूची इसी पृष्ठ के पीछे छपी है।

नोटः—जो सज्जन साहित्य सन्देश के ग्राहक नहीं हैं वे पूरा मूल्य ही भेजें। अथवा ४) वार्षिक मूल्य भी साथ भेज कर साहित्य सन्देश के ग्राहक बन जायँ।

मनीआर्डर और आर्डर भेजने का पता—साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश

भारतेन्दु अङ्क

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१–हमारी विचारधारा—सम्पादक १२५
२–भारतेन्दुजी की जीवनी—श्री ब्रजरत्नदास १२६
३–भारतेन्दु और तत्कालीन परिस्थिति—प्रो० जयचन्द्रराय एम० ए० १३२
४–हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता : 'भारतेन्दु-युग'—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी० १३७
५–भारतेन्दु युग और राष्ट्रीय-चेतना—श्री रामपरीक्षासिंह एम० ए०, सा० रत्न १३६
६–भारतेन्दु की मानवता—श्री शिवनाथ एम० ए० १४२
७–भारतेन्दु की समन्वय-साधना—प्रो० वासुदेव नन्दन प्रसाद एम० ए० १४४
८–श्रद्धाञ्जलि—श्री सुमित्रानन्दन पन्त १४७
९–भारतेन्दु की नाट्य-कला—डा० सोमनाथ गुप्त १४८
१०–भारतेन्दु की काव्य-कला—प्रो० मोहनलाल एम० ए०, सा० रत्न १५१
११–भारतेन्दु युग का नक्षत्र मण्डल : निबन्ध और निबन्धकार—श्री ओंकारनाथ एम० ए० १५७
१२–भारतेन्दुजी के तीन निबन्ध—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी० १६५
१३–भारतेन्दुजी की भूमिकाएँ और समर्पण—श्री प्रभाकर माचवे एम० ए० १७४
१४–हिन्दी-गद्य साहित्य के युग निर्माता : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—
डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा एम० ए०, डी० लिट० १७७
१५–भारतेन्दु की भाषा—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एम० ए०, डी० लिट० १७९
१६–पत्रकार भारतेन्दु—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए० १८३
१७–हास्यरस सम्राट बाबू हरिश्चन्द्र—श्री रामचरनसिंह तँवर सा० रत्न १८५
१८–भारतेन्दु की हिन्दी काव्य को देन—प्रो० हंसराज अग्रवाल एम० ए० १८७
१९–स्वरूप विधान और भाषा शैली की दृष्टि से भारतेन्दु—प्रो० रामचन्द्र एम० ए०
२०–भारतेन्दु की परम्परा—प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्ता एम० ए० १९४
२१–भारतेन्दु के काव्य में शृङ्गार वर्णन—डा० किरणकुमारी गुप्त एम० ए०, पी० एच-डी० १९६
२२–भारतेन्दु की गद्य भाषा—प्रो० विनयमोहन शर्मा एम० ए० २०
२३–भारतेन्दु की भक्ति भावना और धार्मिक विचार—श्री गुलाबराय एम० ए० २०५
२४–भारतेन्दुजी की रचनाएँ— २११
२५–भारतेन्दु : आलोचकों की दृष्टि में २१५

१—श्री पं० बद्रीनारायण चौधरी
२—मिस्टर एडविन ग्रीव्स
३—मिस्टर एफ० ई० का
४—सरजार्ज ए० ग्रिअर्सन
५—मिश्रबन्धु
६—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
७—डा० श्यामसुन्दरदास
८—डा० रामरतन भटनागर
९—डा० रामकुमार वर्मा
१०—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल
११—डा० धीरेन्द्र वर्मा
१२—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१३—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी
१४—श्री गुलाबरायजी
१५—श्री माखनलाल चतुर्वेदी
१६—श्री लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

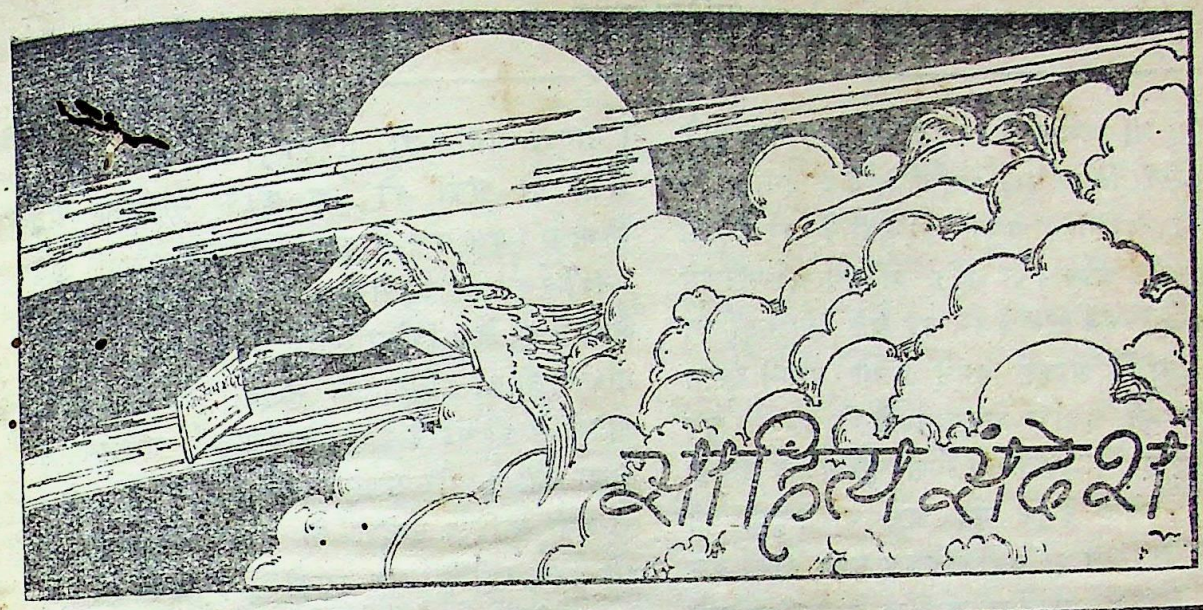

वर्ष १२] आगरा—अक्टूबर-नवम्बर १९५० [अङ्क ४-५

हमारी विचार-धारा

भारतेन्दु द्वारा युग निर्माण—

इस अंङ्क के द्वारा भारतेन्दु पर विविध दृष्टियों से विचार करने की प्रामाणिक सामग्री हमने प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। भारतेन्दु के युग-निर्माण के सम्बन्ध में हम कुछ विशेष बातों की ओर ध्यान आकर्षित कराना चाहते हैं।

भारतेन्दु में युग-निर्माण की प्रतिभा का प्रामाणिक प्रमाण हमें तब मिलता है जब हम उन्हें पूर्ण विश्वास के साथ यह लिखते पाते हैं कि 'हिन्दी आज नयी चाल में ढली', इसका रहस्य हमें भली प्रकार समझ लेना होगा। बिना उसे समझे आज भी राष्ट्रभाषा का प्रश्न समुचित रूप से हल नहीं हो सकता। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह ये दो भारतेन्दु के पूर्वगामी साहित्य महारथी थे। दोनों की शैलियों में संघर्ष था। एक उर्दू-अरबी फारसी के शब्दों से युक्त शैली का पक्षपाती था, दूसरा ठेठ हिन्दी का, जिसमें किसी भी प्रकार की तत्समता को ग्रहण करने का निषेध था। भारतेन्दुजी इन सबसे अलग खड़े हुए—उन्हें दोनों ही शैलियाँ बनावटी, अस्वाभाविक और असमर्थ विदित हुईं—उन्होंने उस भाषा को चुना जो सबकी थी, जो प्रगतिशील थी, और जिसमें ग्रहण-शक्ति थी जिसमें न ठेठ शब्दों का आग्रह था, न फारसी-अरबी के शब्दों का, तत्समता से चिढ़ न थी, प्रचलित साधारण फारसी अरबी के शब्दों से भी परहेज न था जिसका विन्यास और व्याकरण अपना निजी भारतीय भाषाओं की परम्परा का था। भारतेन्दु की यही भाषा 'हिन्दी' हुई, इसी को आज राष्ट्रभाषा का गौरव मिला है। भारतेन्दु ने जिस भाषा को खड़ा किया वही वास्तव में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की वाणी बनी थी—भारतेन्दु के इस बीज ने आज इतने वर्ष बाद भारत की स्वतन्त्रता का नया युग निर्मित किया है। राजा शिवप्रसाद की शैली कभी जन वाणी नहीं थी, न हो सकती है—यह मर्म हमें आज भली प्रकार समझ लेना चाहिए।

हमारी श्रद्धाञ्जलि—

आधुनिक हिन्दी गद्य के जन्मदाता श्री भारतेन्दु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिश्चन्द्र की जन्मशती पर हमारी यह भेंट उनके प्रति हमारी विनय पूर्ण श्रद्धाञ्जलि है। हमारी यह भेंट भारतेन्दुजी के अनुरूप तो नहीं है पर हमारी अमित श्रद्धा और यथा शक्ति परिश्रम का परिचय अवश्य है। हमें खेद है कि यह अङ्क वैसा नहीं बन पड़ा जैसा कि आदर्श हमने अपने सामने रक्खा था फिर भी हमारा अनुमान है कि हमारा यह विशेषाङ्क हमारे पहले सब विशेषाङ्कों से श्रेष्ठ समझा जायगा। खेद है कि यह अङ्क भारतेन्दुजी की जयन्ती की तिथि पर नहीं निकल सका किन्तु हम जानते हैं कि भारतेन्दु साहित्य के विभिन्न पक्षों को आलोकित करने वाली जो सम्पन्न सामग्री लेकर हम आज उपस्थित हुए हैं उसे देखते हुए हमारा विलम्ब से आना क्षम्य समझा जायगा।

यद्यपि यह अङ्क दो मास का सँयुक्ताङ्क है फिर भी यह जानकर पाठकों को सन्तोष होगा कि साहित्य सन्देश का यह अङ्क साधारण अङ्कों से दुगुने से अधिक बड़ा है। आगे से पत्र सदा महीने के प्रारम्भ में ही ग्राहकों को मिलता रहे—इसीलिए हमने इसे युग्मांक (अक्टूबर-नवम्बर का अङ्क) कर दिया है। अब दिसम्बर का अङ्क दिसम्बर के प्रारम्भ में ही पाठकों को मिल जायगा।

इस अङ्क के तैयार करने में हमारे विद्वान् लेखकों ने हमें प्रशंसनीय सहायता दी है। बहुत कम समय की सूचना मिलने पर भी उन्होंने लेख भेज कर हमें आभारी किया है। अतः हम उन्हें धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

भारतेन्दु सम्बन्धी विशेषांक—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्म शताब्दी पर हिन्दी के प्रायः सभी पत्रों ने अपनी अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ चढ़ायीं। कुछ पत्रों ने तो अपने विशेषांक भी निकाले। लखनऊ के 'दैनिक नवजीवन' का विशेषांक अच्छा था। कानपुर के 'रामराज्य' ने भी अच्छा प्रयास किया। सबसे महत्वपूर्ण अंक काशी नागरी प्रचारिणी सभा की त्रैमासिक पत्रिका (नागरी प्रचारिणी पत्रिका) का रहा। इसने अपने दो अंकों को एक करके भारतेन्दु अङ्क निकाला। इस अङ्क में कुल १२ लेख तथा कुछ उनकी रचनाओं का संकलन तथा श्रद्धाञ्जलियाँ हैं। लेखों में दो लेख विशेष महत्त्व के हैं एक जिसमें भारतेन्दुजी की कविता की तुलना उनके पूर्ववर्ती कवियों से की गई है। यह लेख काफी परिश्रम से लिखा गया है और सचमुच अच्छा है। ऐसे लेख की कमी साहित्य सन्देश के प्रस्तुत विशेषांक में हमें खटक रही है—पर उसको छोड़ कर १०-१२ लेख साहित्य-सन्देश में पत्रिका से अधिक हैं जो मोल और तोल दोनों में श्रेष्ठतर हैं। इस प्रकार यह विशेषांक अधिक व्यापक महत्त्व रखता है। पत्रिका का दूसरा अच्छा लेख 'भारतेन्दु की छन्द योजना' शीर्षक है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की 'सम्मेलन पत्रिका' का भी विशेषांक निकलने की चर्चा थी। अभी तक वह दिखाई नहीं दिया। पता नहीं वह निकल भी रहा है या नहीं।

भारतेन्दु का सम्मान—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी के लिए जितना काम किया है उसको ध्यान में रखते हुए हिन्दी संसार ने उनका उतना सम्मान नहीं किया। भारतेन्दु की कोटि के विदेशी लेखकों का जितना सम्मान विदेशों में है उसका दसमांश भी हम अभी तक नहीं कर सके हैं। वहाँ एक-एक लेखक की रचनाओं के दसियों संस्करण आपको मिलेंगे। उनके नाम पर कितनी ही संस्था खुली हैं, कितने ही पुरस्कार मिलते हैं और कितनी ही तरह से उनका आभार वहाँ की जनता मान रही है। भारतेन्दु के लिए इनमें से अभी हम कुछ भी नहीं कर पाये हैं। आवश्यकता है कि इस कमी की पूर्ति हम धीरे-धीरे करते जायँ। यह वीर पूजा की बात तो है ही, इससे वर्त्तमान लेखकों को भी बहुत प्रोत्साहन मिलेगा। वे यह समझेंगे कि अपने जीवन में न सही मरने के बाद तो उनका नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण करने वाले होंगे। अतः हम चाहते हैं कि भारतेन्दुजी के नाम पर कुछ पुरस्कारों की व्यवस्था अवश्य की जाय और कुछ कालेजों में हिन्दी परिषदों का नाम भारतेन्दु परिषद् रख कर तथा अन्य प्रकार से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाय। यदि कुछ सज्जन उनके नाम पर कुछ पुरस्कार देना चाहेंगे और वे उसकी व्यवस्था हमसे कराना चाहेंगे तो हम उनका सहयोग प्राप्त कर सुखी होंगे।

भारतेन्दु पुरस्कार—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की स्मृति के लिए दो पुरस्कार प्रति वर्ष साहित्य सन्देश की ओर से दिए जायँगे, यह पुरस्कार १०१) और ५१) के होंगे और उन लेखकों को दिए जायँगे जिनके लेख उस वर्ष के साहित्य सन्देश में प्रकाशित लेखों में सर्वश्रेष्ठ समझे जायँगे। कौन लेख सर्वोत्तम है इसका निर्णय साहित्य सन्देश के सम्पादक करेंगे और उनका निर्णय अन्तिम होगा। इस प्रतियोगिता में सम्पादकों के स्वयं लिखे हुए लेख नहीं रक्खे जायँगे, न वे किसी प्रकार पुरस्कार अधिकारी माने जायँगे।

एक दूसरा पुरस्कार और सन्देश की ओर से उस विद्यार्थी को दिया जायगा जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का परचा लेकर उत्तीर्ण होगा और इस परचे में सबसे अधिक अङ्क प्राप्त करेगा। यह पुरस्कार ५१) का होगा। और प्रति वर्ष दिया जायगा।

भारतेन्दु साहित्य—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो पुस्तकें लिखी हैं उनका एक सङ्कलन चार पाँच भागों में बाँकीपुर के खड्ग विलास प्रेस से प्रकाशित हुआ था। पर वह पूर्ण नहीं था और अब वह भी उपलब्ध नहीं है। नागरी प्रचारिणी सभा ने उनके नाटकों को दो भागों में छापा था वह भी अब अप्राप्य है। यह दोनों भाग अब श्री रामनरायन लाल जी के यहाँ प्रयाग से प्रकाशित हुए हैं। उनकी कविताओं व लेखों का अब कोई सङ्कलन नहीं मिलता। मुद्राराक्षस और सत्य हरिश्चन्द जैसे कुछ नाटक अवश्य कई स्थानों से प्रकाशित हुए हैं परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि उनके समस्त ग्रन्थों के संग्रह और लेखों तथा कविताओं तथा टिप्पणियों के सङ्कलन एक ग्रन्थ माला के रूप में प्रकाशित किए जायँ। व्यापारिक दृष्टि से यह प्रकाशन बहुत लाभप्रद नहीं होगा पर ऐसा भी नहीं है कि हिन्दी के इस युग में उनके प्रकाशक को हानि हो। ऐसी ग्रन्थमाला की बिक्री होगी। सभी शिक्षा संस्थाओं और पुस्तकालयों में उन्हें स्थान मिलेगा। अतः कोई व्यापारिक संस्था न भी छापे तो भी किसी साहित्यिक संस्था को यह काम करना चाहिए। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर सभी लोग इसके लिए दृष्टि लगावेंगे। आशा है सभा या सम्मेलन इस काम को पूरा करेंगे।

साहित्य सन्देश के पाठक चाहें तो प्रकाशन का यह भार हम भी ले सकेंगे। उस दशा में हम यह चाहेंगे कि साहित्य सन्देश के कम से कम एक हजार पाठक इस माला के ग्राहक बन जायँ और उसके लिए कम से कम दो रुपया पेशगी भिजवा दें। यदि माला हम निकाल सके तो दो रुपए इन ग्राहकों को रियायती मूल्य में काट दिए जायँगे यदि पर्याप्त ग्राहक न होने के कारण माला नहीं निकली तो यह रुपए साहित्य सन्देश के मूल्य में मुजरा दे दिए जायँगे।

प्रेमचन्द्र दिवस—

हिन्दी के अद्वितीय कलाकार उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द्रजी की स्मृति में गत मास कई स्थानों पर उत्सव मनाए गए। श्री प्रेमचन्द्र ने अपनी कहानियों और उपन्यासों के रूप में हिन्दी को वह दैन दी है जिसके आधार पर हम विश्व के किसी भी कलाकार के सम्मुख मस्तक ऊँचा करके खड़े हो सकते हैं। उनकी कृतियाँ हमें मानवता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश देती हैं, हमें हमारी संस्कृति का गौरव पूर्ण सन्देश सुनाती है, हमको यह बताती हैं कि केवल यथार्थ से ही हमारा काम न चलेगा हमें आदर्श की भी आवश्यकता पड़ेगी, हम चाहे जितना प्रगतिशील बनें पुरातन के साथ नवीन का सामञ्जस्य किए बिना हमारा कल्याण न होगा, हम विदेश से कुछ भी लें हमें अपने देश को उसे भारतीय रूप में ही देना चाहिए। यही श्री प्रेमचन्दजी का सन्देश था और उसी के नाते आज उनका इतना सम्मान है।

पं० रूपनारायण पांडे की ६६ वीं वर्ष गाँठ—

लखनऊ की 'शतदल' नाम की साहित्यिक संस्था ने अभी २२ अक्तूबर को अत्यन्त अभिनन्दनीय कार्य किया है। इस संस्था ने पं० रूपनारायण पाँडे की ६६ वीं वर्ष गाँठ का उत्सव समारोह पूर्वक मनाया है। पं० रूपनारायण पाँडे जी ने भारतेन्दु युग में जन्म ग्रहण किया, द्विवेदी युग में यौवन, और वे आज वयोवृद्ध का सम्मान पारहे हैं।

पं० रूपनारायण पाँडे जी हिन्दी के निर्माताओं में विशेष स्थान रखते हैं। सफल अनुवादों के द्वारा जहाँ उन्होंने बँगला के उच्च साहित्य को प्रस्तुत करके साहित्यकार की रुचियों का परिमार्जन किया और हिन्दी कलाकार को उच्च प्रेरणायें दीं वहाँ अनुवाद का भी ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया। पाँडेजी के अनुवादों के समक्ष उनके मूल भी फीके प्रतीत होने लगते हैं। फिर पाँडेजी कवि भी हैं। कविता में नयी भूमियों का दर्शन, उसमें नैतिक भाव का समावेश, और माधुर्य सहित उसे प्रस्तुत करने की चेष्टा, इन सब ने खड़ीबोली को जो गुण प्रदान किये हैं, वे १९२०-२५ में आनेवाली नयी पीढ़ी की आधार-भूमि बनीं। फिर पाँडेजी लेखक भी हैं और इससे भी अधिक सम्पादक। कितने ही होनहार महान लेखकों के निर्माण करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हैं। ऐसे साहित्य महारथी को, जो देश की प्रगति के साथ प्रगति करता रहा, आज के इस प्रपञ्च-प्रौपगंडा युग में हममें से कितने यथार्थतः स्मरण रख सके, और कितने उनका मूल्याँकन कर सके। हिन्दी और उसके साहित्य-निर्माण में इतना योग देते हुए और देने के उपरांत भी पाँडेजी को हमने उन्हीं के शब्दों में कभी 'पाँचवे सवारों' में नाम लिखते नहीं देखा। यह शील कितना श्लाघनीय है। ऐसे व्यक्तित्व की ६६ वीं वर्ष गाँठ मनाकर 'शतदल' ने हिन्दी-साहित्य के उपासकों और सृजकों को उनके कर्त्तव्य की दिशा का कुछ ज्ञान कराया है। पं० रूपनारायण पाँडे 'शतजीवी' हों साहित्यिक बुजुर्ग की भाँति नयी पीढ़ियों को प्रोत्साहित करते हुए भी अनुशासित रखें, जिससे हिन्दी का साहित्यकार उच्छृङ्खलता की क्षुद्रताओं में अपनी शक्ति को नष्ट न कर हिन्दी की यथार्थ श्री संपत्ति को महान बनाने में एकाग्र भाव से जुट सके, यही हमारी हार्दिक कामना है।

मदरास में हिन्दी—

बम्बई प्रान्तीय सरकार ने हिन्दी की शिक्षा अपने प्रान्त में अनिवार्य करके उसकी महत्ता को उचित रूप से स्वीकार कर लिया है। मदरास प्रान्त ने तो हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता तीस वर्ष पहले से अनुभव की है और महात्मा गांधी के उद्योग से उस पर व्यापक रूप से कार्य हो रहा है। परन्तु मदरास की सरकार ने इधर हिन्दी के प्रति एक अन्याय पूर्ण निश्चय किया है। वहाँ हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य थी परन्तु अब ऐच्छिक कर दी गई है। दस्तकारी सीखो या हिन्दी पढ़ो। यह स्थिति चिन्ताजनक है। मदरास सरकार को चाहिए कि वह इस निर्णय पर पुनः विचार करे क्योंकि उसका यह निर्णय स्वयं मदरासियों के ही हित के विरुद्ध साबित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दुजी की जीवनी

श्री ब्रजरत्नदास

भारतेन्दुजी का जन्म ऋषि-पञ्चमी भाद्रपद शुक्ल ५ सं० १९०७ को अर्थात् ९ सितम्बर १८५० ई० सोमवार को काशी में हुआ था। परन्तु इस जन्म-दिवस के विषय में इधर कुछ मतभेद चल रहा है। इसके मुख्य कारण भारतेन्दुजी के प्रथम चरित्र लेखक उनके फुफेरे भाई स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास जी हैं। जिन्होंने इनका जन्म-दिवस भाद्रपद शुक्ल सप्तमी (ऋषि-सप्तमी) सं० १९०७ ता० ९ दिसम्बर सन् १८५० ई० लिखा है। नहीं कहा जा सकता कि किस प्रकार दो-दो अशुद्धियाँ इस उद्धरण में आ गईं। पञ्चमी के स्थान पर सप्तमी व सितम्बर के स्थान पर दिसम्बर छप गया है। यही जन्म-दिन दूसरी जीवनी के लेखक बाबू शिवनन्दन-सहायजी ने इस प्रकार दिया है। "मिती भाद्रपद शुक्ल ७ सं० १९०७ (९ सितम्बर १८५० ई०) के चन्द्रवार को जन्म हुआ।" इस जीवनी में श्री सुधाकर द्विवेदी की पाश्चात्य रीति से लिखी गई भारतेन्दुजी की जन्म-पत्री दी हुई है, जिसमें केवल अंग्रेजी तारीख है अतः उससे इन्होंने अंग्रेजी तारीख तो ठीक कर दी, पर मिती ठीक नहीं कर सके।

उक्त जन्मतिथि में ९ सितम्बर सन् १८५० ई० चन्द्रवार निश्चित रूप से शुद्ध है। यही अंग्रेजी तारीख भारतेन्दुजी के परम मित्र पं० रामशङ्कर व्यास ने 'चन्द्रास्त' में तथा भारतेन्दुजी के अंग्रेजी में लिखे उस परिचय में दिया है, जो खड्गविलास प्रेस द्वारा सन् १८९२ ई० में प्रकाशित 'इतिहास-समुच्चय' में छापा गया है। भारतेन्दुजी की मृत्यु के समय जो 'शोक-संग्रह' छपा था उसमें भी उनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसमें भी ९ सितम्बर सन् १८५० ई० जन्मदिवस लिखा गया है। इनकी मृत्यु ६ जनवरी १८८५ ई० मङ्गलवार को हुई थी और उस समय इनकी अवस्था ३४ वर्ष ३ मास २७ दिन की लिखी गई है। इससे भी ९ सितम्बर १८५० ही जन्मदिन आता है। 'उचित-वक्ता' (जनवरी १८८५) में भी यही तारीख दी गई है। अतः यही जन्म की निश्चित तारीख है।

बाबू राधाकृष्णदास ने ऋषि सप्तमी लिखा है, पर वास्तव में यह कोई पर्व दिन नहीं है। भाद्रपद में ऋषि-पञ्चमी ही एक पर्व दिन है, जिसमें सप्तऋषि की पूजा व प्रार्थना की जाती है—

नमस्ये शुक्ल पंचम्याम चिंता ऋषि सप्तमाः।
दहन्तु पापं मे सर्वं गृहणन्त्वर्घ्यं नमोनमः॥

भारतेन्दुजी ने 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखी है। वह अपूर्ण और अप्राप्त है। इसका प्रथम परिच्छेद एक पत्र में छपा है। उसमें लिखा है। 'मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन तथा वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है। सं० १९३० में जब मैं तेईस वर्ष का था।' भाद्रपद मास में ऋषि-पञ्चमी ही एक ऐसा पर्व है, जो जैन तथा वैदिक दोनों में पवित्र माना जाता है, अतः ऋषि-पञ्चमी ही भारतेन्दुजी का जन्म दिवस है।

भारतेन्दुजी की जीवनी लिखते समय मैंने शंका मिटाने के लिए कि अंग्रेजी तारीख ९ सितम्बर सन् १८५० सोमवार किस दिन विक्रमीय पञ्चाङ्ग में पड़ा था, एक पत्र रायबहादुर बाबू हीरालालजी को लिखा जो उस समय नागरी प्रचारिणी सभा के खोजविभाग के निरीक्षक थे। उनके पास मद्रास सरकार की ओर से प्रकाशित सभा का सात शताब्दि का बृहत् पञ्चाङ्ग ग्रन्थ था। उससे मिलाकर उन्होंने लिखा था कि भाद्रपद शुक्ल ४ सं० १९०७ सोमवार को ९ सितम्बर सन् १८५० था। 'सेंचुरी कैलेण्डर' देखने से ज्ञात हुआ कि उस दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थी होते पञ्चमी का मान हुआ था, जैसा कि इस वर्ष भी है। अतः निश्चित है कि भाद्रपद ऋषि-पञ्चमी ही भारतेन्दुजी का जन्म दिवस है। भारतेन्दुजी की जन्म पत्री भी अब मिल गई है, उससे भी यही तिथि निश्चित है।

भारतेन्दुजी जब पाँच वर्ष के थे तब इनकी माता का व जब यह दस वर्ष के थे, तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। गृह पर ही हिन्दी, उर्दू तथा अँग्रेजी की कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेने पर यह क्वीन्स कालेज में भर्ती हुए और दो तीन वर्ष तक यह शिक्षाक्रम चलता रहा। तेरह वर्ष की अवस्था में संवत् १९२० में इनका विवाह हो गया। यह बीस बाईस भाषाएँ जानते थे और किस प्रकार इन भाषाओं का ज्ञान इन्होंने अर्जन किया उसका एक नमूना दिया जाता है। लिखते हैं कि 'ग्यारह वर्ष की अवस्था में हम जगन्नाथजी गए थे, मार्ग में वर्द्धमान में विधवा-विवाह नाटक बङ्ग भाषा में मोल लिया, सो अटकल से ही उसको पढ़ लिया।' यह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे और स्मरण शक्ति भी इनकी अद्भुत थी, जिससे यह इस प्रकार अति-शीघ्र ज्ञान संचय कर सके।

यह यात्रा के भी बड़े प्रेमी थे और बाल्यकाल ही से अन्त तक यह बराबर अवसर मिलने पर पर्यटन करते रहे। इन्होंने इन पर्यटनों के वर्णन भी लिखे हैं, जिन्हें पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। ये वर्णन अत्यन्त सजीव तथा विनोद-पूर्ण हैं। यह स्वभाव ही से बड़े परिहास प्रिय थे। साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपने 'बिहारी-विहार' में थोड़े में इनकी आकृति तथा स्वभाव के बारे में इस प्रकार लिखा है कि 'दूर से लोग इनकी कविता सुनकर आकृष्ट होते थे और समीप आ मधुर श्यामसुन्दर घुँघराले बाल वाली मधुर मूर्त्ति देखकर बलिहारी होते थे और वार्तालाप में इनके मधुर भाषण, नम्रता और शिष्ट व्यवहार से वशम्वद हो जाते थे।'

इनके शील सौजन्य तथा दान [illegible] अनेक कथाएँ कही सुनी जाती हैं, पर इसका उन्हें कभी घमण्ड नहीं हुआ। इन्होंने अपने वित्त से बढ़कर गुणियों तथा कलाविदों का आदर सत्कार किया पर अपने को 'सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं कविन के मीत' यही लिखा है। यह कितनी पुस्तकें प्रकाशित कर मुफ्त में ही लोगों में पढ़ने के लिए वितरण कर दिया करते थे। पुरस्कार देकर पुस्तकों के निर्माण करने में अन्य लेखकों को उत्साहित किया करते थे। अत्यधिक घाटा उठाकर भी अनेक पत्र-पत्रिका प्रकाशित कर उन्हें पढ़ने के लिए जनता को प्रोत्साहित करते रहे। छात्र तथा छात्राओं को परीक्षा में अच्छी प्रकार उत्तीर्ण होने पर यह बराबर पारितोषिक दूर-दूर तक के स्कूलों को भेजते रहते थे।

यह केवल कवियों के ही आश्रयदाता या कविता ही के गुणग्राहक नहीं थे। जिस प्रकार यह हिन्दी मातृमन्दिर के साधारण से साधारण पुजारी का सम्मान करते थे उसी प्रकार सभी अच्छी वस्तुओं के निर्माताओं तथा विक्रेताओं का उचित आदर करते थे। इस कारण ऐसी वस्तुओं का भी इनका संग्रह बहुत अच्छा था। इस प्रकार की इनकी दानशीलता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि वह अपव्यय तथा फिजूलखर्ची तक कही जाने लगी। उदाहरणरूप में इत्र ही को लीजिए। प्रायः सुनने में आता है कि यह इतने फिजूलखर्ची थे कि दीपावली पर इत्र के दीप बालते थे। इसके साथ बहुत कृपा कर इनकी नाजुक मिजाजी की प्रशंसा कर दी जाती है पर इसके दूसरे पहलू पर बिचार नहीं किया जाता। वास्तव में बात यह थी कि उस समय के कुछ ही पहले दिल्ली तथा अवध की बादशाहतें खत्म हुई थीं और वहाँ के इस प्रकार के ऐशो आराम की वस्तुएँ बेचने वाले अन्य नगरों में घूमते-फिरते थे। भारतेन्दुजी के दर्बार में भी ये आते थे और यह भी सभी का मन रखने को कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न कुछ खरीदते थे। इस प्रकार खरीदे इत्रों का काफी संग्रह, काम में आने पर भी, हो जाता था। इत्र अधिक दिन रहने पर खराब हो जाता है और ऐसी अवस्था में फेंक देने से त्यौहार पर जला देना ही उचित समझा गया।

इस प्रकार भारतेन्दुजी के विषय में बहुत सी ऐसी बातें कही जाती हैं, जिन्हें जनसाधारण ऐयाशी कहता है और यह वास्तव में मनुष्य के लिए कलङ्क है। चन्द्र में कलङ्क प्रत्यक्ष है, इसे सभी देख सकते हैं और इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। भारतेन्दुजी के नाम तथा उपनाम दोनों ही में चन्द्र शब्द है, ऐसी अवस्था में कलङ्क का होना स्वभावतः अनिवार्य है, पर देखना चाहिए कि ये लांछन चन्द्र की शोभा के समान इनकी भी शोभा बढ़ाते हैं या उसका अपकर्ष करते हैं।

पहले संक्षेप में इनके छोटे से जीवन की रूप-रेखा पर ध्यान दीजिए। इन्होंने कुल सवा चौंतीस वर्ष की आयु पाई थी। कम से कम आधी अवस्था शैशव तथा पठन पाठन में व्यतीत हो गई। बचे हुए सत्रह वर्ष में इन्होंने अनेक विषयों पर प्रायः छोटी-बड़ी दो सौ रचनाएँ तैयार कीं। ये विषय भी काव्य, नाटक, इतिहास, अन्वेषण, धर्म आदि थे, जिनमें प्रतिभा के सिवा शास्त्रज्ञान, मनन, अध्यवसाय सभी की आवश्यकता थी। इसी उम्र में इन्होंने बीसों यात्राएँ कीं इनके दरबार नित्य लगते थे, जिनमें अच्छे-अच्छे विद्वान, गुणी, कलाविदों का जमघट रहता तथा वाद-विवाद, गुण की परीक्षा आदि में काफी समय बीतता था। इस प्रकार देखा जाता है कि इनके पास इतना समय ही नहीं रहता था कि वे उसे उस मार्ग को देते जहाँ समय का कुछ मूल्य नहीं है।

अब इनकी प्रकृति की ओर दृष्टि दीजिए। इनकी उदारता, दानशीलता, मित्रप्रेम, सत्यप्रियता, देशभक्ति, राजभक्ति, मातृभाषाप्रेम तथा सर्वोपरि अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के प्रति इनकी अनन्य भक्ति कुछ अपनी ही कहानी कह रही है। इनके मित्रों में, अन्तरङ्ग मित्रों में, प्रायः सभी उच्चवंशोद्भव, विद्वान, देशभक्त हिन्दी प्रेमी आदि ही थे और उन सभी का इन पर कितना स्नेह, कितनी श्रद्धा थी, यह इनकी जीवनी के प्रत्येक पृष्ठ से स्पष्ट है। जिसकी लेखनी से 'सत्यहरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली' आदि की रचना निर्मित हुई, जिसके हृदय से भक्तिरस से भरी हुए कविताएँ निकलीं तथा जिसकी अन्तिम स्वाँस 'श्रीकृष्ण····सहित स्वामिनी' के साथ निकली, उसका लांछन भी क्या लांछन हो सकता है। अस्तु

भारतेन्दुजी की प्रकृति विचित्र थी और यह उनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। यदि कहीं इन्हें आप देशभक्ति में निमग्न पाते हैं तो वहीं राजभक्ति में अर्थात् बृटिश-सरकार भक्ति में डूबते पाते हैं, यदि कहीं आप इन्हें प्राचीनता के हिमायती के रूप में देखते हैं तो कहीं नवीनता के उल्लास में मस्त पाते हैं और यदि एक ओर आप इन्हें प्राचीन भक्तशैली में तन्मय देखते हैं तो दूसरी ओर अन्ध-विश्वासियों, गुरुओं तथा गुरुभक्तों की पोल खोलते सुधार के उपदेश देते पाते हैं। यही कारण है कि इन पर लोगों का कोप तथा कृपा दोनों ही साथ-साथ होती चलती थी। स्पष्टवादी इससे अधिक पुरस्कार की आशा भी नहीं कर सकते।

समाज सुधार तथा देश हितकर कार्यों की ओर भी इनकी सदा दृष्टि रही। बालकों की शिक्षा के लिए उनमें इतना उत्साह था कि इन्होंने अपने गृह पर ही एक पाठशाला खोली, जिसमें हिन्दी तथा अँग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी। यह स्वयं भी अध्यापन करते थे। वही स्कूल आज काशी का हरिश्चन्द्र इन्टरमीडिएट कालेज के रूप में वर्तमान है। अब यह डिगरी कालेज हो गया है। अपने जीवन भर उस स्कूल का कुल व्यय यह

(शेष पृष्ठ १४१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु और तत्कालीन परिस्थिति

प्रो० जयचन्द्र राय एम० ए०

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अभ्युदय उस समय हुआ जब सन् ५७ का विद्रोह अपने अवसान के अभिशाप रूप में भारतीय वातावरण को भाराक्रान्त बना चुका था। ब्रिटिश दमन का आततायी चक्र जहाँ भारतीय सामन्तों के लिए अलस रंगीन वातावरण की सृष्टि कर रहा था वहाँ अपने दोहरे प्रभाव के कारण जन-चेतना के मुक्ति का भी उद्दाम भावावेग के ऊँचे शिखरों को भी ध्वस्त कर रहा था। इस सर्व ग्रासी उथल-पुथल का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों पर एक-सा नहीं पड़ा। जैसा स्वाभाविक था सर्वोच्च वर्ग अपने जीवन के दृष्टिकोण और अपनी राजकीय परिस्थितियों में किंचित परिवर्त्तन करके अपने गौरवपूर्ण अतीत के स्वप्न-मधुर वैभव विलास में आकण्ठ मग्न हो गया। पक्ष-हीन विहग की भाँति अनन्त आकाश का उन्मुक्त विचरण छोड़ कर अपने को उस कञ्चनकारा में आबद्ध कर लिया जहाँ वारुणी की मदिरता प्रमदा के रक्ताभ अधरों में अधिक तरल बन रही थी। वर्तमान की वास्तविकता की ऐसी उपेक्षा उच्च-वर्ग के इतिहास में भी कठिनाई से मिलेगी। निम्न-वर्ग के लिए यह विप्लव उतना अभिशाप बन कर नहीं आया जितना वरदान। ईस्ट-इन्डिया कम्पनी के शासन काल में किसानों और मजदूरों की समस्यायें अत्यन्त विकट बन गई थीं। सर्व-साधारण के सामने सन् १७७० और सन् १८३७ के दो भयंकर दुर्भिक्ष इसी काल में आ चुके थे। अकाल के दारुण दृश्य उस समय जनता की आँखों में झूल रहे थे और आज भी लोक-गीतों में उनका अस्तित्व है। विप्लव के पश्चात् महारानी विक्टोरिया की घोषणा से कम-से कम सान्त्वना के रूप में इस वर्ग को जीने के लिए सहारा दिया। जनता ने यही सोचा कि देशी अराजकता का नाश करने वाला ब्रिटिश-शासन हमारे सुख-साधन के सभी उपकरण एकत्र करेगा। लेकिन कालान्तर में उसकी ये आशायें टूट गयीं और हम आगे चल कर देखेंगे कि भारतेन्दु ने किस रूप में इस प्रवृत्ति का उपयोग किया।

विद्रोह के उपरान्त नवोदित मध्यमवर्ग जीवन के प्रति नूतन उत्साह और मंगल कामना लिए बड़ी तेजी से आगे बढ़ा। इस वर्ग ने जीवन के प्राचीन मूल्यों को शीघ्रता से बदला। नवीन परिस्थितियों का सब से तीक्ष्ण प्रभाव इसी के ऊपर पड़ा क्योंकि अब समाज का समुचित नेतृत्व इसी के हाथ में आने वाला था। परन्तु ब्रिटेन के झूठे वादों और समाज के तिक्त वातावरण ने इसे सुधारक बना दिया। समाज के सभी अग्रणी कुरीतियों के प्रति विद्रोह कर उठे। परन्तु इस बिन्दु पर सब एक मत थे कि ब्रिटिश शासन की छत्र-छाया में ही सामाजिक सुधारों के द्वारा भारतीय संस्कृति का उन्नयन संभव है। भारतेन्दु के जन्म के लगभग २० वर्ष पहले बंगाल में 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना हुई थी। आगे चल कर इसकी दो शाखायें हो गईं और भारतेन्दु के जीवन काल में श्री केशवचन्द्र ने प्रगतिशील दृष्टिकोण को लेकर सामाजिक कुरीतियों पर प्रबल आघात किया। पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती का अभ्युदय इसी समय हुआ। सामाजिक सुधार की चर्चा स्वामीजी के भाषणों और लेखों में अधिक तर्क-सम्मत होकर आई। वैदिक सभ्यता की पुनः प्रतिष्ठा का आग्रह करके जनता का ध्यान अपने 'स्वत्वों' की ओर ले जाने में स्वामीजी ने जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास किया वह भारतीय इतिहास की स्मरणीय वस्तु है। इसी समय यह सिद्ध करने की होड़ चली कि आर्य यहीं के निवासी हैं अथवा बाहर से आये। इस विवाद ने और चाहे जो कुछ किया हो परन्तु इतना तो अवश्य किया कि जनता की जागरूक चेतना को 'राष्ट्रीयता' और 'अपने गौरव' की ओर उन्मुख कर दिया।

राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में इस प्रकार की स्थिति के प्रति हिन्दी का साहित्यकार कितना सजग था यह विचारणीय है। भारतेन्दु के पहले गद्य का आविर्भाव ही हुआ था, उसकी पुष्टि करने और उसे पूर्ण व्यंजक बनाने का कार्य भविष्य में होने वाला था। जो कुछ गद्य-साहित्य उस समय तक तैयार होगया था उसमें विचारों की नवीनता नहीं थी, इसलिए निष्प्राण होने के कारण वह गतिहीन था। अधिकांश तो पौराणिक कथाओं का उल्था मात्र था। 'सुख-सागर' अथवा 'प्रेम-सागर' उदाहरण स्वरूप हैं। जहाँ तक पद्य-साहित्य का सम्बन्ध है वह जीवन के तत्कालीन आनन्द-[illegible] से बहुत दूर अतीत के उजड़े चमन से बिखरे हुए फूल चुन रहा था। वहाँ के हरे-हरे 'कुञ्ज' अब भी 'हरी-हरी' की ध्वनि से गुञ्जायमान थे; यद्यपि उनमें से अधिकांश हल-की जुताई से नष्ट हो चुके थे।

भारतेन्दु के साहित्य-क्षेत्र में आते समय वस्तु, स्थिति ऐसी ही थी। यह असम्भव था कि वे साहित्य की परम्परा से एक दम विच्छिन्न कहीं जा पड़ते। यदि ऐसा हो जाता तो कुछ अस्वाभाविक-सा लगता। कारण यह है कि साहित्य में अतीत और वर्तमान एक ही क्रम में अनुस्यूत होते हैं, उनमें परस्पर विपरीतता का नहीं अपितु अनुकूलता का भाव होता है, उनमें जनक-जन्य सम्बन्ध होता है, द्रोह नहीं। इसीलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में और विशेष कर काव्य-साहित्य में परम्परा से गृहीत तत्व बहुत अधिक हैं। कृष्ण और राधा के ब्रज-विहार का आकर्षण उनके लिये भी उतना ही रहा जितना भक्ति-काल के कवियों के लिये, क्यों कि अपने धार्मिक विश्वास में वे पुष्टिमार्गी थे। लीला-वर्णन उनके तरंगित मन का उद्देश्य था। परन्तु भारतेन्दु का महत्त्व अथवा उनकी प्रतिष्ठा इन रचनाओं के बल पर नहीं है। केवल इसी प्रकार की कविताओं को उनकी प्रतिनिधि रचनायें मान लेना उतने ही सङ्कीर्ण दृष्टिकोण का परिचायक है जितना हाथी के पैर को हाथी मान लेना। भारतेन्दु की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। गद्य के क्षेत्र में उन्होंने नवीन शैलियों को जन्म दिया और उन्हें प्रौढ़ता के निकट पहुँचाया। कविता में खड़ीबोली को अपना कर उन्होंने हमें एक नया मार्ग दिखाया था। ये सारे परिवर्तन हिन्दी-साहित्य में उनके महत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये पर्याप्त हैं। लेकिन इतना मान लेने पर भी उनका पूरा व्यक्तित्व हमारी आँखों के सामने नहीं आ पाता। उनमें एक बात और थी जो इन सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनमें अतीत और वर्त्तमान का इतना सुन्दर सङ्गम हुआ कि हिन्दी उन्हें पाकर धन्य हो गयी। अतीत और परम्परा की चर्चा हो चुकी, वर्तमान को देखने के लिए उनके उस साहित्य की परीक्षा करनी होगी जिसे हम जल्दी में छोड़ जाते हैं।

ऊपर जिस राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति का रूप दिखाने की चेष्टा की गई है उसे पृष्ठ भूमि मानकर हम भारतेन्दु के कृतित्व की जाँच कर सकते हैं। उनके काल में जनता की राजनैतिक चेतना विद्रोह की ओर से खिंच गई थी। 'क्रान्ति' का शब्द जितना सस्ता आज बन गया है उसका शतांश भी तब नहीं था। इसलिये यदि हमें तत्कालीन साहित्य में गदर को लेकर लिखी गई रचनायें नहीं मिलतीं तो आश्चर्य की बात नहीं। यद्यपि लोक-साहित्य में सन् ५७ के शहीदों की वीर गाथायें आज भी उपलब्ध हैं लेकिन 'वीर पूजा' के रूप में ही। उस समय विधवा-विवाह और

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेश्या-पृथा के अन्त का समर्थन उतना ही क्रान्तकारी माना जाता था जितना अँग्रेजों को भारत से बाहर निकाल देने का आयोजन। देशी और विदेशी पूँजीवाद में कुछ ऐसा अन्तर विरोध था कि समाज का नेतृत्व करने वाले उच्च और मध्यम वर्ग चिन्तन की दृष्टि से दो भागों में बट गये। कुछ लोगों की धारणा थी कि अँग्रेजों की छत्र छाया में ही अपने उत्कर्ष के उपाय ढूँढ़े जायँ। देश में उद्योग-धन्धों के बढ़ाने की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी अपने लोगों को अँग्रेजी शिक्षा देने की। दूसरे लोग ऐसे थे जिनमें 'स्वदेश' और 'स्वदेशी' की भावना थी। लङ्काशायर का व्यवसाय उन्हें अप्रिय था। वे देशी पूँजी का समर्थन करके देश में उद्योग-धन्धों के विकसित होने के पक्षपाती थे। ढाका और मुर्शिदाबाद के उजड़े हुए व्यवसाय की स्मृति उनके मस्तिष्क में आज भी पीड़ा उत्पन्न कर रही थी। वे नगरों से भगे उन कुशल कारीगरों की दुर्दशा देख रहे थे जो गाँव में जागीरदारों और जमींदारों के पीड़न का शिकार बन रहे थे और अधिकाँश किसी व्यवसाय की खोज में मारे मारे फिर रहे थे। इस प्रकार के चिंतक ही जनता के वास्तविक हितैषी थे। हिन्दुओं में 'सितारेहिन्द' और मुसलमानों में सर सैयद अहमद खाँ पहले प्रकार के लोगों के अगुवा थे और दूसरे प्रकार के लोगों का नेतृत्व श्री दयानन्द सरस्वती और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कर रहे थे। तभी तो यह कर्णप्रिय ध्वनि सुनाई पड़ी—

अंगरेज राज सब भाँति अहै सुखकारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति खारी॥

मृत्यु के केवल दो मास पूर्व सन् १८८४ में बलिया वाले प्रसिद्ध भाषण में उनका कितना मर्म भरा उल्लास है:—

"....हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला हो तो क्या नहीं कर सकते? इन से इतना कह दीजिए—'का चुप साधि रहा बलवाना' फिर देखिए हनूमानजी को अपना बल कैसा याद आ जाता है, सो बल कौन याद दिलावै, या हिन्दोस्थानी राजे महाराजे, नवाब, रईस या हाकिम। राजे-महाराजों को अपनी पूजा, भोजन, झूठी गप से छुट्टी नहीं। हाकिमों को कुछ तो सरकारी काम घेरे रहता है, कुछ बॉल, घुड़दौड़, थियेटर, अखबार में समय गया। कुछ समय बचा भी तो उनको क्या गरज है कि हम गरीब, गन्दे, काले आदमियों से मिलकर अपना अनमोल समय खोवैं, बस वही मसल हुई—

तुम्हें गैरों से कब फुरसत,
हम अपने गम से कब खाली।
चलो बस हो चुका मिलना,
न हम खाली न तुम खाली।"

भारतेन्दु ने यह दृढ़तापूर्वक अनुभव किया था कि जनता में नई शक्ति का सञ्चार करना राजा महाराजाओं और ऊँचे अधिकारियों का काम नहीं है, उसके लिये स्वतन्त्र कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। साहित्यकार इस महान् उत्तरदायित्व को सँभाल सकें, इसके लिए उन्हें आत्मोत्सर्ग करना होगा। प्राचीन से चिपटना छोड़कर नवीन को आग्रह-पूर्वक अपनाना होगा। ऊपर से उतर कर नीचे आना होगा, धूल और मिट्टी से सम्पर्क स्थापित कर जनता के वास्तविक जीवन की अनुभूति प्राप्त करनी होगी। तभी नव-जागरण की सच्ची घोषणा हो सकती है। इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिये उन्होंने साहित्य संसार के सामने एक अत्यन्त दृढ़ और विस्तृत योजना रखी थी। उन्होंने समूचे भारत की कारयित्री-प्रतिभा का आवाहन किया था केवल इसलिए कि यह योजना सफल हो सके। उनका विश्वास, 'करने' में अधिक था 'सूक्ष्म-कथन' में कम। उन्हीं के शब्दों में उनकी योजना इस प्रकार थी:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आज कल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य-प्रकाश होते हैं, किन्तु वे जन-साधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने सोचा है कि जातीय सङ्गीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश में गाँव-गाँव में, साधारण लोगों में प्रचार की जायँ।.....जितना ग्राम गीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को सङ्गीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।....इस हेतु गीत बहुत छोटे छोटे छन्दों में, साधारण भाषा में बनें, बरञ्च गँवारी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों....ऐसे गीतों में रोचक बातें जो स्त्रियों और गँवारों को अच्छी लगें होनी चाहिये और शृङ्गार हास्य आदि रस इसमें मिलें रहें जिसमें इनका प्रचार सहज में हो जाय।" इस योजना को अधिक पूर्ण और व्यावहारिक बनाने के लिए भारतेन्दु ने अनेक ऐसे विषयों की सूची उपस्थित की जो तत्कालीन भारत के जागरण के लिए अत्यन्त उपयुक्त थे। उदाहरण के लिए 'बालकों की शिक्षा', 'जन्मभूमि के प्रति स्नेह', 'हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों का व्यवहार करना', 'भारत के दुर्भाग्य का वर्णन' इत्यादि। इनका वर्णन करने के लिये कड़ी शर्त यह रखी गई थी कि शैली नितान्त गँवार के लिये भी बोध गम्य हो। देश और समाज की परिस्थितियों के प्रति इतनी सजग जागरूकता लेकर चलने वाला कलाकार हिन्दी को ही नहीं समूचे भारतवर्ष को सदियों बाद मिला था। देश में घटित होने वाली छोटी से छोटी घटना भी उसकी दृष्टि से ओझल न हो सकी। गायकवाड़ वंश की हीनता को लेकर लिखा गया उनका प्रसिद्ध 'भाण' एक छोटा उदाहरण है। उनके जीवन काल में भारतीयों का बौद्धिक स्तर अनेक भागों में विभक्त था। इनमें परस्पर विद्रोह भी था। भारतेन्दु ने इसे लक्ष्य किया। वे प्रगति के पक्षपाती थे परन्तु समुदाय को छोड़कर अकेले आगे बढ़ जाना उन्हें अप्रिय था। पूरे जन समूह में वे विचारों का साम्य देखने के इच्छुक थे। तभी तो अवसाद से भरी ग्रामीण बोली में लिखा है:—

आधे पुराने पुरानहिं माने
आधे भये क्रिस्तान हो दुइ रंगी,
क्या तो गदहा को चना चढ़ावें
कि होई दयानन्द जाँय हो दुइ-रंगी।

× × ×

होइ एक मत भाई सबै अब,
छोड़हु चाल कुचाल हो दुइ-रंगी॥

भारतेन्दु को केवल लिखने पढ़ने मात्र से सिद्धि की आशा नहीं थी—कुछ रचनात्मक कार्य करना होगा। इस बात का उन्हें निश्चय था। तभी उन्हें एक जागरण-गीत में कहना पड़ा—

"खान-पियन और लिखन-पढ़न सो
काम न कछू चलोरी।
आलस छोड़ एक मत ह्वै कै
साँची वृद्धि करो री॥
समय नाहीं नेकु बचो री॥

सर्वदा से बसन्त का अग्रदूत बनने वाला, प्रकृति में पंचम-स्वर की सृष्टि करने वाला और विरह दग्ध दुःखिनी नायिकाओं को पीड़ित करने वाला कोकिल भारतेन्दु की कविताओं में नव-युग और नव-जागरण का वैज्ञानिक बन कर आया—

कोकिल एहि विधि बहु बकि हार्यौ
काहू नाहिं सुनोरी।
मेटी सकल कुमेटी थोथी,
पोथी पढ़त मरोरी॥
काज नहिं तनिक सरो री॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की किशोरावस्था में ही उड़ीसा का भयंकर दुर्भिक्ष सामने आया था। उसमें प्रांत की लगभग एक चौथाई जनता का नाश हुआ। सारा भारत इस दारुण दृश्य को देख कर दहल गया। सरकार की ओर से अन्न पहुँचाने की कोई व्यवस्था नहीं की गई। भारतेन्दु की आयु उस समय केवल १५ वर्ष की थी। परन्तु उनके कोमल हृदय पर इस घटना का गहरा प्रभाव पड़ा। झूठे राग-रंग में लीन समुदाय को लक्ष्य कर उन्होंने कहा है—

महँगी परी न पानी बरसा,
बजरौ नाहीं सस्त।
धन सब गँवा अकलि नहिं आई,
तौ भी मंगल कस्त।
होली होय रही।
परबस कायर कूर आलसी,
अंधे पेट परस्त।
सूझत कछु न बसंत माहिं,
'ये भे खराब और खस्त॥

इस बीच अँग्रेजों और अफगानों के बीच दूसरा युद्ध छिड़ गया। भारतेन्दु उस समय २८ वर्ष के थे। उनकी बुद्धि प्रौढ़ता की ओर जा रही थी। युद्ध के समूचे प्रभाव का उन्होंने बौद्धिक विवेचन किया। वे जानते थे कि इस युद्ध का मूल्य जन-धन के रूप में भारत को ही चुकाना पड़ेगा। और हुआ भी वही। १५ करोड़ रुपया भारत से वसूल किया गया, केवल इसलिए कि भारत के हित के लिए ही युद्ध लड़ा गया था। लेकिन वास्तविक हित किसका हुआ इसे हम, आप भले ही न समझें परन्तु भारतेन्दु ने इसे समझा था। उनका निष्कर्ष था—

अंगरेज से अफगान से वह जंग होत है,
अखबार मां लिखा है कि भैया जो है सो है।
कुपा भये हैं फूल के बनियाँ बफर्ते माल,
पेट उनका दमकला है कि भैया जो है सो है॥

वास्तविक लाभ तो उन बनियों को ही हुआ जो इन अवसरों पर वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि करके अपनी तोंद बढ़ा लेते हैं। वैश्य कुल में उत्पन्न भारतेन्दु का साहस लक्ष्य करने योग्य है।

भारतेन्दु की अनेक दुर्बलतायें दिखाई जा सकती हैं। उनका साहित्य सर्वथा निर्दोष कैसे कह दिया जा सकता है? परन्तु एक बात बिना किसी विवाद की आशङ्का के कही जा सकती है कि अपने युग की प्रत्येक घटना के प्रति इतना संवेदनशील साहित्यकार हिन्दी को लगभग दो सौ वर्ष के बाद मिला था। मध्य-युग के सन्तों ने एक बार 'बाणी' को संस्कृत के 'कूपजल' से निकाल जन-भाषा की बहती सरिता में स्नान कराया था और दूसरी बार ब्रजभाषा की प्रवंचनामयी कुहेलिका से मुक्त कर 'खड़ी-बोली' के स्वस्थ वातावरण में साँस लेने की अनुमति उसे भारतेन्दु से प्राप्त हुई। सन्तों ने १६ वीं शती की भारतीय जनता को अपनी बात कह सकने के लिए उसके मुख में जीभ डाल दी थी। परन्तु सामन्ती दमन के द्वारा वह काट ली गई। साहित्यकार जनता के न हो कर राजा के बन गये थे। भारतेन्दु ने दूसरी बार जनता के मुख में वह जबान उत्पन्न करदी जो आज भी अपना प्रभाव दिखा रही है। भारतेन्दु का यही वह रूप है जो आज भी हमारे लिए सम्पूज्य एवं अनुकरणीय है। वे साहित्य की नयी शैली और नये विचार दोनों के जन्मदाता हैं। उनकी आयु यद्यपि बहुत थोड़ी थी परन्तु उनका प्रभाव कुछ ऐसा था कि भारतेन्दु मण्डल का जब तक एक भी लेखक जीवित रहा है तब तक भारतेन्दु का शारीरिक जीवन मानना पड़ेगा। भारतेन्दु और भारतेन्दु-मण्डल परस्पर अविच्छेद्य हैं, प्रत्येक लेखक अपना भिन्न व्यक्तित्व रखते हुए भी उनका अङ्ग बन कर रह गया है। अपने समकालीन लेखकों को इतनी दूर तक प्रभावित करने वाले साहित्यकार प्रत्येक भाषा में एकाध ही होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता

भारतेन्दु-युग

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि एक नयी चेतना से व्याप्त थी। राष्ट्रीयता का भाव उदय हो रहा था, उस भाव को उद्दीप्त करने के लिए विविध संस्थायें स्थापित हो रही थीं। काँग्रेस का जन्म इसी काल में हुआ था। हिन्दी जनभाषा रही है, उसने लोक-हृदय की अभिव्यक्ति सदा की है। भारतेन्दु युग में यह अभिव्यक्ति हमें दो रूपों में मिलती हैं। एक रूप प्राचीन परिपाटी की शृङ्गार रस भीनी कविताओं में है; जो बहुधा व्रजभाषा में हैं। दूसरा रूप नयी उमंगों को लेकर नये भाव और नये चाव से खड़ी-बोली में प्रकट हुआ। इसी दूसरे नये रूप का प्रधान विषय था राष्ट्रीयता का पोषण।

'राष्ट्रीयता' में कई भाव सन्निहित हैं। 'देश-प्रेम' इसका मूलाधार है। देश को, उसके इतिहास को, उसके गौरव को समझना, साथ ही स्वदेश की प्रत्येक वस्तु के लिए प्रेम और गर्व अनुभव करना राष्ट्रीयता के अन्तर्गत आता है। देश की उन्नति के लिए कमर कस कर खड़े हो जाने का उद्बोधन भी इसी भाव का अङ्ग है। गुलाम राष्ट्र के लिए राष्ट्रीयता के भाव में अपने देश की दयनीय दशा के राजनीतिक कारण का भी निर्देश रहता है। राष्ट्र की समग्र इकाई में स्वतंत्रता के भावों का जागरण करना भी इसी के अन्तर्गत है।

भारतेन्दु युग में आरम्भ में ही हमें देश की दुर्दशा पर क्रन्दन मिलता है। स्वयं भारतेन्दुजी ने लोगों को इसके लिए नियंत्रित किया है:—

"रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

कवि का यह रुदन उसकी आत्मा का रुदन है। उसे भारत के पूर्ण गौरव का स्मरण हो आता है, तो उसके भग्न हृदय से यही दर्दभरी कविता निकलती है—

जहँ भये शाक्य हरिचन्दरु नहुष ययाती
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

वर्त्तमान कालीन दुर्दशा का इसी महाकवि ने यह चित्र दिया है:—

"अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री"

कितने सीधे सादे शब्द है, पर इन्होंने 'अँगरेज राज' के सुख-साज के मर्म को खोल कर रख दिया है। भारतेन्दु ने इस प्रकार देश के गौरव की स्मृति जागृत करके, वर्त्तमान दशा के मर्म का उद्घाटन करके केवल 'देश'-प्रेम पैदा नहीं किया, उसने स्पष्ट शब्दों में उद्बोधन द्वारा कुछ करने के लिए सन्नद्ध होने की प्रेरणा भी दी है—

जागो जागो रे भाई

× × ×

अब हूँ चेति पकरि राखौ किन
जो कछु बची बड़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥"—

भारत दुर्दशा का यह रोदन देश के एक कोने से दूसरे कोने तक गूँज गया। सम सामयिक कवियों और लेखकों ने उसी दिन से मानों देश-भक्ति की दीक्षा ली। अब कविता ने रस-रीति-अलङ्कार-जाल की सँकरी गली से निकल कर उन्मुक्त वातावरण में पदार्पण किया। भारत और भारती दोनों के लिये ये बड़े महत्त्व के दिन थे। परम्परागत साहित्यिक मान्यतायें बदलीं, भाव और विचार बदले और भाषा ने भी अपना लचीलापन छोड़कर ओजस्विता को धारण किया। शतियों से बनी बनाई प्रवृत्ति और जन-रुचि को बात की बात में मोड़कर एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख करने में भारतेन्दु की वाणी इतनी प्रभावोत्पादिनी सिद्ध हुई कि देव, बिहारी, मतिराम और पद्माकर को भूलकर लोग इनका पाठ करने लगे। साहित्याकाश में भारतेन्दु का आविर्भाव वस्तुतः एक जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति हुआ; जिसके समक्ष सभी अन्य प्रकाश मन्द पड़ गये।

रीतिकालीन कविता जीवन और जगत् से नितान्त दूर पड़ गई थी। कवियों को इतना अवकाश न था कि वे राजप्रासादों से बाहर निकल कर टूटी झोंपड़ियों की ओर भी दृष्टिपात करते। फिर उन्हें अकाल, महामारी, टिक्स के दुष्परिणाम, अभाव और शासकों के हृदय विदारक अत्याचार कैसे दिखलाई पड़ते।

गाँधी-युग के बहुत पहले ही भारतेन्दु ने गाँवों और किसानों की ओर देखा था। और अंग्रेज शासकों की कूटनीति का उन्हें अच्छी तरह पता था।

"भीतर भीतर सब रस चूसै,
बाहर से तन मन धन मूसै॥
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।"

जनता की दीर्घ-काल से सुषुप्त भावनाओं को जगाने में भारतेन्दु के 'हिन्दी प्रदीप' 'कवि-वचन सुधा' 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' 'सार सुधानिधि' और 'बालबोधिनी' से बड़ी सहायता मिली। समयोपयोगी राजनीतिक और सामाजिक लेखों तथा कविताओं के अतिरिक्त जहाँ-जहाँ और जब-जब अवसर मिला शासकों की नीति का कहीं व्यङ्ग्य और कहीं साधारण रूप से खूब भंडा फोड़ किया गया। संक्षेप में इस युग में कविता का विषय था—'देश' और 'जाति' 'जीवन' और 'जगत्'।

'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'भारत जननी' तथा अन्य कई नाटकों का भी यही विषय है। भारत जननी में भारत-माता कहती हैं—

"बल, कला कौशल, अमित विद्या,
वत्स मेरे नितल हैं।
तजि द्वेष, ईर्ष्या, द्रोह, निन्दा,
देश उन्नति सब चहैं।"

'नीलदेवी' में आये हुए निम्नाङ्कित पद के विषय में आचार्य शुक्लजी लिखते हैं—"राजा सूरजदेव के मारे जाने पर रानी नीलदेवी ने जिस रीति से भगवान को पुकारा है वह कोई नई नहीं है। वह वही रीति है जिससे द्रौपदी ने भगवान को पुकारा था। भेद इतना ही है कि द्रौपदी ने अपनी लज्जा रखने के लिए पुकार मचाई थी, और नीलदेवी ने देश की लज्जा रखने के लिए, देश का सङ्कट दूर करने के लिये पुकारा है :—

"कहाँ करुनानिधि केसव सोये।
जागत नाहिं अनेक जतन करि,
भारतवासी रोये॥"

भारतेन्दु तथा इनके समकालीन साहित्यिकों में त्याग, सेवा और साधना के भाव प्रबल थे। ईमानदारी और निर्भीकता इनके जीवन का सिद्धान्त था। हिन्दी के लिये मेरठ के पं० गौरीदत्त का त्याग हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता

भारतेन्दु-युग

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि एक नयी चेतना से व्याप्त थी। राष्ट्रीयता का भाव उदय हो रहा था, उस भाव को उद्दीप्त करने के लिए विविध संस्थायें स्थापित हो रही थीं। काँग्रेस का जन्म इसी काल में हुआ था। हिन्दी जनभाषा रही है, उसने लोक-हृदय की अभिव्यक्ति सदा की है। भारतेन्दु युग में यह अभिव्यक्ति हमें दो रूपों में मिलती है। एक रूप प्राचीन परिपाटी की शृङ्गार रस भीनी कविताओं में है; जो बहुधा व्रजभाषा में हैं। दूसरा रूप नयी उमंगों को लेकर नये भाव और नये चाव से खड़ी-बोली में प्रकट हुआ। इसी दूसरे नये रूप का प्रधान विषय था राष्ट्रीयता का पोषण।

'राष्ट्रीयता' में कई भाव सन्निहित हैं। 'देश-प्रेम' इसका मूलाधार है। देश को, उसके इतिहास को, उसके गौरव को समझना, साथ ही स्वदेश की प्रत्येक वस्तु के लिए प्रेम और गर्व अनुभव करना राष्ट्रीयता के अन्तर्गत आता है। देश की उन्नति के लिए कमर कस कर खड़े हो जाने का उद्बोधन भी इसी भाव का अङ्ग है। गुलाम राष्ट्र के लिए राष्ट्रीयता के भाव में अपने देश की दयनीय दशा के राजनीतिक कारण का भी निर्देश रहता है। राष्ट्र की समग्र इकाई में स्वतंत्रता के भावों का जागरण करना भी इसी के अन्तर्गत है।

भारतेन्दु युग में आरम्भ में ही हमें देश की दुर्दशा पर क्रन्दन मिलता है। स्वयं भारतेन्दुजी ने लोगों को इसके लिए नियंत्रित किया है:—

"रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

कवि का यह रुदन उसकी आत्मा का रुदन है। उसे भारत के पूर्ण गौरव का स्मरण हो आता है, तो उसके भग्न हृदय से यही दर्दभरी कविता निकलती है—

जहँ भये शाक्य हरिचन्दरु नहुष ययाती
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

वर्त्तमान कालीन दुर्दशा का इसी महाकवि ने यह चित्र दिया है:—

"अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री"

कितने सीधे सादे शब्द है, पर इन्होंने 'अँगरेज राज' के सुख-साज के मर्म को खोल कर रख दिया है। भारतेन्दु ने इस प्रकार देश के गौरव की स्मृति जागृत करके, वर्त्तमान दशा के मर्म का उद्घाटन करके केवल 'देश'-प्रेम पैदा नहीं किया, उसने स्पष्ट शब्दों में उद्बोधन द्वारा कुछ करने के लिए सन्नद्ध होने की प्रेरणा भी दी है—

जागो जागो रे भाई

× × ×

अब हूँ चेति पकरि राखौ किन
जो कछु बची बड़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके ऊपर टिक्स की आफत आई।
हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥"—

भारत दुर्दशा का यह रोदन देश के एक कोने से दूसरे कोने तक गूँज गया। सम सामयिक कवियों और लेखकों ने उसी दिन से मानों देश-भक्ति की दीक्षा ली। अब कविता ने रस-रीति-अलङ्कार-जाल की सँकरी गली से निकल कर उन्मुक्त वातावरण में पदार्पण किया। भारत और भारती दोनों के लिये ये बड़े महत्त्व के दिन थे। परम्परागत साहित्यिक मान्यतायें बदलीं, भाव और विचार बदले और भाषा ने भी अपना लचीलापन छोड़कर ओजस्विता को धारण किया। शतियों से बनी बनाई प्रवृत्ति और जन-रुचि को बात की बात में मोड़कर एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख करने में भारतेन्दु की वाणी इतनी प्रभावोत्पादिनी सिद्ध हुई कि देव, बिहारी, मतिराम और पद्माकर को भूलकर लोग इनका पाठ करने लगे। साहित्याकाश में भारतेन्दु का आविर्भाव वस्तुतः एक जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति हुआ; जिसके समक्ष सभी अन्य प्रकाश मन्द पड़ गये।

रीतिकालीन कविता जीवन और जगत् से नितान्त दूर पड़ गई थी। कवियों को इतना अवकाश न था कि वे राजप्रासादों से बाहर निकल कर टूटी झोंपड़ियों की ओर भी दृष्टिपात करते। फिर उन्हें अकाल, महामारी, टिक्स के दुष्परिणाम, अभाव और शासकों के हृदय विदारक अत्याचार कैसे दिखलाई पड़ते।

गाँधी-युग के बहुत पहले ही भारतेन्दु ने गाँवों और किसानों की ओर देखा था। और अंग्रेज शासकों की कूटनीति का उन्हें अच्छी तरह पता था।

"भीतर भीतर सब रस चूसै,
बाहर से तन मन धन मूसै॥
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज!"

जनता की दीर्घ-काल से सुषुप्त भावनाओं को जगाने में भारतेन्दु के 'हिन्दी प्रदीप' 'कवि-वचन सुधा' 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' 'सार सुधानिधि' और 'बालबोधिनी' से बड़ी सहायता मिली। समयोपयोगी राजनीतिक और सामाजिक लेखों तथा कविताओं के अतिरिक्त जहाँ-जहाँ और जब-जब अवसर मिला शासकों की नीति का कहीं व्यङ्ग्य और कहीं साधारण रूप से खूब भंडा फोड़ किया गया। संक्षेप में इस युग में कविता का विषय था—'देश' और 'जाति' 'जीवन' और 'जगत्'।

'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'भारत जननी' तथा अन्य कई नाटकों का भी यही विषय है। भारत जननी में भारत-माता कहती हैं—

"बल, कला कौशल, अमित बिद्या,
वत्स मेरे नितल हैं।
तजि द्वेष, ईर्ष्या, द्रोह, निन्दा,
देश उन्नति सब चहैं।"

'नीलदेवी' में आये हुए निम्नाङ्कित पद के विषय में आचार्य शुक्लजी लिखते हैं—"राजा सूरजदेव के मारे जाने पर रानी नीलदेवी ने जिस रीति से भगवान को पुकारा है वह कोई नई नहीं है। वह वही रीति है जिससे द्रौपदी ने भगवान को पुकारा था। भेद इतना ही है कि द्रौपदी ने अपनी लज्जा रखने के लिए पुकार मचाई थी, और नीलदेवी ने देश की लज्जा रखने के लिए, देश का सङ्कट दूर करने के लिये पुकारा है :—

"कहाँ करुनानिधि केसव सोये।
जागत नाहिं अनेक जतन करि,
भारतवासी रोये॥"

भारतेन्दु तथा इनके समकालीन साहित्यिकों में त्याग, सेवा और साधना के भाव प्रबल थे। ईमानदारी और निर्भीकता इनके जीवन का सिद्धान्त था। हिन्दी के लिये मेरठ के पं० गौरीदत्त का त्याग हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर धरोहर के रूप में अङ्कित रहेगा। इस युग के साहित्य में गदाधरसिंह की पुस्तक 'चीन में तेरह मास' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल के लेखकों में सर्वश्री प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ, श्रीनिवासदास इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में जिसे हम प्रगतिवाद और यथार्थवाद कहते हैं; यह भी तो भारतेन्दु-युग की देन है। भारतेन्दु का जन-साहित्य प्रगति और यथार्थ से भिन्न और कोई वस्तु न था। यदि वर्तमान छायावादी कविता का मूल अभाव में मानना ठीक है तो यह कहा जा सकता है कि पहले-पहल भारतेन्दु ही ने इस अभाव की ओर चक्षुपात किया। और आदर्शवाद के तो वे पुजारी थे ही। यदि ऐसा न होता तो अधोगति का चित्र अङ्कित कर वे फिर प्राचीन गौरव की ओर न जाते और न चित्तौर तथा पानीपत का स्मरण ही करते।

परवर्ती कलाकारों पर भारतेन्दु-युग का इतना प्रभाव पड़ा कि हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रीयता का स्थान प्रमुख होगया। और आज तो कोई ऐसा उच्चकोटि का कवि नहीं जिसकी कविता राष्ट्रीय-भावनाओं से शून्य हो। वर्तमान युग के श्रेष्ठ राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरणजी ने तो—जिनकी 'भारत भारती' ने राष्ट्रीय जागरण का सक्रिय उद्घोष किया स्पष्ट कह दिया है—

"जातीय जीवन की झलक,
जिसमें कभी आई नहीं।
वह व्यर्थ ही जन्मा,
जगाया देश को जिसने नहीं॥"

भारतेन्दु के प्रसाद से आज हिन्दी में सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, 'नवीन', 'एक भारतीय आत्मा' और 'दिनकर' जैसे उच्चकोटि के राष्ट्रीय कवि वर्तमान हैं।

(पृष्ठ १३१ का शेष)

अपने पास से चलाते रहे। इन्होंने 'कविता-वर्द्धिनी सभा' स्थापित की थी, जिसमें तत्कालीन प्रायः सभी सुकवि-गण का सहयोग था। कवि समाज तथा मुशायरे भी हुआ करते थे। 'पेनी रीडिंग क्लब' स्थापित किया था, जिसमें लेख पढ़े जाते थे। धर्म तथा ईश्वर-भक्ति के प्रसाद के लिए 'तदीय समाज' बनाया जिसमें गीता, भागवत आदि के पाठ होते, हरिकीर्तन होता, गोवध, मदिरामांस सेवन आदि को रोकने का प्रयत्न किया जाता, देशी वस्तु व्यवहार करने की प्रतिज्ञा कराई जाती तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य होते थे। यंगमेन्स एसोसियेशन, डिबेटिंग क्लब आदि खोले थे।

इस प्रकार भारतेन्दुजी अपना यह छोटा सा जीवन सुख-दुःख को समान समझते हुए देश के लिए, हिन्दी के लिये या कुछ लोगों के अनुसार अपने लिए व्यतीत कर माघ वदी ६ सं० १९४७ वि० (६ जनवरी सन् १८८५ ई०) को परलोक सिधार गये। संतति के नाते वह अपनी एक मात्र पुत्री को छोड़ गये, जिनके आगे वंश चल रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की समन्वय-साधना

प्रो० वासुदेव नन्दन प्रसाद एम० ए०

युग की आवश्यकताएँ महापुरुषों, महाकवियों और दार्शनिकों को जन्म देती रही हैं। विशेषतः इनका जन्म किसी भी देश के संक्रान्ति-काल में ही होता है। भारतेन्दु का जन्म भारतीय इतिहास के संधि-काल में हुआ था जबकि देश पर अँग्रेजों का शासन काफी दृढ़ हो चुका था। संधि-काल सङ्कट-काल का पर्यायवाची होता है। इस काल में नये और पुराने विचारों में टकराहट होती है। देश के इतिहास में नये विचारों का आविर्भाव या तो शासन-सत्ता के बदल जाने पर होता है या किसी महान् पुरुष के जन्म लेने पर। १८६७ ई० में जब भारतेन्दु ने अपनी कलम सँभाली, तब तक देश पर अँग्रेजों का शासन दृढ़तापूर्वक चल चुका था। भारतीय इतिहास की १६ वीं शताब्दी भारतीयों के लिए नव-जागरण का संदेश लेकर आयी। देश के कोने-कोने में विदेशी सत्ता से भारतीय समाज की रक्षा के लिए क्रान्तिकारी विचारों की लहर फैलने लगी। एक ओर जहाँ दक्षिण में डा० भांडारकर और रानाडे जैसे महापुरुषों ने बम्बई में 'प्रार्थना-समाज' की स्थापना कर भारतीय समाज को पश्चिमी नास्तिकता और पाखंड से बचाने का सतत् प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी ओर बंगाल में राजा राममोहनराय ने 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना करके बंगाल की भोली भाली जनता को गिरजाघरों के रखवाले पादरियों से दीक्षित होने से बचा लिया। एक ओर जहाँ पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द ने भारतीय जनता की बहुत बड़ी संख्या को इस्लाम ग्रहण करने से रोका तो दूसरी ओर महाराष्ट्र में भगवान तिलक ने तत्कालीन जनता की नस-नस में भगवान् श्रीकृष्ण की 'गीता' के उपदेशों को प्रविष्ट किया। देश की उसी संकट-कालीन परिस्थिति में, जबकि चारों ओर से भारतीय समाज पर अँग्रेजों और इस्लाम का प्रहार हो रहा था और भारतीय संस्कृति खतरे में पड़ी थी, भारतेन्दु का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने उपर्युक्त महापुरुषों से भिन्न अपना पथ प्रशस्त किया। इनका जन्म हिन्दी प्रदेश के किसी एक भाग (काशी) में हुआ था। यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दी-प्रदेश की ऐतिहासिक तथा सामाजिक समस्याएँ अन्य भारतीय प्रान्तों से भिन्न रही हैं। हिन्दी-प्रदेश की मिट्टी और हवा में कुछ ऐसा असर है कि उस भू-भाग में जन्म लेने वाले महापुरुषों, महाकवियों और दार्शनिकों की धर्म-चेतना उग्र न होकर उदार ही रही है। उनकी समन्वयशील बुद्धि समाज या देश के अन्तर-प्रदेश में ही अशान्ति और क्रान्ति का भाव भरने में समर्थ हुई है। महावीर, बुद्ध से लेकर जयशङ्कर, प्रसाद, दिनकर, तक सभी कवियों, दार्शनिकों और समाज-सेवियों ने मानव-हृदय को ही परिष्कृत करने का प्रयत्न किया है। सतह का सुधार करने की अपेक्षा इन लोगों ने जड़ का ही उच्छेदन कर देना चाहा। १६वी शताब्दी में जितने धर्म-प्राण चेता, महान् व्यक्तियों का जन्म हुआ, उनमें लगभग सभी ने तत्कालीन भारतीय जीवन की ऊपरी सतह पर ही दृष्टि रखी, उनमें से ऐसे कम ही लोग हुए जिनकी अन्तर्दृष्टि तत्कालीन समाज की समस्या के अन्तर में पैठी। उनके आदर्श भी एकांगी ही रहे। उनका एक ही लक्ष्य था। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी एकांगी दृष्टि और एक लक्ष्य ने भारतीय जीवन में आशातीत परिवर्तन लाया। लेकिन जिस समन्वय-चेतना की उस समय आवश्यकता थी, उसका उनमें अभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर घटना के रूप में अङ्कित रहेगा। इस युग के साहित्य में गदाधरसिंह की पुस्तक 'चीन में तेरह मास' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल के लेखकों में सर्वश्री प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधन, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ, श्रीनिवासदास इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में जिसे हम प्रगतिवाद और यथार्थवाद कहते हैं; यह भी तो भारतेन्दु-युग की देन है। भारतेन्दु का जन-साहित्य प्रगति और यथार्थ से भिन्न और कोई वस्तु न था। यदि वर्तमान छायावादी कविता का मूल अभाव में मानना ठीक है तो यह कहा जा सकता है कि पहले-पहल भारतेन्दु ही ने इस अभाव की ओर चक्षुपात किया। और आदर्शवाद के तो वे पुजारी थे ही। यदि ऐसा न होता तो अधोगति का चित्र अङ्कित कर वे फिर प्राचीन गौरव की ओर न जाते और न चित्तौर तथा पानीपत का स्मरण ही करते।

परवर्ती कलाकारों पर भारतेन्दु-युग का इतना प्रभाव पड़ा कि हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रीयता का स्थान प्रमुख होगया। और आज तो कोई ऐसा उच्चकोटि का कवि नहीं जिसकी कविता राष्ट्रीय-भावनाओं से शून्य हो। वर्तमान युग के श्रेष्ठ राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरणजी ने तो—जिनकी 'भारत भारती' ने राष्ट्रीय जागरण का सक्रिय उद्घोष किया स्पष्ट कह दिया है—

"जातीय जीवन की झलक,
जिसमें कभी आई नहीं।
वह व्यर्थ ही जन्मा,
जगाया देश को जिसने नहीं॥"

भारतेन्दु के प्रसाद से आज हिन्दी में सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, 'नवीन', 'एक भारतीय आत्मा' और 'दिनकर' जैसे उच्चकोटि के राष्ट्रीय कवि वर्तमान हैं।

(पृष्ठ १३१ का शेष)

अपने पास से चलाते रहे। इन्होंने 'कविता-वर्द्धिनी सभा' स्थापित की थी, जिसमें तत्कालीन प्रायः सभी सुकवि-गण का सहयोग था। कवि समाज तथा मुशायरे भी हुआ करते थे। 'पेनी रीडिंग क्लब' स्थापित किया था, जिसमें लेख पढ़े जाते थे। धर्म तथा ईश्वर-भक्ति के प्रसाद के लिए 'तदीय समाज' बनाया जिसमें गीता, भागवत आदि के पाठ होते, हरिकीर्तन होता, गोबध, मदिरामांस सेवन आदि को रोकने का प्रयत्न किया जाता, देशी वस्तु व्यवहार करने की प्रतिज्ञा कराई जाती तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य होते थे। यंगमेन्स एसोसियेशन, डिवेटिंग क्लब आदि खोले थे।

इस प्रकार भारतेन्दुजी अपना यह छोटा सा जीवन सुख-दुःख को समान समझते हुए देश के लिए, हिन्दी के लिये या कुछ लोगों के अनुसार अपने लिए व्यतीत कर माघ वदी ६ सं० १९४७ वि० (६ जनवरी सन् १८८५ ई०) को परलोक सिधार गये। संतति के नाते वह अपनी एक मात्र पुत्री को छोड़ गये, जिनके आगे वंश चल रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की समन्वय-साधना

प्रो० वासुदेव नन्दन प्रसाद एम० ए०

युग की आवश्यकताएँ महापुरुषों, महाकवियों और दार्शनिकों को जन्म देती रही हैं। विशेषतः इनका जन्म किसी भी देश के संक्रान्ति-काल में ही होता है। भारतेन्दु का जन्म भारतीय इतिहास के संधि-काल में हुआ था जबकि देश पर अँग्रेजों का शासन काफी दृढ़ हो चुका था। संधि-काल सङ्कट-काल का पर्यायवाची होता है। इस काल में नये और पुराने विचारों में टकराहट होती है। देश के इतिहास में नये विचारों का आविर्भाव या तो शासन-सत्ता के बदल जाने पर होता है या किसी महान् पुरुष के जन्म लेने पर। १८६७ ई० में जब भारतेन्दु ने अपनी कलम सँभाली, तब तक देश पर अँग्रेजों का शासन दृढ़तापूर्वक चल चुका था। भारतीय इतिहास की १९ वीं शताब्दी भारतीयों के लिए नव-जागरण का संदेश लेकर आयी। देश के कोने-कोने में विदेशी सत्ता से भारतीय समाज की रक्षा के लिए क्रान्तिकारी विचारों की लहर फैलने लगी। एक ओर जहाँ दक्षिण में डा० भांडारकर और रानाडे जैसे महापुरुषों ने बम्बई में 'प्रार्थना-समाज' की स्थापना कर भारतीय समाज को पश्चिमी नास्तिकता और पाखंड से बचाने का सतत् प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी ओर बंगाल में राजा राममोहनराय ने 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना करके बंगाल की भोली भाली जनता को गिरजाघरों के रखवाले पादरियों से दीक्षित होने से बचा लिया। एक ओर जहाँ पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द ने भारतीय जनता की बहुत बड़ी संख्या को इस्लाम ग्रहण करने से रोका तो दूसरी ओर महाराष्ट्र में भगवान तिलक ने तत्कालीन जनता की नस-नस में भगवान् श्रीकृष्ण की 'गीता' के उपदेशों को प्रविष्ट किया। देश की उसी संकट-कालीन परिस्थिति में, जबकि चारों ओर से भारतीय समाज पर अँग्रेजों और इस्लाम का प्रहार हो रहा था और भारतीय संस्कृति खतरे में पड़ी थी, भारतेन्दु का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने उपर्युक्त महापुरुषों से भिन्न अपना पथ प्रशस्त किया। इनका जन्म हिन्दी प्रदेश के किसी एक भाग (काशी) में हुआ था। यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दी-प्रदेश की ऐतिहासिक तथा सामाजिक समस्याएँ अन्य भारतीय प्रान्तों से भिन्न रही हैं। हिन्दी-प्रदेश की मिट्टी और हवा में कुछ ऐसा असर है कि उस भू-भाग में जन्म लेने वाले महापुरुषों, महाकवियों और दार्शनिकों की धर्म-चेतना उग्र न होकर उदार ही रही है। उनकी समन्वयशील बुद्धि समाज या देश के अन्तर-प्रदेश में ही अशान्ति और क्रान्ति का भाव भरने में समर्थ हुई है। महावीर, बुद्ध से लेकर जयशङ्कर, प्रसाद, दिनकर, तक सभी कवियों, दार्शनिकों और समाज-सेवियों ने मानव-हृदय को ही परिष्कृत करने का प्रयत्न किया है। सतह का सुधार करने की अपेक्षा इन लोगों ने जड़ का ही उच्छेदन कर देना चाहा। १९वी शताब्दी में जितने धर्म-प्राणचेता, महान् व्यक्तियों का जन्म हुआ, उनमें लगभग सभी ने तत्कालीन भारतीय जीवन की ऊपरी सतह पर ही दृष्टि रखी, उनमें से ऐसे कम ही लोग हुए जिनकी अन्तर्दृष्टि तत्कालीन समाज की समस्या के अन्तर में पैठी। उनके आदर्श भी एकांगी ही रहे। उनका एक ही लक्ष्य था। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी एकांगी दृष्टि और एक लक्ष्य ने भारतीय जीवन में आशातीत परिवर्तन लाया। लेकिन जिस समन्वय-चेतना की उस समय आवश्यकता थी, उसका उनमें अभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही था। हिन्दी-प्रदेश में जन्म लेने के कारण भारतेन्दु की धर्म-चेतना समन्वयशील है। उन्होंने अपनी सामञ्जस्य-बुद्धि से वह काम किया जो एक व्यक्ति से होना असंभव था। वे यदि महान और अविस्मरणीय हैं तो इसलिये कि वे अपनी समन्वय-दृष्टि से तत्कालीन देश और समाज की सही समस्या को अच्छी तरह समझ सकने में समर्थ हो सके थे। उस समय देश बहुरंगी समस्याओं से आक्रान्त था। उसकी समस्या सामाजिक ही नहीं, राष्ट्रीय भी थी; धार्मिक ही नहीं, साहित्यिक भी थी आर्थिक ही नहीं, सांस्कृतिक भी थी। भारतेन्दु ने इन विविध समस्याओं का अध्ययन बड़े निकट से किया था। इसी निकट अनुशीलन का परिणाम उनका विविध दृष्टिकोणी साहित्य है।

भारतेन्दु ने अपनी समन्वय-साधना से यह कहावत सिद्ध कर दी कि 'साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।' 'साँप को मारने के लिये लाठी न टूटे'—एक भयङ्कर असङ्गति है। महापुरुष के कार्यों में असङ्गतियाँ होती ही हैं क्योंकि वह समन्वयशील होता है। भारतेन्दु के कार्यों में भी यह असङ्गति खटकती है। उनकी राजभक्ति और देश-भक्ति साथ-साथ चलती है—क्या यह उनकी भयङ्कर असङ्गति नहीं है? इस असङ्गति का कारण ढूँढ़ना होगा कि भारतेन्दु के व्यक्तित्व में यह दुहरापन क्यों है। जहाँ एक ओर वे सूर और तुलसी की परम्परा-रेखा पर चलते दिखलाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर वे बिहारी और पद्माकर की पाँति में बैठे हुये। उनमें यह दुहरा व्यक्तित्व क्यों है? ऊपर मैं कह चुका हूँ कि महापुरुषों के कार्य-कलापों में असङ्गतियों का होना स्वाभाविक ही है क्योंकि वह समन्वयशील है और समन्वय सङ्घर्ष का पथ न हो कर समझौते का रास्ता होता है। और समझौता मध्यम मार्ग है। मध्यम मार्ग के अनुसरण-कर्ताओं का मन मस्तिष्क सन्तुलित और संयमित होता है। उनमें प्राचीन और नवीन का अद्भुत सम्मिलन होता है। अतः समन्वय-साधना का उपासक वही हो सकता है जो समझौते, संयम, सन्तुलन आदि का पोषक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में ये गुण सहज ही उपलब्ध होते हैं।

युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही महापुरुषों को अपने जीवन का निश्चित सिद्धान्त स्थिर करना पड़ता है। भारतीय साहित्य के इतिहास में बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, तुलसी, प्रसाद आदि जितने महाप्राण कवि हुये उन सबकी चेतना समन्वय-भावना से ओत-प्रोत है—उग्र और उदार विचारों का अद्भुत सम्मिलन उनके साहित्य में हुआ है। किसी भी अवस्था में परम्परा-प्रेम को भुलाया नहीं जा सकता। उसकी ही नींव पर आधुनिकता का भवन खड़ा किया जाता है। भारतेन्दु भी उसी भारतीय कवि-परम्परा के महाप्राण कवि हैं जिन्होंने अपने युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं पर सदैव ध्यान रखा और उन्हीं के अनुकूल अपने साहित्य का सृजन किया। उनका युग विरोधी विचारों का संघर्षकाल था। लोग अपनी-अपनी ढफली और अपना-अपना राग अलाप रहे थे। देश में नवीन और प्राचीन शक्तियों के बीच खींचतान चल रही थी। हिन्दू और मुसलमानों का आपसी द्वेष-भाव तो बहुत पहले से ही चला आ रहा था, अंग्रेजों के आने पर यह द्वेषाग्नि की चिनगारी, जो राख के नीचे दबी थी, विस्फोट करने लगी। देश पर अंग्रेजों का प्रभुत्व दृढ़ हो जाने से देश की संस्कृति और सभ्यता खतरे में पड़ी थी। हिन्दू और मुसलमानों दोनों का पतन हो चुका था। दोनों की शक्तियाँ नष्ट-विनष्ट हो चुकी थीं। दोनों ने अपने नेताओं को खो दिया था। किसी का कोई नेता न था। देश की जीवन-नैया, बिना पतवार के, राजनीति की धारा में डूब-उतरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी। ऐसी अवस्था में 'कलियुग के कन्हैया' भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उसकी रक्षा के लिये अपने हाथ बढ़ाये। तत्कालीन देश की जर्जर अवस्था में यदि किसी सोसलिस्ट या कम्यूनिष्ट पार्टी (जो यूरोप में अपनी बाल्यावस्था में ही थी) जैसी शक्तियों का जन्म हुआ होता तो निस्संदेह वे अंग्रेजों के पाद-प्रहार से कभी ही समूल नष्ट हो गयी होती। वैसी स्थिति में उग्र विचार वाली किसी भी पार्टी की आवश्यकता थी ही नहीं। देश की नाजुक स्थिति को समझकर ही भारतेन्दु ने समन्वय का पथ अख्तियार किया। ऐसी बात नहीं है कि उनमें वह जोश, वह गर्मी और क्रान्तिकारी विचारों का अभाव था जो कई सौ वर्ष पहले कवि चन्द में पाये गये थे। कवि चन्द का आविर्भाव भी भारतीय जीवन के संक्रान्ति-काल में हुआ था लेकिन अत्यधिक एकाङ्गी हिन्दू-भावना के कारण, सागर में बुद्बुद् की तरह, वह भी अपने युग-सागर में सदा के लिये विलीन हो गया। कबीर भी सन्धिकालीन महापुरुष थे। आज वे साधक का अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। क्योंकि उनमें समन्वय-बुद्धि का अभाव नहीं था। तुलसी भी समन्वयवादी थे। भूषण में भी समन्वय-चेतना अवश्य थी लेकिन उनकी अतिशय वीर-पूजा की भावना ने उनकी चेतना को शक्तिहीन कर दिया था। लगभग तीन सौ वर्षों के बाद भारतेन्दु ही एक ऐसे समन्वयवादी सुलेखक हुये जिन्होंने देश की विविध समस्याओं को ध्यान में रख कर अपने लिए स्वतन्त्र पथ का निर्माण किया जिस पर किसी भी बाहरी सत्ता का अंकुश नहीं था। यदि भारतेन्दु के विचार, उनकी मान्यताएँ तथा धारणाएँ देश की परम्परा की विरोधिनी होतीं, उनकी दृष्टि केवल वर्तमान पर ही होती, साम्प्रदायिकता के सङ्घर्ष में लगी होती तो वे निश्चय ही इतिहास के शव-पात्र बने होते और आज हम उनके नाम पर जो प्रतिवर्ष जयन्तियाँ मनाते हैं, न मनाते।

भारतेन्दु की महानता इसी समन्वय-बुद्धि-चेतना में है। लक्ष्मी और सरस्वती से समन्वित जिस परिवार में उनका जन्म हुआ था, वह उनके विचार-धारा के पोषण में अधिक सहायक सिद्ध हुआ। उनके साहित्य में हिन्दी साहित्य के समस्त युग आकर साकार हो गये हैं। उन्होंने भक्ति-युग, रीति-युग, वीर गाथा-युग और आधुनिक-युग—सबको एक ही भाव-भूमि पर लाकर खड़ा किया। क्योंकि उनके युग में इन समस्त भावनाओं के बीच सङ्घर्ष चल रहा था। यही कारण है कि भारतेन्दु साहित्य में भक्ति, शृङ्गार और देश-प्रेम का अद्भुत समन्वय पाया जाता है। साहित्य और जीवन का समन्वय उन्होंने देश और समाज के हित को ध्यान में रखकर ही किया था।

कुछ लोगों को भारतेन्दु की राजभक्ति और देशभक्ति में भयङ्कर असङ्गति दिखलाई पड़ती है। ऊपर से देखने पर यह सचमुच एक असङ्गति है परन्तु यदि तत्कालीन युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रख कर भारतेन्दु साहित्य की इस असंगति की परीक्षा की जाये तो उनकी यह असंगति युक्ति-संगत ही सिद्ध होगी। भारतेन्दु का समन्वय युग की माँग था। डा० वार्ष्णेय ने भारतेन्दु-युग के साहित्यिकों की राजभक्ति का उल्लेख करते हुए उन्हें उत्तम-वर्ग (aristocratic class) और उच्च मध्यम वर्ग का बतलाया है। उस युग के लेखकों की राजभक्ति 'राजनीतिक-भय' के कारण थी। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि भारतेन्दु में भी 'राजनीतिक भय' (अँग्रेजों का आतंक-भय) होता तो उनकी कलम से इस तरह के व्यंग-बाण की झड़ी नहीं फूटती—

शस्त्र और मुद्रण विषय करी तिनहुँ को रोक।
बढ़ै ब्रिटिश वाणिज्य पै हमको केवल सोक।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर-भीतर सब रस चूसै ।
हँसि हँसि के तन मन धन भूसै,
जाहिर बातिन में अति तेज ।
कह सखि साजन ना अंग्रेज ॥

इनके अतिरिक्त, 'सर्वसु लिये जात अंग्रेज' जैसी पंक्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि भारतेन्दु शासन-सत्ता के दण्ड-भय से चुपचाप हाथ-पर-हाथ धरे बैठे नहीं रहे। उन्होंने अँग्रेजों की झूठी प्रतिज्ञा (विक्टोरिया की घोषणा) पर व्यंग-बाण छोड़े हैं। डा० रामविलास शर्मा का ठीक ही कहना है कि भारतेन्दु की 'राजभक्ति का कारण झूठे वादे थे, लेकिन उस मरीचिका को भंग होने में देर न लगी थी।' भारतेन्दु की राष्ट्रीय रचनाओं का ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि उनकी राजभक्ति और देशभक्ति दो भिन्न समयों की प्रेरणा में पली हैं। यह असंगति ऊपरी है, आन्तरिक नहीं।

भारतेन्दु की समन्वय-साधना उनके युग की माँग थी। काँग्रेस महासभा के जन्म लेने के पहले ही भारतेन्दु ने अपनी उदार दृष्टि अपना कर देश की राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति आदि का नेतृत्व किया था और देश की गिरती हुई अवस्था में सुधार लाने का अथक प्रयत्न किया था। यदि ऐसे युग-नेता और युग-पुरुष के नाम पर हम सड़कों के चौराहों पर स्कूल और कालेजों में स्मारक, स्तंभ या मूर्ति निर्माण की आयोजना, आज स्वतंत्र होकर भी नहीं करते, तो यह हमारे लिये शर्म की बात है।

श्रद्धाञ्जलि

आज हम भारतेन्दु शती मना रहे हैं। आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता, खड़ी बोली के जनक श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी की जन्मशती! हिन्दी की उस महान् तथा चिर-स्मरणीय प्रतिभा के चरणों में आज शत सहस्र हृदय अपने स्नेह के सुमनों की श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं!

यह सोच कर आज आश्चर्य तथा हर्ष होता है कि आज से सौ वर्ष पहिले हमारे देश में जो एक नवीन जागरण आरम्भ हुआ था उसे वाणी देने के लिए एक प्रतिभा का भी जन्म होगया था। हमारे देश का सदियों से पराधीन तथा पराजित जीवन जैसे ही अपने पाँवों पर खड़ा होने लगा उसे अपनी प्रगति के लिए खड़ी बोली का भी वाहन प्राप्त हो गया! आज के युग में अगर हम किसी शक्ति की प्रेरणा द्वारा एकता, बल तथा सङ्गठन प्राप्त कर सकते हैं तो वह शक्ति निस्सन्देह, भाषा है जिसके द्वारा हमें अपने देश के, अपने युग के तथा अपने चारों ओर के विश्वजीवन को जानना, सँवारना तथा सङ्गठित करना है! हिन्दी को इस युग में केवल राजभाषा, राष्ट्रभाषा ही नहीं बनना है, उसे हमारे जीवन-सङ्घर्ष की पुकार, हृदय की पुकार, आत्मा की पुकार तथा नवीन मानवता की पुकार बनना है!

ऐसी अमोघ शक्ति का सञ्चार जिस कलाकार की कला कुशल अंगुलियों द्वारा एक शताब्दि पूर्व हमारे प्राणों में हुआ, उस महापुरुष का प्रेम-पूर्वक स्मरण करना आज हमारे लिए स्वाभाविक ही है! भारतेन्दु जिस अग्निपुरोह को, जिस स्वर्ग की टहनी को हमारी मनोभूमि में रोप गए हैं, वह हमारे मन तथा हृदय की साधना के रक्त से सिञ्चित होकर उत्तरोत्तर हमारे देश के जीवन-पादप के रूप में पुष्पित पल्लवित तथा विकसित हो सकेगी, और विश्व भर में एक नवीन मनुष्यता का गौरव-संचार कर सकेगी—यही हमारी एकान्त कामना, आशा तथा विश्वास है।

—सुमित्रानंदन पंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की नाट्य-कला

डा० सोमनाथ गुप्त

भारतेन्दु-युग (सन् १८५०-१९०० ई०) हिन्दी साहित्य जगत में एक विशेष स्थान रखता है। शताब्दियों से पराजित भारतवर्ष अपने नये मालिकों की राज्य-व्यवस्था और आचार विचार नीति से प्रभावित होता जा रहा था। सात-समन्दर पार से आनेवाली यह पश्चिमीय विचार धारा हमारे समाज और व्यक्तियों में एक नूतन संघर्ष का श्रीगणेश कर चुकी थी। भारत में ही जन्म लेने वाले अनेक आन्दोलनों ने —राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक— देशवासियों को सचेत करना आरम्भ कर दिया था। और भारतीयता का यह बीजारोपण अंकुरित भी हो उठा था।

इसी परिस्थिति में बाबा विश्वनाथ की नगरी में भारतेन्दु द्वारा शङ्खनाद हुआ। यद्यपि भारतेन्दु का जीवनकाल बहुत कम रहा परन्तु इस ३५ वर्ष के अल्पकाल में उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने हिन्दी-साहित्य की काया पलट कर दी।

भारतेन्दु के पहिले हिन्दी का नाटक-साहित्य प्रायः नगण्य था। मौलिक नाटकों में रीवां नरेश महाराज विश्वनाथसिंहजी का 'आनन्द रघुनन्दन' और गिरधरदासजी का 'नहुष', अनुवादों में जसवन्तसिंह का 'चन्द्रोदय' एवं राजा लक्ष्मणसिंह जी का 'शकुन्तला' प्रमुख थे। शेष नाटक साहित्य अधिकतर नाटकीय कविता के रूप में आख्यान मात्र था। अतएव स्पष्ट है कि भारतेन्दु के सामने नाटक साहित्य सम्बन्धी कोई आदर्श उनकी भाषा में प्रस्तुत नहीं था। जो कुछ था वह इतना थोड़ा था कि उसके आधार पर आगे बढ़ना असम्भव था।

भारतेन्दु को इस बीहड़ बन में स्वयं अपने आप अपना मार्ग प्रशस्त करना पड़ा। यह कार्य भारतेन्दु ने अनुवादों से, रूपान्तरित नाटकों की रचना द्वारा तथा मौलिक नाटक लिखकर सम्पन्न किया। यदि विश्लेषण करके देखा जाय तो पता लगेगा कि भारतेन्दु से ६ मौलिक नाटक लिखे— प्रेम-जोगिनी (सन् १८७५), चन्द्रावली (१८७६), भारत-जननी (१८७७), भारत-दुर्दशा (१८८०), नीलदेवी (१८८१) और सती-प्रताप (१८८३)।

यदि जीवन का यथार्थ चित्रण नाटक में कुछ महत्व रखता है तो वह इन नाटकों में वर्तमान है। प्रेम-जोगिनी का विषय काशी की जीवन-चर्चा का एक रूप है। काशी के पण्डे, दलाल और महा-राष्ट्रीय विद्वान किस प्रकार, अपने अपने क्षेत्र में, व्यवहार करते हैं और अपनी एक पुकार से 'पारिभाषिक भाषा' में किस प्रकार अपने मन्तव्य को स्पष्ट कर कार्य-कुशलता का परिचय देते हैं—ये सब जीते जागते चित्र प्रेमजोगिनी में हैं। यद्यपि यह अपूर्ण नाटिका है परन्तु प्रभाव ऐक्य, घटना-समन्वय, और सजीवता की दृष्टि से किसी भी भाषा के नाटक से टक्कर ले सकती है। यदि यहाँ तक कह दें कि आधुनिक अंगरेजी का वास्तविकवाद (Realism) हिन्दी नाटक-साहित्य में प्रेम-जोगिनी में ही प्रारम्भ होता है तो कोई अत्युक्ति नहीं है। प्रेमजोगिनी, कार्य-व्यापार की तीव्रता, कथोपकथन की सफलता और हिन्दी गद्य की क्षमता का स्वतः प्रमाण है। चार दृश्यों का यह नाटक भारतेन्दु की नाट्य-कला का चलता-फिरता चित्र है। 'भारत-दुर्दशा' में भारतेन्दु ने राजनीतिक वातावरण को नाटकीय रूप देने का सफल प्रयास किया है। इसमें यथार्थ परिस्थिति का वर्णन है, कारणों की ओर संकेत है और वर्तमान अवस्था पर व्यंग्य भी है तथा उसके द्वारा राष्ट्रीय-चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रेरणा भी। इस नाटक की भाषा और शैली 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की तरह सांकेतिक है। भारत, भारत-दुर्दैव, भारत-दुर्दशा, सत्यानाश, निर्लज्जता, मदिरा, अन्धकार, रोग आदि पात्रों के मानवीकरण से नाटक प्रभावशाली और रुचिकर बन गया है। 'नीलदेवी' एक वियोगान्त नाटक है और आजकल की भाषा में उसे दुखान्त (Tragedy) कह सकते हैं। यद्यपि भारतेन्दु 'सुखान्त' और 'दुखान्त' के पद की व्याख्या स्पष्ट रूप से नहीं कर पाये हैं परन्तु शेक्सपियर-युग की जो भावना 'सुखान्त' और 'दुखान्त' विषयक है, वही उनकी भी प्रतीत होती है। नाट्यकला की दृष्टि से 'नीलदेवी' चोटी की रचनाओं में स्थान नहीं पा सकती परन्तु भारतीय-ललनाओं को साहस का सन्देश देने के लिए जो उसकी रचना हुई उस उद्देश्य से वह अवश्य सफल कही जा सकती है।

अपनी अन्य मौलिक रचनाओं-प्रहसनों में भी भारतेन्दु को आशातीत सफलता मिली। 'अन्धेर-नगरी' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'—दोनों अपने-अपने विषय के सफल व्यंग्य हैं।

अपने नाटकों और प्रहसनों में भारतेन्दु ने प्राचीन नाट्य-कला के सिद्धान्तों को सर्वरूपेण नहीं अपनाया। कथा और कथावस्तु की दृष्टि से उनकी रचनाओं में कोई प्रख्यात आख्यान नहीं है। इसका उत्तर भी स्पष्ट रूप से उन्होंने अपनी छोटी-सी पुस्तक 'नाटक' में दे दिया है। प्राचीन-काल में जीवन का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति था। अतएव साहित्य में भी उसी आदर्श को लेकर चरित्र-चित्रण किया जाता था। परन्तु भारतेन्दु-युग की भावना ही बदल चुकी थी। नाटक का उद्देश्य 'अधिकारी' के 'फलागम्' की अवस्था पर लाना नहीं रह गया था। उनके अनुसार "नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य ये होते हैं। यथा—शृङ्गार, हास्य, कौतुक, समाज संस्कार और देश वत्सलता। शृङ्गार और हास्य ·····जगत में प्रसिद्ध हैं। कौतिक विशिष्ट वह हैं जिसमें लोगों के चित्त-विनोदार्थ किसी मंत्र विशेष द्वारा या और किसी प्रकार अद्भुत घटना दिखाई जायँ। समाज-संस्कार नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म है। यथा—शिक्षा की उन्नति, विवाह-सम्बन्धी कुरीति निवारण, अथवा धर्म सम्बन्धी अन्यान्य विषयों में संशोधन आदि। किसी प्राचीन कथा-भाग का इस बुद्धि से संगठन कि देश की उससे कुछ उन्नति हो इसी प्रकार के अन्तर्गत है। देश-वत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों वा देखने वालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है और यह प्रायः करुणा और वीर-रस के होते हैं।"

भारतेन्दु के ये शब्द स्वयं उनके नाटकों की रूपरेखा के स्वतः प्रमाण हैं। युग-परिवर्तन के साथ-साथ भारतेन्दु ने नाटक रचना में भी परिवर्तन उचित समझा। उन्होंने अपने मत को स्पष्ट करते हुए लिखा ही है कि "जिस समय में जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करें और देशीय रीतिनीति का प्रवाह जिस रूप से चलता रहे, उस समय में उक्त सहृदयगण के अन्तःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीति-पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है।"

स्वयं भारतेन्दु ने अपने मत का पालन कहाँ तक किया इसके उदाहरण उनके मौलिक नाटक हैं। रूपान्तरित नाटकों में भी उन्होंने अपने मन्तव्य से काम लिया है। यद्यपि वह मानते थे कि "नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करे—यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो सब प्राचीन रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी, वह सब अवश्य गृहण होंगी, परन्तु इतना होने पर भी उनका विचार था कि नाट्य-कला कौशल दिखलाने को देश, काल और पात्रगण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है। पूर्वकाल में लोकातीत असंभव कार्य की अवतारणा सभ्यगण को जैसी हृदयहारिणी होती थी, वर्तमान काल में नहीं होती।" Use of the Super-natural के प्रति भारतेन्दु का यह कथन नितान्त उपयुक्त है और इसी कारण अपने नाटकों में उन्होंने पात्रों का संग्रह वास्तविक जीवन के अनेक स्तरों से किया है। उनमें सत्यवादी प्रजावत्सल हरिश्चन्द्र भी हैं और अन्धेर नगरी के ज्ञानहीन राजा भी; उनमें त्यागी, वीर, प्रेमी, सुन्दर भी हैं और पापात्मा मीर अब्दुरशरीफ़खां सूर भी, उनमें भगवद्भक्त चन्द्रावली भी हैं और धनदास तथा बनितादास जैसे धूर्त भी। उनके नाटकों में मंत्री, वैद्य, पंडित, काजी, मुल्ला, सिफारिशी, व्यापारी, पंडे, गुन्डे, लुच्चे, कोंजड़े और फल बेचने वाले भी हैं और राजनीतिक कर्मचारी भी। और सब का चरित्र प्रत्येक पात्र के अनुकूल है, उपदेश प्रद भी है और यथार्थ भी। अपने समकालीन पारसी नाटकों के लिए उनका यह प्रयास एक सफल चुनौती थी।

भारतेन्दु ने अपने नाटकों में गीतों का समावेश करके एक अद्भुत वस्तु नाटक साहित्य को प्रदान की है। ये गीत केवल काव्य ही नहीं है वरन चरित्र-चित्रण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वैसे तो मानव-हृदय के उद्गारों की अभिव्यञ्जना सदा से ही कविता में होती आई है परन्तु किसी स्थिति विशेष के अनुकूल एक निश्चित पृष्ठभूमि में जब इनका समावेश होता है तो उनका प्रभाव दुगुना हो जाता है। 'भारत-दुर्दशा' और 'नीलदेवी' के गीत इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। हिन्दी के नाटक-साहित्य में 'प्रसाद' को छोड़ कर अन्य कोई नाटककार इस दृष्टि से समारे साहित्य को सम्पन्न करने में सफल नहीं दिखाई देता। इधर उधर के दो चार गीतों की बात दूसरी है।

भारतेन्दु के इन गीतों का एक ऐतिहासिक महत्त्व भी है। उनके समय में पारसी कम्पनियों के नाटकों में जो रुचि हीन सङ्गीत का प्रदर्शन होता था उन्हें रोकने और जनता की रुचि को सुसंस्कृत करने में भी इन गीतों ने बड़ा काम किया।

संक्षेप में भारतेन्दु ने पुरानी परिपाटी को विश्लेषण कर उसमें से देशकाल के उपयोगार्थ उपकरणों को लेकर तत्कालीन प्रभावों के साथ उनका अपूर्व समन्वय करके आवश्यक नाटक साहित्य की सृष्टि की। इसके द्वारा प्राचीनता की रक्षा भी हो गई और भविष्य के लिए पथ-प्रदर्शन भी होगया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का वास्तविक महत्व परिवर्तन उपस्थित करने में और साहित्य को शुद्ध मार्ग पर ले चलने में है। शृङ्गारिक कविता की प्रबल वेग से बहती हुई जिस धारा का अवरोध करने में हिन्दी के प्रसिद्ध वीर कवि 'भूषण' समर्थ नहीं हुए थे, भारतेन्दु उसमें पूर्णतः सफल हुए। इससे उनके उच्च पद का पता लगता है।

—श्यामसुन्दरदास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की काव्य-कला

प्रो० मोहनलाल एम० ए०, साहित्य रत्न

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध नव-अंकुरित राजनीतिक और सामाजिक चेतनाओं में जागरण की अंगड़ाई लेने लगा था, यद्यपि मध्य-युगीन नीति-मूल्यों और जीवन-मर्यादाओं के मोह से उसे अभी पूर्ण अवकाश नहीं मिल पाया था। साहित्य के क्षेत्र में रीतिकाल की परम्परा का अनुकरण हो रहा था, किन्तु नवोत्थान के संघात से उसकी धमनियों में भी नवीन रक्त का सञ्चार होने लगा था। इस संक्रान्ति-काल में भारतेन्दु का उदय हुआ। उनके साहित्य में जहाँ एक ओर हिन्दी के विगत युगों की अभिव्यक्ति सञ्चित है, वहाँ दूसरी ओर युग की आशाओं और आकाँक्षाओं का सबसे प्रबल स्पन्दन मिलता है। युग के नव-उन्मेष में उन्होंने भारत की वीणा का निर्माण किया और उसमें नए स्वरों की प्रतिष्ठा की। भक्ति और शृङ्गार की बँधी हुई धाराओं में प्रवाहित साहित्य की स्रोतस्विनी नव-उद्बोधन के विराट् शृङ्गों से टकरा कर शत-शत राशियों में फूट पड़ी।

भारतेन्दु क्रान्ति-द्रष्टा थे। कविता के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी देन विचारों की क्रान्ति है। काव्य के रूढ़िगत मूल्यों को उन्होंने चुनौती दी और प्रथम बार हिन्दी जनता को उन्होंने नवीन विषयों की ओर आकृष्ट किया। देश-प्रेम, समाज-सुधार, मातृभाषा की उन्नति, धार्मिक विकृति, राजनीतिक विक्षोभ, भक्ति और शृङ्गार के अतिरिक्त काव्य के विषय बने। 'कवि-वचन-सुधा' में उन्होंने जो विज्ञप्ति निकाली थी उससे इन विषयों की विविधता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—"बाल-विवाह से हानि, जन्म-पत्र मिलाने की अशास्त्रता, बालकों की शिक्षा, अङ्गरेजी फैशन से शराब की आदत, भ्रूण-हत्या, फूट और वैर, बहुजातित्व और बहु-भक्तित्व, जन्म-भूमि से स्नेह और उसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन, स्वदेशी—हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना—इसकी आवश्यकता।"

विषय की विविधता के साथ-साथ काव्य-कला के विधान में भी भारतेन्दु को परिवर्तन करना पड़ा। अब तक कविता का संविधान मुक्तक या प्रबन्ध में होता था और उसके प्रयोग में शब्दों के साथ क्रीड़ा और शृङ्गार को साधारणतः अपेक्षित माना जाता था। भारतेन्दु ने इन विषयों के प्रतिपादन के लिए छोटे-छोटे पद्यात्मक निबन्धों की आवश्यकता का अनुभव किया और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की सरल गति को ही अपेक्षित माना। क्या खड़ी बोली और क्या ब्रज-भाषा, जिसे भी उन्होंने अपने भावों का माध्यम बनाया, उसमें नैसर्गिक (Natural) स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादन की शक्ति मिलती है। देश की दुर्दशा की ओर जब वे लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं—

रोवहु सब मिल कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

तो जन-मन तक कवि के भावों को वहन करने के लिए वाणी को शृङ्गार की आवश्यकता नहीं होती। पारस्परिक वैमनस्य, जातीय हीनावस्था और युग-युग के अनाचार-अत्याचार के कारण, जब ग्लानि और आक्रोश में कवि की वाणी फूट पड़ती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में मची है होरी ॥
फूँक्यौ सब कुछ भारत न
कछु हाथ न हाय रह्यो री।
तब रोअन मिस चैती गाई
भली भई यह होरी ॥
भलो तेहवार भयो री ॥

तो उसके लिए कवित्व के बाह्य उपादानों की आवश्यकता नहीं रहती।

भावाभिव्यञ्जना की यह तीव्रता भारतेन्दु की मुकरियों में भी मिलती है जिन्हें उन्होंने खुसरो के अनुकरण पर लिखा है, पर खुसरो में जहाँ हास्य का मनोरञ्जनकारी स्वरूप मिलता है, वहाँ इन मुकरियों में व्यंग्य का मर्म-स्पर्शी रूप। अँगरेज, अँगरेजी, ग्रेजुएट, खिताब, पुलिस, चुङ्गी आदि पर उन्होंने चुभते हुए व्यंग किए हैं। उदाहरण के लिए एक मुकरी सुनिए—

भीतर भीतर सब रस चूसै।
हँसि हँसि कै तन-मन-धन मूसै ॥
जाहिर बातन मैं अति तेज।
क्यों सखि साजन नहिं अँगरेज ॥

सामाजिक कुरीतियों पर भर्त्सना का व्यंग-रूप पैरोडी (Parody) के आवरण में भी भारतेन्दु ने प्रस्तुत किया है। हिन्दी में इस प्रकार की अभिव्यञ्जना का यह सब से प्रथम उदाहरण है। 'इन्दर-सभा' पर उन्होंने 'बन्दर-सभा' की रचना की। 'इन्दर-सभा' में इन्द्र अपना परिचय देता है—

राजा हूँ मैं कौम का और इन्दर मेरा नाम।
बिन परियों के दीद के मुझे नहीं आराम ॥

इन्द्र के अनुकरण पर 'बन्दर-सभा' में बन्दर के परिचय को सुनिए—

पाजी हूँ मैं कौम का और बन्दर मेरा नाम।
बिन फजूल कूदे फिरे मुझे नहीं आराम ॥

अभिव्यञ्जना की दृष्टि से भारतेन्दु के जन-गीतों का उनके काव्य में विशिष्ट स्थान है। निर्गुण-सगुण भक्ति के गीतों के अतिरिक्त उन्होंने तत्कालीन समस्याओं पर कितने ही गीत लिखे हैं। विहाग, सिंदूरा, धनाश्री, इकताला, काफी, ठुमरी, आदि विविध राग-रागनियों के वे अक्षुण्य भंडार हैं। उनमें भावों की बड़ी प्रबल अभिव्यक्ति हुई है। उनके राष्ट्र-गीतों में विषाद और उद्बोधन के स्वर मिलते हैं; सामाजिक गीतों में अतीत के गौरव और वर्तमान की दुरवस्था के चित्र मिलेंगे; प्रकृति के गीतों में प्रकृति का स्वतन्त्र- वर्णन या अन्तः प्रकृति के साथ बाह्य-प्रकृति का सम्बन्ध मिलता है।

कूकि कूकि रही कारी कोइरिया,
फूँकि फूँकि हिय विरह-दवरिया।

इन पंक्तियों में कोयल की कूक ने विरह की दावा को उत्तेजित कर दिया है।

भई आधी रात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात।

में रात्रि की शून्यता उतर आई है।

भारत जननी जिय क्यों उदास,
बैठी इकली कोउ नाहिं पास।

में भारत माता की करुण मूर्ति नेत्रों के सामने घूम जाती है। इसी प्रकार कवि ने 'सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन' या 'प्यारी बिन कटत न कारी रैन' में लोरी और गीति की वैयक्तिकता को व्यक्त किया है। हिन्दी में गीति-काव्य की इस नूतन अभिव्यञ्जना का श्रेय भारतेन्दु को मिलना चाहिए।

विषय की विविधता, काव्य-कला के विधान में नवीनता और अभिव्यञ्जना की स्वच्छन्दता के साथ-साथ भारतेन्दु के कलाकार में प्राचीन के प्रति आसक्ति का भाव भी मिलता है। वह संधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग का कलाकार है। उसके पास जहाँ एक राष्ट्रीय कवि की जागृति और एक लोक-कवि की चेतना थी, वहाँ एक भक्त-कवि की तन्मयता और अनन्यता तथा एक रीति-कवि की रसिकता और रसज्ञता भी थी। उनकी राष्ट्रीयता यदि युग-धर्म की विभूति थी, तो वैष्णवता उनकी पैतृक सम्पत्ति और शृङ्गारिकता काव्य-परम्परा की देन। अतः भारतेन्दु ने हिन्दी कविता के प्राचीन उपादानों को स्वीकार किया; यह उनकी विशेषता थी कि उनमें वे नवीन उद्भावनाओं की भी सृष्टि कर सके। भक्ति और शृङ्गार की कविता के लिए उन्होंने कवित्त, सवैये, छप्पय, दोहे, आदि छन्दों को अपनाया और आधुनिक विषयों के लिए रोला, लावनी, खयाल, क़जली आदि को। उर्दू के बहर और बँगला के पयार छंद का भी उन्होंने हिन्दी में प्रयोग किया। सवैये और रोले के प्रयोग में तो नई उद्भावनाएँ भी कीं।

भारतेन्दु की भक्ति में निर्गुण-सगुण कवियों की तरह अपने उपास्य के प्रति आत्म-निवेदन का भाव मिलता है। तुलसी[1] की तरह भगवान के चरणों में कवि अपनी अविचल श्रद्धा प्रकट करता है, सूर की तरह कभी-कभी वह उसके साथ गहन आत्मीयता का बोध भी कर लेता है, रसखान[2] की तन्मयता भी उनमें उतर आती है और मीरा[3] की तरह प्रेम-विभोर हो वह अपनी सुध बुध भी गँवा बैठता है। कबीर[4] आदि निर्गुण कवियों की तरह उसके उद्गारों में विश्व की नश्वरता, मोह-माया की वञ्चना और जीवन की क्षणभंगुरता पर भी उक्तियाँ मिलती हैं।

भक्त-कवियों का प्रभाव कवि पर केवल भाव-पक्ष में ही नहीं वरन् कला-पक्ष में भी पड़ा है। यों भाव और उसकी अभिव्यञ्जना को अलग-अलग कसों में बन्द भी नहीं किया जा सकता। दोहे, सवैये, छप्पय, कवित्त आदि के प्रयोग में भारतेन्दु पर भक्त कवियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है और उनसे भी अधिक रीति-काल के कवियों का, जिसका विवेचन आगे मिलेगा। सूर की 'बातन भुरई राधिका भोरी' की गठन भारतेन्दु में देखिए—

मारग रोकि भयो ठाढ़ो,
जान न देत मोहि पूछत है तू कोरी।
कौन गाँव कहा नाम तिहारो,
ठाढ़ि रहि नेक गोरी॥
कित चली जाति तू बदन दुराए,
एरी मति की भोरी।
साँझ भई अब कहाँ जायगी,
नीकी है यह साँकरी खोरी॥

तुलसी की 'विनय-पत्रिका' की ध्वनि निम्न पंक्तियों में सुनी जा सकती है—

परमानन्द प्रसन्नबदन प्रभु पद्म विलोचन,
पद्मलाभ पुण्डरीकाक्ष प्रनतारति मोचन।

इसी प्रकार 'कवितावली' के सवैयों की गठन भी कवि में मिलती है—

१—तुम साँचे साहेब करुनानिधि,
पूरन जन-मन काज।

२—हम तो मोल लिए या घर के।
दास दास श्री वल्लभ कुल के।
चाकर राधा रानी के।

३—ब्रज के लता-पता मोहिं कीजै।

४—बेगाँ आवो प्यारा बनवारी म्हारी ओर।

५—साँझ सबेरे पंछी सब क्या,
कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड़ जायँगे,
यह दिन चार बसेरा है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एई हैं गौतम नारि के तारक,
कौसिक के मख के रखवारे।"

भक्त-कवियों के व्यापक प्रभाव को स्वीकार करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि भारतेन्दु ने उनका अँधानुकरण नहीं किया है। कवि की भक्ति में आत्म-समर्पण का भाव और आत्म-मुक्ति की अभिलाषा मिलती है; पर जहाँ भक्तिकाल के कवि की विनय-भावना केवल वैयक्तिक थी, वहाँ भारतेन्दु में इसकी वैयक्तिकता का प्रसार भी मिलता है। उसकी परिधि में समाज की दुर्गति पर क्षोभ और राष्ट्र-कल्याण की कामना सिमट गई है। भक्त की—भक्ति की वाणी में यह नया स्वर है—

हरीचन्द नन्द-नन्द गिरवर धरो आह फेर
हिन्दुन के नैन नीर निस दिन बरसावैं।

भारतेन्दु की शृङ्गारिक कविता में रीतिकालीन काव्य के रङ्गीन उपकरण मिलते हैं। नायक-नायिका की शृङ्गार चेष्टाएँ, उनकी नख-शिख छवि का मदिर आकर्षण, प्रकृति का अलङ्कारिक वर्णन, छन्दों और अलङ्कारों के साथ क्रीड़ा, और राधिका-कन्हाई सुमिरन के बहाने प्रेम-लीला की मधुर झाँकियाँ उनकी कविता में मिलती हैं। इन रचनाओं में शब्द-विलास और भाव-विलास दोनों हैं, पर जहाँ कवि की अनुभूति ने गहरा रङ्ग पकड़ा है, वहाँ वह इन दोषों से मुक्त हो शुद्ध कलाकार के रूप में हमारे सामने आया है। उदाहरण के लिए इन छन्दों में भावानुभूति की मार्मिकता और तीव्रता ध्यान देने योग्य हैं—

(१) इन नैनन में वह साँवरी मूरति
देखति आनि अटी सो अटी।
अब तो है निबाहिबो या को भलो
हरिचन्द जू प्रीति कटी सो कटी॥
(२) नहिं नेक दया उर आवत क्यों,
करिकै कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले,
जेहिके बदले यों सताय रहे॥

इन पंक्तियों में घनानन्द की सी कसक और भाव-प्रवणता मिलती है और भाषा का वही सौष्ठव भी।

एक चित्र भारतेन्दु ने विरह-व्यथित गोपी का खींचा है—

तू केहि चितवन चकित मृगी सी।
केहि ढूँढ़ति तेरो कहा खोयो,
क्यों अकुलाति लखाति ठगी सी।
तन सुधि करु उघरत री आँचर,
कौन खयाल तू रहति खगी सी।
उतर न देति जकी सी बैठी,
मद पिय कै रैनि जगी सी।
चौंकि-चौंकि चितवति चारहु दिसि,
सपने पिय देखति उमगी सी॥

भावानुभूति की तीव्रता के कारण नायिका की आकुलता, विमूढ़ता, व्यग्रता, विभोरता और व्यथा चित्र में घनीभूत हो गई हैं। कला का यह कितना उत्कृष्ट रूप है जहाँ स्वयं चित्र की रेखाएँ स्वरमय हो उठी हैं और रङ्गों में अभिव्यक्ति आगई है।

भारतेन्दु में शृङ्गार का एक दूसरा रूप भी मिलता है जो हिन्दी के लिए नवीन था। रीति-काल के कवियों में प्रेम की तड़प और हूक अवश्य मिलती है, पर उर्दू के इश्क की नज़ाकत और लचक नहीं। उर्दू से प्रभावित होकर भारतेन्दु ने हिन्दी में सर्वप्रथम वेदनात्मक शृङ्गारी कविताएँ लिखीं जिनमें उर्दू शैली की शोखी और छेड़छाड़ मिलती है। उदाहरण के लिये—

छोड़ौ मेरी बहियाँ लाल, सीखी यह कौन चाल,
हा हा तुम परसत तन औरन की नारी।
अँगुरी मेरी मुरुक गई, परसत तन पीर भई,
भीर भई देखत सब ठाढ़ी बृज नारी॥

इसी शैली पर, किंतु पारसी रङ्गमञ्च का प्रभाव लिए, उन्होंने प्रेम के रोमांसजनित गाने भी लिखे हैं जिनमें न तो कला की उत्कृष्टता है और न भावों की प्रवणता ही, जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैयाँ बेदरदी दरद नहीं जानै।

अथवा

जबनियाँ मोरी मुफ़्त बरबाद गई।

रीतिकाल के कवियों को अलंकारों से विशेष मोह था। भारतेन्दु में यद्यपि अलंकारों के प्रति विशेष आसक्ति तो नहीं है, पर इस दोष से वे सर्वथा मुक्त भी नहीं हैं। पद्माकर ने यदि 'तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै' में अनुप्रास की छटा को सजाने की चेष्टा की तो भारतेन्दु ने भी 'तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहु छाए' में कालिन्दी के तट को अलंकृत करने का प्रयास किया है। इससे एक ओर तो कवि का अलंकार-प्रेम प्रगट होता है, दूसरी ओर प्रकृति की ओर रीतिकालीन दृष्टिकोण। प्रकृति की अनन्त चेतना के सम्पर्क में मानवी अनुभूतियों की क्रियाओं और प्रक्रियाओं की ओर उनका ध्यान कम गया है। पर भारतेन्दु की अलंकार-प्रियता में एक विशेषता अवश्य है; वह है शब्द-चित्रण की शक्ति। पद्माकर में अलंकारों से प्रेम केवल अलङ्कारों के लिए है, भारतेन्दु में वह मुख्यतः शब्द-चित्रण के लिए। उदाहरण के लिए, पद्माकर और भारतेन्दु दोनों ने यमुना की लहरों में क्रीड़ा करते हुए चन्द्रमा का वर्णन किया है, पर पद्माकर ने जहाँ केवल अनुप्रास की लड़ियाँ गूँथी हैं, वहाँ भारतेन्दु ने चंचल उर्मियों में थिरकते हुए आलोक को चित्रित करने का प्रयास किया है। यथा -

छिति पर छान पर छाजन छतान पै,
ललित लटान पर लाड़िली के लट पै,
आई भले छाई यह सरजु जुन्हाई जिहि
पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकुट पै।

—पद्माकर

मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै,
कै नरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै,
कै बाल गुड़ी नभ में उड़ी सोहति इत उत धावती,
कै अवगाहत डोलत कोउ ब्रजरानी आवती।

—भारतेन्दु

यह चित्रोपमता भारतेन्दु की काव्य-कला की विशिष्ट देन है। इसमें एक ओर तो कवि ने उत्प्रेक्षा के सहारे चित्र को आकार दिया है, दूसरी ओर 'कै' की आवृत्ति में सन्देह की योजना भर विविधता का रङ्ग भरा है। प्रस्तुतों की संश्लिष्ट योजना में अलङ्कारों की रमणीयता चित्र के साथ आत्मसात् हो गई है। इसी तरह कवि जब नायिका के विरह का वर्णन करता है, तो अलङ्कार चित्र को मूर्त कर देते हैं, यथा—

उमड़ि उमड़ि दृग रोअत अबीर भए
मुख दुति पीरी परी बिरह महा मारी।

असङ्गति यह है कि वर्षा में जीवन का हरित स्पन्दन होने के बदले नायिका मुरझा रही है। 'उमड़ि-उमड़ि' की योजना में वर्षा दृगों में मूर्त हो जाती है और आँखों में अबीर की ललाई बीर-बहूटी उतर आती है। 'पीरी मुख-दुति' उसकी वेदना को साकार कर देती है। मुख से बार-बार वह 'हरी-हरी' पुकार रही है, पर उसकी व्यथा घनी ही होती जाती है।

भारतेन्दु ने इस तरह अलङ्कारों का बड़ा मार्मिक प्रयोग किया है, पर जहाँ वे शब्द-क्रीड़ा और चमत्कार-प्रदर्शन पर उतर आए हैं, वहाँ अभिव्यञ्जना में भाव-चित्र या शब्द-चित्र के स्थान पर वाक्-विदग्धता ही मिलती है। उदाहरण के लिए निम्न-लावनी में कवि ने विनोक्ति के प्रयोग से नायक की वाक्-पटुता को प्रदर्शित किया है—

पीते हैं जिगर का खून आब के बदले।
खाते हैं सदा हम गम कबाब के बदले।
खुशबू तेरी सूँघी गुलाब के बदले।
लेते हैं नाम तेरा किताब के बदले।

चमत्कार-प्रदर्शन के लिए उन्होंने बिहारी के अनुकरण पर 'सतसई-सिङ्गार' की रचना कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाली। विहारी ने मेरी 'भव बाधा हरो' लिखा, तो उसकी अनुकृति भारतेन्दु ने भी दोहों में की—

स्याम हरित दुति होई परैं जा तन की झांई।
पाय पलोटत लाल लखत साँवरे कन्हाई॥
श्री हरीचंद वियोग पीत पट मिलि दुति टेरी।
नित हरि जा रंग रंगे हरौ बाधा सोइ मेरी॥

भारतेन्दु की कविता से ऐसे अनेकों दृष्टान्त दिए जा सकते हैं जहाँ पांडित्य प्रदर्शन की यह रुचि लक्षित होती है। समस्या-पूर्ति, अन्तलार्पिका, मूक प्रश्न, चतुरंग, फूल-बुझौवल आदि में कवि ने शब्द-वैचित्र्य को प्रदर्शित किया है। वर्णों, अङ्कों, और रंगों में भी चित्र खींचने का वहाँ प्रयास मिलता है। यथा—

१—ईंगलैंड-पारसीक वर्ण चित्र—

Gवहु Es अCस बल हरहु प्रजन की Pर।[१]

२—अङ्क-चित्र—

करि वि४ देख्यौ बहु जग बिनु दोस न १।[२]

३—रंग-चित्र—

—दुति करि बैरि भट—मुख मसिलाय।[३]

इस प्रकार की शब्द-क्रीड़ा में भाषा की वक्रता मिलती है, पर कला की दृष्टि से उसका कोई मूल्य नहीं। भारतेन्दु के कलाकार ने भाषा की शक्ति और श्री को पहचाना था और प्रायः उसने उसे उसके सहज रूप में ही स्वीकार किया है। गद्य के क्षेत्र में उसने खड़ी बोली को प्रतिष्ठित कर दिया था, पर कविता में उसने खड़ी बोली के साथ प्राचीन से समादृत ब्रज को ही अपनाया। खड़ी बोली को वे निखार नहीं सके, पर उसकी अभिव्यञ्जना-शक्ति से उन्होंने जनता को परिचित अवश्य करा दिया। ब्रज के प्रयोग में भी युग-धर्म के अनुसार उन्होंने परिवर्तन किए। चक्कवै, ईठ, दीह, लइ आदि शब्द जो साधारण बोल-चाल से तो उठ गये थे, पर रीतिकाल के कवियों ने जिन्हें सहेज रखा था, भारतेन्दु ने बिना किसी हिचक के अपनी भाषा से निर्वासित कर दिया। शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की प्रवृत्ति का भी उन्होंने विरोध किया, और प्रांतीय बोलियों तथा अँगरेजी, उर्दू आदि के प्रचलित शब्दों को भी भाषा की समृद्धि के लिए आवश्यक समझा। यों उनकी कविता में बंगला, पूरबी, राजस्थानी और पंजाबी आदि की कितनी ही पंक्तियाँ भी मिलेंगी, पर वह मूलतः प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण। भारतेन्दु की विशेषता यह है कि अपनी अभिव्यक्ति को प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए उन्होंने भाषा को उसके स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से उसमें विशेष छटा आ गई है—'नित को मिलनो तो किनारे रह्यौ, मुख देखत ही दुरि भाजत हौ', 'हाथ सखी इन हाथन सों अपने पग आय कुठार में दीनों', 'दिया सामने खड़ा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है', 'फूल झड़ते हैं जुबाँ से बात में' आदि कितने ही सुन्दर और चुभते हुए उदाहरण मुहावरों के दिये जा सकते हैं। भारतेन्दु की भाषा की यह शक्ति थी कि उनकी कितनी ही पंक्तियाँ आज हिन्दी में उक्तियाँ बन गई हैं, जैसे—'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दुन वारियै', 'हरीचंद हीरन को बेवहार कै काँचन को लै परेखिबे का', 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल'।

शब्द के वास्तविक अर्थ में भारतेन्दु स्रष्टा थे—एक कलाकार की उनके पास सृजन-शक्ति थी। उनमें प्राचीन और नवीन का सामञ्जस्य मिलता है और प्राचीन के प्रति नवीन का विद्रोह भी। जब इस कलाकार ने अपनी तूलिका में गहरे रंगों को भरना शुरू किया, उससे भी बड़े कलाकार ने हँस कर उसकी आँखें बन्द कर दीं।

१ जीवहु ईस असीस बल हरहु प्रजन की पीर।
२ करि विचार देख्यौ बहु जग बिनु दोस न एक।
३ पीरे दुति करि बैरि भट कारे मुख मसिलाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु युग का नक्षत्र मंडल

निबंध और निबंधकार

श्री० ओंकार नाथ, एम० ए०

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र—हिन्दी के सबसे प्रमुख उन्नायक है। आपने प्रोत्साहन दे देकर अनेक लेखकों को तैयार किया। आप ही ने 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में हिन्दी को वह रूप दिया जिससे 'हिन्दी नई चाल में ढली'। इस समय के लेखक हिन्दी को हिन्दी बनाये हुए थे। भारतेन्दुजी की भाषा बहुत साफ और सुथरी थी। आपने विविध पत्रिकाओं में विविध निबन्ध अथवा लेख लिखे। इनके ऐसे निबन्धों का हरिश्चन्द्र कला भाग ४ में संग्रह है। कुछ निबन्ध विशेष प्रसिद्ध हैं जैसे—१ 'इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष', २ 'हम मूर्ति पूजक हैं' ३ 'श्रुति-रहस्य' ४ 'एक अपूर्व स्वप्न' ५ 'सूर्योदय' ६ 'होली' ७ 'त्यौहार' ८ 'भूकम्प' ९ 'मित्रता' १० 'खुशी' ११ 'अपव्यय' १२ 'सङ्गीतसार'। सूरदास, वङ्ग-भाषा की कविता, ईशु खृष्ट और ईशु कृष्ण, सरयू पार की यात्रा आदि और भी कितने सामयिक और साहित्यिक निबन्ध आपने लिखे हैं! इन सब पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि भारतेन्दु ने निबन्ध की आत्मा को पहचान लिया था। विषयों का वैविध्य और उनमें सहज विनोद की भावना निबन्धों के आदिकाल में भव्य भविष्य का बीज प्रस्तुत करते हैं। इनके इन निबन्धों में कई शैलियाँ मिलती हैं: 'बङ्गभाषा की कविता' जैसे निबन्ध में 'भूमिका' शैली है। निबन्ध भूमिका का कार्य करता है। 'सूरदास' जैसे लेख में 'जीवनी-सम्बन्धी' निबन्ध का निर्देश है। 'खत्रियों की उत्पत्ति' में जातीयशोध की ओर प्रवृत्ति है। 'ईशु खृष्ट और ईशु कृष्ण' में तुलनात्मक धार्मिक अध्ययन की चेष्टा है। यात्रा-विषयक वर्णनों का मार्ग-दर्शन 'सरयू पार की यात्रा' जैसे लेखों में हुआ है। भावात्मक वर्णन 'माधुरी' के वृन्दावन दृश्यों में प्रचुर मिलते हैं। व्यंग्य और आलोचना का नमूना 'बड़े पुण्य का फल' में है। 'मूक प्रश्न' में विनोद-गणित-बुझौवल बतलाया गया है। इस प्रकार भारतेन्दुजी ने निबन्ध के विविध प्रकारों में प्रयोग उपस्थित किये हैं। आपके लेखों में अध्ययन, निरीक्षण और भावुक वृत्ति मिलती है। अध्ययन में आप ऐतिहासिक और धार्मिक रुचि विशेष दिखाते हैं, जिससे 'संस्कृति' का प्रेम विशेष प्रकट होता है। अध्ययन प्रधान स्थलों में आपकी भाषा तत्समता लिये रहती है, किन्तु यह तत्समता इतनी आतङ्क-प्रद नहीं कि साधारण कोटि के शब्दों को स्थान न मिल सके, अध्ययन में पर्याप्त सूक्ष्म और वैज्ञानिक वृत्ति मिलती है।

"केवल यूरूप के मूर्ति पूजकों ही पर नहीं नए सम्प्रदाय वालों की भी यही दशा है। गेब्रिल (जिबरईल) गरुण का अपभ्रंश है और गरुड़ जैसे परमेश्वर के सबसे उत्तम पार्षदों में है वैसे ही जिबरईल उत्तम फिरिश्तों में। वरञ्च फरिश्ता शब्द ही पारषद का अपभ्रंश है। जिबरईल का ईश्वर की आज्ञा लाकर मत प्रवर्त्तक होने का उदाहरण भी रामानुज सम्प्रदाय में देख लीजिए।"

वह संयत और सधी हुई भाषा जो द्विवेदी काल को परिमार्जन और विन्यास का आधार बनी, भारतेन्दु के उन निबन्धों में मिल जाती है, जिनमें वे विषय का गम्भीरता पूर्वक प्रतिपादन करते हैं, अथवा जिन्हें लिखते समय उनके मन में उतनी उस विषय की चर्चा अभीष्ट नहीं होती जितना उसका ज्ञान प्रस्तुत करना। 'सङ्गीतसार' लेख का यह अंश उदाहरणार्थ लिया जा सकता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भारतवर्ष की सब विद्याओं के साथ यथा क्रम सङ्गीत का भी लोप हो गया। यह गान शास्त्र हमारे यहाँ इतना आदरणीय है कि सामवेद के मन्त्र-तन्त्र गाए जाते हैं। हमारे यहाँ वरञ्च यह कहावत प्रसिद्ध है 'प्रथम नाद तब वेद'। अब भारतवर्ष का सम्पूर्ण सङ्गीत केवल कजली ठुमरी पर आरहा है। तथापि प्राचीन काल में यह शास्त्र कितना गम्भीर था यह हम इस लेख में दिखलायेंगे।"—इस के वाक्य छोटे-छोटे हैं, विचार-पूर्वक लिखे गये प्रतीत होते हैं। इससे ऊपर जो उद्धरण दिया गया है, यह उद्धरण उससे भी अधिक संयत है, सुथु बनाने की चेष्टा भी दिखायी पड़ती है। इसके साथ ही इसके एक दूसरे प्रसिद्ध निबन्ध 'खुशी' का एक उद्धरण देखिये :—

"हस्वदिल ख्वाह अमूदगी को खुशी कह सकते हैं, यानी जो हमारे दिल की ख्वाहिश हो वह कोशिश करने से या इत्तफाकिया वगैर कोशिश किए आवे तो हमको खुशी हासिल होती है।

× × ×

इसी से हम कहते हैं कि खुशी से मरतबः से कुछ वास्ता नहीं खुशी एक नेअमते उज़मा है जिसे हर शख्स नहीं पाता।"

यह वह शैली जिसकी हिमायत राजा शिव-प्रसाद उस समय कर रहे थे। भारतेन्दुजी ने 'खुशी' जैसा १५ पृष्ठों का बड़ा निबन्ध इस शैली में लिख कर अपनी प्रतिभा का चमत्कार नहीं दिखाया, वरन् उन्होंने यह प्रयोग किया कि क्या यह भाषा 'हिन्दी' हो सकती है। क्या यह सार्वजनिक भाषा बन सकती है। उन्होंने इस शैली का निश्चय ही परित्याग कर दिया और उनकी तथा राजा शिव-प्रसाद के विरोध की खाई गहरी होती गयी। इस प्रयोग से हिन्दी का असल रूप भारतेन्दु को ठीक-ठीक समझ में आने लगा। यों निबन्ध की दृष्टि से 'खुशी' भी एक अच्छा निबन्ध माना जाता है।

निरीक्षण सम्बन्धी लेखों में भारतेन्दु की शैली यथार्थ के बहुत निकट है, जैसा जो शब्द उस समय मिला है उसी का प्रयोग कर दिया गया है। निरीक्षण सम्बन्धी उनके निबन्धों में उतनी बिन्यास की गठन नहीं मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि निरीक्षण करते समय नोट लिये गये हैं, उन्हें ही निबन्ध बना दिया गया है—

"यहाँ के बाजार का हम बनारस के किसी भी बाजार से मुकाबिला नहीं कर सकते। महज वे हैसियत। महाजन एक यहाँ है वह टूटे खपड़े में बैठे थे। तारीफ यह सुनी कि साल भर में दो बेर कैद होते हैं क्योंकि महाजन को जाल करना फर्ज है और उसको भी छिपाने का शऊर नहीं।"

इसी वर्णन-प्रवृत्ति में उनकी एक शैली यह मिलती है :

"रें रें करके रात को बारह बजे बाद पहुँचे। चार बजे तक सरदी में वहीं टपे। पाँच बजे रेल फिर चली। घाट पर पहुँचे। वहाँ एक स्टीमर था। दरिद्र स्टीमर, जिसके सेकेण्ड क्लास में सिवा इस नाम के गुण कोई नहीं। बल्कि वहाँ बैठना भले आदमी के वास्ते एक शर्म की बात है। खैर वहीं बैठ कर पार लगे। वहाँ से तिरहुत की रेल। वाहरे रेल। एक गाड़ी बालू में खड़ी-थी उसी में तारघर और टिकट आफिस। तार दो-दो कैंचीदार बासों पर। सड़क आधे आधे औंधे गोलों पर बालू में राम भरोसे। गाड़ी ऊँचे-नीचे पर छकड़ों की तरह लुढ़कती पुढ़कती चलती थी। छोटी इतनी कि जी चाहा कि सरस्वती की गुड़िया को देदूं। सेकेण्ड क्लास महज वाहियात। भद्दा रङ्ग, भद्दे काठ, भद्दे लोहे। जगह सोने को कौन कहे बैठने को नहीं। रेल की तारीफ करूँ कि तार की कि स्टेशनों की कि मास्टरों की। झण्डी मालूम होती थी कि कोई खेतवाला स्त्री की मैली फटी सारी का पल्ला फाड़कर लकड़ी में लगा कर कौआ हाँकता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शैली में वाक्यों की संक्षिप्त असम्पूर्णता, पर प्रभावशीलता देखने योग्य है।

भावात्मक स्थलों पर लेखक बहुधा तत्सम-प्रधान प्रवाहमयी भाषा का उपयोग करने लगता है—

"हा! यह वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सबसे पहिले राजधानी बनाई गई। इसी में महात्मा इक्ष्वाकु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, अज, रघु, श्रीरामचन्द्र हुए हैं और इसी के राजवंश के चरित्र में बड़े-बड़े कवियों ने अपनी बुद्धिशक्ति की परिचालना की है।"....

अथवा—

"आहा! भगवान की लीला भी कैसी दिव्य और धन्य पदार्थ है कि कलिमल ग्रसित जीवों को सहज ही प्रभु की ओर झुका देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यों न हो दो घड़ी तो परमेश्वर के रंग में रंग ही देती है।" (रामलीला)

यहाँ पर इनके दो निबन्धों का और उल्लेख कर देना ठीक होगा। एक है 'अद्भुद अपूर्व स्वप्न' वह भी मनोरञ्जक और व्यंग्यपूर्ण तो है, पर शैली की दृष्टि से संयत और सधा हुआ है। गम्भीरता है, शब्द चयन में चैतन्य है—

'देखो समय-सागर में एक दिन सब संसार अवश्य भान हो जायगा। कालवश शशि सूर्य भी नष्ट हो जायँगे।" लेख के शीर्षक से विदित होता है कि स्वप्न का वर्णन किया जायगा, और स्वप्न की सम्भावनाओं में असम्भावना मूल में रहती ही है। इसी कारण ऐसे निबन्धों में आकाश पाताल के कुलावे मिलाये जाते हैं। वही 'अद्भुत' को जन्म देते हैं—उदाहरणार्थ "पाठशाला बनाने का विचार करके जब थैली में हाथ डाला तो केवल ग्यारह गाड़ी ही मुहरें निकलीं। इष्ट मित्रों से सहायता ली तो इतना धन एकत्र हो गया कि ईंटों के ठौर मुहर चुनवा देने पर भी दस पाँच रेल रुपये बच रहते। आधीरात को पाठशाला का उद्घाटन हुआ"। लेखक ऐसी पंक्तियाँ लिख कर 'हास्य' प्रस्तुत करने की जुस्तजू में है। इसमें इन भावनाओं के उतार चढ़ाव तो हैं, पर उपदेशात्मकता उतनी नहीं, और वह भी विशेष व्यंग्य है। कुछ लेखक "स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन" को ही निबन्ध मानते हैं। यथार्थ में यह वह निबन्ध है जो कहानी का रूप ग्रहण कर लेता है। अतः इसे हास्य की कहानी मानी जानी चाहिए। पर 'कहानी' की टेकनीक का इसमें नितान्ताभाव है, और यह 'कहानी' के लिए नहीं लिखा गया है अपने भावों को प्रकट करने के लिए। अतः है यह लघु कथाश्रित निबन्ध ही। कहानी का बीज इसमें माना जा सकता है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के उपरान्त पं० राधाचरण गोस्वामी का उल्लेख किया जाना चाहिए। पं० राधाचरण गोस्वामीजी के हमें कितने ही विविध विषयक निबन्ध और लेख मिलते हैं। इन्होंने हरिश्चन्द्रकाल में हरिश्चन्द्र की रचनाओं से ही प्रभावित होकर रचना करना आरम्भ किया था। 'भारतेन्दु' नामक एक पत्र भी वृन्दावन से इन्होंने निकाला था। 'हिन्दू-बांधव' में ब्रह्म-समाज सम्बन्धी कई लेख लिखकर ब्रह्म-समाज की ओर अपना किञ्चित झुकाव भी इन्होंने दिखाया था। इन्होंने अपने समय के सभी पत्रों के लिए कुछ न कुछ अवश्य लिखा। किसी के लिए चोज, किसी के लिए निबन्ध यात्रा सम्बन्धीः विविध राजस्थानी प्रदेशों की यात्रा पर आपने अच्छे लेख लिखे। कभी गद्य-काव्य। 'चन्द्रोदय' पर आपका गद्य-काव्य प्रसिद्ध है।

इनकी शैली प्रायः सर्वतः एक सी रहती है, और भारतेन्दु की सामान्य शैली से मिलती जुलती है। 'पूर्णिमा का चन्द्रोदय' जैसे गद्य-काव्य में भी आपकी भाषा-शैली का यह रूप है।

"काल रूपी रेल की लालटेन है! गढ़तोड़ तोप का गोला है।....मोती चूर का लड्डू है। उस अनोखे खिलाड़ी के अनूठे ख्याल गाने की चङ्ग है। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र बिसाती का अड्डा बड्डा है, कोहनूर है! हूर है! शुअला नूर है। किसी यूरोपियन् मिस का मुँह है!....वाजिद अली शाह का कबूतर है!....''

इसमें जो शब्द चयन और वाक्य-विन्यास हैं, वही इनके उन संक्षिप्त नोटों में मिलता है जो ये मित्र-विलास आदि के लिये लिखा करते थे।

''क्या अंग्रेजी देशी सब समाचार-पत्रों में मुक्ति फौज की धूम हैं। न मालूम वह कैसी मुक्ति फौज है? सुना तो कुल ५ आदमी मुक्ति फौज में निकले! वाहरे हिन्दुस्तानी अखवारो! परका कौआ करना आप ही लोगों का काम है!

....जब मुसलमानी राज्य में इधर वेयहा दौलत और उधर तेग देखकर भी हमने अपने धर्म से पांव न डिगाया, तो क्या अब खञ्जरी के गीत, और 'खुदावन्द ईहामसीह की फांसी पर अपना धर्म छोड़ सकते हैं।'

इस लेखक में भाषा का साधारण मुहावरा ही मिलता है। विशेष न तो भावुक स्थल हैं और न शुष्क। वाक्य-विन्यास में पूरी सावधानी रहती है। अलंकारिकता आवश्यक स्थलों पर आयी है, पर उसमें सर्वथा तत्कालीन सामयिक उपमानों पर दृष्टि विशेष रही है।

'आर्य शब्द' पर लिखे इनके साधारण प्रेरणात्मक निबन्ध में इनकी भाषा का रूप यह है। ''हम जगत के सब आर्य्य, अनार्य्य, पण्डित, राजा, प्रजा, धनी, दरिद्र, गल्पकार, पत्रिका सम्पादक, प्रभृति सकल-श्रेणीस्थ लोकों से विनयपूर्वक निवेदन करते हैं, कि आप लोग हम आर्य्य लोगों को जो भारतवर्ष के प्राचीन निवासी और वैदिक धर्म के अनुयायी हैं, कदाचित् 'हिन्दू' न कहा करो।'' इससे भी उक्त कथन की पुष्टि ही होती है।

स्वप्न-शैली की एक परिपाटी इस युग में प्रचलित थी। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'राजा भोज का सपना' लिखा था। भारतेन्दुजी के अद्भुत स्वप्न का उल्लेख ऊपर हो चुका है। राधाचरण गोस्वामीजी ने भी 'यमलोक की यात्रा' स्वप्न-शैली में ही लिखा है। स्वप्न-द्रष्टा पचीस वर्ष की अवस्था में ही यमलोक जाने की तय्यारी करता है। उसको नादिरशाह की सूरत के दूत लेने आते हैं। इसमें लेखक ने व्यंग और हास्य के द्वारा तत्कालीन स्थिति की करारी आलोचना करायी है। इसी में लेखक ने गाय के स्थान पर कुत्ते के द्वारा वैतरणी पार करने का उल्लेख किया है। डा० रामविलास ने 'भारतेन्दु युग' में लिखा है :—

''जो व्यक्ति गोसाइयों के परिवार में पलकर वैतरणी को कुत्ते की सहायता से पार करने की बात सोच सकता था, वह वेदों को अपौरुषेय कैसे मान सकता था।''

इससे विदित होता है कि लेखक गोस्वामीजी को बहुत उदार मानता है। गोस्वामीजी उदार तो अवश्य हैं। पर लेखक ने जिस उदाहरण को लिया है वह ठीक नहीं, उससे उनकी उदारता नहीं प्रकट होती। वह भी एक व्यंग है।

गोस्वामीजी का तर्क व्यंग्य है। प्राचीन हिन्दू गोदान करता है, ब्राह्मण को वैतरणी तरने के लिए आज हिन्दू कुत्ता प्रदान करता है, अँग्रेज साहब की मेम को और उसकी सहायता से वैतरणी तर जाता है। कौनसी वैतरणी? फलतः कुत्ते के द्वारा वैतरणी पार नहीं करायी गयी। गोदान न कर साहबों को कुत्ते देने में जो भाव हैं, उस पर व्यंग किया गया है। इस निबन्ध का रूप स्पष्ट करने के लिए डा० रामविलासजी ने जो सार दिया है उसका एक आवश्यक भाग यहाँ देते हैं: —

यमपुर का बाजार, जयपुर सा, गलियाँ बनारस की सी, इमारतें दिल्ली और आगरे की सी हैं। भूख लगी थी; हलवाई की दुकान में इमरतियों का थाल देखकर लालच लग आया। सोचा, फिर तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर सकते नहीं, क्यों न हाथ साफ किया जाय, इमरतियाँ लेकर भागे। एक साधु बैकुण्ठ गए थे, परन्तु वहाँ चिलम तमाखू न पाकर बहुत निराश हुए। यमपुर में इस सबका प्रबन्ध है। धर्मराज की कचहरी के बाहर तिलंगे सिपाही भांग तमाखू को पूछते हैं और उन्हीं में से एक बूढ़ा यमपुर का महत्व बताते हुए कहता है—

"साधु गयल बैकुण्ठ के, मनही मन पछताय।
इहाँ रहके का करबो, इहाँ चिलम तमाखू नांय॥"

कुछ पुरवियों ने, जो सन् ५७ के विद्रोह में काम आये थे, इन्हें नरक दिखाने के लिए एक आदमी साथ कर दिया। नरक क्या था, चौरासी लाख जीवों का म्यूजियम था।

अलमारियों में जीव थे और बाहर उनका विवरण लिखा था। सबसे मजेदार बात यह कि गोरे काले का भेद यहाँ भी था। "गोरे जीव के आगे मेज, कुर्सी, टेबुल आदि लगी हुई और चाय, काफी, बिस्कुट धरा था। काले के वास्ते टाट और टूटी खाट और पुराना धुराना हुक्का और कूँड़े में रोटी।"

× × ×

"हमारे बहुत से राजों, बादशाहों, नवाबों, काजियों, पण्डितों की, मय कोतवालों, तहसीलदारों और दूसरे हुक्कामों की कैफियत देखने लायक थी। नीची नार किए बैठे थे, और पछताते थे कि हाय, हमने क्यों प्रजा पर जुल्म किया।" इन वाक्यों से राधाचरण गोस्वामी के उग्र विचारों पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।"

मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या—ने भारतेन्दु की हरिश्चन्द्र चन्द्रिका को अपनी मोहन चन्द्रिका के साथ मिला लिया था, और जैसे भारतेन्दु की हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रधानतः हरिश्चन्द्रजी की रचनाएँ रहती थीं, मोहन-चन्द्रिका में पांड्याजी की रचनायें रहतीं थीं। प्रधानतः नन्दलाल पांड्या ही इसके सम्पादन का कार्य करते थे। मोहनलालजी की शैली निम्न उद्धरणों से जानी जा सकती है—

'श्री श्री जगदीश्वर ने जैसे अनेक वस्तु हमारे भरत खण्ड को सुशोभित और मनोहर करने के लिये बनायी हैं वैसा ही श्री मथुरा मण्डल भी सौन्दर्य में सर्वसाधारण मनुष्यों को नितान्त आवश्यकता का मानो फल बनाया है; यद्यपि इस नगर के दो विभाग हैं तथापि दोनों एक ही नाम से प्रसिद्ध हैं। इस नगर की आकृति "....

× × ×

इस लेखक में साहित्यिक वृत्ति उतनी नहीं। इसमें वर्णन और शोध की दृष्टि तो है, वह भी विशेष गम्भीर नहीं। भौगोलिकता में इसे विशेष रुचि मिलती है। अतः इस लेखक में दृष्टि विस्तार पर्याप्त है।

शैली में संयम तो है पर निखार नहीं। हरिश्चन्द्र—शैली के ही लेखक हैं। लेखक अत्यन्त श्रद्धावान है। धार्मिक है। उसने इन दोनों भावों की रक्षा करते हुए विविध छोटे-छोटे विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। सभी निबन्धों पर सामयिक घटनाओं का प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने सामयिक घटनाओं का उल्लेख किया है, और उन्हें ऐसे प्रसङ्ग में उपस्थित किया है कि उनकी आलोचना भी व्यङ्ग से हो जाय। उससे हलकापन लाने का भी किंचित उद्योग तो किया विदित होता हैं, किन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। गम्भीरता आगयी है।

लाला श्रीनिवासदास—नाटक और उपन्यास लिखने के लिए जितने प्रसिद्ध हैं उतने निबन्धों के लिए नहीं। पर दिल्ली से इन्होंने १६३१ में 'सदादर्श' नामक पत्र निकाला था। उसमें तथा भूमिका रूपमें इन्होंने अपनी स्वतंत्र लेख प्रणाली का परिचय दिया है। इनकी भाषा संयत और सुथरी होती थी रचनाएँ सोद्देश्य होती थीं। वह विनोद और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनमौजी पन नहीं था जो भारतेन्दु तथा भट्ट और मिश्र में मिलता है।'

ठाकुर जगमोहनसिंह जी—में प्रकृति माधुरी, ग्राम्य-जीवन की सुषमा तथा मानव-सौंदर्य का अच्छा चित्रण मिलता है। 'भाव का प्रबलता से प्रेरित कल्पना के विलव और विशेष को अङ्कित करने वाली एक प्रकार की प्रलापशैली भी इन्होंने निकाली जिसमें रूपविधान का वैलक्षण्य प्रधान था न कि शब्द विधान का।' (शुक्लजी का इतिहास पृ० ५६७)

महादेव दुबे—भी अच्छे निबन्ध लेखक थे। पर इन्होंने सामयिक दृष्टि से ही निबन्ध लिखे हैं। अथवा धार्मिक विषयों और आचार पर। शुभाचरण की बड़ाई पर इन्होंने काफी विस्तार से लिखा था। इनकी शैली में तत्समता तो प्रधान है ही, किन्तु वाक्य लम्बे और जटिल बहुधा संतुलित उपवाक्य गर्भित होते है। प्रेरित पत्र से एक उद्धरण—

'धन्य हैं ऐसे-ऐसे सत्पुष सदाशय लोग जो अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म और धर्म पर प्रौढ और वद्ध परिकर हो निष्ठ रहते हैं। महाशय! मैं सत्य कहता हूँ कि नवीन आचाराधिकारियों, उन प्राचीन आर्य्य व्यवहार तिरस्कारियों तथा यज्ञादि कर्म्माद्विहिर्मुनियों और दावत प्रभृति कुकर्म्म आरोहियों पर एवं 'कौपिण्डं युग्मवस्त्रं च त्रिपुण्डञ्च तथा वरेत्' प्रभृति त्यागियों और कोट, बूट, पतलून धारियों पर इतना आक्षेप होता है जिसका वर्णन नहीं।"

'शुभाचरण की बड़ाई' में से एक उद्धरहण और देखा जाय:—

'सिवाय इसके यह ऐसा गुण है कि जो कोई चाहे उसको प्राप्त कर सकता है कुछ यह अवश्य नहीं कि इसको प्राप्त करने वाला राजा अथवा ऐश्वर्यवान ही हो जिससे सब कोई उसकी बड़ाई करें; नहीं केवल ईश्वर ही का देखना बहुत है, सत्य रूपी आभूषण ऐसा है कि उसकी बड़ाई करने के लिये उसको राज्य सभा रूपी सोने में जड़ना अवश्य नहीं है कैलाश की शोभा, कुछ चीन की नामी दीवार उसके आसपास खिंचने से, अधिक नहीं हो जाती; इसी भाँति सज्जनों के मन, ईश्वर की आज्ञानुसार सत्य और धर्म को ग्रहण करके बहुत ऊँचे हो जाते हैं कुछ आवश्यकता धन और ऐश्वर्य की नहीं होती।"

इसी 'मित्र-विलास' के परिकर के एक प्रसिद्ध लेखक हैं पण्डित मुरलीधरजी (फर्रुखाबाद के)। ये बहुधा लिखते रहे हैं, और हिन्दी-उर्दू के आन्दोलन में भी इन्होंने लेख द्वारा भाग लिया था। ज्योतिष, धर्मशास्त्र आदि पर भी इनका अच्छा अधिकार था। भाषा में प्रवाह है, शुद्धता की ओर प्रवृत्ति है, हलका भावात्मक स्पर्श भी मिल जाता है। इनकी विषय-विवेचन प्रणाली सतर्क और सप्रमाण है। इनके निबन्धों में 'विषय' को विषय की दृष्टि से विवेचित कर सत्य-निकर्ष निकालने की प्रवृत्ति भी है: 'ज्योतिष' लेख के आरम्भ में पाठकों को सम्बोधन है—

'प्रिय पाठकगण' हम बड़े खेद की दृष्टि से देखते हैं कि ज्योतिष विद्या की,.....इसी में लेखक ने व्यंग्य-चित्र खींचने की भी चेष्टा दिखाई है।

"ब्राह्मणजी ने अभी पत्रा भी चाहो नहीं देखा और विधि ध्यान में आई हो या न आई हो, यजमान लगे तकाजा करने" महाराज जलदी कुछ बतलावो तो बतलावो मुझे तो कचहरी जाने को देर होती है। कुछ समझ में आई या न आई, विध मिलो या न मिलो, महाराज लगे पट्टी सी पढ़ने और यजमानजी के मन-भावती कहने!...."

यथा स्थान शास्त्रों से उद्धरण भी लेखक ने दिये हैं; अन्य विद्वानों का मत भी देने का लेखक को चाव है—"यूरोप के प्रसिद्ध विद्वान् मोक्षमूलर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन है कि देवनागरी अक्षरों की समान कोई अक्षर दुनियां में नही हैं।"

—(मित्र विलास ७ अगस्त १८८२)

हरमुकुन्द—एक अन्य लेखक हैं, जो शरीर-विज्ञान धर्म आदि विषयों पर लिखते थे। इनकी भाषा में साधारण बोल चाल के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है,—जैसे 'बाँच के'। लेखक की भाषा में भाषण का ओज स्थान स्थान पर मिलता है: "बेटी बेचना" शीर्षक लेख में आरम्भ ही से यह ओज इन शब्दों में प्रकट हुआ है—"चाहे समय के फेर से, चाहे मुसलमानों के अत्याचार से, अथवा चाहे देश के मन्द भाग्य से कहो, परन्तु कुरीतियों ने हमारा देश खा लिया है।" उद्धरण भी स्थान स्थान पर आकर इस भाव-स्पर्श को और बढ़ा देते हैं: "हाय! भारत के भाग्य! एकस्य दुःखस्य न यावदंतं गच्छाम्यहं चारमिवार्णवस्य।.....

छोटे छोटे वाक्यों द्वारा संग्रहित-भाव प्रणाली उपस्थित करने का कौशल भी लेखक जानता है: "देश पर आलस छा रहा है। काम करने से लोग झिझकते हैं। समय को व्यर्थ गँवाते हैं। हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहते हैं। ....."बड़े वाक्य लिखने का तो वह अभ्यासी है ही।

पं० गणेशदत्तशर्मा—(लाहौर के) बहुधा धार्मिक विषयों पर ही लिखते रहे हैं, और उनका लक्ष्य आर्यसमाज तथा उसके द्वारा प्रचारित अन्य सामाजिक अथवा धार्मिक आचारों की आलोचना करना तथा 'सनातन धर्म की प्रतिष्ठा करना रहा है। आप में पाण्डित्य तो है ही पर अधिकांशतः वह सारा पाण्डित्य आर्य समाजियों पर फब्तियाँ कसने और उन पर आक्रमण करने तथा उन्हें धिक्कारने अथवा व्यंग कसने में व्यय होता था—"कहो आर्यसमाजियो! यह सम्पूर्ण उक्त धर्म आप लोगों में सिद्ध होते हैं?" वस्तुतः शर्माजी के लेख 'निबन्ध' नहीं कहे जाने चाहिएं। सामयिक उत्तेजना से वे इतने आक्रान्त रहते हैं कि उनमें लेखक का शुद्ध व्यक्तित्व नहीं आ पाता।

पं० बदरीनारायण चौधरी—'प्रेमधन' इस युग के प्रमुख साहित्य-सेवियों में हैं। ये 'आनन्द-कादम्बिनी' के सम्पादक थे। ये आलङ्कारिक-शैली के पण्डित थे। शब्द-चयन पर इनकी विशेष दृष्टि रहती थी। इन्होंने ही गद्य में भी कोमलकान्त पदावली का सफलता पूर्वक प्रयोग करके दिखाया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह शैली कहीं कहीं अत्यन्त कटु प्रतीत होने लगती है, कटु नहीं तो बोझल तो अवश्य ही हो जाती है। इन्हें 'पावस' से नैसर्गिक स्नेह विदित होता है। अपनी पत्रिका नाम 'आनन्द-कादम्बिनी' रख कर ही इन्हें सन्तोष नहीं हुआ, पत्रिका के स्तम्भ भी उसी परम्परा में रूपक बाँध कर रखे गये—जैसे 'सम्पादकीय सम्मति समीर', 'हास्य हरितांकुर' 'वृत्तान्त वलाकावलि' 'काव्यामृत वर्षा', विज्ञापन 'वीर बहूटियाँ'। इन में शब्दालङ्कार अनुप्रास की छटा भी आगयी है। पावस-प्रेम इनका इतना बढ़ा था कि ये इसे ही ऋतुराज मानते थे। इनके 'परिपूर्ण-पावस' में से ये पंक्तियाँ लीजिये: "जैसे किसी देशाधीश के प्राप्त होने से देश का रङ्ग-ढङ्ग बदल जाता है तद्रूप पावस के आगमन से इस सारे संसार ने भी दूसरा रङ्ग पकड़ा, भूमि हरी-भरी होकर नानाप्रकार की घासों से सुशोभित भई, मानों मारे मोद के रोमाञ्च की अवस्था को प्राप्त भई। सुन्दर हरित पत्रावलियों से भारत तरुगनों की सुहावनी लताएँ लिपट मानो मुग्ध मयङ्क मुखियों को अनुरागालिङ्गन की विधि बतलातीं। इनसे युक्त पर्वत-शृङ्गों के नीचे सुन्दरी हरी समूह से स्वच्छ जल-प्रवाह ने मानो पारक की धारा और बिल्लौर की ढार को तुच्छ कर युगल पार्श्व की हरी-भरी भूमि के, कि जो मारे हरे पन के श्यामता की झलक दे अलक की शोभा लाई है, बीच-बीच में माँग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काढ़ मन माँग लिया और पत्थर की चट्टानों पर सुबुल अर्थात् हंसराज की जटाओं का फैलावा बिथरी हुई लटों के लावण्य का लाना है।"

इस शैली में हमें गद्य-काव्यत्व तथा शब्द-चमत्कार मिलता है। लेखक प्रकृति-चित्र का अङ्कन करने के लिए व्यग्र है। उसके लिये वह विविध अलंकारों का उपयोग करता है। किन्तु अलंकार-प्रदर्शन तथा शब्द-चमत्कारों के आग्रह ने प्रकृति के स्वाभाविक चित्र के सौन्दर्य को शिथिल कर दिया है।

इस युग के लेखकों में शब्दों के आकर्षण से जो तुक-प्रियता मिलती है, वह प्रेमघन में भी विद्यमान है! तुक-प्रियता की परम्परा लल्लूलाल के समय से बराबर चली आयी है। प्रेमघनजी भी इस परम्परा में आते हैं। एक संवाद इस प्रकार दिया गया है:—

"दिव्य देवी श्री महाराणी बड़हर लाख झंझट झेल और चिरकाल पर्यन्त बड़े-बड़े उद्योग और मेल से दुःख के दिन सकेल अचल कोर्ट का पहाड़ ढकेल, फिर गद्दी पर बैठ गईं। ईश्वर का भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्य पर दुःख की रेलपेल और कभी उसी पर सुख की कुलेल है।"

बदरीनारायण चौधरी के लेखों में एक और दृष्टि से विशिष्ट साहित्यिकता थी। उनके लेखों में अन्य साहित्यिक रचनाओं तथा विषयों का उल्लेख रहा करता था—

इस प्रकार प्रेमघनजी ने हिन्दी साहित्य में एक विशेष किन्तु विलक्षण-शैली को अपनाया।

पं० भीमसेनजी—इस युग के उन लेखकों में से हैं, जिनमें आर्य-समाज के आदर्शों में अत्यन्त भक्ति थी। हिन्दी को उन्होंने 'आर्य-भाषा' के रूप में ग्रहण किया, और भरसक उसे आर्य (भारतीय) भाषा बनाने का यत्न किया। वे भाषा की विशुद्धता के प्रबल पोषक थे। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

"जो जाति स्वतन्त्र भाषा का अभिमान रखती हो, उस जाति के लिये अपनी भाषा को खिचड़ी बनाने की शैली, कभी उपयुक्त नहीं हो सकती।" भाषा की विशुद्धता का विचार आप में इतना उग्र था कि इन्होंने प्रचलित अरबी फारसी के शब्दों को भी संस्कृत बाना पहनाने की चेष्टा की। 'शिकायत' के लिए 'शिक्षम्यल', दुश्मन के लिए 'दुःशमन', 'चश्मा' के लिए चक्षमा आदि का प्रयोग उन्होंने किया, और अन्य अनेक शब्दों के लिए भी संस्कृत से मिलता-जुलता रूप गढ़ने में साहस दिखाया। जिन शब्दों का संस्कृत रूप नहीं मिला, उसे संस्कृत से सिद्ध करके सन्तोष किया। उदाहरणार्थ 'साहब' शब्द का पर्याय नहीं मिला तो उसे 'अहवेनसहवर्तते' इति साहब' के उल्लेख से अपना लिया।

पं० भीमसेन में उस काल की निज-गौरव और निज-भाषा की प्रतिष्ठा की भावना हमें सर्वोपरि मिलती है। आर्यसमाज ने इस भावना को विशेष जगाया था। निबन्धकार की दृष्टि से निश्चय ही पण्डितजी को विशेष महत्व का स्थान नहीं दिया जा सकता। उस समय की प्रचारक प्रवृत्ति उनकी लेखनी में अभिव्यक्त हुए बिना नहीं रह सकी, और उससे निबन्ध का साहित्यिक महत्व घट गया।

काशीनाथ खत्री—इस युग के अच्छे लेखकों में गिने जाते थे। इनके सामयिक निबन्ध, विशेषतः समालोचनाएँ इस काल के साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों में प्रकाशित होती रही थीं। इनके 'लेम्ब्स-टेल्स फ्रॉम शेक्सपीयर' के हिन्दी अनुवाद पर बड़ा बाद-विवाद छिड़ गया था। 'मित्र-विलास' इनके पीछे पड़ गया था, और पृष्ठ पर पृष्ठ उसने इनकी आलोचना में बलि किए थे। यथार्थ में खत्रीजी को निबन्ध लेखक नहीं माना जा सकता। आपकी रचनाओं में निबन्धता नहीं। आपने प्रायः आलोचनाएँ लिखीं, इस युग की आलोचनाएँ भी निबन्ध का रूप नहीं ग्रहण कर पायी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दुजी के तीन निबन्ध

[सत्येन्द्र]

यहाँ हम उदाहरण स्वरूप भारतेन्दुजी की तीन रचनाएँ दे रहे हैं। पहला निबन्ध उनकी शोधक-वृत्ति का परिचायक है और अपनी संस्कृति के गौरव में उनकी आस्था प्रकट करता है। दूसरा निबन्ध यात्रा सम्बन्धी है। कुछ स्थलों के कैसे स्वाभाविक और आकर्षक वर्णन उन्होंने लिखे हैं—वहाँ की बोली, रीति-रिवाज और अवस्था पर भारतेन्दुजी की गहरी, पैनी और सूक्ष्म दृष्टि पड़ी है, यह प्रवृत्ति आज भी हमारे लिये आदर्श प्रस्तुत करती है। तीसरी कृति भारतेन्दुजी का एक ऐतिहासिक प्रतिवाद पत्र है। उस पर उसी समय 'मित्र विलास' ने जो सम्पादकीय टिप्पणी दी थी वह भी ज्यों की त्यों दी जा रही है। साहित्य के विद्यार्थियों के लिए ये तीनों लेख मनोरंजन और अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

ईशु खृष्ट और ईश कृष्ण

'श्री हरिश्चन्द्रिका' पृ० सं० १, जनवरी सन् १८७६ ई०

पाठकगण को स्मरण होगा भारत भिक्षा में "भारत भुज बल लहि जग रच्छित, भारत सिच्छा लहि जग सिच्छित" लिखा है आज उसी का हम प्रमाण देना चाहते हैं न्याय प्रिय गण देखें कि जैसा भारत भिक्षा में कहा गया है वह उचित है कि नहीं।

समाज की उन्नति का मूल धर्म है। जहाँ का धर्म परिष्कृत नहीं वहाँ कभी समाज उन्नत नहीं। धर्म पर सब लोगों को ऐसा आग्रह रहता है कि उसको साक्षात परमेश्वर से उत्पन्न मानते हैं अतएव अन्य विषयों को छोड़ कर केवल धर्म पर हम विचार किया चाहते हैं और मुक्त होकर कहते हैं कि संसार के धर्माचार्य मात्र ने भारतवर्ष की छाया से अपने अपने ईश्वर देवता धर्म पुस्तक धर्मनीति, और निज चारित्र निर्माण किया है। जितने धर्म प्रचलित हैं या प्रचलित थे वह सब या तो वैदिकों का अनुगमन है या बौद्धों का। यहाँ तक कि प्रसिद्ध ईश्वर वाची शब्द भी इसी से निकलते हैं। अंग्रेजी में परमेश्वर को गाड (God) कहते हैं। यह गोतम का नामान्तर है। उत्तर के देश में गोतम को गोडमा कहते हैं इसी से यह गौड शब्द बना। फारसी में मूर्तियों को बुत कहते हैं। यह शब्द बुद्ध से निकला है। हरम हर्म्य से, सनम शंभु से, देरे देवल से देव देवता से, और ऐसे ही देवता वाचक अनेक शब्द दूसरे दूसरों से।

यह सब जाने दीजिये सृष्टि के आरम्भ से चलिये। भगवान मनु लिखते हैं कि प्रथम सब जगत सुषुप्त था फिर सर्व नियन्ता जगदीश्वर ने स्वशक्ति से उसमें प्रवेश पूर्वक उसको चैतन्य किया। यही यूनानियों के ऋषि केयस ने भी लिखा है। फिर परमात्मा ने अपने प्रकृति रूपी परिणत शरीर से प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से चिन्ता किया कि कैसे सब होगा' और यह चिन्ता करके पहले जल होय यह कह कर आकाशादि क्रम से जल सृष्ट किया। ओल्ड सिस्टेम (बाइबिल) के जिनि सिसि के प्रथम अध्याय को इससे मिलाओ वहाँ भी यही पाओगे। फिर परमात्मा ने जल से ब्रह्मा उत्पन्न किया उसने आकाश पृथ्वी स्वर्गादि निर्माण किया और महत्तत्व, अहङ्कार, गुण आदि की क्रम से सृष्टि हुई और उसमें मनुष्य पशु पक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थावरादि उत्पन्न हुए। फिर प्राण विशिष्ठ इन्द्रादि देवगण और कर्महेतुक पाषाणमय देवगण और साध्यनामक सूक्ष्म देवगण और अग्निष्टोमादि यज्ञ बनाये गये*। अंग्रेजी और यूनानी फिलासिफी में इस प्रकरण की छाया देख लीजिये। फिर वेद क्रिया काल ग्रह उन्नत अवनत स्थान तप सन्तोष इच्छा आदि सृष्टि हुई कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कर्म के विभाग के हेतु धर्म अधर्म की सृष्टि हुई। धर्म का फल सुख और अधर्म का दुख। (अब महाभारत के आदि पर्व में धर्म अधर्म के वर्णन से इस मनु कथित सृष्टि को तुलना कर के उससे मिलन का मृत्यु विषयक प्रस्ताव मिला कर पढ़ो) फिर पञ्च-महाभूतों के सूक्ष्म अंश और स्थूल अंश से जगत की सृष्टि हुई। (मिलन की ५ वी पुस्तक में स्वर्ग-च्युति के गल्प से इसको मिलाओ) फिर मानव सृष्टि हुई और आत्मा को उसके देहों में इसके प्रवेश का अधिकार दिया गया और एक को छोड़ कर दूसरे में भी (इससे सिद्ध हुआ कि Transmegration of Soul के प्रकट कर्त्ता भी मनु ही हैं।

ऐसे ही संसार के सब देवता भी भारतवर्ष ही के देवगण की छाया हैं। मिनर्वा नाम्नी यूरोप की प्राचीन देवी हम लोगों की भगवती दुर्गा है। मिनर्वा इन्दु के कन्धों से प्रगटी है यहाँ भी दुर्गा देवताओं के अंश (अंस कन्धे को भी कहते हैं) से प्रादुर्भूत हुई है। मिनर्वा भी सब शस्त्र लिये जन्मी है और दुर्गा भी दोनों सिंह वाहिनी हैं। मिनर्वा के एक हाथ में भाला दूसरे में मदुस का का सिर है (यह मदुस शब्द मधु वा महिष से निकला होगा) और दुर्गा का भी यही ध्यान है। मिनर्वा का दूसरा ध्यान कटे सिर का मुकुट पहने और सर्प लपेटे हैं और दुर्गा का भी। मिनर्वा को मुर्गे प्यारे हैं यहाँ देवी को भी कुक्कुट बलि दिये जाते हैं।

अब अपेल्लो को लीजिये। यह हिन्दुओं के श्रीकृष्ण का चित्र है। इसका सूर्य में निवास है और यहाँ भी नारायण का सूर्य में निवास है इस नाम के चार देवता थे। और यहाँ भी श्रीकृष्ण के चार व्यूह हैं। उसने थाइथन नामक सर्प को मारा और यहाँ भी कालिय दमन हुआ। वहाँ यह शिल्प औषध गान और रस का देवता है और यहाँ भी। उसका ध्यान सुन्दर युवा, लम्बे केश और हाथ में कभी धनुष कभी वंशी लिये है और यहाँ भी। वह पर्वत पर नव मित्रों के साथ विहार करता था यहाँ गिरिराज पर नव गोपियों के साथ विहार है।

वैसे ही जुपिटर* इन्द्र हैं। और इन दोनों को देवराजत्व प्राप्त है। यहाँ इसको अपने भाई टिटिन्स का डर था वहाँ हिरण्य कशिपु का। इन्द्र भी बड़ा लम्पट है और जुपिटर भी। जुपिटर का ध्यान सोने के सिंहासन पर, बिजली हाथ में लिए हुए, मेघों पर शासन करते हुऐ है और यहाँ बज्र हस्त है किन्तु जुपीटर के चरित्र में श्रीकृष्ण के बहुत से चरित्र मिला दिये हैं।‡

केवल यूरोप के मूर्तिपूजकों ही पर नहीं नये सम्प्रदाय वालों की भी यही दशा है जेब्रिल (जिबर-

* (See Plato's Theology concerning spiritual nature.)

* यद्यपि योरुप वालों ने हमारे देवताओं के चरित्र का बहुत अनुकरण किया है तथापि उनके देवताओं के वंश में बड़ी गड़बड़ है इससे वंश परम्परा को मिलान न करके केवल चरित्र मात्र का यहाँ उदाहरण दिया है।

‡ दिव धातु से देव वाची शब्द संसार में प्रसिद्ध है। भारत के इन्द्रदेव वा देवेन्द्र और यूनान में दियस वा जियस। दोनों बज्र पाणि वारि दाता दाम्भिक, पर्व्वत वासी और विलास सुख भोगी और एक वृत्र दानव हन्ता दूसरे टाइटस दानव हन्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईल) गरुड़ का अपभ्रंश है और गरुड़ जैसे परमेश्वर के सबसे उत्तम पार्षदों में है वैसे ही जिबरईल उत्तम फरिश्तों में। वरञ्च फरिश्ता शब्द ही परिषद का अपभ्रंश है। जिबरईल का ईश्वर की आज्ञा लाकर मत प्रवर्तक होने का उदाहरण भी रामानुज सम्प्रदाय में देख लीजिये। क्रिस्तानों के आचार्य्य जोजफेट करलेन हैं और यह महात्मा शाक्य सिंह की प्रतिमूर्ति है। दोनों के पिता ने चेष्टा किया कि जिसमें पुत्र संन्यासी न हो और उनको रम्य उद्यान में रक्खा। किन्तु संसार की असारता जान कर दोनों ही संन्यासी हो गये और दोनों ने अपने पिता नये धर्म से दीक्षित किया। सबसे ऊपर आनन्द की बात यह है कि जान जो मुख्य जोजफेट का महात्म प्रचारक है लिखता है कि जोजफेट भारतवर्ष में हुआ और हिन्दुस्तान से आए विश्वस्त लोगों से हमने उसका चरित्र सुना। अब बतलाइये जोजफेट-शाक्य सिंह ही का नामान्तर है कि नहीं।×

धर्म ही पर ही नहीं नीति सम्बन्धी भी यावत गल्प मात्र इसी भारतवर्ष से फैल कर और स्थानों में गई हैं। विलसन साहब लिखते हैं कि केयस नगर के घोड़ा का उपाख्यान भारतवर्ष में भी प्रचलित है किन्तु भेद इतना है कि भारतवर्ष में घोड़ा हाथी के स्वरूप है। उर्दू किताबों का यह किस्सा अत्यन्त प्रसिद्ध है कि टके की मुर्गी लेंगे, तब उसके अण्डे बच्चे होंगे, तब उनको बेच कर बकरी लेंगे, उसके बच्चे होंगे तो उनको बेच कर घोड़ी लेंगे, उसके बच्चे होंगे तो उससे रोजगार करेंगे, रुपया पैदा होगा तब बादशाह की बेटी से शादी करेंगे, जब वह शर्बत पिलाने आवेगी और खड़ी हो कर बिनती करके कहेगी कि मेरे प्यारे दूध पीओ तो हम एक लात मारेंगे, यह कह कर लात जो चलाया सो बरतन फूट गये। इसी से यह मसल निकली है कि तुम्हारा तो बर्तन फूटा हमारी गृहस्थी खराब हो गई। अंग्रेजी में इस गल्प को और तरह कहते हैं। करासीस में लाफन्टन कवि ने इसको पेरेट गोपिनी के नाम से लिखा है जिसने पूर्व की भाँति सोचते-सोचते अपना दधि भाजन फोड़ डाला। संसार की और भाषाओं में रूपान्तर से यह गल्प प्रसिद्ध है।

किन्तु इसका मूल कहाँ है? भारतवर्ष में पञ्चतन्त्र देखिए। उसमें यह किस्सा स्वभाव कृपण नामक ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है और हितोपदेश में देशवर्मा के नाम से। एक विद्वान ने लिखा है कि ब्राह्मण से एक साधारण चर्म-विक्रेता वा कुम्भकार इत्यादि नाम हुआ। अन्त में जब मुरसिक लाफेन्टन ने इस गल्प को लिखा तो उस शुष्क ब्राह्मण के स्थान पर नव यौवना ग्वालिनी को पुस्तक में स्थान दिया। अब कहिए कैसे संस्कृत वेश त्याग करके यह सब किस्से और भाषा में हुए और इतनी दूर पहुँचे। इन छोटे-छोटे किस्सों में एक ऐसी संजीवनी शक्ति है कि राज्य और धर्म का हेर-फेर हो जाय परन्तु यह सब छोटी छोटी गल्प बालकों और मुग्ध स्त्रियों के मुख द्वारा एक ही रूप से अनेक सहस्र कोश तक प्रचारित रहेंगे। महात्मा मोक्षमूलर लिखते हैं—"उन्नीसवीं शताब्दी में खीष्ट धर्म प्रधान देश में हम लोग अपने बालकों को जो एहिक और पारलौकिक ज्ञान की गल्पों में शिक्षा देते हैं वह धर्म विरोधी ब्राह्मणों और बौद्धों की पौराणिक धर्म की पुस्तकों में संग्रहीत है। अब इस बात को कोई न मानेगा किन्तु हजार दो हजार बरस पहले भारतवर्ष के किसी निर्जन बन और क्षुद्र पल्लियों में भ्रमण करने ही से यह सत्य बीज प्राप्त होता जो अब समस्त पृथ्वी में विस्तृत है और सरल बालकों के हृतक्षेत्र में सदा लहलहाता रहेगा। बड़े से बड़े विद्वान भी अपनी किसी नीति को इस सुरीति पर सर्व हृदयग्राही और चिर स्थायी नहीं कर सके हैं

× See Proffessor Mox Muller's Sanskrit Literature.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा कि इन गल्प रचितों ने सहज हृदयग्राही रचना की हैं किन्तु ये बुद्धिमान लोग कौन थे यह पता नहीं और संसार के और-और मानवोपकारियों की भाँति विस्मृति देवी के अपार उदर में यह भी शयन करते हैं। यदि दो सहस्र वर्ष पूर्व कोई भारतवर्ष में जाता तो ये महात्मा लोग मिलते। अब केवल हम यही कह सकते हैं कि यह अति चातुर्य्य उन्हीं लोगों का है जिनको अब कोई कोई निगरो पुकारा करते हैं।"

अयोध्या

'श्री हरिश्चन्द्रिका' पृ० सं० ११, फरवरी सन् १८७६ ई०

सरयू पार की यात्रा—

कल साँझ को चिराग जले रेल पर सवार हुए। यह गए वह गये। राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़। न जाने क्यों? और मजा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था। यह कम्पनी यजीद के खानदान की मालूम होती है कि ईमानदारों को पानी तक नहीं देती। या सिप्रस का टापू सरकार के हाथ आने से और शाम में सरकार का बन्दोबस्त होने से यह भी शामत का मारा शामी तरी का अख्तियार किया है कि शाम तक किसी को पानी न मिले। स्टेशन के नौकरों से फरियाद करो तो कहते हैं कि डाक पहुँचावें, रोशनी दिखलावें कि पानी दें। खैर जों तों कर अयोध्या पहुँचे। इतना ही धन्य माना कि रामन बर्मा की रात अयोध्या में कटी। भीड़ बहुत ही है। मेला दरिद्र और मैले लोगों का। यहाँ के लोग बड़े ही कंगलटिरें हैं। इस वक्त दो पहर को अब उस पार जाते हैं। ऊँट गाड़ी यहाँ से पाँच कोस पर मिलती हैं।

कैम्प हरैया बाजार—

अब तक तीन पहर का सफर हो चुका है। और सफर भी कई तरह का और तकलीफ देने वाला। पहिले सरा से गाड़ी पर चले। मेला देखते हुए रामघाट की सड़क पर गाड़ी से उतरे। यहाँ से पैदल धूप में गर्म रेती में सरजू के किनारे गुदारा घाट पर पहुँचे। वहाँ से मुश्किल से नाव पर सवार हो कर सरजू पार हुए। वहाँ से बेलवाँ जहाँ कि डाक मिलती है और शायद जिसका शुद्ध नाम विल्वग्राम है दो कोस है। सवारी कोई नहीं, न राह में छाया के पेड़, न कूआं न सड़क, हवा खूब चलती थी। इससे पगडंडी भी नहीं नजर पड़ती बड़ी मुश्किल से चले और बड़ी ही तकलीफ हुई। खैर बेलवाँ तक रो रोकर पहुँचे। वहाँ से बैल की डाक पर ६ बजे रात को यहाँ पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही हरैया बाजार के नाम से यह गीत याद आया 'हरैया लागल झविआ करे लेहैं ना' शायद किसी जमाने में यहाँ हरैया बहुत बिकती होंगी। इसके पास ही मनोरमा नदी है। मिठाई हरैया की तारीफ के लायक है। बालूसाही सचमुच बालूसाही भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए। लड्डू 'भूरके'। बरफी अहा हा हा! गुड़ से भी बुरी। खैर लाचार होकर चने से गुजर की। गुजर गई गुजरान क्या झोंपड़ी क्या मैदान। बाकी हाल कल के खत में।

बस्ती—

परसों पहिली एप्रिल थी। इससे सफर करके रेती में बेवकूफ बनने का और तकलीफ से सफर करने का हाल लिख चुके हैं। अब आठ बजे सुबह रें रें करके बस्ती पहुँचे। वाहरे बस्ती! झख मारने को बसती है अगर बस्ती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किसको कहेंगे? सारी बस्ती में कोई भी पंडित बस्तीराम जो ऐसा पंडित नहीं। एक दिन तो यहीं बसति होगी। राह में मेला खूब था। जगह-जगह पर शहरवे का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहरवा। चूल्हे जल रहे हैं। सैकड़ों अहरे लगे हुए हैं। कोई गाता है, कोई बजाता है, कोई गप हाँकता है। रामलीला के मेले में अवध प्रान्त के लोगों का स्वभाव रेल, अयोध्या और इधर राह में मिलने से खूब मालूम हुआ। वैसवारे के पुरुष अभिमानी, रूखे, और रसिक मन्य होते हैं। रसिक मन्य ही नहीं वीर मन्य भी। पुरुष सब पुरुष और सभी भीम, सभी अर्जुन, सभी सूत पौराणिक और सभी वाजिदअलीशाह। मोटी-मोटी बातों को बड़े आग्रह से कहते सुनते हैं। नई सभ्यता अभी तक इधर नहीं आई है। रूप कुछ ऐसा नहीं पर स्त्रियाँ नेत्र नचाने में बड़ी चतुर। यहाँ के पुरुषों की रसिकता मोटी चाल और खड़ी मोंछ में छिपी है और स्त्रियों की रसिकता मैले वस्त्र और सूप ऐसी नथ में। अयोध्या में प्रायः सभी ग्रामीण स्त्रियों के गोल गाते हुए मिले। उनका गाना भी मोटी रसिकता का। मुझे तो उनके सब गीतों में 'बोलो प्यारी सखियो सीताराम राम राम' यही अच्छा मालूम हुआ। राह में मेला जहाँ पड़ा मिलता था वहाँ बरात का आनन्द दिखलाई पड़ता था। खैर मैं डाक पर बैठा बैठा सोचता था कि काशी में रहते-रहते तो बहुत दिन हुए परन्तु शिव आज ही हुए क्योंकि वृषभ वाहन हुए। फिर अयोध्या याद आई कि हा! यह वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सबसे पहले राजधानी बनाई गई। इसी में महात्मा इक्ष्वाकु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, अज, रघु, श्री रामचंद्र हुए हैं। और इसी के राजवंश के चरित्र में बड़े-बड़े कवियों ने अपनी बुद्धिशक्ति की परिचालना की है। संसार में इसी अयोध्या का प्रताप किसी दिन व्याप्त था और संसार के सारे लोग इसी अयोध्या की कृपाण से किसी दिन दबते थे वही अयोध्या अब देखी नहीं जाती। जहाँ देखिये मुसलमानों की कब्रें दिखलाई पड़ती हैं और कभी डाक पर बैठे रेल का दुख याद आ जाता कि रेलवे कम्पनी ने क्यों ऐसा प्रबन्ध किया है कि पानी तक न मिले। एक स्टेशन पर एक औरत पानी का डोल लिये आई भी तो गुपला-गुपला पुकारती रह गई। जब हम लोगों ने पानी माँगा तो लगी कहने कि 'रहः हो पानियें पानी पड़ल हौ' फिर कुछ ज्यादा जिद से लोगों ने माँगा तो बोली 'अब हम गारी देब' व्याह का इन्तजाम था। मालूम होता है कि रेलवे कम्पनी स्वभाव Nature की बड़ी शत्रु है क्योंकि जितनी बातें स्वभाव से सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् खाना, पीना सोना, मलमूत्र त्याग करना उन्हीं का इसमें कष्ट है। शायद इसी से अब हिन्दुस्तान में रोग बहुत। कभी सराय की खाट के खटमल और भटियारियों का लड़ना याद आया। यही सब याद करते कुछ सोते कुछ जागते हिलते-हिलते आज बस्ती पहुँच गये। बाकी फिर। यहाँ एक नदी है उसका नाम कुआनय। डेढ़ रुपया पुल की गाड़ी का महसूल लगा।

बस्ती के जिले की उत्तर सीमा नैपाल, पश्चिमोत्तर की गोंडा, पश्चिम दक्षिण अयोध्या और पूरब गोरखपुर है। नदियाँ बड़ी इसमें सरयू और इरावती। सरयू के इस पार बस्ती उस पार फैजाबाद। छोटी नदियों में कुनेय, मनोरमा, कठनेय, आमी, बानगङ्गा और जमवर है। बरकरा ताल और जिरजिरवा दो बड़ी झील भी हैं। बांसी बस्ती और मकहर तीन राजा भी हैं। बस्ती सिर्फ चार पाँच हजार की बस्ती है, पर जिला बड़ा है क्योंकि जिले की आमदनी चौदह लाख है। साहिब लोग यहाँ कुल दस बारह हैं, उतने ही बङ्गाली हैं। अनारवाला मैंने खोजा एक भी न मिला। सिर्फ एक है वह भी गोरखपुरी। पुरानी बस्ती खाई के बीच में बसी है। राजा के महल बनारस के अरदली बाजार के किसी मकान से उम्दा नहीं। महल के सामने मैदान, पिछवाड़े जंगल और चारों ओर खाई है। पाँचसौ खटिकों के घर महल के पास हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो आगे किसी जमाने में राजा के लूटमार के मुख्य सहायक थे। अब राजा के स्टेट के मैनेजर कूक साहब हैं।

यहाँ के बाजार का हम बनारस के किसी भी बाजार से मुकाबिला नहीं कर सकते। महज वे हैसियत महाजन एक यहाँ हैं वह टूटे रूपड़े में बैठे थे। तारीफ यह सुना कि स्कूल में दो बार कैद होते हैं क्यों कि महाजन पर जाल करना फर्ज है उसको भी छिपाने का शऊर नहीं। यहाँ का मुख्य ठाकुरद्वारा दो-तीन हाथ चौड़ा उतना ही लम्बा और उतना ही ऊँचा बस। पत्थर का कहीं दर्शन भी नहीं है। यह हाल बस्ती का है। कल डांक ही नहीं मिली कि जांय। महँदावल को कच्ची सड़क है इससे कोई सवारी नहीं मिलती आज कहार ठीक हुए हैं भगवान ने चाहा तो शाम को रवाना होंगे। कल तो कुछ तबियत भी बिगड़ गई थी इससे आज खिचड़ी खाई। पानी यहाँ का बड़ा बातुल है। अक्सर लोगों का गला फूल जाता है, आदमी ही का नहीं कुत्ते और सुग्गे का भी। शायद राजा फूल कबूतर यहीं से निकले हैं। बस अब कल महँदावल से खत लिखेंगे।

मेंहदावल—

आज सुबह सात बजे मेंहदावल पहुँचे। सड़क कच्ची है राह में एक नदी भी उतरनी पड़ती है उसका नाम आमी है। छः आना पुल का महसूल लगा। रात को ग्यारह बजे पालकी पर सवार हुए। बदन खूब हिला। अन्न भी नहीं पचा, इस वक्त यहाँ पड़े हैं। यहाँ मक्खी बहुत हैं और आबादी बहुत है। दो लड़कों के स्कूल हैं और एक लड़कियों का स्कूल है और एक डाक्टरखाना है। बस्ती शहर है मगर उससे यह मेंहदावल गाँव बहुत ही आबाद है। फैजाबाद से ५॥) बस्ती तक डाक का लगा और बस्ती से मेंहदावल तक ३॥।) पालकी का। अभी एक गँवार भर्ता आया था बेतरह बका। फूहर औरतों की तारीफ में एक बड़ा भारी पचड़ा पढ़ा। यहाँ गरमी बहुत है और मक्खियाँ लखनऊ से भी जियादह। दिन को बड़ी बेचैनी है।

यहाँ की औरतों का नाम श्यामतोला, रामतोला, मनतोरा इत्यादि विचित्र-विचित्र होता है और नारङ्गी को भी यही श्यामतोला कहते हैं जो सङ्कतरा का अपभ्रंश मालूम होता है! क्योंकि यहीं के गँवार सन्तोला कहते हैं। यहाँ एक नाई बड़े पंडित थे। उनसे किसी पंडित ने प्रश्न किया 'कि दूध' (तुम कौन जात हौ) तब नाई ने जवाब दिया कि 'चटपटाक चटपटाक (नाई)' तब ब्राह्मण ने कहा 'तं दूरं' (तुम दूर जाओ) तब नाई ने जवाब दिया 'किं छोरं' (तब मूंड कौन मूड़ेगा) एक का बाप डूब कर मर गया उसके बाप का पिण्डा इस मन्त्र से कराया गया 'आर गङ्गा पार गङ्गा बीच में पड़ गई रेत। तहाँ मर गया नामर चले बुजबुजा देत। धर दे पिण्डवा'।

कुछ फुटकर हास्य भी यहाँ का सुन लीजिये कल मजहब का हाल हमने नीचे लिखा था उसका अच्छी तरह हाल दर्याफ्त किया तो मालूम हुआ कि हमारे ही मजहब की शाखा है। इनके ग्रन्थों हमने एक श्लोक श्री महाप्रभुजी की श्री सुबोधिनी कार्यकारिणी का देखा इसी से हमको सन्देह हुआ फिर हमने बहुत खोद-खोद कर पूछा तो यह मालूम हुआ कि इसी मत से यह मत निकला क्योंकि एक बात वह और बोले कि हमारा श्री वल्लभाचारज की टीका में लिखा है। इन के उपास्य श्रीकृष्ण हैं। और एकादशी शाल मूर्तिपूजा तीर्थ किसी को नहीं मानते। इनके आचार्य देवचन्द्रजी थे जो जात के कायस्थ थे दूसरे प्रारम्भनाथजी जो कच्छ के क्षत्री (भाटि थे। हमारे ही मत की शाखा सही पर वि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Reformed) मत है वैष्णव होकर मूर्तिपूजा का खण्डन करने वाले यही लोग सुने।

यहाँ बूढ़े को खबीस, व्रत को बेनोराम, भोजन को बुलेना, जात को दूध, ऐसे ही अनेक विचित्र-विचित्र बोली हैं।

गाँव गन्दा बड़ा है और लोग परले सिरे के बेवकूफ। यहाँ से चार मील पर एक मोती झील है दर हकीकत देखने लायक है। कई कोस लम्बी झील है और जानवर तरह-तरह के देखने में आते हैं। पहाड़ों से चिड़ियाँ हजारों ही तरह की आती हैं और मछली भी इफरात। पेड़ों पर बन्दर भी। मेंहदावल में कोई चीज भी देखने और लेने लायक नहीं जहाँ देखो वहाँ गन्दगी। लोग बज्र मूर्ख। क्षत्री ब्राह्मण जियादा। एक यहाँ प्राननाथ का मजहब है और दस बीस लोग उसके मानने वाले हैं। ये लोग एकादशी तीर्थ बगैरह को नहीं मानते और कहीं से सुने सुनाये दो तीन श्लोक जो याद कर लिये हैं बस उसी पर चूर हैं। 'मदीनास्यां शरदां शतं' और 'गोविन्दं गोकुलानन्दम मक्केश्वर' यह श्लोक पढ़के कहते हैं कि वेद में मक्का-मदीने का वर्णन है ऐसे ही बहुत वाहियात बात कहते हैं और कोई कितना भी कहे कुछ सुनते नहीं। कहते हैं कि गोलोक का नाश है और गोलोक के ऊपर एक 'अखण्ड मण्डलाकार' लोक है उसमें गोरे कृष्ण हैं। इनका मजहब प्राणनाथ नामक एक खत्री ने पन्ना में करीब तीन सौ बरस हुए चलाया था। यहाँ चैत सुदी भर रात को औरतें जमा हो कर माता का गीत गाती हैं और बड़ा शोर करती हैं। असभ्य बकती हैं। व्यभिचार यहाँ वे तकल्लुफ है। सरयू पार के ब्राह्मण बड़े विचित्र हैं। मांस मछली सब खाते हैं। कुए के जगत पर एक आदमी जो पानी भरता हो दूसरा आदमी चला आवे तो अपना घंड़ा फोड़ डालें और उससे घड़े का दाम ले। घड़ा कोई कहे तो घड़ा छू जाय क्योंकि घड़ा मुसल्मानी लफ्ज है दाल कहे तो छू जाय क्योंकि दाल मुसल्मानी है। सूरजवंशी छत्री राजाबाबू को छाता नहीं लगता है क्योंकि वे तो सूरजवंशी हैं सूरज से क्या छाता लगावें। नेम बड़ा धरम बिल्कुल नहीं। एक ब्राह्मण ने कोंहार से नई सनह की मोल लेकर उसमें पूरी बना कर खाया इससे वह जात से निकाल दिया गया क्योंकि जैसे मुसल्मान बर्तन में खाना बना कर खावै उस आकार के बर्तन में इसने हिन्दू हो कर खाना बनाया। हहा हा! और मजा यह कि ताजिये को सब मानते हैं। मेंहदावल में एक थाना है थानेदार यहाँ के बादशाह हैं एक डाक्टर खाना भी है। यह बड़ा सरकार का पुन्य है। बस हमको तो सर्कार के पुन्य में कसर यही मालूम देती है कि पुलों पर महसूल लिया जाता है क्योंकि भला नाव या ऐसे पुल पर महसूल लगे तो ठीक है जिसकी हर साल मरम्मत हो पक्के पर भी महसूल। बस्ती में अगरवाला नहीं एक हैं सौ जूता उतार कर लालची खाते हैं मेंहदावल में एक आगरे वाले हैं मुसल्मान फर्श पर यहाँ नहीं बैठते। पिण्डारे जिन को इस जिले में जमीन मिली है अब नवाब हो गये हैं और उनकी मुस्तैदी आराम से बदल गई है। यहाँ कहीं-कहीं धारू लोगों का रक्खा सोना खोदने से मिलता है। यहाँ के बाबू ऐसे हठी कि बंगला गिर पड़ा पर जूता उलटा था खिदमतगार को पुकारा वह न आया इससे आप वहाँ से न चले और दब कर मर गये।

गोरखपुर—

दोहा

अहो बरनि नहिं जात है आज लह्यो जो खेद।
आतप ऊष्मा वायु सों चल्यौ नखन सों खेद॥
प्रिय दुरगा परसाद गृह ठहरे हैं इत आय।
बाट बिलोकत दुष्ट की रहे इतहि बिलगाय॥
आवत ह्वै हैं दुष्ट सो लीने नग निज माथ।
पै निकस्यौ जो खोट तो रहि हैं हम धुनि माथ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करम लिखी सो होय है जामें कछु न संदेह।
वृथा लोभ बस लोग सब छाँड़त सुख में गेह॥
"करन कमंडल कर गहे तुलसी जहँ जहँ जाय।
सरिता सागर कूप जल बंद न अधिक समाय"॥
तऊ सोच कछु नहिं करिय मम प्रभु मंगलधाम।
करि हैं सब कल्यान ही यामें कछु न कलाम॥
रजिस्ट्री को पत्र इक गयो होइ है तत्र।
ताहि जतन करि राखियो फिरि नहिं आवै अत्र॥
जेहि छन सो खुल आइ है ताही छन दिखराइ।
ताहि तुरन्तहि लौटि हैं तितहैं पहुंचि है आइ॥
नित प्रबन्ध सब राखिहौ रहि हौ ह्वै हुसियार।
कीजों रक्षा अंग की करि उपाय हर बार॥
आवत हैं हम बेगहीं यामें संसय नाहिं।
अति व्याकुलता तित बिना मेरेहू जिय माहिं॥
प्रतिपद माधव की प्रथम रस शिव दृग गृह चंद।
संवत मंगल के दिवस लिख्यौ पत्र हरिचन्द॥

'बाबू हरिश्चन्द्र पर झूठा अपवाद'

मित्र विलास पृ० सं ३७, अगस्त १३ सन् १८८३ ई०

फौजदारी आईन संशोधन अर्थात् 'इल्बर्ट बिल' पर अँग्रेजों और दोगलों ने जो कोलाहल मचाया वह किसी से छिपा नहीं है। इस कोलाहल में जिन २ बेशर्मियों, 'बेईमानियों' और गालियों का काम लिया गया वह भी सब छिपी नहीं है। यह सब काम तो हिन्दुस्तान में हुए पर विलायत में भी यह 'फिसादी', 'शरारती' दुराग्रही और झूँठे अँग्रेज अपने इन गुणों को कलका कर बक-बक करने से न टले और सब झकमारने के बिना हमारे देश के एक सुप्रसिद्ध हितैषी, निस्वार्थी, परोपकारी, परम उत्साही और हम सब के परम प्रिय पात्र और शुभ आशाओं के मूल कारण 'भारतेन्दु' बाबू हरिश्चन्द्र को भी ऐसे अपवादों में लिप्त करना चाहा कि यदि वह सत्य निकल आते तो हमारी आशाओं के जहाज अथाह समुद्र में गोते खाता एक बारगी मग्न होकर डूब जाता। विलायत में जो सभा इन लोगों ने की यद्यपि उसमें उन धूर्त अँग्रेजों की मिट्टी ही खराब हुई परन्तु हमें इस बात पर असह्य शोक होता है कि यह लोग ऐसे निर्लज्जता का आचरण करके भी अपने को प्रतिष्ठित अँग्रेजों में गिनते हैं। यदि ऐसे ही लोग 'प्रतिष्ठित' अँग्रेज हैं तो इनसे जितना शीघ्र हिन्दुस्तान मुक्ति पावे उतना ही अच्छा है। लैथब्रिज साहब, वकलैंड साहब, मैत्तीन साहब, और कर्नल विल्सन इत्यादिक लोगों ने जिनमें से कइयों को हम अपने देश का हितकारी समझते थे अपनी-अपनी प्रकृति ऐसी प्रकट की कि हमें ऐसे लोगों का नाम सुन कर अब घृणा उत्पन्न हो रही है। अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करते हुए इन लोगों को लज्जा नहीं आती और विशेष ऐसे समय में जब कि उस आत्म आज्ञा की कट पट कलई खुल जाती है। लैथब्रिज साहब अपने मुँह से कहने लगे कि मैं भारतवासियों की भलाई की बड़ी चेष्ठा करता रहा..... "पाठक जान सकते हैं कि जो किसी की भलाई करते हैं वह इस प्रकार निर्लज्जता से सिंहनाद नहीं करते और जो यह नाद करते हैं वास्तव में वह कोई धूर्त और स्वार्थी ही हैं - अस्मात हमें कुछ भय नहीं जब हम लैथ-ब्रिज ऐसे लोगों को 'हाथ में तसवी बगल में फाँसी' का अनुकरण करने वालों की मंडली में गिनते हैं।

कर्नल विलसन एक पैर और भी बढ़ गये। उन्होंने अपने झूँठे बचनों को झूठे प्रमाणों से सिद्ध करना चाहा। उन्होंने अपनी गंदी वक्तृता को पुष्ट करने, बंगालियों को गालियाँ देने, भारत-वासियों को बिल के विरुद्ध करने में बाबू हरिश्चन्द्र को अपना सहायक बनाया और स्पष्ट कह दिया, कि 'यह दो हिन्दी की लिखी हुई चिट्ठियाँ मेरे पास हैं जो हिन्दुओं के मुख्य नगर काशी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवासी हरिश्चन्द्र ने लिखीं हैं और उनमें यह वर्णन किया है कि बंगालियों ने वृथा यह शोर मचाया है तथा इसको बंद करने की सब छोटे-बड़ों को चेष्टा करनी चाहिए। ऐसे समय में जब कि एक गाँव की बात का समाचार दूसरे गाँव में पहुँचना कठिन था। यदि कर्नल विलसन साहब यह झूँठ उगलते तो शायद उनका मुँह काला होने से बच भी जाता। परन्तु अब तो वह बच नहीं सकते? ज्योंही यह समाचार अर्थात् उनकी वक्तृता का सार यहाँ के देश निवासियों को मालूम हुआ तो उन्होंने इस बात पर आश्चर्य करना प्रकट किया। हरिश्चन्द्र महाशय से नाना लोगों ने इस बात की असलियत पूछी। इन सब प्रश्नों और मित्रों के पत्रों के उत्तर में जो कुछ बाबू हरिश्चन्द्र यथार्थ में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' ने लिखा है हम उसको यहाँ पर प्रकट करते हैं:—

"प्रियवरेषु!

जैसा कुछ सब समाचार पत्रों में यह समाचार प्रसिद्ध हो रहा है उसे सम्भव है कि लोग मुझको बिल के वा देश के विरुद्ध सोचलें इससे जो पत्र मेरे लिखे हुए उनके (कर्नेल मेलिसन के) हाथ में थे उनका विषय प्रसिद्ध कर देना बहुत ही आवश्यक बात है। विलायत में एक मेरे मित्र फ्रेडरिक विनकाट साहब हैं, ये हिन्दी भाषा के बड़े रसिक हैं और हिन्दी संसार इनके निकट सर्वदा कृतज्ञता पाश में बद्ध है, क्योंकि सिविल सर्विस की परीक्षा में इन्हीं के परिश्रम से हिन्दी भाषा प्रविष्ठ हुई है, ये कन्सर्वेटिव दल के हैं, इनको मैंने इधर जो पत्र लिखे थे उनमें इलबर्ट बिल का भी जिकर था उसमें यह विषय था। 'आज कल इलबर्ट बिल के कारण भारतवासियों में और अंग्रेजों में जो प्रबल द्वेषाग्नि प्रज्वलित हुई है उसको देख कर मेरा चित्त बहुत डरता है, इस समय में जितने देष हितैषी लोग हैं उनका मुख्य कर्त्तव्य यह है कि जैसे हो इस अग्नि को बुझावें, आप भी वहाँ ऐसा उद्योग कीजिए कि अग्नि शान्ति हो।' केवल इतना पहले पत्र में था, फिर जब उन्होंने अपने पत्र में इस बिल के पक्ष में विशेष आग्रह प्रकट किया तो मैंने यह लिखा था। 'बड़े शोच की बात है कि आप सा बुद्धिमान ऐसे आग्रह करे। यद्यपि निस्सन्देह इस बिल से भारतवर्ष का कोई उपकार विशेष नहीं क्योंकि न इससे कोई टैक्स छूटता है न कोई भारतवर्ष की आमदनी का द्वार खुलता है न कोई और देश की उन्नति होती है जिसके हेतु हम लोग इस बिल के हेतु प्राण छोड़ कर लड़ें, किन्तु यह भी मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजों को इसका ऐसा भारी आग्रह क्यों है? इससे अंग्रेजों की क्या मानि हानि हुई, यह मेरी समझ में नहीं आता; दीवानी के फैसले यहाँ हिन्दुस्तानी सर्वदा से करते ही हैं और टीन अर्थात कलकत्ता, बम्बई आदि में हिन्दुस्तानी 'जष्टिस आफ दी पीस' लोग अंग्रेजों का फैसला करते ही हैं, फिर नयी क्या होती है जिसका इतना अर्थ है। और कुछ फल हो या न हो निस्सन्देह इस बिल का यह बुरा फल अवश्य हुआ कि परस्पर दो जातियों में विद्वेष हो कर चित्त फट गया इस आग को जिस उपाय से हो शीघ्र बुझाना चाहिए।"

"आप स्वयं सोच लीजिए कि इसमें मैंने क्या योग्य लिखा है, क्या अयोग्य लिखा है और बिल की विरुद्धता और बङ्गालियों की निन्दा इसमें कहाँ कहाँ है। इस बिल का फल बुरा हुआ यह मैंने उनको भी लिखा और अब भी लिखता हूँ, इसके अतिरिक्त कुछ विषय, मैंने नहीं लिखा है। आशा है कि नवयुवकों का रुधिर मेरा समाचार पढ़ कर सन्तप्त हो गया होगा और बिना मुझसे इस विषय की सत्यता जाँचे मुझे गालियाँ देंगे किन्तु मैं उनके वाक्यों को सहन करने को उद्यत हूँ और यह सत्य-वृत आपके द्वारा जन साधारण पर प्रकट करके निश्चिन्त रहूँगा। "आपका स्नेही हरिश्चन्द्र"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दुजी की भूमिकाएँ और समर्पण

श्री प्रभाकर माचवे एम० ए०

महान लेखकों की पुस्तकों के अध्ययन के समान, उनके ग्रंथों के समर्पण और भूमिकाएँ भी कम मनोरंजक नहीं होती। वे भी साहित्य के एक विद्यार्थी के लिए अध्ययन की सामग्री होती हैं। उनमें झलकनेवाला लेखक का व्यक्तित्व उनकी भाषा शैली और विषय-वस्तु से निर्णीत होता है।

भारतेन्दु संस्कृत मूलक हिन्दी के प्रेमी थे, नाट्य-प्रिय मौजी जीव थे, विनोदी थे और उत्कट प्रेमी। यह उनके कतिपय नाटकों और कविता ग्रंथों के आरंभिक पृष्ठों से व्यक्त हो जाता है। कुछ उदाहरण दे रहा हूँ।

उन्होंने बनारस में मि० वैशाख १, सं १९२५ को 'रत्नावली' की भूमिका में लिखा था—

'हिंदी भाषा में जो सब भाँति की पुस्तकें बनने के योग्य हैं, अभी बहुत कम बनी हैं, विशेष करके नाटक तो [कुँवर लक्ष्मणसिंह के शकुन्तला के सिवाय] कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिनको पढ़ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रकट हो। इस वास्ते मेरी ऐसी इच्छा है कि दो चार नाटकों का तर्जुमा हिन्दी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।'

अनुवादों का यह प्रेम भारतेन्दु-युग के प्रायः सभी लेखकों में मिलता है। आजकल जैसे वह क्षीण हो गया है। मौलिक लेखक अनुवाद कम करते हैं; शायद करना पसन्द नहीं करते। 'नाटक' पुस्तक का समर्पण कैसी सामासिक शैली में है :

"हे मायाजवनिकाच्छन्न! जगन्नाटक-सूत्रधार! भदंगरंग नायक! नटनागर! जिसने इस इतने बड़े संसार-नाटक को रचकर खड़ा किया है, जगदंतः पाती वस्तुमात्र उसी को समर्पणीय है, विशेष कर नाटक-सम्बन्धी और वह भी उसी के, एक अभिमानीजन की।"

यही संस्कृतमयी शैली 'भक्त-सर्वस्व' की प्रस्तावना में है तीन परिच्छेदों में अन्तिम है—"अनुप्रासों की संकीर्णता से इसमें पुनरावृत्ति बहुत है, जिसको रसिक लोग (भगवन्नामांकित जानकर) क्षमा करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि जो रसिक भगवदीय जन इसको पाठ करें, वह मेरे (इस) बाल-चापल्य को क्षमा करें और (जहाँ तक हो सके) इस पुस्तकों को कु-रसिकों से बचावें और अनुग्रहपूर्वक सर्वदा मुझ से दीन को (अपना दास जानकर) स्मर्ण रक्खें। —श्री हरिश्चन्द्र।"

यही शैली कविता-ग्रंथों के केवल भक्तिमूलक रचनाओं में नहीं, परन्तु अन्यत्र भी मिलती है। दूसरे कविता-ग्रन्थ 'मधु-मुकुल' के 'समर्पण' में उन्होंने लिखा है :

"हृदयवल्लभ!

यह मधु-मुकुल तुम्हारे चरण-कमल में समर्पित है, अङ्गीकार करो। इसमें अनेक प्रकार की कलियाँ हैं, कोई स्फुटित कोई अस्फुटित, कोई अत्यन्त सुगन्धमय कोई छिपी हुई सुगन्ध लिए, किन्तु प्रेम सुवास के अतिरिक्त और किसी गन्ध का लेश नहीं। तुम्हारे कोमल चरणों में ये कलियाँ कहीं गड़ न जायँ, यही सन्देह है! तुम्हारा – हरिश्चन्द्र"
फागुन कृष्ण १ सं० १९३७]

इन भूमिकाओं का अध्ययन भाषा की दृष्टि से भी किया जा सकता है। कहीं-कहीं वे अंग्रेजी पुस्तकों विशेषतः नाटकों के अनुकरण में हैं, तो कहीं बंगला पुस्तकों की तत्कालीन अर्पण-पत्रिकाओं का छाया-प्रभाव उन पर दिखायी देता है। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बहुभाषा-भिज्ञता के द्वारों को मुक्त कर दिया है, और उनका रसिक मानस एक प्रकार की धाराओं से ओत-प्रोत है - कभी फारसी का शैर लिख देते हैं, तो कभी कोई संस्कृत श्लोक। कहीं उर्दू पंक्तियों का संदर्भ है तो कहीं केवल पत्र जैसी आत्मोपहार-शैली है। बंगला की भावुकता, उर्दू की नाटकीयता, अंग्रेजी की शास्त्रीयता और तर्काश्रितता तथा संस्कृत की उपदेशपूर्णता जैसे उनके उन समर्पण-वाक्यों में घुल-मिलकर व्यक्त हुए हैं। इस प्रकार से भारतेन्दु के मार्मिक हृदयोद्गार जैसे उनके निबन्धों और अन्य टिप्पणियों में उनकी पत्रकार कला में मिलते हैं, वैसे ही सर्वत्र इन समर्पणों में भी बिखरे हैं।

कभी-कभी 'समर्पण' में सूक्ष्म विच्छित्ति (विट) भी पाई जाती है, जैसे 'फूलों का गुच्छा' नामक उर्दू कविताओं के आरम्भ में —

'मेरे प्राण-प्रिय मित्र !'

क्या तुमने यह नहीं सुना है, "रिक्तपार्णि न पश्ये द्वै राजानं भेषजं गुरुं" अर्थात् राजा और वैद्य और गुरू को कोरे हाथ नहीं देखना। तो मैं आज अनेक दिन पीछे तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ, इससे यह "फूलों का गुच्छा" तुम्हारा जी बहलाने के लिए लाया हूँ, जो अङ्गीकार करो तो परिश्रम सफल हो ! यह मत संदेह करना कि मैं राजा वा वैद्य वा गुरू इनमें कौन हूँ, क्योंकि मेरे तो तुम्हीं राजा, और तुम्हीं वैद्य और तुम्हीं गुरू हो।

१४ सितम्बर १८८२ ॥१९३६॥ } केवल तुम्हारा हरिश्चन्द्र।

प्रहसन 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की भूमिका का यह समर्पण क्या ही छलछलाता हुआ है :—

'डंडीकेशन'

प्यारे !

मैं तुम्हें क्या तमाशा दिखाऊँगा, हाँ धन्यवाद करूँगा क्योंकि निस्संदेह तुमने ऐसा तमाशा दिखाया कि सब कुछ भूल गया। अहा ! स्त्री-पुरुष, पण्डित मूर्ख, अपना-बिगाना और छोटे-बड़े सबका तमाशा देखा पर वाह ! क्या ही तमाशा है— तमाशा तो है पर देखने वाले थोड़े हैं, न हो तुम देखो मैं देखूँ, उन्हीं तमाशाओं में से यह भी एक तमाशा है, देखो।

चश्म मन् बर चश्म तू चश्मात् तू जाए दिगर।
मन तमाशाए तू बीनम् तू तमाशाए दिगर ॥

श्रावण शुक्ला ११ सोम० सं० १९३० } तुम्हारा, —हरिश्चन्द्र

कभी-कभी इन समर्पणों के द्वारा वे समाज के दम्भ का विस्फोट बहुत मजे से करते जाते हैं। वे अपने युग के इन सब ढोंगों को खूब जानते थे। इसी से उन्होंने उनका मधुर और कडुई दोनों प्रकार की भाषा से धिक्कार किया। और समाज-सुधार की ओर स्पष्ट इङ्गित किया है—

'पाखण्ड विडम्बन' का समर्पण देखिये—

'मेरे प्यारे !

भला इससे पाखण्ड का विडम्बन क्या होना है ? यहाँ तो तुम्हारे सिवा सभी पाखण्ड है, क्या हिन्दू क्या जैन ?'

फाल्गुन सुदी १४ सं० १९२९] तुम्हारा हरिश्चन्द्र

कहीं कहीं इन भूमिकाओं का कार्य कोई एक दोहा या श्लोक अथवा उद्धरण से हो जाता है : 'दुर्ल्लभ बन्धु' 'मर्चेंट आफ वेनिस' का अनुवाद है। उसकी भूमिका में केवल दो सूक्तियाँ हैं :

दुर्ल्लभा गुणिनो सूराः दातारश्चातिदुर्ल्लभाः।
मित्रार्थेत्यक्तसर्व्वस्वो बन्धुस्सर्व्वेस्सुदुर्ल्लभः ॥

(उर्दू लिपि में)—

खुदा मिले तो मिले आशना नहीं मिलता
किसी का कोई नहीं दोस्त सब कहते हैं ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संस्कृत और उर्दू का आरम्भिक पद्यमय विज्ञापन कुछ-कुछ आधुनिक सिनेमा के दोनों लिपियों में लिखे हुए परिचयों का सा जान पड़ता है।

सं० १९२८ में लिखे 'प्रेममालिका' कीर्तन-संग्रह का समर्पण अंग्रेजी में है :

टू
दी लव
दीज
फिड पेजेज आर अँफेक्शनेटली
डेडिकेटेड
बुइथ दि गुड विशेज
आफ
हरिश्चन्द्र
बनारस

'प्रेम-सरोवर' का यह काव्यात्मक समर्पण देखिये—

'आज अक्षय-तृतीया है, देखो जलदान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जल-दान दोगे? कहाँ! वरञ्च जलाञ्जलि दोगे; देखो मैं कैसा प्यासा हूँ और प्यास में भी चातकाभिमानी हूँ। हाँ! जिस चातक ने एक श्याम घन की आशा पर परिपूर्ण समुद्र और नदियों तथा अनेक उत्तम मीठे-मीठे सोते, झील, कूप, कुण्ड, बावली और झरनों को तुच्छ करके छोड़ दिया, उसे पानी बरसना तो दूर रहे, जो मधुर घन की ध्वनि भी न सुन पड़े तो कैसे प्रान बचें?'

और 'प्रेमाश्रु-वर्णन का 'समर्पण' और भी गत्यात्मक है :

'कि तब,

यह प्रेमाश्रु की वर्षा है। इससे नहा के तब मुझे छूओ। क्योंकि बहुत धूर्तता करने से तुम अशुद्ध हो गए हो। क्या करूँ, बहुत कुछ कहने को जी चाहता है, और लेखनी कहनी-अनकहनी सभी कहना चाहती है, पर क्या करें, अदब का स्थान है, इससे चुप है और चुप रहेगी।

.....यह बखेड़ा जाने दो, आज क्यों नहीं मिले?
.....लो इस वर्षा से जी बहलाओ
पर प्यारे, तुम भी कभी बरसो।

सावन हरिआरी अमावस) तुम्हारा चातक
गुरु पुष्य सं० १९३०) हरिश्चन्द्र"

यही नाटकीयता 'जैनकुतूहल' के तीन वाक्य वाले समर्पण में जहाँ वे अन्त में कहते हैं—'तुम्हें मेरी सौगन्द, वाह वाह अवश्य कहना।'

वैसे उन्होंने कई ग्रन्थों की भूमिकाएँ ही नहीं लिखीं जैसे 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-तरंग', 'उत्तरार्द्ध' 'भक्तमाल', 'सतसई-सिंगार', 'गीत-गोविंदानन्द', 'प्रेम-प्रलाप', 'रत्न संग्रह', 'वर्षा-विनोद', 'विनय-प्रेम-पचासा' आदि। 'होली' का समर्पण भी दो ही वाक्य का है। मौजी जीव थे—इस कारण यह आवश्यक नहीं था कि वे सदा भूमिकाएँ लिखते ही—परन्तु इन भूमिकाओं और समर्पणों का अध्ययन स्वयंमेव एक विचारोत्तेजक वस्तु है।

उनकी भूमिकाओं का उद्देश्य भी प्रकट रूप में अल्प-निवेदन पत्र अथवा एक प्रकार से 'स्वांतः सुखाय' दिखायी देता है, फिर भी उपरोक्ष रूप से उसमें समाज की विषमताओं पर व्यंग और 'बहुजनहिताय' की दृष्टि स्पष्टतः दिखायी देती है। उनका सारा लेखन इसी कारण से प्राचीन को नवीन से जोड़ने वाली एकशृङ्खला की भाँति जान पड़ता है, जिसमें भक्ति की निशा और शक्ति की उषा का संधिकाल सांकेतिक रूप से प्रस्फुटित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-गद्य साहित्य के युग निर्माता

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा एम० ए०, डी० लिट्०

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पूर्व खड़ी बोली अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त होकर मँज चली थी। भारत के सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में उसका प्रसार हो गया था। साहित्य-सर्जन का भी अंकुरण हो चुका था। केवल कथा कहानी और इतिहास की ही रचना नहीं हो रही थी वरन् शुद्ध साहित्यिक कृतियाँ भी प्रकाशित हो रही थीं। 'बनारस अखबार', 'सुधाकर', 'बुद्धिप्रकाश' और 'प्रजाहितैषी' ऐसे पत्र भी प्रकाशित हो चुके थे। इस प्रकार गद्य-निर्माण का कार्य आरम्भ हो चुका था पर अभी तक उसका अटूट और पूर्णतया व्यवस्थित सङ्गठन नहीं हो पाया था। भाषा के विषय में भी संघर्ष उठ खड़ा हुआ था। दोनों राजाओं की दलादली और शिक्षा के क्षेत्र में शासकों की भेदनीति के कारण उसकी एक स्वरता और एक रूपता में सन्देह उत्पन्न होने लगा था। इसलिए भारतेन्दु के रचना-काल में दो समस्याएँ सामने आईं साहित्य-निर्माण की व्यवस्था और भाषा-परिष्कार का प्रयत्न।

अपने जीवन के लघु प्रसार में इन दोनों दिशाओं में जो कुछ हरिश्चन्द्रजी ने किया वह किसी ने भी किसी युग और साहित्य में नहीं किया होगा। आधुनिक गद्य-साहित्य के प्रवर्तन और उसकी अपनी परम्परा के सङ्गठन में जो योग उन्होंने दिया वह सामान्यतः अलौकिक सा दिखाई पड़ता है। दलादली से पूर्ण हिन्दी-उर्दू का जो संघर्ष उनके समय तक बढ़ता चला आया था उसकी ओर उनका ध्यान पहले गया और उन्होंने अपने सक्रिय प्रयोगों से हिन्दीभाषा की एक रूप-रेखा स्थिर की, साहित्य की विविध रचनाओं में स्वयं प्रयोग करके उसके स्वरूप का पूरा परिष्कार कर दिया। तत्कालीन लेखकों का जो एक मण्डल साहित्य-सर्जन में संलग्न था वह हरिश्चन्द्र की भाषा को आदर्श मानता था। उस समय प्रकाशित होने वाले अनेकानेक पत्रों और पत्रिकाओं में इसी भाषा शैली का प्रयोग होता था। थोड़े में यही कहा जा सकता है कि 'जब भारतेन्दु अपनी मँजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तब हिन्दी बोलनेवाली जनता को गद्य के लिये खड़ी बोली का प्रकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया।'

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह के द्वारा अथवा उनके काल में ही साहित्य की सृष्टि आरम्भ हो चुकी थी, कथा कहानी और नाट्य-रचनाएँ सामने आ चुकी थीं। इस प्रकार मार्ग का संकेत मिल चुका था, अवश्य ही वह आमुख रूप में था और उसकी रूपरेखा भी स्पष्ट नहीं हो पाई थी। अपने युग के कर्णधार और साहित्यिक नेता के रूप में जब भारतेन्दुजी आगे आए तो उन्होंने भली भाँति समझ लिया कि जब तक साहित्य सर्जना का कार्य आन्दोलन रूप में न चलाया जायगा तब तक न तो समाज में हिन्दी-साहित्य का प्रभाव ही बढ़ेगा और न गद्य-रचना की नींव ही सुदृढ़ होगी। इसीलिए उन्होंने केवल स्वयं लिखने का बीड़ा ही नहीं उठाया वरन् ढूँढ-खोज कर लिखने-पढ़ने वालों की एक बड़ी मंडली एकत्र की और तत्कालीन हिन्दी की सम्पूर्ण लीलाभूमि से अपना नाता बनाए रखने की पूरी तत्परता दिखाई। परमात्मा की देन की तरह उनकी कुशल बुद्धि ने अवसर की गतिविधि को समझा और देख लिया कि उस समय सामान्य सैनिक की नहीं, सेनापति की आवश्यकता थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर तो युगधर्म के अनुरूप चल कर कोई भी नेता सफलता प्राप्त कर लेता है। भारतेन्दु के जीवन काल में ही हिन्दी के प्रसार एवं प्रचार का भव्य रूप दिखाई पड़ गया। लाहौर से लेकर कलकत्ता तक हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं से भर उठा—भले ही उनमें से कुछ अल्पजीवी रही हों। उस समय न्यायालयों और सम्पूर्ण शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दी के लिए बहुत कुछ किया गया। अतएव हिन्दी के पाठकों और प्रेमियों की बड़ी वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त साहित्य के क्षेत्र में तो बाढ़ सी आगई। विषय और रचना प्रकार की विविधता का यदि विचार किया जाय तो यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि भारतेन्दु-युग में हिन्दी साहित्य को विकास नहीं सिद्धि प्राप्त हुई। नवीन पद्धति का काव्य, नाटक, कथा, कहानी, निबन्ध और आलोचना का सूत्रपात भी हुआ और उसमें प्रौढ़ता भी दिखाई पड़ने लगी।

भारतेन्दु की अनेकमुखी प्रतिभा ने सभी प्रकार की कृतियाँ प्रस्तुत कीं। काव्य के क्षेत्र में तो वे जन अथवा लोक साहित्य तक पहुँचे। कबीर और वैष्णव कवियों की पद्धति पर तो उनकी सुन्दर कविताएँ हैं ही पर उनकी लावनी-रचना कम महत्त्व की चीज नहीं है, उसी प्रकार गद्य में उनकी नाटकीय कृतियाँ तो प्रसिद्ध ही हैं पर जो गद्य अन्य विविध प्रकारों से भी उन्होंने लिखा है उसका ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व है। इस प्रकार जीवन में उन्होंने अपने दोनों दायित्वों का अच्छा निर्वाह किया। "उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नए मार्ग पर ला खड़ा कर दिया।"

(पृष्ठ १८२ का शेषांश)

करना पड़ेगा कि उनकी प्राचीन शैली की ब्रजभाषा कविता की तुलना में नवीन कविता की भाषा में कहीं-कहीं कुछ शिथिलता भी पाई जाती है। सरल और सर्वप्रचलित विदेशी शब्दों का बहिष्कार उन्होंने काव्य क्षेत्र में भी नहीं किया।

खड़ी बोली और ब्रजभाषा के अतिरिक्त भारतेन्दु ने उर्दू तथा भारतवर्ष की अन्य भाषाओं में भी काव्य-रचनाएँ प्रस्तुत कीं, किन्तु उनका भारतेन्दु साहित्य में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुत दिनों तक जीवित न रह सके। किन्तु जितने दिन वे जीवित रहे सब प्रकार से हिन्दी साहित्य की सेवा करते रहे। उन्होंने अनेक विविध विषय सम्बन्धी ग्रंथों की रचना की और यदि एक ओर खड़ी बोली हिन्दी को जातीय रूप दिया तो दूसरी ओर ब्रजभाषा को उसका नैसर्गिक सौन्दर्य प्रदान किया। इस दृष्टि से वे एक ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की भाषा

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए०, डी० लिट्०

हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का जहाँ अन्य अनेक दृष्टियों से महत्व है वहाँ भाषा की दृष्टि से भी यह शताब्दी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। क्योंकि इसी शताब्दी में खड़ी बोली का क्रम बद्ध इतिहास मिलता है और इसी शताब्दी में खड़ी बोली ने साहित्य में—पहले गद्य और फिर काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। राजस्थानी और ब्रजभाषा गद्य-परम्पराओं का अन्त हो जाने के बाद ऐतिहासिक कारणों और नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों का आश्रय प्राप्त कर उसका अभूतपूर्व और तीव्र गति के साथ विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में खड़ी बोली गद्य में अनेक पुस्तकों का निर्माण हुआ। केवल इतना ही नहीं, वरन् जब हम उन पुस्तकों के विषय-विस्तार की ओर ध्यान देते हैं तो यह देख कर आश्चर्य होता है कि खड़ी बोली ने अपने बाल्य काल में इतनी अधिक शक्ति और अपने उज्ज्वल भविष्य का परिचय दिया। संसार के अनेकानेक विषयों के लिये वह माध्यम बनी। काव्य-क्षेत्र में यद्यपि पिछले कवियों ने स्फुट रूप से खड़ी बोली का प्रयोग किया था, तो भी काव्य की प्रधान भाषा ब्रजभाषा ही बनी रही और आगे चल कर भी वह अपना स्थान अक्षुण्ण बनाए रही।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस समय अपने साहित्यिक जीवन का सूत्रपात किया उस समय गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का स्थान निर्विवाद स्थापित हो चुका था। किन्तु उर्दू और अँगरेजों की भाषा-नीति के कारण उसका स्वरूप अब भी विवाद का विषय बना हुआ था। सरकार की शिक्षा-नीति के फल-स्वरूप भी हिन्दी-उर्दू का सङ्घर्ष उठ खड़ा हुआ था। परिणाम यह हुआ कि लोग हिन्दी भाषा और नागरी लिपि भूलते गए। ऐसे समय में ही राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने शिक्षा-विभाग में पदार्पण किया। हिन्दी केवल उस भाषा का नाम रह गया था जो टूटी-फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती थी और केवल हिन्दी जानने वाले गँवार समझे जाते थे। राजा शिवप्रसाद अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग के पक्ष में थे। जन-साधारण से वे 'शिष्ट समुदाय की भाषा' बोलने की आशा करते थे। वास्तव में उनकी दृष्टि खड़ी बोली के अरबी-फारसीमय अदालती भाषा की ओर थी। वे चाहते थे कि लोग अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग कर अपनी भाषा पर 'पॉलिश' करें। हिन्दी को 'फैशने बुल' बनाते-बनाते वे यहाँ तक कह बैठे कि 'Urdu is becoming our mother tongue'। किन्तु भाषा का यह विदेशी रूप ग्रहण करने के लिए लोग तैयार नहीं थे। लेखकों का एक समुदाय ऐसा भी था जो यदि संस्कृत शब्दावली का प्रयोग नहीं करना चाहता था, तो तत्सम अरबी-फारसी शब्दों के भी वे पक्षपाती नहीं थे। मुन्शी देवीप्रसाद मुंसिफ और बाबू देवकीनन्दन खत्री ऐसे ही लेखक थे। उन्होंने अत्यन्त सरलभाषा का व्यवहार किया। राजा शिवप्रसाद और देवकी-नन्दन खत्री के भाषा-सम्बन्धी विचारों में बहुत-कुछ साम्य था, किन्तु व्यावहारिक रूप में देवकीनन्दन खत्री ने उन्हीं अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया जो सूबा हिन्दुस्तान की जनता की भाषा में खप गए थे।

खड़ी बोली गद्य के प्रारम्भिक विकास में यह एक बड़ी दुरूह समस्या खड़ी हो गई थी। राजा शिवप्रसाद के विचारों से हिन्दी के साहित्यिक सहमत नहीं थे। विदेशी शब्दों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग से तो किसी की चिढ़ नहीं थी, किन्तु साथ ही वे हिन्दी भाषा का व्यक्तित्व बनाए रखना चाहते थे। राजा शिवप्रसाद की भाषा-नीति की प्रतिक्रिया के रूप में राजा लक्ष्मणसिंह विशुद्ध हिन्दी का आदर्श लेकर आगे बढ़े। वे हिन्दी और उर्दू को दो अलग-अलग भाषाएँ समझते थे और विदेशी शब्दों के पूर्ण बहिष्कार के पक्षपाती थे। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा में 'हिन्दीपन' अवश्य बना रहा। किन्तु उनकी भाषा आईन, तर्कशास्त्र अर्थशास्त्र, राजनीति आदि ज्ञान-विज्ञान के उपयुक्त नहीं थी। वास्तव में दोनों राजा अतिपूर्ण दृष्टिकोण लेकर चले और दोनों ही को सफलता प्राप्त न हो सकी।

ऐसे समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ। भारतेन्दु साहित्य के विद्यार्थियों को यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जीवन के किसी भी क्षेत्र में अतिवादी नहीं थे। राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने समन्वयात्मक दृष्टिकोण ग्रहण किया। हिन्दी भाषा और साहित्य के उस संक्रान्ति काल में ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता भी थी। भाषा के क्षेत्र में भी वे न तो संस्कृत की क्लिष्ट पदावली के प्रयोग के पक्ष में थे और न अप्रचलित अरबी-फारसी शब्दों के पक्ष में। उन्होंने हिन्दी की स्वाभाविकता, उसकी जातीय शैली की रक्षा करने की चेष्टा की। और यह निस्संकोच स्वीकार करना पड़ेगा कि अपने इस पुनीत कार्य में उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा दिए गये निम्नलिखित अवतरणों से उनकी भाषा-शैली पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है:—

जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं

"सब विदेशी लोग घर फिर आये और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया। पुल टूट गए, बाँध खुल गए, पंक से पृथ्वी भर गई पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाए, बहुत वृक्ष समेत कूल तोड़ गिराये, सर्प बिलों से बाहर निकले महानदियों ने मर्यादा भंग करदी और स्वतंत्रता स्त्रियों की भाँति उमड़ चली।"

जो शुद्ध हिन्दी है

"पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए, क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये कि इधर की सुध ही भूल गये। कहाँ (तो) वह प्यार की बातें, कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहाँ जाऊँ कैसी करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुँह-बोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ कुछ इधर-उधर की बातों ही से जी बहलाऊँ।"

वास्तव में दूसरे अवतरण की शैली ही हिन्दी की जातीय शैली है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने गद्य की भाषा का यही स्वरूप ग्रहण किया। और यद्यपि उनकी गद्य-रचनाओं में ऐसे अंश भी मिल जाते हैं, जो संस्कृत के कठिन शब्दों से समन्वित हैं, किन्तु सामान्यतः उन्होंने अनलंकृत और संस्कृत की कोमलकान्त पदावली से मुक्त भाषा ग्रहण की है। उसमें उन्होंने तद्भव और देशज शब्दों तथा कहावतों और मुहावरों और संस्कृत के केवल सरल, सुबोध और लोक-प्रचलित शब्दों के प्रयोग की ओर ही अधिक ध्यान दिया है। उन्होंने उन्हीं विदेशी शब्दों का प्रयोग किया जो जनसाधारण में सरलता पूर्वक समझे जा सकते थे, और जो भाषा के अङ्ग बन गए थे। 'नीलदेवी' में उन्होंने कठिन उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया है। किन्तु उसमें मुसलमान पात्रों के होने से ऐसा हुआ है। अन्यथा उनकी ऐतिहासिक और नाट्य तथा अन्य सभी प्रकार की गद्य-कृतियों में भाषा का वही रूप प्रयुक्त हुआ है, जो उन्होंने उपर्युक्त दो अवतरणों द्वारा निर्धारित कर दिया था। इस दृष्टि से उनकी 'चन्द्रावली' नाटिका की भाषा उनकी भाषा-शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। जहाँ भारतेन्दु को चोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनी होती थी वहाँ वे कहावतों और मुहावरों का विशेष रूप से प्रयोग करते थे। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' और 'अन्धेर नगरी' इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। 'भारत दुर्दशा' भी इस दृष्टि से महत्व-पूर्ण रचना है। अनेक गम्भीर भाव और विचार उन्होंने अपेक्षाकृत सरल भाषा में प्रकट किए हैं। जहाँ वे किसी समस्या पर विचार करते अथवा किसी तात्विक विवेचन में संलग्न होते हैं, वहाँ उनकी भाषा संयत और गम्भीर अवश्य हो जाती है किन्तु, कुछ अपवाद छोड़कर, संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों से वह सर्वथा मुक्त रहती है। उनकी भाषा भावानुकूल, विषयानुकूल, पात्रानुकूल और परि-स्थिति के अनुकूल रहती है। 'चन्द्रावली, 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' में इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। 'चन्द्रावली' नाटिका में स्त्रियों की विविध मानसिक परिस्थि-तियों के अनुकूल भाषा की विविधता भी ध्यान देने योग्य है। भारतेन्दु ने, जहाँ तक हो सका है, कर्ण-कटु शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर किया है। भावावेगपूर्ण स्थलों की भाषा की विदग्धता सराह-नीय है। उनकी भाषा में एक अद्भुत माधुर्य है जो उनके समकालीन लेखकों की भाषा में बहुत कम दिखाई पड़ता है। कवि होने के नाते उनकी भाषा-शैली में यथास्थान कवित्व के दर्शन भी हो जाते हैं। उस समय उनकी भाषा रसपूर्ण हो जाती है और वह पाठकों का अन्तरतम स्पर्श करने लगती है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' में हर्ष, शोक, आदि की अभिव्यक्ति के लिए तदनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। साथ ही उनकी भाषा में चित्र प्रस्तुत करने और नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने की अद्भुत शक्ति है। एक के उदाहरण यदि 'सत्यहरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' में मिलेंगे तो दूसरे के उदाहरण 'भारत-दुर्दशा' में। भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र ने यद्यपि अपनी गद्य-रचनाओं में ऐसी सरल और सुबोध शैली का प्रयोग किया है जो अनेक गुणों से मंडित है, तो भी अनेक व्रजभाषा के और स्थानीय प्रयोग, और व्याकरण की अशुद्धियाँ वे नहीं बचा पाए। हिन्दी में यह दोष आगे चल-कर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में दूर हुए। वैसे भी भारतेन्दु का महत्व जितना साहित्य को विविध-विषय-सम्पन्न बनाने में है, उतना भाषा को सुघड़ रूप प्रदान करने में नहीं है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रभाव से लोगों का संस्कृत शब्दों के अत्यधिक प्रयोग की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक था। किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा-निर्धारित रूप ही अधिक ग्राह्य हुआ। यद्यपि 'नासिका रन्ध्र स्फीत हो रहा है' जैसी भाषा लिखने वाले भी उस समय मौजूद थे, तो भी अन्य क्षेत्रों की भाँति इस क्षेत्र में भी हिन्दी के साहित्यिकों ने भारतेन्दु का का नेतृत्व ही ग्रहण किया। आगे चलकर आर्य समाज और बँगला से किए गए अनुवादों के प्रभावान्तर्गत अनावश्यक संस्कृत शब्दों का बाहुल्य खड़ीबोली गद्य के स्वाभाविक विकास के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काव्य में भी खड़ी बोली का प्रयोग करना चाहा था, और स्वयं कुछ कवि-ताओं की रचना भी की:—

'कहाँ हो, ए हमारे राम प्यारे!
किधर तुम छोड़ मुझको सिधारे?
बुढ़ापे म य' दुख भी देखना था?
इसी के देखने को मैं बचा था?'

अथवा

'फागुन के दिन बीत चले अब ऋतु बसंत आई'
बदला समा चली झोंक से झकी पुरवाई।
गर्मी के आगम दिखलाये रात लगी घटने
कुहू कुहू कोयल पेड़ों पर बैठ लगी रटने।'

अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बादल की पालें, धुएं की जालें,
छोड़े दौड़ा जाता है,
पावस नभ सागर, सब गुन आगर
जोर जहाज दिखाता है।'

किंतु उन्हें खड़ी बोली की कविता भौंड़ी प्रतीत हुई और प्रायः दीर्घ मात्रा के आजाने के फलस्वरूप उन्हें वह मधुर भी न लगी। इसलिए कविता की भाषा उन्होंने ब्रजभाषा ही स्वीकार की। वास्तव में शताब्दियों के प्रयोग से ब्रजभाषा मँज गई थी, उसमें मुहावरेदानी आगई थी, और प्रत्येक शब्द के साथ एक एक भाव-परंपरा जुड़ गई थी। वैसे भी इतने दिनों की परंपरा से एकदम विमुख हो जाना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए भी एक दम सरल नहीं था। और उनके व्यक्तित्व का प्रभाव भी इतना जबरदस्त था कि उनके जीवन-काल में किसी को भी ब्रजभाषा के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस न हुआ। आगे चल कर खड़ी बोली आंदोलन ने शक्ति ग्रहण की और कुछ कवियों ने काव्य-क्षेत्र में भी खड़ी बोली का प्रवेश करा दिया था। किन्तु बिल्कुल ही खड़ी बोली का कवि तो भारतेन्दु के जीवन-काल में क्या पूरे भारतेन्दु-युग में कोई न हो सका।

अस्तु, भारतेन्दु ने काव्य में ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। यह तो स्पष्ट ही है कि उन्होंने ब्रजभाषा का कोई नवीन प्रासाद निर्मित नहीं किया था। उन्होंने उसके सहज-सुन्दर रूप का प्रयोग कर फिर से उसे गौरव-प्रदान किया। भारतेन्दु के समय तक आते-आते ब्रजभाषा में अनेक दोष उत्पन्न हो गई थे। उन्होंने उसके प्रकृत सौंदर्य के दर्शन कराए। उन्होंने 'रत्नाकर' की भाँति ब्रजभाषा का 'अध्ययन' न किया था। केवल अपनी प्रतिभा के माध्यम द्वारा वे ब्रजभाषा का परिष्करण और परिमार्जन कर सके थे। भारतेन्दु की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, यद्यपि एकरूपता का उसमें अभाव है। उनके भाव और भाषा दोनों ही सबल हैं। उनकी ब्रजभाषा मानसिक भावों की यथार्थता स्पष्ट कर देती है। भावों के अनुकूल शब्द चुन-चुन कर उन्होंने सुव्यवस्थित पदावली का निर्माण और भाव व्यञ्जक वाक्य-विन्यास प्रस्तुत किया। वाग्-वैचित्र्य भी उनकी काव्य-भाषा की एक विशेषता है। भारतेन्दु की प्राचीन शैली की रचनाओं में भक्ति युग की श्रेष्ठ रचनाओं का-सा आनन्द आता है। प्राचीन कवियों की-सी रमणीयता के अतिरिक्त नवीन युक्तियों की परिष्कृत अभिव्यक्ति भी उनकी रचनाओं में उपलब्ध होती है। उन्होंने अकाव्योपयोगी और दुरूह शब्दों का प्रयोग नहीं किया। कठोर वर्णों का बहिष्कार उन्होंने सर्वत्र किया है। गद्य-भाषा की भाँति उनकी काव्य-भाषा भी सरल है। उनके काव्य में प्रत्येक शब्द की अनिवार्य सत्ता है। प्रत्येक शब्द भाव-पूर्ण सक्षम और उपयुक्त है। प्रसाद और माधुर्य दोनों गुण उनके काव्य में सर्वत्र पाए जाते हैं। वास्तव में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि आगे चल कर 'रत्नाकर' जी ने जो पच्चीकारी की उसका पूर्वाभास भारतेन्दु की भाषा में मिलता है। उन्होंने भाषा की नैसर्गिकता का तिरस्कार न किया, ब्रजभाषा का निजपन बनाये रखा। उनकी भाषा में कलात्मकता और चमत्कार भले ही न हो, किन्तु उसमें सौन्दर्य है, रमणीयता है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है।

भारतेन्दु ने नवीन विषयों के वर्णन के लिए भी ब्रजभाषा ग्रहण की। उनकी अनेक काव्य-रचनाओं द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि ब्रजभाषा भी आधुनिकता का साथ देने में समर्थ है। भारतेन्दु ने अपनी अपूर्व प्रतिभा द्वारा उसके रूप को आधुनिक जीवन का अनुगामी बनाया, किन्तु साथ ही उसके पूर्व-संचित सौन्दर्य को बहुत कुछ सुरक्षित रखा। यह कोई कम महत्वपूर्ण कार्य नहीं था। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी स्वीकार

(शेष पृष्ठ १७८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रकार भारतेन्दु

प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०

सन् १८६७ से सन् १८८५ तक के वर्षों को भारतेन्दु के पत्रकार-जीवन का युग कह सकते हैं। यद्यपि भारतेन्दु बाबू का जन्म सन् १८५० में हुआ था किन्तु उनके पत्रकार-जीवन का आरम्भ 'कवि-वचन सुधा' से हुआ जिसे वे सन् १८६७ में मासिक-पत्र के रूप में निकालने लगे थे। इस समय यद्यपि 'वृतान्त-विलास' और 'ज्ञान दीपक' आदि अन्य पत्र भी निकल रहे थे किन्तु इनमें से कोई भी ऐसा न था जो भारतेन्दु के पत्र की बराबरी करता। 'कवि वचन सुधा' में पुराने कवियों की कविताएँ छपा करती थीं; स्वयं भारतेन्दु की कविताएँ भी इसमें प्रकाशित होती थीं। कोई समाचार इसमें नहीं छपते थे और गद्य का अंश भी नाम मात्र को ही रहा करता था किन्तु आगे चल कर 'कवि वचन सुधा' ने जब पहले पाक्षिक और फिर साप्ताहिक रूप धारण किया तो इसमें समाचार तथा अन्य विषयों पर निबन्ध भी छापे जाने लगे। यद्यपि भारतेन्दु बाबू की इस समय बड़ी प्रतिष्ठा थी और ऑनरेरी मजिस्ट्रेट आदि पदों से वे सम्मानित थे परन्तु इन सब बातों की कुछ भी परवाह न करके पूर्ण स्वाधीन भाव से उन्होंने राजनीतिक विषयों पर कलम उठाई थी। 'कवि वचन सुधा' के उद्देश्य की महत्ता और विचारों की स्वाधीनता उसके निम्नलिखित सिद्धान्त-सूत्र से स्पष्ट है—

'खल जनन से सज्जन दुखी,
मति होहिं हरि-पद मति रहैं,
उपधर्म छूटैं सत्व निज,
भारत गहै कर दुख बहैं।—
बुध तजहिं मत्सर नारि नरसम
हौंहि जग आनँद लहैं।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की
अमृत बानी सब कहैं॥'

ज्यों-ज्यों सर्व-साधारण की सहानुभूति मिलती गई त्यों-त्यों इस पत्र की उन्नति व प्रचार में वृद्धि होती गई। भारतवर्ष के बाहर भी इस पत्र का गुण-गान होने लगा। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् गार्सा द तासी ने सन् १८७० में 'कवि वचन सुधा' के सम्बन्ध में एक प्रशंसात्मक टिप्पणी लिखी थी। इस पत्र के लेख ऐसे ललित होते थे कि तत्कालीन हिन्दी-प्रेमी लोग चातक की भाँति उसके लिए टकटकी लगाये रहते थे और वह हाथों हाथ बँट जाता था। इस पत्र के अनुकरण पर भी कुछ पत्र निकाले गये, किन्तु वे इतने लोक-प्रिय न हो सके। सन् १८७३ में भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नाम की मासिक पत्रिका निकाली जिसका नाम आठ संख्याएँ निकल जाने के बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' हो गया। हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चन्द्रिका' में प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कण्ठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन पहले पहल इसी पत्रिका में हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने नयी सुधरी हुई हिन्दी का उदय इसी समय से माना है। उन्होंने 'कालचक्र' नाम की अपनी पुस्तक में नोट किया है कि 'हिन्दी नई चाल में ढली', सन् १८७३ ई०। इस हरिश्चन्द्री हिन्दी के आविर्भाव के साथ ही नये-नये लेखक भी तैयार होने लगे। 'चन्द्रिका' में भारतेन्दुजी आप तो लिखते ही थे, बहुत से और लेखक भी उन्होंने उत्साह दे-दे कर तैयार कर लिये थे। हिन्दी गद्य-साहित्य के इस आरम्भ-काल में ध्यान देने की बात यह है कि उस समय जो थोड़े से गिनती के लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे उनमें विदग्धता और मौलिकता थी और उनकी हिन्दी हिन्दी होती थी। वे अपनी भाषा की प्रकृति को पहचानने वाले थे। बँगला, मराठी, उर्दू, अँग्रेजी के अनुवाद का वह तूफान जो पच्चीस तीस वर्ष पीछे आया, और जिसके कारण हिन्दी का स्वरूप ही संकट में पड़ गया था, उस समय नहीं था। उस समय ऐसे लेखक न थे जो बँगला की पदावली और वाक्य ज्यों के त्यों रखते हों या अँग्रेजी वाक्यों या मुहावरों का शब्द प्रति शब्द अनुवाद करके हिन्दी लिखने का दावा करते हों।*

सन् १८७३ में भारतेन्दु ने स्त्री-शिक्षा के संबंध में 'बालबोधिनी' नामक पत्रिका निकाली थी। बहुत से विद्वानों का मत है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ही सच्चे अर्थ में हिन्दी पत्रकारिता के जनक हैं। स्व० पं० बदरीनारायण चौधरी बाबू हरिश्चन्द्र के संपादन-कौशल की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। भारतेन्दु की 'कवि वचन सुधा' तो इतनी महत्त्वपूर्ण पत्रिका थी कि उसमें स्वामी दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा मि० ग्रिफिथ जैसे सुप्रसिद्ध विद्वान् भी लेख लिखा करते थे। केवल १७ वर्ष की अवस्था में ही इस प्रतिभाशाली युवक ने इस विख्यात पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इस पत्र की ऐसी असाधारण उन्नति और एक युवा पुरुष के अभ्युदय से स्वार्थ-साधक और हाकिमों के चाटुकारों को बड़ा दुःख हुआ। चुगली का बाजार गर्म हुआ। जो निष्पक्ष राजनीतिक लेख इस पत्र में प्रकाशित होते थे, वे विद्रोहात्मक करार दिये जाने लगे। जो कविता या पंच हास्य श्लेष का आश्रय लेकर छपते थे, वे अपमान सूचक सिद्ध किये जाने लगे। फलतः सरकार की कोप-दृष्टि हुई और सरकारी सहायता बन्द करदी गई। इस सम्बन्ध में यद्यपि भारतेन्दु ने बड़ी लिखा पढ़ी की किन्तु उसका कोई फल न हुआ। 'बालबोधिनी' तो प्रायः सरकार के ही आश्रय से चलती थी, दूसरे बाहरी ग्राहक बहुत कम थे, इसलिए यह पत्रिका उसी समय से बन्द हो गई। सरकार का यह अनौचित्य देख कर भारतेदु के हृदय को बड़ी ठेस पहुँची और उन्होंने आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा म्यूनिसिपल कमिश्नर आदि पदों से स्तीफा दे दिया और सरकारी हाकिमों से मिलना भेंटना भी बिलकुल छोड़ दिया। सरकार की ओर से न अपनाये जाने पर भी 'कवि वचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का आदर सर्व साधारण की दृष्टि में बढ़ता ही गया। हिन्दी के कितने ही तत्कालीन विद्वानों ने इसमें लिखना आरम्भ कर दिया और उनकी लेखनी ने इसके द्वारा गौरव और सन्मान पाया। हरिश्चन्द्र की मृत्यु के बाद सन् १८८५ में 'कवि वचन सुधा' का निकलना बन्द हो गया।

भारतेन्दु जैसे साहित्यकार और पत्र-सेवी से प्रेरणा पाकर हिन्दी के बहुत से पत्र पनपने लगे। समाचार पत्रों के महत्त्व को अब लोग समझने लग गये थे। 'हिन्दी प्रदीप', 'आनन्द कादम्बिनी', 'ब्राह्मण' आदि महत्त्वपूर्ण पत्र इसी युग में निकले थे। हिन्दी के पत्रकारों तथा लेखकों को भारतेन्दु से जो प्रेरणा मिली उसका मूल्याङ्कन करना सहज-सम्भव नहीं।

हिन्दी के नाट्य-साहित्य का वर्गीकरण कीजिये चाहे गद्य-साहित्य का, हिन्दी के काव्य-साहित्य का वर्गीकरण कीजिये चाहे हिन्दी के पत्रकार-युग का काल-विभाजन करिये, साहित्य के किसी भी क्षेत्र से भारतेन्दु को अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रतिभाशाली साहित्यिक के व्यक्तित्व की छाप साहित्य के प्रत्येक रूप पर पड़ी है जिससे हिन्दी-जगत् में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान सदा अक्षुण्ण बना रहेगा।

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास (स्वर्गीय आचार्य शुक्ल पृ० ५४६–५४७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य रस-सम्राट बाबू हरिश्चन्द्र

श्री रामचरणसिंह तँवर साहित्य रत्न, शिक्षा-विशारद

'जन-मन-रञ्जन आशु कवि, को हरिचन्द समान'।

उपर्युक्त पंक्तियों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी की जन-मन रञ्जन कारिणी प्रकृति का परिचय इस सत्य की प्रतीति कराता है कि भारतेन्दुजी ने अपनी लेखनी से अनेक हास्य-रस पूर्ण उत्कृष्ट रचनाएँ लिख कर जनता के मनोरञ्जन को अपना लक्ष्य बनाया।

गम्भीर व हास्य दोनों प्रकार के साहित्य की सृष्टि करते हुए इन्होंने अपने नाटकों के कॉमिक (Comic) हास्य-निबन्ध तथा चुटकुलों में भारतीयों की अकर्मण्यता पर और पाश्चात्य बुराइयों की अनुकरणशीलता पर मार्मिक चुटकियाँ ली हैं। 'परिहासिनी' की विनोदपूर्ण रचनाएँ, 'मुशायरा', 'चिड़ीमार का टोला, भाँति-भाँति का जानवर बोला' ये सब तत्कालीन युग के लिए विलक्षण कृतियाँ थीं। इसके अतिरिक्त 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन' नामक प्रहसन में स्वामी विवेकानन्द और केशव चन्द्र सेन के विचारों को अधिक प्रश्रय दिया। व्यवसायी पण्डितों और मुल्लाओं पर उन्होंने 'सबै जात गोपाल की' व 'पाँचवें पैगम्बर' में खूब व्यंग कसे हैं। और यही क्यों उन्होंने 'कङ्कड़-स्तोत्र, अँगरेज स्तोत्र, वेश्या स्तोत्र तथा वसन्त-पूजा आदि पद्य-रचनाओं में हास्य रस की फुहार छोड़ी है।

नाटकों के प्रसङ्ग पर आकर भी हम यह देखते हैं कि इस मार्ग द्वारा भी उन्होंने हास्य-रस के श्रोत बहाये हैं। कुछ तो उन्होंने केवल हास्य की दृष्टि से प्रहसन लिखे हैं और कुछ के बीच में हास्य के प्रसङ्ग इस कुशलता से लाये गये हैं जो कि ऊपर से चिपके हुए से या जबरन बीच में रखे से मालूम नहीं होते, अपितु नाटक में से हास्य प्रसङ्ग को हटा लेने पर उसकी वैसी दशा होगी जैसी किसी रत्न-जटित अँगूठी की दशा उसका नग निकालने पर हो जाती है। भारतेन्दु के हास्य प्रसङ्ग की यह विशेषता है कि उसमें केवल नाम, शब्द आदि को विकृत करके श्रोताओं का हँसाने का प्रयत्न नहीं किया गया है और न कोरी हँसी के लिये प्राचीन विदूषक, पेटू, भोजनभट्ट के समान व्यर्थ ही किसी को बीच में लाया गया है। यह बात मौलिक नाटकों के सम्बन्ध में अधिक लागू होती है, अनुवादित नाटकों में तो मूल ग्रन्थ के अनुसार उनको पात्र व उनके कार्य रखने ही थे, अतएव अनुवादित नाटकों के विदूषकों के लिए उनका दायित्व कम हो जाता है 'अन्धेर नगरी' अच्छा प्रहसन काव्य है, इसके साथ 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' प्रहसन न होते हुए भी हास्यरस पूर्ण है। नीलदेवी, विद्यासुन्दर, प्रेम-योगिनी तथा भारत-दुर्दशा में भी हास्य-रस का यथेष्ट समावेश है। इसके हास्य में भी शिक्षा और देश-प्रेम का पुट रहता है यह इनके हास्य की दूसरी विशेषता है। उदाहरण के लिए भारत-दुर्दशा का एक प्रसङ्ग—

"होटल में मदिरा पियें, चोट लगै नहिं लाज।
लोट लए ठाड़े रहत टोटल दैवे कांज॥
सरकारहि मंजूर जो, मेरो होत उपाय।
तो सब सों बढ़ि मद्य पै, देती कर बैठाय॥

इसी प्रकार 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के हास्य की बानगी देखिए—"देखो समय-सागर में सब संसार अवश्य मग्न हो जायगा। ....केवल कीर्ति-कमल संसार सरोवर में रहे वा न रहे। इस हेतु बहुत काल तक सोच समझ प्रथम यह विचार किया कि कोई देवालय बनाकर छोड़ जाऊँ परन्तु थोड़ी ही देर में समझ में आ गया कि इन दिनों की सभ्यता के अनुसार इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यह मुझे भली भाँति मालूम है कि यही अँगरेजी शिक्षा रही तो मन्दिर की ओर मुँह फेर कर भी कोई न देखेगा। इस कारण इस विचार का परित्याग करना पड़ा। फिर पड़े-पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस विचार में बड़े काँटे निकले, क्योंकि बनाने की देर न होगी कि कीट 'क्रिटिक' (Critic) काट कर आधी से अधिक निगल जायँगे। यश के स्थान पर शुद्ध अपयश मिलेगा।"

इस प्रकार हम देखते हैं, कि भारतेन्दुजी का लक्ष्य मुख्यतया शिक्षा व देश प्रेम का था जिसे कि उन्होंने विविध भाँति की रचनाओं द्वारा व्यक्त किया।

भारतेन्दुजी ने हिन्दी-गद्य की भाषा को भी अपने अनुकूल साँचे में ढालते समय उसमें हास्य-रस का पुट दिया। भाषा में मुहावरों व लोक्तोक्तियों के प्रयोग से उसे सजीवता प्रदान की और फिर जो प्रयोग से गद्य-गङ्गाजी प्रवाहित हुईं, उसमें तत्कालीन युग के अनेक साहित्यकारों की सहायक सरिताएँ मिलीं, जिससे वह धारा अधिकाधिक वेग से बहने के साथ-साथ जन-मन-रञ्जनकारिणी बनी।

भारतेन्दु के जीवन में तो हास्य रस का प्राधान्य ही रहा था, क्योंकि एक तो लक्ष्मी पुत्र होने के कारण किसी प्रकार के आनंदोपभोग का इनको अभाव न था। दूसरे इनके इर्द-गिर्द सदा साहित्यिकों की मण्डली जमा रहती थी, जिनमें कि शिष्ट-विनोद वार्ताओं का कभी अभाव न रहता था। भारतेन्दुजी तो प्रकृति से ही विनोदी जीव थे और प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहना ये उनका सबसे बड़ा गुण था। यही कारण था कि उन्होंने मृत्यु के साये में होते हुए भी अपना स्वाभाविक हास्य-भाव न छोड़ा। मृत्यु के कुछ समय पूर्व जब इनका हाल पूछने जनाने में से बाँदी आई तो ये हँसकर कहने लगे। "हमारे जीवन नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की और तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी। देखें लास्ट लाइट कब होती है?"

अस्तु, जीवन भर तथा मृत्यु के क्षण तक विनोद पूर्ण भाव से बात करने वाले जीव की कलम से कितना हास्य रस निकलकर विभिन्न प्रकार के साहित्य में समाया हुआ है, उस सबका पूर्ण-रूपेण वर्णन करने की अभी गुञ्जाइश नहीं है, परन्तु इतना अवश्य जान लेना चाहिये कि हिन्दी-साहित्य के अद्यावधि कवि व लेखकों में कोई व्यक्ति हास्य-रस की विभिन्न प्रकार की सृष्टि करने में उतना सफल नहीं हुआ है जितने कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी हुए। उन्होंने तो कविता, शायरी, नाटक-प्रहसन, निबन्ध आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की रचनाओं में हास्य-रस का अपूर्व समन्वय किया है। इनके छोटे-छोटे चुभते चुटकुले पाठकों के चित्त पर हास्य-छटा छिटकाने में अत्यन्त सफल सिद्ध होते हैं। बिहारी की सतसई की पृष्ठभूमि पर सतसई सिंगार तथा अमीर खुशरो की भाँति लिखी गई, नए जमाने की मुकरी भी बड़ी अनूठी बनी है—

'जदपि चवाइनि चीकनी चलति चहूँ दिसि सैन।
तऊ न छाँड़त दुहुँन के हँसी रसीले नैन॥
हँसी रसीले नैन करत बत-रस अरुझाने।
भाव भरे रस भरे मैन के मनहुँ खजाने॥
जग रीझो खीझो बरजौ घटिहैं नहिं चाइनि।
वे अपने रस पगे चाव किन करहिं चवाइनि॥
(सतसई सिंगार)

तीन बुलाए तेरह आव,
निज निज विपता रोइ सुनावैं॥
आँखों फूटे भरा न पेट,
क्यों सखि साजन नहिं ग्रेजुएट॥

ऐसे हास्य-रस के सम्राट के मन में भी आत्म-चिन्तन करते-करते वह क्षण आया जब उसने अपने नाटक के सूत्रधार के द्वारा कहलाया था—

"कहेंगे सबै ही नन नीर भरि-भरि,
प्यारे हरिश्चन्द की कहानी रह जायगी।"

वस्तुतः आज भारतेन्दु कहानी बनकर जन-मन में समाये हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की हिन्दी काव्य को देन

प्रो० हंसराज अग्रवाल एम० ए०, पी० ई० एस०

भाद्रपद शुक्ला ५ सं० २००७ तदनुसार १८ सितम्बर १९५० को बाबू हरिश्चन्द्र के जन्म को ठीक सौ वर्ष होते हैं। ये बिजली की भाँति साहित्य-जगत् में चमके, भारतेन्दु बने, और ३४ वर्ष की अल्पायु में सं० १९४१ में लुप्त हो गये। इन की साहित्य सेवा अतुलनीय है। अनेक पत्र-पत्रिकायें निकालने के अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी जगत् को छोटे बड़े १७५ ग्रन्थ दिये। वर्तमान हिन्दी गद्य के तो यह जन्मदाता थे; परन्तु काव्य-क्षेत्र में भी हिन्दी को इन की देन विशेष महत्त्व रखती है। प्रस्तुत लेख में हम पाठकों को उसी का दिग्दर्शन करावेंगे।

कविता भारतेन्दु की पैतृक सम्पत्ति—कविता भारतेन्दु की पैतृक सम्पत्ति थी, कारण कि इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र (गिरधरदास) स्वयं हिन्दी के उच्च कोटि के कवि थे। इसके अतिरिक्त उस समय काशी में सेवक, सरदार, नारायण, हनुमान तथा बाबा दीनदयाल गिरि आदि अनेक श्रेष्ठ कवियों का समाज एकत्रित था। इस प्रकार भारतेन्दु बाबू का शैशव काव्यमय वातावरण में ही बीता। शीघ्र ही भारतेन्दु बाबू काव्य क्षेत्र में अवतरित हुए। इनकी शैशवावस्था की सर्व प्रथम रचना देखिए—

हम तो मोल लिये या घर के,
दास दास श्री बल्लभ कुल के
चकर राधावर के।
माता श्री राधिका पिता हरि
बन्धु दास गुण कर के।
हरिचन्द तुम्हरे ही कहावत
नहिं विधि के नहिं हर के॥

भारतेन्दु का प्रभाव—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक काल की शैशवावस्था के प्रौढ़तम कलाकार थे। प्राचीन परिपाटी के वैष्णव भक्त होते हुए भी उनमें नवयुग की नूतन प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही थीं। उन का प्रभाव हिंदी गद्य तथा हिन्दी पद्य पर बहुत पड़ा। उन्होंने आधुनिक युग के शैशव में नवीन गद्य तथा पद्य लेखकों का पथ प्रदर्शन कर उन्हें प्रगति के पथ पर बढ़ाया। उन्होंने हिन्दी साहित्य के प्रत्येक अंग पर रचना तथा विवेचना की। निश्चय ही आधुनिक युग के शैशव पर भारतेन्दु बाबू का प्रभाव अत्यन्त कल्याण कारी सिद्ध हुआ—

(१) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने प्राचीन परम्परा पर रचना करते हुए भी काव्य की नवीन शैलियों की सर्जना में विशेष योग दिया।

(२) कविता को जनसाधारण के निकट लाने का श्रेय भारतेन्दु बाबू में ही है। उन्होंने देश की समस्याओं पर कविता कर देश की दुःख पूर्ण अवस्था का बहुत मार्मिक चित्रण किया। देश भक्ति की रचनाओं का श्री गणेश भी भारतेन्दु बाबू और उनके सहयोगियों ने ही किया।

(३) काव्य में नवीन विषयों का समावेश करते हुए भी उन्होंने शृङ्गार रस का परित्याग न कर उस पर नवीन ढंग से उत्कृष्ट रचनाएँ कीं। उनका प्रेम-वर्णन विलासिता की भावनाओं से ऊँचा उठा हुआ, सरल और स्वाभाविक बन पड़ा है।

(४) अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के परिणाम-स्वरूप प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण की प्रथा का प्रारम्भ भी भारतेन्दु बाबू और उनके सहयोगियों ने किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) उन्होंने अलंकार-प्रधान शैली का परित्याग कर अपनी नवीन शैली का निर्माण किया जिसमें प्रसाद गुण और रस पुष्टि पर अधिक बल दिया।

(६) काव्य में सहज, सरल और स्वाभाविक भावों को उपस्थित करना उनका ध्येय रहा। विषय पर अधिक बल दिया गया। रहस्यात्मक और व्यर्थ में उलझने में डालने वाली शैली का परित्याग कर दिया गया।

(७) भारतेन्दु बाबू ने काव्य की भाषा ब्रजभाषा के रूप को भी परिवर्तित कर दिया। साहित्यिक ब्रज के स्थान पर शुद्ध ब्रजभाषा के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया। शब्दों को तोड़ा मरोड़ा नहीं गया, और न ही प्रादेशिक बोलियों के शब्दों का समावेश कर भाषा को असंस्कृत किया गया।

(८) भारतेन्दु बाबू प्रत्येक विषय में मौलिक थे। विशेष प्रतिभा-सम्पन्न होने के कारण उन्होंने युग परिवर्तन में नेतृत्व किया।

(९) प्राचीनता के अन्ध भक्त न होने के कारण, इनकी कविताएँ नवीन युग की आवश्यकताओं के अनुकूल बन पड़ीं। इनकी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं मार्मिकता, सरसता और हृदय ग्राहिता।

भारतेन्दु का शृंगार-वर्णन—शृङ्गार रस के वर्णन में भारतेन्दु बाबू ने नवीन दृष्टिकोण प्रतिष्ठित किया था। प्राचीन रीति-परम्परा के शृङ्गार वर्णन को त्याग उन्होंने प्रेम पर अत्यन्त मर्म-स्पर्शी सवैये लिखे। आज भी रसिक समाज में 'पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना दुखिया अँखियाँ नहिं मानत हैं" आदि उक्तियाँ प्रसिद्ध चली आ रही हैं। शृङ्गार रस की कविताओं का संग्रह 'प्रेम माधुरी' नामक पुस्तक में किया गया है। इनके शृङ्गार-वर्णन का एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिये कहि पेखिये का।
सुख छाँड़ि के संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेखिये का।
हरिचंद जू हीरन को व्यवहार कै,
कांचन को ल परेखिये का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
उन आँखिन सों अब देखिये का॥

प्रकृति वर्णन—भारतेन्दु बाबू ने ही सर्व प्रथम हिन्दी में स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट किया। रीतिकालीन कवियों का प्रकृति-वर्णन अत्यन्त संकुचित और बँधी परिपाटी पर चला आ रहा था। कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के उपकरणों को या तो उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त करते थे, अथवा अलंकार-विधान के लिये। स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण का अभाव रहा। भारतेन्दु बाबू ने स्वतन्त्र प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। भारतेन्दु बाबू नागरिक जीवन से सम्बन्धित थे, उन्हें प्रकृति चित्रण के अधिक अवसर प्राप्त नहीं हुए थे, इस कारण यद्यपि उनका प्रकृति-चित्रण रीतिकाल के कवियों से उत्कृष्ट है, तथापि वह उनके हृदय की अनुरागात्मक भावनाओं से अधिक सम्बन्धित न हो सका। फिर भी उन्हें प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रेम था। उनके प्रकृति चित्रण के उदाहरण देखिए—

कूजत कहुँ कलहंस कहुँ मज्जत पारावत
कहुँ कारण्डव उड़त कहुँ जल कुक्कुट धावत
चक्रवाक कहुँ बसत कहुँ बक ध्यान लगावत
सुक पिक जल कहुँ पियत कहुँ भ्रमरावलि गावत

इसी प्रकार—

कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रकटत दुरि भाजत
पवन गवन बस बिंब रूप जल में बहु साजत
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी वैष्णव भक्ति—भारतेन्दु बाबू वैष्णव भक्त कवि थे। उनका हृदय कवि-हृदय था, और उसमें सरसता कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने कृष्ण भक्त कवियों की शैली के अनुकरण पर भक्ति-रस पूर्ण पदों की रचना की थी।

उदाहरणार्थ—

हमहूँ कबहूँ सुख सों रहते।
छाँड़ि जाल सब, निसि दिन सुख सों
केवल कृष्ण ही कहते॥
सदा मगन लीला अनुभव में
दृग, दोउ अविचल बहते।
हरिचन्द घनश्याम विरह इक
जग दुःख तृन-सम दहते॥

तथा—

छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत सब जानि जात हैं घूँघट में न खगे॥
कितनो करौ दुराव दुरत नहीं जब ये प्रेम पगे।
निडर भये उघरे से डोलत मोहन रंग रँगे॥

यद्यपि इस प्रकार की इनकी कविताएँ प्राचीन परम्परा के अन्तर्गत समझी जाती हैं, परन्तु इनमें भी कवि ने कहीं कहीं नवीन आदर्श तथा भावों की अभिव्यञ्जना की है।

सामाजिक समस्याओं की विवेचना—भारतेन्दु बाबू ने सामाजिक समस्याओं की विवेचना भी की और प्रायः सभी सामयिक विषयों और उलझनों पर उन्होंने कुछ न कुछ लिखा। रीतिकालीन कवियों की भांति उन्होंने देश की समस्याओं से मुख नहीं मोड़ा, अपितु भारत माता की वेदना-पूर्ण स्थिति को देखकर उन्होंने अत्यन्त मार्मिक ढङ्ग से कहा—

रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

भारतेन्दु बाबू बृटिश शासन का गुणानुवाद करते थे, और यह विश्वास करते थे कि अँग्रेजी राज्य के साथ ही देश उन्नति के मार्ग पर बढ़ सकता है, परन्तु वे किसी समय भी भारत माता की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण कर जनता में देश भक्ति की भावनाओं को जाग्रत करने में पीछे न रहते थे। बृटिश युवराज के भारत आगमन के समय उसका स्वागत करते हुए भी वे देश की दयनीय दशा का चित्रण करने से नहीं चूकते। कभी वे भारत के गौरवमय अतीत की याद करते हुए वर्तमान पतित अवस्था को देख कह उठते हैं:—

हाय! वहै भारत भुव भारी।
सब ही विधि सों भई दुखारी॥
हाय पंचनद हा पानीपत।
अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत॥
हाय चित्तोर! निलज तू भारी।
अजहुँ खरो भारतहिं मँझारी॥
तुम में जल नहीं जमुना गंगा।
बढ़हु वेगि किन प्रबल तरंगा॥
बोरहु किन झट मथुरा कासी।
धोवहु यह कलंक की रासी॥

कवि के हृदय में एक विशेष वेदना और तड़प है। वह भारत की दयनीय दशा को देखकर व्यथित है। कभी वह अतीत की याद दिलाता है, तो कभी वह वर्तमान काल की अधोगति को देख जनता की प्रतारणा करता है। कभी वह अँग्रेजी शासकों से भारत के उद्धार की प्रार्थना करता है, तो कभी वह भारत से निकल रहे धन को देख विवशता पूर्वक चुप रह जाता है।

भारतेन्दु की देशभक्ति—उनकी देशभक्ति आज की सी राष्ट्रीय भावनाओं के समान व्यापक नहीं थी। उनकी देशभक्ति या राष्ट्रीयता आज के दृष्टिकोण के अनुसार संकुचित थी। वे मुसलमान शासन काल को भी पराधीनता का काल समझते हुए, अपने एतद् विषयक विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथीराज जयचन्द कलह करि यवन बुलायो,
तिमिर लंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो।
अलादीन, औरंगजेब मिलि धरम नसायो,
विषय वासना दुसह मुहम्मद साह फैलायो॥

तबलौं बहु सोए वत्स तुम,
जागे नहीं कोऊ जतन।
अब तो रानी विक्टोरिया,
जागहु सुत भय छाँड़ि मन॥

वास्तव में उस समय वर्तमान काल की भावना का विकास नहीं हो पाया था। वह समय जातीय उत्थान का था, और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों का पृथक् पृथक् जागरण हो रहा था।

भारतेन्दु बाबू तत्कालीन समाज में प्रचलित कुप्रथाओं के भी कट्टर विरोधी थे; वे पूर्ण रूप से समाज सुधारक थे। इस विषय में अपने विचारों को उन्होंने निम्नलिखित पद्य में समुचित रीति से व्यक्त किया है। इसमें उनका व्यंग्य भी देखिये—

रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए।
सब साक्त वैष्णव अनेक मत प्रकट चलाए।
विधवा व्याह निषेध कियो भिविचार प्रचारयो।
रोक विलायत गमन कूप मंडूक बनायो।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब बिमुख किए हिन्दुन धबराई।
अपरस सोलह छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाय।
किये तीन तेरह सबै चौका चौका लाय॥

भारतेन्दु का महत्व—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुत महत्त्व है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की रीति कालीन धारा को रोक हिन्दी कविता में नवीन विषयों का समावेश कर तथा नवीन चिन्तन विधि को प्रस्तुत कर, भाषा भाव तथा वर्ण्य विषयों में परिवर्तन कर हिन्दी को रीति कालीन गन्दी गलियों से निकाल प्रगति के कल्याणकारी और स्वास्थ्यप्रद मार्ग पर ला खड़ा कर दिया। अपने व्यक्ति गत प्रभाव तथा प्रेरणा से उन्होंने एक ऐसी कवि-मण्डली का सङ्गठन किया जो कि उनके पश्चात् भी उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल उनके महान् कार्य को आगे बढ़ाती रही।

जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये भारतेन्दु ने अपना तन, मन, धन, न्योछावर किया, उस की पूर्ति को देख कर उनकी स्वर्गीय आत्मा कितनी प्रसन्न हो रही होगी।

"साहित्य के फल-फूल हम पाते हैं, पर उस सृष्टि की जड़ें हमें अगोचर रहती हैं। वहाँ से बुद्धिमता हम लिया करते हैं। पर कदाचित उसका मूल्य प्राणवता में है। पठन-पाठन के द्वारा जो विधिवत विद्या और शिक्षा साहित्य में से ली जाया करती है, उससे वातावरण में एक भूल भर जाना स्वाभाविक है। बुद्धि-व्यापार में एक साथ जोड़ दे सकते हैं। पर असल में किसी बौद्धिक व्यापार में सृष्टि के सूत्र हैं—यह देखने में नहीं आता। प्राणों की एक बेचैनी, जो व्यक्ति को अपनी चिन्ता ही नहीं करने देती, जिसके कारण पुरुष मानो अपने को लुटाने चलने को बाध्य होता है, शायद वह विवशता है जहाँ रचना के उद्गम को देखा जा सकता है। भारतेन्दु इस सत्यता के मूर्त उदाहरण हैं।"

—जैनेन्द्रकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूपविधान और भाषाशैली की दृष्टि से भारतेन्दु

प्रो० रामचन्द्र एम० ए०

भारतेन्दु ने अपनी काव्याभिव्यक्ति के लिए न वीर शृङ्गाररस पूर्ण आख्यान स्वरूप को अपनाया और न सूफियों के प्रेमप्रबल स्वरूप को। उन्होंने रामकाव्य परम्परा में आए हुए जीवन-चित्रण पूर्ण प्रबन्ध स्वरूप को भी अपनाने की चेष्टा न की बल्कि अपनी स्वच्छन्द प्रतिभा और वैयक्तिक अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति के लिए कृष्णकाव्य और रीतिकाल की परम्पराओं में प्राप्त होने वाली गीतिकाव्य पद्धति और मुक्तक काव्य पद्धति ही उन्हें अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई, अतः भारतेन्दु ने उसी का अनुसरण किया।। ब्रजभाषा काव्य साहित्य सम्भवतः भारतेन्दु ही प्रगीतात्मक प्रतिभा-सम्पन्न अन्तिम कवि हैं। यों तो भारतेन्दु के बाद भी ब्रजभाषा पदावली की रचना जैसे सत्यनारायण कविरत्न आदि द्वारा हुई है किन्तु प्रगीतात्मक प्रतिभा की जिस वैयक्तिक मार्मिकता और तीव्रता के दर्शन हमें भारतेन्दु के पदों में होते हैं वे फिर नहीं दिखायी देते। किन्तु भारतेन्दु के गीतिकाव्य में केवल ये ही विशेषताएँ नहीं हैं जो परम्परागत गीतिकाव्य में दिखायी देती हैं।

सन्त कबीर के पदों में वैयक्तिक भावाभिव्यक्ति की ओट में सामाजिक उपदेशात्मकता, दार्शनिकता अथवा आध्यात्मिकता का गहरा रङ्ग दिखायी देता है। मीरा की पदावली में प्रियतम के साथ अनन्य एकात्मकता—जिसके खण्डित होने पर तीव्र विरह वेदना की भावना दिखायी देती है। सूर की पदावली एक ओर शान्त, संयत तथा भक्तिभावना से ओत-प्रोत है तो दूसरी ओर सौन्दर्य चित्रों से जगमग और तीसरी ओर संयोग वियोग की भावाभिव्यक्तियों से मधुर, करुण। भारतेन्दु के पदों में एक ओर मुख्यतः वियोग की करुण व्यञ्जना हुई है, दूसरी ओर लोक जीवन में रस सञ्चार करने वाली कजरी, ठुमरी, बारहमासा, होली, चैती आदि प्रगीतात्मक पदों में प्रेम की मधुर व्यञ्जना हुई है। इस प्रकार लोक हृदय के सहज स्वाभाविक आनन्द की अभिव्यक्ति भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं दिखायी देती। 'अरे इन दोउन राह न पाई' अथवा 'जगत से कैसा नाता रे' की सार्थकता या तो हिन्दू मुस्लिम दङ्गों में है अथवा श्मशान में। "हे री, मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय" अथवा "अँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी" की सार्थकता सुरुचिपूर्ण सहृदयता की सतह पर ही महत्त्वपूर्ण हो सकती है किन्तु यदि "ब्रज लता पता मोहि दीजै" में एक साथ ही मीरा और सूर की झाँकी मिल जाती है तो "चिरजीवो फागुन के रसिया" में एक बारगी लोक हृदय की उमङ्ग छलक पड़ती है। इसमें न होली में गाये जाने वाले 'कबीर' की अन्योक्तिमूलक दुर्बोधता है और न उसकी आधुनिक वीभत्सता, साथ ही उसमें सूरदास की होली जैसी प्रकृति-पुरुष की लीला का ही आभास है—यह एक मात्र लोक हृदय का निराकरण आनन्दोल्लास है। इस प्रकार भारतेन्दु के पदों की एक ओर साहित्यिक प्रभविष्णुता है तो दूसरी ओर उसका लोकानन्द-व्यापी महत्त्व भी है। इसीलिए भारतेन्दु में यदि एक ओर सारङ्ग, बिहाग, आसावरी, पिल्लू, इमन कान्धरा, केदारा आदि रागरागिनियों की क्लासिज्म है तो दूसरी ओर लावनी, पूर्वी, रेखता, धमार, खेमटा, होली, हिंलोला, ध्रुपद आदि रोमाण्टिसिज्म भी है।

स्वरूप-विधान की दृष्टि से भारतेन्दु की काव्य-रचना का दूसरा रूप रीतिकालीन स्वरूप-विधान का अनुयायी है, किन्तु इसमें भी भारतेन्दु की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजी विशेषता दीख पड़ती है। भावाभिव्यक्ति या सौन्दर्य-वर्णन के प्रसङ्ग में भारतेन्दु ने रीतिकालीन दोहे या कवित्त सवैये की पद्धति को अपनाया तो है, किन्तु लक्षण-ग्रन्थ निर्माण के रूप में नहीं, वरन् स्वच्छन्द भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में। इसलिये उनके दोहों या कवित्त सवैयों में लक्षण ग्रन्थ निर्माण का जो एक आरोपित काठिन्य (Woodenness) होता है वह सर्वथा अनुपस्थित है, अतः वे दोहे, कवित्त, सवैये भावाभिव्यक्ति के पूर्णतः अनुगामी हैं।

स्वरूप विधान की दृष्टि से भारतेन्दु की तीसरी शैली, जो मुक्तक के ही अन्तर्गत है, काव्य-भाषा के रूप में खड़ी-बोली को अपनाने के प्रसङ्ग में उर्दू काव्य शैली के अनुसरण में दीख पड़ती है। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उर्दू-काव्य-शैली की गजल हिन्दी दोहे स्थानापन्न हैं, इसलिये खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में प्रयोग करने के प्रसङ्ग में स्वभावतः भारतेन्दु गजल की ओर आकृष्ट हुए। उन्होंने गजल की शैली में खड़ी बोली का प्रयोग भी किया किन्तु वह खड़ी बोली हिन्दी न रहकर उर्दू हो गयी, और हरिश्चन्द्र 'भारतेन्दु' न रहकर 'रसा' बन गये। यदि केवल—

"देखहु लहि रितु-राजहिं,
उपवन फूली चारु चमेली॥"

(मधु मुकुल)

की जगह पर "बहार आयी है, मुर्गाने चमन फरियाद करते हैं।" होगया होता तब भी कुछ बात थी, लेकिन 'रसा' की रचनाओं में भारतेन्दु की विरह-विह्वल प्रणाम निवेदिता—शबेफिरकत में आहें भरने वाले आशिक के रूप में परिवर्त्तित हो गयी, और कमल-नयन प्रियतम तो "गजब है सुरमः देकर आज वह बाहर निकलते हैं।" (स्फुट) और याद रहे कि सुरमः देकर निकलने वाले प्रियतम नहीं, प्रियतम के स्थानापन्न हैं। इस प्रकार हिन्दी कविता की प्रवृत्ति, चिन्ता-धारा, अभिव्यक्ति, प्रतीक, भाषा और छन्द ये सबके सब परिवर्तित होकर विदेशी बन गये, और ऐसी प्रयोगात्मक रचना हिन्दी की न रहकर उर्दू की हो गयी, अतः यह प्रयोग असफल रहा। वस्तुतः किसी भाषा विशेष के प्रसिद्ध छन्द या काव्य-शैली को किसी अन्य भाषा में समान सफलता नहीं मिल सकती। अँगरेजी के 'ओड्स' और 'सौनेटस' तथा उर्दू के मर्सिया और गजल हिन्दी में उतारे तो गये हैं, किन्तु वे असफल ही रहे हैं, और इसी तरह हिन्दी की पदावली और दोहावली अन्य भाषाओं में समान सफलता के साथ नहीं उतारी जा सकतीं।

भाषा शैली:—भारतेन्दु के अतिरिक्त उनके पहले के लगभग ढ़ाई सौ वर्षों के रीतिकालीन ब्रजभाषा काव्य-साहित्य में ऐसा कोई भी कवि नहीं हुआ, जो काव्य को लोक-जीवन से संबद्ध करके उपस्थित करता। फलतः भारतेन्दु तक आते-आते काव्य-भाषा नितान्त रूढ़िग्रस्त और पुस्तकीय हो चली थी। बहुत से शब्द और प्रयोग ऐसे थे जो केवल कोष में ही मिल सकते थे—दुर्भाग्यवश ब्रजभाषा का कोई कोष भी प्रस्तुत न हो पाया था, जैसे चक्कव, भुव्वाल, ठायो, दीहा, ऊनो, लोय, करसायल आदि पदपूर्ति और तुकबन्दी के लिये शब्दों का विकृत रूपान्तर तो एक साधारण सी बात थी।

भारतेन्दु ने सूरदास की तरह भाषा को सशक्त बनाने के लिये ग्रामीण शब्दों और प्रयोगों को न तो अपनी भाषा में सम्मिलित ही किया, और न नन्ददास की तरह उसे संस्कृत, परिष्कृत करने का प्रयत्न ही किया, वरन् उन्होंने वैसे शब्दों और प्रयोगों को जो लोक-जीवन में अप्रयुक्त और दुर्बोध थे, छाँटकर उस सरस, मधुर, स्वाभाविक ब्रजभाषा को अपनाया जो एक साथ ही सूर की कोमलता, नन्ददास की परिष्कृति और मतिराम की मधुरता लिये हुए थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की भाषा की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने ब्रजभाषा की प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रचुर प्रयोग द्वारा अपनी शैली को चमत्कार-पूर्ण और प्रभावोत्पादक बना दिया। जहाँ अर्थ चमत्कार के लिये केशव और बिहारी ने श्लेष और यमक का और शब्द चमत्कार के लिये पद्माकर ने अनुप्रास का आश्रय लिया था, वहाँ भाव-चमत्कार के लिये जिसका आधार शब्द और अर्थ दोनों हैं, भारतेन्दु ने लोकोक्ति और मुहावरों का आश्रय लिया, जिनके दो-चार उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

(क) कान्ह भए प्रानमय प्रान भए कान्हमय,
हिय में न जानी परै कान्ह है कि प्रान है।

(ख) "तेरी तो हाँसी उतै नहिं धीरज,
नौ घरी भंद्रा घरी में जरै घर।"

(ग) "एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये,
कूपही में यहाँ भाँग परी है।"

(घ) "रँग दूसरो और चढ़ै गो नहीं अलि
साँवरो रंग रँग्यो सो रँग्यो।"

आदि ऐसे मुहावरे और लोकोक्तियाँ भारतेन्दु के कवित्त और सवैयों में भरी पड़ी हैं। इस प्रकार की लोकोक्ति-बहुल रचना शैली की चरम परिणति आगे चलकर 'रत्नाकर' के 'उद्धवशतक' में होती है।

अलंकार योजना की दृष्टि से भारतेन्दु की प्रतिभा और प्रवृत्ति सूरदास जैसी है। सूरदास की प्रगीतात्मक प्रतिभा अलंकरण का—विशेषतः शब्दालंकरण का, विशेष प्रयास नहीं करती—किन्तु रीतिकालीन परंपरा से प्रभावित भारतेन्दु की प्रगीतात्मक प्रतिभा शब्दालंकरण का ही प्रयास करती है जैसा कि "तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए" आदि से प्रकट है। जिस प्रकार वस्तु वर्णन के प्रसंग में सूरदास उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा की झड़ी लगा देते हैं, उसी प्रकार भारतेन्दु भी वस्तु वर्णन के प्रसंग में इन अलंकारों की प्रचुर योजना करते दिखाई देते हैं जैसा कि 'सत्य-हरिश्चन्द्र' में 'गङ्गा वर्णन' एवं 'चन्द्रावली' में 'नारद के रूप-वर्णन' और 'यमुना वर्णन' में है।

भारतेन्दु की रचनाओं में कोरी अलंकारिता नहीं है, जहाँ कवि की प्रगीतात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति हुई है अर्थात् पदों में अलंकार नितान्त स्वाभाविक और अनायास हैं, जहाँ मुक्तक प्रतिभा वस्तु वर्णन करने लगी है वहीं अलंकरण का प्राचुर्य है किन्तु वह भी अस्वाभाविक नहीं।

"कलाकर, अपनी कृतियों अथवा आकृतियों द्वारा आत्मदान करता है। कलम अथवा कूची की नोक से निखरा हुआ निर्माण सौष्ठव, कलाकार के आन्तरिक सौन्दर्य की प्रतिच्छवि हुआ करता है। कलाकार निर्माता है। वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान मात्र का निर्माता नहीं; वह काल का निर्माण करता है। वह स्रष्टा है; युग स्रष्टा। महर्षि व्यास ने राजा एवं काल को अन्योन्याश्रित माना है। दोनों परस्पर एक दूसरे के विधाता हैं किन्तु राजा एवं समय,—इन दोनों के अंकुर उस महान चिंतक के अन्तस्तल में विद्यमान होते हैं, जिनकी गोद में कभी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम खेलते होते हैं, कभी वेदान्त सिद्धान्त को श्रीकृष्ण बन कर द्वापर के आंगन में उतरना पड़ता है। युग-लेखक अपनी वाणी का स्वयं नायक होता है। परम्परा की धारा में जब कभी कोई मोड़ या घुमाव उसे देना होता है तब वह प्रचलित लोक-वाणी के माध्यम से युग के वरदानों को उस रूप में उपस्थित करता है, जो पीढ़ियों की निधि बन जाते हैं। राष्ट्रकवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त से उपमा उधार लें तो, लोकवाणी में उच्छ्वसित, युग लेखक के उच्चार पीछे आने वालों की जयकार बन जाती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लोकवाणी के एक ऐसे ही निर्माता एवं गायक थे।"

—माखनलाल चतुर्वेदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की परम्परा

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०

भारतेन्दु हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। वे भारतीय समाज की बढ़ती हुई शक्तियों के साहित्यिक प्रतिनिधि थे। उनके साहित्यिक कृतित्व के साथ हिन्दी में सामन्ती युग का अन्त होता है, और हिन्दी का आधुनिक युग शुरू होता है। उनकी तीव्र सामाजिक चेतना और देश भक्ति उनके साहित्य में व्यक्त होती है। उन्होंने रीति और परम्परा में बँधे मध्य युग के साहित्य को उबारा, और विकास का पथ हिन्दी साहित्य को दिखाया। जब हम भारतेन्दु की अपार साहित्यिक देन की विवेचना करते हैं, तो आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति इतनी साहित्य-सृष्टि किस प्रकार कर सका। उन्होंने १७५ ग्रन्थ स्वयँ लिखे और ७५ सम्पादित ग्रन्थ उनके नाम के साथ सम्बद्ध हैं!

भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य का नया युग है। इस युग से हिन्दी साहित्य में मध्य युग का अन्त होता है, और आधुनिक युग का आरम्भ। रीतिकालीन हिन्दी साहित्य ह्रासोन्मुखी सामन्ती युग का प्रतिनिधि था, और निष्प्राण हो चुका था। जब भारतीय समाज में आमूल परिवर्त्तन शुरू हुए, तभी एक नई साहित्यिक धारा का आरम्भ भी हुआ। अँग्रेजों के आने के साथ भारत का पुराना जरार्जीर्ण सामन्ती ढाँचा टूटने लगा, और नए आर्थिक और सामाजिक सम्बन्ध भारतीय समाज में प्रगट हुए। एक नया मध्य वर्ग भारतीय रङ्गमञ्च पर आता है और एक नई सांस्कृतिक चेतना को साहित्य में स्वर देता है। इस नव जागरण के हिन्दी साहित्य में प्रमुख प्रतिनिधि भारतेन्दु थे।

आधुनिक साहित्य में तीव्र व्यक्तिगत् प्रेरणा और सामाजिक चेतना है। रीतिकाल के कवि जीवन से कम प्रेरणा लेते थे, रीति, परम्परा और रूढ़ियों से वे अधिक प्रभावित थे। भारतेन्दु युग हिन्दी में अनेक नई परम्पराओं का सूत्रधार है। हिन्दी गद्य, हिन्दी नाटक, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध और एक नयी काव्य-परम्परा भारतेन्दु-युग से शुरू होती है। एक प्रकार से यह नया साहित्य पाश्चात्य साहित्य के अधिक समीप है। इसका एक कारण है। आधुनिक यूरोपीय साहित्य पूँजीवादी युग का साहित्य है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में भी पूँजीवाद बहुत रुक थम कर साँस लेना शुरू करता है। उसी का उद्दीपमान स्वर हम नए साहित्य में पाते हैं।

भारतेन्दु हिन्दी साहित्य में विकासमान वर्ग के प्रतिनिधि हैं। अतएव उनके स्वर में ओज है, प्राण और बल हैं। भारतेन्दु की काव्य-कला बहुत परिष्कृत है; उनके काव्य पर एक हद तक मध्यकालीन परम्परा का प्रभाव शेष था। किन्तु गद्य-साहित्य में भारतेन्दु पथ दर्शक हैं। नाटक, आलोचना और निबन्ध के क्षेत्र में उनके सामने कोई बना-बनाया राज पथ न था, बहुत-सा झाड़-झङ्झाड़ उन्हें साफ करना था, अपना रास्ता स्वयं बनाना था।

कविता में भी हम एक नई प्रेरणा, भारतेन्दु के साहित्य में पाते हैं। प्रकृति का चित्रण भारतेन्दु उद्दीपन-आलम्बन के रूप में नहीं करते। उन्होंने अपने प्रकृति-चित्रण में सीधे जीवन से प्रेरणा ली है। उनका गङ्गा-वर्णन बहुत प्रसिद्ध है

नव उज्ज्वल जल-धार हार हीरक सी सोहति;
बिच बिच छहरत बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत,
जिमि नर गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार 'सत्य-हरिश्चन्द्र' में उनका सन्ध्या-वर्णन बहुत सबल और शक्तिशाली है :

"साँझ सोई पट लाल कस कहि,
सूरज खप्पर हाथ लह्यो है;
पच्छिन के बहु सव्दन के मिस
जीउ उचाटन मन्त्र कह्यो है।
मद्य-भरी नर खोपरी सो ससि
को नव बिम्बहु धाइ गह्यो है;
दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै
कालि कपालिक नाचि रह्यो है।"

अपने नाट्य-साहित्य में भारतेन्दु ने देश की दुर्दशा का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है। वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कोप-भाजन भी इसी कारण बने। भारत के आर्थिक शोषण पर उनकी पंक्तियाँ सुपरिचित हैं :

"अँग्रेज राज सुख साज सजै सब भारी,
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।"

वास्तव में जो सामाजिक चेतना भारतेन्दु-साहित्य में है, वह हमें छायावादी कवियों में तो नहीं ही मिलती, वरन् द्विवेदी युग के लेखकों में भी कम ही मिलती है। "भारत-दुर्दशा", "प्रेम-योगिनी", और "अन्धेर नगरी" में भारतेन्दु युग का करुण क्रन्दन हमें मिलता है। जहाँ एक बार काशी के लिए भारतेन्दु लिखते हैं :

"विधि मानो रचा है पुरीन की नासिका !"

उसी के लिए "प्रेमयोगिनी" में यह भी लिखते हैं :

"देखो तुम्हारी कासी लोगो देखो तुम्हारी कासी !"

भारतेन्दु से जो एक और शिक्षा आज के लेखक ग्रहण कर सकते हैं, वह भाषा के सम्बन्ध में है। भारतेन्दु की भाषा जन-सुलभ थी। वे जनता के निकट थे, और उसी की भाषा में लिखते थे। आज के अनेक लेखक जनता से दूर हवाई मीनारों में रहते हैं, और ऐसी भाषा लिखने लगे हैं, जिसे वही लिखें और वही समझें ! यह मति ह्रासोन्मुखी भाषा की होती है। सजीव भाषा-परम्परा जनता से सम्बन्धित होती है। जनता से दूर हो कर भाषा निर्बल और निर्जीव होने लगती है।

भारतेन्दु से आज का लेखक देश-भक्ति, सामाजिक चेतना और जनता से निकट सम्बन्ध रखने की शिक्षा लेता है। किसी भाषा का वह प्रयोग करे, यह भी वह भारतेन्दु से सीख सकता है। भारतेन्दु पण्डिताऊ, बोझिल भाषा का प्रयोग निषिद्ध समझते थे। उनकी भाषा बोल-चाल की भाषा थी। साहित्य सेवा के अतिरिक्त भारतेन्दु अनन्य समाज-सेवी भी थे। आपने स्कूल खोले, पत्र चलाए, वाचनालय खोले, दीन-दुखी जनों की निरन्तर सहायता की। आपने हिन्दी रङ्ग-मञ्च का श्री गणेश भी किया। आपको अभिनय का भी बड़ा शौक था। खेद की बात है कि यह रङ्ग-मञ्च की परम्परा विकसित न हो सकी, और बालू में जल के समान लुप्त हो गई।

भारतेन्दु ने अपने सरस व्यक्तित्व का सुन्दर चित्र खींचा है :

सेवक गुनी जन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुन गानों के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
'हरीचन्द' नगद दमाद अभिमानी के।
चहिबे की चाह, काहू की न परवाह नेही,
नेह के दिवाने सदा सूरत निमानी के
सरबस रसिक के, दास-दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के।"

भारतेन्दु के व्यक्तित्व और साहित्य में दोष थे, किन्तु उनके अपार गुणों की तुलना में वे नगण्य हैं। आज के लेखकों का कर्तव्य है कि भारतेन्दु की परम्परा का आलोचनात्मक अध्ययन करें, और जो प्रगतिशील तत्व इस परम्परा में हैं, उनका आगे विकास करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु के काव्य में शृङ्गार-वर्णन

डॉ० किरणकुमारी गुप्त एम० ए०, पी-एच० डी०

साहित्य में शृङ्गार रस को रसराज कहा गया है क्योंकि इस रस में मानव हृदय के मनोविकारों को विभिन्न प्रकार से वर्णन करने की जितनी क्षमता है उतनी अन्य रसों में परिलक्षित नहीं होती। वस्तुतः शृङ्गार-भावना मानव-हृदय की मूल-भावना है और आधुनिक मनोविज्ञान विशारदों के मतानुसार तो शृङ्गार भावना ही प्रेरणात्मक शक्ति है जो जीवन के गतिरोध का निवारण करती है, और मूक भावों को सक्रियता प्रदान करती है। जीवन की यह सञ्चालिका शक्ति विविध-रूपा है किन्तु इसका सुस्पष्ट रूप दाम्पत्य-प्रेम और प्रणय में परिलक्षित होता है। हिन्दी साहित्य में, आदि-काल से आधुनिक-काल पर्यन्त शृङ्गार-भावना का एक क्रमिक-विकास प्रकट होता है।

वीरगाथा-काल युद्ध और संग्राम का काल था। उस काल का वीर-पराक्रमी नायक प्रेमी और रसिक था। वीरों के भयङ्कर युद्धों की पृष्ठ भूमि में मूल प्रेरणात्मक शक्ति शृङ्गार की ही थी न कि राष्ट्रीय-चेतना तथा देश-रक्षा की। ग्रीक-साहित्य में ट्रोजनकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है किन्तु इसके मूल में हैलैन नाम की एक सुन्दरी की मंजुल मूर्ति थी। इसी प्रकार वीर गाथाकाल के वीर योद्धा असिधार की झङ्कार में अपनी प्रेयसी के नूपुरों की रुन-झुन की सुखद कल्पना में आत्मविभोर होकर शत्रुओं का मर्दन करते चले जाते थे। उस सामन्त-शाही युग में शृङ्गार की भावना कुमारी कन्याओं के अपहरण तक ही परिमित थी और शृङ्गार का मूलाधार भौतिक था उसमें किसी प्रकार की आध्यात्मिक-भावना का समावेश नहीं किया जा सकता।

समय की अँगड़ाई के साथ शौर्य और पुरुषार्थ व्यक्ति से हटाकर देवता में समाविष्ट कर दिया गया और शृङ्गार भावना भी उनके जीवन के साथ सम्बद्ध करदी गई। ज्ञान-मार्गी कवियों ने अखिलेश्वर के साथ अनेक सम्बन्ध स्थापित किये उसमें पतिपत्नी का सम्बन्ध आलङ्कारिक था और भावना अतिशय सूक्ष्म। उस प्रकार के शृङ्गार में विलास-भावना के लिये स्थान ही नहीं था। प्रेम-मार्गी काव्यकारों ने लौकिक कथाओं के आधार पर निर्गुण की शुष्कता मिटाने के लिये, माननी प्रेम में आध्यात्मिक व्यञ्जना की। उनके द्वारा अभिव्यक्ति काव्य से पति-पत्नी का विरह और मिलन आत्मा और परमात्मा का विरह-मिलन था। प्रेम-काव्य का आधार दैवी होने के कारण शृङ्गार भावना अधिक विकसित न हो सकी। सगुणोपासक तुलसी और सूर ने इस शृङ्गार-भावना को सीताराम तथा राधाकृष्ण के प्रणय के रूप में व्यक्त किया। रामकाव्य के मर्यादित क्षेत्र में यह शृङ्गार भावना अधिक प्रस्फुटित न हो सकी किन्तु कृष्णकाव्य में यह अत्यन्त विकसित हुई। सूर ने राधाकृष्ण को आधार मान कर भक्ति-समन्वित-शृङ्गार के राशिभूत पदों की रचना की। इस काल में जयदेव से प्रभावित विद्यापति ने राधाकृष्ण विषयक अश्लील शृङ्गार के चित्र अङ्कित किये। और रीतिकाल के लिये पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। रीतिकाल में राधा और कृष्ण लौकिक नायक-नायिका मात्र रह गये।

रीतिकाल में सेनापति, देव, बिहारी, मतिराम और पद्माकर आदि कवियों ने राधाकृष्ण को आधार मान कर अनेक कामुकतापूर्ण एवं अश्लील-तक चित्र अङ्कित किये। भक्त कवियों ने कृष्ण और गोपिकाओं के मध्य आत्मा-परमात्मा का लोकोत्तर सम्बन्ध स्थापित करके पक्ष आध्यात्मिक रखा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकरुचि को परिष्कृत एवं सात्विक बनाये रखने का प्रयत्न किया किन्तु रीतिकालीन कलाकारों ने अपने आश्रयदाताओं की विलास वृत्ति को परितुष्ट करने के लिये राधाकृष्ण के मान, अभिसार और प्रणय के अपरिष्कृत बनावट में अपनी कला विकीर्ण की। शृङ्गार-वर्णन की यही धारा भारतेन्दुजी को परम्परा में प्राप्त हुई।

जिस समय भारतेन्दुजी काव्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए उस समय देश की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो चुका था। विलास प्रिय नवाब बन्दी बने हुए थे। दिन पर दिन आर्थिक शोषण, उपेक्षा तथा अपमान की ज्वाला में जनता प्रज्वलित हो रही थी। अपना देश, अपने भगवान और अपनी भाषा परायी थी। अँग्रेजी का प्रचार किया जा रहा था। अँग्रेजी साहित्य सुसम्पन्न साहित्य है—उसमें स्वदेश के प्रति सम्मान है फलतः यहाँ के शिक्षित समुदाय में राष्ट्रीय चेतना की लहर उठी। उन्होंने भी अपने देश का गुणगान दबे शब्दों में करना आरम्भ किया। परतन्त्रता की बेड़ियों से निगड़ित उन्हें अपने देश के प्रति वास्तविक हृदयोद्गार अभिव्यक्ति करने का तो अधिकार ही कहाँ था। जनता के रोने और हँसने पर भी प्रतिबन्ध था। जब कभी हृदय की आकुलता शब्दों में प्रस्फुटित हो जाती तो तुरन्त ही उन्हें अपने शासकों की भी विवश-भाव से श्लाघा करनी ही पड़ती।

औदास्य और उपेक्षा के आवर्त में जब मानव निरुपाय हो जाता है तो उसे अखिलेश्वर का ध्यान आता है। सुख और समृद्धि के जीवन में भगवान् के प्रति जितना अधिक तटस्थ होता जाता है, दुःख और मानसिक-पीड़ा के समय में उतना ही अधिक नैकट्य स्थापित हो जाता है। भारतेन्दु काल की एक प्रवृत्ति यह भी है। इस प्रकार की प्रवृत्ति के कवियों ने भक्तिकाल के कवियों की भाँति भगवद् गुणानुवाद किया है। संक्षेपतः भारतेन्दु के काव्य में हमें चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ स्पष्टतः लक्षित होती हैं—

(१) राष्ट्र-प्रेम (२) शासक वर्ग की प्रशंसा (३) भक्तिकाल का प्रभाव (४) रीतिकाल का प्रभाव अर्थात् शृङ्गार वर्णन।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि राष्ट्र-प्रेम की चेतना यहाँ की जनता में अंग्रेजी के ग्रन्थों के प्रभाव स्वरूप जाग्रत हुई। भारतेन्दुजी ने अपने देश की अधोगति, परतन्त्रता, सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अवनति के प्रति व्यथा का अनुभव किया। उन्होंने भारतीय जनता को भैरवी का सन्देश दिया, किन्तु मन्द्र-स्वर में। कभी तो उन्होंने भारत के अतीत का गुणगान किया, और कभी वर्तमान पर आँसू बहाये—

रोवहु सब मिलि कै, आवहु भारत भाई,
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

परतन्त्रता के उस काल में, आँसू बहाने के अतिरिक्त और अपने पास साधन ही क्या था? सामाजिक-अधोगति और धार्मिक अवनति के प्रति असन्तोष भी देश प्रेम के ही अङ्ग थे।

शासक-वर्ग की प्रशंसा करना उस समय अत्यावश्यक था। अपनी भावाभिव्यक्ति को चाटुकारिता से आवृत करना ही पड़ता था, अन्यथा शासक-वर्ग द्वारा कठोर-दण्ड निश्चित था। भारतेन्दुजी ने यह चाटुकारी की—शासक-वर्ग की प्रशंसा में लेखनी उठाई।

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।"

किन्तु हृदय की मूक-वेदना रो उठी और दूसरे चरण की पूर्ति इस प्रकार हुई—

"पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"

तत्कालीन परिस्थितियों ने उन्हें देश-प्रेम के प्रति आकर्षित किया। अपनी परवशता पर वह क्षुब्ध हुए, और भगवान् से कल्याण-कामना की। इनके इस प्रकार के पदों में एक सच्चे भक्त की पुकार है। उन्होंने अपना आराध्य श्रीकृष्ण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया। भक्ति के आवेश में कभी तो उन्होंने कामना की,

"ब्रज के लता पता मोहि कीजै।"

कभी कृष्ण के गुणानुवाद के लिये मन को प्रेरित किया —

"रसने, रटु सुन्दर हरिनाम।
मङ्गल-करन हरन सब असगुन,
करन कल्पतरु काम।"

और कभी अपने उद्धार के लिये प्रार्थना की। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का भी वर्णन किया।

भारतेन्दुजी मूलतः शृङ्गारी कवि थे, उन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित होकर श्री राधाकृष्ण को उपास्य माना और उनकी केलि-क्रीड़ाओं के शृङ्गारिक चित्र अङ्कित किये। हरि और राधा रीतिकाल में साधारण नायक-नायिका मात्र रह गये थे। भारतेन्दुजी ने भी रीतिकाल के प्रभाव-स्वरूप अपनी दमित विलासमयी, भावनाओं का निष्कासन राधाकृष्ण को आधार मानकर ही किया। शृङ्गार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग के विलास-मय वर्णन किये। रीति-ग्रन्थों में वर्णित खंडिता, वासक-सज्जा, अभिसारिका, विरहोत्कण्ठिता प्रोषितपतिका आदि नायिकाओं, षटऋतु, बारह-मासा और दूती, मान, विरह नख-शिख आदि के अनेक वर्णन किये।

रीतिकाल शृङ्गारिक कविता का काल था। इस काल में नायिका-भेद कवियों का प्रिय विषय रहा। राष्ट्रीय-कवि भूषण तक इस छूत से मुक्त न रह सका, नीति और भक्ति पर लेखिनी उठाने वाले रहीम को भी नायिका भेद की रचना करनी पड़ी। हमारे भारतेन्दु ने नायिका भेद की झाँकी की, उन्होंने किसी लक्षण ग्रन्थ की तो रचना नहीं की और न नायिकाओं का क्रमशः वर्णन ही किया, किन्तु अनेक प्रकार की नायिकाओं के चित्र अवश्य अंकित किये। खण्डिता नायिका का चित्रण देखिये।

श्याम पियारे आजु हमारे,
भोरहि क्यौं पगु धारे।
बिनु मादक ही आज कहो,
क्यौं घूमत नन तुम्हारे॥
ऐसी को है सुघर सुनरिया,
जिन यह हार बनायो।
बिन नग जड़्यौ हेम बिन निरमित,
बिन गुन दाम पोहायो॥
मोहन तिलक महावर को सिर,
लीलाम्बर कटि धारे।
कौन सी चूक परी हरि हमसों,
नन लाल क्यो प्यारे॥

इसमें नायक किसी प्रेमिका के पास रात व्यतीत करके आया है जिसके नेत्रों की लालिमा आदि से सब कुछ समझ कर पत्नी अर्थात् खण्डिता नायिका ने उपर्युक्त वचन अपने पति से कहे हैं। कृष्ण के पर्यायवाची शब्द श्याम और हरि भ्रम-मूलक हैं। नायक शठ है।

अभिसारिका नायिका के दो भेद होते हैं। शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका। भारतेन्दु जी ने दोनों ही प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है—

दीपन उल्टी करी सहाय।
चली गई पिय पास प्रगट मग,
काहु न परी लखाय॥

× × ×

दामिनि बैरिनि बैर परी।
जान न देत पिया प्यारे ढिंग
प्रगटत बात दुरी॥
रैन अँधेरी स्याम बसन तन,
जद्यपि रहत धरी।
तऊ चमकि बिनु बात बरिनी
मेरी लाज हरी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त वर्णन क्रमशः शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका के हैं। इसी प्रकार नायिका भेद में वर्णित लगभग सभी प्रकार की नायिकाओं को भारतेन्दुजी ने अपने काव्य में स्थान दिया है। 'सतसई सिंगार' में बिहारी के समस्त शृङ्गार विषयक दोहों को लेकर एक एक छन्द लिखा है।

शृङ्गार के दो पक्ष होते हैं—संयोग और वियोग। रीतिकालीन काव्यकारों ने संयोग में अधिकतः षट्ऋतु और वियोग में बारहमासे का वर्णन किया है। भारतेन्दुजी ने दोनों ही पक्षों को अपनाया है। संयोग पक्ष में तो उन्होंने श्लीलता की सीमा को अतिक्रमण कर दिया है। षट्ऋतु के अन्तर्गत इन्होंने ग्रीष्म, पावस, शरद और बसन्त का अधिक वर्णन किया है। जलक्रीड़ा, हिंडोला, वन विहार और फाग क्रमश इन ऋतुओं में संयोग-सुख के संवर्धक होते हैं—कवि ने इनका प्रेमाभिवृद्धि के रूप में अर्थात् उद्दीपन रूप में ही चित्रण किया है—

दोउ मिलि विहरत जमुना तीर मैं।
करि कर के जलयंत्र चलावत,
भज रहा लट नीर मैं॥
[राग संग्रह]

कमल नैन प्यारी भूलै झुलावै पिय प्यारी।
कबहुंक झोंटा देत कबहुँ लगावै कंठ,
कबहुँ सँवारत सारी, करत मनुहारी।
[वर्षा विनोद]

वे देखो पौढ़े ऊँचे महल दोऊ,
झलकत रूप झरोकन आई।
हँसनि मुरनि बतरानि परस्पर,
कछुक दूर तैं परत लखाई॥
[राग संग्रह]

कुञ्ज बिहारी हरि सँग खेलत
कुञ्ज-बिहारिनि राधा।
आनन्द भरी सखी सँग लीने,
मेटि बिरह की बाधा॥

अबिर गुलाल मेलि उमगावत

उपरिलिखित चित्र संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत, ग्रीष्म, पावस, शरद और वसन्त ऋतु के हैं। इन वर्णनों में कहीं भी भक्ति का लेश नहीं है। ग्रीष्म ऋतु के बर्णन को पढ़ कर रीतिकालीन शृङ्गारी कवि सेनापति द्वारा अङ्कित खस खानों और हौजों का चित्र सम्मुख आ जाता है। डिंडोले पर झूलती हुई भारतेन्दुजी की नायिका बिहारी की नायिका से बाजी लगाती है, शरद ऋतु में विहार करने वाले प्रेमी-प्रेमिका कवि 'देव' के नायक नायिका से प्रतीत होते हैं और फाग खेलते हुए कुञ्ज-बिहारी हरि और कुञ्ज-बिहारिणी राधा तो विशेषण मात्र हैं वस्तुतः वे संयोग-शृङ्गार के आलम्बन हैं।

वियोग-शृङ्गार के तीन भेद हैं—(१) मान (२) प्रवास और (३) मरण। मान क्षणिक होता है अतः उसमें वियोग की तीव्रता और वास्तविकता नहीं आ पाती, मरण में शृङ्गार करुण में परिवर्तित हो जाता है। अतः वियोग की वास्तविक दशा प्रवास में ही प्रकट होती है। 'प्रेम-माधुरी', 'राग संग्रह' और वर्षा विनोद में मान के राशि-राशि उदाहरण हैं। नायक-नायिका के पारस्परिक मान के निवारण में सखी साधन होती हैं, वही एक दूसरे के वियोग का वर्णन करती हुई दोनों को मनाती है। अधिकतः मान नारी-पक्ष से होता है। भारतेन्दुजी ने इसी परिपाटी का प्रतिपालन करते हुए मान का वर्णन किया है। इनके काव्य में कभी तो सखी नायिका से नायक की व्यग्रता का वर्णन करती है और कभी "यह रितु रूसन की नाहीं" कहकर वर्षा के उद्दीपन रूप के प्रति उसे आकर्षित करती है। नायक की व्याकुलता का वर्णन करते हुए सखी मानिनी नायिका से कहती है—

दौरि उठि प्यारी गर लावै गिरधारी किन
ऐसे पियहू सों किन बोलै कलबादिनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखु 'हरिचन्द' ठीक दुपहर तरे हेतु,
आयो चलि दूर सों पियारो री प्रमादनी ॥
[प्रेम-माधुरी]

वियोग-पक्ष में प्रवास-विषयक कविता का रीतिकाल में सबसे अधिक वर्णन हुआ है, भारतेन्दु जी ने भी प्रवास के विषय में सबसे अधिक छन्द लिखे हैं। वियोग की दस काम दशाएँ होती हैं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप, व्याधि, जड़ता और मरण। मरण अन्तिम अवस्था है—जब मनुष्य सुखातिशय के हर्ष और दुःखाधिक्य के कष्ट से विमुक्त हो जाता है। फिर वियोग का वर्णन ही कैसा! किन्तु कुशल कलाकार विहारी ने इस दशा का भी चित्रण कर दिया है। भारतेन्दुजी ने वियोग की नौ अवस्थाओं का विशद-रूपेण उल्लेख किया है। स्मृति का एक चित्र देखिये—

आयो सखी सावन विदेश मन-भावन जू,
कैसे करि मेरो चित हाय धीर धरिहै।
ऐहैं कौन झूलन हिंडोरे बैठि संग मेरे,

× × ×

इसमें सावन मास आने पर वियोगिनी को हिंडोले आदि का स्मरण होता है। अतीत के सुख के धूमिल चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाते हैं। 'वर्षा विनोद' में बारहमासे में भारतेन्दुजी ने प्रत्येक माह में इसी प्रकार विरह-व्यथित नायिका की वियोग-दशा का वर्णन किया है। नायक के समीप होने पर प्रत्येक माह सुख-वर्षण करता था, प्रत्येक माह कुछ नवीनता लेकर आता था। वैशाख माह की जलक्रीड़ा और ज्येष्ठ के खसखाने अपना महत्त्व रखते थे, श्रावण के हिंडोले दोनों के हृदयों को दोलायमान कर देते थे, कार्तिक में सुधा-निस्पन्दिनी शरत्-सुषमा आनन्दवर्धिनी थी और फाल्गुन में वासन्ती कोकिल की कल-कूजन एवं मधु-मदिर समीर उन्मत्त बना देती थी। नायक से विमुक्त होने पर प्रत्येक-माह अतीत के सुखों की स्मृति जागरित कर देता है। विरहाधिक्य की यही अवस्था उद्वेग में परिवर्तित हो जाती है और उद्विग्नावस्था में ही प्रलाप आरम्भ हो जाता है। उद्वेग का आधिक्य होने पर जड़ता अपना आधिपत्य स्थापित कर लेती है। मानव का वास्तविक ज्ञान लुप्त हो जाता है। प्रत्येक वस्तु की यथार्थता में वैषम्य प्रतीत होने लगता है। इसी जड़ता से अभिभूत वियोग-ग्रस्त मानव को समस्त सुखदायिनी वस्तुएँ, शीतोपचार आदि कष्टप्रद प्रतीत होते हैं। समस्त अभितप्त विश्व को शीतलता प्रदान करने वाली पावस की जलधार वियोगाग्नि को भड़काने के लिये घी का कार्य करती है—"हरीचन्द नहिं बरसत पानी, विरह अगिनि को घृत सम जानी।" वियोग द्वारा अद्भुत उन्माद की दशा में इसी प्रकार के जड़ता-पूर्ण-प्रलाप उद्वेलित हृदय से प्रस्फुटित होते हैं। जड़ता के कुछ कम होने पर वास्तविकता का ज्ञान होने पर भी विरह-विकल मानव को सुखद वस्तुओं के प्रति आकर्षण नहीं रहता, वरन् विराग और उदासीनता की ही अभिवृद्धि होती है, प्रिय की स्मृति और भी अधिक साकार हो जाती है, और विरक्तिमय ये वचन ध्वनित हो उठते हैं—

'होरी मैं नाहक खेलूँ बन मैं,
पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं।"
[होली]

नख-सिख वर्णन भी शृङ्गार का ही एक अङ्ग है। रीतिकालीन कवियों ने नायक-नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन में आकाश-पाताल के उपमानों को एकत्रित करने में अपनी प्रतिभा का कौशल दिखाया है। विशेषतः नायिका के अङ्ग के तो तिल तक उनकी सूक्ष्म दृष्टि का प्रसार है। कभी कवियों का मन नायिका की ठोड़ी के गड्ढे में रपट जाता है, तो कभी उसके जूड़े के साथ बँध जाता है। नायिका के उठने, बैठने, चलने, हँसने बोलने आदि सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियाओं में उन्हें एक विचित्रता प्रतीत हुई है। भारतेन्दुजी ने नायिका का नख-शिख वर्णन इतने सूक्ष्म रूप से तो नहीं किया है और न नायिका के क्रियाकलाप के वर्णन में चमत्कार प्रदर्शन किया है, किन्तु परम्मागत नख-शिख वर्णन उनका उसी प्रकार का है।

नागरी रूप लता सी सोहै।
कमल सो बदन पल्लव से कर पद
देखत ही मन मोहै॥
अतसी कुसुम सी बनी नासिका
जलज-पत्र से नयन।
बिम्ब से अधर कुन्द दन्तावलि
मदन-बान सी सयन।
गाल गुलाब कान झुमका मनु
करनफूल के फूल।
बेनी मानों फूल की माला
लखि कै मन रह्यो भूल॥
[राग संग्रह]

शृङ्गार के अन्तर्गत दूती भी एक मुख्य नायिका होती है। मुस्लिम-शासकों की वासना पूर्ति के लिये दूती नियत थी, जो भोली-भाली बालिकाओं को फुसलाकर ले आती थी। भारतेन्दुजी ने भी दूती का वर्णन किया है—

लाई लिवाय तमासो बताय
भुराय कै दूतिका कुञ्जन माहीं।
धाम गही 'हरिचन्द' जबै न
छपी वह चन्द मुखी परछाहीं॥
[प्रेम-माधुरी]

नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार के भोली बालिकाओं को बहकाने के कुकृत्य उस समय भी होते थे अथवा उन्होंने केवल शृङ्गारी कवियों की परम्परावश ही ऐसा किया है।

आरम्भ में ही संकेत किया जा चुका है कि वे मूलतः शृङ्गारी कवि थे, और स्वयं रसिक थे। अतएव नायिकाओं के हाव-भाव, विलासियों की विलास-भावना आदि का उन्हें वास्तविक-ज्ञान था। इसी कारण उनके विलास-वर्णन अधिक आकर्षक हैं। वे उनके हृदय की वास्तविक अनुभूति के परिचायक नहीं हैं—हृदय की वास्तविक अनुभूति की अभिव्यक्ति हो तो कविता है। उनको भक्त-कवि कहना अनुपयुक्त है। उनकी भक्ति-विषयक कविता के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वह वल्लभ-सम्प्रदाय से प्रभावित हैं। फलतः उन्होंने श्रीकृष्ण के यथा-रुचि वर्णन किये हैं, किन्तु उनमें भक्त के उद्‌गार और तन्मयता नहीं आ पाई है। जब हम कृष्णभक्त काव्यकारों की वाणी द्वारा "भैया हौं गाय चरावन जैहौं" का श्रवण करते हैं तो बाल-कृष्ण का बालहठ हृदय को रससिक्त कर देता है—उनका बाल-चापल्य प्रत्येक हृदय में एक अनुपम आनन्द का सृजन कर देता है किन्तु भारतेन्दुजी के कृष्ण के बाल-चापल्य का भी अवलोकन कीजिये—

अरी हौं बरजि रही बरज्यौ नहिं मानत,
दौरि दौरि बार बार धूप ही में जाय।
सीरे खसखाने साजि सेजहू बिछाय राखी,
भयौ छिड़काव आइ नेकु तौ जुड़ाय॥
छूटत फुहारे चारु देखि तौ कौतुक आइ,
मोतिन सी बूँद झरैं चित ललचाय।
'हरीचन्द' मातु के बचन सुनि आइ पौढ़े,
बिंजन करत सब सखी हरखाय॥
[प्रेम-मालिका]

भक्तों के सर्वस्व वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण खसखानों के विहारी बन गये हैं। यह विलास वैभव रीतिकालीन शृङ्गारी कवि का कहा जा सकता है, भक्ति-रस-सिक्त वल्लभ के अनुयायियों का नहीं।

यह जागतिक नियम है कि आपद्‌ग्रस्त होने पर प्रत्येक मनुष्य चाहे वह नास्तिक ही क्यों न हो भगवान् का स्मरण करता है और ज्यों-ज्यों उसको

(शेष पृष्ठ २१० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की गद्य-भाषा

प्रो० विनयमोहन शर्मा एम० ए०

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी के प्रवर्तक कहे जाते हैं। आज हम साहित्य में जिन भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों को विकसित रूप में देखते हैं उनका प्रारम्भ भारतेन्दु और उनके साथियों ने निश्चय रूप से कर दिया था। कविता के क्षेत्र में उनके रूप कालीन कवि नई सामाजिक चेतना को उनके साथ ही प्रतिध्वनित कर रहे थे पर गद्य की भाषा का संस्कार-कार्य हरिश्चन्द्र ही अत्यन्त आग्रह के साथ कर रहे थे। हरिश्चन्द्र के पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह में भाषा के रूप पर विवाद चल रहा था। इसमें संदेह नहीं कि राजा सितारे-हिन्द ने हिन्दी को पाठ्यक्रम में स्थान दिला और उसे शिक्षा का माध्यम बनवा कर हिन्दी की अतुलनीय सेवा की है। वे उर्दू लिपि और थोड़े बहुत फारसी अरबी के शब्दों का प्रयोग नीति की दृष्टि से करते थे परन्तु जब लोगों ने उनकी नीयत पर ही सन्देह करना प्रारम्भ कर दिया तब उनके हृदय में जबरदस्त प्रतिक्रया पैदा हुई और वे कट्टर उर्दूपन्थी बन गये। उन्होंने 'भाषा का इतिहास' में लिखा है—'हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए जो आम फहम व खास पसन्द हैं; हर्गिज गैर मुल्क के शब्द काम में न लाने चाहिए और न संस्कृत की टकसाल कायम करके नये ऊपरी शब्दों के सिक्के जारी करने चाहिये।' इसके उत्तर में 'रघुवन्श' की भूमिका में राजा लक्ष्मणसिंह ने लिखा था कि 'हिन्दी में संस्कृत के पद आते हैं और उर्दू में अरबी फारसी के..... यह आवश्यक नहीं कि अरबी-फारसी के बिना हिन्दी न बोली जाय ..... न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी-फारसी के शब्द भरे हैं।'

भारतेन्दु के सामने दो महारथियों के भाषा-विषयक दो निर्देश थे जो दो दिशाओं की ओर ले जाने वाले थे। यद्यपि सितारेहिन्द भारतेन्दु के गुरु थे तो भी उन्हें उनका मार्ग हिन्दी की प्रगति के लिये घातक प्रतीत हुआ और उन्होंने स्पष्ट विरोध किया।[1] राजा लक्ष्मणसिंह का सर्वथा संस्कृत के प्रति झुकाव भी उन्हें हिन्दी की गति में बाधक जान पड़ा। अतः उन्होंने मध्य-मार्ग स्वीकार किया। उन्होंने अपनी भाषा में न तो उर्दू का मुल्लापन आने दिया और न संस्कृत का पंडिताऊपन ही बढ़ने दिया। सच बात तो यह है कि भारतेन्दु ने विषय के अनुरूप अपनी भाषा का रूप उपस्थित किया है। सन् १८८४ में भारतेन्दु ने 'हिन्दी भाषा' शीर्षक निबन्ध लिखा जिसमें उन्होंने अपनी दो प्रिय शैलियों का उल्लेख किया है। १—(अ) जहाँ हीरा-मोती, रुपया-पैसा, कपड़ा-अन्न, घी-तेल, अतर-फुलेल, पुस्तक-खिलौने इत्यादि की दूकानों पर हजारों लोग काम करते हुए मोल लेते हुए बेचते दलाली करते दिखाई पड़ते हैं।' (ब) 'पर मेरे प्रीतम! अब तक घर न आये, क्या उस देश में बरसात नहीं होती? या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये, कि इधर की सुधि ही भूल गये, कहाँ तो प्यार की बातें कहाँ ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना।' (२) पुल टूट गये बाँध खुल गये पंक से पृथ्वी भर गई, पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाये। वृक्ष समेत कूल तोड़ गिराया, महानदियों ने मर्यादा भङ्ग करदी और स्वतंत्र स्त्रियों की भाँति उमड़ चली।'

[1] भारतेन्दु की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए सितारेहिन्द ने कहा था "हाय! मेरा विरोध करने वाला प्यारा भारतेन्दु अब नहीं रहा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम शैली में भारतेन्दु लोकभाषा के अधिक सन्निकट हो गये हैं और दूसरी शैली में साहित्य भाषा के। जब किसी साहित्यिक विषय का प्रतिपादन अभीष्ट होता तो उनकी शैली एकदम संस्कृत बहुला हो जाती। उनका "नाट्य-रचना" लेख इसी शैली में लिखा गया है। उदाहरणार्थ, "चित्रकार्य के निमित्त जो-जो उपकरण का प्रयोजन और स्थान विशेष की उच्च-नीचता दिखलाने की जैसी आवश्यकता होती है वैसे ही वही उपकरण और उच्च-नीचता प्रदान पूर्वक अति सुन्दर रूप से मनुष्य के बाह्य भाव और कार्य-प्रणाली के चित्रकरण की अपेक्षा सहज भाव से उसका मानसिक भाव और कार्य प्रणाली दिखलाना प्रशंसा का विषय है। जो इस भाँति दूसरे का अन्तर्भाव व्यक्त करने को समर्थ है उन्हीं को नाटककार सम्बोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रन्थ नाटक में परिगणित होते हैं।" (मुद्राराक्षस नाटक की भूमिका, खड्ग विलास प्रेस में मुद्रित प्रति पृष्ठ ३०)

भारतेन्दु के नाटकों की भाषा, सन्दर्भ पात्र और रस के अनुसार कभी सरल, उर्दू मिश्रित और कभी संस्कृत से अलंकृत दिखलाई देगी। "बहुत अच्छी बात है, जल्द गाना शुरू करो, तुम्हारा गाना सुनने को मेरा इश्तियाक हर लहजे बढ़ता जाता है। जैसी तुम खूबसूरत हो वैसा ही तुम्हारा गाना भी खूबसूरत होगा।" (नीलदेवी में मद्यप अमीर)। "महाराज! देखिये, आपके स्वागत के लिए मकरन्दोद्यान ने कैसी तैयारी की है। मन्द-मन्द मलयानिल से आन्दोलित हो मण्डलाकार ऊपर उठे हुए सहकार मञ्जरियों के पराग-पटल का सुन्दर पट-वितान तन रहा है और मधुमत्त मधुकर-निकर के मधुर झंकार से मिलित मधुमय मनोहर कोकिलालाप सङ्गीत कैसा सुख दे रहा है।" (रत्नावली नाटिका, खड्गविलास, प्रेस-संस्करण पृष्ठ २४)

उपर्युक्त उदाहरणों से भारतेन्दु की भाषाशैली के मुख्यतः दो रूप दिखलाई देते हैं। (१) भाव-प्रधान (२) विवेचन प्रधान। पहिली शैली नाटकों में प्रधान है और दूसरी लेखों में; पर जहाँ शब्द-चयन का प्रश्न है भारतेन्दु ने गम्भीर विषय के प्रतिपादन के समय संस्कृत की ओर अधिक झुकाव दिखाया है। नाटकों में पात्रों के अनुरूप संस्कृत या आमफहम भाषा से गृहीत शब्दावली मिलती है। प्रान्तीय शब्दों और व्याकरण दोषों से भी वह यत्र-तत्र आक्रान्त है। फिर भी भाषा का घरेलूपन कम मीठा नहीं है। सत्य हरिश्चन्द्र की निम्न वाक्य-रचना कितनी घरेलू और प्रवाही है—मैं तो आप ही आती थी, वह एक पनहारिन आ गई थी, उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आचुकी होती।"

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भारतेन्दु की भाषा व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष नहीं है। भाषा-दोष के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

'श्यामता' के स्थान पर उन्होंने 'श्यामताई', 'अधीरपना' के स्थान पर 'अधीरजपना', 'कृपा की है' के स्थान पर 'कृपा किया है', 'हुई' के स्थान पर 'भई', 'करे' के स्थान पर करै, सजें के स्थान पर सजैं, इसी प्रकार लिखैं, कहैं, ब्याहैं, हमैं, क्योंकि, पुस्तकैं, तुम्हैं, जबसे सो के (कर) उठी हूँ, 'अब देख न हैं तू कैसा काव्य पढ़ती है' 'ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरू दिया होगा', 'तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और उनसे भी कोरा जवाब पाया।" "महानन्द को नौ पुत्र थे।" आदि पद और वाक्य-रचना के दोष पाये जाते हैं। कहीं-कहीं संस्कृत के समान विशेषण का लिङ्ग विशेष्य के अनुसार भी पाया जाता है जैसे निश्चला भक्ति। (कई आधुनिक लेखक भी इस प्रकार के रूप प्रयोग में ला रहे हैं।) प्रान्त—प्रयोग के अनुसार शब्दों का लिङ्ग-विपर्यय भी पाया जाता है। उदा०—शिष्टाचार पुल्लिङ्ग होते हुए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त है ("आपको इतनी शिष्टाचार नहीं सोहती) आड़—स्त्रीलिङ्ग होकर भी पुल्लिङ्ग रूप धारण किये हुए है—"भेस धर कर परदे के आड़ में खड़ा है" (कर्पूर मञ्जरी पृष्ठ ५) खोजने पर अन्य दोष भी दिखाई दे सकते हैं और उदाहरणों की सख्या भी बढ़ाई जा सकती है। परन्तु जिस काल में भारतेन्दु ने गद्य लिखना प्रारम्भ किया था उसे देखते हुए उनकी भाषा उस समय के लेखकों की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है, गढ़ी हुई है।

मिश्र-बन्धुओं ने उनकी शैली का परीक्षण करते हुए लिखा है—"भारतेन्दु ने संस्कृत और उर्दू दोनों के प्रचलित शब्दों का अपनी खड़ी बोली में आदर किया। आपकी भाषा लोकपक्ष को लिये हुए बहुत ही श्रेष्ठ थी, किन्तु पीछे के बहुतेरे लेखक प्रचुरता से संस्कृत शब्द गुंफन के प्रेमी हैं। १) भाषा माधुर्य, प्रसाद, अर्थ-व्यक्ति, कान्ति, सुकुमारता आदि सद्गुणों को धारण किये हुए है। छन्दों में धारावाहिता प्रस्तुत है, और कथनों में मूर्ति-मत्ता के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। अनुपम हाव-विधान, चेष्टा-चित्रण, सञ्चारियों की व्यञ्जना, लोकोक्तियों का प्रचुर समावेश, विचार-स्वातन्त्र्य, वर्णन-विदग्धता, चमत्कार-कौशल, दक्षतापूर्वक प्रचुर हास्य-विनोद, ऊहा की प्रगल्भता, स्वभावोक्ति की सूक्ष्मता, वियोग की कसक, प्रेम-पिपासा, जिन्दादिली, चपलता, रस-प्राचुर्य, भावावेश आदि भारतेन्दु की रचना में बहुत आधिक्य से प्राप्य हैं। भारतेन्दु ने चलती, फिरती, हँसती बोलती, गठी हुई, लचीली चमकदार भाषा की ऐसी उत्कृष्ट-शैली निकाली, जिसे अन्य लेखकों ने दोनों हाथों से सत्कारा।" "आपकी भाषा गम्भीर, सव्यंग्य, हास्यपूर्ण और साधारण-साहित्य आदि सभी प्रकार के भाव-व्यक्त करने में सूक्ष्म थी।"

भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में 'प्रेम-घन', प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास, सुधाकर द्विवेदी, राधाकृष्णदास और मध्यप्रान्त के जगमोहनसिंह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में इन सब लेखकों में सजीवता या जिंदादिली का गुण खूब परिलक्षित होता है।' प्रेमघन कभी संस्कृत-बहुल और कभी उर्दू मिश्रित भाषा लिखते थे। प्रतापनारायणजी की भाषा में बैसवाड़ीपन अधिक आता था, राधाचरण गोस्वामी संस्कृत की ओर अधिक झुकते थे, यही हाल अम्बिकादत्त व्यास और सुधाकर द्विवेदी का भी था। राधाकृष्णदास भारतेन्दु के समान ही मिली-जुली भाषा लिखने में अभ्यस्त थे। जगमोहनसिंह बड़ी मीठी भाषा लिखते थे। काव्य का माधुर्य उसमें आपूर रहता था पर हरिश्चन्द्र ऐसे थे जो भाषा के बेताज के शाह थे। उसके सीधी-सरल, शिष्ट आशिष्ट (लोक) सभी प्रकार के रूप प्रस्तुत करने में सक्षम थे। इसी लचीलेपन के कारण उनकी भाषा जनता में अधिक प्रचार पा सकी। शैली का रूप निर्धारित करने का कार्य हरिश्चन्द्र ने किया, और उनका बचा हुआ भाषा-परिमार्जन का कार्य उनके बाद आविर्भूत होने वाले आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के द्वारा सम्पन्न हुआ।

"मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'साहित्य-सन्देश' का भारतेन्दु-अङ्क प्रकाशित हो रहा है। 'साहित्य-सन्देश' ने हिन्दी के आलोचनात्मक-साहित्य को जो प्रेरणा तथा बल दिया है वह शतमुख प्रशंसनीय है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी भाषा तथा साहित्य की जो सेवाएँ की हैं उनके सम्बन्ध में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि उनका जन्म, जीवन और मरण हिन्दी के एक युग का पूरा इतिहास है।"

—लक्ष्मी नारायण सिंह सुधांशु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु जी की भक्ति भावना और धार्मिक-विचार

श्री० गुलाबराय एम० ए०

प्रभाव—यद्यपि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने रीतिकाल के अवरुद्ध वातावरण में राज-भक्ति पूर्ण देश-भक्ति तथा समाज-सुधार के नये वातायन खोल कर हिन्दी साहित्य में एक नव प्राणद समीरण का सञ्चार किया था तथापि वे स्वयं रीतिकाल और भक्तिकाल के प्रभावों से मुक्त न थे। किसी धारा की एक साथ इति श्री नहीं हो जाती है। वह अपनी गति बिना अञ्जन के मालगाड़ी के डिब्बों की भांति चलती ही रहती है। यह तो भारतेन्दु बाबू को साहित्यिक दाम प्राप्त हुआ, इसके अतिरिक्त उनके प्रेमी स्वभाव तथा उनके कुल की वैष्णवी परम्परा ने उनके हृदय में भक्ति-भावना को उद्दीप्त रखने में सहायता दी। उन्होंने अपनी उत्तरार्द्ध भक्तमाल में अपने पूज्य पिताजी को भी स्थान दिया है। उनके सम्बन्ध में वे लिखते हैं :—

गिरधरनदास कविकुल-कमल, वैश्यवंस भूषनप्रगट।
रामायन भागवत गरगसंहिता कथामृत॥
भाषा करि-करि रचे बहुत हरि-चरित सुभाषित।
दान मान करि साधु भक्त मन मोद बढ़ायो॥
सब कुल-देवन मेटि एक हरि पन्थ दृढायो।

गिरधर भक्ति उनके रक्त-मज्जा का अंश बन गई थी।

वल्लभ सम्प्रदाय—भारतेन्दुजी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे और वे अपनी सम्प्रदाय के सच्चे भक्त थे। उन्होंने अपनी उपासना के चार आधार स्तम्भ माने हैं और उनको बराबर का स्थान दिया है। वे चार स्तम्भ हैं—'राधाबल्लभ' कृष्ण, 'वल्लभी' राधा, 'वल्लभ' (आचार्य महाप्रभु और वल्लभताई वल्लभ सम्प्रदाय)—देखिए।

राधाबल्लभ, वल्लभी, वल्लभ, वल्लभताइ।
चार नाम वपु एक पद बन्दत सीस नवाइ॥

यह दोहा भारतेन्दुजी का 'वल्लभ' नाम से अगाध प्रेम प्रकट करता है। इनके अतिरिक्त सम्प्रदाय के अनुकूल ही उन्होंने मायावाद का विरोध किया है। श्री विट्ठलनाथजी के स्तवन में उनको मायापत-तमस्तोम ग्रीष्म दिवाकर कहा है। और अन्य देवी-देवताओं के प्रति उपेक्षा भाव रक्खा है। वे स्मार्तों की भांति पञ्चदेवोपासक नहीं थे। जहाँ तुलसीदासजी ने विनयपत्रिका में सब देवताओं का स्तवन किया है, वहाँ सूरदासजी ने अपने ग्रन्थ का आरम्भ 'वन्दौ चरण-कमल हरि राई' से किया और अन्य देवों को रंक भिखारी कहा है। यही प्रवृत्ति भारतेन्दु में भी थी। और फिर उनके प्रेमी स्वभाव ने तो उनके अक्खड़पन पर सान चढ़ादी थी। उन्होंने अपने पिता के वर्णन में सब कुल-देव मेटने की बात कही है। वे कृष्ण के अनन्य थे, और उनके प्रति अपना पूर्ण आत्म-समर्पण कर चुके थे।

कृष्ण-भक्ति—भारतेन्दुजी के लिए कविता करना राधागोविन्द के स्मरण का बहाना ही न था—(आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई न त, राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।) वरन् उनके हृदय में भक्तों की-सी लगन थी, और उनमें सम्प्रदाय की भावनाएँ जीवन का अङ्ग बन गई थी। यही बात उनको रीतिकालीन कवियों से कुछ ऊँचा उठा देती है। उनमें अपने दोषों की एक तीव्र चेतना थी। यह भावना विषयी को भी भगवतोन्मुख कर देती है। भक्त और विशेषकर वैष्णव भक्त अपने पुरुषार्थ के आधार पर नहीं वरन् भगवान की कृपा के आधार पर ही अपना तरण-तारण चाहता है। सूर की भाँति भारतेन्दु में भी दीनता के साथ अक्खड़पन भी था। कृष्ण उनके सखा और प्रियतम थे। वे अपनी सद्गति के लिए उनसे अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार के साथ कह सकते थे, और उनको मित्र का सा उपालम्भ दे सकते थे। उनकी भक्ति-भावना के ये तत्व उनकी सम्प्रदाय (पुष्टि मार्ग) के अनुकूल पड़ते थे। यहाँ हरिश्चन्द्रजी की भक्ति-भावना के पदों के कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं।

अहो हरि अपुने विरुदहिं देखौ।
जीवन की करनी करुनानिधि
सपनेहु जानि अवरेखौ।

× × ×

'हरीचन्द' मम अवगुन तब गुन
दोउन को नहिं लेखौ॥

भगवान के साथ वे जीव को भी अनन्त बना देते हैं, यदि भगवान गुणों में अनन्त है तो जीव अवगुणों में। भारतेन्दुजी पापों को मनुष्य के लिए स्वाभाविक मानते हुए उनका भार भगवान की माया के ऊपर रखते हैं और वे अपने भगवान का उत्तरदायित्व बढ़ाकर सब कुछ उनकी कृपा पर ही निर्भर रखते हैं।

कहो किमि छूटै नाथ सुभाव।
काम क्रोध अभिमान मोहसँग
तन को बन्यौ बनाव॥
ताहू मैं तुव माया सिर पै
औरहु करन कुदाँव।
'हरीचन्द' विनु नाथ कृपाके
नाहिन और उपाव॥

अब जरा सूर का सा अक्खड़ पन देखिए—

जनन सों कबहूँ नाहिं चली।
सदा सर्वदा हारत आये जानत भाँति भली।
कहा कियो तुम बलि राजा सों चतुराई न चली॥

× × ×

हमसो हूँ हारत ही बनि है कबहूँ न जैहो जीत।
तासों तारो हरीचन्द को मानि पुरानी प्रीति॥

भारतेन्दुजी की भक्ति में दीनता और अक्खड़पन के साथ दाम्पत्य भाव का सा विरहोन्माद भी है। यह विरह की भावना भगवत्साक्षात्कार की पहली सीढ़ी है। महाप्रभू बल्लभाचार्य ने कहा है—

क्लिश्यमानाञ्जनान दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्।
तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः॥

अर्थात् दुःख में पड़े हुए भक्तों को देख कर भगवान जब कृपा युक्त होते हैं तब वे हृदस्थ भगवान् बाहर आकर दर्शन देते हैं। इसीलिए भारतेन्दुजी कभी तो मीरा के स्वर में गाने लगते हैं और कभी कबीर की भाँति सूनी सेज पर दुःख प्रकट करते हैं:—

तुम बिनु तलपत हाय विपति बड़ी भारी हो।
तुम बिनु कोउ नहिं मोर पिया गिरधारी हो॥
तुम बिनु व्याकुल प्रान धरौ कैसे धीर हो।
आय मिलो गर लगौ पिया बलबीर हो॥

कभी वे दाम्पत्य भाव से अपने प्रियतम को हृदय में छिपा रखना चाहते हैं—'पिय तोहि राखौंगी हिय मैं छिपाय' और कभी प्रियतम की निष्ठुरता देखकर खण्डिता नायिका की भाँति प्रियतम को उलाहना देते हैं। देखिए—

आज मेरे भोरहिं जागे भाग।
आए पिया तिय रस भीने खेलत दृग जुग फाग॥

× × ×

मङ्गल भयो भोर मुख निरखत
मिटे सकल निसि दाग॥
हरीचन्द आओ गर लागो
साँचो करो सोहाग॥

स्वकीया खण्डिता प्रतीक्षा में सारी रात बिताकर भी पति का स्वागत करने को तैयार रहती है। इसका आध्यात्मिक अर्थ ही लिया जायगा।

भारतेन्दुजी ने भगवद्विरह को पूर्ण महत्ता दी है। उन्होंने भगवान से यही माँगा है कि संसार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंगारियों जैसे दुःख को छोड़ कर सदा भगवान के विरह में जलते रहें—

तो सों और न कछु प्रभु जाचौं।
× × ×
बिस्फुलिंग से जग-दुख तजि तब
बिरह-अगिन तन ताचौं।

बल्लभी भक्ति—राधा की भक्ति में वे राधा-बल्लभीय सम्प्रदाय के बहुत निकट आजाते हैं। वृन्दा-वन देवी राधाजी के लिए वे कहते हैं—

अखिल विश्व-नायक पुरुषोत्तम
जा पद पङ्कज सेवी।
जगत अधारभूत परमातम
जिय अधार सो ताकी।

किन्तु यह भावना उनके साम्प्रदायिक क्षेत्र से बाहर नहीं है—उन्होंने गोस्वामी विट्ठलदास जी के स्तवन में कहा है 'अन्तरङ्ग सखि-भाव स्वामिनी-दास्य दृढ़ावन' तभी तो उन्होंने अपने को 'गुलाम राधारानी के' कहने में गर्व का अनुभव किया। वे सच्चे भक्तों की भाँति जुगल मूर्ति रूप माधुर्य में छक जाना चाहते हैं—

श्री राधे मोहि अपनो कब करि हौ।
जुगल-रूप-रस अमित माधुरी
कब इन नयननि भरि हौ।
कब या दीन-हीन निज जन पै
ब्रज कौ बास वितरिहौ
हरीचन्द कब भव बूड़त तें
भुज धरि धाइ उबरि हौ।

तभी तो वे इस व्रजवास की चाह में कहते हैं—ब्रज की लता-पता मोहिं कीजै। इस भावना में वे महात्मा सूरदास के बहुत निकट पहुँच जाते हैं—'ऐसे ही बसिए ब्रज की बीथिन। साधुन के पनवारे चुनि-चुनि उदर जो भरिये सीतिन' (सूर)। भारतेन्दुजी ने चाहे इस पद की प्रेरणा सूरदासजी से ली हो किन्तु उसे निजी उत्साह के साथ अपनाया है—

ब्रज की लता पता मोहि कीजै।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जापैं सिर भीजै॥
आवत जात कुञ्ज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख यह बर हरीचंद' को दीजै॥

श्री राधाजी की महत्ता बतलाते हुए वे कहते हैं—

जै जै श्री वृन्द्रावन देवी
जो देवन को देव कन्हाई सोऊ जा पद सेवी।

इसी प्रसङ्ग में यह भी बतला देना आवश्यक है कि भारतेन्दु ने राधाकृष्ण की निकुञ्ज लीलाओं के अनेक पद गाये जिनमें भारतेन्दुजी की पूर्ण वैष्णवी भक्ति प्रकट होती है। राधा का प्रेम भी तन्मयता की पराकाष्ठा को पहुँच जाता है।

'राधे भई आपु घनश्याम।'

बल्लभ और बल्लभताई—गुरु भक्ति भक्ति-काल का व्यापक गुण रहा है। इसको सगुण और निर्गुण दोनों ही प्रकार के भक्तों ने अपनाया है। वल्लभ सम्प्रदाय में महाप्रभु वल्लभाचार्य को साक्षात भग-वान का अवतार मानते हैं। हरिश्चन्द्रजी ने भी ऐसा ही माना है—

आज प्रेम-पथ प्रगट भयो भुव-
जन में श्रीवल्लभ पूरनकाम।
कठिन काल कलि देख दया करि
आपुहि चलि आये द्विजधाम॥
× × ×
आज घर घर बजत बधाई।
द्विज-वपुलै नँद नन्दन प्रगटे
लक्ष्मण भट घर आई॥

सम्प्रदाय के स्तवन में नीचे का पद पठनीय है—

चिर जीयो मेरो श्री वल्लभ कुल,
माया मत खर तिमिर दिवाकर,
प्रेम अमृतमय रस सागर-पुल।
कलि खल-गन-उद्धरन रसिक-जन,
सरन-करन विरहिन विरहाकुल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-धर्म में भी दीक्षा लेते समय 'बुद्धं शरणं गच्छामि' के साथ 'धर्मं शरणं गच्छामि' और 'संघं शरणं गच्छामि' कहते हैं। इसी प्रकार भारतेन्दुजी नेवल्लभताई का स्तवन किया है।

मायावाद का प्रतिवाद—भारतवर्ष में मायावाद का प्रभाव व्यापक रहा है। वैष्णव लोग भी इसके प्रभाव से बाहर नहीं रहे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रजौ यथाहेर्भ्रम' कहा है। परम रसिक वर कविवर बिहारीलाल ने मायावाद के प्रभाव में आकर 'यह जग काँचो काँच सो' कहा है किन्तु भारतेन्दुजी अपने वैष्णव सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे। उन्होंने मायावाद का हर स्थान में खण्डन किया है। कविता में तो मायावाद का अनेकों स्थान में उल्लेख किया है—

'तूल मायावाद दहन हित अग्नि वपु।'

× × ×

'कहौ अद्वैत कहाँ से आयो।'
'शिवोहं भाखत सब लोग।
कहँ शिव कहँ तुम कीट अन्न के,
यह कैसो संजोग॥'

भारत दुर्दशा में भी भारत के पतन के कारणों में वेदान्त को भी बतलाया है।

रचि कै मत वेदांत को, सब को ब्रह्म बनाय।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोर हाथ और पाय॥

और देखिए—

"वेदान्त ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिन्दू ब्रह्म होगये। ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रुक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेह शून्य होगये। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहाँ? बस, जय शंकर की।" (भारत दुर्दशा)

भारतेन्दुजी मायावाद के विरुद्ध साम्प्रदायिक कारणों से भी थे। भक्त अपने भगवान के साथ बराबरी नहीं करना चाहता। तुलसीदासजी ने भी पार्थक्य भावना रक्खी है 'रामचन्द्र चन्द्र तो चकोर मोहि कीजिये' किन्तु उन्होंने मायावाद की बुराई नहीं की है। इतना ही नहीं वरन् संसार के प्रति अनास्था उत्पन्न करने के लिए उन्होंने मायावाद को प्रश्रय दिया है, और राजनीतिक कारणों से भी वे इसके विरुद्ध थे क्योंकि उनका ख्याल था कि उसके कारण अकर्मण्यता आजाती है। यह वेदान्त का दुरुपयोग है। वेदान्त व्यवहार में संसार को सत्य मानता है।

अन्य देवी देवता—जैसा ऊपर कहा जा चुका है महात्मा सूरदासजी भी अन्य देवी देवताओं के प्रति उदासीन थे। यह बात दूसरे देवताओं के तिरस्कार करने के लिए इतनी नहीं थी जितनी कि अपने उपास्य के प्रति अनन्यता के लिये। तुलसी ने तो अन्य सब देवों की प्रार्थना करते हुए उनसे रामभक्ति का ही वर माँगा—'वसहि राम सिय मानस मोरे' और इस प्रकार अनन्यता की रक्षा करली किन्तु वल्लभ कुल में 'अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च' अर्थात् दूसरे का भजन और वहाँ 'स्वतःगमन' भी वर्जित है। (देखिए श्री प्रभूदयालजी मीतल कृत सूर निर्णय पृष्ठ २५३) वैसे तो गोस्वामीजी ने भी कृष्ण गीतावली लिख कर भी कृष्णजी के आगे यही कहा था कि 'तुलसी मस्तक तब नवै धनुष वाण लेहु हाथ' यदि यह ठीक है तो बेचारे हरिश्चन्द्रजी को ही हम क्यों दोष दें। वे अपने भगवान पर पूर्ण भरोसा रखना चाहते थे। वे गङ्गा गये गङ्गादास और जमुना गये जमुनादास होने के विरुद्ध थे। उनमें शरणागति की भावना प्रबल थी। प्रपत्ति या शरणागति वल्लभ सम्प्रदाय का मूल क्षेत्र है। दीक्षा के समय भी शरणागति का ही पाठ पढ़ाया जाता है। इसी शरणागति भावना से वे कहते हैं:—

जिनके देव गुवरधन-धारी,
ते औरहि क्यौं मानै हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भय सदा रहत इनके बल,
जगतहिं तृन करि जानै हो।
देवी देव नाग नर मुनि बहु,
तिनहिं नाहिं उर आनै हो।
× × ×
हमारे ब्रज के सरबस माधो।
किन व्रत जोग नेम जप संजम,
वृथा गोरि तन साधो॥
अष्ट-सिद्ध नव-निधि को सब फल,
यहै न और अराधौ।
'हरीचन्द' इनहीं के पद-जुग,
पंकज मन अलि बाँधौ॥

श्री मद्भागवद्गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है—'सर्व धर्मान्परित्यत्य मामेकं शरणं व्रज अहंत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥' इसी भावना के आश्रित ऊपर के पद गाये गये हैं। इनमें किसी के प्रति द्वेष की भावना का स्पर्श नहीं है। वे डंके की चोट कहते हैं:—

काहू सों काम कछू नहिं मोहि,
सबै, अपनी अपनी को सम्हारौ।
मानिहौं एक गुपालहिं को,
नहिं और के बाप को यामैं इजारौ॥

इतना होते हुए भी वे राम और कृष्ण में भेद नहीं करते थे। उन्होंने रामलीला और रामजी के स्तवन में कविता भी लिखी थी।

प्रेम की प्रधानता—हरिश्चन्द्रजी प्रेमी थे और उन्होंने सब साधनों में प्रेम को ही महत्ता दी है। उनका प्रेम नियम और बन्धनों, शास्त्र-मर्यादा और कुलकानि की परवाह नहीं करता। देखिए—

पियारो पैये केवल प्रेम मैं।
नाहिं ज्ञान में नाहिं ध्यान मैं,
नाहिं करम कुल नेम मैं॥
× × ×
नहिं मन्दिर मैं नहिं पूजा मैं,
नहिं घंटा की घोर मैं।
'हरीचन्द' यह बाँध्यो डोलत,
एक प्रीति के डोर मैं॥

प्रेम को उन्होंने सबसे सरल पंथ कहा है। उसमें परमार्थ और स्वार्थ और प्रियतम और जगत में भेद नहीं रहता है। वे प्रेम की ही अद्वैतता चाहते हैं।

प्रेम में मीन-मेष कछु नाहीं।
अति ही सरल पंथ यह सूधो,
छल नहिं जाके माहीं॥
परमारथ स्वारथ दोउ पीतम,
और जगत नहिं जानै,

वैष्णवता के अन्य अङ्ग—भारतेन्दुजी ने गोपाल के प्रति अपनी अनन्यता रखते हुए भी उनसे सम्बन्धित सब पर्वों चिन्हों आदि को अपनाया है। उन्होंने चिन्हों की सांकेतिक व्याख्या भी की है। हरिचरण चिन्हों का वर्णन करते हुए स्वस्तिक चिह्न के सम्बन्ध में वे लिखते हैं।

जे निजऊ में पद धरत, असुभ तिन्हैं कहुँ नाहिं।
या हित स्वस्तिक चिह्न प्रभु धारत निज पद माहिं॥

भारतेन्दुजी ने कार्तिक स्नान और वैशाख माहत्म्य के साथ होली, वसन्त, खिचरी आदि यौहारों के भी पद गाये हैं। वैष्णवों की साहित्य को उन्होंने पूर्ण रूप से अपनाया था। उन्होंने बकरी बध और बलिदान को रोकने के लिए बकरी विलाप लिखा था—

उद्बोधन—हरिश्चन्द्र केवल रसिक-भक्त ही नहीं थे, वरन् उन्होंने सन्तों की भांति उद्बोधन भी किया है जिससे मनुष्य बेखबर न रहे। उद्बोधनों में प्रायः खड़ी बोली का व्यवहार किया है।

तुझ पर काल अचानक टूटैगा।
गाफिल मत रो लवा बाज ज्यों हँसी खेल में लूटगा॥
कब आवैगा कौन राह से प्रान कौन विधि छूटैगा।
यह नहिं जानि परैगी बीचहि, यह तन-दरपन फूटैगा॥

धार्मिक उदारता—हरिश्चन्द्रजी गोपालकृष्ण के अनन्य भक्त थे, किन्तु वे दूसरे धर्मों के प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदारभावना रखते थे। वे साम्प्रदायिकता से बहुत दूर थे। वे जैन और वैष्णव के झगड़े में नहीं पड़ते थे। उन्होंने सब मतों को अपना ही कहा है—

खण्डन जग मैं काको कीजै।
सब मत तो अपने ही हैं, इनको कहा उत्तर दीजै॥
तासों बाहर होइ कोऊ जब तब कछु भेद बतावै।
ह्याँ तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै॥

वे दूसरों को नीच कहने के विरुद्ध थे।

धरम सब अटक्यो याही बीच।
अपनी आप प्रसंसा करनी दूजेन कहनो नीच।
यहै बात सबने सीखी है, का वैदिक का जैन॥

भारतेन्दुजी के प्रेमी स्वभाव ने और उनकी राष्ट्रीय भावना ने उनको धार्मिक उदारता प्रदान की थी। वे एक ही भगवान के अनुयायियों को खींचतान करते दुखी होते थे। यही धर्म के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, और यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमारी भाषा में ऐसे कवि हुए हैं, जो कृष्णानन्द होते हुए भी भेद-भाव रहित उदार वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते थे। उन्होंने अपने भगवान को बहुरूपिया कहा है। इसीलिए उन्होंने सब धर्मों में अपने इष्ट की मूर्ति देखी है। इसीलिए उन्होंने माता पद्मावती की स्तुति की है। 'जै जै पद्मावति महारानी' और उनको सब देवियों में देखा है। 'सब देवि में तुमरी मूरति हम कहँ प्रकट लखाती'। जैनों को वे नास्तिक नहीं कहते, क्योंकि वे परम-धर्म-दया और अहिंसा तथा कर्म-फल को मानते हैं। वे वेदों में ही धर्म को सीमित नहीं मानते। 'नाहीं ईश्वरता अटकी वेद में' ये अन्य धर्मों के प्रति अपने-अपने पूर्व ग्रहों को छोड़कर उदारभाव रखने को कहते हैं। अपना रङ्गीन चश्मा लगाकर देखने से काम न चलेगा। इसीलिए वे पूर्वग्राह शून्य सफेद चश्मे से अन्य धर्मों को देखने को कहते हैं, तभी वे असली रूप में दिखाई देंगे।

लगाओ चसमा सबै सफेद।
तब सब ज्यों को त्यों सूझैगो जैसो जाको भेद॥
आग्रह छोड़ि सबै मिलि खोजहु
तब वह रूप लखै है।
'हरीचन्द्र' जो भेद भूलिहैं
सोई पियकों प है॥

(पृष्ठ २०१ का शेष)

अधिकाधिक कष्टों का अनुभव होता है त्यों-त्यों उसका हृदय भगवान् के आश्वासन के लिए अतिशयभावेन व्यग्र होता जाता है। भारतेन्दुजी को भी अपने जीवन में यथेष्ट कष्ट का अनुभव करना पड़ा था अतः उनके विनय के पदों में यथार्थता है। आन्तरिक अनुभूति अपने वास्तविक रूप में व्यञ्जित हुई है। अपने पापों की क्षमा के लिए भक्त की भगवान् के दरबार में पुकार है।

भारतेन्दु काल—रीतिकाल और आधुनिककाल का संक्रमण-काल था, भारतेन्दुजी रीतिकाल की शृङ्गारी कविता से अधिक प्रभावित हुए। राधाकृष्ण का विकृत-स्वरूप रीतिकाल में स्थापित हो ही चुका था, भारतेन्दुजी ने इन्हीं राधाकृष्ण को अपने काव्य-निर्माण का आलम्बन बनाया। यद्यपि कन्हैया बनकर होली खेलने वाले नवाबों का विनाश हो चुका था किन्तु उनकी बिलासमयी प्रवृत्ति उनके काल में प्रासादों में सुख-संभोग करने वाले बहुत से परिवारों में अवशिष्ट थी। भारतेन्दुजी का ऐसे ही परिवारों से सम्बन्ध था। वह स्वयं भी धनी, उन्मुक्त और रसिक थे, अतएव उनके शृङ्गारमय वर्णन बहुत स्वाभाविक और सफल हुए हैं। 'प्रेम मालिका', 'प्रेम सरोवर', 'प्रेमाश्रुवर्षण', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम तरंग', 'प्रेम प्रलाप', 'सतसई सिंगार', 'होली', 'मधुमुकुल', 'राग संग्रह', 'वर्षा विनोद', 'प्रेम फुलवारी' आदि ग्रंथों में इनकी शृङ्गार-भावना अधिक स्पष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु की रचनाएँ

भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र इस अनित्य लोक में केवल ३४ वर्ष ३ महीने २७ दिन रहे। उन्होंने प्रायः सत्रह-अठारह वर्ष की अवस्था से साहित्य-रचना आरम्भ की और विविध प्रकार के अपने सभी कार्यों को करते हुए भी उन्होंने इतने अल्प काल में छोटी-बड़ी प्रायः दो सौ रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उनके रचनाकाल सहित उनकी सूची पाठकों के लाभार्थ विषयानुसार यहाँ दी जाती है—

(१) नाटक

१—विद्यासुन्दर—तीन अङ्कों का छोटा सा मौलिक नाटक। भारतेन्दु के शब्दों में 'विशुद्ध हिन्दी के नाटकों के इतिहास में चौथा' और खड़ी बोली का दूसरा नाटक। भाषा सरल। दस बारह पद भी इसमें हैं। रचनाकाल सं० १९२५।

२—रत्नावली—हिन्दी में राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनूदित "शकुन्तला के अतिरिक्त कोई नाटक नहीं जिनको पढ़के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रगट हो। इस वास्ते मेरी इच्छा है कि दो चार नाटकों का तर्जुमा हिन्दी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।" इसी उद्देश्य के अनुसार संस्कृत से अनूदित, किन्तु अपूर्ण। सं० १९२५

३—पाखंड विडंबन—श्रीकृष्ण मिश्र कृत संस्कृत के प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक के तीसरे अंक का अनुवाद। इसमें दिखाया गया है कि लोग किस प्रकार सरल सात्विक श्रद्धा को छोड़ शांति और करुणा से रहित तामसी श्रद्धा से अभिभूत रहते हैं। र० का० सं० १९२९।

४—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति—चार अङ्कों का मौलिक प्रहसन। पाखण्डियों द्वारा मांस-मदिरादि-सेवन का शास्त्र के वचनों से समर्थन और अन्त में उनकी दुर्दशा तथा अकृत्रिम भक्ति की महत्ता दिखाई गई है। र० का० सं० १९३०।

५—धनञ्जय विजय—संस्कृत से अनूदित। पाण्डवों के अज्ञातवास के अन्तिम दिन अर्जुन द्वारा कौरवों का परास्त होना और पाण्डवों का प्रगट होना दिखाया गया है। र० का० सं० १९३०।

६—मुद्रा राक्षस—विशाखदत्त कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद। चाणक्य तथा मगध के राजमन्त्री राक्षस का कूटनीतिक द्वन्द्व एवं अन्त में चाणक्य द्वारा सफलतापूर्वक चन्द्रगुप्त मौर्य का सम्राट बनाया जाना। र० का० सं० १९३१-३२।

७—सत्य-हरिश्चन्द्र—मौलिक नाटक। सत्य-प्रतिज्ञ महाराज हरिश्चन्द्र के उपाख्यान का रूपक रूप में ओजस्वी वर्णन, सत्य का अत्यन्त उपदेशप्रद विवरण। भारतेन्दु के शब्दों में 'सत्पथ पर चलने-वाले कितना कष्ट उठाते हैं यही इसमें दिखाया गया है।' र० का० सं० १९३२।

८—प्रेमयोगिनी—मौलिक, केवल चार गर्भाङ्क, अपूर्ण। काशी की वास्तविक दशा का वर्णन, कुछ आप बीती लिए हुए। र० का० सं० १९३२।

९—विषस्य विषमौषधम्—मौलिक भाण। देशी राज्यों के अत्याचार तथा इस कारण उनके विलयन का सूत्रपात। र० का० सं० १९३३।

१०—कर्पूरमञ्जरी—राजशेखर कृत सट्टक का अनुवाद। शृङ्गार रस से पूर्ण एक प्रेम-कहानी, हास्य-मिश्रित। र० का० सं० १९३३।

११—श्री चन्द्रावली—विरह के अनूठे पदों से युक्त, अनन्य प्रेम रस से प्लावित उत्कृष्ट नाटिका। भक्ति से पूर्ण सरस शैली में मधुर वर्णन। र० का० सं० १९३३।

१२—भारत दुर्दशा—भारत के प्राचीन गौरव तथा उसकी वर्तमान दुर्दशा के कारणों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिग्दर्शन एवं उसके उन्नयन के उपाय, राष्ट्रीयता, सम्पूर्ण भारत की एकता आदि का ओजपूर्ण वर्णन। र० का० सं० १९३३।

१३ भारत जननी—भारत की दुर्दशा का वर्णन। र० का० सं० १९३४।

१४—नीलदेवी—मौलिक ऐतिहासिक नाटक! मुसलमानों की रणनीति तथा धर्मान्धता, क्षत्रियों की वीरता, अब्दुश्शरीफखाँ द्वारा सूर्यदेव के मारे जाने पर उनकी रानी नीलदेवी द्वारा 'शठं प्रति शाठ्यं' नीति का कुशल व्यवहार। 'आर्यजन का विश्वास है कि हमारे यहाँ सदा स्त्रियाँ हीन अवस्थामें थीं—इसी भ्रम को दूर करना उद्देश्य। सं० १९३७

१५—दुर्लभबन्धु—शेक्सपीयर के नाटक 'मर्चेन्ट आव वेनिस' का बहुत सुन्दर अनुवाद। पढ़ने में बिल्कुल मौलिक सा। र० का० सं० १९३७

१६—अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा—प्रहसन। भारत की तत्कालीन दशा को लेकर हास्यपूर्ण व्यंग तथा आक्षेप किये गये हैं। राजनीतिक अन्धेर दूर करना ही उद्देश्य। र० का० सं० १९३८।

१७—सती प्रताप सावित्री-सत्यवान के उपाख्यान पर बना हुआ गीति रूपक। इसके चार दृश्य भारतेन्दुजी ने लिखे थे और बचे अंश को श्री राधाकृष्णजी ने पूरा किया था। सं० १९४१।

१८—नाटक—परिशिष्ट रूप में नाट्य-शास्त्र पर लिखा गया निबन्ध। नाट्य-कला के विकास तथा भारतीय और यूरोपीय नाटकों के इतिहास की संक्षिप्त विवेचना भी है। र० का० सं० १९४०।

(२) काव्य

१—भक्त सर्वस्व—श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण के चरण-चिन्हों के भाव प्रायः चार सौ दोहों में वर्णित हैं। र० का० सं० १९२७।

२—प्रेम मालिका—इसमें लीला, दैन्य तथा प्रेम के अनुभव से युक्त एक सौ कीर्तन के पद हैं। र० का० सं० १९२८।

३—कार्तिक स्नान—इसमें बीस दोहे तथा पचीस पदों में अनन्य भक्त ने श्री राधाकृष्ण के, कार्तिक में स्नान-दान की लीला कही है। सं० १९२९

४—वैशाख महात्म्य—तिरानबे दोहों में वैशाख में स्नान करने के महात्म्य का वर्णन। र० का० सं० १९२९।

५—प्रेम-सरोवर—इकतालीस दोहों में प्रेम की महिमा का वर्णन। र० का० सं० १९३०।

६—प्रेमाश्रुवर्षण—प्रेमपूर्ण छियालीस पदों का संग्रह। र० का० सं० १९३०।

७—जैन-कुतूहल—छत्तीस पदों में धार्मिक उदारता का दिग्दर्शन। र० का० सं० १९३०।

८—प्रेम-माधुरी प्रेम-सम्बन्धी एक सौ इकतीस कवित्त-सवैयों का संग्रह। र० का० सं० १९३२।

९—प्रेम-तरंग—इसमें एक सौ गेय पद हिन्दी के, छियालीस बङ्गला पद 'चन्द्रिका' के बनाए हुए और दो गजलें भारतेन्दुजी की संगृहीत हैं। र० का० सं० १९३४।

१०—उत्तरार्द्ध भक्तमाल—इसमें भारतेन्दुजी ने अपने समय तक के प्रायः दो सौ भक्तों का वर्णन एक सौ छानवे छप्पयों में किया है। सं० १९३४।

११—प्रेमप्रलाप—इसमें बहत्तर पद तथा चार सवैये हैं, जिनमें इष्टदेव के प्रति प्रेम के उलाहने तथा व्यंगपूर्ण आक्षेप हैं। र० का० सं० १९३४।

१२—गीतगोविन्दानन्द—जयदेव कृत गीत-गोविन्द का पद्यानुवाद। र० का० सं० १९३५।

१३—सतसई-सिंगार—बिहारी के पचासी दोहों पर रचे गए छप्पय इसमें संग्रहीत हैं। सं० १९३

१४—होली—होली के उन्नासी गेय पदों का संग्रह है। र० का० सं० १९३६।

१५—मधुमुकुल—इसमें इक्यासी पद होली वसन्त आदि पर हैं। र० का० सं० १९३७।

१६—राग-संग्रह—इसमें एक सौ इकतालीस पदों का संग्रह है। र० का० सं० १९३७।

१७—वर्षाविनोद—वर्षा, झूला आदि पर एक सौ तीस पद हैं। र० का० सं० १९३७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८—विनय-प्रेम-पचासा—इसमें विनय के प्रेमपूर्ण पचास पद हैं। र० का० सं० १९३८।

१९ फूलों का गुच्छा—इसमें तेरह लावनियों का संग्रह है। र० का० सं० १९३९।

२०—प्रेमफुलवारी—इसमें तिरानबे पदों का संग्रह है। र० का० सं० १९४०।

२१—कृष्ण-चरित्र—इसमें इक्यावन पदों और सवैयों में कृष्णलीला का वर्णन है। सं० १९४०।

छोटे प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक कविताएँ, जिनका विषय उनके नमों ही से ज्ञात हो जाता है—

२२—श्री अलबरत वर्णन अन्तर्लापिका—चार छप्पय। सं० १९१८।

२३—श्री राजकुमार सुस्वागतपत्र—दो कवित्त तथा बारह दोहे सं० १९२६।

२४—देवी छद्मलीला—१८ पद। सं० १९३०।

२५—प्रातः स्मरण मङ्गल पाठ—२६ छप्पय। सं० १९३०।

२६—दैन्य प्रलाप—नौ पद। सं० १९३०।

२७—उरहना—नौ पद। सं० १९३०।

२८—तन्मय-लीला—सात पद। सं० १९३०।

२९—दान-लीला—एक बड़ा पद बासठ पंक्ति का। सं० १९३०।

३०—रानी छद्मलीला—बहत्तर पंक्ति, दोहा चौपाई आदि। सं० १९३१।

३१—बसन्त होली—१६ दोहे। सं० १९३१।

३२—मुँह दिखावनी—२० दोहे। सं० १९३१

३३—प्रबोधिनी—पचीस छप्पय जिनमें नौ में भारत की दुर्दशा दूर करने की प्रार्थना है। सं० १९३१

३४—प्रात-समीरन—४३ पयार छन्द। सं० १९३१

३५—बकरी-विलाप—३२ दोहे। सं० १९३१।

३६—स्वरूप-चिन्तन—१३ छप्पय। सं० १९३१

३७—श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन—इकतालीस दोहे। सं० १९३२।

३८—भारतभिक्षा—राजकुमार के आगमन पर, पौने तीन सौ पंक्तियाँ। सं० १९३२।

३९—सर्वोत्तम स्तोत्र—२२ पद। सं० १९३३।

४०—निवेदन-पंचक—पाँच पद। सं० १९३३।

४१—मानसोपायन—सं० १९३४।

४२—प्रातःस्मरण स्तोत्र—१२ पद। सं० १९३४

४३—हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान—अट्ठानवे दोहे। सं० १९३४।

४४—अपवर्गदाष्टक—८ छप्पय। सं० १९३४

४५—मनोमुकुलमाला—छः पृष्ठ। सं० १९३४।

४६—वेणुगीति—१३ पद, ३ दोहे। सं० १९३४

४७—श्रीनाथ स्तुति—छः छप्पय, एक दोहा। सं० १९३४।

४८—अपवर्ग पंचक—पाँच छप्पय, एक दोहा। सं० १९३४।

४९—पुरुषोत्तम पंचक—पाँछ पद। सं० १९३४

५०—भारत-वीरत्व—पाँच पृष्ठ। सं० १९३५।

५१—श्री सीतावल्लभ स्तोत्र—संस्कृत के तीस श्लोक। सं० १९३६।

५२—श्रीरामलीला—ग्यारह पृष्ठ। सं० १९३६।

५३—भीष्मस्तवराज—दस पद। सं० १९३६।

५४—मानलीला फूलबुझौवल—इकतीस दोहे, सं० १९३६।

५५—बन्दर-सभा—आठ गेय पद। सं० १९३६।

५६—विजय-वल्लरी—४२ दोहे। सं० १९३८।

५७—विजयिनी-विजय-पताका या वैजयन्ती—चौरानबे दोहे आदि। सं० १९३९।

५८—नए जमाने की मुकरी—चौदह मुकरियाँ। सं० १९४१।

५९—जातीय सङ्गीत—छः पद। सं० १९४१।

६०—रिपनाष्टक—आठ छप्पय। सं० १९४१।

(३) इतिहास

१—अग्रवालों की उत्पत्ति—जनश्रुति, लेख तथा पुराणों के आधार पर लिखी छोटी सी रचना। र० का० सं० १९२८।

२—चरितावली—इसमें सोलह जीवनियाँ तथा आठ जन्मकुण्डलियाँ संगृहीत हैं। सं० १९२८-३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—पुरावृत्त-संग्रह—इसमें सोलह लेख हैं जिनमें कई दानपत्रों, शिलालेखों आदि पर हैं। र० का० सं० १९२९-३१ तथा सं० १९३९।

४—अष्टादश पुराणों की उपक्रमणिका—इसमें प्रत्येक पुराण की विषय-सूची तथा फलश्रुति दी गई है। र० का० सं० १९३२।

५—महाराष्ट्र देश का इतिहास—अत्यन्त संक्षेप में मराठों के उत्थान तथा पतन का इतिहास दिया गया है। र० का० सं० १९३२-३३।

६—दिल्ली-दरबार-दर्पण—१ जनवरी सन् १८७७ ई० को लार्ड लिटन ने दिल्ली में जो दरबार किया था उसी का विवरण है। सं० १९३४।

७—उदयपुरोदय—उदयपुर के राजवंश का आरंभिक इतिहास। र० का० सं० १९३४।

८—खत्रियों की उत्पत्ति—सं० १९३५। इसका आरम्भ कई वर्ष पहले हो चुका था, पर साधन न मिलने से इस संवत् में पूरा किया गया।

९—बूँदी का राजवंश—संक्षेप में बूँदी का इतिहास। र० का सं० १९३९।

१०—कश्मीर-कुसुम—कश्मीर का संक्षिप्त इतिहास, प्राचीनकाल से अपने समय तक, राजतरंगिणी तथा अन्य ग्रन्थों और लेखों के आधार पर लिखा है। वहाँ के राजाओं की सूची। सं० १९४१

११—बादशाह-दर्पण—इसमें 'उन्हीं लोगों का चरित्र है, जिन्होंने हम लोगों को गुलाम बनाना आरम्भ किया।' गजनी-गोर के आक्रमणों से आरंभ कर मुसलमानी राज्य के अन्त तक का अति संक्षिप्त इतिहास है। अंत में एक 'चक्र' है जिसमें प्रत्येक सुलतान के माता-पिता के नाम, जन्म-मृत्यु-समय और फारसी की तारीखों, सिक्कों आदि का क्रम से विवरण दिया गया है। र० का० सं० १९४१।

१२—कालचक्र—इसमें संसार की तथा विशेषकर भारत की सभी प्रमुख घटनाओं का समय के साथ उल्लेख है। अन्त में भारत के गवर्नर-जनरलों के नाम शासनकाल के साथ दिए हैं। जयपुर तथा भरतपुर के राजाओं का भी इसी प्रकार विवरण है। र० का० सं० १९४१।

१३—रामायण का समय—वाल्मीकीय रामायण के समय का विवेचन तथा नवीन मानी जाती हुई प्राचीन बातों या वस्तुओं का रामायण से ही सङ्कलन किया गया है। र० का० सं० १९४१

१४—पञ्चपवित्रात्मा—मुसलमानों के पाँच महापुरुषों की जीवनियाँ। र० का० सं० १९४१।

(४) धर्मग्रन्थ

१—कार्तिक-कर्म-विधि—अनेक संस्कृत ग्रंथों के आधार पर सानुवाद मूल उदाहरणों सहित लिखा गया है। कार्तिक-स्नान करने की विस्तृत विधि दी गई है। र० क० सं० १९२९।

२—कार्तिक-नैमित्तिक-कृत्य—इसमें कार्तिक मास में किस दिन क्या-क्या कर्तव्य हैं, यही बतलाया गया है। र० का० सं० १९२९।

३—मार्गशीर्ष महिमा—अगहन महीने के स्नान की विधि तथा महात्म्य का वर्णन। सं० १९२९

४—माघ-स्नान-विधि—संक्षिप्त रचना। सं० १९३०।

५—पुरुषोत्तम मास विधान—मलमास या पुरुषोत्तम महीने के स्नान, दान, माहात्म्य आदि का वर्णन। र० का० सं० १९३०-१।

६—भक्तिसूत्र-वैजयन्ती—शांडिल्य ऋषि कृत भक्ति के सौ सूत्रों की व्याख्या। सं० १९३०-१।

७—वैष्णव सर्वस्व—वैष्णव गुरु-परंपरा तथा सम्प्रदायों की परम्परा का वर्णन। सं० १९३२।

८—वल्लभीय सर्वस्व—इसमें श्रीवल्लभाचार्य का विशेष वर्णन है। र० का० सं० १९३२।

९—तदीय सर्वस्व—श्री नारद के भक्तिसूत्रों की विस्तृत व्याख्या है। र० का० सं० १९३१-३३

१०—श्रीयुगुल सर्वस्व—इसमें श्रीराधाकृष्ण की नित्यलीला के सखा, सखी-सहचरी आदि के नाम, रूप, स्वभावादि का वर्णन है। सं० १९३३।

(शेष पृष्ठ २२० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दुजी : आलोचकों की दृष्टि में

श्री० पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—

बाबू हरिश्चन्द्र न केवल अनेक प्रकार के गद्य ही लिख सकते थे, किन्तु कविता भी सभी चाल की करते थे। उनके पिता उनसे भी अच्छे कवि थे, किन्तु केवल पुरानी चाल की ब्रज-भाषा के ही। उनके रचित ४० ग्रन्थ हैं, जिनमें उनकी प्रौढ़ कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। बाबू हरिश्चन्द्र सभी कुछ लिख सक्ते थे। परन्तु समाचार पत्र सम्पादक वैसा कोई फिर आज तक न हो सका। हँसी दिल्लगी के मजमून तो वह ऐसा लिखते थे, कि कैसा कुछ। उन्होंने हमारी भाषा में सामयिक लेख और कविता की चाल चलाई, स्वदेशानुराग उत्पन्न किया और जातीयता का बीजारोपण किया। इस अंश में वे सर्वथा अनूठे हुए।

मिस्टर एडविन ग्रीब्स—

यह गद्य तथा पद्य दोनों ही के भारी लेखक थे और इनका एक भारी मण्डल पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। हिन्दी साहित्य के विकास पर इनका कितना प्रभाव पड़ा था और दोनों गद्य-पद्य के लेखक होने से उसके इतिहास में इनका ठीक कहाँ स्थान होगा, इसका ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन है। इनके कुछ प्रशंसकों ने इनकी इतनी अधिक प्रशंसा की है, कि कुछ लोगों के मस्तिष्क में ऐसा संशय उत्पन्न हो गया जिससे उनकी भारी योग्यताओं, कर्म-शीलता तथा उत्साह का और उनके हृदयस्थ-कार्य की औदार्य-पूर्ण सहायता का वे उचित रूप से आदर न कर सके, जिसके वे पात्र थे। उनकी अपूर्व योग्यता तथा हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिये जो कुछ इन्होंने किया है, ये इतने सत्य हैं, कि उन पर कोई भी कुछ नहीं कह सकता पर, कुछ लोगों का यह कथन कि वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता थे, उसी प्रकार साबित नहीं किया जा सकता।

मिस्टर एफ० ई० की—

पाश्चात्य संसर्ग ने हिन्दी कविता के विकास को प्रोत्साहित किया है और उसे रोका नहीं है, इसके सबूत में काशी के बाबू हरिश्चन्द्र पेश किये जा सकते हैं, जो अधिकतर भारतेन्दु के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्होंने बनारस के क्वीन्स कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी और कई शैलियों में सफलता पूर्वक बहुत सी कविता लिखी हैं। इन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था से लिखना आरम्भ किया था और कुल मिलाकर एक सौ पचहत्तर पुस्तकें तैयार की थीं। इनमें अठारह नाटक भी सम्मिलित हैं और हरिश्चन्द्र ही वास्तव में भारत के वर्तमान-नाटक के संस्थापक थे। इन नाटकों में इनकी कुछ सर्वोत्तम रचनाएँ भी हैं और इनसे इनकी भारत की उन्नति तथा उसके दिमागी स्वातन्त्र्य के उत्कर्ष की उत्कट इच्छा प्रकट हो रही है।

सर जार्ज ए० ग्रिअर्सन—

वर्तमान-काल के भारतीय कवियों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। देशीय साहित्य के प्रचार में इन्होंने जो प्रयास किया है, उससे बढ़कर किसी भी जीवित भारतीय ने नहीं किया है। इन्होंने कई शैलियों में बहुत सी रचनाएँ की हैं और सभी में यह बढ़ गये हैं।

मिश्र बन्धु—

उस समय भारत-वर्ष को जिन-जिन बातों की आवश्यकता थी, उसमें जो-जो दोष थे, उन सबका इन्होंने सविस्तार वर्णन किया है। हिन्दी-साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जिन-जिन बातों की आवश्यकता थी, प्रायः इन सभी विषयों पर इन्होंने साहित्य-रचना की है। ऐसा उन्नतिशील और प्रतिनिधि कवि हिन्दी-साहित्य में कोई दूसरा नहीं हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—

वे सिद्ध-वाणी के अत्यन्त सरस-हृदय कवि थे। इससे एक ओर तो उनकी लेखनी से शृङ्गार-रस के ऐसे रसपूर्ण और मर्मस्पर्शी कवित्त-सवैये निकलते थे जो उनके जीवन काल में इधर-उधर लोगों के मुँह से सुनाई पड़ने लगे थे और दूसरी ओर स्वदेश-प्रेम से भरे हुए उनके लेख और कवितायें चारों ओर देश के मंगल का मंत्र सा फूँकती थीं। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विज-देव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर वङ्गदेश के मधुसूदनदत्त और हेमचन्द्र की श्रेणी में; एक ओर तो राधा-कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई 'भक्तमाल' गूँथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी बंगला-भक्तों की हँसी उड़ाते तथा स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यानी देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यह सुन्दर सामञ्जस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है। साहित्य के एक नवीन युग के आदि में प्रवर्त्तक के रूप में खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया है कि नए-नए या बाहरी भाव पचाकर इस ढङ्ग से मिलाना चाहिये, कि वे अपने ही साहित्य के विकसित अंग से लगें। प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल और मृदुल कला का सञ्चार अपेक्षित था वैसी ही शीतल और मृदुल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें सन्देह नहीं।

× × ×

बाबू हरिश्चन्द्र अधिकांश भाषा-कवियों के समान प्रथम प्रकार के कवियों में थे। यद्यपि इन्होंने अपनी कविता द्वारा नए-नए संस्कार उत्पन्न किए पर उसके स्वरूप को परम्परानुसार ही रखा। मनवी-वृत्तियों ही के मर्मस्पर्शी अंशों को छाँट कर उन्होंने मनोविकारों को तीव्र और परिष्कृत करने का प्रयत्न किया; दूसरी प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों की मर्म-स्पर्शिनी शक्ति पर बहुत कम ध्यान दिया। इन्होंने मनुष्य को सारी सृष्टि के बीच रख कर नहीं देखा; उसे उसी के उठाए हुए घेरे में रख कर देखा। मनुष्य की दृष्टि को उसके फैलाए हुए प्रपंचावरण से बाहर, प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र की ओर ले जाने का प्रयास इन्होंने नहीं किया। बात यह थी कि हिन्दी-साहित्य का उत्थान ही ऐसे समय में हुआ, जब लोगों की दृष्टि बहुत कुछ संकुचित हो चुकी थी। बाल्मीकि, कालिदास और भवभूति के आदर्श लोगों के सामने से हट चुके थे।

डा० श्याम सुन्दर दास—

हिन्दी की ह्रासकारिणी शृङ्गारी कविता के प्रतिकूल आन्दोलन का श्रीगणेश उस दिन से समझना चाहिए जिस दिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने 'भारत-दुर्दशा' नाटक के प्रारम्भ में समस्त देशवासियों को संबोधित करके देश की गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आँसू बहाने को आमंत्रित किया था। इस देश के और यहाँ के साहित्य के इतिहास में वह दिन किसी अन्य महापुरुष के जयन्ती-दिवस से किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। उस दिन शताब्दियों से सोते हुए साहित्य ने जागने का उपक्रम किया था, उस दिन रूढ़ियों की अनिष्टकर परम्परा के विरुद्ध प्रबल क्रांति की घोषणा हुई थी, उस दिन छिन्न भिन्न देश को एक सूत्र में बाँधने की शुभ भावना का उदय हुआ था, उस दिन देश और जाति के प्राण एक सत्कवि ने सच्चे जातीय जीवन की झलक दिखाई थी और उसी दिन संकीर्ण प्रान्तीय मनोवृत्तियों का अन्त करने के लिए स्वयं सरस्वती ने राष्ट्र-भाषा के प्रतिनिधि कवि के रूप में बैठ कर एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वासित की थी। मुक्तकेशिनी, शुभ्र वसना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परवश भारत-माता की करुणोज्ज्वल छवि देश ने और देश के साहित्य ने उसी दिन देखी थी और उसी दिन सुनी थी टूटी-फूटी श्रृङ्गारिक वीणा के बदले एक गंभीर झंकार, जिसे सुनते ही एक नवीन जीवन के उल्लास में वह नाच उठा था। वह दिवस निश्चय ही परम मंगलमय था; क्योंकि आज भी उसका स्मरण कर हम अपने को सौभाग्य शाली समझते हैं। यदि सच पूछा जाय तो उसी दिन से साहित्य में एक नवीन चेतना हुई और उसी दिन से उसके दिन फिरे। आज हम जिस साहित्य प्रगति पर गर्व करते हैं, उसका बीजारोपण इसी शुभ दिवस में हुआ था।

डा० रामरतन भटनागर—

भारतेन्दु नये युग, नये भारत के सन्देश वाहक थे। प्राचीन युग की ड्योढ़ी पार कर उन्होंने ही पहले पहल नये जीवन के प्रभात में प्रवेश किया था। अपने साथ वह बहुत-सा पुरानापन भी ले आये थे, परन्तु उनकी प्रशंसा यही है कि वे नई शक्तियों के केन्द्र बन गये थे। अपनी कविता में नई सामयिक और तात्कालिक प्रवृत्तियों का श्री गणेश उन्होंने ही किया। वर्णाश्रम, अशिक्षा-निवारण, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, परतन्त्रता, समुद्र-यात्रा, गो-रक्षा, अकाल, करवृद्धि की आलोचना—नई कविता के ये विषय भारतेन्दु ने ही हमें दिये। खड़ी-बोली में सबसे पहले प्रयोगात्मक छन्द उन्हीं के हैं। उन्होंने कविता के सभी क्षेत्रों को छुआ।

डा० रामकुमार वर्मा—

खल गगन सों सज्जन दुखी
मति होंहि हरिपद मति रहै।
उपधर्म छूटै स्वत्व निज
भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारिनर
सम होंहि, जग आनँद लहै।
तजि ग्राम कविता सुकविजन
की अमृत बानी सब कहै॥

यद्यपि इस युग में इन बातों का कहना साहस का कार्य नहीं प्रतीत होता तथापि उस अन्ध परम्परा के समय में इनका प्रकाश रूप से इस प्रकार कहना सहज न था। जिस प्रकार नव समाज की 'हरिपद मति रहै—भगवान में विश्वास रहे'—कटु प्रतीत होता था, उसी प्रकार प्राचीनता के पुजारियों को 'उपधर्म छूटे'—दूसरे धर्म से लोगों का पिण्ड छूटे—कटु क्षणित प्रतीत होता था। जिस प्रकार ब्रिटिश सरकार के लिए 'स्वत्व निज भारत गहै'—भारत अपना अधिकार प्राप्त करे—और 'कर दुख बहै'—देश से टैक्स का दुःख मिटे—ये शब्द कोधोत्पादक थे, उसी प्रकार 'नारिनर सम होंहि'—नारी पुरुष समान हों—से उस समय के समाज को चिढ़ आती थी। परन्तु वीर हरिश्चन्द्र (लेखक) ने जो जी में आया कह ही डाला। उसने बड़ी खूबी के साथ सब धर्म-कर्मों का समन्वय करके उन्हें यथार्थ देशभक्ति का प्रमुख अङ्ग बना दिया। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के द्वारा नाटक, उपन्यास, निबन्ध, इतिहास, समाचार प्रकाशन आदि विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी गद्य का प्रयोग किया था। उनकी देखा देखी उनके प्रभाव से प्रभावित होकर हिन्दी के समर्थ गद्य लेखकों की एक परम्परा ही चल पड़ी। इन्द्र जैसे अपने वज्र से रुंधे हुए, जल प्रवाहों को उन्मुक्त कर देता है और जल-थल में मूसलाधार वृष्टि होने लगती है, कुछ ऐसे ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी भाषा के रुंधे हुए स्रोतों को मानों खोल दिया और उनसे छूटे हुए प्रवाह साहित्य की भूमि को सींचते हुए चारों ओर फैल गए। हरिश्चन्द्र युग हिन्दी के गद्य लेखकों का स्वर्ण-काल था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—

आधुनिक साहित्यिक धाराओं तथा विचारावली के प्रवर्त्तक होने के अतिरिक्त भारतेन्दुजी आधुनिक हिन्दी भाषा और शैली के भी प्रवर्त्तक थे। पद्यात्मक भाषा के सम्बन्ध में तो वे अपने को मध्ययुगीन प्रभावों में मुक्त नहीं कर सके। उनकी कविता की भाषा प्रायः ब्रज है, और मुख्य विषय भक्ति और प्रेम है। किन्तु गद्य के क्षेत्र में उन्होंने निःसंकोच खड़ी बोली को अपनाया और उसे परिमार्जित करने का भरसक प्रयत्न किया।

उर्दू के अतिरिक्त खड़ी बोली की तीन शैलियाँ इस समय चल रहीं थीं। १—उर्दू की ओर झुकी हुई शैली जो बाद को हिन्दुस्तानी शैली कहलाई २—ब्रजभाषा मिश्रित शैली जैसी हम उदाहरण के लिये लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' में पाते हैं ३—ठेठ खड़ी बोली शैली जो बोलचाल की बोली का कृत्रिम साहित्यिक रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार की शैली के प्रयोग हम "रानी केतकी की कहानी," तथा "ठेठ हिन्दी के ठाठ" में पाते हैं। भारतेन्दुजी ने अपनी असाधारण प्रतिभा के द्वारा खड़ी-बोली की इन तीनों शैलियों की निर्बलताओं को समझ लिया था, और उन्होंने इन तीनों में से किसी को भी नहीं अपनाया। उर्दू की तरफ झुकती हुई शैली भारतीय सांस्कृतिक मनोवृत्ति के विरुद्ध पड़ती थी और उसे सुसंस्कृत भारतीय कदापि ग्रहण नहीं कर सकते थे। इस शैली को चलवाने के सम्बन्ध में बीसवीं शताब्दी तक उद्योग किये गये, किन्तु इसमें सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकी। प्रेमसागर की पण्डिताऊ खड़ी-बोली का आधुनिकता से विरोध पड़ता है, और उसे भी अपनाने को सर्व-साधारण उद्यत न था। ठेठ खड़ी-बोली शैली की अपनी सीमाएँ हैं। उच्च साहित्य के लिये वह उपयुक्त नहीं उसमें जटिल और ऊँचे विचारों को प्रकट कर सकने की शक्ति नहीं है और न पैदा ही की जा सकती है।

फल-स्वरूप भारतेन्दुजी ने, स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान देश की प्राचीनतम साहित्यिक भाषा संस्कृत की ओर झुकने वाली खड़ी बोली को अपनाया। उनका यह चुनाव बहुत सूझ-बूझ का था। दोनों ही महापुरुष देश की नब्ज को समझने वाले थे अतः भाषा शैली के उचित चुनाव में वे चूके नहीं और इन लोगों की चलाई हुई शैली को ही देशवासियों ने अपनाया। इस प्रकार भारतेन्दुजी को हम खड़ी बोली गद्य शैली का भी जनक कह सकते हैं। लौकिक गद्य साहित्य में इस शैली का व्यापक प्रयोग पहले पहल भारतेन्दुजी ने ही किया। यों मुन्शी सदासुखलाल आदि कई लेखक इससे पहले भी इस शैली में लिख चुके थे और भारतेन्दुजी के समकालीन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रचार कर ही दिया था। जो बीज भारतेन्दुजी ने लगभग १०० वर्ष पूर्व बोया था, वह आज महान् वृक्ष का रूप धारण करके पल्लवित हो रहा है और पुष्प और फलों से लद रहा है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—

हिन्दी का आन्दोलन वस्तुतः भारतीकरण का आन्दोलन है। हिंदी की उन्नति का मतलब है, सभी भारतीय भाषाओं की उन्नति। पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों में इस देश में एक विचित्र अवस्था रही है। एक सम्पूर्ण रूप से विदेशी भाषा हमारे राजकाज से लेकर न्याय और व्यवहार तक में विचार-प्रकाशन का माध्यम बन गयी थी। निस्सन्देह वह बहुत समृद्ध भाषा थी, पर उसकी छाया में अन्य भारतीय, 'निजभाषाऐं' म्लान और हतवीर्य हो गई हैं। उन सब में वह तेज उठाना चाहिए जो उन्हें अपनी जनता की सेवा करने में समर्थ बनावे। वह तेज ही वाञ्छनीय है।

विदेशी भाषा के अति प्रभाव से हततेजा भाषाओं को अपने उचित स्थान पर स्थापित करना और उन्हें इस योग्य बनाना कि वे अबाध भाव से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता की सेवा कर सकें, यह बात हिन्दी आन्दोलन के मूल में अवश्य रही है। हिन्दी की उन्नति का अर्थ समूची भारतीय भाषाओं की उन्नति है। भारतेन्दु जी इस महान् आन्दोलन के सच्चे पुरस्कर्ता थे, 'निजभाषा-उन्नति' शब्द का व्यवहार किया था। निज भाषा की उन्नति वाञ्छनीय है। समस्त भारतीय 'निजभाषाओं' की उन्नति होनी चाहिए। कोई किसी को दबाये नहीं; सब एक दूसरे को सहायता पहुँचावें, यही उचित है।

भाषा की उन्नति का मतलब केवल पुस्तकों की संख्या की वृद्धि नहीं है। भाषा की उन्नति का मतलब है, ऐसा साहित्य जो उस भाषा के बोलने वालों को कल्याण-मार्ग की ओर ले जा सके। ऐसा साहित्य होना चाहिए जो बाहर भीतर की समृद्धि को बढ़ा सके।

भारतेन्दु के आविर्भाव के समय हमारी भाषा की जो अवस्था थी, उसकी तुलना में आज हमारा साहित्य बहुत अधिक समृद्ध है। उस महापुरुष ने अपने संपूर्ण जीवन को देकर जो साधना की थी, वह बहुत शक्तिशाली और फलप्रद सिद्ध हुई, उनका मंत्र बहुत प्रभावशाली प्रमाणित हुआ, पर अभी सन्तोष करने योग्य कुछ भी नहीं हुआ है। जिस महिमाशालिनी विदेशी भाषा के स्थान को हमें पाना है उसके साहित्य की तुलना में हमारा साहित्य बहुत कमजोर है। हम यद्यपि आज कृतज्ञता पूर्वक भारतेन्दु के महामंत्र का ऋण स्वीकार करते हैं, परन्तु उस मंत्र से अभी और भी प्रेरणा पाना है। अब भी हमें इस मंत्र को बार-बार स्मरण करना है कि—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिट न हिय को शूल॥

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्मशताब्दी हम लोग उनके साहित्यिक कार्य के कारण मना रहे हैं। यद्यपि साहित्यनिर्माता के सिवा उनमें और भी बहुत से गुण थे, जिनकी ओर प्रायः हम ध्यान नहीं देते। बाबू हरिश्चन्द्र देशभक्त, सुधारक, परोपकारी और दानी भी परले सिरे के थे, पर इन गुणों पर बहुत कम प्रकाश पड़ा है। उन्होंने हिन्दी को संजीवनी बूटी पिलायी थी, जिससे वह अकाल मृत्यु से ही नहीं लड़ सकी, आज अपनी सौत को हराने में भी समर्थ हुई है।

श्री गुलाबराय—

भारतेन्दुजी की देश-वत्सलता के बारे में यह समस्या उठाई गई है कि वे अंगरेजी राज्य के प्रशंसक भी थे और उसी के साथ पूरे-पूरे देशप्रेमी भी थे, दोनों बात किस प्रकार सम्भव हो सकती हैं? शायद वे देशप्रेम के नाते ही अङ्गरेजी राज्य की सुव्यवस्था के प्रशंसक रहे हों। अङ्गरेजी राज्य से जो हानि थी, वह उनको अखरती ही थी—'पर धन विदेश चलि जात यही अति ख्वारी।'

भारतेन्दु-नाटकावली की प्रस्तावना में यह आपत्ति उठाई गई है कि एक देशी राजा के पतन पर प्रसन्नता दिखाना देशप्रेम के विरुद्ध है। 'विषस्य विषमौषधम्' में यह स्पष्ट ही है कि जो देशी राजाओं के अत्याचार की औषध है, वह भी विष स्वरूप ही है। स्वदेशाभिमान में अपनी कमजोरियों को छिपाना अनुचित तो नहीं है किन्तु जहाँ वे हद से बढ़ जाँय, तो उनका उद्घाटन कर देना श्रेयस्कर ही होता है।

नीलदेवी के सम्बन्ध में भी ऐसी ही आपत्ति उठाई गई है कि आर्य-ललना का मुसलमानी दरबार में नर्तकी के भेष में जाना भारतीय मर्यादा के विरुद्ध है। यह बात किसी अंश में ठीक है किन्तु साध्य के उत्तम होने से साधनों की नीचता क्षम्य हो जाती है। पद्मावती ने भी तो ऐसा ही किया था। उसने अलाउद्दीन के पास विवाह की स्वीकृति भेज दी थी।

भारतेन्दु बाबू के 'भारत-दुर्दशा' नाटक के सम्बन्ध में यह आपत्ति उठाई गई है कि वह दुखान्त है; उसमें आशा का सन्देश नहीं है। यह ठीक है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु कहीं-कहीं करुणा का आधिक्य लोगों को उद्योगशील बना देता है। करुणा में प्रायः वीररस की आवृत्ति हो जाती है—'आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ वीर रस'। कवि का लक्ष्य जागृति उत्पन्न करना था, वह चाहे आशा और उत्साह द्वारा हो और चाहे करुणा के द्वारा।

हरिश्चन्द्र के प्रकृति-चित्रण के बारे में भी आचार्य शुक्लजी द्वारा यह आपत्ति उठाई गई है, कि उन्होंने शहर के ही दृश्यों का वर्णन किया है। गङ्गाजी की शोभा भी प्राकृतिक शोभा नहीं है, घाटों की ही शोभा है। इसको हम दोष नहीं कहते। कवि जिस चीज से प्रभावित होता है, उसका ही वर्णन करता है। आजकल तो अङ्गरेजी के कवि शहर की प्रकृति का काफी वर्णन करते हैं।

गङ्गाजी के वर्णन में कालदूषण दिखाया गया है, कि हरिश्चन्द्रजी महाराज भगीरथ के पूर्वजों में से थे। फिर उनके समय में गङ्गाजी कहाँ से आईं? यह ठीक है। सत्यहरिश्चन्द्र के अन्तिम अङ्क में बड़े होने को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के विरुद्ध बतलाया गया है। लोग जब नाटक देखते-देखते उकता उठते हैं तो वे बड़े अङ्क से और भी ऊब जाते हैं। यह आपत्ति भी किसी अंश में ठीक है।

हरिश्चन्द्र के नाटकों में त्रुटियों के होते हुए भी हमको उनकी प्रतिभा मुक्त कण्ठ से स्वीकार करनी पड़ेगी। वे पहले नाटककार थे, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य में नाटकों को एक निश्चित रूप दिया। उन्होंने अपने नाटकों को अभिनय योग्य बनाने का प्रयत्न किया और उनके अभिनय में भाग भी लिया। खेद है, कि भारत का इन्दु अपने पूर्ण विकास को न पहुँच सका।

(पृष्ठ २१४ का शेष)

११—उत्सावली—इसमें वर्ष भर के उत्सवों की तालिका तथा सेवा का संक्षेप में वर्णन दिया गया है। र० का० सं० १९३३-३४।

१२—वैष्णवता और भारतवर्ष—भारतवर्ष का प्रकृत मत वैष्णव है, इसी की पुष्टि की गई है। र० का० सं० १९३४।

१३—हिन्दी कुरानशरीफ—मुसलमानों की धर्म-पुस्तक का संक्षिप्त अनुवाद। सं० १९३२-४।

१४—ईशू खृष्ट और ईश कृष्ण—सं० १९३६

१५—श्रुतिरहस्य—सामवेद पर लेख। सं० १९३३

१६—दूषणमालिका—र० का० अज्ञात।

(५) अन्य स्फुट रचनाएँ

१—मदालसोपाख्यान—पूर्ण तथा प्रकाशित। र० का० सं० १९३३।

२—राजसिंह—बँगला से अनुवाद, अपूर्ण, जिसे बाद में पूरा कर प्रकाशित किया गया था।

३—एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती—केवल एक परिच्छेद प्राप्त।

इनके सिवा हमीरहठ, सुलोचना, शीलवती तथा सावित्री-आख्यान इनके लिखे सुने जाते हैं पर ये अप्राप्त हैं।

४—पाँचवाँ पैगम्बर—निबन्ध।

५—स्वर्ग में विचार सभा—निबन्ध।

६—परिहासिनी—चुटकुलों का संग्रह।

७—संगीत-सार—र० का० सं० १९३२।

८—बलिया में व्याख्यान—सं० १९३४।

९—तहकीकातपुरी की तहकीकात (अठारह पृष्ठ)—र० का० सं० १९२८।

१०—सीताबट निर्णय।

११—कृष्ण भोग—पाकविद्या। सं० १९२८।

१२—स्तोत्र पञ्चरत्न—परिहासात्मक गद्यपद्यमय लेख।

१३—हिन्दी भाषा—लेख।

इनके अतिरिक्त भारतेन्दु के बहुत से लेख, निबन्ध, यात्रा विवरण आदि उस समय की पत्र पत्रिकाओं में बन्द पड़े हैं जिन्हें, आशा है, भारतेन्दु ग्रन्थावली के तीसरे तथा चौथे भागों में यथाशक्ति संगृहीत किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये खुलने वाले !

कालेज-स्कूल-पुस्तकालय,

यदि आप अपने यहाँ के पुस्तकालयों को आधुनिक ढङ्ग का बनाना चाहते हैं, जिससे आपके यहाँ नवीनतम पुस्तकें मिल जाँय, तो आप एक बार हमें अपनी सेवाएँ बतावें। हम आपको नई से नई पुस्तकें छाँटकर भेज देंगे।

पुरानी संस्थाएँ

नई अथवा कोई पुरानी पुस्तक

मँगाना चाहें वे हमें अवश्य लिखें, हिन्दी पुस्तकों का जितना वृहत-भंडार हमारा है, उतना आपको कहीं न मिलेगा।

सभी तरह की हिन्दी पुस्तकें मिलने का

सबसे बड़ा स्थान

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपया अब आर्डर न भेजें।

हम अपने सितम्बर मास के अङ्क में विज्ञप्ति निकाल चुके हैं, कि साहित्य-सन्देश की १९४९–५० की फाइल के लिए अब मनीआर्डर न भेजें, लेकिन हमारे कृपालु ग्राहक अब भी बराबर मनीआर्डर भेज रहे हैं, जो हमें वापिस करने पड़ते हैं, अतः पुनः निवेदन है कि अब कोई भी सज्जन किसी भी पुरानी फाइल का आर्डर अथवा मनीआर्डर भेजने की कृपा न करें, अब हमारे यहाँ कोई भी फाइल उपलब्ध नहीं है—

विशेषांक भी उपलब्ध नहीं हैं.

हमारे पिछले विशेषाङ्कों में परीक्षांक और विद्यार्थी अङ्क भी अब समाप्त हो गये हैं। लेकिन उनकी माँग बराबर आ रही है। यह दोनों विशेषांक तथा कुछ और उपयोगी और आवश्यक निबन्ध जोड़ कर हम एक नई पुस्तक।

परीक्षार्थी प्रबोध, दूसरा भाग,

के नाम से इसी नवम्बर मास में प्रकाशित कर रहे हैं, इसकी पृष्ठ सं० लगभग ३०० होगी। मूल्य ३) रु०,

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को यह पुस्तक पौने मूल्य में दी जायगी।

जल्दी ही आर्डर भेज कर मंगालें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

भेंट करने योग्य पुस्तकें

यदि आप विवाहों त्यौहारों पर तथा विद्यार्थियों को हिन्दी की पुस्तकें भेंट करना चाहते हैं, तो आप हमें यह लिख भेजें कि आप किस अवसर पर कितने मूल्य की पुस्तकें किसको भेंट करना चाहते हैं। हम उतने मूल्य की पुस्तकें अपने यहाँ से छाँट कर आप को भेज देंगे। आप पहले से लिख देंगे तो वैसी पुस्तकों का सूची भेज देंगे।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के विद्यार्थी

अपनी सामयिक सहायता के लिए
निम्न पुस्तकें हम से मंगाएं

प्रथमा—प्रथमा प्रश्नोत्तरी २।) (गत पाँच वर्ष) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३), सूर पदावली की टीका १), नवीन पद्य संग्रह की टीका १), प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका १।)

मध्यमा—परीक्षार्थी प्रबोध भाग १ मू० ३) अयोध्याकाँड दिग्दर्शन ।।।) विशारद प्रश्नोत्तरी ३।।) साहित्य की झाँकी १।।) लिपि और विकास ।।।) चित्रिलेखा एक अध्ययन ।।।) पञ्चवटी समीक्षा १।) आधुनिक हिन्दी नाटक १।।) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३) विशारद दिग्यदर्शन २।।), वृजमाधुरी सार की टीका ५), आ० काव्य संग्रह की टीका ३। हिन्दी के पाँच नाटक २), मुक्ति का रहस्य एक अध्ययन ।।), पञ्चवटी की टीका १)

उत्तमा तथा एम० ए० और बी० ए०—परीक्षार्थी प्रबोध भाग २ मू० ३) प्रसादजी की कला ३) भाषा भूषण (अलङ्कार) १) साकेत एक अध्ययन २।।) सुमित्रानन्दन २।।) गुप्तजी की कला २) हिन्दी काव्य विमर्श ३।।) साहित्य और समीक्षा ।।।) साहित्य वातायन १।) सूरनिर्णय ५) सूरदास ४) पदमावत् भाष्य ६) कामायनी का सरल अध्ययन १=) कुछ साहित्यिक प्रश्न १) हिन्दी कलाकार ५) मलिक मोहम्मद जायसी ४) भाषाविज्ञान की रूपरेखा मोरा १।।) प्रसादजी का पध्यय ३) आधुनिक कथा साहित्य २।।) छायावाद की रूपरेखा ।।।) प्रियप्रवासदर्शन १।।) गोस्वामी तुलसीदास १।।।) प्रसाद और अन्य कृतियों—प्रिय प्रवास की टीका २)

हिन्दी साहित्य के विविध अङ्गों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, निम्नलिखित आलोचनात्मक साहित्य पठनीय है—

१—नयी समीक्षा—	४।)	१०—साहित्य-वातायन—	१।)
२—साहित्य-परिचय—	२)	११—साहित्य-चिन्तन—	४)
३ सिद्धान्त और समीक्षा -	२।)	१२—विचार-दर्शन—	४।)
४—साहित्यिका—	१।।।)	१३ विचार-धारा—	३।)
५—विचार और अनुभूति—	४)	१४—विचार और विवेचन—	४)
६—निबन्धिनी—	३।)	१५ कला की कलम—	३)
७—समीक्षायण—	३)	१६—सिद्धान्त और अध्ययन—	४।)
८—साहित्यक-निबन्धावली—	२।।।)	१७—काव्य के रूप—(नवीन संस्करण)	४।।।)
९—साहित्य-निबन्धावली—	३।।।)	१८—हिन्दी-काव्य-विमर्श—	३।।)

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४ गान्धी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी परीक्षाओं की पुस्तकें

मिलने का एक मात्र स्थान

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

हमारे यहाँ हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा। हिन्दी विद्यापीठ बिहार की हिन्दी विद, प्रवेशिका, साहित्य-भूषण, साहित्यालंकार तथा विदुषी, सरस्वती, इन्टर, बी० ए० और एम० ए० आदि हिन्दी परीक्षाओं की पुस्तकें तथा उनकी सहायक पुस्तकें हमेशा तैयार मिलती हैं।

—व्यवस्थापक

राम-चरित मानस (संक्षिप्त)

सुनहरी छपा हुआ टाइटिल, मूल्य १।)

यह रामायण अभी प्रकाशित हुई है।

पुस्तक विक्रेताओं को निम्न प्रकार कमीशन दिया जायगा।

५० प्रतियों से कम पर २५ प्रतिशत

५० प्रतियों से ऊपर ३३ $\frac{१}{३}$ प्रतिशत,

आज ही आर्डर भेजें।

गीता मन्दिर प्रेस, ५ गान्धी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों की सुन्दर छपाई

के लिये

एक बार हमें लिखिये

हमारे यहाँ पुस्तक छपाई, लेटर पेपर, कार्ड, रसीद बुक, आदि की सुन्दर छपाई होती है।

साहित्य-प्रेस, ४, गांधी मार्ग, आगरा।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी की महत्वपूर्ण पुस्तकें

१—शेर-ओ-शायरी—[उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज्म] .... मूल्य ८)
२—मुक्तिदूत—[पौराणिक रोमांस] (द्वितीय संस्करण) .... ५)
३—पथचित्र—[स्मृति रेखायें और निबन्ध] .... २)
४—मिलनयामिनी—[गीत] कविवर बच्चन .... ४)
५—वैदिक साहित्य—लेखक—पं० रामगोविन्द त्रिवेदी .... ६)
६—दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ डा० जगदीशचन्द्र जैन .... ३)
७—आधुनिक जैन कवि—श्रीमती रमारानी जैन .... ३॥)
८—हिन्दी जैन साहित्य का सं० इतिहास—श्री कामताप्रसाद जैन .... २॥=)
९—जैन शासन—[जैनधर्म का परिचय कराने वाली पुस्तक] (द्वितीय संस्करण) ३)
१०—कुन्द कुन्दाचार्य के तीन रत्न— .... २)
११—महाबन्ध—(महाधवल) प्रथमभाग (हिन्दी अनुवाद सहित) .... १२)
१२—तत्वार्थ वृत्ति—(हिन्दी सार साहित्य) पो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य .... १६)
१३—न्यायाविनिश्चय विवरण—[प्रथमा १ भाग] .... १५)
१४—मदन-पराजय—स० प्रो० राजकुमार जैन साहित्याचार्य .... ८)
१५—नाममाला सभाष्य— .... ३॥)
१६—केवल ज्ञान प्रश्न चूड़ामणि—[ज्योतिष ग्रन्थ] पं० नेमिचन्द्र जैन ४)
१७—सभाष्य रत्न मंजूषा—छन्दोग्रन्थ .... २)
१८—कन्नड़प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ सूची— .... १३)
१९—करल कवण [सामुद्रिक शास्त्र] .... १)

प्राप्तिस्थान— { १—भारतीय ज्ञानपीठ काशी दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।
२—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश

की लोक प्रियता के कुछ मूल कारण

- यह एक-मात्र साहित्यिक पत्र है जो शुद्ध साहित्यिक है और जो अपने १२ वर्ष के जीवन में अपने क्षेत्र से किञ्चित भी नहीं हटा है। इसमें विद्यार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी सुपाठ्य सामग्री मिलती है, इसको चोटी के विद्वानों का सहयोग प्राप्त है।
- इसमें नवीनतम साहित्य की गम्भीर आलोचनाओं द्वारा पाठकों के साहित्य-क्षितिज के विस्तार के साथ उनकी रुचि का परिमार्जन होता है।
- वह अपने पाठकों को साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों से परिचित कराता रहता है। इससे सस्ता और इतनी अधिक तथा मूल्यवान सामग्री देने वाला और कोई पत्र नहीं।
- इसमें प्रतिमास नवीनतम हिन्दी पुस्तकों की सूची छपती है जिससे ग्राहकों को नवीन साहित्य का ज्ञान होता रहता है।
- साहित्य-सन्देश किसी दल विशेष का पत्र नहीं है, और वह सभी साहित्यिक बातों को समान रूप में आश्रय देता है उसकी आलोचनाएँ सदा गम्भीर और निष्पक्ष होती हैं।

भारतवर्ष का प्रमुख दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान नई देहली की सम्मति'

आगरा का साहित्य-रत्न-भन्डार, एक यशस्वी प्रकाशन संस्था है जिसके सञ्चालक श्री महेन्द्रजी ने अपने अध्यवसाय से 'साहित्य' शब्द के यथार्थ रूपको सामने रख कर कुछ ठोस सामग्री संसार को भेंट की है आप 'साहित्य सन्देश' के नाम से एक मासिक पत्र भी निकाल रहे हैं। इस मासिक ने हिन्दी में साहित्यिक पत्र के आधार की पूर्ति कर साहित्य के आलोचनात्मक क्षेत्र में सराहनीय ढंग से काम किया है।

आज ही ४) वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेज कर इसके ग्राहक बनें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन

लेखक—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

इसमें क्या है ?

* लोकवार्ता का वैज्ञानिक—अध्ययन और इतिहास। हिन्दी में इतना सांगोपांग अध्ययन अभी तक नहीं हुआ लोकवार्ता का विषय हिन्दी में सर्वथा नवीन है।

* लोकवार्ता और लोक-साहित्य—के सम्बन्ध का विवेचन।

* लोक साहित्य और लोक जीवन का सम्बन्ध—संग्रह और झाँकी। ब्रज क्षेत्र के समस्त प्रकार के लोक साहित्य के संग्रह के निर्देश के साथ जीवन-संस्कारों से उनका वैज्ञानिक सम्बन्ध।

* लोकवार्ता और साहित्यिक—संग्रह और सङ्कलन की प्रणाली विस्तार के साथ दी गई है।

* ब्रज के लोक साहित्य—की प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक विकास—वेद-पूर्व से आज तक।

ब्रज के बहाने समस्त भारतीय लोकवार्ता साहित्य का विश्व लोकवार्ता परंपरा में स्थान।

"इस प्रकार लेखक ने लोक साहित्य का शास्त्र रचने का प्रयत्न किया है।...."

पृष्ठ संख्या ६२२, बड़ा आकार, मूल्य सजिल्द ६)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

हिन्दी-गीति-काव्य

संशोधित-संस्करण—इसी नवम्बर मास में प्रकाशित हुआ है

लेखक—ओमप्रकाश अग्रवाल एम० ए०।

यह पुस्तक विशेषकर हिन्दी गीतिकाव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिए लिखी गई है इसमें हिन्दी के गीतिकाव्य तथा कवियों का परिचय निष्पक्ष रूप से किया गया है। विषय प्रवेश से गीतिकाव्य की—विशेषताएँ तथा संगीत और विकास और तुलनात्मक सारांश रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक २३ प्रमुख गीति-काव्य के कवियों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। जहाँ आवश्यकता हुई है वहाँ आवश्यक उदाहरण भी दिये गये हैं। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यह गीतिकाव्य अमूल्य निधि है।—मूल्य २॥)

मिलने का पता—

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४ म० गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परीक्षार्थी प्रबोध' खण्ड १ और २ की विषय-सूची

[साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में—मूल्य प्रत्येक खंड का ३) ग्राहकों से २।)]

खण्ड १

१—काव्य परिभाषा का विकास
२—साधारणीकरण का शास्त्रीय विवेचन
३—हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध काव्य का विकास
४—आधुनिक हिन्दी-साहित्य में मनोविज्ञान
५—पृथ्वीराज रासो
६—सन्त-साहित्य में योगसाधना और ब्रह्मानुभूति
७—हिन्दी साहित्य में विद्यापति
८—नन्ददास का भँवरगीत
९—भ्रमरगीत में सूरदासजी
१०—तुलसी की काव्य सुषमा
११—केशव की अलङ्कार योजना
१२—बिहारी का कांइयापन
१३—देव का काव्यात्व और आचार्यत्व
१४—सेनापति का प्रकृति चित्रण
१५—हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद का विकास
१६—हिन्दी कविता की नवीनतम प्रगति
१७—कबीरदास के दार्शनिक सिद्धान्त
१८—यशोधरा एक सिंहावलोकन
१९—सिद्धराज पर एक दृष्टि
२०—चित्रलेखा
२१—श्री रामकुमार वर्मा के एकाङ्की नाटकों की रूपरेखा
२२—सिन्दूर की होली में समस्या-चित्रण
२३—गरुड़ध्वज पर एक दृष्टि
२४—हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार
२५—कुछ पर कुछ
२६—हिमकिरीटनी पर एक दृष्टि
२७—महादेवी की रहस्य साधना
२८—चन्दा : एक आलोचनात्मक परिचय
२९—उद्धव-शतक में भक्तिकाल और रीतिकाल के सम्मिलित प्रभाव
३०—युग कवि 'निरालाजी'

खण्ड २

१ चन्द और पृथ्वीराज रासो
२—कबीर और सृष्टि विज्ञान
३—सूर का वियोग शृङ्गार
४—तुलसीदासजी दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण
५—केशव की काव्य कला
६—सेनापति का कवित्त रत्नाकर
७—कामायनी
८—साकेत पर एक दृष्टि
९—प्रसादजी का चन्द्रगुप्त
१०—सेवा सदन
११—प्रेमचन्द और गोदान
१२—रस और दोष
१३—काव्य के दोष
१४—भारतवर्ष की आधुनिक भाषाएँ
१५—पृथ्वीराज रासो और उसकी प्रामाणिकता
१६—तुलसी की काव्य सुषमा
१७—हिन्दी के प्रमुख कहानीकार
१८—त्रिवेणी अवगाहन
१९—जायसी और उनका प्रेम काव्य
२०—प्रसादजी का अजातशत्रु
२१—हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार
२२—नरोत्तमदास कृत "सुदामा चरित्र"
२३—कबीर का साधनापत्र
२४ काव्य और यथार्थवाद
२५—स्कन्दगुप्त के प्रमुख पात्र
२६—साकेत पर एक दृष्टि
२७—भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास
२८—झाँसी की रानी का एक अध्ययन
२९—उदयशङ्कर भट्ट के काव्य तथा भावनाट्य
३०—प्रगतिवाद की रूपरेखा

पता—साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

—साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधा जनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।

—महीने की ३० तारीख तक साहित्य सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर के साथ कार्यालय में भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।

—किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोष जनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।

—फुटकर अंक मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।

—ग्राहक अपना पता बदलने की सूचना १५ दिन पूर्व भेजें; अस्थाई पता बदलने का नियम नहीं है।

ग्राहकों को सूचना

अब इस वर्ष जुलाई मास से हम साहित्य-सन्देश के ग्राहक न बना सकेंगे

पिछले वर्षों के अनुभव से कि हमारे नवीन ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ से ही अङ्क माँग कर ग्राहक बना करते थे लेकिन हम उनकी बढ़ती हुई माँग को पूरा न कर पाते थे।

इस वर्ष हमने यह दृष्टि में रखत हुए कि हम पूरे वर्ष नहीं तो जनवरी तक तो अपने नये ग्राहक जुलाई मास से ही बनाते रहें, इस वष का जुलाई का अङ्क आवश्यकता से अधिक हमने छाप कर रखा लेकिन अभी ३ महीने भी नहीं हुए कि जुलाई और अगस्त की प्रतियाँ समाप्त हो गईं और अब हम सितम्बर के अङ्क से नये ग्राहक बना रहे हैं।

अतः हम अपने कृपालु ग्राहकों से निवेदन करते हैं कि वे अब हमसे चालू अङ्क से ही ग्राहक बनने की आज्ञा दें।

व्यवस्थापक—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

किंडर गार्टन बक्स

किंडर गार्टन बक्सों से बच्चे जल्दी पढ़ते हैं। इससे प्रायः सभी भाषाओं का ज्ञान हो जाता है। बच्चे खेल ही खेल में बहुत सी बातें सीख जाते हैं। प्रत्येक बक्स का मूल्य ३) है। वी० पी० से मँगाने पर ।।=) और लगेगा। बहुत थोड़े बक्स बाकी हैं।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी प्रबोध

पहला और दूसरा खण्ड

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तय्यार की गयी है। प्रथमा-मध्यमा-उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-भूषण-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण साहित्यालङ्कार, विद्यालंकार, इन्टर, बी० ए० तथा एम० ए० आदि परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

'साहित्य-सन्देश' निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सहायता करता रहा है। उसने विगत ग्यारह वर्षों में जो विद्यार्थियोपयोगी निबन्ध अपने अङ्कों के द्वारा भेंट किये हैं, उनका सार और महत्व-पूर्ण अंश लेकर तथा आवश्यक नये निबन्ध जोड़कर यह पुस्तक तय्यार की गयी है। विद्यार्थी और परीक्षार्थी के लिए सदैव साथ रखने योग्य पुस्तक है।

परीक्षार्थी प्रबोध का पहला खण्ड गत वर्ष नवम्बर मास में प्रकाशित हुआ था जिसका पहला संस्करण १ महीने में ही समाप्त हो गया था। पहले भाग के दूसरे संस्करण की अब थोड़ी सी प्रतियाँ बची हैं।

"परीक्षार्थी प्रबोध" का दूसरा खंड इसी नवम्बर मास की १५ तारीख तक निकल जायगा जिसमें साहित्य सन्देश के परीक्षांक और विद्यार्थी अङ्क भी सम्मिलित हैं अतः इसका प्रथम संस्करण छपते ही निकल जाने की आशा है।

प्रत्येक भाग की पृष्ठ संख्या लगभग ३०० है और प्रत्येक भाग का मूल्य ३) है।

साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

परीक्षार्थी प्रबोध के दोनों खंड साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में दिये जायँगे। दोनों भाग एक साथ लेने पर ४।) में मिलेंगे। पोस्टेज पृथक ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

दोनों खण्ड की विषय सूची मुफ्त मंगायें।

आज ही अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करालें

नोटः—१ जो सजन साहित्य सन्देश के ग्राहक नहीं हैं वे पूरा मूल्य ही भेजें। अथवा ४) वार्षिक मूल्य भी साथ भेज कर साहित्य-सन्देश के ग्राहक बन जायँ।

मनीआर्डर और आर्डर भेजने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

मुद्रक—साहित्य-प्रेस, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

वर्ष १२] आगरा—सितम्बर १९५० [अङ्क ३

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
नगेन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा

वार्षिक मूल्य ४), एक अङ्क का।=)

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचार-धारा — सम्पादक
२—कामायनी के रूपक तत्व — डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्०
३—विनय-पत्रिका में तुलसी की भक्ति — श्री कृष्णचन्द्र वर्मा एम० ए०
४—महाकवि पन्त की एक कविता पर पुनर्विचार — श्री भीष्मदेवजी
५—मीरा और महादेवी — प्रो० रघुवीरप्रसादसिंह एम० ए०
६—स्मृति की रेखाएँ : एक दृष्टि — श्री शिवप्रसाद लोहानी, साहित्य र
७—साहित्य-परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य सन्देश प्रत्येक मास के अंतिम सप्ताह में निकलता है।

२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते है, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधा जनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।

३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर के साथ कार्यालय में भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।

४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के संतोष जनक उत्तर देना संभव नहीं है।

५. फुटकर अंक मंगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।

हिन्दी का नया प्रकाशन : सितम्बर १९५०

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं।

आलोचना

हिन्दी बादों का विवेचन—
श्री स्वयंप्रकाश उपाध्याय ।।।=)
नाथ सम्प्रदाय—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ४।।)
वीर काव्य—डा० उदयनारायण तिवारी ६)
कला की कलम—श्री रघुवीरशरण मित्र ३)

कविता

मिलन यामिनी—श्री बच्चन ४)

उपन्यास

दिल्लीश्वरी—श्री देवीप्रसाद धवन, विकल ३)

कहानी

बापू की कारावास कहानी—श्री सुशील नैयर १०)

निबन्ध

रूप और स्वरूप—श्री बनश्यामदास बिड़ला ।।=)
पञ्च दर्शा—श्री वियोगी हरि १।।)
सर्वोदय विचार—श्री विनोबा १।।)

जीवनी

शंकराचार्य—श्री बल्देव उपाध्याय ७।।)

ऐतिहासिक

पाटिली पुत्र की कथा—श्री सत्यकेतु विद्यालंकार १०)

भूगोल

तपोभूमि—पं० रामगोपाल मिश्र १०)

दर्शन

ईशावास्यवृति—श्री विनोबा १)

गांधी साहित्य

गीत माला—महात्मा गाँधी ४)
पन्द्रह अगस्त के बाद—महात्मा गांधी २)
धर्म नीति—संग्रह २)
बापू और भाई—श्री देवदास गाँधी ।।।)

बालोपयोगी

बापू और बच्चे—श्री आचार्य नित्यानन्द ।।)

विविध

श्री सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ—
श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि १२)
समस्या प्रश्नोत्तर २००२ से २००६—
श्री गुलाबचन्द जैन २।)
भारतीय संस्कृति और हिन्दू कोड बिल—
श्री जवाहरलाल जैन ।)

CC-0. JK Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

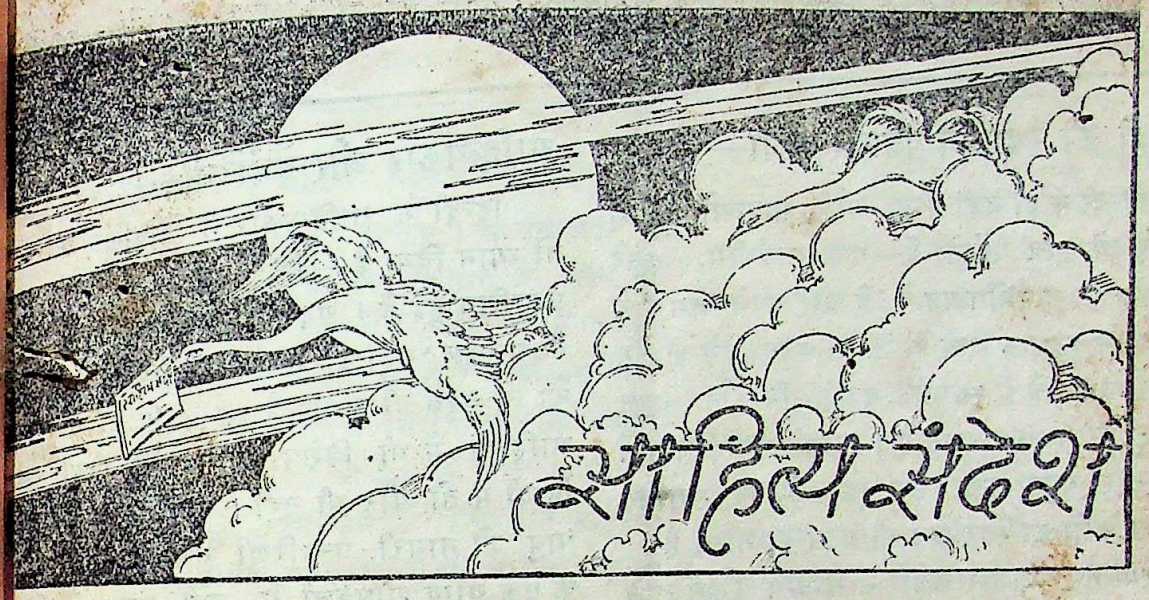

ग १२] आगरा—सितम्बर, १९५० [अङ्क ३

हमारी विचार-धारा

न में रेडियो स्टेशन—

उत्तर प्रदेश में दो रेडियो स्टेशन हैं। एक नऊ, दूसरा इलाहाबाद। इलाहाबाद कभी र प्रदेश की राजधानी था। अंग्रेजों के राज्य में ह राजधानी लखनऊ ले जायी गयी, उसी समय लाहाबाद वालों को बड़ा क्षोभ हुआ—धीरे-धीरे नऊ महत्व में बढ़ता गया, इलाहाबाद घटता । आज भी उ० प्र० में यह राजकीय द्वैतवाद रहा है। संभवतः इसीलिए 'लखनऊ' में रेडियो न होते हुए भी इलाहाबाद में भी एक स्टेशन गया—और सर्वत्र यह प्रसन्नता प्रकट की कि एक सांस्कृतिक केन्द्र में यह रेडियो स्टेशन है। हम यह बाट जोह रहे थे, उसी समय, कोई विशेष प्रभावशाली व्यक्ति किसी पत्र में यह गा कि जब युक्त प्रान्त का पश्चिमी भाग जो कहलाता है, सांस्कृतिक भोजन का भूखा है, पूर्व को कुछ अधिक परोसना हितकर नहीं त होता—तब से आज तक हमने व्यर्थ इसकी चा की।

यथार्थ यह है कि उत्तर प्रदेश की जन-संस्कृति के 'व्रज-अवधी' दो रूप हैं। दोनों को ही पूर्ण पोषण मिलना चाहिए। व्रज का क्षेत्र वैदिक काल से आज तक की समस्त संस्कृतियों का ऐतिहासिक प्रतिष्ठापक रहा है। व्रजभूमि संस्कृत और हिन्दी की प्रमुख क्रीड़ा-भूमि रही है। व्रज के साथ जिस कृष्ण का घनिष्ठ संबंध है वह कृष्ण भारत भर में व्याप्त है—क्या इतिहास, क्या राजनीति, क्या साहित्य, क्या कला सभी में अद्वितीय रहा है। जहाँ तानसेन के गुरु हरिदास ने अपना जीवन बिताया, जहाँ सूर की वाणी प्रस्फुटित हुई, जहाँ विरजानन्द ने वेद का संदेश दिया, जहां जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव, मुसलमान, ईसाई सबका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास है—यथार्थ में जो भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है, वहीं रेडियो स्टेशन न हो तो कितने खेद की बात है। आज व्रज और हिन्दी के क्षेत्र पर हरियाना की बोली लादी जा रही है—यह आज की परि-स्थिति का कितना क्रूर व्यंग है। व्रज में—मथुरा या आगरा में शीघ्र ही सरकार को एक रेडियो स्टेशन खोल देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की स्थानीय पत्रकार कला—

हिन्दी में ही नहीं प्रायः सभी भाषाओं में दो प्रकार के पत्र होते हैं—एक सार्वभौम, दूसरे स्थानीय। सार्वभौम पत्र वे हैं जो अपने 'नगर' से बाहर दूर दूर तक जाते हैं, और बहुत बड़े क्षेत्र में प्रभाव रखते हैं। स्थानीय, इसके विपरीत केवल 'नगर' से ही संबंध रखते है। हमारे सार्वभौम पत्रों का स्तर बहुत ऊंचा उठ चुका है, पर स्थानीय पत्रकार कला का स्तर अब भी बहुत ही नीचा है।

स्थानीय पत्रकार कला से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों का स्वयं भी सांस्कृतिक स्तर ऊंचा नहीं होता। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी ऐसी ही होती है। स्थानीय पत्रों को कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है—उसमें वे अपने गुणों से नहीं जीत सकते तो अपने दुर्गुणों से जीतना चाहते हैं—इन पत्रों की कुछ विशेषतायें सहज ही बतायी जा सकती हैं—

१—इनमें मलिन अथवा अश्लील समाचारों को मोटे अक्षरों में छापा जाता है। इन पत्रों को पढ़कर आपको यह विदित होगा कि चारों ओर दुनियां में बलात्कार, भ्रूण हत्यायें, लूट खसोट, सिर फुटौवल, धोखा-धड़ी, चोरी-चारी ही हो रही है, कोई भला काम नहीं।

२—कुछ भले सम्भ्रान्त नागरिकों पर और अधिक स्थानों पर छींटा कशी अत्यन्त फूहड़ और घृणित।

३—अपने व्यक्तिगत द्वेषों का प्रदर्शन।

४—संपादकीय शिष्टाचार तक का अभाव।

हिन्दी में क्या आज भी ऐसी उत्तरदायित्व हीन अश्लील पत्रकार कला जीवित रहेगी, जिसमें न जन का कल्याण है न देश का, न साहित्य का न साहित्यकार का। इस स्थानीय पत्रकार कला के स्तर को ऊंचा उठाने का कोई न कोई प्रयत्न अवश्य होना चाहिए।

साहित्यकार और दैनंदिनी—

हिन्दी के साहित्यकार ने जीवनियों की ओर तो ध्यान दिया है—कुछेक अच्छी जीवनियां प्रकाशित हुई हैं। यह उद्योग भी अभी हमारी के अनुकूल नहीं हो पाया—पर हिन्दी में का तो बहुत ही अभाव है। इस अंग की ओर साहित्यों में भी विशेष ध्यान नहीं दिया हिन्दी में तो और भी नहीं। स्वर्गीय लक्ष्मीनारा 'मधु' जो नागरी प्रचारिणी सभा के खोज वि के एक योग्य शोधकर्त्ता थे, बड़ी सुन्दर दैनंदि लिखते थे। डा० वासुदेवशरण जी ने वह दैनंदि देखी थी, वे उस पर मुग्ध थे। पर वह भी अ तक प्रकाश में नहीं आसकी। इस दैनंदिनी प्रकाश में न आने का हमें बड़ा क्लेश है। हिन्दी साहित्यकार अपनी दैनंदिनी लिखने लगें तो एक अत्यन्त उपयोगी वस्तु सिद्ध होगी।

साहित्य में पत्र लेखन कला—

परस्पर पत्र लिखना भी एक अनोखी कला है उसमें व्यक्ति का अपना वास्तविक रूप उतर आ है। उच्चकोटि के साहित्यकारों के पत्रों में तो मनो रंजन और भाव गरिमा का ऐसा अद्भुत मे होता है कि कहा नहीं जा सकता। इधर कुछ व में किसी किसी पत्र ने किसी किसी साहित्यकार पत्रों को प्रकाशित करने का क्रम आरंभ किया पर यथार्थ बात तो यह है कि प्रत्येक साहित्यका न तो अच्छा पत्रकार हो सकता है, न उसका प्रत्ये पत्र ही पत्र लेखन की दृष्टि से प्रशंसनीय हो सकता है। आज भी हिन्दी मे एक दो व्यक्ति ही ऐसे जो पत्र को आनन्द और अपने हृदय रस कलापूर्ण बनाते हैं—ऐसे लेखकों के पत्रों पुस्तककार छपवाने की आवश्यकता है। हिन्दी के किसी प्रतिष्ठित पत्र को एक अपना विशेषांक 'पत्रांक' ही निकालने का आयोजन करना चाहिए, जिसमें देश के ही नहीं विदेश के भी प्रसिद्ध पत्र लेखकों का हमें परिचय कराया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दुस्तान' में कहानी प्रतियोगिता—

दैनिक हिन्दुस्तान (दिल्ली) के संचालकों ने हिन्दी की उत्तम कहानियां लिखाने के लिए जो प्रतियोगिता-योजना निकाली है उसकी सराहना सभी साहित्य प्रेमी करेंगे। इसके अनुसार उत्तम कहानियों पर सात पुरस्कार दिए जायेंगे जिसमें सब से बड़ा पुरस्कार पाँच सौ रुपए का है। जो चार कहानियाँ सर्वोत्तम समझी जायँगी उनको 'हिन्दुस्तान टायम्स' की दूसरी प्रतियोगिता में भेजा जायगा जिसमें विश्व की सभी भाषाओं के कहानी लेखक भाग लेंगे। इस प्रतियोगिता का सबसे बड़ा पुरस्कार पंद्रह सौ रुपए का है। इन दोनों योजनाओं का हम स्वागत करते हुए यह आशा करते हैं कि हिन्दी के सभी कलाकार इसमें भाग लेंगे और इस बात की चेष्टा करेंगे कि हिन्दी-प्रतियोगिता में ही नहीं विश्व-प्रतियोगिता में उनकी कहानी सर्व श्रेष्ठ सिद्ध हो।

दस लाख डालर ठुकराए—

जार्ज बर्नार्ड शॉ आज विश्व के एक महान लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। एक अमरीकन कम्पनी ने उन्हें दस लाख डालर देने का प्रलोभन दिया था कि वे एक बयान दे दें जो उनके मरने के समय उनकी ओर से प्रकाशित कर दिया जाय। शॉ महोदय ने इसे अस्वीकार कर दिया। ऐसा महान और निर्लोभी साहित्यकार हाल ही में एक दुर्घटना का शिकार हो गया—यह जानकर किसे दुःख न होगा। दुर्घटना से शॉ की जाँघ टूट गई है—जिसके शीघ्र अच्छे होने की प्रार्थना सभी लोग करेंगे।

प्रान्तीय सरकार के पुरस्कार—

उत्तर प्रदेशीय सरकार के शिक्षा मंत्री माननीय श्रीसम्पूर्णानन्द जी ने गत वर्ष हिन्दी के कुछ लेखकों को पचीस हजार रुपए के पुरस्कार देकर उनका सम्मान बढ़ाया था। यह पुरस्कार लगभग २५-२६ लेखकों को उनकी प्रसिद्ध कृतियों पर दिए गए थे। इस वर्ष भी इसी तरह के पुरस्कार देने की घोषणा की गई है। हमारा अनुरोध है कि इस पुरस्कार के देने में जिस प्रकार प्रान्तीयता को भुलाकर सारे भारत के लेखकों को सम्मानित किया गया है, उसी प्रकार यह भी कैद न रक्खी जायगी कि जो लेखक अपनी पुस्तक भेजेगा उसी को पुरस्कार मिलेगा। श्रेष्ठ ग्रन्थों को स्वयं मंगाकर भी पुरस्कृत करने से सरकार की और भी उदारता मानी जायगी। शिक्षा मंत्री जी ने यह पुरस्कार-प्रणाली निकालकर हिन्दी का बड़ा ही हित किया है। हम उन्हें सारे हिन्दी जगत की ओर से बधाई देते हैं और यह सुझाव देते हैं कि वे पुरस्कारों का निर्णय करने वाली मैंढी का कुछ और विस्तार करदें।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुरस्कार—

काशी नागरी प्रचारणी सभा द्वारा हिन्दी के तीन विद्वान लेखकों को पुरस्कृत करने की अभी घोषणा हुई है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भाषा-विज्ञान के भारतीय विद्वानों में शिरोमणि हैं। श्री वृन्दावनलाल वर्मा आधुनिक काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास और नाटक लेखक हैं। प्रो० राजाराम शास्त्री काशी विद्यापीठ के प्रधानाध्यापक हैं। इनके अतिरिक्त सभा ने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी को उनकी 'आत्मकथा' पर, आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी को 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पर और कविवर दिनकर को 'कुरुक्षेत्र' पर पुरस्कृत किया है। हम इन सभी विद्वानों को हार्दिक बधाई देते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने प्रत्येक कार्य में अपनी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखा है, हमारी दृष्टि में इन विद्वानों को पुरस्कृत करने में भी उसकी, और इन विद्वानों की प्रतिष्ठा बढ़ी है। पुरस्कार प्रदान करने में जब तक शुद्ध दृष्टि नहीं रहती तब तक न तो दाता प्रतिष्ठा पा सकता है, न प्रतिकर्त्ता ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थानी भाषा और साहित्य—

उक्त शीर्षक से एक महत्वपूर्ण पुस्तक पं० मोतीलाल मेनोरिया एम० ए० लिखित हाल ही में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित हुई है। इसकी भूमिका के लेखक ने लिखा है :—

"हिन्दी के विद्वानों में सबसे अधिक भ्रान्ति राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय में फैली हुई है। कुछ इसे हिन्दी की जननी और कुछ हिन्दी की विभाषा (बोली) बतलाते हैं। परन्तु ये दोनों ही धारणाएं भ्रमात्मक हैं। वास्तव में न तो राजस्थानी हिन्दी की जननी है और न हिन्दी की विभाषा। ये दो स्वतन्त्र भाषाएँ हैं।"

"इस भ्रान्ति के कई कारण हैं जिनमें एक यह भी है कि 'हिन्दी' की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं की गई है। वस्तुतः हिन्दी कोई एक भाषा नहीं है, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि सात आठ भाषाओं का समुदाय है जिसमें राजस्थानी भी सम्मिलित है। अतः राजस्थानी को हिन्दी की समुदाय की भाषा अथवा हिन्दी से सम्बन्धित भाषा मानना एक बात है, और हिन्दी की जननी अथवा विभाषा बतलाना दूसरी बात। इस अन्तर को समझ लेने की आवश्यकता है।"

पुस्तक में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। हिन्दी के विद्वानों और विद्यार्थियों को इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा—

उक्त सभा का १९४८-४९ का वार्षिक विवरण हमारे सामने है। इस विवरण का शीर्षक दिया गया है—'अहवाल'। विवरण के प्रारंभ में पहली पंक्ति है 'अहवाल के साल में सभा की प्रवृत्तियाँ अलग अलग विभागों में इस तरह रहीं।' इस वाक्य में 'अहवाल' के साथ 'प्रवृत्तियों' का गठ-बन्धन कितना अस्वाभाविक है इसके कहने की आवश्यकता नहीं। हिन्दुस्तानी प्रचार के नाम पर यह सभा अब भाषा की हत्या न करे तो अच्छा! स्वाभाविक रूप में भाषा का जो विकास हो रहा है उसे रोकने का यह प्रयास हास्यास्पद मालूम होता है।

टंडनजी काँग्रेस के अध्यक्ष—

अखिल भारतीय काँग्रेस के सभापति इस बार श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन चुने गये हैं। हम इसके लिए उन्हें बधाई देते हैं। उनके चुनाव से यह और भी स्पष्ट हो गया है कि देश हिन्दी के पक्ष में है। हमारा विश्वास है कि उनके इस पद पर आने से हिन्दी की प्रगति को बड़ा बल मिलेगा और इसी कारण हमें इस चुनाव से प्रसन्नता है।

एक सरकारी प्रकाशन—

केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन विभाग ने सरकार के तीसरे वर्ष के कार्य की परिचायिका के रूप में 'थर्ड ईयर' नाम से एक अँग्रेजी पुस्तक प्रकाशित की है। यह पुस्तक काफी जानकारी देने वाली है। ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन सचमुच उपादेय है। परन्तु क्या हमारी सरकार ऐसी पुस्तकें अब भी हिन्दी में नहीं छाप सकती? मूल नहीं तो उनका अनुवाद ही हिन्दी में छपना आवश्यक है।

भारतेन्दु अङ्क—

'साहित्य सन्देश' का भारतेन्दु अङ्क १६ सितंबर को भारतेन्दु जी की जयन्ती के अवसर पर निकलना चाहिए था। परन्तु जैसा हमने गतांक में प्रकट किया है—यह विशेषाङ्क अक्टूबर में निकलेगा। हम इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि यह भारतेन्दु जी के अनुरूप ही हो। साहित्य सन्देश के प्रेमचन्द अङ्क, द्विवेदी अङ्क, शुक्ल अङ्क और श्यामसुन्दरदास अङ्क यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। यह अङ्क इन अङ्कों से अच्छा ही होगा। हमें प्रसन्नता है कि इस अङ्क के लिए हमें चोटी के लेखकों का सहयोग प्राप्त हो रहा है। अङ्क परिमित संख्या में ही प्रकाशित होगा और साहित्य सन्देश के ग्राहकों को ही मिल सकेगा। अतः जो सज्जन इसे लेना चाहें—अभी से ग्राहकों में अपना नाम लिखा लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी में रूपक तत्व

डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्०

कामायनी के रूपक तत्व की व्याख्या करने से पूर्व दो प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य हो जाता है:—

रूपक से क्या अभिप्राय है? और कामायनी रूपक है भी या नहीं?

रूपक के हमारे साहित्य-शास्त्र में दो अर्थ हैं। एक तो साधारणतः समस्त दृश्य काव्य को रूपक कहते हैं, दूसरे रूपक एक साम्य-मूलक अलङ्कार का नाम है जिसमें अप्रस्तुत का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता है। इन दोनों से भिन्न रूपक का तीसरा अर्थ भी है जो अपेक्षाकृत अधुनातन अर्थ है और इस नवीन अर्थ में रूपक अँगरेजी के एलिगरी का पर्याय है। एलिगरी एक प्रकार के कथा-रूपक को कहते हैं। इस प्रकार की रचना में प्रायः एक द्वि-अर्थक कथा होती है जिसका एक अर्थ प्रत्यक्ष और दूसरा गूढ़ होता है। हमारे यहाँ इस प्रकार की रचना को प्रायः अन्योक्ति कहा जाता था। जायसी के पद्मावत के लिए आचार्य शुक्ल ने इसी शब्द का प्रयोग किया है। रूपक के इस नवीन अर्थ में वास्तव में संस्कृत के रूपक और अन्योक्ति दोनों अलङ्कारों का योग है। इसमें जहाँ एक ओर साधारण अर्थ के अतिरिक्त एक अन्य अर्थ गूढ़ार्थ रहता है वहाँ अप्रस्तुत अर्थ का प्रस्तुत अर्थ पर श्लेष साम्य आदि के आधार पर अभेद आरोप भी रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूपक अलङ्कार में जहाँ प्रायः एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर अभेद आरोप होता है, वहाँ कथा-रूपक में एक कथा का दूसरी पर अभेद आरोप होता है। यहाँ भी एक कथा प्रस्तुत और दूसरी अप्रस्तुत रहती है। प्रस्तुत कथा स्थूल भौतिक घटनामयी होती है और अप्रस्तुत कथा सूक्ष्म सैद्धान्तिक होती है। यह सैद्धान्तिक कथा दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि किसी प्रकार की हो सकती है। परन्तु इसका अस्तित्व मूर्त नहीं होता। वह प्रायः प्रस्तुत कथा का अन्य अर्थ ही होता है जो उससे ध्वनित होता है, किसी प्रबन्ध काव्य की प्रासंगिक कथा की भाँति जुड़ा हुआ नहीं होता।

इस प्रकार इस विशिष्ट अर्थ में रूपक से तात्पर्य एक ऐसी द्वि-अर्थक कथा से है जिसमें किसी सैद्धान्तिक अप्रस्तुतार्थ अथवा अन्यार्थ का प्रस्तुत अर्थ पर अभेद आरोप रहता है।

अतएव, क्या कामायनी रूपक है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें यह देखना है कि क्या कामायनी की कथा में प्रस्तुतार्थ के अतिरिक्त किसी सैद्धान्तिक अप्रस्तुतार्थ की अन्तर्धारा भी वर्तमान है। इस प्रश्न के उत्तर का संकेत प्रसादजी ने स्वयं कामायनी के आमुख में दिया है। "आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास.....। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है। × × ×

यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। × ×

यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ का भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।..... इन सभी के आधार पर कामायनी की सृष्टि हुई है।"

इसका अभिप्राय यह है कि कामायनी को कवि ने मूलतः एक ऐतिहासिक काव्य के रूप में ही लिखा है, परन्तु इसकी कथा में रूपक की सम्भावनाएँ निहित हैं और यदि इसे रूपक भी मान लिया जाए तो कवि को वह अस्वीकार्य नहीं होगा। अर्थात् मूल रूप से नहीं तो गौण रूप से कामायनी में रूपक तत्व निश्चय ही वर्तमान है।.....इसके अतिरिक्त कामायनी के पात्रों का प्रतीकमय साँकेतिक व्यक्तित्व उसकी मुख्य घटनाओं का श्लेषगर्भित गूढ़ार्थ, दोनों ही इस मत की पुष्टि करते हैं। अतएव कामायनी में रूपक तत्व की स्थिति के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता। वह निश्चय ही है, और काफी स्पष्ट है।

कामायनी की व्यक्त कथा में आदिम पुरुष मनु और उसकी सहचरी आदिम नारी श्रद्धा के संयोग से मानव सृष्टि के विकास का वर्णन है। [अहङ्कार की क्लेशमयी स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति तक—मनोमय कोश से आनन्दमय कोश तक—] उसका अप्रस्तुत पक्ष है। कथा का प्रस्तुत पक्ष ऐतिहासिक—पौराणिक है और अप्रस्तुत पक्ष मनोवैज्ञानिक—दार्शनिक है और इस प्रकार दोनों पक्षों का निकट सम्बन्ध है जो इस कथा की एक विशेषता है, अन्यथा रूपकों में साधारणतः इस तरह का निकट सम्बन्ध रहता नहीं है।

पहले पात्रों को लीजिए:—कामायनी के प्रमुख पात्र हैं मनु, श्रद्धा और ईडा, इनके अतिरिक्त अन्य पात्र हैं, मनु-श्रद्धा का पुत्र कुमार और असुर-पुरोहित आकुल और किलात। काम और लज्जा अशरीरी पात्र है, वे मूलतः ही सांकेतिक हैं। मनु, जैसा कि स्वयं प्रसादजी ने लिखा है, मन का—मनोमय कोश में स्थित जीव का प्रतीक है। एक स्थान पर व्याकरण में मनु और मन को एक रूप माना गया है। मन्यते अनेन इति मनुः। जिसके द्वारा मनन किया जाये वह मन है वही मनु है। मनन से अभिप्राय यहाँ चेतना (Consciousness) से है उसका मूल लक्षण है अहंकार—'मैं हूँ' की भावना जो अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों में अपनी अभिव्यक्ति करती रहती है। कामायनी के मनु के व्यक्तित्व का स्थायी आधार निस्संदेह यही अहंकार है:—

मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यों,
लगा गूँजने कानों में।
मैं भी कहने लगा, मैं रहूँ,
शाश्वत नभ के गानों में॥
(आशा)

× × ×

किन्तु सकल कृतियों की,
अपनी सीमा हैं हम ही तो।
पूरी हो कामना हमारी,
विफल प्रयास नहीं तो॥
(कर्म)

× × ×

यह जीवन का बरदान मुझे,
दे दो रानी अपना दुलार।
केवल मेरी ही चिन्ता का,
तब चित्त वहन कर सके भार॥
यह जलन नहीं सह सकता मैं,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व।
इस पञ्चभूत की रचना में,
मैं रमण करूँ बन एक तत्व॥

मनन-शीलता—अर्थात् निरन्तर संकल्प-विकल्प अहंकार के सञ्चारी हैं। उपनिषदों में संकल्प-विकल्प को मन की प्रजा कहा गया है। प्रथम दर्शन के समय हमारा मनु के इसी मननशील, संकल्प-विकल्पमय रूप से साक्षात्कार होता है। मनु के व्यक्तित्व में आदि से अन्त तक भूत भविष्यत्, प्रकृति, परम तत्व आदि के चिन्तन और तज्जन्य संकल्प विकल्प का प्राधान्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी का दूसरा प्रमुख पात्र है श्रद्धा। श्रद्धा, प्रसादजी के अपने शब्दों में हृदय का प्रतीक है। श्रद्धां हृदस्थ याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु। (ऋग्वेद) कामायनी में स्थान-स्थान पर उसके इस रूप की स्पष्ट प्रतिकृति मिलती है :—

हृदय की अनुकृति वाह्य उदार,
एक लम्बी काया, उन्मुक्त ॥

वह गन्धर्वों के देश में हृदय-सत्ता का सुन्दर सत्य खोजने के लिए आती है। उसके व्यक्तित्व के मूल तत्व हैं एक ओर सहानुभूति, दया, ममता, मधुरिमा, त्याग तथा क्षमा और दूसरी ओर अगाध विश्वास, उत्साह, प्रेरणा, स्फूर्ति आदि जो हृदय के कोमल और सबल पक्षों की विभूतियाँ हैं। शुक्लजी ने इसलिए श्रद्धा को विश्वासमयी रागात्मिक वृत्ति कहा है। श्रद्धा को काम और रति की पुत्री माना गया है, और वह इस संसृति में प्रेम-कला का सन्देश सुनाने के लिए अवतरित हुई है :—

यह लीला जिसकी विकस चली,
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।
उसका संदेश सुनाने को,
संसृति में आई वह अमला ॥

तीसरा मुख्य पात्र है इडा जो स्पष्टतः बुद्धि की प्रतीक है। प्रसादजी ने व्यक्त रूप से उसके व्यक्तित्व का प्रतीकात्मक चित्र अंकित किया है :—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
.....भरी ताल ॥

उपर्युक्त चित्र में बुद्धि के तर्क, भौतिक ज्ञान विज्ञान, त्रिगुण आदि सभी तत्वों का अवयव रूप में समावेश कर दिया गया है। वैसे भी उसका चरित्र एकान्त बौद्धिक है। वह हृदय की विभूतियों द्वारा वञ्चित व्यवसात्मिका बुद्धि द्वारा अनुशासित है। जीवन की अखंडता के स्थान पर वह वर्ग-विभाजन और अभेद के स्थान पर भेद की व्यवस्था करती है।

अब गौण पात्र शेष रह जाते हैं :—सबसे पहले श्रद्धा-मनु का पुत्र कुमार आता है। उसका कोई विशेष-व्यक्तित्व नहीं है, यहाँ तक कि उसका नामकरण संस्कार भी नहीं किया गया। वह नव मानव का प्रतीक है जो अपने पिता से मनन शीलता, माता से श्रद्धा अर्थात् हार्दिक गुण और इड़ा से बुद्धि ग्रहण कर पूर्ण मानवत्व को प्राप्त करता है। असुर पुरोहित आकुल और किलात आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। ज्यों ही मनु (मन) पाप (हिंसा-यज्ञ) की ओर आकृष्ट होता है, आकुलि किलात (आसुरी वृत्तियाँ) उसको दुष्प्रेरणा देने के लिए तुरन्त ही उपस्थित हो जाते हैं और उसे दुष्कर्म में प्रवृत्त करते हैं। फिर जब मनु के विरुद्ध विद्रोह होता है तो ये ही विद्रोहियों के नेता बन कर सामने आते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि आसुरी प्रवृत्तियाँ पहले तो मन को पाप कर्म में प्रवृत्त करती हैं फिर जब उसे उसके लिए कष्ट भोगना पड़ता है तो ये आसुरी प्रवृत्तियाँ उलटे उसके कष्ट में योग देती हैं।

इनके अतिरिक्त देव, श्रद्धा का पशु, और वृषभ और सोमलता के भी निश्चय ही सांकेतिक अर्थ हैं। देव इन्द्रियों के प्रतीक हैं। देवों की निर्वाध आत्म-तुष्टि का अर्थ है, इन्द्रियों की निर्बाध तुष्टि :

अरी उपेक्षा भरी अमरते।
री अतृप्त निर्बाध विलास ॥

श्रद्धा का पशु भी जिसका नाम तथा जाति आदि का वर्णन तक नहीं दिया हुआ, स्पष्टतः एक प्रतीक है वह सहज जीव दया, करुणा, आधुनिक अर्थ में अहिंसा का द्योतक है—

एक माया आ रहा था पशु अतिथि के साथ
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ।

वृषभ तो भारतीय अनश्रुति में अनादि काल से धर्म का प्रतिनिधि माना जाता रहा है।

था सोम लता से आवृत
वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमलता का सांकेतिक अर्थ है भोग। इस प्रकार सोमलता से आवृत वृषभ का अर्थ हुआ भोग संयुक्त धर्म जिसका उत्सर्ग करके मानव चिरानन्द-लीन हो जाता है।

अब तीन-चार प्रतीक और रह जाते हैं जल-प्लावन, त्रिलोक और मानसरोवर। जल-प्लावन भारत के ही नहीं पृथ्वी के इतिहास की अत्यन्त प्राचीन घटना है। हमारे दर्शन-साहित्य में इसको प्रतीक रूप में ग्रहण कर इसका सांकेतिक अर्थ भी किया गया है। जब मन अबाध इन्द्रियलिप्सा का दास हो जाता है अर्थात् जब मन ऊपर विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश की ओर बढ़ने के स्थान पर निम्नतम अन्नमय कोश में ही रम जाता है तो चेतना पूर्णतः जल-माया में डूब जाती है।

त्रिलोक में प्राचीन त्रिपुरदाह के रूपक से प्रेरणा ग्रहण की गई है, और इसका प्रतीकार्थ अत्यन्त व्यक्त है। तीन लोक-भाव लोक, कर्म लोक तथा ज्ञान लोक चेतना की तीन अङ्गभूत प्रवृत्तियाँ भाव वृत्ति, कर्म वृत्ति और ज्ञान वृत्ति के प्रतीक हैं। जब तक ये तीनों वृत्तियां पृथक् पृथक् कार्य करती हैं मन अशांत और उद्विग्न रहता है—

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।

परन्तु जब श्रद्धा के द्वारा इनका समन्वय हो जाता है तो मन समरसता की अवस्था को प्राप्त कर लेता है—

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

मानसरोवर जिसे शतपथ ब्राह्मण में मनोरव-सर्पण कहा गया है

'तदप्यतेदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमिति'

कैलाश शिखिर पर वह स्थान है जहां मनु श्रद्धा की सहायता से पहुँचते हैं और अपने मानसिक क्लेश से मुक्ति पाते हैं। यह समरसता की अवस्था है—मानसिक समन्वय की अवस्था जिसमें भाव, कर्म, और ज्ञान में पूर्ण सामंजस्य हो जाता है।

मानसरोवर या मानस (कामायनी में मानस शब्द का प्रयोग है) इसी समरसता की अवस्था का प्रतीक है। यह मानस कैलाश शिखर पर स्थित है और कैलाश पर्वत आनन्द मय कोश का प्रतीक हैं।

कामायनी की प्रस्तुत कथा में मनु की कैलाश स्थित मानसरोवर यात्रा का वर्णन है जहाँ पहुँचकर मनु के समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं और वे चिरानन्दमग्न हो जाते हैं। रूपक को हटाकर यह मन का समरसता की अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न है जिसके उपरान्त मन के समस्त भौतिक और आध्यात्मिक क्लेश नष्ट हो जाते हैं और वह पूर्णानन्दलीन हो जाता है। पारिभाषिक शब्दावली में यह मनोमय कोश में स्थित जीव की आनन्दमय कोश में स्थित होने के लिए साधना है। यह आनन्दमय कोश पिंडांड-रूप पर्वत का उच्चतम शिखर कैलाश है। कामायनी की रचना के समय यह वैदिक रूप स्पष्टतः प्रसाद जी के मन में विद्यमान था।

अपने प्रकृतरूप में मनु एकांत मननशील तथा अहंकार-लीन हैं। वे अहंकारमय निष्क्रिय चिंतन मनन के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते। ज्यों ही काम की प्रेरणा से काम और रति की पुत्री श्रद्धा से मनु का संयोग होता है, उनमें जीवन के प्रति आकर्षण तथा स्फूर्ति का उदय होता है। श्रद्धा के साहचर्य से मनु के अहंकार का सम्मार्जन होता है, वह स्व से पर की ओर बढ़ता है। बीच बीच में उनका अहंकार उभरता है और आसुरी वृत्तियों के प्रतीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकुलि किलात की सहायता से वे पशु-यज्ञ कर सोमरस की प्राप्ति करते हैं। परन्तु श्रद्धा उसका तीव्र विरोध करती है, और कम से कम कुछ समय के लिए उन्हें उसका अनौचित्य स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार जब तक मनु श्रद्धा के प्रभाव में रहते हैं उनके अहं का संस्कार होता रहता है। परन्तु यह स्थिति अधिक नहीं रहती, मनु का अहंकार फिर प्रबल हो जाता है :

यह जलन नहीं सह सकता मैं,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व।
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।

और वे श्रद्धा से विरत होकर फिर अपने में खो जाते हैं। श्रद्धा से विमुख होने पर मनु की वृत्तियां पुनः अस्तव्यस्त हो जाती हैं और वे जीवन पथ पर भटकते हुए सारस्वत प्रदेश पहुँचते हैं। सारस्वत प्रदेश जीव के निम्नतर कोश प्राणमय कोश का प्रतीक है। यहाँ उनका साक्षात्कार इडा से होता है जो उन्हें बुद्धिवाद की दीक्षा देकर भौतिक जीवन की ओर प्रेरित करता है :

जो बुद्धि कहे उसको न मान कर
फिर नर किसकी शरण जाय।

× × ×

यह प्रकृति परम रमणीय अखिल
ऐश्वर्यभरी शोधक-विहीन।
तुम उसका पटल खोलने में
परिकर कस कर बन कर्मलीन।
सबका नियमन शासन करते
बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता।

इडा के प्रभाव में मनु बुद्धि बल से प्राकृतिक साधनों को एकत्र कर शासन-व्यवस्था करते हैं, कर्म-विभाजन होता है, जीवन में भौतिक संघर्ष का सूत्रपात होता है। मनु इन सबके नियामक हैं परन्तु मनु का अहंकार इतने से संतुष्ट नहीं होता—इडा पर भी तो उनका अधिकार होना चाहिए। वे उसके लिए प्रयत्नशील होते हैं परन्तु यहां उन्हें घोर विफलता होती है। इस अनधिकार चेष्टा से वे रुद्र के कोपभाजन बनते हैं। एक बार फिर प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है, मनु का विद्रोही प्रजा के साथ युद्ध होता है जिसमें मनु की पराजय होती है।

इसका संकेत अर्थ यह हुआ कि मन अपने प्रकृत रूप में केवल मननशील तथा अहंकारी है। श्रद्धावान होकर ही, और श्रद्धा का उदय मन में रागवृत्ति के प्राधान्य के कारण ही सम्भव है, उसका उचित दिशा में विकाश-संस्कार होता है। श्रद्धा विश्वासमयी रागात्मिका प्रकृति का नाम है। श्रद्धा-समवेत मन में अपने प्रति विश्वास और जीवन के प्रति राग का उदय होता है। यों समय-समय पर उसके आसुरी संस्कार निश्चय ही उभरेंगे। उसका सहज भोगवाद ऊपर आएगा परन्तु जब तक वह श्रद्धावान है तब तक इन पर नियंत्रण रहेगा और उसके अहं का संस्कार होता रहेगा। परन्तु ज्यों ही मन श्रद्धा को त्याग देगा वह नीचे प्राणमय कोश में पहुँच जायगा, और बुद्धि के चक्र में पड़ जायगा। बुद्धि व्यवसायात्मिक वृत्ति है, वह उसको संघर्ष की निरन्तर प्रेरणा तो दे सकती है परन्तु सुख नहीं दे सकती। अहंकार का संस्कार करने के स्थान पर वह उसे और भी उत्तेजित करती है—अन्त में एक स्थिति ऐसी आ जाती है कि मन बुद्धि पर पूर्ण एकाधिकार करने के लिए लालायित हो उठता है। यहाँ उसका पूर्ण पराभव होता है और एक प्रकार का मानसिक प्रलय हो जाता है।

इस पराभव के उपरान्त मनु को बड़ी ग्लानि होती है। इतने में ही श्रद्धा के साथ उनका फिर संयोग होता है। श्रद्धा उन्हें ग्लानि और क्लेश का परित्याग कर फिर से कर्मशील होने के लिए उत्साहित करती है। इसी बीच में उसका साक्षा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्कार इडा से होता है। वह अति बुद्धिवादी होने के लिए इड़ा की भर्त्सना करती है। अन्त में उसे क्षमा कर अपने पुत्र कुमार को उसे सौंप देती है, और आप मनु को साथ लेकर चल देती है। मनु और श्रद्धा दोनों हिमालय के शिखरों पर चढ़ते-चढ़ते एक ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ से कि त्रिदिक् विश्व के तीन पृथक् ज्योतिष्पिंड उन्हें दिखाई पड़ते हैं। श्रद्धा मनु को इनका रहस्य समझाती है—"ये तीन ज्योतिष्पिंड भाव-लोक, कर्मलोक और ज्ञान लोक हैं। इनके पार्थक्य के कारण संसार में विडम्बना फैली हुई है।" ऐसा कहते कहते श्रद्धा की मुस्कान ज्योतिरेखा बनकर इन तीनों लोकों में दौड़ जाती है—ये तीन लोक मिलकर एक हो जाते हैं, और बस फिर मनु के मन के क्लेश और विश्व की सारी विडम्बनाओं का अन्त हो जाता है। श्रद्धायुत मनु पूर्ण आनन्द लीन हो जाते हैं।

इसका प्रतीकार्थ इस प्रकार है : सुखवाद, और बुद्धिवाद के अतिचार के फलस्वरूप मन का पूर्णतः पराभूत होना स्वाभाविक ही था। इससे मन को भयंकर ग्लानि और निर्वेद होता है और वह फिर जीवन से पलायन करता है। इस स्थिति से श्रद्धा ही उसका निस्तार करती है। श्रद्धा-संयुत मन फिर उचित दिशा की ओर विकासशील होता है और एक ऐसी स्थिति पर पहुँच जाता है जहाँ उसे आत्म-साक्षात्कार हो जाता है, और श्रद्धा की प्रेरणा से उसे अपने पराभव का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। वह अनुभव करता है कि उसकी विडम्बनाओं का एक मात्र रहस्य यह है कि उसकी तीनों मूल वृत्तियों में सामञ्जस्य नहीं है, उसकी भाव वृत्ति, ज्ञानवृत्ति और कर्मवृत्ति (to feel, to know, to will) तीनों ही एक दूसरे से पृथक् रह कर क्रियाशील हैं। ज्यों ही श्रद्धा के द्वारा इन तीनों का पूर्ण सामञ्जस्य हो जाता है, मन समरसता की अवस्था प्राप्त कर पूर्णानन्द में लीन हो जाता है। यह आनन्द शैव योगी का आत्मानन्द है, जो अपने भीतर आत्म-साक्षात्कार द्वारा प्राप्त होता है, सगुण भक्त का आनन्द नहीं है जो चराचर में व्याप्त प्रभु के दर्शन करके प्राप्त होता है। श्रद्धा का अपने पुत्र कुमार को इडा को सौंपना भी इसी सामञ्जस्य का प्रतीक है। मनु और श्रद्धा का आत्मज होने के कारण मानव जन्मतः मननशीलता और श्रद्धा से युक्त है इडा का निरीक्षण उसके बुद्धि तत्व को भी परिपक्व कर मानवत्व को पूर्ण कर देता है।

साधारणतः कथा का अन्त यहीं होना चाहिए था। परन्तु इस प्रकार इडा, कुमार और सारस्वत प्रदेश वासियों की कहानी अधूरी रह जाती है। अतएव उसके पर्यवसान रूप में इडा, कुमार और सारस्वत प्रदेश वासियों के भी मानसरोवर जाने का वर्णन किया गया है जहाँ वे सोमलता से मण्डित वृषभ का उत्सर्ग कर मनु से सामञ्जस्य की दीक्षा ले लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मूल कथा से इस प्रसंग का सहज सम्बन्ध नहीं है परन्तु संकेत अर्थ इसका भी सर्वथा स्पष्ट है और वह यह है कि समष्टि-रूप में भी मानव जीवन की परिणति आनन्द में ही है। सोमलता अर्थात भोग और वृषभ अर्थात् धर्म (कर्म) का उत्सर्ग कर समरस मानव चिरानन्द मग्न हो जाता है।

इस प्रकार कामायनी निस्सन्देह ही रूपक है। प्रसादजी ने कथा के मूल तत्वों को ऐतिहासिक मानते हुए उनके आधार पर ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना का उपक्रम किया था। परन्तु कथा का सांकेतिक रूप उनके मन में आरम्भ से अन्त तक वर्तमान था और मन के विकास का प्राचीन वैदिक रूपक उनको वैसे भी अत्यन्त प्रिय था।

परन्तु प्रसादजी ने इसे सर्वथा प्राचीन रूप में ही ग्रहण नहीं किया। आधुनिक देशकाल का प्रभाव भी उस पर अत्यन्त व्यक्त है। मनु के जीवन की विडम्बना आधुनिक जीवन की विडम्बना है। इस विडम्बना का मूल कारण यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हमारी भाववृत्ति अर्थात् संस्कृति जिसमें धर्म, नैतिकता और कला साहित्य आदि आते हैं, कर्म वृत्ति अर्थात् राजनीति जिसके अन्तर्गत आर्थिक व्यवस्था आदि भी समाविष्ट हैं, और ज्ञान वृत्ति अर्थात् दर्शन-विज्ञान तीनों एक दूसरे से पृथक हैं। उनमें सामञ्जस्य न होने से जीवन आन्तरिक और बाह्य संघर्षों और विषमताओं से आक्रान्त है। व्यक्तिवादी मनु आधुनिक जीवन के व्यक्ति-परक भौतिक सुखवाद का प्रतीक है जिसका कि व्यक्ति-रूप पूँजीवाद में मिलता है। वह इड़ा अर्थात् विज्ञान की सहायता से जीवन के सम्पूर्ण सुखों को अपने में केन्द्रित करने का असफल प्रयत्न करता है। अन्त में वह अनुभव करता है कि श्रद्धा के बिना जीवन की विडम्बना का अन्त नहीं। यह श्रद्धा अर्थात् रागात्मिका वृत्ति गांधीजी की अहिंसा और पाश्चात्य दार्शनिकों की मानव-भावना की पर्याय है। आज इसी मानव-भावना की प्रेरणा से ही इच्छा, ज्ञान, क्रिया अथवा संस्कृति, विज्ञान और राजनीति में सामञ्जस्य स्थापित हो सकता है। जब इन तीनों के पीछे मानव भावना की सद्प्रेरणा रहेगी तो इनका समन्वय स्वतः ही हो जायगा। आज के पूँजीवाद से पीड़ित समाज की विडम्बनाओं का समाधान यही मानववाद है जिसका एकान्त भौतिक रूप समाजवाद और आध्यात्मिक रूप गाँधीवाद है।

आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र के आचार्यों ने भी आज की विषमताओं का यही समाधान बताया है। उनका निदान यह है कि इस युग का मानव अनेक प्रकार के सामाजिक, ऐतिहासिक, व्यक्त अव्यक्त कारणों से स्वरति की भावना से आक्रान्त है। स्वरति भयंकर रोग है जिसके कारण उसका मानसिक स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट हो गया है। मानसिक स्वास्थ्य मन की भाव-वृत्ति, कर्म वृत्ति और ज्ञान-वृत्ति के समन्वय का नाम है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य के नष्ट होने का अर्थ यह है कि ये तीनों वृत्तियाँ पृथक् दिशाओं में क्रियाएँ कर रही हैं। इस सामञ्जस्य को पुनः स्थापित करने के लिए अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि रति भावना को स्व से निकाल कर पर की ओर प्रेरित किया जाये। यह उन्नयन क्रिया है इसके पूर्ण हो जाने पर मन समरसता की अवस्था (Mental equilli-brium) को प्राप्त कर लेता है। आज के मानव जीवन की समस्या का यही समाधान है।

एक प्रश्न और रह जाता है : यह रूपक कहाँ तक संगत है ? तो, जहाँ तक कि मूल कथा का सम्बन्ध है, रूपक सामन्यतः संगत और स्पष्ट है, उसमें कोई विशेष सैद्धान्तिक असंगति नहीं है। हाँ, कथा के सूक्ष्म अवयवों में पूर्ण संगति पूरी तरह नहीं बैठती। जब मनु मानव मन अथवा मनोमय कोश में स्थित जीव का प्रतीक है तो उसके पुत्र कुमार को नव मानव का प्रतिनिधि मानकर भी संगति नहीं बैठती क्योंकि इस तरह पिता-पुत्र में लगभग एकही प्रतीकार्थ की पुनरावृत्ति हो जाती है। प्रसादजी ने इस असङ्गति का अनुभव किया था, इसलिए आनन्द लोक की यात्रा पर जाने से पूर्व श्रद्धा कुमार को छोड़ जाती है। इसी प्रकार सारस्वत प्रदेश वासियों के साथ इडा और कुमार का चिरानन्द-लीन मनु के पास वृषभ आदि का उत्सर्ग करने के लिए जाना भी अप्रस्तुतार्थ में एक जोड़ जैसा ही है। इसकी सफाई में दो कारण दिये जा सकते हैं। एक कारण तो यह है कि प्रस्तुत कथा को पूरी तरह अप्रस्तुतार्थ से जकड़ देना ठीक नहीं है आखिर प्रस्तुत कथा को थोड़ा सा तो स्वतन्त्र अवकाश देना ही चाहिए। दूसरा यह है कि कामायनी की कथा का विकास ही असंगतियों से भरा हुआ है, उसमें ही काफी जोड़ लगे हुए हैं। अतएव उपर्युक्त असङ्गतियों का सम्बन्ध बहुत कुछ कथा की असङ्गतियों से भी है। इनके अतिरिक्त आचार्य शुक्ल ने दो तात्विक असङ्गतियों की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत किया है। एक तो यह कि जब इड़ा की प्रेरणा से मनु कर्म विस्तार करते हैं अर्थात् जब बुद्धि ही कर्म व्यापार का कारण है तो ज्ञान लोक से पृथक् कर्म लोक का अस्तित्व किस प्रकार सङ्गत हो सकता है? दूसरे रति और काम की दुहिता तथा मानव करुणा, सहानुभूति आदि की समानार्थी होने के कारण श्रद्ध की स्थिति शुद्ध भाव की स्थिति है, उसका अस्तित्व एकान्त भावात्मक है। ऐसी परिस्थिति में उसकी स्थिति भावलोक से नहीं, वरन् भाव, कर्म, ज्ञान तीनों से ही परे कैसे हो सकती है? इनमें से पहली आपत्ति तो अधिक सङ्गत नहीं है। वैसे तो मानव मन इतना जटिल है कि उसकी सभी वृत्तियाँ परस्पर अनुस्यूत और गुम्फित हैं फिर भी दर्शन तथा मनोविज्ञान में इच्छा ज्ञान और क्रिया का भेद तो सर्वथा स्वीकृत है ही। भारतीय दर्शन में भक्ति, ज्ञान और कर्म मार्ग का पृथक् विवेचन प्रायः आरम्भ से ही होता आया है। इसलिए कर्म के पीछे बुद्धि की प्रेरणा होने का यह अभिप्राय नहीं है कि इन दोनों में कोई तत्वगत पार्थक्य ही नहीं है।

श्रद्धा-विषयक आपत्ति अधिक गम्भीर है। साधारण दृष्टि से निस्संदेह ही श्रद्धा एक भाव है और भाव, ज्ञान और क्रिया के पृथक वर्णन के समय भाव से भिन्न उसका अस्तित्व वास्तव में समझ में नहीं आता। परन्तु प्रसादजी ने कामायनी की सम्पूर्ण कथा की धुरी श्रद्धा को ही बनाया है। श्रद्धा का अर्थ है आस्तिक बुद्धि (भावना): आस्तिक बुद्धि इति श्रद्धा। आस्तिकता का अर्थ है अस्तित्व में सहज आस्था। इस प्रकार आस्तिक भावना जीवन की एकांत मूलगत भावना है इसी के द्वारा जीवन का सञ्चालन होता है। प्रसादजी ने इसे इसी रूप में ग्रहण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रसाद की श्रद्धा में रागतत्व की अत्यन्त प्रधानता है परन्तु यह स्वाभाविक है। अस्तित्व में सहज आस्था स्वभावतः ही राग-प्रधान होनी चाहिए, जीवन के प्रति सहज आस्था निस्सन्देह ही रागमयी होनी चाहिए। परन्तु फिर भी तत्वरूप में श्रद्धा कोरी भावुकता नहीं है—आस्तिक बुद्धि की पर्याय होने के कारण उसमें अस्तित्व की तीनों अभिव्यक्तियों इच्छा, ज्ञान, क्रिया की स्थिति है। प्रसादजी ने भी श्रद्धा को कोरी भावुकता के प्रतीक रूप में चित्रित नहीं किया—वह वास्तव में जीवन की प्रेरणा की प्रतीक है। इसके विपरीत भाव-लोक कोरी भावुकता—इच्छा की रङ्गीन क्रीड़ाओं का प्रतीक है। और स्पष्ट शब्दों में—भावलोक केवल इच्छा का प्रतीक है और श्रद्धा अर्थात् जीवन के अस्तित्व में आस्था विश्वासयुक्त जीवनेच्छा है।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल,
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल।

× × ×

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद।

× × ×

एक तुम, यह विस्तृत भू खण्ड
प्रकृति वैभव से भरा अमन्द
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द।

पूर्व तथा पश्चिम के धर्मशास्त्रों तथा दर्शनों में भी श्रद्धा की यही स्थिति स्वीकार की गई है। धर्म अर्थ काम मोक्ष सभी के लिए श्रद्धा (फेथ) को आधारभूत वृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। उसके बिना मोक्ष (परमानन्द) की प्राप्ति सम्भव नहीं है। मनोविश्लेषण शास्त्र के अनुसार श्रद्धा की स्थिति वही है जो युग प्रतिपादित जीवनेच्छा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनय-पत्रिका में तुलसी की भक्ति

श्री कृष्णचन्द्र वर्मा एम० ए०

प्रेम की अन्तर्वृत्ति जब समग्र रूप से निर्मलतम हो ईश्वरोन्मुखी होती है, तो वही भक्ति कहलाने लगती है। ईश्वर में परा-अनुरक्ति कहने का तात्पर्य ही यह है कि हमारा प्रेम भाव उस जगदाधार परमात्मशक्ति के प्रति इतना गहरा हो, इतना उन्मेष-पूर्ण हो और इतना उत्कट हो जितना जगत के किसी अन्य उपादान में न हो सके, और विनय-पत्रिका में गोस्वामीजी की भक्ति भावना जिस रूप में प्रतिफलित हुई है वह इससे भिन्न नहीं।

भक्तिशास्त्र के आचार्यों (नारद और शाण्डिल्य) के भक्ति-सूत्रों में भक्ति की दो अवस्थाएँ बताई गई हैं। उसके आधार पर गोस्वामीजी की भक्ति-साधन अवस्था की भक्ति अर्थात् गौणीभक्ति कही जा सकती है। पराभक्ति—जो सिद्ध अवस्था की भक्ति है—का लेश भी उनमें नहीं। विनयपत्रिका ही क्या अपनी समस्त रचनाओं में गोस्वामीजी एक भक्त और साधक के रूप में ही दृष्टिगत होते हैं। वे ब्रह्मानुभूति में सिद्ध हुए सिद्ध भक्त कबीर के समान हमारे सामने कभी भी नहीं आते हैं। वे अपने को बार-बार अज्ञानांधकार में भटकने वाला मोह और विषयों में आसक्त क्षुद्रातिक्षुद्र जीव मानते हैं। कलिमलग्रसित, संतापों और विकारों में उलझा हुआ अपने को वे कितने ही बार घोषित करते हैं, और सो भी डंके की चोट पर—

जानत हू निज पाप जलधि जिय,
जलसाकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि,
गुन गिरि सम रज ते निदरौं॥

आत्मदोषों की ऐसी निष्छद्म स्वीकारोक्ति ही सच्चे साधकों और भक्तों का संबल है। यह भावना तो वह परिपुष्ट बीज है, जो अबाध-रूप से अंकुरित हो सुदृढ़ भक्ति-वृक्ष के विकास का निश्चित प्रमाण है। आत्मदोषों के उद्घाटन से तो विनय-पत्रिका भरी पड़ी है। उनके पापों का तो कोई परिमाण नहीं, कोई सीमा नहीं—

मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै।

और साथ ही कवि की यह उक्ति भी देखने योग्य है :—

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि,
यही ख्याल उर अनिहैं।
चलिहैं छूटि पुञ्ज पापिन के,
असमञ्जस जिय जनिहैं॥

भक्ति शास्त्रों में इस साधनावस्था की भक्ति-गौणी—के दो विभेद बतलाये जाते हैं जिन्हें वैधी और रागानुगा कहा गया है। तुलसी और सूर ऐसे भक्तों की भक्ति भावना का विवेचन करते समय हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि ये भक्त जिस प्रकार काव्य-शास्त्र के विधि विधानों से नियंत्रित नहीं हुए उसी प्रकार इनकी भक्ति भी भक्ति-शास्त्र की रीति नीतियों से अनुशासित नहीं हुई। इन भक्तों के भगवत्प्रेम विषयक उद्गार हृदय से निकल कर सीधे हृदय पर आघात करते हैं, अतः सामान्यतया इनकी भक्ति रागात्मिक ही कही जायगी। सूर के शब्दों में यही सुधासार भक्ति है जो प्रत्येक भावुक को अपनी पीयूषधारा में स्नान कराती चलती है। गोस्वामीजी की भक्ति-वृत्ति का निर्देशक यह पद देखिये—

जानकी जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै राम सीय पद परि
हरि अब न कहूँ चलि जैहौं॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहु सुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु पद विमुख न पैहौं ।
मन समेत या तन के बासिन
यहै सिखावन दैहौं ॥
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं,
रसना और न गैहौं ।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं,
सीस ईस ही नैहौं ॥
नातो नेह नाथ सौं करि सब
नातो नेह बहैहौं ।
यह छरभार ताहि तुलसी जग
जको दास कहैहौं ॥

कुछ स्थानों पर गोस्वामी जी ने आरती, नाम-जप आदि कुछ वैधी भक्ति के अंगों का भी उल्लेख किया है, उदाहरणार्थ 'हरति सब आरती, आरती राम की, दहति दुख दोष निर्मूलनी काम की'। आरती के ६ अंगों—धूप, दीप, नैवेध, ताम्बूल, आरती, शयन—का भी उन्होंने संकेत किया है। राम नाम के जप पर बल देते हुए भी अनेक पद लिखे हैं पर ऐसे पदों की संख्या अल्प है और इन पदों की रचना का उद्देश्य भी रागत्मिका भक्तिवृत्ति का पोषण करना ही है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार भक्ति के चार प्रकार कहे जाते हैं—तामसी, राजसी, सात्त्विकी और निर्गुणा। गोस्वामी जी की भक्ति निर्गुणा है। इस भक्ति की साधना करने वाला भक्त कुछ भी नहीं चाहता, मुक्ति भी उसका काम्य नहीं—

चहौं न सुगति, सुमति, संपति
कछु रिधि, सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग रामपद
बढ़ौ अनुदिन अधिकाई ॥

गीता में निरूपित चतुर्भक्तों में गोस्वामी जी ज्ञानी भक्तों की कोटि में परिगणित किये जायँगे क्यों कि इस कोटि का भक्त निष्काम होता है तथा शेष तीन प्रकार के भक्त अर्थात अर्थार्थी, आर्त और जिज्ञासु किसी कामना को ही लेकर भक्ति में पदार्पण करते हैं। ज्ञानी भक्त को सर्वत्र भगवान का ही दर्शन होता है।

भक्ति की वही भावना उत्कृष्ट मानी जाती है जिसमें कामना का तिरोभाव हो। निष्काम भक्ति साधना का गीता में अतिशय महत्व स्वयं भगवान ने निर्धारित किया है। गोस्वामी जी की विनय पत्रिका में भी इसी उन्नत भाव की निष्काम भक्ति की प्रतिष्ठा मिलती है। 'भक्ति में लेन देन का भाव नहीं रह जाता। भक्ति के बदले में उत्तम गति मिलेगी इस भावना को लेकर भक्ति हो ही नहीं सकती। भक्त के लिये भक्ति का आनन्द ही उसका फल है' (पं० रामचन्द्र शुक्ल) जिस भक्त की अभिलाषा इन शब्दों में व्यक्त होती है—

खेलिबे कौ खग मृग तरु किंकर
ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं,
या बिनु परम पदहुं दुःख दहिहौं ॥

उसकी अनन्य भक्ति का और क्या प्रमाण चाहिये ?

गोस्वामी जी की भक्ति के स्वरूप के संबंध में अंतिम उल्लेखनीय बात रह जाती है उनकी दास्य भावना। भक्तों के पाँच प्रकार के स्वभावों (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर) और तदनुसार पाँच प्रकार की रतियों का वर्णन हुआ है। गोस्वामी जी ने दास्य भाव की प्रीति रति को अपना सर्वस्व बनाया है।

गोस्वामीजी की भक्ति भावना में दास्य भाव की प्रतिष्ठा हो जाने पर सहज ही में हमारा ध्यान जिस दिशा में जाता है वह है भगवान का माहात्म्य। दास्य भाव की साधना में भगवान का ऐश्वर्य बोध सबसे आवश्यक है और साथ ही आत्मदीनता और लघुत्व की भावना भी। आत्म हीनता और लघुत्व की व्यञ्जना करने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेकानेक पदों में ही विनयपत्रिका की वास्तविक महत्ता अन्तर्निहित है। एक ओर तो भगवान के महत्व और गौरव की अनुभूति होती जाती है और दूसरी ओर अपनी लघुता और हीनता का भान, और तब भक्त सीधी सी भाषा में इन भावों को समेट कर रख देता है—

रामों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ?

आराध्य का महत्व गान करते करते आराधक राम के कितने ही गुणों और उनके स्वभाव की कितनी ही विशेषताओं का उद्घाटन कर गया है यथा—

ऐसी हरि करत दास पर प्रीती।
निज प्रभुता बिसारि जन के
बस होत सदा यह रीती॥

भगवत्भाव की इसी विशेषता के कारण भक्त भी भगवान के सान्निध्य प्राप्ति का साहस करता है। इस स्वभाव में ही जाने कौन सी आन्तरिक आकर्षण शक्ति है जिसके कारण मनुष्य का मन मुदित और तन पुलकित हो उठता है और नेत्रों में प्रेमाश्रु छलछला आते हैं। गोस्वामीजी ने "शीलोत्कर्ष की साधना का जो अभ्यास मार्ग मानव के हृदय के बीच से निकाला, वह अत्यन्त आलोकपूर्ण और आकर्षक है। शील के असामान्य उत्कर्ष को प्रेम और भक्ति का आलम्बन स्थिर करके उन्होंने सदाचार और भक्ति को अन्योन्याश्रित करके दिखा दिया।"

—पं० रामचन्द्र शुक्ल

सुनि सीतापति सील सुभाऊ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल,
सो नर खेहर खाऊ॥

भक्ति का जो आलम्बम गोस्वामीजी ने अपने लिए स्थिर किया उसमें समस्त विभूतियों की प्रतिष्ठा करके उसे लोक-मात्र के लिए ग्राह्य बना दिया है। गोस्वामीजी ने अपनी विनयपत्रिका में न केवल अपनी विपत्तियों और कलिकाल के वैयक्तिक पीड़न का संकेत किया है वरन् वह 'भवव्याल ग्रसित' मनुष्य मात्र की यातना जनित पुकार है। उनकी मङ्गल कामना के भीतर जगत की मांगल्य भावना निहित है। वे अपने को संसार से पृथक नहीं मानते।

जो हो, आलम्बन के महत्व और गुणशील का आकर्षण प्रबल है। भक्त की दृष्टि कभी उनकी उदारता पर जाती है तो वह कहता है—

एसौ को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर,
राम सरिस कोउ नाहीं॥

और कभी उनकी दानशीलता पर—

एकै दान सिरोमनि साँचो।
जोइ जाँच्यो सोइ जाचकता बस
फिरि बहु नाच न नाच्यो॥

रघुनाथजी की यह विशेषता भी स्मरणीय है कि वे 'निदरि गनी, आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई' और इसका प्रमाण देखिए—

असुभ होइ जिनके सुमिरे तें
बानर रीछ बिकारी।
बेद बिदित पावन किए ते
सब महिमा नाथ तुम्हारी॥

यह वही दानी राम हैं जिनके दानशीलता के सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने अन्यत्र भी लिखा है कि जिससे याचना करने पर याचकता जल जाती है वही सबका शरण्य है। इस प्रकार उपास्य की महत्ता प्रतिपादित करने का जहाँ कहीं भी अवसर आया है, कवि ने उसके वर्णन करने में थोड़ी भी शिथिलता नहीं दिखलाई है। उन्होंने बीसों बार कितने ही दुष्टों और पतितों के उद्धार का संकेत किया है जिससे स्वयं गोस्वामीजी को सन्तोष मिलता है। राम के स्नेह, शील, भक्त वत्सलता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयार्द्रता आदि का गौरवगान करते हुए भक्त की दृष्टि जब अन्तर्मुखी हो जाती है तो कवि कभी आत्मग्लानि कभी आत्मक्षोभ और कभी आत्म-भर्त्सना तक करने लगता है। इन वृत्तियों के जागरण से आन्तरिक विकारों का शमन होता है और उन सत्प्रवृत्तियों का अभ्युदय जो भक्त को सत्पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा तें,
सन्त स्वभाव गहौंगो॥...आदि

संसार की वैषमिकता और विमुखता का उद्घाटन करते हुए वे मनुष्य को जीवन की सार्थकता का संदेश देते हैं, अनेक बार मन को प्रबोधन देते हैं (मन पछितैहै अवसर बीते) तथा अपने जीवन के पुनर्निमाण की भव्य भावना से ओतप्रोत हो कह उठते हैं—

अबलौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भव निसा सिरानी,
जागे फिर न डसैहौं॥

भक्तवर गोस्वामीजी इस तथ्य से भली भाँति परिचित हैं कि मनुष्य भ्रमजाल से जबतक मुक्त न होगा उसकी वृत्तियाँ ईश्वरोन्मुख हो नहीं सकतीं। कितने ही पदों में गोस्वामीजी ने अपना विनय-निवेदन किया है। मोह के फन्दे के छूटने का एकमात्र उपाय विवेक है जिसकी प्राप्ति भी हरि गुरु की करुणा पर आश्रित है—

माधव मोह फाँस क्यों टूटै?
बाहर कोटि उपाय करिय
अभ्यन्तर ग्रंथि न छूटै॥
× × × ×
तुलसिदास हरि गुरु करुणा बिनु
बिमल विवेक न होई।
बिनु विवेक संसार घोर निधि
पार न पाव कोई॥

भगवान की माया और भ्रम से बचने का और मुक्त होने का उपाय उनकी कृपा ही है। केवल इसी बात की आवृत्ति में गोस्वामीजी पद पर पद लिखते चले गये हैं—

(१) माधव असि तुम्हार यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं,
जब लगि करहु न दाया॥
× × × ×
ज्ञान भक्ति साधन अनेक सब,
सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि कृपा मिटै भ्रम,
यह भरोस मन माहीं॥

(२) तुलसिदास इंद्रिय संभव दुख,
हरे बनहि प्रभु तोरे।

(३) हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
यद्यपि मृषा सत्य भास,
जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥

इन आवृत्तियों का मूल कारण है मनुष्य की भ्रमवश भक्ति से पराङ्मुखता। उसे भक्ति की ओर अभिमुख करने के लिए इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिए कि भक्ति में बाधक इस भ्रांति का विनाश भगवान की कृपादृष्टि द्वारा ही सम्भव है।

एक अन्य बात जो भक्ति में बाधक होती है वह है अहं की भावना। भक्ति की पुनीत स्थली में पहुँचकर इस ममत्व (अहंकार) का सर्वथा विलोप ही आवश्यक है। संसार संतरण के लिए तो अनेक विधानों का निर्देश है किन्तु 'तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै।' गोस्वामीजी ने इस अहमत्व को ईश्वरत्व में, लघुत्व को महत्व में किस प्रकार लय कर दिया है, विनय-पत्रिका इसी का दिग्दर्शन मात्र है। उनका शरण और आश्रय-दाता एकमात्र भगवान है, उसकी कृपा पर ही भक्त की सारी आशा आधारित है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथ कृपा ही को पन्थ,
चितवत दीन हौं दिन राति।

× × ×

जाऊँ कहँ बलिजाउँ ? कहूँ
न ठाउँ मति अकुलाति ॥
आप सरिस न आपनो कोउ
बाप ! कठिन कुभाँति ॥

भगवान के द्वार पर दरिद्र भिखारी की भाँति पड़े हुए भक्त की आर्तवाणी पर ध्यान दीजिये—

द्वार हौं भोर ही को आज।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज ॥

× × ×

जनम को भूखो भिखारी हौं गरीब नेवाज।
पेट भरि तुलसी जेंबाइय भगति सुधा सुनाज ॥

जिस भक्त की दीनता इस सीमा को पहुँच गई हो, अपने आश्रय में जिसकी निष्ठा इतनी प्रकर्ष हो उसके भक्ति की अनन्यता निश्चय ही सन्देह और शंका की वस्तु नहीं। दास्य भावना की भक्ति लेकर भक्ति की जिस पुनीतता प्रदायिनी पद्धति का अनुगमन गोस्वामीजी ने किया वह उनके ऐसे उदार चेता भक्त के लिए ही संभव था। उनका अधोलिखित पद स्वामिभक्ति की जिस सच्ची और आवेशपूर्ण प्रेरणा का परिणाम है वैसा अपने यहाँ के भक्ति साहित्य में कदाचित ही मिल सके—

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।
जानकी जीवन ! जनम-जनम जग
ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥
तीनि लोक, तिहुँ काल न देखत
सुहृद रावरे जोर को हौं।
तुम्ह सौं कपट करि कलप कलप
कृमि ह्वै हौं नरक घोर को हौं ॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिका
लहिं कियो भौंतुवा भौंर को हौं।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल,
बड़े ठेकाने ठौर को हौं ॥

दास्य भाव की यह प्रीति रति जिसमें स्वामी से कपट करके सेवक नरक का कीड़ा बन कर संतप्त और प्रपीड़ित होने की अकल्पनीय दण्ड-यातना भुगतने को तैयार होता है और अपने को पराया सेवक कहने पर स्वयं जो अपने को जीभ के गलने का अभिशाप दे सकता है, उसके ऐसे दैन्य भाव में पगे हृदय का भगवान से जिस-जिस प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है, विनयपत्रिका में उस सबका समावेश हुआ है। कितनी ही संभाव्य मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। उदाहरणार्थ दो विपरीत वृत्तियों की ओर संकेत करने वाले निम्नलिखित पद को ही हम ले सकते हैं—

कैसे देहुँ नाथहिं खोरि ?
काम लोलुप भ्रमत मन हरि-भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर घोरि।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥

× × ×

एतेहुँ पै तुम्हरो कहावत, लाज अँचई थोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहिं छोरि ॥

दो तीन अंतर्वृत्तियाँ उक्त पद में बड़ी ही हृदय स्पर्शिणी हैं—एक तो भक्त की काम, मोह, धन सम्बन्धी लिप्सा, और दूसरी उसकी निर्लज्जता। एक ओर तो इन दोषों का सम्पूर्ण ज्ञान है और दूसरी ओर भगवत्कृपा की आशा भी। भक्त में सद्वृत्तियों का अंकुर कितना बलिष्ठ है इसकी व्यञ्जना तो पद के प्रथम चार शब्दों में ही अंतर्भूत है। अन्यान्य पंक्तियाँ तो हमारे भक्त कवि तुलसी को साधारण पापियों की पंक्ति में ला बिठाती हैं, विशेषतया जब हम देखते हैं कि उनका मन कामैषणा के भँवर में पड़ गया है। और वे लज्जा को घोल कर पी गए हैं किन्तु प्रथम पंक्ति में जो संकोच है शब्दों का और मन का वह दोनों द्रष्टव्य है। साधारण व्यक्ति जो इन विकारों में पूर्णतया लिप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, अपने को दोषी कहने को तो दूर, दूसरे को ही पापी कहेगा, भगवान को ही दोषों का केन्द्र-स्थल बतावेगा, किन्तु हमारा भक्त कवि ऐसी धृष्टता नहीं कर सकता। और पापियों की भाँति वह कैसे अपने स्वामी पर दोष लगावे विशेष तौर से तब जब उसे अपने दोषों का ज्ञान हो गया है। इसी सत्प्रवृत्ति का जागरण गोस्वामीजी को सामान्य पापियों नहीं वरन असाधारण आत्मसंयमी भक्तों की कोटि में ला बिठाता है। उनका यह कथन उन्हीं के योग्य है—

खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसी की निलज्जई।

अन्त में भक्ति की उन विविध भूमिकाओं की भी थोड़ी चर्चा हो जानी चाहिये जो विनय पत्रिका में यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं। किसी-किसी विद्वान ने विनयभावमूलक भक्ति की सात भूमिकाएँ मानते हुए उन सब की स्थिति गोस्वामीजी के पदों में निदर्शित की है—दीनता, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य, विचारणा। वास्तविकता तो यह है कि सच्चा भक्त अंतःप्रेरणा के फलस्वरूप ही अपनी भक्ति भावना को शब्द रूप देता है। यह अन्तर्वृत्ति जब जिस ओर रम गई वही भक्त के भक्तिभावना की दिशा है। गोस्वामीजी कभी राम के शील और उदारता, प्रभुता और सौहार्द्य का गान करते हैं तो कभी अपनी असमर्थता और आत्मक्षोभ का ही प्रदर्शन करने लग जाते हैं। 'किसी पद में अपनी रामकहानी सुनाई गई है, तो किसी में अत्याचार पीड़ित मानव समाज का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया गया है।'—वियोगी-हरि।

गोस्वामी जी ने ग्रंथ के आरम्भ में अनेक देवी देवताओं, प्राकृतिक शक्तियों, तीर्थों और पवित्र सरिताओं की स्तुति की है। इस स्तवन में दो दृष्टिकोण आभासित होते हैं। एक तो यह कि गोस्वामी जी ऐसे सामञ्जस्यवादी भक्त के हृदय में किसी भी प्रकार की धार्मिक असहिष्णुता न थी, दूसरे यह कि इन देवी देवताओं की स्तुति रामभक्ति की प्राप्ति में सहायक होगी। राम की कृपा का महत्व तो है ही किन्तु साथ ही राम के स्नेहियों शङ्कर, हनुमान आदि का स्तवन भी विशेष कल्याणकारी होता है। हनुमान जी स्वयं रामभक्त हैं अतः उनका अनुग्रह भी प्राप्त हो जाना राम के सामीप्य लाभ में सहायक होगा। उनके संबंध में लिखे गये पदों में भी गोस्वामीजी का असीम प्रेम उतराता दिखाई देता है—

ताकि है तमकि ताकी ओर को?
जाके है सब भाँति भरोसो कपि केहरी किसोर को?

इसी प्रकार शिव भक्ति विषयक पदों में भी आकर्षण की मात्रा विशेष उपलब्ध होती है जैसे 'बावरो रावरो नाह भवानी' अथवा 'सिव सिव होइ प्रसन्न करु दाया' आदि पदों में। वास्तव में शिवभक्ति तो रामभक्ति की एक आवश्यक भूमिका है—

बिन तव कृपा राम पद पंकज
सपनेहु भगति न होई।

गंगा दुर्गा आदि के स्तवन के अनन्तर गोस्वामी जी भगवान राम की भक्ति अथवा 'रामचरनरति' की ही याचना करते हैं। इस प्रकार 'उनकी सर्व-देव वंदना इसी अर्थ की द्योतक है कि—सर्व देव नमस्कार : केशवं प्रति गच्छति। यही उनकी अनन्यता का प्रमाण है। रघुनाथ भक्ति को प्रधानता देना ही उपासना काण्ड का निगूढ़ रहस्य है, भक्तिवाद का उत्कृष्ट सिद्धान्त है।'—वियोगी हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि पन्त की एक कविता पर पुनर्विचार

श्री भीष्मदेव जी

हिन्दी साहित्य में पन्तजी का स्थान प्रमुख रहा है और प्रायः सभी प्रकार के आलोचकों ने इनका महत्व बहुत बढ़ा चढ़ाकर आंका है। वादों की परिभाषा में साहित्य की प्रगतियों को बाँधते हुए हम उनकी स्थिति एक दम विलक्षण ही देखते हैं। बहुतों को यहाँ आपत्ति होगी कि यह आधार ही गलत है। हम ऐसे 'स्वतन्त्र परमार्थ वादियों' की बात पारमार्थिक रूप में ही मान लेते हैं, किन्तु फिर भी पन्तजी को बादों की सीमा में ही देखना होगा क्योंकि पन्तजी अपनी इस सीमा के प्रति सदैव सजग हैं। उन्होंने आधुनिक कवि की भूमिका में प्रगतिवाद का समर्थन करते हुए अपनी पिछली छाया 'वादी' कविताओं को आकाशीय कहा है और अब उत्तरा की भूमिका में 'प्रगतिवाद' का विरोध करते हुए एक नवीन 'वाद' का समर्थन किया है। जो भी हो, इन तीनों ही पैतरों में इनको अनेक समर्थक प्राप्त हुए हैं और कुछ तो ऐसे अन्त तक के साथी भी मिले हैं जो प्रत्येक स्थिति में इनकी 'जय' बुलाते रहे हैं। जैसे, नगेन्द्रजी ने इनके वीणा के आध्यात्म से लेकर युगवाणी के "सिगरेट के खाली डिब्बे, पन्नी चमकीली" तक और अब 'स्पन्दित उरोज उभार' तक इनका साथ दिया है। उन्हें उनकी 'रति की सौरभ से समुछ्वसित' कविताओं में तो एक नवीन आध्यात्म के दर्शन हो गए, छायावाद में उन्हें मांस की गन्ध ही मिली। वैसे ऐसे आध्यात्म से हम सिद्धों की परम्परा के द्वारा परिचय प्राप्त कर चुके हैं तो भी इस नवीन स्फूर्णा का स्वागत कर हमारे आलोचक आचार्य जालन्धर पाद और कृष्ण पाद को भी मात कर गये हैं। इन ख्यातनामा आलोचकों को हम आगे के लिये छोड़ कर यहाँ पन्त की उछ्वास कविता के विषय में ही कुछ कहेंगे, किन्तु इसके लिये भी हमें उनके पल्लव पर थोड़ा विचार करना ही होगा।

प्रायः सभी आलोचकों ने पन्त-काव्य में पल्लव को सर्वोत्कृष्ट कहा है, इसका कारण हमें बिल्कुल भी समझ में नहीं आया। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारा आलोचना साहित्य प्रायः छोटे-छोटे प्रशंसात्मक निबन्धों तक सीमित है और वहाँ भी लेखक अपने निबन्धों के निर्णयों के मूलाधार और कवि के काव्य सौन्दर्य इत्यादि की व्याख्या और विश्लेषण नहीं करते।

पल्लव को चाहे किसी भी मूल्य पर हो, पन्त-काव्य में सर्वोत्कृष्ट स्थान मिला है। यह सत्य है कि अधिकांश को ज्ञात नहीं कि वे किस आधार पर यह कह रहे हैं। वे प्रायः बड़ों का अनुकरण मात्र करते हैं, तो भी इस बात को किसी प्रकार भी टाला नहीं जा सकता कि बड़ों ने भी इसका समर्थन किया है। डा० रामविलासजी से लेकर श्री नन्ददुलारे वाजपेयी तक तथा श्री इलाचन्द्र से लेकर शान्ति-प्रिय द्विवेदी और डा० नगेन्द्र तक सभी ने इसे महान् कृति कहा है। किन्तु मैं इसका दृढ़ता से विरोध करता हूँ। स्वयं पन्त-काव्य में भी मैं गुञ्जन और ग्राम्या को पल्लव से उत्कृष्ट समझता हूँ। पल्लव में केवल 'परिवर्तन' ही ऐसी कविता है जो सर्वोत्कृष्ट कही जा सकती है। और एक भी कविता के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। परिवर्तन के पश्चात् पल्लव की 'उछ्वास' कविता को महत्व दिया जाता है उसकी अतथ्यता हम अभी देखेंगे। किन्तु इससे कहीं अधिक 'छाया' 'स्याही की बूँद' और 'नक्षत्र' इत्यादि अनेकानेक कवितायें हैं जो छायावाद के सम्पूर्ण दोषों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने में समेटे हुए हैं। स्वयं पन्तजी ने साहस करके लिखा है 'पल्लव काल की रचनाओं में विहंग, मधुप, निर्झर आदि तो वर्तमान हैं उनके प्रति हृदय की ममता ज्यों की त्यों बनी हुई है लेकिन अब जैसे उनका साहचर्य अथवा साथ छूट जाने के कारण वे स्मृति-चित्र तथा भावना के प्रतीक भर रह गये हैं, उनके शब्दों में कला का सौन्दर्य है प्रेरणा का सजीव स्पर्श नहीं। (संगम २१ मई ५०) पल्लव के लिए मेरा भी ठीक यही दृष्टिकोण है। पल्लव की प्रशंसा या अप्रशंसा का भी मेरा यही आधार है। सभी प्रगतिवादियों का भी प्रायः छायावादी काल के काव्य के प्रति यही रुख है, वे वहाँ सिद्धान्तों को इतना नहीं उठाते। जहाँ तक पन्तजी के सम्पूर्ण काव्य के मूल्यांकन का सम्बन्ध है वह एक पुस्तक का ही विषय हो सकता है। यहाँ मैं केवल उनकी उच्छ्वास कविता की ही आलोचना करना चाहूँगा। मेरे इस मत से बहुतों का विरोध हो सकता है। यदि वे मेरी उच्छ्वास की आलोचना का किन्हीं ठोस आधारों पर खंडन करते हैं तो मैं उनका अत्यधिक आभारी होऊँगा, मैं प्रतिक्षण अपना दृष्टिकोण बदलने के लिये प्रस्तुत हूँ।

उच्छ्वास को पन्तजी ने दो उपशीर्षकों 'सावन और भादों' में विभक्त किया है। इस कविता की 'विशेषता' इसकी शृङ्खला-हीनता और विशुद्ध कल्पना है। 'उच्छ्वास' शीर्षक की यहाँ यही संगति प्रतीत होती है कि उच्छ्वास के समान बादल घिर कर हृदय के ओर छोर को व्यथा सिक्त कर आह बन गया। यथा—

सिसकते अस्थिर मानस से
बाल बादल सा उठकर आज
सरल अस्फुट उच्छ्वास।
मेरे आँसू गूँथ फैल गम्भीर मेघसा
आच्छादित करले सारा आकाश।

ये पंक्तिया बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं और अपने शीर्षकों को भी बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट करती हैं। आँसुओं को गूँथ कर गम्भीर मेघ सा फैलने में विषाद की गम्भीरता—व्यापकता तथा शिथिलता और मूकता का बड़ा प्रभाव शाली चित्रण हुआ है इसी प्रकार—

बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर सागर में
हर मेरा सन्ताप पाप जग का क्षण भर में।

यहाँ बादल का सरित-गिरि, सर सागर में वर्षण और आंसू का हृदय की जलन और दुराशाओं को धोकर निखार देना बहुत ही स्वाभाविक रूप से चित्रित हुआ है, यहाँ हृदय का अवसाद अपनी वेदना और गम्भीरता को अक्षुण्ण रख सका है। इसे जितनी ही बार दुहराएँ उतनी ही गम्भीरता के साथ हृदय को यह मधुर अवसाद और कथा से आप्लावित कर देगा। यहाँ तक के चार पाँच पद्य बहुत सुशृङ्खलित और संगत भी बन पड़े हैं, किन्तु अगली ही पंक्तियां सारे वातावरण को विच्छिन्न कर देती हैं—

हृदय के सुरभित साँस !
जरा हैं आदरणीय
सुखद यौवन, विलास उपवन रमणीय,
शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल-कमनीय
बालिका ही थी वह भी।

स्पष्ट ही इनका पिछली पंक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं। आंसू (बादल) का गिरि-सर में बरसना ज़रा को आदरणीय किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं करता और न यौवन के विलास उपवन होने की कल्पना को आगे स्थान देता है। इस पद्य के पहिले कोई विच्छेदक चिन्ह भी नहीं। फिर इस दर्शन की अपने आप में ही क्या संगीत है ? हृदय के सुरभित साँस, (प्रेमातुर उच्छास) को संबोधित कर यह सूक्ति कही गई है। बालिका को स्नेह की वस्तु कहने के लिए शैशव को भी स्नेह की वस्तु कहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी प्रकार से संगत नहीं हो सकता इसी प्रकार शैशव को सुखद बताने के लिए जरा को आदरणीय और यौवन को विलासी कहने में भी कोई सार्थकता नहीं। फिर यदि बालिका (विशेष) शैशव (सामान्य) के कारण ही स्नेह की वस्तु थी तब सभी बालिकाओं और बालकों को स्नेह की वस्तु होनी चाहिए। यदि उसका शिशु होना भी अनेक कारणों में एक कारण था तब बालिका विशेषण ही पर्याप्त था। इसी प्रकार जरा (सामान्य) को आदरणीय कहना भी नितान्त असङ्गत है। जरा यदि आदरणीय होती सभी जर प्राणी आदरणीय होने चाहिए और आदर कर्त्ता को (जर) होने की आकांक्षा होनी चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता। जर (विशेष) आदरणीय हो सकता है। सामान्य नहीं। यहां एक और भी असङ्गति है। 'जरा' यदि आदरणीय मान ही ली जाय तो दूसरे के लिए आदरणीय हो सकती है स्वयं जर के लिए नहीं, इसी प्रकार शैशव भी दूसरे के लिए ही स्नेह की वस्तु हो सकता है अपने लिए नहीं। किन्तु यौवन विलास-उपवन अपने लिए होगा दूसरे के लिए नहीं हो सकता। अतः यह सारा पद ही एकदम असङ्गत है। इसके पश्चात् दो पद्यों में बालिका का सौंदर्य वर्णन है, और फिर—

मधुरिमा के मधु मास
मेरा मधुकर का सा जीवन
कठिन कर्म है कोमल है मन
विपुल, मृदुल, सुमनों से सुरभित
विकसित है विस्तृत जग उपवन।

इस पद्य का भी पिछले पद्य से सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता, तो भी थोड़े समय के लिए मानलें और इस प्रकार संगति लगालें कि "ओ मधुर वेदनाओं के वसन्त इस सुषुमा सहित। कामनाओं के असीम विश्व—कानन में शशि सुमन—सौन्दर्य सुरभि लुटा रहा है। मेरा कोमल-मन-मधुप इसे आत्मसात करने के लिए विकल है' किन्तु यह कितना दुष्कर है! (मेरे लिए तो एक बालिका में ही असीम अवसित हो गया है और चयन कहाँ से करूँ?) किन्तु इसमें भी अगला पद्य विक्षेप डालता है—

यही हैं मेरे तन मन प्राण
यही है ध्यान यही अभिमान
धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान।

यदि असीम उस बालिका में ही अवसित मान लिया जाय तो यही तन-मन-प्राण और क्या हैं? यदि यही (सुमन) तन-मन प्राण है तो बालिका क्या है और कर्म की कठिनता में क्या सार्थकता है? दोनों ही अवस्थाओं में धूलि की ढेरी (असफलताओं निराशाओं की डीह) के नीचे-मधुमय गानों के दबने में क्या संगति है? अभिमान किस बात का है? इस प्रकार दोनों ही पद्य असङ्गत हो जाते हैं और पहिले पद्यों के साथ इनका सम्बन्ध भी नहीं बनता। अगला पद्य है—

कुटिल काँटे हैं कहीं अछोर
जटिल तरु जाल घिरे चहुँ ओर
सुमन-दल चुन-चुन कर निशिभोर
खोजता है अजान वह छोर

यहाँ सुमन दलों (सौंदर्य) का चयन करके किस अजान छोर को खोजना है? फिर बालिका भी उनमें एक दल मात्र ही है या कुछ अधिक? यदि वह भी एक दल ही है तो उसको विशेष महत्व क्यों दिया गया, विरह क्यों हुआ? और क्या अजान छोर 'सत्य' है, जहाँ सौंदर्य के माध्यम से कवि पहुँचना चाहता है? तब फिर उसके गान धूलि की ढेरी के नीचे क्यों छिपे हैं क्योंकि कवि को तो केवल सौंदर्य का चयन करना है न कि सुन्दर को अधिगत करना। एक सम्भावना यहाँ और होती है जो अधिक ठीक जान पड़ती है, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सबको उपहासास्पद भी बना देती है। उपर्युक्त पद्य के पश्चात् सम्बन्ध चिह्न के साथ पंक्ति है—

नवल कालिका थी वह भी !

तो क्या वह नवल कालिका ही अजान छोर है ? अथवा कवि उसके सौन्दर्य को इस विकसित असीम सौन्दर्य के साथ रखकर देखना चाहता है ? बालिका का अजान छोर होना किसी भी प्रकार सङ्गत नहीं। यदि बालिका के सौन्दर्य का विश्व—सौन्दर्य से सामञ्जस्य स्थापित करना है तो काँटों में सुमन दल पृथक चुनने की कोई आवश्यकता नहीं और यदि बालिका ही अजान छोर है तो भी उसे न तो काँटों से हाथ छलनी कराने की आवश्यकता है और न बिखरे दलों को चुनने में शक्ति का अपव्यय करने की। इससे स्पष्ट है कि इन पद्यों की अपने आप में कोई सार्थकता नहीं है। यहाँ पहुँचते-पहुँचते हम एक और उलझन में पड़ जाते हैं। जिस बालिका की दुहाई हम अब तक देते आए हैं उसका कोई शरीरी अस्तित्व भी है या केवल कल्पना ही है ? वैसे यह है खूब उपहास, किन्तु देखते जाएँ महाकवि ने क्या-क्या गजब ढाए हैं। वे लिखते हैं—

कह उसे कल्पनाओं की,
कल-कल्पलता अपनाया।

अर्थ स्पष्ट है कि कवि की सम्पूर्ण कल्पनाओं का आधार और स्फूर्ति वह बालिका है। किन्तु श्री नन्ददुलारे वाजपेयी जी इससे बालिका को केवल कल्पना कल्पित कर कहते हैं, "पन्तजी इसे कल्पनाओं की कल-कल्पना कह कर अपनाते हैं, इसलिए बालिका का शारीरिक अस्तित्व कल्पना में विलीन होता जान पड़ता है, पर साथ ही जुड़े स्वभाव छुड़ाने इत्यादि की घटनाएँ फिर बीच में विक्षेप डालती हैं।" वस्तुतः यह अर्थ उन्होंने इसीलिए ले लिया जान पड़ता है कि पन्तजी ऐसा सर्वत्र कहते आए हैं और अब तो बच्चनजी ने भी मधुबालिनी की भूमिका में स्वयं पन्तजी के शब्द देकर समर्थन कर दिया है, अतः यदि हम भी इस बालिका को कल्पनाओं की मिश्री-मूर्ति मान लें तो कोई आपत्ति न होगी, फिर भी हम इसको कविता में ही देखेंगे। अस्तु इसी पद्य में दो पंक्तियाँ हैं—

"मैं मन्द हास-सा उसके मृदु अधरों पर मँडराया"

इसका अर्थ स्पष्ट है कि कवि को देख कर उसके अधर स्मिति से चञ्चल हो उठते थे। इससे प्रश्न होता है, फिर उछ्वास की क्या सार्थकता है ? पर इसका समाधान (भादों में) हो जाता है। किन्तु अभी तो हमें देखना यह है कि बालिका कुछ है भी या नहीं। ऊपरली पंक्तियों के पश्चात् 'पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश' इत्यादि प्रकृति-वर्णन है जिसको हमारे आलोचक प्रायः उद्धृत कर दिया करते हैं। यह वर्णन बहुत अच्छा बन पड़ा है किन्तु बेचारा पड़ा बड़ी बुरी जगह पर है। इसकी आगे पीछे कोई ठीक स्थिति नहीं। अन्त में कवि ने इसीलिए ब्रैकट में एक पंक्ति देकर समाधान करने का प्रयास किया है, पंक्ति है—

"वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर", खूब ! तभी पन्तजी का उससे प्यार हो गया था, अन्यथा उनसा सलज्ज और भीरु कवि और किससे प्यार कर सकता था। देखें इस सरलता का विस्फोट आगे युगान्त में कैसे हुआ है—

तुम मुग्धा थीं, अति भाव प्रवण,
उकसे थे आँवियों से उरोज।
तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु धरा गोद !

इसका गूढ़ प्रयोजन श्री इलाचन्द्र को अवश्य ज्ञात होगा, नहीं तो वे उछ्वास की इतनी प्रशंसा क्यों करते ? अस्तु वह सरला उसको 'बादल-घर' कहती थी, इतना ही क्या सङ्गति मिलाने के लिए काफी नहीं ? किन्तु कठिनाई तो यह है कि वह सरला स्वयं यहाँ नास्ति हो रही है। आगे पन्तजी कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस तरह मेरे चितेरे हृदय की,
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी।"
"सरल शैशव की सुखद सुधि सी वही,
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी!"

इससे सारी की सारी कविता ही बादल-घर बन जाती है। यदि शैशव की सुखद-सुधि ही बालिका थी तो प्रतिदिन वे समीप किसके खिंचते थे? किसके मृदु अधरों पर मँडराते थे? यहाँ 'सी' से उपमा का भान होता है, किन्तु तब बाह्य प्रकृति का चितेरे हृदय का चित्र बनने में क्या सार्थकता है, क्योंकि कवि तो आज उच्छ्वास लेने बैठा है न कि प्रकृति चित्र उतारने? फिर यह भी अर्थ हो सकता है कि चित्रित प्रकृति की चितेरे हृदय की मनोरम बालिका हो कुछ भी अर्थ क्यों न हो सङ्गत नहीं है। इस प्रकार सावन "इन्द्र धनुष की छाया में" समाप्त होता है और भादों चढ़ता है। इसमें पन्त जी की कल्पना इतनी अछोर तो नहीं उड़ी फिर भी कई पंक्तियाँ बड़ी मनोरंजक हैं। सामान्यतया इस भाग में कवि स्नेह सम्बन्ध के—सन्देह के कारण विच्छिन्न हो जाने से विकल हैं और सोचता है—

निरपराधों के लिए भी तो अहा—
हो गया संसार कारागार है।

यह ठीक है कि निरपराध और सापराध की सीमा स्नेह-सम्बन्ध या सम्बन्ध विच्छेद में नहीं होती, तो भी यह साधारण सी बात है। किन्तु तब इस रुदन और विलाप उपहासास्पद हो जाता है, जब हम पढ़ते हैं—

दीप के बचे विकास।
अनिल सा लोक लोक में॥
× × ×
कहाँ नहीं है, प्रेम सांस सा सबके उर में।

कविता प्रारम्भ ही इस दार्शनिक वाक्य से होती है। दीप के बचे विकास का क्या गूढ़ार्थ है? क्या प्रतीकात्मक होनी ही चाहिए और एक महा-वाक्य की 'तो' अवश्य ही होनी चाहिए, किन्तु ऐसे वाक्यों से बाल बुद्धि, पाठकों का सिर दर्द करना तो उपयुक्त नहीं कहा जा सकता—जिनका अपने आप में कोई परमार्थिक अर्थ भले ही लग सके, बाकी कविता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। जो भी हो पन्तजी ने कुछ सिद्धान्त वाक्य लिखकर कुछ दार्शनिक आलोचकों को अवश्य ही प्रसन्न किया है, नहीं तो बचपन के हुलास से लेकर मृत्यु के दीर्घ निश्वास तक जरा है आदरणीय इत्यादि के समान ही, प्रेम को उच्छ्वसित दिखाना कैसे सङ्गत हो सकता है? उन्होंने इसकी सगति बताने के लिए कहा है—

'यह है वैदिक वाद'

ठीक इसी वैदिक वाद का विस्फोट "रजस्राव से तुष्ट-घ्राण नवीन रहस्य वाद में हुआ है, इसी वैदिक वाद के सहारे उन्होंने विश्व के सुख दुःख मय उन्माद के एकता मय नाद को गिरा के सनयन और नयन के मूक भाषण में सुना है—बज्रयानियों के 'अनहदनाद' की तरह। खैर सुना हो या ना सुना हो इससे उन्होंने बहुतों को चकित अवश्य कर दिया।

अस्तु भादों में प्रायः यही प्रारम्भिक पद्य असंगत हैं बाकी कविता के लिए यह नहीं कहा जा सकता। कुछ तो पद्य अच्छे भी बन पड़े हैं, यद्यपि द्रोपदी के चीर के समान अनेक स्थानों पर तूल हीं दी गई है। इस प्रकार पल्लव की यह महत्व पूर्ण कविता नितान्त तुच्छ ही बन पड़ी है।

सारी कविता की इस प्रकार शव-परीक्षा स्यात् पाठकों को अच्छी न लगे। मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ कि कुछ सहृदय कितने नाराज होगें, किन्तु मैं समझता हूँ एक आलोचक का कार्य है कि वह यथार्थ को (यद्यपि वह होगा व्यक्ति सापेक्ष ही) एक दम स्पष्ट शब्दों में रख दे।

आज हमारे साहित्य के सम्मुख और बहुत बड़ी समस्याएँ हैं, (और उनसे मैं टलना नहीं चाहता) किन्तु इस प्रकार का साहित्यालोचन भी होना ही चाहिए, अतः यह दुःसाहस किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरा और महादेवी

• प्रो० रघुवीर प्रसाद सिंह एम० ए०

मीरा और महादेवी हिन्दी साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान कवियित्रियाँ हैं। जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं लेकिन दो भिन्न युगों की विभिन्न परिस्थितियों में रहने के कारण दोनों का कवि व्यक्तित्व अलग अलग है। मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान के भावमय भजन का पूरा प्रभाव पड़ा है। महादेवी का कथन है, "एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने अपने संस्कार देकर मेरे जीवन का जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।" मीरा के विषय में तो यह जनश्रुति प्रसिद्ध ही है कि वह बचपन में ठाकुर जी के विग्रह पर अपना तन-मन वार चुकी थी और साधुओं के समाज में सम्मिलित होकर भगवान के भजन में उसने तल्लीनता का अनुभव किया था। स्वयं मीरा के पद इस बात की साक्षी देते हैं।

मीरा अपने उपास्य गिरिधर गोपाल की प्रेमिका थी। मीरा बाई नाम का अर्थ भी विद्वानों ने परमात्मा की पत्नी लगाया है। कृष्णोपासक भक्तों की परंपरा में लोक और वेद के ऊपर प्रेम की प्रतिष्ठा ही 'प्रेम-लक्षण भक्ति' का सिद्धान्त हुआ। गोपियों का एकान्त प्रेम इसी रूप में देखा गया है। श्रीकृष्ण के मधुर स्वरूप का आकर्षण ही उसका एकमात्र कारण और उस स्वरूप के अधिक से अधिक सान्निध्य का अभिलाष उसका लक्षण है। गोपियों का प्रेम दाम्पत्य प्रेम के रूप में होने के कारण अभिलषित सान्निध्य भी पुरुष समागम के रूप में ही वर्णन किया गया है। मीरा की भक्ति भावना भी इसी माधुर्य भाव की थी। मीरा अपने को कहती भी है परमात्मा की पत्नी।

भाई म्हाँने सुपने में वरी गोपाल।
राती पीती चुनरी ओढ़ी मेंहदी हाथ रसाल।

जनश्रुति है कि मीरा पूर्व जन्म की गोपी थी और वह गोपी थी ललिता। मीरा भी कहती है—

भाई मैं तो लिया रमैयो मोल।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर
पुरब जनम को कौल॥

महादेवी रूप की आराधिका नहीं अरूप की साधिका हैं। इसका कारण देशकालगत प्रभाव ही हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के कारण देश की चिन्ता पर अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा और इससे छायावाद युग भी अनुप्राणित हुआ। महादेवी की कविता में भी उसी दार्शनिक चिन्तन का बल उनके का आलंबन बना जिससे उन्होंने युग युग सम्बन्ध स्थापित कर अपना करुण-मधुर भाव के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर
गई वह अधरों की मुसकान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर,

× × ×

गये तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।

महादेवी अपना प्रेम दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करती हैं। असीम और ससीम जैसे शब्दों से वह अपना और उस मधुरतम व्यक्तित्व का सम्बन्ध जोड़ती हैं। लेकिन उनकी प्रारंभिक रचनाओं में उनका प्रेम-भाव बड़े ही सुस्पष्ट रूप से व्यंजित हुआ है।

मूक प्रणय से, मधुर कथा से,
रूप लोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।
चल चितवन के दूत सुना
उनके पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या क्या उत्पात!
जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले!

महादेवी को भी यह प्रणय-संकेत स्वप्न में ही मिलता है—

कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।

आध्यात्मिक प्रेम अथवा भक्ति-भावना (विशेष कर मधुरा भक्ति अथवा कान्तासक्ति) की मूलचेतना मनोवैज्ञानिकों के अनुसार रति ही है। यह रति भावना ही चारों ओर से सिमट कर भगवान में केन्द्रित हो जाने से उदान्त बनकर भक्ति में परिणत हो जाती है। कबीर ने भी कहा है—
काम मिलावै राम को जो कोइ जानो भेव।
कबिर बिचारा क्या करे यों कहि गया सुकदेव।

मीरा की रति भावना में कोई दुराव नहीं है। उनकी भगवद्भक्ति स्पष्ट ही कान्तासक्ति है। मीरा खुले हृदय से अपना प्रेम गिरिधर गोपाल के प्रति प्रकट करती है। वह उनके प्रेम में बावली होकर बन-बन नगर-नगर उनको ढूँढती फिरती है। उसे अपने प्रेम के सामने लोज-लाज कुल-समाज की जरा भी परवा नहीं है।

मैं तो साँवरे के रँग राँची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू
लोक-लाज तजि नाँची।

उसका एकान्त प्रेम उसे अपने पात्र से किसी भी तरह से अलग नहीं होने देता।

हेली, मो सों हरि बिन रह्यौइ न जाय।
सासू लड़ौ री, सजनी, ननद खिजौरी
पीव किन रहौ री रिसाय।
चौकी भी मेलौ, सजनी पहरा भी मेलौ,
ताला क्यूँ न जड़ाय।
पूरब जनम की प्रीति हमारी सजनी,
सो क्यूँ रहै री लुकाय।
मीराँ के तौ, सजनी, राम सनेही,
और न आवै म्हारी दाय।

मीरा की प्रेम-भावना उबलते हुए दूध की तरह बाहर छलक-छलक पड़ती है। मीरा की इस आकुल तन्मयता पर महाप्रभु चैतन्य की कीर्तन प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा है। चन्द्रवली पाण्डेय का कथन है "मीराँ की पूजा-पद्धति कुछ वल्लभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल से भले ही प्रभावित हुई हो, किन्तु उनकी कीर्तन-प्रणाली तो सर्वथा गौराङ्ग महाप्रभु के ही अनुकूल थी और इनकी इहलीला की समाप्ति भी बहुत कुछ उन्हीं के ढङ्ग पर हुई।"

मीरा की तन्मयता, बेसुधी और निरावरण प्रेम महादेवी में देखने को नहीं मिल सकता है। कारण कि युग उसके अनुकूल नहीं था। मीरा के युग में दक्षिण भारत से फूटा हुआ प्रेम-भक्ति का स्रोत समूचे उत्तर भारत को परिप्लावित कर चुका था। बङ्गाल में चण्डीदास और चैतन्य, मिथिला में विद्यापति, व्रजमण्डल में अष्टछाप मण्डली और गुजरात में नरसी मेहता अपनी रचनाओं से उसे सरस, स्निग्ध तथा उज्ज्वल बना चुके थे। महादेवी के पूर्व का द्विवेदी-युग शृङ्गार-भावना की अभिव्यक्ति से सहमा हुआ नैतिकता का बन्धन अपनी वाणी पर लगा चुका था। रति की मूलभावना जो द्विवेदी-युग में दबी हुई थी छाया-वाद युग में अन्तर्मुखी होकर अपना पथ ढूँढ रही थी और प्रतीकों के रूप में अपनी अभिव्यक्ति भी कर रही थी। महादेवी ने भी जहाँ-तहाँ अपनी प्रेम-भावना को दूसरी वस्तुओं पर आरोपित करके अभिव्यक्त किया है। वह अपनी एक कविता में फूल को वर्ण्य वस्तु बनाकर कहती है—

चाँदनी का शृङ्गार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर?
जानते हो यह अभिनय प्यार
किसी दिन होगा कारागार?

इसके साथ साथ आवेग उत्कण्ठा, प्रतीक्षा आदि प्रणय भावनाओं के संकेत भी महादेवी की रचनाओं में बराबर मिलते हैं—

क्यों वह प्रिय आता पार नहीं।
शशि के दर्पण में देख देख
मैंने सुलझाये तिमिर-केश
गूँथे चुन तारक पारिजात
अवगुन्ठन कर किरणें अशेष
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृङ्गार नहीं?

और

रंजित करदे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर
ला रजनीगंधा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार।

मीरा में मिलन का आवेग और विरह की छटपटाहट दोनों समान रूप से वर्तमान हैं। लेकिन महादेवी को विरह की वेदना ही इष्ट है मिलन नहीं। यह भावना दिनों दिन इनके काव्य में तीव्रतर ही होती गई है। इसे दुखवाद का प्रभाव कहें चाहे नैतिक सङ्कोच। लेकिन विरह की भावना मिलन के बाद ही तीव्र बनती है। महादेवी की रचनाओं में भी उस मादक मिलन की स्मृति कभी कभी उभर आती है।

अलि अब सपने की बात
हो गया है वह मधु का प्रात!
जब मुरली का मृदु पञ्चम स्वर,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर,
कम्पित हो उठता सुख से भर,
नव लतिका सा गात!
जब उनकी चितवन का निर्झर,
भर देता मधु से मानस-सर,
स्मित से झरती किरणें झर झर,
पीते दृग—जल जात!

लेकिन आगे चलकर महादेवी के काव्य में विरह को ही प्रधानता मिलती चली गई। अन्त में उन्होंने विरह को ही अपना आराध्य और दुख को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही जीवन का संबल मान लिया। महादेवी का यही दुखवाद उन्हें वैयक्तिक सुख-दुख से आगे बढ़ाकर लोक की ओर उन्मुख करता है। लेकिन भोली-भाली मीरा अपनी प्रणय-भावना को महादेवी की तरह बौद्धिक-संयम से नहीं बाँध सकती थी। वह तो केवल एक गिरिधर गोपाल के लिए ही मरती थी और उसी के लिए जीती थी। आँखों में बसा हुआ उसका प्रियतम धीरे-धीरे उसके रोम रोम में व्याप्त हो गया था।

साध हमारी आतमा में साधन की देह।
रोम रोम में रम रह्या ज्यों बादर में मेह॥

प्रवृत्ति में प्रणय-भावनाओं का आरोप दोनों ने किया है, और यह आरोपित भावना दोनों के प्रेम के उद्दीपन की सामग्री बन गई है। लेकिन मीरा में वह उल्लास और वेदना दोनों को जगाती है और महादेवी में अधिकतर वेदना को ही। प्रकृति के समग्र व्यापारों में वर्षाऋतु दोनों को विशेष प्रिय है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

बरसै बदरिया सावन की,
सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की॥

—मीरा

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन।
रोम रोम में होता री सखि
एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से बन फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं।

—महादेवी

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हेलाँ चढ़ि चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी
कब आवैं महराज।
दादुर मोर पपइयाँ बोले
कोइल मधुरे साज।
उमग्यौ इन्द्र चहूँ दिसि बरसैं
दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया
इन्द्र मिलण के काज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
बेगि मिलो महाराज।

—मीरा

लाये कौन सन्देश नये घन
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन!
चौंकी निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत के कङ्कण।

× × ×

सुख दुख से भर
आया लघु उर
मोती से उगले जल कण से
छाये मेरे विस्मित लोचन।

—महादेवी

अथवा—

पिक की मधुमय वंशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली,
अरुण सजल पाटल बरसाती
तम पर मृदु पराग की रोली
मृदुल अंक धर दर्पण सा सर
आँज रही निशि दृग इन्दीवर।
जीवन जलकण से निर्मिति सा
चाह इन्द्र धनु से चित्रित सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा
तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों पर पग धर धर।

महादेवी की भावाभिव्यक्ति पर भी मीरा का प्रतिबिंब स्पष्ट देख पड़ता है। उदाहरणार्थ—

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पन्थ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।
—मीरा

पथ देख बितादी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं।
—महादेवी

पपइया रे पिय की वाणी न बोल।
—मीरा

मुखर-पिक हौले हौले बोल। —महादेवी

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय।
कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन है भरलाय॥
—मीरा

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली भरते तारक द्वय
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती।
—महादेवी

मीरा अपनी भावाकुलता में पूछती है—

'शूली ऊपर सेज पिया की
किस विधि मिलना होय।'

महादेवी चिन्तन के द्वारा निष्कर्ष पर पहुँच जाती है—

'क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना।'

(शेष पृष्ठ ११६ का शेषांश)

जिसे कि उन्होंने जीवन की मूलभूत वृत्ति माना है। स्वभावतः ही वह रागवृत्ति (लिबिडो) से अधिक व्यापक है।

इसके अतिरिक्त वस्तु-रचना की दृष्टि से भी श्रद्धा की स्थिति का तीनों से स्वतंत्र होना आवश्यक था। कामायनी की कथा का कार्य है त्रिपुर का एकीकरण जिसके उपरांत मनु को आनन्दलोक की प्राप्ति होती है अर्थात् कथावस्तु के उद्देश्य की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार अप्रस्तुत कथा का कार्य है भाव वृत्ति, कर्म वृत्ति और ज्ञान वृत्ति का समन्वय। इसके उपरान्त ही मन समरसता की स्थिति प्राप्त कर चिरानन्दलीन हो जाता है, और कथा का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। वास्तुकौशल की दृष्टि से यह कार्य मुख्य पात्र के द्वारा ही सम्पादित होना चाहिये और मुख्य पात्र स्पष्टतः कामायनी अर्थात् श्रद्धा है। इस प्रकार शुक्ल जी की इस दूसरी गंभीर आपत्ति का भी निराकरण असम्भव नहीं है और इसमें सन्देह नहीं प्रसाद जी ने श्रद्धा की मनोवैज्ञानिक स्थिति की इन संगति-असंगतियों पर पूर्णतः विचार करने के उपरान्त ही उसको यह रूप दिया था। शुक्ल जी द्वारा उठाई गई शंका उनके मन में न उठी हो यह बात नहीं मानी जा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृति की रेखाएँ : एक दृष्टि

श्री शिवप्रसाद गोहानी, साहित्य-रत्न

महादेवीजी की 'स्मृति की रेखाएँ' का धरातल ठोस एवं वास्तविक है। कला की तूलिका से लेखिका ने उन रेखाओं में ऐसे रङ्ग भरे हैं कि उनमें कहानियों का-सा आनन्द आता है। संस्मरणों के ऐसे कलात्मक स्वरूप हिन्दी-साहित्य में अत्यल्प हैं, वैसी स्थिति में इन रेखाओं का महत्त्व कई गुणा बढ़ जाता है।

अनुभूतियों को कल्पना के परिधान से सजाकर कहानीकार अपनी रचना को सजीव बनाने का प्रयास करता है। यह सही है कि सम्प्रति कहानीकारों की वैसी कल्पनाएँ महत्त्व नहीं पातीं, जो वास्तविक जगत् से दूर हों, अस्वाभाविक हों किन्तु फिर भी जीवन की सत्य घटनाओं के वर्णन जो कलामय ढङ्ग से किये जाते हैं वे अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ एवं मर्मस्पर्शी होंगे ही क्यों कि उनके प्रत्येक स्पन्दन सत्य से अनुप्राणित रहते हैं।

स्मृति की जिन सात रेखाओं को शब्दों में बांधने का प्रयास लेखिका ने किया है वे लेखिका के जीवन के इतने निकट हैं कि वर्णित पात्र एवं परिस्थितियों के अन्तस्तल के कण-कण का भावपूर्ण चित्रण मुखर हो उठा है।

जिन परिस्थितियों से ये पात्र घिरे हैं उनके भीतर पैठकर उनको यथातथ्य रूप में समझना, उनके कारण को ढूँढ़ निकालना और उनके दुःख से द्रवित होकर असुविधाओं को स्वयं आमन्त्रण देना ऐसी बातें हैं जिनसे पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। कितने गूँगे हमारे आसपास से गुजरते हैं, हम उनके सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा तो दूर उपेक्षाभाव से तिरस्कार ही उपहार में देते हैं, किन्तु गूँगिया जब लेखिका से पत्र लिखाने आती है वाणी का अभाव लेखिका को आकृष्ट करता है और और वह उसका इतिवृत्त जानने को आकुल हो उठती है।

लेखिका के हृदय-रस से अनुप्राणित कला ने वर्णित चरित्रों को अमरत्व प्रदान किया है क्योंकि चित्रणों में सत्य का केवल शुष्क विवेचन नहीं। कला के कमनीय करों के संस्पर्श के कारण ये चित्रण कभी भी हृदय को विदग्ध किये बिना नहीं रह सकते। संस्मरणों में ऐसी हृदय-विदग्धता उत्पन्न करने वाले उपकरण बहुत कम मिलते हैं।

दुःखवाद से महादेवीजी अत्यन्त प्रभावित हैं, इनके काव्य में इस दुःखवाद की झाँकी पग-पग पर मिलती है। 'स्मृति की रेखाएँ' के सात चित्रणों में भी दुःखवाद की पूरी छाप है। काव्य का दुःखवाद पूर्णतः वैयक्तिक होने के कारण उसमें महादेवीजी का साधक स्वरूप ही परिलक्षित होता है। इन चित्रणों में महादेवीजी साधनहीन अन्य दुःखियों से स्वयं प्रभावित हो उनसे पाठकों के हृदय को द्रवीभूत करती हैं। भक्तिन, चीनी फेरीवाला, जंगिया और उसका भाई, मुन्नु की माँ, ठकुरी बाबा, बिबिया और रंगिया से कौन प्रभावित नहीं होगा?

पलायनवादिता का जो आरोप बहुधा महादेवीजी पर लगाया जाता है और यह कहा जाता है कि उनके मानसिक ऊहापोह से जगती के हाड़ माँस के बने पुतले की कोई भलाई नहीं उनके कथन की अवास्तविकता इन रेखाओं में छिपी अव्यक्त और व्यक्त भावनाएँ प्रकट कर देती हैं। ये वर्णन स्पष्ट कर देते हैं कि लेखिका दृश्य जगत में रहने वाले मानव को भी सुखी और समृद्ध देखने की पक्षपातिनी है। यह सात अक्षय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि सुखी और समृद्ध देखने के लिये जिन समाधानों की अपेक्षा है उनकी ओर कोई संकेत नहीं मिलता। कष्टों की वास्तविक स्थिति और कथन की वक्रता के मर्मभेदी बाण दुःखों की भावात्मक अभिव्यञ्जना करते हैं '....ऊदी रंग के डोरे से भरे हुए किनारों का हर घुमाव और कोनों में उसी रंग से बने नन्हें फूलों की प्रत्येक पंखुड़ी चीनी नारी की कोमल उँगलियों की कलात्मकता ही नहीं व्यक्त कर रही थी जीवन के अभाव की करुण कहानी भी कह रही थी।' अपनी पैनी दृष्टि से बिछावन के सिकुड़े चादर को देख वास्तविक तथ्य को समझ लेती है '....पूर्व के कोने में पड़े हुए पुआल का गट्ठा और उस पर सिमटी हुई मैली चादर की सिकुड़न कह रही थी कि सोने वाले ने ठंड से गठरी बन कर रात काटी है।' बदरीनाथ की यात्रा में कुलियों को देख कर जो भावना उत्पन्न हुई उसे उन्हीं के शब्दों में देखिए '....कोई धूप में बैठ कर कपड़ों में से जुँयें बीनता हुआ बानर का स्मरण दिलाता है और कोई.....। ये भी मनुष्य हैं इसे हम अभ्यासवश ही समझते हैं—इनमें मनुष्य का रूप पाकर नहीं।' प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित लोगों की ऐसी धारणा-सी है कि समाज का नियम कुछ ऐसा बेढंगा है कि सच्चे अर्थ में जो लूट और बेईमानी है उसका भी समाज में आदर है। चीनी के सम्बन्ध में लिखता हुआ लेखिका ने लिखा '....धन-संचय से सम्बन्ध रखने वाली सभी विद्यायें एक-सी हैं, पर मनुष्य किसी का प्रयोग प्रतिष्ठा-पूर्वक कर सकता है और किसी का छिपाकर।' व्यक्ति-विकास की गर्हित-भावना के वशीभूत होकर समाज के अन्य घटकों की उपेक्षा कितना हास्यजनक है मानव मात्र की भलाई चाहने वालों से छिपा नहीं। महादेवीजी के कथनानुसार '....इतने विशाल जनसमूह को वाणी-हीन बना कर जिन्हें अपनी वाग्विदग्धता का अभिमान है वे कितने निर्लज्ज हैं? इस प्रकार के प्रश्न स्वाभाविक ही कहे जायँगे।' ग्रामीणों की निष्कपटता और उनके कष्टों से व्यथित हो एक स्थान पर लिखा है '....उसके बाह्य रूप और हृदय में इतना अन्तर क्यों है, यही मैं लाचार सोच रही थी। उनके हृदय का संस्कार, उनकी कर्मठता आदि का क्या इतना कम मूल्य है कि उन्हें जीवन-यापन की साधारण सुविधायें तक दुर्लभ हो जावें।'

इन रेखाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखिका ने अपने काव्य की भांति भावों की माला ऐसी भाषा में गूँथने का प्रयास नहीं किया जो सहज-बोधगम्य नहीं हो। अमर कवि 'प्रसाद' जी के काव्येतर रचनाओं में भी उनका कवि जाग्रत है। कहा जाता है कि विश्व-विश्रुत कवि टैगोर के काव्येतर रचनाओं में उनका कवि प्रत्यक्ष नहीं इसी कारण उनकी वे रचनाएँ भी प्रभविष्णु हो पायी हैं। महादेवी के इन चित्रणों में भी उनका कवि प्रत्यक्ष नहीं, कवि-हृदय की संवेदन शीलता को भाषा का जो पट पहनाया गया है, उससे भाव स्पष्ट ही हुए हैं, उलझे नहीं। कथन के ढङ्ग तो कहीं-कहीं बड़े अनूठे हैं। भक्तिन की सेवा-भावना और नाम का वर्णन लेखिका ने कितनी खूबी से किया है—'सेवक-धर्म में हनुमानजी से स्पर्धा करने वाली भक्तिन किसी अञ्जना की पुत्री न होकर एक अनामधन्या गोपालिका की कन्या है—नाम है लछमिन अर्थात् लक्ष्मी। पर जैसे मेरे नाम की विशालता मेरे लिए दुर्वह है वैसे ही लक्ष्मी की समृद्धि भक्तिन के कपाल की कुञ्चित रेखाओं में बंध नहीं सकी।' साधारण-सी बात भी इस ढङ्ग से कही गयी है कि प्रभावोत्पादकता कई गुणा बढ़ जाती है। '....फटी और अनिश्चित रङ्ग वाली दरी और मटमैली दुसूती का बिछौना लिपटा हुआ धरा था। उसके पास ही रखी हुई एक मैले फटे कपड़े की गठरी उसका एकाकीपन दूर कर रही थी। लाल चिलम का मुकुट पहने, नारियल का काला मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँस के खम्भे से टिका हुआ था।' इस भाँति कल्पवास के समय लेखिका की झोंपड़ी में टिके हुए अनिमंत्रित अभ्यागतों और उनके सामानों का वर्णन ऐसे रूप में किया गया है कि चित्रण मुखर हो उठे हैं, व्यङ्ग कहीं कहीं अत्यन्त तीव्र और मार्मिक है। मुन्नू के परिवार का चित्रण-क्रम का यह अंश प्रेक्षणीय है—'जिस लड़के का पुरुषार्थ ऐसी परिश्रमी और सुशील बधू खरीद लाया है। उसे नालायक मानना भी घोर अन्याय है। स्त्री की प्राप्ति और सन्तान की सृष्टि ही पुरुष की लियाकत का लक्ष्य है। इस लक्ष्य तक पहुँच जाने वाला पुरुष और अधिक योग्यता का बोझ व्यर्थ ही क्यों ढोता फिरे।' धर्म के बाह्याडम्बरों की भर्त्सना में लेखिका ने लिखा—'सच्चे कल्पवासी अपने और आग के बीच इतना अन्तर बनाये रखते थे जितने में, पाप-पुण्य का लेखा-जोखा रखने वाले चित्रगुप्त महोदय धोखा खा सकें।' दूसरे स्थान पर यों लिखा है—'विधाता ने जाने कैसा षड़यन्त्र रचकर उन्हें पुं नामक नरक से उबारने वाले को अवतार नहीं लेने दिया। पर पंडितजी अपनी स्तुतियों द्वारा गङ्गा को गद-गद् करके बेचारे चित्रगुप्त का लेखा-जोखा व्यर्थ कर देना चाहते हैं। धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बर पूर्ण व्यवहारों का यह व्यङ्ग में सना कथन कितना चुटीला है 'रूप रंग में वह पिटारी शालग्राम या शङ्कर का बन्दीगृह जान पड़ती थी और सम्भवतः देवता का भार हल्का करने के लिए ही वे उन पर लदे चन्दन की अध-घिसी सुटिया बाहर निकाल रहे थे।' मार्मिक स्थलों को प्रभावपूर्ण एवं हृदयग्राही बनाने में लेखिका पूर्ण सचेष्ट हैं। 'उसकी घरवाली तीन पुत्रियों की भेंट दे चुकी थी। चौथा पुत्र-उपहार देने के अवसर पर वह संसार के सभी आदान-प्रदानों से छुट्टी पा गई।' रूढ़ि विरोधी दृष्टिकोण को रूढ़िग्रस्त व्यक्ति के चित्रण में ही इस भाँति चित्रित किया गया है कि जिससे रूढ़ि तिलमिला-सी गयी है। '....विवाहिता जीवन के डबल सर्टि-फिकेट के समान दो-दो बिछुए पहनकर और नाक तक खिंचे घूँघट में वधूवंश की मर्यादा को सुरक्षित रखकर वे परचून की दूकान द्वारा जीवन यापन करती हैं। ऐसा नहीं कह कर कि मुझे अब भूख नहीं मैं अधिक नहीं खा सकूँगा, जैसा कि साधारणतया कहा जाता है यों कहा 'एक साथ इतना रूख खाने के लिए मुझे जीवन की ममता छोड़नी होगी, यह बार-बार समझाने पर भी उनमें से कोई मानता ही न था। कथन की वक्रता जन्य प्रभाव की अनुभूति पाठक सुगमतया कर सकते हैं। इस कथन की वक्रता पर ध्यान दीजिये 'कुछ प्राचीनता-वादियों की कभी निर्निमेष खुली आँखें और कभी मिलित पलकें प्रकट करती थीं कि काव्यरस में विश्वास न होने के कारण उन्हें विजया से सहायता मांगनी पड़ी है।'

वर्णित पात्रों से स्वयं प्रभावित होने के कारण लेखिका की सहानुभूति व्यक्तियों के स्वरूप को चित्र की भाँति शब्दों में बाँधने को आकुल दीख पड़ती है। यह आकुलता कहीं कहीं पाठक को उबाने वाला और नीरस प्रतीत होता है' आगे की ओर झुके हुए दाहिने कान में मटमैला टूटे निब-वाला कलम खोंस कर और टेढ़ी मेढ़ी उँगलियों में बिना ढक्कन वाली और पानी मिली हुई फीकी स्याही से भरी दावात यत्न से दबाकर धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतर गये और उनके पीठ फेरते ही कितने ही कुली मेरे कमरे के सामने एकत्र होने लगे।' एक ही साँस में इतना चित्रण कर दिया गया है और इस ढङ्ग से किया गया है कि पाठक इसे चाव से नहीं पढ़ता। तत्तुल्य वर्णनों से पाठक सहज आकृष्ट नहीं होता और यदि धैर्य धारण करके पाठक आगे नहीं बढ़ता जाय तो वह हताश हो जाता है।

वर्णनों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों की उपेक्षा नहीं की गयी है। परिचितों के साथ जिस रूप में मालिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेश आते है सेवकों को भी उसी रूप में पेश आना कर्त्तव्य है। '....उनके प्रति भक्तिन के सम्मान की मात्रा मेरे प्रति उनके सम्मान की मात्रा पर निर्भर है और सद्भाव उनके प्रति मेरे सद्भाव से निश्चित होता है। इस सम्बन्ध में भक्तिन की सहजबुद्धि विस्मित कर देने वाली है।' जिस किसी को किसी चीज से चाट लग जाती है उसको उसमें इतना आनन्द आता है कि खाना-पीना कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य सबको भूल कर वह उसी फेर में अहर्निश पड़ा रहता है। ठाकुरी बाबा को गाने का ऐसा ही शौक था। लेखिका ने मनोविज्ञान के इस सत्य को यों कहा '....कहीं बिरहा गाने का अवसर मिल जाता तो किसी के मचान पर बैठकर रात-रात भर रखवाली करते रहते। कोई बारह-मासा सुननेवाला रसिक मिल जाता तो उसको बैलों का सानीपानी करने में भी हेठी न समझते।' कथा विशेष निरन्तर सुनते सुनते मानव उससे इतना प्रभावित हो जाता है कि उससे वह स्वभावतः साहचर्य स्थापित कर लेता है और अपने कोई पात्र-विशेष समझने लगता है '....पिता के अगाध पाण्डित्य पर पुलकित और विस्मित होती हुई बड़े मनोयोग से कथा सुनती और कौन-सा पात्र बन जाना उसके लिए अच्छा होगा इसकी विवेचना करती रहती।'

प्रकृति का जो विशद भावात्मक वर्णन इनके काव्य में मिलता है और जिन्हें समझने में पाठकों का हृदय बिना मस्तिष्क की सहायता के कहीं कहीं रस ग्रहण नहीं कर सकता वैसे रूप में प्रकृति से महादेवी जी ने इन रेखाओं में सहायता नहीं ली है। प्रकृति के विविध रूपों के चित्रण की आवश्यकता इसमें थी भी नहीं। जहाँ-तहाँ प्रसङ्गानुसार वातावरण-सृष्टि के लिये प्रकृति-चित्रण हैं बड़े स्पष्ट एवं मादक हैं—'निस्तब्धता से भीगी चाँदनी हल्की सफेद रेशमी चादर की तरह सहरों में सिमटी और बालू में फैली हुई थी।' दूसरा चित्रण देखिये—' सवेरे कुछ मेघ-खण्ड आकाश में एकत्र हो गये थे पर सन्ध्या की सुनहली आभा के खर प्रवाह में वे धारा में पड़े नीले कमलों के समान बह कर किसी अज्ञात कूल से जा लगे।' हृदय के अभीष्ट भाव की अभिव्यञ्जना में यह प्रकृति वर्णन कितना सहायक है देखिये—'....रात की गहरी निस्पन्द नींद से जागे हुए वृक्षों के दीर्घ निश्वास के समान समीर बह रही है। और ऐसे समय में मेरी स्मृति ने मुझे भी किसी अतीतकाल के प्रभात में जगा दिया है। जान पड़ता है ठकुरी बाबा गङ्गा-तट पर बैठकर तन्मय भाव से प्रभाती गा रहे हैं—'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले।'

इनके काव्य में दार्शनिक तत्त्वों की प्रधानता पायी जाती है किन्तु इन रेखाओं में यदि उनके अभाव नहीं हैं तो उन्हें इस रूप रखने का प्रयास नहीं किया गया जिसमें वे प्रसंगानुकूल नहीं होकर पाठकों के मस्तिष्क को अनिवार्यतः बोझिल बना जायँ। भक्तिन के सम्बन्ध में वर्णन करते करते अन्त में कहती हैं—'मैं प्रायः सोचती हूँ कि जब ऐसा बुलावा आ पहुँचेगा जिसमें न धोती साफ करने का अवकाश रहेगा न सामान बाँधने का, न भक्तिन को रुकने का अधिकार होगा न मुझे रोकने का, तब चिर विदा के अन्तिम क्षणों यह दिहातिन क्या करेगी और मैं क्या कहूँगी।'

इन रेखाओं में कहीं कहीं लेखिका का वैयक्तिक विचार भी प्रकट हुए बिना नहीं रहा। कवि सम्मेलनों के प्रति लेखिका की अनास्था का औचित्यानौचित्य ठकुरी बाबा के वर्णन में स्पष्ट है। ऐसे स्थालों की भी कमी नहीं जहाँ कथा की गति धीमी पड़ जाती है। अन्तर्कथाओं की बहुतायत से कहीं कहीं मूल कथा दूर जा पड़ती है।

समग्र रूप से विचार करने पर इसमें दो मत की सम्भावना कम है कि लेखिका इसमें सफल हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

साकेत के नवम सर्ग का काव्य-वैभव—लेखक–प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०, प्रकाशक–साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी। मूल्य २॥)

सहलजी हिन्दी के मान्य व्याख्याकार हैं। वे पिलानी महाविद्यालय के हिन्दी-विभाग के यशस्वी अध्यक्ष भी हैं। उनकी लेखनी से साकेत के नवम सर्ग की व्याख्या का हम स्वागत करते हैं। 'साकेत' में 'नवम सर्ग' अपना विशेष स्थान रखता है। यह सर्ग साकेत का सबसे बड़ा 'सर्ग' है, और इसीमें 'उर्मिला' के विरह का वर्णन है। इसी सर्ग की कविता का सहलजी ने मर्म उद्घाटन इस पुस्तक में किया है। साधारणतः इसमें सभी महत्वपूर्ण स्थलों का अर्थ स्पष्ट किया गया है, और स्थान-स्थान पर तुलना भी हो गयी है, साथ ही अलंकार और नायिका भेद आदि का भी उल्लेख करके उसके काव्य-सौन्दर्य को प्रकाश में लाया गया है। जहाँ तहाँ दोष की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया गया है। 'सहलजी' का यह उद्योग सफल ही माना जायगा, विशेषतः इसलिए कि स्वयं महाकवि का ध्यान इसने अपनी ओर आकर्षित किया और महाकवि के प्रेस से ही इसे प्रकाशित होने का सौभाग्य मिला है। मैथिलीशरण गुप्त का पत्र पीछे परिशिष्ट में दिया हुआ है, और वह पत्र-व्यवहार भी दिया हुआ है जो महात्मा गांधी और गुप्तजी में साकेत के प्रकाशन के अवसर पर हुआ था। इससे पुस्तक की उपादेयता ऐतिहासिक भी हो गई है। किन्तु इस बात का उद्योग नहीं किया गया कि इस प्रकार के काव्य-सौष्ठव का शेष समस्त साकेत के काव्य-सौष्ठव में क्या स्थल है, और ऐसे कथा काव्य में ऐसे विरह-वर्णन की समीचीनता कहाँ तक है? इस सम्बन्ध में महात्मा गांधीजी के पत्र के उत्तर में लिखा गया गुप्तजी का पत्र कुछ समाधान प्रस्तुत करता है, किन्तु काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से उस पर मूल ग्रन्थ में लेखक द्वारा भी विचार होना चाहिए था। सहल जी की इस रचना से नवें सर्ग के विभिन्न स्थलों के सौन्दर्य का परिचय मिलता है, पर समस्त सर्ग के इस विरह-काव्य का सौष्ठव सौन्दर्य-समष्टि का रूप नहीं खड़ा होता। इसकी भी आवश्यकता थी। पुस्तक रोचक है और उपादेय तो है ही।

—सत्येन्द्र

प्रसादजी का अजातशत्रु : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन - लेखक–श्री कृष्णकुमार सिन्हा। प्रकाशक–राजराजेश्वरी पुस्तकालय, गया। पृ० सं० २६८, मूल्य ३)

इस पुस्तक में १२ अध्याय हैं; तेरहवाँ परिशिष्ट है। इनमें प्रसादजी का संक्षिप्त जीवन, हिन्दी नाट्य-साहित्य का उद्भव और विकास, अजातशत्रु का कथानक, अजातशत्रु का ऐतिहासिक आधार, नायक कौन? चरित्राङ्कन, अजातशत्रु में गीत-सौष्ठव, अजातशत्रु में हास्य-विनोद, अजातशत्रु की भाषा-शैली अजातशत्रु का उद्देश्य, अजातशत्रु में अभिनयात्मकता और अजातशत्रु की नाट्य-कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ गद्य और पद्य के विशिष्ट स्थलों की व्याख्या भी दी गयी है।

दूसरा अध्याय परिश्रमपूर्वक लिखा गया है। वैदिक-काल से आज तक के नाटक-साहित्य और उसके उद्भव की कथा सुबोध रूप से संक्षिप्त करके प्रस्तुत की गयी है। अजातशत्रु का ऐतिहासिक आधार बाकी अध्याय भी लेखक के अध्ययन का अच्छा उदाहरण है। अजातशत्रु की ऐतिहासिकता पर इतना विशद और पूर्ण विचार अन्यत्र सुलभ नहीं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट विदित होता है कि प्रसादजी जितने ऐतिहासिक अजातशत्रु में रहे उतने अन्य किसी नाटक में नहीं। लेखक को यह तथ्य विशेष उभार कर स्पष्ट करना उचित था। 'अजातशत्रु में हास्य-विनोद' शीर्षक अध्याय भी अध्ययनपूर्वक लिखा गया है। 'नायक कौन' का प्रतिपादन उतना अच्छा नहीं हुआ। चरित्राङ्कन सुबोध है, पर चरित्रों की गहराई नहीं दे सका। शेष अध्याय भी विद्यार्थियों की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं। एक स्थान पर अजातशत्रु का पर्याप्त विशद अध्ययन मिल जाता है। श्री कृष्णकुमार की अध्ययनशीलता श्लाघनीय है। उन्होंने इस पुस्तक में जिन ग्रंथों और ग्रंथकारों से सहायता ली है, उनका यथास्थान उल्लेख किया है। किन्तु 'प्रसादजी की कला' पुस्तक का उल्लेख उन्होंने नहीं किया। उसे भी देख लेने में उन्हें पर्याप्त दिशा-निर्देशक मिलता। परिशिष्ट में दी हुई व्याख्याएँ भी शिथिल हैं। —सत्येन्द्र

हिंदी वादों का विवेचन—लेखक श्री स्वयंप्रकाश उपाध्याय : सौमित्र, प्रकाशक—लोकमत प्रकाशन, स्टेशन रोड, रतलाम। पृ० ७४, मूल्य ॥।=)

प्रस्तुत पुस्तक में छायावाद, रहस्यवाद, वक्रोक्तिवाद तथा अभिव्यञ्जनावाद पर चार निबन्धों का संकलन हुआ है। जहाँ से भी उक्तवादों से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री लेखक को प्राप्त हुई है, उसने उसका यथेच्छ प्रयोग किया है—इसलिए इस पुस्तिका में विषय का मौलिक प्रतिपादन नहीं है। वक्रोक्तिवाद तथा अभिव्यञ्जनावाद जैसे दुरूह विषय पर अपेक्षाकृत बहुत कम लिखा गया है—यह निबन्ध तो टिप्पणियों का समाहार-सा ज्ञात पड़ता है। जहाँ लेखक अपने मत का प्रतिपादन न कर दूसरों के विचारों का आकलन मात्र करने लगता है वहाँ न तो सम्पूर्ण निबन्ध में अन्विति का निर्वाह हो पाता है और न पढ़ने में ही विशेष आनन्द आता है। हाँ, 'प्रगतिवाद' पर लिखा हुआ निबन्ध अवश्य मनोयोग से लिखा गया है, इस निबन्ध के द्वारा किसी अंश में विषय का स्पष्टीकरण भी हो पाता है। वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि इन वादों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाय। फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि परीक्षा के लिये तैयारी करने वाले छात्रों के लिए पुस्तक उपयोगी है क्योंकि इसके द्वारा साहित्यिक वादों से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री उनको एक जगह मिल जाती है। —कन्हैयालाल सहल

प्रथमा हिन्दी साहित्य—लेखक—श्री गुलाबचन्द जैन, प्रकाशक—साहित्य-साधना कुटीर, इन्दौर। पृष्ठ २५२, मूल्य २।)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से जो परीक्षाएँ होती हैं उसमें प्रथमा के साहित्य विषयक यह संवत २००२ से २००६ तक की प्रश्नोत्तरी है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजी के शब्दों में यह "उत्तर प्रामाणिक एवं विशद प्रतीत हुए। विद्यार्थियों के लिए अतीव लाभ की सिद्ध हो सकती है।"

अयोध्याकाण्ड-दिग्दर्शन लेखक श्री सलिल साहित्य रत्न, प्रकाशक—साहित्य प्रकाशन मन्दिर लश्कर। पृष्ठ ७६, मूल्य ॥।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरित मानस का अयोध्याकाण्ड वर्षों विद्यार्थियों के हित विभिन्न परीक्षाओं में पाठ्य ग्रंथ रहा है और है। इस पुस्तक में विद्यार्थियों के हित से ही गोस्वामीजी के जीवन चरित, कथानक, पात्रपरिचय, छन्द रस अलङ्कार, भक्ति-भावना, अन्तर्कथा आदि शीर्षकों में उपयोगी विषयों की चर्चा की गई है।

निबन्ध

निबंध-पञ्च-दशी सम्पादक—श्री वियोगीहरि, प्रकाशक-सस्ता साहित्य-मण्डल प्रकाशन। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य १॥)

पञ्चदशी वेदान्त शास्त्र का बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका नाम और लेखक के रूप में श्री वियोगी हरि का नाम देखकर मेरा पहला ख्याल तो यही हुआ कि इसमें उसी प्रख्यात पुस्तक की चर्चा है, किन्तु तुरन्त ही उसके नीचे 'निबन्ध-संग्रह' शब्दों ने मेरा भ्रम-निवारण कर दिया।

इस संग्रह में नामानुकूल १५ निबन्ध हैं। इस संग्रह के अधिकांश निबन्धों में गान्धीवादी सिद्धान्तों की छाप है। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के (अशोक के फूल) और भदन्तजी के (आतिथ्य) खींचतान से ही गाँधी-साहित्य की कोटि में आयेंगे। भदन्तजी ने भिखारी का आतिथ्य दिखाकर गान्धीजी के हृदय की ही बात लिखी है। अशोक के फूल एक सांस्कृतिक चीज है। जैनेन्द्रजी ने राम की युद्ध-नीति को भी गान्धीवादी सिद्धान्तों में ढाला है। नेहरूजी की दो मसजिदों में तुर्किस्तान के मुसलमानों की यहाँ के मुसलमानों से बड़ी शिक्षाप्रद तुलना की गई है, और साथ ही योरुप के इतिहास के भी बहुत से महत्वपूर्ण पृष्ठ समाविष्ट हो गये हैं। 'धरती' में डाक्टर वासुदेवशरणजी और गाँव के जीवन में डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी ने ग्राम्य-जीवन और कृषकों की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया है। यद्यपि निबन्धों का संग्रह विषय के सौष्ठव की दृष्टि से हुआ है, तथापि वे शैली में भी विशेष रूप से उत्कृष्ट है।

रूप और स्वरूप—लेखक-श्री घनश्यामदास बिड़ला, प्रकाशक-सस्ता साहित्य-मंडल। पृ० सं० ४६, मूल्य ॥=)

इस संग्रह में चार लेख हैं—रूप और स्वरूप लोक और परलोक, सूक्ष्म और स्थूल, गति और प्रगति। इन लेखों में एक प्रकार से परस्पर सम्बन्धित युग्मों की तुलना है। इस तुलना में प्रायः समन्वयात्मक बुद्धि से काम लिया गया है केवल गति और प्रगति में लेखक का प्रगति की अपेक्षा गति का अधिक पक्ष समर्थन किया है क्योंकि उनको कलकत्ता और दिल्ली की अपनी जन्मभूमि मरुभूमि से अधिक प्रेम है—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। मरुभूमि में भी प्रगति तो है किन्तु वहाँ का वातावरण गति का है। वहाँ का प्रतीक वायुयान नहीं वरन् रेगिस्तानी जहाज ऊँट है। उसके प्रति भी लेखक मोह नहीं छोड़ सके हैं। अस्तु।

गति में इतना तो महत्व है ही कि हम अपने सीमित क्षेत्र से अधिक निकट का ब्यौरेवार परिचय प्राप्त कर सकते हैं और मन में रेडियो का सा आकाश-पाताल सदृश विभिन्न दृश्यों का संयोजन नहीं करना पड़ता है। मन रेडियो की अपेक्षा चंचल होते हुए भी अधिक स्थायित्वप्रिय है। कम से कम भारतीय मन ऐसा ही है।

रूप और स्वरूप में लेखक ने नाम रूप के परिवर्तनशील दिखावटी आडम्बर और आत्मा के स्थायी तत्व का (पहले को रूप कहा है और दूसरे को स्वरूप) तुलनात्मक विवेचन है। रूप में लौकिक दृष्टि है, स्वरूप में तत्ववेत्ता की दृष्टि है। लेखक ने दोनों को महत्व दिया है। पूर्णता दोनों को मिला कर ही आती है। लेखक आम खाने के साथ पेड़ भी गिनना चाहता है और समालोचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुठलियों के भी दाम चाहता है क्योंकि गुठली में भी भविष्य की आशा रहती है। स्थूल और सूक्ष्म में भी इसी समन्वय बुद्धि से काम लिया है। ईश्वर सत्यं सुन्दरम् है। यदि सूक्ष्म 'सत्यं' और 'शिवं' है तो स्थूल 'सुन्दरम्' है। लोक परलोक में परलोक को भी लोक में अवतरित कर पुनर्जन्म के प्रश्न पर एक नया प्रकाश डाला गया है जो पाश्चात्य विचारकों के अधिक अनुकूल है। इन निबन्धों में निबन्धों की सी स्वच्छन्दता और प्रसादन वृत्ति है।

—गुलाबराय

कविता

बरगद की बेटी—रचयिता—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'। प्रकाशक—नीलाम प्रकाशन गृह, ५ खुशरो-बाग रोड, इलाहाबाद। मूल्य तीन रुपये।

'अश्क' जी मुख्यतः एकांकी एवं कहानी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। यों तो एकाधिक कविता-संग्रह भी निकल चुके हैं किन्तु इस खण्ड-काव्य में जो वस्तु विन्यास का चयन, भाषा-प्रवाह और व्यापक अन्तर्दृष्टि लक्षित होती है उनसे रचयिता की बहु-मुखी प्रतिभा का सहज अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रेम-कथा के माध्यम से कवि ने विनाश-कारी सामन्तवादी समाज-व्यवस्था के अन्तर्गत श्रेणी संघर्ष का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। लहरां काव्य की नायिका ही 'बरगद की बेटी' है' बरगद के नीचे ही वह नायक 'अनवर' से प्रेम करना आरम्भ करती है। खण्डकाव्य विषादान्त है, क्योंकि अनवर नायक पहिले ही सादिक के हाथों मारा जाता है, पीछे लहरां भी अनवर के पिता की लालसा से बचने के लिए नदी में कूदकर अपना सतीत्व बचाती है।

काव्य का प्रसाद गुण इसमें सर्वत्र विद्यमान है। अलंकार स्वाभाविक हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में कवि की 'प्रेरणा' शीर्षक में व्यक्त किये गये विचार तथा श्री यशपालजी का प्रथम परिचय पुस्तक को समझने में बड़े सहायक हैं।

कुहुकनी—रचयिता—अध्यापक 'प्रसाद'। प्रकाशक—कवि कुटीर, परबतसर (मरुधर)। मूल्य डेढ़ रुपया।

इस काव्य-पुस्तिका में कवि के छः वर्षों की बिखरी काव्य साधना २४ कविताओं में विभाजित है। इनमें सर्वत्र कवि का पुष्ट स्वर देखने को नहीं मिलता। पिंगल की सामान्य भूलें और लय में प्रवाह का अभाव बहुत खटकता है। यद्यपि पुस्तक के अन्त में शुद्धिपत्र दिया गया है तथापि और भी बहुत सी भूलें रह गयी हैं। व्याकरण की साधारण गलतियाँ भी विद्यमान हैं। एक स्थान पर 'जिन्दगी की साधना था' लिखा है जो सम्भवतः नीचे के पद के 'तुमको खोजता था' से तुक मिलाने के लिए है। दूसरे शब्द को उस स्थान पर रख कर अशुद्धि का मार्जन किया जा सकता था पर कवि इसमें सचेष्ट नहीं जान पड़ता।

कल्पना के पंखों पर उड़ कर कवि ने जिन कविताओं का प्रणयन किया है उनमें भावनायें विशृङ्खलित सी जान पड़ती हैं पर जिनकी अनुभूति कवि ने वास्तविक जगत में की है उनमें भावनाओं का गुम्फन सिलसिले के साथ और ओजपूर्ण है। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कवि समाज में फैले हुए अनाचारों का भावात्मक चित्र उपस्थित करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल हुआ है। वर्षा, दीवाली, बन्दी शीर्षक कवितायें वैसी ही हैं। बन्दी की ये पंक्तियाँ -

यह धरती केवल पूँजी की
अन्याय यहाँ रह सकता है,
कानून उन्हें जीने देता
जो इसकी चोटें सहता है।

कवि के हृदय को व्यक्त करती हैं। कवि का भविष्य उज्ज्वल दीख पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनागत—रचयिता—श्री हंसकुमार तिवारी। प्रकाशक—मानसरोवर प्रकाशन, गया। मूल्य २)

तिवारीजी बिहार के प्रख्यात शब्द-शिल्पी हैं। कहानी, आलोचना, और काव्य तीनों आपके विषय हैं और तीनों पर असाधारण अधिकार रखते हैं। प्रस्तुत काव्य पुस्तक इनका प्रथम काव्य-संग्रह है जिसमें चुनी हुई ४५ कवितायें संग्रहीत हैं। कवि 'वाद' के विवाद से ऊपर है जहाँ भावना रमी शब्दों के अन्दर उसे बाँध दिया—कला के स्वर्णिल दुकूल को पकड़ कर। किन्तु वास्तविक जगत में जिन काँटों की राह से उसे चलने को विवश होना पड़ा है उनके तथा उन मार्गों पर चलने वालों के साथ कवि अधिक सहानुभूति रखता है इस कारण वैसी कविताओं में वेग है, प्राण हैं। कवि उन्हें वाणी देने में पूर्ण सफल हुआ है। देखिए विवशताओं में जकड़े मानव का चित्र—

चीथड़ों में आग यौवन का बँधा
हड्डियों में मुक्त नभ का मन बँधा
सिन्धु प्राणों में बँधा उल्लास का,

इन कविताओं में अनुभूति है जिसे हृदय के रस से मिलाकर कवि ने स्निग्ध बनाया है।

दो दिनों की गाँठ में जीवन बँधा।

कवि ने केवल कांटों का ही वर्णन नहीं किया है उनके अन्दर पैठ कर कठोर सत्य को भी पाने का प्रयास किया है। जीवन में सामञ्जस्य का पक्षपाती होकर वह काँटों की कथा की उपेक्षा नहीं करता, शूल भी उसे प्यारे हैं क्योंकि—

यह जीवन चन्दन की लकड़ी
घिसकर ही गन्ध लुटाता है
यह जीवन मिहदी की पत्ती
पिसकर ही रंग दिखाता है

पुस्तक की छपाई-सफाई और गेट अप सुन्दर है। आशा है हिन्दी-काव्य-जगत् इसका स्वागत करेगा।

—शिवप्रसाद लोहानी बी० ए०, 'साहित्य-रत्न'

गीतोपहार—लेखक और प्रकाशक श्री सु० शंकर राजू नायडू, एम० ए०, हिन्दी अध्यापक यूनिवर्सिटी कालेज, त्रिवेन्द्रम। पृष्ठ ६४, मूल्य १)

यह एक भावुक हृदय के उद्गार हैं। इसमें भाषा, भाव और कविता के गुण इतने नहीं मिलेंगे जितना एक अहिन्दी भाषी का हिन्दी प्रेम प्रकट होगा। श्री नायडू की इसी दृष्टि से हम प्रशंसा करते हैं।

तथागत—लेखक श्री रत्नशंकर जी, प्रकाशक प्रसाद मन्दिर बनारस। पृष्ठ, २४ मूल्य लिखा नहीं।

इस छोटी सी पुस्तक में महात्मा बुद्ध के जीवन की संक्षेप चर्चा की गई है। अवतरण निष्क्रमण यशोधरा राहुल आदि आठ शीर्षकों में ये कविताएँ लिखी गई हैं। भावों की दृष्टि से पुस्तक उदात्तभाव पैदा करने वाली है। कविता की दृष्टि से साधारणतः अच्छी है।

उपन्यास

सेव का वृक्ष—मू० ले०—गाल्सवर्दी अनु०—श्री आनन्दीप्रसाद मिश्र 'निर्द्वन्द्व'। प्र०—श्री दुलारेलाल अध्यक्ष, गङ्गा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ ११६, मू० सजिल्द २।)

इस छोटे से रोचक उपन्यास में नायक फ्रैंक अशरटस के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। उपन्यास का कथानक इतना ही है कि अशरटस ग्रामीण मैगन को प्यार करने लगता है। उससे विवाह करने के हेतु वह शहर में आवश्यक सामान खरीदने आता है—वहाँ स्टीला के प्रेम-पाश में ऐसा फँसता है कि उसी से विवाह करने को बाध्य होता है। परित्यक्ता मैगन निराश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर आत्महत्या कर लेती है। २६ वर्ष बाद अशरटस मैगन की कब्र के पास आकर उसकी दुःखभरी कथा सुन कर बेहोश हो जाता है। प्रेम का इसमें सुन्दर प्रतीकात्मक चित्रण (Symbolical representation) हुआ है। प्रतीक को निभा चलने का श्रेय 'सेब' को है। अनुवाद बहुत कम जगह अनुवाद सा मालूम पड़ता है, इस दृष्टि से अनुवाद बहुत कुछ सफल कहा जा सकता है। पुस्तक पठनीय है।

स्वतन्त्र-भारत—लेखक-पं० शुकदेवविहारी मिश्र और पं० प्रतापनारायण मिश्र। प्रकाशक–वही। पृष्ठ १६६, मू० सजिल्द ५)

पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्र हिन्दी के प्रसिद्ध पुराने वयोवृद्ध आलोचक हैं। श्री मिश्रद्वय ने 'सामयिक घटना-पूर्ण' यह एक 'राजनीतिक उपन्यास' प्रस्तुत किया है। प्राक्कथन में कहा गया है—"है तो यह भी हमारा एक उपन्यास ही, फिर भी काल्पनिक कथा के साथ इसमें भारतीय राजनीतिक घटनाएँ भी कुछ प्राचुर्य से जुड़ी हुई हैं।.....इस पुस्तक में पहले तो स्वतन्त्रता-प्राप्ति का थोड़ा सा इतिहास है, और तब प्रजा में मार-काट के हाल थोड़े में बतलाए गये हैं। अनन्तर बंगाल, कश्मीर और कबीलों के हाल कहे गये हैं। साम्यवादियों तथा आतंकवादियों के भी कुछ कथन हैं, तथा देशीय विचारों और मिलों के श्रमियों के भी। शेष ग्रन्थ में उपन्यास का डोर चलाया गया है।" पर उपन्यास का डोर चल नहीं पाया है। यह पुस्तक इतिवृत्तात्मक, परिचयात्मक बातों से इतनी अधिक भरी हुई है कि ठोक पीट कर भी उपन्यास बन नहीं पाई। कहाँ इतिवृत्त, कहाँ कल्पना—Fact और Fiction का मेल बैठता कैसे ? वस्तुतः यह न तो इतिहास है, न उपन्यास, पर है दोनों की बेमेल सी खिचड़ी जिसमें दाल और चावल अलग-अलग दिखलाई पड़ते हैं। 'उपन्यास का डोर' इतना ही है कि पात्रों में परिवर्तन नहीं होता। न पात्रों में जान है, न कथानक में और न दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध है। लेखक का मंतव्य स्वतन्त्र भारत का इतिहास देना है—वह इतना स्पष्ट और प्रखर है कि उपन्यास का छद्मवेश (disguise) बार-बार उघड़ जाता है। मिलों के श्रमजीवियों की 'साधारणीदशा' चार पृष्ठों में कही गई है जो उपन्यास से सर्वथा असंपृक्त, परिचयात्मक लेख है। शैली भी एक दम पण्डिताऊ है जो उपन्यासोपयुक्त नहीं। ऐसे उपन्यासनामधारियों से न इतिवृत्त में ही पाठक का उत्साह रह पाता है, न उसका किसी प्रकार का मनोरंजन हो पाता है। मिश्रजी के विशद राजनीतिक ज्ञान का सही उपयोग होना चाहिए जो निबन्धों में ही सम्भव है। लेखक के प्रति इस आलोचक का आदर भाव है, पर यह निष्पक्ष आलोचना व्यक्ति की नहीं, कृति की है अन्यथा जिसको माल्टन ने Author Fallacy बताया है, उसकी भारी भूल होती।

—प्रो० नागरमल सहल एम० ए०

जीवनी-संस्मरण

गांधीजी के जीवन प्रसङ्ग—सम्पादक श्री चन्द्रशङ्कर शुक्ल, प्रकाशक–बोस एण्ड कम्पनी-पब्लिशर्स लिमिटेड, बम्बई २। पृष्ठ ३७१, मूल्य ६)

'देश विदेश के तिरपन लेखकों की कलम से' लिखे हुए संस्मरणों का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। देश के सर्व श्री डा० भगवानदास, घनश्यामदास बिड़ला, आचार्य कृपलानी, मीराबेन, सुशील नय्यर, राजेन्द्रप्रसाद, पट्टाभी तथा विदेश के फेनर ब्रेकवे, सी० डोक, फिशर, म्यूरिटस लेस्टर, लिंडसे, तान युन-शान आदि महानुभाव हैं। इन विशिष्ट सज्जनों की कलम से उस महापुरुष के बारे में जो कुछ लिखा गया है उसका महत्वपूर्ण होना स्वाभाविक है। अतः यह संग्रह बहुत ही उत्तम प्रकाशन माना जायगा—इसमें सन्देह नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत-रत्न—लेखक श्री मुरारीलाल शर्मा, प्रकाशक—अनूठा प्रकाशन, शंकर सदन, आगरा। पृष्ठ १५८, मूल्य १॥)

इस पुस्तक में भारत के २० महापुरुषों के जीवन वृतान्त दिये गए है। जीवनियाँ सचित्र हैं और वर्णन बड़ा रोचक और आकर्षक है। बालकों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है, हमारा विश्वास है कि उनके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। पं० मुरारीलाल जी पुराने लेखक हैं। उनकी लेखनी से बालकों के लिए अच्छी पुस्तकें निकल सकती हैं। आशा है कि वे इधर विशेष ध्यान देंगे।

बा, बापू और भाई—लेखक श्री देवदास गान्धी। प्रकाशक—सस्ता साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ४८, मूल्य ।॥)

महात्मा गान्धी के सुपुत्र श्री देवदासजी के लिखे हुए यह तीन लेखों की एक संग्रह पुस्तक है। माता पिता और भाई (श्री हीरालालजी) के निधन पर प्रकट किए गए ये उद्‌गार बड़े भाव-पूर्ण और मार्मिक हैं और ऐसे स्वाभाविक ढङ्ग से लिखे गए हैं कि पढ़ते ही बनता है।

विविध

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा के बारह वर्ष—लेखक तथा प्रकाशक—भदन्त आनन्द कौशल्यायन, मंत्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा। पृष्ठ संख्या १०६, मूल्य १।)

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण और कर्मठ समिति है।

सन् १९१८ में महात्मा गांधीजी की अध्यक्षता में इन्दौर में महात्माजी के सुझाव से ही 'दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा' स्थापित हुई, सन् १९३६ में नागपुर में डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में 'हिन्दी प्रचार समिति' की स्थापना हुई।

सन् १९३८ में शिमला अधिवेशन में श्री पराड़करजी की अध्यक्षता में निश्चय हुआ कि इस समिति का नाम 'राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' रखा जाय। और जब 'राष्ट्रभाषा' के नाम के लिये विवाद छिड़ा कि भाषा का नाम 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी' हो, तब सम्मेलन ने राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' मानी। यह समिति 'हिन्दी' साहित्य सम्मेलन की थी—फलतः महात्मा गांधीजी ने आगे चल कर इससे त्याग-पत्र दे दिया। यह समस्त वृत्त इस विवरण के आरम्भ में विस्तार-पूर्वक है। मंत्री महोदय ने अन्त में लिखा है:—

"समिति का उद्देश्य है, हिन्द के घर-घर में हिन्दी का सन्देश पहुँचाना, प्रान्तीय भाषाओं और उनके साहित्य की संवृद्धि में सहायक होकर हिन्दी के प्रेममय धागे में राष्ट्र के बिखरे तत्वों को एक साथ बाँध कर अपने राष्ट्र को सबल बना विश्व के राष्ट्र-संघ में अपना मस्तक ऊँचा करना। भदन्त आनन्द कौशल्यायन जी के कर्मठ और कुशल मन्त्रित्व में इस समिति ने अपने उद्देश्य में जिस सीमा तक सफलता पाई है उसका संक्षिप्त विवरण इसमें मिलता है। और उससे प्रसन्नता होती है। इस विवरण से इस कार्य में लोगों को पुनः आस्था होगी और राष्ट्र-भाषा प्रचार का महत्व सिद्ध होगा।

भारतीय संस्कृति और हिन्दू कोडबिल—लेखक श्री जवाहिरलाल जैन, प्रकाशक—युगान्तर प्रकाशन मन्दिर लिमिटेड, जयपुर। पृष्ठ ४०, मूल्य।)

हिन्दू कोडबिल की चर्चा आज-कल बहुत चल रही है। इस पुस्तक में लेखक ने इस बिल की मुख्य-मुख्य बातों पर प्रकाश डालते हुए उसकी आलोचना की है और उसकी उपादेयता को सिद्ध किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ काशी
की
महत्व पूर्ण पुस्तकें

१—पथ चिह्न—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी .... २)
२—मुक्ति-दूत—श्री वीरेन्द्रकुमार .... ४॥)
३—दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ—डा० जगदीशचन्द्र जैन .... ३)
४—शेर-ओ-शायरी—श्री गोयलीय .... ८)
५—आधुनिक जैन-कवि—श्रीमती रमारानी जैन .... ३॥)
६—हिन्दी जैन साहित्य का सं० इतिहास—श्री कामताप्रसाद जैन .... २॥।८)
७—कुन्द कुन्दाचार्य के तीन रत्न—श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल .... २)
८—महाबन्ध—पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर .... १२)
९—करल करवण—प्रो० प्रफुल्ल कुमार मोदी .... १)
१०—मदन पराजय—प्रो० राजकुमार जैन .... ८)
११—कन्नड़ प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची—पं० के भुजबली शास्त्री मूड बिद्री .... १३)
१२—काम बिनिश्चय विवरण—प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य .... १५)
१३—तत्वार्थ वृत्ति—प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य .... १६)
१४—सप्तभायारत्न मंजूषा—प्राध्यापक हरि दामोदर वेलणकर .... २)
१५—नाम माला सभाष्य—पं० शम्भूनाथ त्रिपाठी .... ३॥)
१६—केवल ज्ञान प्रश्न चूणासणि—पं० नेमीचन्द्र जैन .... ४)

प्राप्ति-स्थान— १—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड बनारस,
२—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

हिन्दी पुस्तकों का प्रमुख केन्द्र है।

जब आपको हिन्दी की पुस्तक कहीं न मिले, आप हमें लिखिये हम उसे भेजने का प्रयत्न करेंगे।

हिन्दी परीक्षाओं की पुस्तकें, उनकी सहायक पुस्तकें तथा अन्य आलोचनाएँ, कविता, नाटक, हास्यरस, राजनीति, उपन्यास, कहानियाँ, धार्मिक, ग्रामोपयोगी, स्त्रियोपयोगी आदि सभी तरह की पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं। एक बार आर्डर देकर परीक्षा करें।

व्यवस्थापक—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के ग्राहकों के आग्रह पर

परीक्षार्थी प्रबोध का दूसरा खण्ड

जिसमें

परीक्षाङ्क और विद्यार्थी अङ्क भी सम्मिलित हैं।

छपने को प्रेस में दिया जा रहा है, जिसका मूल्य ३) होगा।

विशेष रियायत

जो साहित्य सन्देश के ग्राहक (३१ अक्टूबर १९५० तक) छपने से पहले ही २।) रुपया मनीआर्डर से भेज देंगे उन्हें रजिस्ट्री पोस्टेज नहीं देना होगा।

जो ग्राहक प्रथम और द्वितीय दोनों भागों के लिए ४॥) मनीआर्डर से पेशगी भेज देंगे उन्हें रजिस्ट्री व पोस्टेज नहीं देना होगा।

मनीआर्डर न भेजने पर

सभी ग्राहकों को पौने मूल्य से भी कम अर्थात् ४।) में परीक्षार्थी प्रबोध के दोनों भाग दिये जायँगे—ऐसी दशा में ग्राहकों को ही रजिस्ट्री और पोस्टेज का खर्चा देना पड़ेगा। हर एक का पूरा मूल्य ३) है, और पृथक पृथक लेने पर २।) में मिलेगा।

आज ही अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करा लें और विषय-सूची मुफ्त मँगायें

प्रथम भाग का प्रथम संस्करण एक महीने में ही बिक गया था और सैकड़ों ग्राहकों को दूसरे संस्करण तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। अब दूसरा संस्करण भी समाप्त होने वाला है।

नोट:—१ जो सज्जन साहित्य सन्देश के ग्राहक नहीं हैं वे पूरा मूल्य ही भेजें। अथवा ४) वार्षिक मूल्य भी साथ भेज कर साहित्य-सन्देश के ग्राहक बन जायँ।

२ जो ग्राहक एजेन्टों से हर माह प्रतियाँ खरीदते हैं उन्हें उनके एजेन्टों से उक्त नियम के अनुसार ही परीक्षार्थी प्रबोध मिलेगा।

मनीआर्डर और आर्डर भेजने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

अब मनीआर्डर भेजने की आवश्यकता नहीं

१९४९-५० की पूरी फाइल

साहित्य-सन्देश के ११ वें वर्ष—जुलाई १९४९ से जून १९५० तक—की कुछ पूरी फाइलें बन कर तैयार हैं। यह फाइल पूरी सिलसिलेवार विषय-सूची के साथ मोटी बसली की जिल्द व आकर्षक कवर के साथ बनाई गई हैं। मूल्य ५), पोस्टेज पृथक।

पूरे वर्ष में जो २-३ अंक समाप्त होगये थे वे बहुत प्रयत्न करके हमने संग्रह किये हैं—फाइलें थोड़ी बनी हैं अतः आर्डर तुरन्त भेजें—विषय-सूची मुफ्त मँगायें। जुलाई मास में मनीआर्डर से पेशगी भेजने पर पोस्टेज मुफ्त की रियायत हमने पहले छापी थी वह अब समाप्त हो गई। अतः अब मनीआर्डर से पेशगी रुपया भेजने की आवश्यकता नहीं। आप वी० पी० से भेजने के लिये अपना पत्र भेजदें। यदि फाइल उपलब्ध होगी तो वी० पी० से भेजदी जायगी।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु अङ्क :

साहित्य-सन्देश का विशेषांक

भाद्रपद शुक्ला ७ संवत् १९०७ को भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र का उदय हुआ था। भाद्रपद शुक्ला ७ सं २००७ को उनकी जन्म शताब्दी सभी प्रमुख साहित्यिक क्षेत्रों में मनायी जायगी। साहित्य सन्देश भी अपनी श्रद्धांजलि के रूप में इस अवसर पर एक विशेषाङ्क निकाल रहा है जिसमें भारतेन्दु के सभी पक्षों पर हिन्दी के प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रकाश डाला जायगा। साहित्य सन्देश के ग्राहकों को यह बिना मूल्य मिलेगा। जो लोग इसको पृथक खरीदना चाहेंगे उनको १) में मिल सकेगा। भारतेन्दु अङ्क मुफ्त चाहने वालों को अभी से ग्राहक बनजाना चाहिए।

भारतेन्दु अङ्क में प्रकाशित होने वाले लेखों की सूची।

१—भारतेन्दु-जीवन
२—भारतेन्दुजी के निबन्ध
३—भारतेन्दुजी पर साहित्यिक प्रभाव
४—भारतेन्दुजी की भाषा
५—भारतेन्दुजी का हास्य व्यंग
६—भारतेन्दुजी की भक्ति भावना
७—भारतेन्दु और साहित्य शास्त्र
८—भारतेन्दु की कुछ रचनाएँ
९—भारतेन्दु पर साहित्य
१०—भारतेन्दु-युग के नक्षत्र
११—भारतेन्दु की काव्य कला
१२—इतिहास शोधक भारतेन्दु
१३—भारतेन्दु की नाट्य कला
१४—युग प्रवर्तक भारतेन्दु
१५—भारतेन्दु के आलोचक
१६—भारतेन्दु-समाज सुधारक के रूप में
१७—भारतेन्दुजी की कविता की शैलियाँ
१८—भारतेन्दुजी की देशभक्ति और राजभक्ति
१९—भारतेन्दु कला में भाषा सम्बन्धी विवाद
२०—अनुवादक भारतेन्दु (विशेषतः मुद्राराक्षस के सम्बन्ध में)
२१—भारतेन्दु के धार्मिक विचार और उनका-जीवन दर्शन
२२—भारतेन्दु युग की ऐतिहासिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ

साहित्य-सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

] आगरा—अगस्त, १९४९ [भाद्र २

विषय सूची

—ध्वनि-मीमांसा—श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी एम० ए० शास्त्राचार्य ४९

—ज्ञानाश्रयी कवि श्री महात्मा अक्षर अनन्य—श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव ५३

—यशोधरा और वदेही बनवास में विरह—कुमारी प्रेमा अग्रवाल ५९

—छायावाद का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण—श्री रामानुज 'सौमित्र' ६२

—प्रसादजी की दो कहानियाँ—श्री शिव बालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० 'आनर्स' ६५

—क्या रामगुप्त और चन्द्रगुप्त परस्पर अनुरक्त थे ?—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए० ६९

—हिन्दी काव्य में नारी—कुमारी विजय लक्ष्मी अग्रवाल 'साहित्यरत्न' ७२

—मीरां के संदिग्ध सम्बन्धी—श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ७६

—पुस्तक-परिचय— ८१

—सम्पादकीय— ८८

—गुलाबराय एम० ए०
—महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य ४)
एक अङ्क का ।-)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

प्रेमचन्द : एक विवेचन—डा० इन्द्रनाथ मदान ३।)

कविता

एक ला चलो रे—श्री उदयशंकर भट्ट १)
बापू चालीसा—बेनीराम त्रिपाठी 'श्रीमणि' ।)
जीवन रश्मि—डा० देवराज ३)
चेतना—श्री बाबूराम पालीवाल १॥)
सरावगी सुषमा—श्रीयुत कामताप्रसाद सरावगी १॥)

उपन्यास

ओ०टी०आर अमर हो—श्री विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त ।॥)

कहानियाँ

पलायन तथा उत्पाड़न—श्री रामनन्दन मिश्र ।)
करुणाचित्र—श्री चन्द्रदेव नारायण १)
खोज—पं० द्विजेन्द्रनाथ मिश्र ३)
लाल तारा—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी २)
कल्लोल—श्री विशम्भरनाथ 'कौशिक' ३)
क्रान्ति और बलिदान—श्री कामताप्रसाद सरावगी २॥)

नाटक

झाँसी की रानी—श्री मधुसूदन चतुर्वेदी
वरगद—किशनलाल छेराणी

बालोपयोगी

प्यारे राजा बेटा—श्री रिषभदास रांका

स्त्रियोपयोगी

स्त्री विनोदनी—श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर

विविध

जयहिन्द का आध्यात्मिक इतिहास—पं० बचन प्रसाद त्रिपाठी ॥
बापू के साथ—श्री समंगल प्रकाश
वस्त्र कला—श्री आर० बी० एल० जौहरी

विज्ञान

स्वप्नदोष विज्ञान—पं० गणेशदत्त इन्द्र विद्यावाचस्पति

धार्मिक

रामचरित्रमानस—टीकाकार पं० देवनारायण द्विवेदी
जो सन्तों ने कहा था—श्री जमनालाल जैन

हिन्दी-साहित्य का एक अमूल्य रत्न

ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन

मूल्य ६) मात्र

हिन्दी के ख्यातनामा गम्भीर आलोचक तथा विद्वान लेखक

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

की नई कृति

यह पुस्तक लोक-साहित्य के सभी अंगों पर विशद वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करती है। हिन्दी में यह सर्वथा नया उद्योग है जिसकी विद्वानों ने प्रशंसा की है।

प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

ग्राहक संख्या अवश्य लिखिए

नोट—हमारे अनेक कृपालु ग्राहक हम से पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या नहीं लिखते जिससे बड़ी असुविधा होती है और उनकी शिकायत दूर करना हमारे लिए असम्भव हो जाता है। यदि ग्राहक नम्बर याद न रहे तो ग्राहकगण रुपया भेजने की तारीख लिखें जिससे भविष्य में हम उत्तर देने में असमर्थ होंगे।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ११] आगरा—अगस्त, १९४९ [अङ्क २

ध्वनि-मीमांसा

(श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी एम० ए०, शास्त्राचार्य)

काव्य के समीक्षकों ने काव्य के तीन भेद माने हैं—उत्तम, मध्यम तथा अधम। जिस काव्य में व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानेता रहती है उसे उत्तम, जहाँ व्यङ्ग्यार्थ गौण हो जाता है वह मध्यम और वाच्यार्थ प्रधान-काव्य को अधम कहा है। इस विचार से मत-साम्य नहीं रखने वाले कहते हैं कि वाच्यातिशायी व्यङ्ग्य रहने पर उत्तम काव्य, वाच्यार्थ प्रधान रहने पर मध्यम काव्य और शब्दालङ्कार की प्रधानता रखने वाले काव्य को अधम काव्य कहा जायगा। इन तीन भेदों के अतिरिक्त पण्डितराज जगन्नाथ ने एक उत्तमोत्तम काव्य का प्रकार मान कर काव्य को चार भेदों में विभाजित किया है। लेकिन अधिक सम्मति तीन ही प्रकार के काव्य के भेद मानने के पक्ष में है। काव्य के इस प्रकार के भेद का निर्धारण बहुत ही मनोवैज्ञानिक है। व्यङ्ग्य-प्रधान काव्य के श्रवण एवं पठन-मात्र से सहृदय आनन्द मग्न हो जाते हैं, उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती। इसकी अपेक्षा वाच्यार्थ प्रधान काव्य से कुछ कम आनन्द की प्राप्ति होती है और तीसरे प्रकार के काव्य से तो बहुत कम। इसीलिये विद्वान् आचार्यों ने उत्तम काव्य के प्रणयन में विशेष मनोयोग दिया। व्यङ्ग्यप्रधान काव्य को ही ध्वनि-संप्रदायवादियों ने ध्वनि-काव्य कहा है। इसके स्पष्टीकरण के लिये महाकवि बिहारी का एक अनूठा दोहा लीजिये—

'पलनि प्रगटि बरुनीन बढ़ि नहिं कपोल ठहराँय।
अँसुवा परि छतियाँ छनक छन-छनाय छपि जाँय॥'

पं० पद्मसिंह शर्मा से इसका विवेचन यों किया है—इस दोहे में संतापाधिक्य की प्रबलता का वर्णन किया है। आँसू गिर नहीं सकते, छनछना कर वहीं छिप जाते हैं। आँसुओं की उत्पत्ति और पतन के प्रकार में कुछ विलक्षणता है। 'बरुनीन बढ़ि' से बरौनियाँ सघन हैं यह प्रतीत होता है और साथ ही साथ वियोग चिन्ता में अर्धनिमीलन दशा की भी प्रतीति होती है। यदि आँखें खुली रहतीं तो पलकों के ऊपर उठे रहने से, और आँखों को बिलकुल बन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने से पलकों को नीचे की ओर होने से इकट्ठे होकर आँसुओं का गिरना कठिन हो जाता। 'नहिं कपोल ठहरायँ' कह कर कवि यह बताता है कि कपोलों में श्लक्ष्णता-स्निग्धता है। कपोल इस प्रकार स्निग्ध हैं कि उन पर पानी की बूँदें टिक नहीं सकतीं। 'पर छतियाँ छनक छन-छनाय छपि जाँयँ' वाक्य में 'छनक' पद से आँसुओं का आधिक्य तथा निरन्तर पतन ध्वनित होता है। 'छनछनाय छपि जायँ से यह ध्वनित होता है कि वियोग-जन्य सन्ताप अधिक है। इस प्रकार इस दोहे के हरेक पद से भिन्न-भिन्न अर्थ की व्यञ्जना होने से व्यङ्ग्यार्थों के वाच्यातिशायी होने के कारण यह ध्वनि-काव्य का उदाहरण हुआ जो उत्तम काव्य की कोटि में आता है।

इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने तपस्या में रत पार्वती का वर्णन किया है—

'स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः,
पयोधरोत्सेधनिपात चूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे,
चिरेण नाभिं प्रथमोद बिन्दवः॥'

इस पद की व्याख्या करते समय मल्लिनाथ ने लिखा है कि इसके प्रत्येक पद को साभिप्राय होने के कारण यहाँ 'परिकर' अलंकार है। यहाँ भी वाच्यातिशायी व्यङ्ग्य के होने के कारण यह भी ध्वनि—उत्तम-काव्य का उदाहरण है।

ध्वनि के अनेक मार्ग हैं। कहीं पर विधि को वाच्य रहने पर प्रतिषेध की ध्वनि होती है। जैसेः—

'भ्रम धार्मिक ! विस्त्रब्धः,
स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदा नदी कच्छ कुञ्जवासिना दप्तसिंहेन॥'

'हे धार्मिक ! विश्वस्त होकर भ्रमण करो, क्योंकि गोदावरी नदी के तट के कुञ्ज में रहने वाले दप्तसिंह के द्वारा वह कुत्ता आज मार दिया गया।' यहाँ भय उत्पन्न करने वाले कुत्ते का विनाश हो गया, इसलिये भ्रमण का विधान वाच्य है। किन्तु कुत्ता भीरु है और सिंह की उपलब्धि बतायी गयी है इसलिये भ्रमण का निषेध किया जाता है जो व्यङ्ग्य है। सिंह से डरने के कारण कुत्ता में भीरुता सिद्ध होती है और सिंह के रहने के कारण भ्रमण करना असंभव है, इसलिये 'भ्रमण मत करो' यह अर्थ ध्वन्यमान हुआ। यहाँ चमत्कारिता इस व्यङ्ग्यार्थ में ही है, इसलिये भ्रमण निषेध रूप वस्तु को व्यङ्ग्य होने के कारण यह वस्तु ध्वनि हुई। यह उक्ति सहेट स्थल पर मिलने जाने वाली किसी स्त्री की सखी की है। वह समझती है कि यदि धार्मिक व्यक्ति का वहाँ संचार हुआ तो उसके सञ्चार से तथा पल्लव पुष्पों के तोड़ लेने से कुञ्ज के अँधेरेपन के नष्ट हो जाने के कारण उन लोगों के छिपे रहने में विघ्न उपस्थित हो जायगा। इसलिये धार्मिक के संचार को रोकने के उद्देश्य से वह उपर्युक्त बात कहती है। यहाँ अप्राप्ति की प्राप्ति रूप विधि के अभाव में भी ऐसे स्थान में धार्मिक का भ्रमण स्वतः सिद्ध है, लेकिन कुत्ते के भय से उस धार्मिक को भी भ्रमण छोड़ना पड़ा। अब, जबकि सिंह के द्वारा वह भयानक कुत्ता मार दिया गया तब प्रतिबन्धक के न रहने के कारण उसका भ्रमण प्राप्त होता है, लेकिन तुरन्त ही उसका निषेध भी हो जाता है क्योंकि; कुत्ते के डर से गाँव का भी भ्रमण धार्मिक ने छोड़ दिया था और वहाँ तो एक खूँखार सिंह ही निवास करता है। इसलिये 'तुम भ्रमण मत करो' यही उस स्त्री की सखी के कहने का अभिप्राय है।

इसी प्रकार कहीं प्रतिषेध वाच्य रहता है और विधि का बोध व्यञ्जनया होता है, इसलिए विधिरूप व्यङ्ग्य प्रतिषेध रूप वाच्य से भिन्न हो जाता है।

'श्वस्त्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोक्य।
मा पथिक ! रात्र्यन्धक ! शय्यायामावयोर्मज्जीः॥'

अर्थात् सास यहाँ सोती है और मैं यहाँ (दूसरे स्थान पर) सोती हूँ इसलिए रात में कम देखने वाले पथिक देख भाल कर चलना कहीं गिर मत पड़ना। इसमें यह व्यञ्जित है कि उसकी वृद्ध है वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाढ़ी नींद सोती है उसके जगने की शङ्का नहीं। यह एक स्वयं दूतिकर नायिका की एक पथिक के प्रति उक्ति है। यहाँ पर निषेध द्वारा विधि का उदाहरण उपस्थित हो जाता है।

इसी प्रकार कहीं पर विधि के वाच्य रहने पर विधि निषेध से विलक्षण ही तटस्थ व्यङ्ग्य रहता है।

'व्रज ममैवैकस्या भवन्तु निश्वांस रोदित व्यानि।
मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत ॥'

'तुम जाओ, केवल मैं ही लम्बी साँस लूँ और रोदन करूँ कहीं उसके बिना तुम्हारे भी श्वांस और रोदन न हों।' यहाँ पर 'जाओ' (व्रज) यह विधि है। दूसरी नायिका के पास जाना प्रमाद से नहीं है अपितु गाढ़ानुराग से ही। केवल पहले के दाक्षिण्य से ही तुम यहाँ ठहरे हो, इसलिये शठ हो। इस प्रकार गाढ़मन्यु रूप खण्डिता नायिका का अभिप्राय प्रतीत होता है जो न विधि है न निषेध—इन दोनों से विलक्षण है। इसी प्रकार कितने स्थल ऐसे भी मिलते हैं जहाँ प्रतिषेध तो वाच्य है लेकिन व्यङ्ग्य तटस्थ ही रहता है। अर्थात् विधि या निषेध कुछ भी व्यङ्ग्य नहीं रहता। जैसे:—

'प्रार्थये तावत् प्रसीद निवर्तस्व मुख शशि
ज्योत्स्ना विलुप्त तमो निवहे।
अभिसारिकानां विघ्नं करोष्यथासामपि हताशे।'

'हे अपने मुख-चन्द्र-प्रकाश से अन्धकार समूह का विलुप्त करने वाली! मैं प्रार्थना करता हूँ, प्रसन्न हो, लौटो। हे हताश! तुम और अभिसारिकाओं के भी कार्य में संकेत (संकेत स्थान पर जाने में) विघ्न करती हो।' नायक के घर आती हुई नायिका से नहीं पहचानने के व्याज से नायक की उक्ति है, अथवा अभिसारिका सामान्य के प्रति तटस्थ का यह कथन है। नायक यह कहता है कि तुम्हारे जाने से मेरे कार्य में बाधा पड़ती है और तुम्हारे मुखचन्द्र की चन्द्रिका से अन्धकार के नष्ट हो जाने के कारण सर्वत्र प्रकाशमय हो जाने से और अभिसारिकाओं के भी कार्य में विघ्न उपस्थित होता है यहाँ प्रवृत्ति का प्रतिषेध रूप निवृत्ति वाच्य है और विधि-निषेध से उदासीन—तटस्थ दयिता को अनुनय व्यङ्ग्य है। इसलिए वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ बिलकुल भिन्न हुआ।

इन सब के अतिरिक्त कहीं पर वाच्यार्थ दूसरे व्यक्ति को ग्रहण करता है और उसका व्यङ्ग्यार्थ उससे भिन्न को।

इसी प्रकार रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भाव-शान्ति, भावसन्धि और भावसबलता का ध्वनिरूप व्यङ्ग्य भी वाच्यार्थ के सामर्थ्य से आक्षिप्त होकर अर्थनिष्ठ व्यञ्जना से बोधित होता है। वह अभिधा शक्ति का विषय नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि रसादि को वाच्य माना जाय तो क्या अभिधा शक्ति की सहायता पाकर रस अथवा शृङ्गारादि शब्दों से उनका प्रतिपादन होगा या तात्पर्य शक्ति के बल पर विभावादि वाचक शब्दों के सहयोग से अभिधा द्वारा विभावादि तथा रसादि का बोध होगा? यदि रस या शृङ्गारादि शब्दों के द्वारा रसादि का आस्वाद हो तब तो रसादि शब्दों से रहित स्थल में इनकी प्रतीति कैसे होगी? जैसे—

'कर्णकल्पित रसाल मञ्जरी
पिञ्जरीकृत कपोलमण्डलः।
निस्तन्नयन वारिधारया
राधया मधुरिपुर्निरीक्ष्यते॥

'कानों में लगायी गयी आम्र की मञ्जरी से पिञ्जर-वर्ण के कपोल मण्डल वाले कृष्ण भगवान् नेत्रों से आँसू बहाती हुई राधा से देखे जा रहे हैं।'

'अनेक आकार प्रकार रङ्ग के,
सुधा समोये फलमंजुसे सदा।
विराजता अन्य रसाल तुल्य थः,
समोदकारी अमरूदरोदसी॥"

इन स्थलों में शृङ्गार रस की प्रतीति कैसे होगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह कहा जाय कि इन उदाहरणों में 'रसाल' शब्द के रहने के कारण रस की प्रतीति होने में कोई बाधा नहीं तो यह कहना युक्ति सङ्गत नहीं । क्योंकि पूरा 'रसाल' शब्द ही आम्र रूप अर्थ को बताता है और इसका एक देश रस शब्द अनर्थक है । वैयाकरण भी इससे सहमत हैं 'समुदायोह्यथवान् तस्यैकदेशोऽनर्थकः,' 'अर्थ बोध कराने की शक्ति समुदाय ही में है, उसका एक देश अनर्थक है ।' इसी प्रकार—

'अवतंसित मञ्जु-मञ्जरे,
तरुनी नेत्र चकोर पञ्जरे ।
नव कुङ्कम पुञ्ज पिञ्जरे,
मतिरास्तां मम गोप कुञ्जरे ॥

'सुन्दर मञ्जरी को भूषण बनाये हुए, तरुणी स्त्रियों के नेत्र रूपी चकोर के लिये पिंजड़ा और नये कुंकुम समूह से पिंजर वर्ण के कृष्ण भगवान् में मेरी मति हो ।'

'हौं बलि जाउँ छबीले लाल की ।
धूसर धूरि घुटुरुवन रेंगनि,
बोलन वचन रसालकी ।
छिटिक रहीं चहुँदिसि जु,
लटुरियाँ लटकन लटकति भालकी ॥
मोतिन सहित नासिका न चुनी,
कंठ कमल-दल-माल की ।
कछु कै हाथ कछू मुख माखन,
चितवनि नैन विसाल की ॥
'सूर' सु प्रभु के प्रेम मगन भईं,
ढ़िग न तजनि ब्रज बाल की ॥'

इत्यादि स्थलों में कृष्ण विषयक भाव की प्रतीति कैसे होगी ?

(देवादि विषयक सब प्रकार की रति, कान्तादि विषयक अपुष्ट रति, रस भाव को अप्राप्त हास आदि और विभावादिक से व्यञ्जित व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं । इसलिये अंगभूत अनुभाव आदि से अपुष्ट रति को भाव ही कहते हैं रस नहीं ।) जहाँ कहीं भी इनके न रहने पर रस तथा भाव आदि की प्रतीति होती है वहाँ सभी जगह, विभाव, अनुभाव आदि की उपस्थिति द्वारा ही, अन्यथा नहीं । शृङ्गार आदि शब्दों के रहने पर और विभाव आदि के न रहने पर कहीं भी रसवत्ता की प्रतीति नहीं देखी जाती । सारांश यह कि वाचक शब्दों के बिना केवल विभाव आदि के रहने पर रसादि का बोध होता है और केवल वाचक शब्दों से विभाव आदि के अभाव में रस की प्रतीति नहीं होती है । इस अन्वय व्यतिरेक से यह सिद्ध हुआ कि वाच्यार्थ के सामर्थ्य से रसादि का आक्षेप होता है, ये वाच्य तो कभी होते नहीं । इसलिये रसादि भी वाच्य से भिन्न हुए ।

इस विषय में पठनीय सामिग्री :—

१—रस मंजरी—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
२—काव्य के रूप—श्री गुलाबराय एम० ए०
३—काव्य-प्रकाश—श्री हरिमंगल मिश्र
४—साहित्यालोचन—बाबू श्यामसुन्दरदास
५—रस गंगाधर—पं० रामदहिन मिश्र
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
६—सिद्धान्त और अध्ययन · श्री गुलाबराय एम० ए०
७—विचार और अनुभूति—डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानाश्रयी कवि श्री महात्मा अक्षर अनन्य

(श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव)

ज्ञानाश्रयी परम्परा में कबीर, दादू, धर्मदास, सुन्दरदास आदि की वाणी सुनाई जा चुकने के पश्चात् श्री महात्मा अक्षर अनन्य ने अपना सन्देश जनता के सामने रखा। शुद्ध ज्ञानमार्ग में प्रेमतत्व के सामञ्जस्य से तत्कालीन आडम्बरों का प्रत्यक्ष विरोध कर कबीर ने एक नया मार्ग चलाया, किन्तु अक्षर अनन्य ने उस ब्रह्मतत्व के निरूपण का उद्देश्य ही अपने सामने रखा। यद्यपि इन महात्मा की वाणी में भी कबीर जैसी निर्भीकता प्राप्त होती है, तथापि कहीं-कहीं यह कबीर से भी आगे मिलते हैं। कबीर ने अपना एक नया मार्ग चलाया और उस निर्गुण ब्रह्म की व्यापकता बनाये रख कर उसे घट के भीतर देखा; सूफी सन्तों ने प्रेमतत्व के आधार पर एकेश्वरवाद का निरूपण किया; सूर, तुलसी ने सगुण का आश्रय लिया; परन्तु अक्षर अनन्य ने सगुण, निर्गुण, द्वैत, अद्वैत आदि सभी वादों का सुन्दर सामञ्जस्य करके दिखा दिया—

वे तो शिव शक्ति, सर्वशक्ति, सर्वगतिनाथ,
जैसे ही को तैसे आप जैसे ही के तैसे हैं।

श्री शुक्लजी ने अक्षर अनन्य को प्रथीसिंह (रस-निधि कवि) का दीवान कहा है, किन्तु यह बात निर्मूल सिद्ध है। वेदान्त उपदेश के लिये ही प्रथीसिंह ने अक्षर अनन्य को गुरु समान अपने पास में रखा था। अनन्य की रचनाओं में भी यही बात स्पष्ट है। किसी स्थल पर वह नरेश को शिष्य की भाँति सम्बोधित करते हैं तथा किसी स्थल पर उन्हें आशिष भी देते हैं। आपकी कविता का मध्यकाल प्रथीसिंह को उपदेश देने में ही बीता। उपदेशात्मक समस्त रचनायें 'अक्षर अनन्य के चिट्ठा' अथवा 'अनन्य प्रकाश के नाम से उपलब्ध हैं। इन चिट्ठाओं से पश्चात् की सभी रचनाओं में उस चिच्छक्ति का सुन्दर निरूपण किया गया है। ब्रह्मतत्व की जैसी सुन्दर अभिव्यञ्जना अक्षर अनन्य की रचनाओं में प्राप्त होती है, वैसी कदाचित ही किसी अन्य कवि के ग्रन्थों में उपलब्ध हो सके। अन्य सभी सन्तों ने अपने मार्ग की कट्टरता दिखाते हुये अन्य साधनों की अवहेलना की है। एकात्मवाद के निरूपक कबीर ने तो जोरों से निन्दा की है। किन्तु अक्षर अनन्य किसी धर्म की निन्दा से सदैव दूर ही रहे। कबीर की निर्गुणवादिता, सूफी सन्तों की एकेश्वरवादिता, भक्तिकाल की सगुणवादिता, मध्व की द्वैतवादिता सभी का एक रूप अनन्य की कविता में मिलता है। ब्रह्म की जैसी स्पष्ट व्याख्या निम्न पंक्तियों में की गई है वैसी कबीर क्या कोई भी कवि न कर सका होगा—

नहिं निरगुन नहिं सरगुन जानों,
निरगुन सरगुन मांझ लुपानों;
नहिं करता न अकरता मानो,
कारण करण वहै पहिचानो,
नहिं माया नहिं ब्रह्म विचारो;
माया ब्रह्म वहै निरधारो;
ब्रह्म विष्णु अरु रुद्र न होई,
ब्रह्म विष्णु रुद्रहि मन्द सोई।

कबीर के ऊपर अद्वैत मन्त्रों की 'सोहं' तथा 'तत्त्वमसि' की अमिट छाप पड़ी थी। उनका ब्रह्म सदैव घट के भीतर ही रहा। कबीर का ध्यान 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' जैसे व्यापक सिद्धान्तों की ओर कम गया। यद्यपि उन्होंने 'जित देखों तित तूँ' को समझा था, किन्तु मन्दिरों और मसजिदों में वह फिर भी ब्रह्म को न देख सके। इस प्रकार सगुण तथा द्वैतवाद को निरा निरर्थक ठहराया गया है। इसके अतिरिक्त उनका ब्रह्म सदैव 'नेति' ही रहा। वह वर्णनातीत है। कबीर के शब्दों में वह 'कहन सुनन तें न्यारा है।' वह तो स्पष्ट ही कह देते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोउ ध्यावै निराकार को कोउ ध्यावै साकारा;
वह तो इन दोउन ते न्यारा जाने जाननहारा।'

इस प्रकार कबीर उस अव्यक्त सत्ता की अभिव्यञ्जना करने को आगे आये नहीं। जहाँ कहीं उसका वर्णन भी किया वहाँ 'वह कहन सुनन ते न्यारा है' कह कर उसे अस्पष्ट ही रखा। किन्तु अनन्य ने—

'नहिं निरगुन नहिं सरगुन जानौ,
निरगुन सरगुन माँझ लुपानौ।'

कह कर अपनी एक विशेष प्रतिभा का परिचय दिया।

कबीर के समान अनन्य ने भी ज्ञान को प्रधानता दी है। किन्तु अनन्य के सिद्धान्तों में जो उदारता और महाशयता हमें प्राप्त होती है वह कबीर में नहीं। कबीर अपनी उद्दण्डता में 'साधु भया तो क्या भया, जो नहिं बोल विचार' अपना ही सिद्धान्त भूल जाते हैं और अन्य धर्मों की अशिष्टता के साथ निन्दा कर बैठते हैं। उनके ग्रन्थों का बहुत सा भाग निन्दा तथा उलटबाँसियों से भरा पड़ा है। उनके द्वारा समाज को विशेष लाभ तो नहीं, हाँ एक चमत्कारिक आनन्द अवश्य प्राप्त हो जाता है। जहाँ पर उस परमात्म-तत्व की अभिव्यक्ति की गई वही भाग विशेष सुन्दर कहा जा सकता है। सुन्दरदासजी ने भी कबीर की भाँति कुछ उलट बाँसियों का प्रणयन किया किन्तु अनन्य ने अपनी दृष्टि उस मुख्य तत्व के विवेचन को छोड़ कर किसी अन्य विषय की ओर नहीं दौड़ाई। कबीर ने एक दो स्थलों पर अवतारवाद का भी समर्थन किया। हठयोग की निन्दा करते हुए योग क्रियाओं को ब्रह्म प्राप्ति का साधन भी समझा। 'आँख कान मुख बन्द कराओ' को पाखण्ड मान कर भी उनका किसी-किसी स्थल पर समर्थन किया। इस प्रकार शुद्ध ज्ञान-मार्ग से वह कभी कभी हटते हुए से प्रतीत होते हैं। अनन्य ने कभी भी शुद्ध ज्ञान-मार्ग का विस्मरण नहीं किया।

वह ब्रह्म सर्व व्यापक है। वेदान्त ग्रन्थों में 'खंब्रह्म' कह कर उसकी सर्व व्यापकता को ही भली-भाँति सिद्ध किया गया है। कोई भी धर्म, कोई भी सम्प्रदाय, तथा कोई भी आचार्य उसकी सर्वव्यापकता पर सन्देह नहीं कर सकता। वह सर्वशक्तिमान भी है। ज्ञानी पुरुष उसे अपने घट के भीतर ही देखते हैं। किन्तु वह हृदय की सत्यता का पारखी, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का पुजारी, मन्दिर की सौम्य मूर्तियों के आराधकों तथा मसजिद में पुकारने वाले मुल्ला को यदि मिल जाता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। मन्दिरों और मसजिदों से उस ब्रह्म को पूर्णतया निकाल कर कबीर ने उसके सर्वव्यापक, अविच्छिन्न तथा सर्वशक्तिमान होने में सन्देह ही उत्पन्न किया है।

कबीर ने प्रेम की प्रशंसा भी की है। उनके अनुसार जो भी प्रेम को समझ लेता है वही पण्डित है। किन्तु उनके निराकार तथा निर्गुण ब्रह्म से प्रेम किया ही कैसे जा सकता है। उस अव्यक्त सत्ता से प्रेम करने का प्रणाली तो सगुणमार्गीय कवि महात्माओं के लिये ही उपयुक्त समझी जा सकती है। अद्वैत वेदान्त दर्शन में उस निर्गुण-निराकार तत्व को केवल समझने का ही आदेश है। ज्ञानकाण्ड के किसी भी प्रकरण में उसको समझने का उपदेश दिया गया है प्रेम करने का नहीं। जहाँ पर प्रेम का विचार होता है वहाँ श्रेय की ओर से हट कर प्रेय की ओर चलना पड़ता है। उपनिषद सिद्धान्तों के अनुसार 'आत्मानं विद्धि', 'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति आदि, मंत्रों में उस अव्यक्त सत्ता को समझना ही श्रेय है। वहीं पर ज्ञान की सीमा तथा सफलता है। भक्तिकाल के महात्माओं में घट के भीतर ब्रह्म को समझने वालों में कबीर ही सबसे श्रेष्ठ कहे जायँगे, किन्तु उसको सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान बनाये रखने में अनन्य ने कभी भूल नहीं की। अन्तर अनन्य के सिद्धान्त अत्यन्त उदार हैं। 'सोई सदाशिव सोई खुदा है' कह कर उन्होंने भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ताओं को तो एक माना ही है साथ ही विभिन्न साधनामार्गों को भी उन्होंने बुरा नहीं कहा। कबीर के अनुसार मसजिद में पुकारने वाला मुल्ला मूर्ख है; तिलक, माला, जप, तप उनके विचार से व्यर्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया—

'पूजा जप तप नैमं व्रत गुड़ियन का सा खेल'

किन्तु अक्षर अनन्य अपनी उदारता सदैव बनाये रहे। उन्होंने सत्य ज्ञान की ओर ही विशेष ध्यान आकृष्ट किया। सभी मार्ग उसको समझने के साधन हैं। अनन्य के एकादश चिट्ठा में ब्रह्मज्ञान के अर्थ सात सीढ़ियों का उल्लेख किया गया है। गुरु उपदेश में विश्वास ही प्रथम सीढ़ी है। द्वितीय सीढ़ी पर उग्र दोषों से बच कर धर्म-नियमों के परिपालन का विधान है। तृतीय सीढ़ी पर साधक को संयम-नियम के द्वारा अपने मन की चञ्चलता का विनाश करना होता है। चतुर्थ सीढ़ी पर श्रद्धा तथा प्रेम पूर्ण भक्ति के साथ उस ब्रह्म का ध्यान करना होता है। इसी प्रकार सप्तम सीढ़ी पर पहुँच कर व्यक्ति को ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

उपनिषद् प्रतिपादित विद्या और अविद्या का भी उल्लेख अनन्य ने उसी प्रकार किया है। उपनिषदों ने अविद्या के अन्धकार से बचाकर पराविद्या का ही उपदेश किया है। औपनिषद पुरुष का साक्षात्कार कराने वाली विद्या ही केवल विद्या है, शेष समस्त ज्ञान अविद्या के अन्तर्गत माना गया है। 'अथ-परा यया तदक्षरमधिगम्यते' (मुण्डकोपनिषद् १५) को अक्षर अनन्य ने भी भली भाँति समझा था—

'मारासार बूझे तत्व सूझे सोई विद्या जान,
और सब विद्या हैं अविद्या ही के वाइदो।'

कबीर स्वयं कुछ भी पढ़े लिखे न थे। उनका स्वाध्याय कुछ भी नहीं था साधु सन्तों की सङ्गति से ही उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ होगा। 'रामानन्द चेताये' के अनुसार अद्वैत आत्मतत्व की शिक्षा कबीर को रामानन्द से मिली होगी। पश्चात् उनका आत्म ज्ञान इतना अधिक बढ़ा कि उन्हें आत्मतत्व और ब्रह्म के विषय में अभिमान के साथ कहने का अवसर मिला। कबीर के पदों और साखियों में यह बात स्पष्ट परिलक्षित है। अक्षर अनन्य ने भी कबीर की भाँति 'अक्षर अनन्य यह जान के जनायौ है' कहा है, किन्तु इनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है कि इनका अध्ययन बहुत बढ़ा चढ़ा था। संस्कृत, वैदिक तथा पौराणिक ग्रन्थों का इन्हें अच्छा ज्ञान प्राप्त था। सप्तशती का हिन्दी अनुवाद सर्व प्रथम अक्षर अनन्य ने ही किया। 'महिमा समुद' की रचना भी शिव तथा शक्ति पुराण से अनुवाद कर के ही की गई है। अन्य पुराणों का अध्ययन भी आपका कम न था। इन समस्त ग्रन्थों को आपने खूब अच्छी तरह से छाना था। तथा उन सबको उपनिषदों के अनुसार अविद्या के ही अन्तर्गत माना है—

'विष्णु के पुराण में कहत विष्णु आदि देव,
विष्णु ते विरञ्चि ताते रुद्र पुन मानिये।
रुद्र के पुराण में कहत शिव आदि नाथ,
शिवजू ते विष्णु तातें ब्रह्म कृत ठानिये।
ब्रह्म के पुराण में कहत ब्रह्म आदि देव,
ब्राह्म ही ते विष्णु तातें शङ्कर बखानिये।
'अक्षर अनन्य' भिन्न भाँति ये पुराण भेद,
कल्प के पलेट उलट फेर जानिये।

अनन्य को पुराणों की अविद्या का तथा उससे भिन्न, पराविद्या का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त था। उनकी चेतना, उनकी बुद्धि पुराणों की समस्या में उलझी न रह गयी। उन्होंने बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँच कर औपनिषद पुरुष—ब्रह्म तत्व को पूर्ण रूपेण समझा था। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन तीनों के सत्य स्वरूप को पहिचानने में अक्षर अनन्य ने भूल नहीं की। वही अपना दृष्टिकोण उन्होंने जनता के सम्मुख रखा—

ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीनों रूप ये त्रिगुण भेद,
त्रिगुण को रूप एक निर्गुण निदान है।
एक ही ते तीन तीन मिल ही के एक होत,
तीन चार नाहीं एक कारण प्रमाण है।
जैसे एक सूत को जनेऊ तीन ताग जान,
तीन हू को सूत एक जाहिर जहान है।
'अक्षर अनन्य' ज्ञानवन्त गति एक लहै,
भिन्न भिन्न मानत ते मानस अजान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर के अनुसार माया केवल माया है। ब्रह्म का उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। 'सन्तो आवे जाय सो माया' कह कर अवतारों को भी माया मान कर ब्रह्म को उनसे बहुत अलग रखा गया है। प्रकृति पुरुष का व्यापक रूप है; माया ब्रह्म का ही व्यापक स्वरूप है, कबीर इस सिद्धान्त से सहमत प्रतीत नहीं होते। 'माया महा ठगिनि हम जानी' के द्वारा कबीर ने माया को विश्व-प्रपञ्च तक ही माना है। विश्व-माया में वह ब्रह्म की व्यापकता को न परख सके थे। यहाँ पर उन्हें हम 'जित देखों बित तूँ' के सिद्धान्त से दूर ही पाते हैं। अक्सर अनन्य कबीर से कुछ आगे जाते हैं। संक्षेप में वह कह देते हैं—

दुविधा न मानों सब जानों एक करकें।
× × × ×
सब ही में ब्रह्म लहै यहै सरवज्ञता।
× × × ×
ज्ञानी तो वहै है सर्व जाने एक करके।

किन्तु इतना कहकर ही उन्हें सन्तोष नहीं होता। वह माया में भी ब्रह्म का व्यापक स्वरूप देखते हैं—

ज्वाला कहें जुवती सी लगै,
वैशान्हर में पुरुषारथ आया।
देह कहै नर नाम लगै,
अरु नारि लगै जबही कहो काया।
नाम को भेद 'अनन्य' भनै,
हठ मूढ़नि बादहि बाद बढ़ाया।
एक ही तत्व स्वयं परिपूरण,
ताही सो ब्रह्म कहौ भल माया।

मिथ्या वेष और आडम्बर अनन्य को तनिक भी प्रिय नहीं था। कबीर के समान उन्होंने भी पाखण्डियों को बुरी तरह से फटकारा है। उनके विचार से ब्रह्म-ज्ञान के लिये किसी प्रकार का वेष बनाने की आवश्यकता नहीं। वह मन की एकाग्रता तथा ज्ञान पर ही विशेष जोर देते हैं—

का होत मुड़ाये मूँड़ बार,
का होत रखाये जटा भार।

इतना ही नहीं वह इससे भी आगे और—

का होत भामिनी तजै भोग

भी कह बैठते हैं। 'जौलों न सधै थिर चित्त योग' तक समस्त आडम्बर, समस्त क्रियायें व्यर्थ हैं। पाखण्डियों को उन्होंने बड़े ही चुभते हुये शब्दों में फटकारा है—

भये हैं वैरागी छूटे मन के न राग दोष,
रागी दोषी धन त्याग काहे को चले हते।
× × × ×
काहे वर बावरे मुँड़ाये मूँड़ भाँड़ भये,
खाते जो कमाते तातें घर ही भले हते।

ज्ञानयोग क साधना अन्य साधनों की अपेक्षा पूर्ण स्वतन्त्र है। ब्रह्म का ज्ञान जटा रखाने, मूँड़ मुड़ाने अथवा स्त्री परित्याग से नहीं होता। वैदिक काल के ऋषि भी सपत्नीक मिलते हैं। याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी के साथ रहते थे। जनक ने ब्रह्मज्ञान के लिये संसार का परित्याग नहीं किया था। फिर भी इनका सांसारिक जीवन इनके ब्रह्मज्ञान में बाधामय न था। अक्सर अनन्य ने भी सुन्दर शब्दों में कहा है—

जिनसे घर माँझ कछू न बनौं,
उनसे वन माँझ कहा बनि हैगो।

अनन्य के भाव-पक्ष के विषय में इतना ही कह कर उनके कला पक्ष के विषय में भी कुछ कहने की आवश्यकता रह जाती है। कबीर के कला-पक्ष के विषय में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं, हाँ ज्ञानाश्रयी अन्य कवियों में अवश्य ही कला के दर्शन होते हैं। रैदास के पद तो कबीर के ही समान हैं। दादू, नानक धर्मदास की रचनाओं में कुछ सरसता तथा काव्यकला का समावेश हुआ है। सुन्दरदासजी की रचना तो कलापक्ष में इन सबसे आगे ठहरती है। आपकी कविता में अनुप्रास और यमक की छटा कहीं कहीं बहुत ही सुन्दर देखने को मिलती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौरत नाहीं नावरी, पुकारि के सुनावरी,
सुन्दर कोउ नावरी डूबत राखे नावरी।

छन्द तथा अलङ्कार शास्त्र के अनुसार सुन्दरदासजी का 'सुन्दरविलास' कबीर, रैदास, धर्मदास आदि समस्त कवियों की रचनाओं से सुन्दर कहा जायगा। सुन्दरदासजी महात्मा होने के साथ-साथ कवि भी थे। उनका 'सुन्दरविलास' काव्यकला के लक्षणों से भली भांति सम्पन्न है। अक्षर अनन्य भी पूर्ण महात्मा होते हुए सफल कवि भी थे। उनकी प्रत्येक रचना काव्यकला की कसौटी पर खरी उतरती है। किसी भी रचना का कोई भी छन्द शास्त्रीय पद्धति के प्रतिकूल नहीं मिलेगा। इसके साथ ही उस काल तक प्रयुक्त प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग आपने किया है। 'निरधार शतक' में सौ सुन्दर दोहों का सङ्कलन किया गया है। 'अष्टपदी' का निर्माण ललित पदों में किया गया है। अन्य रचनाओं में कवित्तों और सवैयों की छटा प्राप्त होती है। 'महिमा समुद्र' में तो केशव की रामचन्द्रिका की भाँति छन्दों की भरमार है। प्रत्येक छन्द काव्य के किसी प्रकार के दोष से सर्वथा मुक्त है। शब्दालङ्कार की ओर आपका ध्यान बहुत कम रहा है। अर्थालङ्कारों में उपमा और रूपक ही आपके विशेष सुन्दर रहे हैं। भवसागर का पूर्णरूप आपने बहुत ही सुन्दर लिखा—

कर्मन की नदी जामें, भर्मन के भौंर परें,
लहरें मनोरथ की कोटि निकरत हैं।
काम से कमठ महा मोह से मगर जामें,
क्रोध से जहर जासे देव से जरत हैं।
लोभ जल पूरण अनन्त सु 'अनन्य' भने,
नदा वारपार देख धीरज टरत हैं।
तहाँ शिव शक्ति ध्यान ज्ञान सो जहाज साज,
ऐसे भव सागर को विरले तरत हैं।

शृङ्गार-योग का प्रणयन पूर्ण रूपक के साथ किया गया है। साधक और साधना को पतिव्रता स्त्री तथा पातिव्रत के साथ सुन्दरता से जोड़ा गया है। स्त्री के इस रूपक के साथ रचना-निर्माण का उद्देश्य भी सुन्दर रहा है—

सगुण प्रीति संसार नर निगुन न समझत मूढ़।
ताते मिस शृङ्गार के कहों ज्ञान गति गूढ़॥

इसके पश्चात् आप बहुत ही सुन्दरता से आगे बढ़े हैं। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री सब ओर से अपना मन हटा कर पति में ही स्थिर करती है उसी प्रकार साधक को ब्रह्म का ध्यान रखना अनिवार्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रियतम ब्रह्म के साथ सदैव रहता है किन्तु जिस प्रकार प्रियतम के साथ में सोती हुई नायिका सुषुप्ति अवस्था में प्रियतम का स्मरण भूल जाती है, स्वप्नावस्था में प्रियतम से अलग होकर विकल हो उठती है, उसी प्रकार व्यक्ति भी मिथ्या भ्रम में पड़ कर अपने प्रियतम ब्रह्म को भूल जाता है। जाग्रत अवस्था में ही दोनों को प्रियतम का ज्ञान होता है। अनन्य ने यही विचार कितने सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—

सोवति संग परी पिय के,
सपने बिछुरी चित भर्म बढ़े अति।
चौंक परी न टरी उरते,
थिर चित्त भई गर लाय लई पति।
यों महि मोह महा भ्रम नींद
लहै सपनो जग सोच थकी रति।
जागृत योग 'अनन्य' भनै
बुधि बोध वियोग न ज्ञान यहै गति।

यहाँ परम गूढ़ तत्व को आपने स्त्री के साथ जोड़ दिया है। सुषुम्ना नाड़ी के लिये आपने लिखा—

'अन्तर राज सरोजन की
सुख सेज विराजत सुन्दरी श्यामा।'

आपने अपने सिद्धान्तों को काव्यप्रणाली के आधार पर तो व्यक्त किया ही है; और समस्त रचनाओं में उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, किन्तु कुछ रचनायें ऐसी भी हैं जिनका प्रणयन शुद्ध काव्य की दृष्टि से किया गया है। बहुधा रचनाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि में मङ्गलाचरण भी लिखा गया है। उनकी समाप्ति भी सुन्दर ढङ्ग से की गयी है।

सुन्दरदासजी के सुन्दर विलास में अनुप्रास की छटा अच्छी मिलती है किन्तु काव्य की सरसता तथा लालित्य जो अनन्य की कविता में है वह उनमें भी देखने को नहीं मिलता। 'अन्तर राज सरोजन की, सुख सेज विराजत सुन्दरी श्यामा' में कितना माधुर्य है! प्रवाह किसी स्थल पर भङ्ग नहीं होता। प्रत्येक स्थान पर शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। माधुर्य और प्रसाद गुण का तो आपकी कविता में अभाव नहीं। यह कहा जा सकता है कि ज्ञानाश्रयी काल के अन्य कवियों के समय में भाषा का रूप उतना प्राञ्जल नहीं हुआ था, जितना अक्षर अनन्य को मिला। काव्य कला का तथा भाषा का पन्द्रहवीं शताब्दी में पूर्ण-रूपेण विकास नहीं हुआ था। इसीलिए अन्य कवियों की वाणी कुछ अटपटी सी रही। किन्तु प्रत्येक दशा में यह स्वीकार करना होगा कि अनन्य ज्ञानाश्रयी समस्त कवियों की अपेक्षा सफल कवि थे। मिश्रबन्धुओं ने भी आपकी परिष्कृत भाषा की प्रशंसा ही की है।

किसी एकान्त सुदूर शून्य कोने में पड़ जाने के कारण अनन्य की रचनायें प्रकाश में न आ सकीं। 'उत्तम चरित्र' का प्रकाशन बनारस और बम्बई से हुआ है। 'प्रेमदीपिका' लखनऊ से प्रकाशित है। श्रीसूर्यकुमारजी वर्मा द्वारा सम्पादित 'अनन्य ग्रन्थावली' का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। किन्तु खेद है कि इस ग्रन्थावली में एक भी ग्रन्थ न आसका। केवल चिट्ठाओं में से चार चिट्ठाओं का सङ्कलन किया गया है। शेष बारह-तेरह रचनायें, जो सर्वाङ्ग सुन्दर हैं अब तक अप्रकाशित ही रहीं।

(पृष्ठ ६८ का शेषांश)

नारी-हृदय की दुर्बलता भी उसमें है इसीलिए तो वह गत्यात्मक पात्र है। प्रसादजी ने कामायनी में स्वयं कहा है—

जब कभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।
भुज लता फँसाकर नर-तरु से
झूले से झोंके खाती हूँ॥

आगे देखिये अरुण के इस प्रश्न पर "सचमुच मुझे प्यार करती हो?" को सुनकर लज्जावती मधूलिका न हाँ ही कह सकी और न तो न ही। कुमारसम्भव में भी शंकर के वास्तविक स्वरूप के आगे कालिदास की—

शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।

एक बार पुनः हम मधूलिका को प्रणय की वेदी पर सर्वस्व न्योछावर करते देखते हैं तथा अपने प्रेमी को—पति को नहीं—पूर्ण सहयोग देते देखते हैं। यह उसके चरित्र की उज्ज्वलता का दूसरा पक्ष है।

अरुण आदर्श-प्रेमी, वीर, साहसी और कर्तव्यनिष्ठ है। रण-कला से भी वह अपरिचित नहीं। महाराज भी आदर्श कृपाल हैं और उपकार का बदला उपकार से चुकाना चाहते हैं। 'सिंहमित्र की कन्या मैं जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है सिंहमित्र के प्रति कृतज्ञता का स्पष्टीकरण है यह प्रसाद की वाग्विदग्धता और वचन-वक्रता है।

कहानी का उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्य का निरूपण है और साथ ही भारत की गौरव-गरिमा का चित्रण भी। कहानी की समाप्ति जिस कलात्मक ढंग से की गई है इसे किसी भी संवेदनशील पाठक के हृदय को चीर कर देखा जा सकता है। अरुण और मधूलिका साथ-साथ प्राणदण्ड पाने के हेतु खड़े हुये मिलेंगे।

कौतूहल कहानी की जान है अतः पाठक आगे क्या हुआ, इसी समस्या में (जो सुलझी होते हुये भी उलझी ही है) में पड़ा रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोधरा और वैदेही बनवास में विरह

(कुमारी प्रेमा अग्रवाल)

साहित्य-शास्त्र में शृङ्गार को रस राजत्व का पद प्रदान किया गया है। इसका कारण यही है कि उसमें चित्त की अत्यधिक वृत्तियों का समावेश देखने को मिलता है। उसके दो पक्ष हैं संयोग शृङ्गार तथा विप्रलम्भ शृङ्गार। संयोग की अपेक्षा हमारे काव्य में विप्रलम्भ को अधिक महत्व दिया गया है। इसका कारण यही है कि प्रिय के दूर हने के कारण चित्त की जो अनेकानेक अवस्थायें होती हैं उन सबको अभिव्यक्ति के लिये उसमें स्थान मिलता है। संयोग का पक्ष एकान्तिक है परन्तु विरह एकान्त में तथा सब मनुष्यों के सामने भी हो सकता है।

'वैदेही वनवास' और 'यशोधरा' दोनों काव्य विरह प्रधान हैं। यशोधरा का तो आरम्भ ही विरह से होता है परन्तु 'वैदेही बनवास' में कुछ काल के संयोग के उपरान्त ही यह अवस्था आती है। दोनों के विरह की उत्पत्ति बुद्ध तथा राम के द्वारा किये गये लोक-कल्याण के कारण है परन्तु फिर भी दोनों की दशाओं में बहुत अन्तर है। राम सीता को बनवास का कारण बतलाते हैं तथा उसकी स्वीकृति के पश्चात् ही वियोग का समय आता है परन्तु यशोधरा में ऐसा नहीं है। भगवान् बुद्ध अपनी दुर्बलता के कारण यशोधरा से बिना कुछ कहे सुने ही घर त्याग कर चले जाते हैं। इससे अपनी शक्ति पर विश्वास रखने वाली यशोधरा का हृदय क्षोभ से भर जाता है। वह अपनी सखी से इसकी चर्चा भी करती हुई देखी जाती है—

"सखी वे मुझसे कहकर जाते
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र धर्म के नाते।"

परन्तु सीता के चित्त में वियोग के कारण को लेकर कोई हलचल नहीं। अपितु इसमें तो वह स्वाभिमान के ही चिन्ह पाती है कि उसके बनवास का कारण लोक कल्याण की भावना है। अपने प्रिय से अलग होने के कारण वह दुखी अवश्य है, परन्तु लोक सेवा के लिये वह अपना बलिदान कर सकती हैं। यशोधरा भी इस कारण से परिचित है परन्तु उसकी सूचना पति के द्वारा न दिये जाने के कारण वह इच्छापूर्वक उसका वर्णन नहीं करती। इसी कारण को लेकर वह मान भी करती है—

"विदा न लेकर स्वागत से भी
वंचित यहाँ किया है"

वह स्वागत करने के लिये भी प्रस्तुत नहीं क्योंकि जाने के समय विदा लेकर भी तो वे नहीं गये हैं। अस्तु दुख के साथ ही साथ असन्तोष से भी उसका हृदय भर उठा है। यद्यपि परिस्थितियाँ दोनों की एक ही हैं परन्तु प्रकारान्तर के कारण दोनों की चित्तवृत्ति भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। वियोग की अवधि दोनों की अनिश्चित है परन्तु सीता को, राम के राजभवन में रहने के कारण उनकी कुशल क्षेम का पूरा भरोसा है। यशोधरा इस विषय में भी अनिश्चित है। उसके पति कहाँ और किस दशा में होंगे इसकी कल्पना वह नहीं कर सकती। वह जीवित है इसलिये वे भी अवश्य ही जीवित होंगे इतना ही वह सोच सकती है।

उन्हें अपने प्रिय का स्मरण रह-रह कर हो आता है। बीते समय की स्मृतियाँ आ-आकर उनकी विरहाग्नि को तीव्र कर जाती हैं। परन्तु ऐसी अवस्था में भी सीता अपने कर्तव्य ज्ञान को नहीं भूलतीं। वे राम की स्मृति में व्याकुल भी होती जाती हैं और कर्तव्य पथ पर अग्रसर भी। राम के अनुसार ही वे भी अपने को सेवा के पथ पर बिखेर देती हैं। परन्तु यशोधरा अपने प्रिय के वियोग में अन्तरमुखी हो उठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। बाहर से वह निश्चेष्ट है परन्तु हृदय में विचारों का तूफान चलता है। मनमानस में अनुराग की बड़ी-बड़ी तरंगें उठती हैं जो स्वयं उसको भी आत्मसात् कर लेने के लिये प्रस्तुत सी जान पड़ती हैं। सीता को देखकर तो प्रसादजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

आँसू से भीगे आँचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुम को अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।

उसकी आँखों में आँसू हैं परन्तु कर्तव्य हँसने के लिये विवश करता है। विरहावस्था में उनकी यही मूर्ति हमारी आँखों के सामने नाचती है। अपने दुख में वह शेष जगत को भुला नहीं देती। उसके साथ उनका सम्बन्ध पूर्ववत् चलता रहता है। इसके विपरीत यशोधरा अपने आप में सिमिट कर रह गई है। लोक से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है। अपनी दुख-दर्द की चिन्ता के अतिरिक्त और कुछ सोचने के लिये उसके पास है ही नहीं।

त्याग की भावना दोनों में देखने को मिलती है। यशोधरा का त्याग अपने पति के लिये है परन्तु सीता का पति और समाज दोनों के लिये। पति से उसे त्याग और सेवा की भावना मिली है। अतः वह भी उनका प्रसार करने में तत्पर है। ये भावनायें मिली यशोधरा को भी हैं परन्तु उसमें उनका विकास दृष्टिगत नहीं होता। उसका जीवन केवल दुख और करुणा का केन्द्र है।

यशोधरा का जीवन घर के ही कुछ प्राणियों के बीच तक सीमित रहता है। स्थानान्तर उसके जीवन में नहीं आता। वे ही प्राणी, वे ही वस्तुयें और वे ही स्थल उसके दुख के समय में भी वर्तमान हैं जो उसके संयोग काल में उपस्थित थीं। सभी व्यक्ति बुद्ध के वियोग में दुखी हैं। सभी वस्तुओं और स्थलों में उसके प्रिय की स्मृति वर्तमान है। उन सब का दर्शन उसके विरह को उकसा देता है। वातावरण में एक विचित्र उदासी घुल-मिल गई है जो उसे और अधिक खिन्न मना बना देती है। वहाँ का तो वातावरण ही वियोग मय हो गया है अस्तु यशोधरा का अन्तरमुखी हो जाना निश्चित हो जाता है।

सीता के साथ ऐसा नहीं होता। वह स्थानान्तर करके महर्षि वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में प्रवेश करती है। वहाँ सभी परोपकार में रत हैं अतः उसके जीवन पर भी उन लोगों का प्रभाव पड़ना अनिवार्य हो जाता है। वहाँ का वातावरण स्वच्छ और प्रभावशाली है। यशोधरा के राजमहल का सा दम घोंटने वाला नहीं। वहाँ व्यक्तित्व के विकास का अवकाश है और सीता में वह होता भी है। उनका वातावरण उनकी भावनाओं के अत्यन्त अनुकूल पड़ता है।

यशोधरा के चारों ओर भोग का सरंजाम एकत्र है अस्तु कभी-कभी उन वस्तुओं को देख कर उसे संयोग काल की स्मृति आकर घेर लेती है। वह उसके हृदय में छिपे हुये लालसा के परमाणुओं को विकसा कर उत्तेजित कर देती है। वातावरण का इस प्रकार के भावों में पूरा योग है।

सीता अपनी भोग काल की वस्तुओं को पीछे छोड़ आई है। अधिकांश समय पर-सेवा में व्यतीत होता है। यद्यपि प्रियतम की मूर्ति नेत्रों के सामने झूला करती है। साहचर्य भी ऋषि मुनियों का ही है। अतएव उसके विरह में वासना के बीज अंकुरित नहीं होते। इस प्रकार की भावनाओं में स्थान का प्रभाव विशेष रूप से कार्य कर रहा है। त्याग की भावना दोनों में मिलती है। यशोधरा का त्याग प्रियतम के लिये अपने को मिटा देने में ही है परन्तु सीता समाज के बीच चलती है। उसी के बीच उनका त्याग लक्षित होता है।

यशोधरा में कुल वधू के सब लक्षण मिलते हैं। उसी की भाँति वह मान भी करती है, दुखी भी होती है, कामना भी करती है और विरह ताप में जलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी है। सीता समाज के बीच रहने वाली हैं। व्यक्ति से वे समाज को अधिक महत्व प्रदान करती हैं। सुख-दुख में गलते हुए भी उसे उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना ही पड़ेगा। भावना से कर्तव्य को कहीं अधिक ऊँचा आसन मिला है। सीता समाज के बीच रहती हैं अतएव अपने कर्तव्यों का पालन भी सम्यक रीति से करती हैं। यशोधरा का विरह एकान्तिक है, परन्तु सीता तो सभी कुछ समाज के बीच ही करती हैं। हँसना, रोना, गाना सभी कुछ इसी के क्षेत्र में होते हैं।

यशोधरा और सीता दोनों की गूदड़ी में "राहुल" और 'लव कुश' जैसे लाल हैं। माताओं का बहुत कुछ दुख तो ये बालक ही अपनी तुतली बोली सुनाकर हर लेते हैं। उनकी क्रीड़ायें उनके आनन्द की वस्तु हैं। उनके बीच में रह कर कुछ समय के लिये वे अपने दुखों को भूल जाती हैं। यशोधरा कहती है:—

"किलक अरे मैं नेक निहारू
इन दाँतों पर मोती वारूँ"

तथा :—"तू मेरी उँगली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ" आत्म विभोर होकर वे उन्हें गले से लगा लेती हैं। दुखों की छाया उन पर से विलीन हो जाती है।

वे पति की थाती हैं। उनकी स्मृति स्वरूप ही वे उनके पास हैं अतएव उनको देखकर वे हर्ष से फूल उठती हैं। पति और पुत्र दोनों की मूर्तियाँ एक साथ ही उनकी आँखों के सामने झूला करती हैं। सीता के सम्बन्ध में उनकी एक सखी कहती हैं :—

"नयनों में थे युगल कुमार समा गये
हृदयों में श्यामली मूर्ति थी बस गई"

यशोधरा स्वयं उनके अपने लिये कहती है :—

तुमको दूध पिलाकर लूँगी
नयन नीर ही उनको दूँगी
पर क्या पत्त पातिनी हूँगी
मैंने अपने सब रस त्यागे

राहुल को भी हम उसके लिये कहते हुये सुनते हैं :—

गाती मेरे काज तू रोती उनके अर्थ
हम दोनों के बीच तू पागल सो असमर्थ

पति और पुत्र दोनों के बीच ही यशोधरा भटक रही है। सीता के बीच में तीसरी वस्तु समाज भी प्रवेश कर गई है इसलिये उसका विरह उतना गम्भीर न हो सका जितना यशोधरा का। विरह की बहुत सी दशाओं के चित्रण दोनों में हैं। यशोधरा में वे कुछ अधिक हैं। वास्तव में देखा जाय तो सीता पर "हरिऔधजी" ने अपने आदर्शों का भार लाद दिया है जिसमें उसका व्यक्तित्व छिप सा गया है। आदर्श रूप में ही वह सर्वत्र हमारे सामने आती है। व्यक्तिगत रूप में उसके दर्शन नहीं होते। खुलकर रो लेने तथा अपने भावों की अभिव्यञ्जना करने का अवसर वे उसे नहीं देते। सर्वत्र आदर्शों का अंकुश उसका गला दबाये रहता है।

पठनीय साहित्य

१—गुप्तजी की कला—डा० सत्येन्द्र
२—गुप्तजी की काव्य-धारा—श्री गिरीश
३—गुप्तजी के काव्य की कारुण्य धारा—धर्मेन्द्र
४—मैथिलीशरण : एक अध्ययन—रामरतन भटनागर
५—महाकवि हरिऔध—गिरीश
६—महाकवि हरिऔध का प्रिय-प्रवास—धर्मेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावाद का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण

(श्री रामानुज 'सौमित्र')

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक एवं वस्तुगत कविता के विरुद्ध छायावाद की भावात्मक एवं आत्मगत कविता का जन्म हुआ। स्थूल के प्रति सूक्ष्म का यह विद्रोह व्यक्त सत्ता में प्रच्छन्न चेतना की आत्मानुभूति की अभिव्यञ्जना के साथ ही साथ अतीन्द्रिय सौन्दर्य की मनोगत शृङ्गार भावना की अभिव्यक्ति के रूप में हुआ जिसमें प्रकृति पर नारी व्यक्तित्व का आरोप कर उसकी मूर्त्त माँसल रूप में सृष्टि की गयी! महादेवी के शब्दों में "छायावाद .....में प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतनता का आरोप भी!"

(आधुनिक कविः १ पृ० १०)

जैसे— कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात;
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार?

और— उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही माँ
वह अपनी वय बाली में?

प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास अथवा अनुभूति रहस्यवाद की मूल चेतना है और उसके व्यक्तिगत सौन्दर्य में चेतना की प्रतीति छायावाद की। यदि प्रकृति छायावाद के लिए दार्शनिक आकर्षण की वस्तु है तो रहस्यवाद के लिए चिन्तन की प्रेरणा।

यहाँ मैं प्रकृति के प्रति छायावादी दृष्टिकोण का विचार करूँगा!

प्रकृति की व्यष्टिगत सत्ता में एक समष्टिगत चेतना की अनुभूति कवि के सहज मौग्ध्य भाव की सन्तति है! प्रकृति की यही समष्टिगत चेतना जो उसकी खण्ड रूपता के बीच अखण्ड सम्बन्ध-सूत्र सी ज्ञात होती है छायावादी कवि के लिये एक जिज्ञासा की वस्तु है :—

मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन मुग्ध किसके बल —पन्त

तथा प्रकृति का नियमित विधान उसके सामने चिन्तना का बंध खोल देता है। उसकी जिज्ञासा शान्त न होकर दार्शनिक भाषा में बदल जाती है।

महानील इस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
करते से किसका सन्धान?
—प्रसाद

यह जिज्ञासा जब अपने चरम रागात्मक आकर्षण में बढ़ जाती है तब कवि प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य में अन्तर्भुक्त समष्टिगत चेतना का आभास पाता है जिसमें कवि को व्यक्त सत्ता से अव्यक्त शक्ति का आमन्त्रण सा मिलता है।

न जाने नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन
—पन्त

सिन्धु जिसपर गर्व करता
और जिसकी अर्चना को
स्वर्ग झुकता, क्यों न उसके
प्रति करे कवि अर्घ्य अर्पण
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमन्त्रण!

सापेक्ष्य सृष्टि से परे किसी निरपेक्ष सत्ता से निर्यन्त्रित अपने अन्तः सौन्दर्य से 'मौन मुग्ध' प्रकृति के प्रति यह प्रकृत दृष्टिकोण है जिसमें मानवीय हृदय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज अनुभूतियों का भावात्मक व्यक्तिकरण है और जहाँ तक मैं समझता हूँ छायावाद की यह प्रवृत्ति 'संस्कृत' परम्परा को प्रशस्त करने वाली कही जा सकती है। क्योंकि प्रकृति के प्रति इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप छायावादी कविता में कहीं-कहीं संस्कृत काव्यों का सा संश्लिष्ट प्रकृति-वर्णन हुआ है :—

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल
अपलक, अनन्त, नीरव भूतल
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल
तन्वगी गङ्गा ग्रीष्म विरल, आदि
—पन्त

आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे
केशर के केश कली के छुटे
स्वर्ण-शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया।
—निराला

(इसका सौन्दर्य देखने के लिये पढ़िये 'मेरे गीत और कला'—निराला : प्रबन्ध प्रतिभा पृ० २८३)

किन्तु छायावाद की प्रधान प्रवृत्ति प्रकृति पर मानव व्यक्तित्व का आरोप करना है जिसके मूल में कवियों की अतृप्त काम-वासना है जिसकी परिणति प्रकृति के मानवीकरण (Personification) में हुई है। नगेन्द्रजी ने प्रकृति पर मानवी व्यक्तित्व के बारे में इसी फ्रायडीय दृष्टि कोण से कहा है "यह कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं है, यह मन की कुण्ठित वासना ही है जो अपचेतन में पहुँच कर सूक्ष्म रूप धारणकर प्राकृतिक प्रतीकों द्वारा अपने को व्यक्त करती है! (विचार और अनुभूति)। फ्रायड ने इन्हीं काम-वासनाओं के सम्बन्ध में जो कि इस प्रकार से 'सांस्कृतिक-सृजन' में व्यस्त हो जाती हैं, उनके महत्व को प्रगट करते हुए लिखा है—

"The sexual are amongst the most important of the insltinctive forces thus utilised, they are in this way sublimated, that is to say, their energy is turned aside from its sexual goal and diverted to-wards other ends" (A General introduction To Psycho-Analysis)

प्रकृतिक प्रतीकों की ओर प्रवृत्त होने वाली इस प्रवृत्ति का किस प्रकार व्यक्तिकरण हुआ है यह यहाँ दिखाने की आवश्यकता नहीं! तो यह दृष्टिकोण क्रमशः किस प्रकार विकसित होता गया उसी का उल्लेख यहाँ किया जायगा।

'तार सप्तक' में अज्ञेय ने अपने वक्तव्य में लिखा है 'आज का मानव मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ दमित और कुण्ठित हैं! उनकी सौन्दर्य-चेतना भी इससे आक्रान्त है"। यह एक कवि की जीवन सम्बन्धी फ्रायडीय मान्यता है। व्यक्ताव्यक्त अभिव्यक्ति छायावादी काव्य में उत्तरोत्तर होती रही! इस प्रवृत्ति के विकास का क्रम इस प्रकार का है।

अनन्त की अभ्यर्थना में पन्त ने एक स्थान पर बसन्त (प्रेमी) के स्पर्श से पुलकित वसुधा (प्रेमिका) का चित्र उपस्थित किया है। जिसमें यद्यपि प्रतीक प्राकृतिक ही हैं किन्तु उनके पारस्परिक व्यापारों को जिस मेहनत के साथ कवि ने रति-क्रीड़ा के रूप में आरोपित किया है वह द्रष्टव्य है।

नव बसन्त के सरस स्पर्श से
पुलकित बसुधा बारम्बार
सिहर उठी स्मित शस्यावलि में
विकसित चिर यौवन के भार

और भी कुछ पंक्तियाँ देखिये—

बजा दीर्घ स्वासों की भेरी
सटा सटे कुच काशाकार
× × ×
बाल युवतियाँ तान कान तक
चल चितवन के बन्दन बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ वसन्तागम की उन्मादना से पीड़ित 'बाल-युवतियों' की तस्वीर उपस्थित की गयी है! इनकी प्रतीक्षा में तो नहीं किन्तु इनकी अपने 'देव' का स्वागत करने की तैयारी में जो भाव दर्शित हैं, वह शुद्ध रीतिकालीन शृङ्गार का स्मरण दिलाते हैं।

अब निराला की जूही की कली से ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ लीजिये यों पूरी कविता बिना किसी गुप्त (Latent) भाव के प्रेमी-प्रेमिका के रति-विलास का चित्र उपस्थित करती हैं—

निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की
कि झोकों की झड़ियों से सुन्दर सुकुमार
देह सारी झकझोर डाली
मँसल दिये गोरे कपोल गोल
शेफाली में कवि कितनी माँसलता उड़ेले देता है!

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यङ्क पर सोती शेफालि के।

इस प्रकार छायावाद की इन प्रवृत्तियों में जहाँ एक ओर भाव स्पष्ट करने के लिए अभिव्यक्तिगत सौंदर्य लाने का प्रयत्न भी है वहाँ रति-चित्रों को भी पाठकों के सामने उपस्थित कर देने का खुला मन्तव्य प्रगट होता है। लेकिन प्राकृतिक प्रतीकों के द्वार से बहिर्गत होने वाली कुण्ठित वासना कभी-कभी सीधे से भी प्रगट हुई है। यह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

नयनों के डोरे लाल गुलाल
भरे खेली होली
जागी रात सेज प्रिय पति-संग
रति सनेह-रँग घोली।
× × ×
प्रिय कर-कठिन-उरोज-परस
कस कसक मसक गयी चोली!
× × ×
उठो सँभाल बाल, मुख लट, दीप बुझा
हँस बोली!

रहो यह एक ठठोली!

(गीतिका पृ० ४६)

इस प्रवृत्ति का विकास प्रत्यक्षतः आगे भी हुआ है किन्तु यह विकास भावात्मक न हो कर गुणात्मक होता गया है। सामाजिक विधान की यौन-वर्जनाओं के प्रति यह प्रच्छन्न प्रतिक्रिया नारी को अपने पास पाकर तथा सामाजिक सेन्सर के त्रस्त होने के कारण अपने प्रकृत रूप में हुई है। नन्ददुलारे वाजपेई के शब्दों में यह प्रतिक्रिया "अशरीरी सौन्दर्य के प्रति माँसल सौन्दर्य!" की प्रतिक्रिया है। इस प्रतिक्रिया में स्वस्थ शृङ्गार की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि उन्मद वासना का व्यक्तिकरण है। अशरीरी सौन्दर्य से माँसल सौन्दर्य की ओर प्रवृत्त विकास ही भावात्मकता से गुणात्मकता की ओर प्रगति है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्दों में कहना चाहिये। प्रकृति पर प्रथमतः केवल मानव व्यक्तित्व का आरोपण किया गया, जिसके प्रशंसनीय उदाहरण निराला की संध्या-सुन्दरी! प्रसादजी की 'बीती विभावरी जागरी' पन्त की 'सुन्ध्या' और महादेवी की धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनी' हैं! यह भावात्मक अभिव्यक्ति प्रकृति में मानवी-व्यापार गुणों का आरोप कर क्रमशः गुणात्मक होती गई है। (उदाहरण ऊपर दे चुका हूँ)। अज्ञेय की एक कविता में यह अपने पूर्ण परिणत रुप में प्रगट होती है।

घिर गया नभ-उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका सा
विशद श्वासायत, चिरातुर
छा गया इन्द्रका नील वक्ष ..

इसमें सावनीय वातावरण से कवि ने प्राकृतिक प्रतीक चुन कर अपनी स्वीकारोक्त कुण्ठा का निर्गमन किया है।

इस प्रकार छायावाद का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण, जहाँ आकर्षण की सहज अनुभूति में आरम्भ होता है वहाँ उसका विकास उसमें प्राण-चेतना की भावना कर कवियों की यौनीक (Sekual) भावनाओं के व्यक्तिकरण में हुआ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादजी की दो कहानियाँ

(श्री शिवबालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० (आनर्स)

आकाशदीप—

महाकवि प्रसाद की उद्दीयमान प्रखर प्रतिभा की कमनीय कान्ति से हिन्दी साहित्य का कोना-कोना आलोकित है। उर्वर मस्तिष्क, कुशाग्र बुद्धि, अनुभूतिपूर्ण नेत्र और कल्पना प्रवण हृदय पाकर कविता, नाटक, निबन्ध, उपन्यास और कहानी जो कुछ उन्होंने लिखा वह साहित्य की स्थायी वस्तु हो गई। प्रसादजी ने अपनी कोमल कल्पनाओं और उदात्त भावनाओं के द्वारा यद्यपि साहित्य के प्रत्येक अङ्ग का संस्पर्श किया है किन्तु कहानी में उनकी भावुकता का विशिष्ट स्थान है। और भावुकता-प्रधान कहानियों के लिए जैसी भाषा और जैसे वातावरण की अनिवार्य आवश्यकता होती है वह सब साधन सँजोने और सामग्री जुटाने में प्रसादजी अपनी प्रज्ञा का यथेष्ट प्रयोग करते हैं। अन्य कहानियों की भाँति 'आकाशदीप' भी भावुक 'प्रसाद' के उद्भावना-प्रवण मस्तिष्क की अनूठी उद्भूति है।

कथानक के विषय में यदि अत्युक्ति न हो तो कहा जा सकता है कि भावुकता के आगे बेचारी कथावस्तु को कोई स्थान ही नहीं मिलता। जहाँ प्रेमचन्दजी की कहानियों में चारित्रिक विशेषताओं के स्पष्टीकरण के लिए घटनाओं की सृष्टि दीखती है वहाँ प्रसादजी मानव हृदय के विशिष्ट तत्व की निदर्शना कर मानवीय जीवन को आरोह और अवरोह के ऋजु-कुटिल मार्ग पर चलाते हुये हृदय का अन्तर्द्वन्द्व निरूपित करते हैं। अतः वहाँ कथावस्तु का स्थान ही नहीं रह जाता। किन्तु अन्तर्द्वन्द्व चरित्र के विकास के निर्देशन में पर्याप्त साहाय्य सम्प्रदान करता है। अतएव इसके प्रकटीकरण के हेतु वातावरण की सुष्ठु पीठिका प्रस्तुत करने में उनकी कलम-कूर्चिका गहरे और हलके रँगों का प्रयोग करती है। 'आकाशदीप' का आकस्मिक् उपक्रम 'बंदी' किसके हृदय को वन्दी नहीं कर लेता। कथोपकथन शैली के इस प्रारम्भ से कहानी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। प्रसिद्ध अँग्रेज आलोचक स्ट्रॉंग (Strong) के ये शब्द सार्थक होते हैं—

A story should only start once. having started it should go straight ahead and contain nothing that does not lead diractly or indirectly to its climax.

नौका पर दो व्यक्तियों का मिलन जिनमें एक बन्धनों से मुक्त होने की अपेक्षाकृत निद्रा को प्रियतर समझता है कितना सुन्दर है? उनमें एक स्त्री भी है और इन शब्दों में 'यह क्या तुम स्त्री हो!' जिस प्रकार से वन्दी बुद्धगुप्त को कौतूहल हुआ था उसी प्रकार अध्येता के अन्तर में आन्दोलन हो उठेगा। यह कहानी की विशेषता ही मानी जायगी।

करोति रागम् हृदि कौतुकाधिकम्

—वाणभट्ट कृत कादम्बरी से

वातावरण-चित्रण के सम्बन्ध में वे हृदय के चक्षुओं से काम लेते हैं। अम्बुधि में उठने वाले अन्धवायु का-तूफान का-इतना सुन्दर वर्णन समुद्रतट पर स्थित द्वीप के निवासी अथवा नाविक ही कर सकते हैं। किन्तु जगन्नाथजी की यात्रा करने वाला प्रसाद का कहानीकार इसमें भी सफल ही हुआ है।

प्रेम की प्रदीप्ति के हेतु प्रकृति को उद्दीपन विभाव के रूप में अङ्कित करने में प्रसादजी जिस तूलिका से काम लेते हैं वह हिन्दी के बहुत कम आधुनिक लेखकों को प्राप्त हो सकी है। उदाहरणार्थ—

"सामने शैलमाला की चोटी पर हरियाली में, विस्तृत जल में नील पिङ्गल सन्ध्या, प्रकृति की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी।"

"उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण जाल का कुहुक स्फुट हो उठा जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष रिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी।"

अन्तर्द्वन्द्व पात्रों की वह आन्तरिक डोर है जिससे चरित्र रूपी जल का उत्थान-पतन प्रकट होता है। बुद्धगुप्त को जिसे चम्पा अपना पितृहन्ता समझती है (वास्तव में जो पितृहन्ता नहीं था) अन्तर की अनन्त अनुराग-राशि प्रदान करने पर भी चम्पा के हृदय में फिर प्रतिहिंसा की भावना जाग्रत करके प्रसादजी ने स्वाभाविक चित्र समक्ष रखा है। और यह चित्र और भी स्वाभाविक तब प्रतीत होता है जब चम्पा के मुख से हम सुनते हैं, "मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।" जलदस्यु शब्द की व्यञ्जना सामान्य पाठक को बोधगम्य नहीं हो सकती। कारण यह है कि वाक्य की छोटी सी मंजूषा में में इतना बहुमूल्य शब्द-रत्न कैसे आ सकता है। 'जलदस्यु' कहने में उसने निष्ठुर बुद्धगुप्त की चारित्रिक विशेषता बतलाई है। और फिर जब वह तलवार को जलमग्न कर चुकी और बुद्धगुप्त ने यह विश्वास किया कि वह क्षमा कर दिया गया। वह विश्वास शब्द पर चौंक पड़ती है। नारी हृदय के प्रत्येक स्पष्ट, अस्पष्ट भाव का रूपाङ्कन इस वाक्य में मिलेगा, "जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी उसी ने धोखा दिया तब कैसे कहूँ?" इन शब्दों से चम्पा उन्हीं की श्रद्धा—अथवा किसी भी नारी के—समीप पहुँच जाती है जो कह चुकी है—

हाँ आज समझ तो पाई हूँ मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सारी कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ।

अब कहानी की भाषा शैली पर आइये। भावुक प्रसाद भाषा-भामिनी को इस प्रकार नपे तुले शब्दालङ्कारों में सँजो देते हैं कि मानवीय अन्तर का कोना-कोना स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है। बुद्धगुप्त के शब्द लीजिये, "मेरा पत्थर सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि की तरह द्रवित हुआ ×××× चम्पा मैं ईश्वर को नहीं मानता—मैं पाप को नहीं मानता—मैं दया को नहीं समझ सकता ××× पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है।" हालावादी बच्चन के शब्द यहाँ चरितार्थ होते हैं—

प्रेम हाय मानव स्वभाव की सबसे भारी दुर्बलता है

अलङ्करण और प्रतीक पद्धति के आश्रयण से काव्यमयी भाषा भी द्रष्टव्य है, 'निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकराकर लहरें बिखर जाती हैं।" ××× "पच्छिम में पथिक थक गया था उसका मुख पीला पड़ गया था।"

पच्छिम के पथिक के मुख को पीला बता देने में प्रसादजी ने गद्य में भी रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार का बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनके शब्दों में वह शक्ति है जो बरबस ही हृदय की रागात्मिक वृत्ति को अपने में तल्लीन कर लेती है।

'इतना जल! इतनी शीतलता! हाय हृदय की प्यास न बुझी' शब्दों को पढ़कर प्रसिद्ध अँगरेज कवि कॉलरिज के Ancient Mariner में प्रयुक्त ये शब्द स्मरण हो आते हैं—

Water water every where not a drop to drink

हिन्दी और अँगरेजी की यह कातरतापूर्ण विवशता सहृदय हृदय की सम्वेदनशीलता का संस्पर्श करती है।

'आकाशदीप' कहानी में न सनातन सत्य स्खलित दीखता है और न प्रसादजी के अन्तर की चिरन्तन भावना ही खर्वित होती ज्ञात होती है। 'शङ्कर' का आराधक 'जयशङ्कर' साहित्य में 'शिव' के स्वरूप की प्रतिष्ठा करना चाहता है। और जिस प्रकार शिवत्व की यह भावना उनके काव्य और नाटकों में विद्यमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसी प्रकार इस कहानी में भी अन्तर्लीन है। बात यह है कि शङ्कर ने विष का प्याला पीकर आदर्श प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया था। बस नीलकण्ठ के पदचिह्नों पर चलने वाला प्रसाद का कहानीकार आकाशदीप में वासना को ठोकर दे उसका गला घोंटकर आदर्श का अनुरागी बन जाता है।

कहना न होगा कि बुद्धगुप्त और चम्पा ऐसे अनेक पात्र प्रसादजी की अन्य साहित्यिक कृतियों में भी हैं। (उदाहरण के लिए देवसेना, स्कन्द और मधूलिका तथा अरुण विचारणीय हैं।) और यदि बहुत गहराई तक पहुँचा जाय तो आँसूकार 'प्रसाद' और सुमन नोचकर मनमानी करनेवाले प्रिय में यही भावना अन्तर्हित है। तथा इस भाव में प्रसादजी के जीवन का प्रतिविम्ब ही दृगगोचर होता है, यदि श्री विनोदशङ्कर व्यास के शब्दों पर विश्वास किया जाय *। अतएव कहानी का अन्त आकशदीप जलाने तथा मानवीय सेवा करने की भावना में सुन्दर ही बन पड़ा है। शीर्ष स्थान पर पहुँचने वाला यह आदर्श सर्वथा श्लाघ्य है।

चरित्र की महत्ता बौद्ध दर्शन के 'कारुण्यमातन्वते' और 'परोपकाराय सताम् विभूतयः' प्रभृति आदर्शों पर चलनेवाले प्रसाद ने चम्पा के इन शब्दों में दिखादी है है—"प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" बेचारा पाठक क्या सोचता है और परिणाम का वैचित्र्य उसे कौतूहल के उस स्थान पर पहुँचा देता है जहाँ पहुँचने की सम्भवतः उसे आशा न थी। किन्तु फिर भी वह स्थल काव्य की मधुमती भूमिका का सा आनन्द देता है और वह लेखक का निर्दिष्ट स्थान है 'जिसके आगे राह नहीं' हैं।

* देखिये प्रसाद और उनका साहित्य—लेखक विनोदशङ्कर व्यास।

पुरस्कार—

दूसरी आलोच्य कहानी 'पुरस्कार' है, ऐतिहासिक तथ्यों का, जो काल की धूमिलपटी में विलीन होते जा रहे थे अथवा जिनका चित्र खींचते समय इतिहासकार अपनी मोटी झोंटी लेखनी का प्रयोग कर उसे विकृत कर रहे थे, प्रसादजी ने अपने कुशलकरों से निरूपण कर भारती-भण्डार को भरा है।

प्रसाद-हिन्दू इतिहास का प्रेमी प्रसाद—विश्वजननी सार्वकालिक मानवीय अन्तर-भावनाओं का विश्लेषण तथा विशदीकरण करते हुये इस कहानी में दृगगोचर होते हैं। अतएव इस कहानी के लिए इतना कहना न्याय सङ्गत होगा कि उनकी अन्य कहानियों की भाँति यह भी भावुकता से ओत-प्रोत है। हृदय के सूक्ष्म-भावों का चित्रण मानव-मन के सङ्कल्प विकल्पों का अन्तर्द्वन्द्व, किंकर्त्तव्यविमूढ़ता निराशा और आशा, एवं हर्ष तथा विषाद सभी कुछ अतीव कुशलता के साथ इसमें समाविष्ट हुए हैं। माना कि कहानी का सम्बन्ध समय विशेष से है पर कहानी फिर भी देशप्रेम और अनुराग की विश्वव्यापी भावना के कारण सहृदय पाठक के मन में एक गुदगुदी पैदा हो जाती है।

कथानक की दृष्टि से कहानी चरित्र प्रधान है किन्तु घटना की यमुना चरित्र की गंगा में मिल गई है; यही नहीं, अपितु भावुकता भी अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति यहाँ विद्यमान है। ऐतिहासिक तथ्य पर कल्पना की कलई करने से रंग निखर आया है इसीलिये किसी आलोचक के ये शब्द सार्थक होते हैं—"इतिहास में सब कुछ यथार्थ होते हुये भी वह असत्य है और कथा-साहित्य में सब कुछ काल्पनिक होते हुये भी वह सत्य है।"

कथोपकथन कहानी के सौन्दर्य में चार चाँद लगा देता है। प्रसादजी ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है। हम स्वाभाविक कथोपकथन का आनन्द मधूलिका और अरुण एवं महाराज और मधूलिका के वार्तालाप में पा सकते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधूलिका—राजकुमार ! मैं कृषक बालिका हूँ।

'कृषक' शब्द के प्रयोग के द्वारा मधूलिका ने अपनी दयनीय दशा का रूपान्तर किया है।

"तो फिर निराश लौट जाऊँ ?"

"सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ ? तुम्हारी यह प्रार्थना !"

महाराज के हृदय में उठने वाले संकल्प विकल्पों के साथ 'सिंहमित्र की कन्या' के भावचित्र के द्वारा उपकृत व्यक्ति का कोना-कोना स्पष्ट हो जाता है।

प्रसादजी इतिहास के जिज्ञासु विद्यार्थी थे, हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के अनन्य आराधक थे और थे साहित्य की नाड़ी के सुपारखी। ऐतिहासिक वातावरण से वे पूर्णतः परिचित थे। तत्कालीन राज्यों के पारस्परिक विरोधों से पूर्ण अवगत होने के कारण रण विषयक नीति और कूटनीति का परिचय इस कहानी में सहज मिलता है। इतना होते हुये भी कहानी देश काल दोष (anachronism) से सर्वथा मुक्त। यद्यपि अँगरेजी का लब्धप्रतिष्ठ नाटककार शेक्सपियर भी इस दोष से मुक्त न था।

कहानीकार प्रसाद के हृदय में उनका कवि सदा पैठा रहता है और वह कवि जिसने नारी हृदय पाया है। अतएव गल्पों में भी भाषा की सुकुमार मनोमोहक छटा देखने में आती है। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्राचुर्य उनकी भाषा की विशेषता है यथा स्वस्त्ययन, विज्ञप्त, अभियान। किन्तु संस्कृत के इन तत्सम शब्दों के प्रयोग से भी भाषा में अस्वाभाविकता नहीं और न हृदयेशजी की कहानियों की भाषा जैसी बनावट ही। पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग के साथ ही साथ कहानी में 'गोठ' सदृश, देशज शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। सैद्धान्तिक वाक्यों द्वारा लेखक की दार्शनिकता मुखरित हो उठी है जैसे—

अरुण—"मधूलिका बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है।"

चरित्र-चित्रण कहानी की प्रमुख विशेषता है। मधूलिका अरुण और महाराज के चरित्र खरे काञ्चन की भाँति शुभ्र एवं चमत्कृत हैं। मनस्विनी मधूलिका आत्मगौरव की उत्कृष्ट आदर्श, प्रेम की सजीव प्रतिमा, पैतृक सम्पत्ति की उपासिका, जातीय-गरिमान्विता और कुलाभिमानिनी है। साथ ही राष्ट्रानुराग से उसका अन्तर सदैव उच्छ्वसित रहता है। परिस्थिति उसके चरित्र को मोड़ देती है। उसके इन शब्दों से जहाँ एक ओर उसकी कातरता और मनुहार टपकती है वहीं उसका स्वाभिमान स्फुटित हो जाता है। देखिये—

"यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियम से यदि मानव-हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर खिंचकर एक कृषक बालिका का अपमान न करने आता।"

मानव-हृदय के इस विश्वव्यापी व्यापार के कारण ही तो शान्तुन को धीवर कन्या और लार्ड टेनीसन किंग काफेटुवा (King caphatia) को भिखारिणी बालिका से प्रेम-पाश ही में नहीं विवाह-सूत्र में बँधना पड़ा था। 'मधूलिका का भोला सौन्दर्य और सरल चितवन' ही तो अरुण को वशीभूत कर लेती है और तब टेनीसन के शब्दों को उद्धृत करना पड़ता है—

So sweet a face, such angel grace
in all that land had never been.

उसके हृदय-गगन पर भवभूति की मालती की भाँति कर्त्तव्याकर्तव्य के सघन घन मँड़राते हैं किन्तु विचार-विवेक की वायु उन्हें दूर भगा देती है। उसके वक्षस्थल पर कर्तव्य और अनुराग का भीषण संग्राम छिड़ा हुआ है। एक ओर प्रणय दूसरी ओर राष्ट्रानुराग उसकी हृदय-तुला पर तुल रहे हैं। देश-प्रेम का पलड़ा नीचे जा रहा है। बस यही उसके चरित्र का परिवर्तन बिन्दु है।

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या रामगुप्त और चन्द्रगुप्त परस्पर अनुरक्त थे ?

प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०

'जर्नल एशियाटिक' (अक्टूबर-दिसम्बर के अङ्क, ई० सन् १९२३) में डाक्टर सिलवाँ लेनी ने 'नाट्य-दर्पण' की हस्तलिखित प्रति में से विशाखदत्त रचित 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक नाटक के कुछ उद्धरण प्रकाशित करवाये थे जो यहाँ हिन्दी अनुवाद सहित उद्धृत किये जाते हैं—

भिन्नस्य प्रस्तुतादन्यस्य त्रिगतमनेकार्थगतम् त्रिशब्दस्य अनेकार्थत्वात् तेनद्वयर्थमपि। यथा देवीचन्द्रगुप्ते द्वितीयेऽके प्रकृतीनामाश्वासनाय शकस्य ध्रुवदेवीसंप्रदानेऽभ्युपगते राज्ञा रामगुप्तेन आत्मवधनार्थं यियासुः प्रतिपन्नध्रुवदेवी नेपथ्यः कुमारचन्द्रगुप्तो विज्ञपयन्नुच्यते। यथा

राजा—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। न खल्वहं त्वां परित्यक्तुमुत्सहे।

प्रत्यग्रयौवनविभूषितमङ्गमेतद्
रूपश्रियं च तव यौवनयोग्यरूपाम्।
भक्तिं च मय्यनुपमामनुरुध्यमानो
देवीं त्यजामि बलवांस्त्वयि मेऽनुरागः॥

यह उद्धरण 'देवचन्द्रगुप्तम्' के द्वितीय अङ्क से लिया गया है। सेना अथवा प्रजा की घबराहट को दूर करने के लिए राजा रामगुप्त ने अपनी रानी ध्रुवदेवी को शकराज को देने की शर्त मञ्जूर कर ली है। रामगुप्त का छोटा भाई चन्द्रगुप्त इस बात को पसन्द नहीं करता, इसलिए वह स्वयं स्त्री-वेश बना कर शकराज के यहाँ जाने के लिए तैयार हो गया है। रानी ध्रुवदेवी भी वहाँ आ पहुँची है। राजा को स्त्रीवेशधारी चन्द्रगुप्त के साथ देख कर वह शङ्का में पड़ जाती है और छिप कर दोनों की बातचीत सुनती है। चन्द्रगुप्त रामगुप्त के पैरों पड़ कर कहता है कि रानी ध्रुवदेवी को शकराज के यहाँ न भेज कर मुझे ही भेज दीजिये जिस पर रामगुप्त उत्तर देता है— "उठो, उठो; तुम्हारा त्याग करने में मैं असमर्थ हूँ। नव यौवन से विभूषित तुम्हारा यह अंग, यौवन के अनुरूप तुम्हारा मोहक सौन्दर्य और मुझमें तुम्हारी अनुपम भक्ति—इन सबको देखते हुए मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता, ध्रुवदेवी को त्याग देता हूँ। तुम पर तो मेरा प्रबल अनुराग है, गाढ़ी प्रीति है।

ध्रुवदेवी—(अन्यस्त्री शङ्कया) जइ भत्तिं अवेक्खसि तदो मं मन्दभाइणिं ण परिच्चइस्ससि॥ यदि भक्तिमपेक्षसे ततो मां मन्दभागिनीं न परित्यक्ष्यसि।

ध्रुवदेवी (अन्य स्त्री की शङ्का से)—यदि आप भक्ति की ओर देखें तो मुझ मंदभागिनी का कभी त्याग नहीं करेंगे।

राजा—अपि च त्यजामि देवीं तृणवत् त्वदन्तरे

तुम्हारे लिए मैं देवी को तृण तुल्य छोड़ सकता हूँ।

ध्रुवदेवी—अहं वि जीविदं परिच्चअन्ती अज्जउत्तं पढमदरं जेव्व परिच्चइस्सं। अहमपि जीवितं परित्यजन्ती आर्यपुत्रं प्रथमतरमेव परित्यक्ष्यामि।

(ध्रुवदेवी अलग)—उसके पहले तो मैं ही प्राण-त्याग करके स्वामी को छोड़ दूँगी।

राजा—त्वया विना राज्यमिदं हि निष्फलम्।

राजा—तुम्हारे बिना यह राज्य निष्फल है।

ध्रुवदेवी—मम वि संपदं णिप्फलो जीवलोओ सुपरिच्चअणीओ भविस्सदि। ममापि साम्प्रतं निष्फलो जीवलोकः सुपरित्यजनीयो भविष्यति।

मेरे लिये भी अब यह मर्त्यलोक निष्फल होने के कारण आसानी से छोड़ा जा सकेगा।

राजा—दृढेति देवी[illegible]ति मे दयालुता।

राजा—देवी के [illegible]त मेरी दयालुता अब भी दृढ़ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवदेवी—इअं अज्जउत्तस्स दयालुदा जं अणवरद्धो जणो अणुगदो एव्वं परिच्चईअदि।

इयमार्यपुत्रस्य दयालुता तदनपराद्धो जनोऽनुगत एवं परित्यज्यते।

(ध्रुवदेवी अलग)—जिसने कोई अपराध नहीं किया और जो आर्य पुत्र की अनुगामिनी है उसका इस प्रकार परित्याग किया जा रहा है और फिर भी इसे 'दयालुता' के नाम से अभिहित किया जा रहा है! क्या खूब!

राजा—परं त्वयि स्थितं स्नेहनिबन्धनं मतः।

राजा—किन्तु तुम पर मेरा अनन्य स्नेह है।

ध्रुवदेवी—अदो जेव्व मन्दभाआ परिच्चइज्जा। अतएव मन्द भागा परित्यज्यते।

ध्रुवदेवी—इसीलिए तो मुझ मन्दभागिनी का परित्याग किया जा रहा है।

राजा—त्वय्युपारोपितप्रेम्णा त्वदीयं यशसा सह। परित्यक्ता मया देवी जनोऽयं जन एव मे॥

राजा—तुम्हारे प्रेम के कारण अपनी कीर्ति के साथ-साथ मैंने महादेवी को छोड़ दिया।

ध्रुवदेवी (सूत्रधारिणीं प्रति) हज्जे, ईदृसी अज्जउत्तस्स करुणाहीणदा। हज्जे, ईदृसी आर्यपुत्रस्य करुणाहीनता।

ध्रुवदेवी—अरी, इस हद तक आर्यपुत्र निष्ठुर हो गये हैं।

सूत्रधारिणी—देवि, पडन्ति चन्दमण्डलादो चडुलाओ। किं, एत्थ कहिज्जदे। देवि, पतन्ति चन्द्रमण्डलाद् विद्युतः। किमत्र कथ्यते।

सूत्र—हे देवि! चन्द्रमण्डल से बिजलियाँ गिरती हैं। क्या कहा जाय!

राजा—देविवियोगदुःखार्तां त्वमस्मान् रमयिष्यसि।

राजा—देवी के वियोग के दुःख से हम दुखी होंगे किन्तु तुम्हारे पास रहने से हम उस दुःख को भूल जायँगे।

ध्रुवदेवी—विजोअदुक्खं वि दे अकरुणस्स अत्थि। वियोगदुःखमपि तेऽकरुणस्यास्ति।

ध्रुवदेवी—तुझ जैसे निर्दय को क्या मेरे वियोग का दुःख भी होगा?

राजा—त्वद्दुःखमपनेतुं सा शतांशेनापि न क्षमा। इत्येतत् स्त्रीवेषधारिचन्द्रगुप्तबोधनार्थमभिहितमपि विशेषणसाम्येन 'स्त्रीविषयं प्रतिपन्नमिति भिन्नार्थं योजकम्।

राजा—तुम्हारे वियोग का जो दुःख मुझे होगा, उसका शतांश भी ध्रुवदेवी दूर नहीं कर सकेगी।

ऊपर जो उद्धरण दिये गये हैं उनको पढ़ कर प्रश्न उपस्थित होता है कि रामगुप्त और चन्द्रगुप्त क्या परस्पर एक दूसरे को चाहते थे? क्या उनमें मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे? उद्धरणों से तो ऐसा जान पड़ता है जैसे रामगुप्त का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रगाढ़ अनुराग हो। किन्तु प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी', राखाल बाबू की 'ध्रुवा' और मुन्शीजी की 'ध्रुवस्वामिनी देवी'—इन तीनों कृतियों को पढ़ लेने पर कहीं भी इस बात का आभास नहीं होता कि रामगुप्त और चन्द्रगुप्त में परस्पर अच्छे सम्बन्ध थे। ऊपर के अवतरणों पर विचार करते हुए श्री अल्टेकर कहते हैं कि हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि यहाँ श्लेष का प्रयोग किया गया है, इसलिए केवल इस अवतरण के आधार पर ही इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि रामगुप्त और चन्द्रगुप्त परस्पर अनुरक्त थे, उन चुने हुए श्लिष्ट विशेषणों के नाटकीय प्रयोजन से अपनी अज्ञता प्रकट करना होगा। इन दोनों भाइयों में पहले चाहे जैसा सम्बन्ध रहा हो, शकराज की मृत्यु के बाद तो अवश्य ही परस्पर कटुता पैदा हो गई होगी। कटुता पैदा होने के दो कारण हो सकते हैं—(१) या तो रामगुप्त समझने लगा होगा कि चन्द्रगुप्त का असाधारण सामर्थ्य मेरे लिये खतर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाक है अथवा (२) चन्द्रगुप्त के हृदय में राज्य-सिंहासन के लिए स्वभावतः ही महत्त्वाकांक्षा जगी होगी। जनता के मन में यह भी रहा हो कि संभवतः प्रतिशोध लेने के लिए शक जाति फिर आक्रमण करेगी और उस हालत में किसी योग्य शासक के बिना काम नहीं चलेगा। इसलिए जनता ने सब तरह से चन्द्रगुप्त का ही समर्थन किया होगा; रामगुप्त जैसे निर्बल शासक को पाकर मन्त्रि-वर्ग के भी आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती होगी, इसलिए संभव है मन्त्रियों ने भी चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठाने के लिए पूरे प्रयत्न किये हों। कारण चाहे कुछ भी रहे हों किन्तु यह निश्चित है कि दोनों भाई शीघ्र ही एक दूसरे के शत्रु बन बैठे थे। चन्द्रगुप्त को तो रामगुप्त से अपने प्राणों का भय हो गया था, इसलिए अपनी रक्षा के लिए अथवा रामगुप्त का वध करने के लिए उसने पागलपन का बहाना कर लिया था। इस सम्बन्ध में 'देवी चन्द्रगुप्तम्' का निम्नलिखित अंश पढ़िये –

"तथा हि देवीचन्द्रगुप्ते पञ्चमेऽङ्के एसो सियकर-सत्थप्पणासिअ-सेसवेरितिमिरोहो। णिअविहवएण चन्दो गअणं गहलङ्घिओ विसइ॥

इयं (ध्रुवा)—स्वापायशंकिनः कृतकोन्मत्तस्य कुमारचन्द्रगुप्तस्य चन्द्रोदयवर्णनेन प्रवेशप्रतिपादिका।

यह उद्धरण 'देवीचन्द्रगुप्तम्' के पंचम अंक से लिया गया है। चौथे और पाँचवें अङ्क के अन्तराल में चन्द्रगुप्त ने शकराज का बध कर दिया है। रंगभूमि पर दिखलाई पड़ते हुए चन्द्रगुप्त का चतुराई से यहाँ उल्लेख हुआ है। चन्द्र को अन्योक्ति को लेकर ध्रुवा के द्वारा इस प्रवेश का प्रतिपादन नाट्यकार ने करवाया है। ऊपर जिस गाथा छन्द का प्रयोग हुआ है उसके दो अर्थ हैं (१) चन्द्रमा से सम्बन्ध रखने वाला और (२) चन्द्रगुप्त से संबन्ध रखने वाला। संस्कृत छाया सहित दोनों अर्थ यहाँ दिये जाते हैं—

(संस्कृत)—एष सितकरसार्थप्रणाशिताशेष-वैरितिमिरौघः। निज विभवेन चन्द्रो गगनं लंघितग्रहो विशति॥

(चन्द्र-पक्ष)—अपनी श्वेत किरणों के समूह से जिसने शत्रु रूप संपूर्ण अन्धकार के समूह को नष्ट कर दिया है ग्रहों का उल्लंघन करके ऐसा चन्द्रमा अपने ऐश्वर्य के साथ आसमान में प्रवेश करता है।

(चन्द्रगुप्त-पक्ष)—एष शितकरशस्त्रप्रणाशिताऽशेष-वैरितिमिरोघः। निज विभवेन चन्द्रो गगनं ग्रहलङ्घितो विशति॥

अपने हाथ के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा जिसने महामत्स्य जैसे शत्रु का अवरोध नष्ट कर दिया है और जिसमें ग्रहकृत उन्माद व्याप्त है। ऐसा चन्द्रगुप्त अपने प्रभाव से आकाश में प्रकट होता है।

ऊपर के उद्धरण "स्वापायशंकिनः कृतकोन्मत्तस्य" से स्पष्ट है कि अपने अनिष्ट की आशङ्का से चन्द्रगुप्त ने पागलपन का बहाना किया था। श्री के० एम० मुन्शी ने अपने नाटक 'ध्रुवस्वामिनी देवी' में चन्द्रगुप्त के छद्मोन्माद का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है किन्तु प्रसादजी ने अपने नाटक में इस प्रसंग का समावेश नहीं किया है।

'देवीचन्द्रगुप्तम्' के उद्धरणों से ऐसा लगता है कि रामगुप्त और चन्द्रगुप्त में पहले पहल तो भ्रातृसुलभ अनुराग रहा होगा, बाद में वह कटुता और घोर शत्रुता में परिणत हो गया जिसके परिणाम स्वरूप रामगुप्त की हत्या हुई और चन्द्रगुप्त को राज्य सिंहासन तथा ध्रुवदेवी प्राप्त हुई।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य में नारी

कुमारी विजयलक्ष्मी अग्रवाल 'साहित्य-रत्न'

'नारी' इस छोटे से दो अक्षरों के शब्द में कितनी करुणा, कितना स्नेह, कितना वात्सल्य भरा हुआ है। इस प्रज्ञानामय संसार में उसका स्नेह बिखरा हुआ है। उसकी भावनाएँ उसके हृदय के स्नेह से तरल हैं, उसका संसार त्याग का संसार है, उसकी अनुभूतियाँ उसके एकान्त मधुमय मानस में करुणा के द्वारा अनुप्राणित हुआ करती हैं। सत्येन्द्र जी के शब्दों में "नारी वात्सल्य, त्याग और करुणा का तो त्रिपथगा है।" उसके दो रूप हैं १—जाया, २—जननी। दोनों ही रूपों में वह त्याग की प्रतीक है, ममता की पर्याय है।

त्याग, स्नेह और करुणा यह तो नारी-हृदय की शाश्वत भावनाएँ हैं। आदि नारी के मानससागर के तट से भी इन्हीं तीन भावनाओं की लोल लहरें टकराया करतीं थीं और आज भी उन तरंगों के उत्थान में कोई अवरोध उपस्थित नहीं हो सका है। हाँ! यह सत्य है कि कोई अपनी संकुचित विचारधारा के कारण उसे समझने में भूल कर बैठे,

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में नारी-हृदय का सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण हुआ है। समराङ्गण में युद्ध के निमित्त प्रयाण करते हुए वीरों को उनकी स्त्रियाँ उपदेश देती हैं—

पाछा फिर मत झाँकज्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेत में, पर मत आज्यो हार॥

कितनी ओजस्विनी वाणी है, कितना वीरतापूर्ण उपदेश है। यह उपदेश नारी-हृदय के अनुकूल ही है, नारी के आदर्श को प्रतिष्ठित करने वाला है।

वह नारियाँ समर भूमि में अपने पति का मारा जाना सुनकर विलाप करने नहीं बैठ जाती हैं किन्तु कहती हैं—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

—हेमचन्द्र

वीरगाथा काल में कवियों ने नारी-हृदय की भावनाओं को अच्छी तरह से ही व्यक्त किया है। उसकी भावनाएँ भ्रमवश विकृत न हो सकी हैं।

इस युग के साहित्यकार के लिए नारी मानव के कर्त्तव्य की प्रेरणा है, वह युद्ध व्यवसायी मानव की दुर्बलता है स्वयं उसे जानती है, और उस दुर्बलता को आड़ लाकर वह प्रेम-कातर यौवनाद्धत योद्धा को सचेत कर उसे शौर्य प्रदर्शन और धर्म पालन में प्रवृत्त करती हैं। वह वीरों के लिये आकर्षण और उत्साह का उत्स है, उसे विमूढ़ करने वाली नहीं उसे धर्म पर आरूढ़ कराने वाली है, पथ भ्रष्ट करने वाली नहीं। इसी रूप में पुरुष ने भी उसे ग्रहण किया है।

वीर-गाथा-काल के उपरान्त भक्ति-काल आता है। युग बदला उसके साथ धारणायें बदलीं, जीवन की व्याख्या और मूल्य करके वीर-गाथा काल का पारस्परिक युद्धों में क्षुद्र युद्धों की विजय में सामन्तशाही विलास में शामिल हो चला। और विदेशी आक्रमणकारियों से पराजित होकर क्षुब्ध हो गया। पुरुषार्थ और जीवन में पराजित का भाव मानस सह नहीं पा सकता। वह जीवन में हारकर दूसरे पर निर्भर होने लगता है। यही हुआ, निर्गुणाश्रया शाखा के साहित्यकार सन्त आदि थे जो वीतराग हो गये थे, संसार को त्याग चुके थे। नारी के विषय में उनकी धारणा सर्वथा भ्रान्त थी। जो नारी पुरुष को चेतना करती थी पुरुष को बल और प्रेरणा थी वही उन्हें भयभीत करने लगी। उनके विचार प्रायः इस प्रकार की पंक्तियों में मुखरित हुए हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नारी नागिन एक सुभाऊ"

और इसके लिए उन्हें दोष भी नहीं दिया जा सकता है। कनक और कामिनी की निन्दा करना तो उनका काम ही था। संसार से विरक्त व्यक्ति नारी की उपेक्षा तो करेगा ही।

सगुणोपासकों में तुलसी ने तो नारी चरित्र के आदर्श ही खड़े कर दिए हैं। सीता, कौशिल्या, उर्मिला आदि सभी आदर्श नारियाँ हैं। कैकेयी भी वास्तविक नारी है। वह आदर्शवाद पर खरी नहीं उतरी है किन्तु वह मानवी है—देवी या दानवी न होकर मानवी है जिसमें नारी हृदय की दुर्बलताएँ भी विद्यमान हैं और कालक्रम में वह उन दुर्बलताओं पर विजय भी प्राप्त करती है।

अनेक व्यक्ति 'रामचरितमानस' की यह पंक्ति उद्धृत करके—

"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी,
यह सब ताड़न के अधिकारी।"

तुलसी की नारी के प्रति हीन-भावना को स्पष्ट करना चाहते हैं। वह कदाचित् यह भूल जाते हैं कि यह पंक्ति समुद्र के द्वारा जो कि कथावस्तु का मुख्य पात्र नहीं है, वहाँ पर कही गई है जहाँ पर वह राम के समक्ष अपनी तुच्छता प्रकट करता है। तुलसी की नारी भावना तो सीता और कौशिल्या के रूप में साकार हो उठी है फिर तुच्छ समुद्र की तुच्छता पर क्यों ध्यान दिया जाए। यदि यही बात राम या और कोई मुख्य पात्र कहता तो अवश्य इसे कुछ महत्व दिया जा सकता था।

सूर की नारी भावना भी गोपियों के रूप में पर्याप्त स्पष्ट हुई है। उन्होंने केवल वात्सल्य और शृङ्गार रस को अपनाया है। दोनों में ही नारी का भाग महत्वपूर्ण है। वात्सल्य रस में यशोदा मातृ-हृदय का वात्सल्य लेकर उपस्थित होती हैं और शृङ्गार रस में गोपिकाएँ अपने प्रणय को लेकर आती हैं।

जननी के रूप में नारी अपने पुत्र को पालने में झुलाती हुई हमारे समक्ष आती है—

"जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै
मेरे लाल को आउ निदरिया, काहे न आनि सुवावै॥

अथवा वह बहका कर कृष्ण को दूध पिलाती हैं—

"कजरी को पय पियहु लला; तेरी चोटी बढ़ै"

इस प्रकार पालने में पुत्र को झुलाकर निद्रा का आह्वान करना और पुत्र को फुसलाकर दूध पिलाना मातृ हृदय के सर्वथा अनुकूल है। इसमें कितनी स्वाभाविकता है।

गोपियों की भावनाओं का स्पष्टीकरण भी उचित ही हुआ है। संयोग शृङ्गार में उनका मुरली के प्रति यह उपालम्भ—

"मुरली तऊ गोपालहिं भावति,
सुन री सखी जदपि नन्दनन्दहिं।
नाना भाँति नचावति॥"

और वियोग में "निशि दिन अपने नयन बरसाना" तथा उपदेश देने के निमित्त आए उद्धव के प्रति कभी विनय करना, कभी उपहास करना, कभी अपनी दुःखगाथा सुनाना और कभी झुँझला कर कहना—

"आयो घोष बड़ो व्यापारी
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी"

आदि प्रणयोन्मत्त नारी हृदय का यथार्थ चित्रण ही है। इसमें कृत्रिमता नहीं है। नारी हृदय के चित्रण में सूर पूर्णरूपेण सफल हुए हैं।

भक्तिकाल के नारी-चित्रण में हमें स्पष्ट ही एक विकास दिखाई पड़ता है। पहले विराग है जो 'सन्त कवियों' की वाणी में प्रकट है। नारी से भयातुर उसे दूर रखने और दूर हटाने की भावना इस साहित्य में व्याप्त है। दूसरी अवस्था में नारी प्रबल भाँति से पुरुष की ओर प्रभावित हुई है। नारी में भक्त की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा अवतरित हुई है, पर उसमें जो प्रेरणा थी वीरगाथा काल में वह पुरुष में प्रवेश कर गयी है और वह पुरुष की कोप अथवा उपेक्षा की वस्तु बनी है—पर वह सजीव और भावात्मक है। कवि फि सँभला है और उसने नारी को पुरुष की अनुगामिनी मानते हुए भी प्रेम दिखाया है।

रीतिकाल में काव्य-क्षेत्र में नारी का प्रवेश आवश्यकता से अधिक हुआ है। नारी के नख-शिख वर्णन आदि से रीतिकालीन काव्य भरा पड़ा है। सेनापति को ही लीजिए। उनके अधिकांश कवित्त नायिका की प्रशंसा में ही रचे गए हैं। किसी में नायिका मदन की फुलवारी है, किसी में मोहर है, किसी में नवग्रहों की माला है और किसी में शमादान ही बन गई है—

"सोहति बहुत भाँति चीर सौं लपेटी सदा।
जाकी मध्यदसा सो तौ मैन कौ निधान है।
× × ×
पूरी निधि नेह की उज्यारी दिपै देह की सु
प्यारी तू तौ गेह की निदान समादान है।"

बिहारी को भी नायिका के सौन्दर्य्य का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करने से कम अवकाश मिला है। उनके दोहे अधिकतर इस प्रकार के हैं—

"पाँय महावरि देन कों नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मींड़त जाय॥"

केशवप्रणीत 'नखशिख' काव्य तो नारी को लेकर ही रचित है किन्तु उसमें भी उसकी भावनाओं का यथातथ्य चित्रण करने के स्थान पर सौन्दर्य का वर्णन है।

आधुनिककाल में जब काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति हुई तो कवियों के नारी के प्रति रीतिकालीन दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। जब एक कवि की विचारधारा में इतना परिवर्तन हुआ कि वह एक बार यह कह उठा—

"मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को।
थाम ले हृदय अब इस आह्वान को॥"

बाद में हुँकार उठता है—

"मुक्त करो नारी को मानव,
चिर वन्दिनी नारी को।
युग-युग की बर्बर कारा से,
जननि सखी प्यारी को॥"

—"पन्त जी

तो अन्य कवि भी नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण को लेकर क्यों न उपस्थित होते।

गुप्तजी ने "यशोधरा" की इन दो पंक्तियों में अबला जीवन की युग युग की कहानी भर दी है—

"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥"

वास्तव में नारी वात्सल्य और करुणा को लेकर ही संसार में आती है। जननी रूप में वह वात्सल्य की प्रतीक है और जाया रूप में त्याग एवम् करुणा की।

गुप्तजी की यशोधरा वास्तविक नारी है। पति के वियोग से दुःखिनी उसकी इच्छा है—

"बस सिन्दूर बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल"

और उसे इस बात की सान्त्वना है कि—

"मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल सा लाल"

नारी पति और पुत्र को लेकर ही जीवन भर व्यस्त रहती है। यदि पति के वियोग में वह प्राण त्याग भी करना चाहती है तो पुत्र के कारण ऐसा नहीं कर पाती है। नारी केवल जायारूप में ही सीमित नहीं है, वह जननी भी है और जननी पद का निर्वाह करना उसके लिए आवश्यक है—

"बनी जननी भी जाया री"

यशोधरा स्वयम् ही जननी पद के उत्तरदायित्व का अनुभव करती है तभी तो वह कहती है—

"स्वामी मुझको मरने का भी,
तो दे न गए अधिकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ गए मुझ पर अपने,
उस राहुल का सब भार ॥"

अन्त में बुद्ध के वचनों में कवि के स्वयम् के विचार ही स्पष्ट होते हैं—

"दीन न हो गोपे, हीन नहीं नारी कभी
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से"

'यशोधरा' के समान ही 'साकेत की उर्मिला' का चित्रण भी सुन्दर हुआ है।

'पञ्चवटी' में भी उन्होंने नारी की दुर्दशा पर दुःख प्रकट कर लिया है—

"नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन,
हैं नारी ही को लेकर।
अपने लिए सभी सुविधाएँ,
पहले ही कर बैठे नर ॥"

गुप्तजी ने नारी हृदय का ठीक ही चित्रण किया है।

प्रसादजी ने 'कामायनी' में नारी के महत्व की ओर संकेत किया है। श्रद्धा आदि देवनारी है। वह शाश्वत नारी हृदय की भावनाओं की प्रतीक है। आरम्भ में ही जब वह मनु से मिलती है तो अपने को समर्पित कर देती है।—

"समर्पण लो सेवा का सार।
सजल संसृति का यह पतवार ॥
आज से यह जीवन उत्सर्ग।
इसी पदतल में विगत विकार ॥"

श्रद्धा के इस समर्पण में सम्पूर्ण स्त्री जाति का समर्पण है। नारी का जीवन त्यागमय है। वह अपने त्याग का प्रतिदान नहीं चाहती है। उसके हृदय का स्नेह बखेरने के लिए ही बना है, पत्नी रूप में नारी का त्याग ही अधिक महत्वपूर्ण है।

श्रद्धा का जननी रूप भी उचित ही है। उसके हृदय में अपने भावी शिशु के लिए अगाध वात्सल्य भरा हुआ है। उसके इन शब्दों से माँ बनने की आकुल साध लक्षित होती है—

"उनके घर में कोलाहल है,
मेरा सूना है गुफा द्वार ॥"

यह तो हुआ नारी हृदय का चित्रण। प्रसाद का अपना दृष्टिकोण भी विचारणीय है। उनके विचारानुसार पुरुष की नारी के बिना उन्नति दुःसाध्य ही नहीं असाध्य है। मनु श्रद्धा की उपेक्षा करता है और इड़ा का पक्ष लेता है। वह राज्य-संचालन सम्यक् रीति से करता है किन्तु इड़ा के साथ व्यभिचार करने पर उसकी बहुत हानि होती है। उस समय श्रद्धा उसके समक्ष आती है और वह उसके वास्तविक रूप को पहचानती है—

"तुम अज वर्षा सुहाग की,
और स्नेह की मधु रजनी।
चिर अतृप्त जीवन यदि था,
तो तुम सन्तोष बनी थी ॥"

अथवा :—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पद तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के समतल हृदतल में ॥"

बाद में नारी ही पुरुष का मार्ग प्रदर्शन करती है।

"श्रद्धा आगे मनु पीछे थे।
साहस उत्साही से बढ़ते ॥"

'प्रिय-प्रवास' में हरिऔधजी का नारी हृदय का चित्रण भी सुन्दर है। यशोदा का मातृ-हृदय पुत्र के स्नेह से विह्वल होकर नन्द से कहता है—

"विमल जल मँगाना देव प्यासा पिलाना।
कुछ क्षुधित हुए ही व्यंजनों को खिलाना ॥"

राधा का चरित्र भी स्वाभाविक ही है। कृष्ण-वियोग से वह भी अतिखिन्ना है।

(शेष पृष्ठ ७६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीराँ के संदिग्ध सम्बन्धी

श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

अपने पदों में मीरां ने अपने कतिपय सम्बन्धियों की चर्चा की है। ऐसे पदों के आधार पर मीरां के जीवन की कुछ घटनाओं पर धुंधला प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक कलाकार अपनी कृति में उन्हीं घटनाओं या व्यक्तियों का चित्र उतारता है जिनका उसके जीवन या मानस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। फिर, मीरां के पद तो जीवन की अभिव्यक्ति है। जीवन से ओत-प्रोत वे काव्य-कलामय बन गये हैं अवश्य, तथापि, वे मात्र कवि-कल्पना नहीं अपितु वास्तविक अनुभूति हैं। अतएव उन पदों से व्यक्त भावना और सम्बन्ध विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

प्रसिद्ध है, मीरां को सात वर्ष की छोटी वयस में ही मातृ-वियोग का दुःख झेलना पड़ा था। माता के निधन के बाद से ही, वे अपने दादा राव दूदाजी के पास रहीं। राव दूदाजी प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त थे, और वहीं से मीरां को कृष्ण-प्रेम की प्रेरणा मिली। परन्तु मीरां के पदों से उनकी माता का वर्त्तमान रहना ही सिद्ध होता है। कथोपकथन की शैली में लिखे गये पदों में दो पद ऐसे हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि माँ ने मीरां की कुछ बातों से वर्जित ही नहीं किया उसका विरोध भी किया। सभी संग्रहकर्ताओं ने इन दोनों पदों को प्रमाणिक मानते हुए अपने संग्रह में स्थान दिया है। इनके रहते भी मीरां की माँ के निधन की घटना से सभी विद्वान सहमत हैं। ये दोनों पद निम्नाङ्कित हैं—

(१)

मांई म्हांने सुपणे में परण गया जगदीस।
सोती को सुपणा आविया जी,
सुपणा बिस्वाबीस।

माँ: गैली दीखे मीरा बाबली,
सुपणा आल जञ्जाल।

मीरां : मांई म्हाने सुपणे में,
परण गया गोपाल।
अङ्ग-अङ्ग हल्दी में करी जी,
सुधे भोज्यो गात।

(पृष्ठ ७५ का शेषांश)

इस प्रकार काव्य में तो नारी हृदय का स्पष्टीकरण उचित रूप में ही हुआ है। उपन्यासों और नाटकों में भी इसका समावेश है।

'सिन्दूर की होली' में पं० लक्ष्मीनारायणजी मिश्र ने स्त्री जाति की समस्या पर प्रकाश डाला है। चन्द्रकला में प्रतिशोध की भावना है। उसका स्त्रीत्व पुकार उठता है—

"रोटी और कपड़े के प्रश्न को लेकर स्त्रीत्व की मर्यादा बिगड़ गई। हम—स्त्रियों का निर्माण भी उन्हीं उपकरणों से हुआ है जिनसे पुरुषों का हुआ है लेकिन तब भी हम पुरुषों की गुलामी में सदैव से चली आ रही हैं। हमारे भीतर कभी सन्देह नहीं पैदा हुआ। ऐसा क्यों है?"

बीसवीं शताब्दी में नारी हृदय को यह भावना होना स्वाभाविक ही है। "प्रसादकृत ध्रुवस्वामिनी" में भी ध्रुवस्वामिनी कहती है—

'मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है।"

अन्त में निष्कर्ष यही निकलता है कि रीतिकाल के अतिरिक्त प्रत्येक काल में हिन्दी-साहित्य में नारी हृदय का यथार्थ चित्रण हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माई-म्हांने सुपणे में,
परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोटि जहाँ जान पधारे,
दुलहा श्री भगवान।
सुपणे में तोरण बाँधियों जी,
सुपणे में आई जान।
मीरां को गिरधर मिलिया जी,
पूरब जनम के भाग।
सुपणे में म्हांने परण गयां जी,
हो गया अचल सुहाग।
मीरां तू मत बरजै माइड़ी,
साधाँ दरसन जाती।
राम नाम हिरदै बसै,
माहि ले मदमाती।

(२)

मां: माई कहै सुन धीहड़ी,
काहे गुण फूली।
लोक सोवै सुख नींदड़ी,
थे क्यूँ रैणज भूली।
मीरां: गेली दुनियाँ बावली,
ज्यां कूँ राम न भावै।
ज्यांरे हिरदै हरि बसै,
त्याँकूँ नींद न आवै।
चौबस्यां की बावड़ी,
ज्यां कूं नीर न पीजै।
हरि नारे अमृत झरै,
ज्यां की आस करी जै।
रूप सुरङ्गा राम जी,
मुख निरखत जी जै।
मीरां व्याकुल बिरहणी,
अपनी कर लीजै।

× × ×

उपर्युक्त दोनों पदों में क्रियाएँ सभी वर्तमान काल की हैं। सभी अभिव्यक्तियों से कार्य और विरोध दोनों का साथ ही साथ होना व्यक्त होता है।

बाल-सुलभ चपलता से मण्डित किसी गम्भीर भाव की अभिव्यक्ति ही इन पदों से सुस्पष्ट हो उठती है। 'सुपणे में परण गया जगदीस' जैसी उक्ति किसी सप्त वर्षीया बालिका की नहीं हो सकती। 'लोक सोवै सुख नींदड़ी, थे क्यूँ रैणज भूली', जैसा प्रश्न भी कोई अपनी सप्त वर्षीया कन्या से नहीं कर सकती। दोनों पदों की अभिव्यक्तियों से मीरां की यौवनावस्था झलक उठती है। यहाँ शङ्का होती है कि यह मां नाम्नी स्त्री कौन है? यह सम्भव है कि माँ के रिक्त स्थान की पूर्त्ति करने वाली किसी अन्य स्त्री को ही मीरां ने मां समझ लिया हो। तथापि, बाल्यावस्था के इस भ्रम का वयोवस्था में मिट जाना ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है, यह हो सकता है कि सत्य को जानते हुए भी अपनी महानता के कारण मीरां ने पालन करने वाली उस अन्य स्त्री को सदा ही मातृ पदोचित सम्मान व स्नेह दिया हो, अतएव उसे सदा माँ नाम से ही सम्बोधित किया हो। तब भी, मातृ पद के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली किसी भी अन्य स्त्री का महत्व इतना अधिक नहीं हो सकता जैसा मीरां के पदों से व्यक्त होता है। इस माँ द्वारा किये गये हलके से विरोध को भी अपने पदों में सुरक्षित कर मीरां ने अपनी 'माँ' को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कारण स्पष्ट है। मीरां के पदों में कुछ प्रमुख सम्बन्धियों की ही चर्चा है। ऐसे पदों में भी अधिकांश वे पद हैं जिनमें किसी राणे के प्रति कटुता का भाव मिलता है, और कुछ ही पद ऐसे हैं जिनमें सास, ननद और माँ की चर्चा हुई है। इतर सम्बन्धियों की चर्चा करते हुए मीरां ने कहीं भी किसी सम्बन्ध विशेष की संज्ञा स्पष्ट नहीं की वरन् 'माई बन्धु', 'स्वजन', 'कुटुम्बी', 'सनेही' आदि साधारण सम्बोधनों से ही काम निकाल लिया है। मीरां की इस प्रवृत्ति देखते हुए, इस मां नाम्नी स्त्री का महत्व बढ़ जाता है। तब यह माँ कौन है? क्या मीरां की अपनी मां ही जीवित है या मां के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली अन्य कोई स्त्री है? या ये दोनों पद ही प्रक्षिप्त है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और भी शङ्का होती है। मां के निधन के कारण बचपन से ही मीरां अपने दादा, परम वैष्णव भक्त राव दूदाजी के पास रहीं। वहीं उनका लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा भी हुई। अपने दादा से मीरां को प्रेरणा भी मिली और वे भी शीघ्र ही कृष्ण-प्रेम में रँग उठीं, यही ऐतिहासिकों का मत है। तथापि, मीरां ने इस विषय पर एकदम चुप्पी ही साध ली है। चूँकि उन्होंने अपने प्रति किये कटु व्यवहारों की चर्चा बराबर की है, विरोध करने वाली सास, ननद, मां, या मां के रिक्त स्थान की पूर्त्ति करने वाली किसी अन्य 'माँ' की चर्चा की है। राणा के प्रति कटुता, पारस्परिक वैमनस्य, व कहीं-कहीं हीन-भावना की भी अभिव्यक्ति की है। लक्ष्य तक पहुँचने में अपने सहायक गुरु सन्त रैदास की भी चर्चा की। फिर भी, माँ के निधन के बाद अपने एकमात्र आश्रय और पालनकर्त्ता, संस्कृति दाता अपने परम वैष्णव भक्त राव दादूजी की भूल कर भी चर्चा नहीं की। यह स्वाभाविक नहीं मालूम पड़ता। जब कि मीरां ने अपने संघर्ष जनित कटु अनुभवों का बराबर वर्णन किया है, तब उस संघर्ष के कारण, कृष्ण प्रेम की प्रेरणा देने वाले अपने दादा राव दूदाजी के प्रति वह ऐसी चुप्पी साध ही कैसे सकती है? साहित्य परम्परानुकुल अन्य वैष्णव व भक्तों का वर्णन करते हुए भी मीरां को अपने पालनकर्त्ता प्रसिद्ध कृष्ण भक्त, परम वैष्णव, अपने दादा राव दूदाजी की याद नहीं आती। यह सब कुछ अत्यन्त अस्वाभाविक व रहस्यमय मालूम पड़ता है। वस्तुस्थिति के ज्ञान के लिये गहरी छानबीन की आवश्यकता है।

मीरां का अपनी ननद का नाम ऊदांबाई बताना भी संदेहोत्पादक है। इतिहास वेशेषज्ञों का कहना है मीरां भोजराज की पत्नी थीं। इतिहासज्ञों के मतानुसार ही भोजराज की चार बहिनें, कुंवर बाई, गङ्गा बाई, पद्मा बाई और राज बाई थीं। भोजराज की बहनों में ऊँदा बाई का नाम कहीं नहीं मिलता, तथापि मीरां ने अपनी ननद का नाम ऊदाबाई ही बताया है। ऊदाबाई से हुई मीरां की बातचीत विषयक पद मिलते हैं। प्रायः सभी प्रामाणित माने जाने वाले पदों के संग्रहों में इनको स्थान मिला है। यदि इन पदों को प्रामाणित मान लिया जाता है तो प्रश्न उठता है कि ऊदाबाई के भाई, जिनको मीरां ब्याहीं थीं कौन थे? मीरां के वे पति जिनकी बहन ऊदाबाई, ईडरगढ़ ब्याहीं थीं कौन थे? बहन ऊदां को भाभी के प्रति शिकायत है ईडरगढ़ तें आया ओलमा, (मीरां-माधुरी)। ऊदां के यह भाई भोजराज तो कदापि नहीं है, तब अन्य कौन भाई है? यदि इन पदों को प्रामाणित मान लिया जाता है तो मीरां का भोजराज की पत्नी होने का अनुमान गलत सिद्ध हो जाता है। अतः मीरां का निर्धारित काल भी गलत ही सिद्ध हो जाता है। यदि मीरां भोजराज की ही पत्नी सिद्ध हो जाती है तो ऊदाबाई के साथ कथोपकथन के पदों को निस्सन्देह प्रक्षिप्त मान लेना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में मीरां के समय विचार और पदों के नूतन संग्रह की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव होती है।

मीरां के राणा कौन थे, यह भी बड़ा विवादस्पद विषय हैं। यदि भोजराज को ही मीरां का पति मान लेते हैं, तो अवश्य ही उनको यातना देने वाले राणा उनके श्वसुर या देवर होने चाहिये। जेठ तो हो ही नहीं सकते क्योंकि भोजराज ही सबके अग्रज थे। साधारण मत यही है कि ये राणा मीरां के देवर थे। मीरां के पदों से ऐसी कोई भावना व्यक्त नहीं होती, न वैधव्य की ही कोई भावना व्यक्त होती है। इतिहास-विशेषज्ञों के अनुसार भोजराज की मृत्यु पिता की जीवितावस्था मे ही हुई थी। श्वसुर की मृत्यु के बाद देवर ने ही मीरां को कष्ट दिया हो यह सम्भव है। जिस मीरां ने अपनी यातनाओं की बारबार चर्चा की है वहीं मीरां अपने जीवन को बदल डालने वाली तथा उसमें और कटुता का गहरा बीज डाल देने वाली, उस प्रमुख घटना की यों सर्वथा अवहेलना क्योंकर कर सकती थीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणा के प्रति, मीरां के पदों में जो भाव व्यक्त हैं उनसे भी इनका सधवा होना ही आभासित होता है। मीरां सास से कहती है—

"नहीं मैं पीहर सासरे,नहीं पिया जी री साथ।

निश्चय ही मीरां का संघर्ष पति की जीवितावस्था में ही प्रारम्भ हो गया था।

"थे तो राणा जी म्हांने इसड़ा लागो,
ज्यूं बृच्छन में केर।
× × ×
थे जावो राणा घर आपणै,
तेरी मेरी नहीं सरी।"

'तेरी मेरी नहीं सरी' जैसी अभिव्यक्ति भी क्या ससुर या देवर के प्रति सम्भव है? 'सरै' या 'सरी' मारवाड़ी शब्दों अर्थ है 'निभना', या 'निभी' 'तेरी मेरी नहीं सरी' 'तेरी मेरी नहीं निभी' जैसी उक्ति देवर या ससुर के लिये सम्भव नहीं। अपने लेख 'मीरां सधवा या विधवा' में मैंने मीरां के सधवा होने के और भी प्रमाण दिये हैं। इतिहासानुसार भोजराज का देहान्त विवाह के कुछ समय बाद ही अल्पावस्था में ही हो गया था। फिर ये राणा कौन हैं, जिनके प्रति की गई अभिव्यक्तियों के आधार पर मीरां सधवा प्रतीत होती है और जिनकी बहन ऊदाबाई हैं? भोजराज की बहनों में ऊदाबाई का नाम नहीं मिलता। वह कौन भाई है जिनको मीरां ब्याही थी और जिनकी बहन ऊदाबाई हैं?

मीरां के पदों में 'माइतणो मोसाल' की भी अभिव्यक्ति मिलती है। यह 'माइतणो मोसाल' क्या है? शायद ननिहाल या मौसी के घर का ही पर्याय-वाची हो। शायद दो विभिन्न शब्द हों। अधिक सम्भव है, दो विभिन्न शब्द ही हों, क्योंकि मारवाड़ी में 'मायत' एक शब्द है। 'मायत' शब्द का अर्थ है मां बाप की तरह स्नेहमय अधिकार रखने वाले, पथ प्रदर्शक बुजुर्ग। प्रचलित प्रथानुसार यह शब्द सभी निकट बुजुर्ग सम्बन्धियों के लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द का रूढ़ि वाचक अर्थ मात्र बुजुर्ग ही रह गया है। मीरां को समझाते हुए सास कहतीं हैं :—

"लाजै पीहर सासरो, लाजै माइतणो मोसाल।
सब ही लाजै मेड़तिया जी, थांसू बुरा कहैं संसार॥"

स्पष्ट ही इस 'माइतणो मोसाल' का महत्व 'पीहर' या 'सासरो' के समकक्ष का ही है। हिन्दू स्त्री के जीवन में दो घर विशेष महत्वपूर्ण होते हैं, एक पीहर, दूसरा ससुराल। प्रायः समान महत्व प्राप्त इन दो घरों में भी ससुराल ही अधिक महत्वपूर्ण होती है। मारवाड़ी में एक कहावत प्रसिद्ध है "बाम्हन बेटी बराबर।" ब्राह्मण और कन्या समकक्ष होते हैं। इस कहावत से सामाजिक स्थिति सुस्पष्ट हो जाती है। पिता के घर में आदरणीय स्थान पाते हुए भी लड़की अतिथि भर होती है। जैसे प्रत्येक सद्गृहस्थ के लिये ब्राह्मण पूजनीय है, आदरणीय है, ब्राह्मण के प्रति सद्-व्यवहार गृहस्थ का अनिवार्य धर्म है, ठीक वैसे ही लड़की प्रत्येक घर में आदरणीय और पूजनीय है, सद्-व्यवहार की अधिकारिणी है, तथापि घर की मेहमान भर है। इसके विपरीत ससुराल में स्त्री की अपनी एक इकाई है। पति पत्नि की दो विभिन्न इकाइयाँ एक हो जाती है। पुरुष अपने ही घर में एक इकाई होता है अतएव पत्नी की एक स्वतंत्र इकाई बन जाती है। ससुरालमें उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, अधिकार होता है। स्त्री के जीवन का बड़ा भाग उसका दुःख सुख, उसके संघर्ष या सफलता, सब कुछ ससुराल में ही बीतता है, अतएव विरोध करते हुए सास का यह कहना कि 'लाजै पीहर सासरो' अत्यन्त स्वाभाविक ही है। आगे, सास कहती है 'सब ही लाजै मेड़तिया जी।' यह भी मारवाड़ में प्रचलित प्रथा को देखते हुए अत्यन्त स्वाभाविक है। मारवाड़ी कई विभिन्न शाखा प्रशाखाओं में बाँटे हुए हैं। जैसे गोयनका, मुरा[illegible], जालान, पिती, खेमका आदि। किसी भी शाखा की लड़की को उसी शाखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अन्य व्यक्ति अपनी ही बेटी या बहन मानेगा। आज भी विवाह के अवसर पर, ननसारा देते समय लड़की के पीहर की शाखा के जितने व्यक्ति मौजूद होंगे वे सभी उस लड़की से तिलक करायेंगे। प्रत्येक तिलक करने वाले को अपनी स्थिति अनुसार कुछ न कुछ लड़की को देना ही होता है। इस समय का तिलक महत्वपूर्ण होता है। अपने वंशगत सम्बन्धी (Blood relatives) या वे जिनके साथ सादर का गहरा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वे ही इस अवसर पर तिलक करवा सकते हैं, दूसरों के कराने पर आपत्ति की जाती है। एक शाखा की कन्या जिस अन्य घर में ब्याही हो उसका पानी तक पीने से उसी शाखा के अन्य भाई परहेज करते हैं। आज जबकि और सभी प्रचलित छोटी मोटी रूढ़ियों में भी शिथिलता आती जा रही है, यह ननसारे के [illegible] पर तिलक करवाने की प्रथा ज्यों की त्यों बनी है। इस अवसर पर अपनी ही शाखा के किसी भी भाई को तिलक करने से मना करने का अर्थ होता है सम्पूर्ण समाज से शत्रुता मोल लेना। इस प्रथा को देखते 'सब ही लाजै मेड़तियाँजी" अत्यधिक स्वाभाविक मालूम होता है। फिर भी "लाजै माहतणौ मोसाल" कहना तो कुछ आश्चर्यजनक ही मालूम होता है। नाना और मौसी के घर से स्त्री का सम्बन्ध बहुत ही गौण होता है। मां की मृत्यु के बाद तो ननिहाल से और ननिहाल के अन्य स्वजनों के साथ सम्बन्ध और भी कम हो जाता है। साधारणतः लड़के, लड़की का सम्बन्ध तय करते हुए भी ननिहाल के लोगों से राय नहीं ली जाती, फिर मौसी का घर तो और भी दूर पड़ जाता है। यदि 'माइतणौ मोसाल' को एक ही शब्द मान लिया जाय तो भी इससे आभासित होता अर्थ मौसी के घर का ही लक्ष्य करता है। 'माइतणौ मोसाल' अर्थात् वयोवृद्ध मौसी, यदि इसको दो विभिन्न शब्द मान लिया जाय तो अर्थ और भी स्पष्ट हो उठता है। 'पीहर', 'सासरो' 'सब ही मेड़तिया' तो लजाते ही हैं साथ ही साथ वयोवृद्ध वर्ग और मौसी का घर भी लजाता है। दोनों में से किसी अर्थ को मान लेने पर भी मौसी के घर की महत्ता अक्षुण्ण रहती है। ऐसा क्यों? क्या माँ के रिक्त स्थान की पूर्ति मौसी ने की? क्या मीरां का बचपन 'मोसाल' में बीता? तब यह 'मौसाल' कहां था? इस घर की शिक्षा दीक्षा, रहन सहन, और संस्कृति कैसी थी? आदि उल्लिखित बातों का पता लगने पर ही मीरां के जीवन की बहुत सी गुत्थियां सुलझ सकेंगी।

पठनीय पुस्तकें

१ मीराँ की प्रेम साधना—
श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' एम० ए०

२ मीराँ जीवनी और काव्य—
श्री हावीरसिंह गहलोत

३ मीराँ-माधुरी—
श्री व्रजरत्नदास

४ मीराँ बाई की पदावली—
श्री परशुराम चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०

नोट—मीरां के सम्बन्ध में जो सज्जन अपने भाव प्रकाशित करना चाहें वह अपने लेख भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता

प्रथम किरण—लेखक—श्री रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण'। प्रकाशक—विद्याभास्कर बुकडिपो ज्ञानवापी, बनारस। पृष्ठ ८४, मूल्य २॥)

प्रस्तुत संग्रह में लेखक की ४२ रचनाओं का संग्रह है। आरम्भ में ही हिन्दी के तरुणों की प्रेरक-शक्ति श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा आशीर्वाद दिया गया है। उनके शब्द हैं—'उनके (प्रथम किरण के कवि के) काव्य में मुझे सरलता सुषुमा और आस्तिकता के मधुकण दिखाई देते हैं।' इन शब्दों में 'प्रथम किरण' की कविताओं की जो आलोचना आगई है, वह अक्षरशः सत्य है। स्वयं हमने इस पुस्तक की कविताओं को पढ़कर यह अनुभव किया है कि खण्डेलवालजी में एक विशिष्ट प्रतिभा है।

इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें अपने अभावों का रोना कवि ने नहीं के बराबर रोया है। सर्वत्र उसने तटस्थ होकर जीवन और जगत को देखा है और तटस्थता किसी कलाकार का सबसे बड़ा गुण है। हमें प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं को देखकर लगा कि वस्तुतः कवि का प्रकृति के साथ सीधा लगाव है। 'गंगा तट का स्वप्न', 'सावन', 'मरु का चन्द्रोदय', 'हरी घास', 'प्रकृति की गोद', 'गाँव की साँझ' आदि कविताएँ ऐसी हैं, जो हिन्दी का गौरव हो सकती हैं। इस कवि की दूसरी विशेषता यह है कि उसका साधना शील व्यक्तित्व कविता में व्यक्त होकर एक सजीव प्रेरणा देता है। एक स्थान पर कवि कहता है—

साधना का देश है यह,
है यहाँ अनिवार्य जलना।
कण्टकों के मार्ग पर पड़ता,
यहाँ अविराम चलना॥
दर्द का उपचार कोई भी,
नहीं प्यारे, यहाँ पर।
'अनवरत बढ़ना' नियम,
यह है न टलता, है न टलना॥
चूर्ण होकर भी सखे तू,
पूर्ण कर अपना महाव्रत।
दीर्घ है पथ साधना का,
नाम ले विश्राम का मत॥

यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि इस कवि की प्रतिभा और कल्पना अद्भुत है तथापि पन्त के आशावादी दृष्टिकोण और संयत शैली का उस पर पर्याप्त प्रभाव है।

प्रातः किरण—लेखक श्री महादेव झा 'सुदेव' बी० ए०, प्रकाशक—साहित्य सदन, सूर्यगढ़ (मुंगेर) पृष्ठ ४६, मूल्य ।॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठारह कविताओं के इस संग्रह में सबसे पहले तो यह 'निवेदन' छपा है कि कविताएँ जल्दी में छपाई गई हैं। उसके बाद एक शुद्धिपत्र जोड़ा गया है जो 'निवेदन' का समर्थन करता है। उसके अतिरिक्त कई स्थानों पर स्याही से भी शुद्धि-संस्कार किया गया है। यह देखकर लगता है कि कवि वास्तव में लापरवाह है। लेकिन यह अच्छी बात नहीं। इससे कविताओं के सौन्दर्य को बड़ा धक्का लगा है। यदि कवि सन्तोष के साथ इस संग्रह का प्रकाशन करता तो पाठकों को अधिक लाभ होता। कारण, कवि की कविताओं में प्राण तत्व की कमी नहीं है। इस संग्रह की कई कविताओं में पहाड़ से छूटे निर्झर की रवनी है और वे अपने भीतर मन को लीन करने की क्षमता रखती हैं। 'रानी से' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

यौवन क्या जो गले न जगती
की ज्वाला के बीच सखी।
प्रेम, कहो क्या, सके न जो कुछ
इस जगती को सींच सखी॥
वह सम्पति जल जाय
विश्वहित जिसको सकूँ उलीच नहीं।
हृदय भला क्या रहा, विपति भी
पाई जिसको खींच नहीं॥
जलता है संसार हेर कर
मोद मनाऊँ मैं कैसे?
मचता है संहार, साह का
दीप जलाऊँ मैं कैसे॥

'धवल-धाम', 'दीवाली', 'नूर का पेड़' आदि कविताएँ इस संग्रह की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। कहीं-कहीं कवि को भावुकता में यही खयाल नहीं रहा है कि अमुक शब्द स्थान विशेष के लिए उपयुक्त है या नहीं। जैसे—

देश की [illegible]कार पै
चल पड़े [illegible]ार हैं।

खुदकुशी के ख्याल में
आँख में खुमार है॥

'खुदकुशी' आत्म-हत्या को कहते हैं पर कवि उसका अर्थ कदाचित 'बलिदान' समझता है। हमारी राय में कवि को इस प्रकार के असंयम से बचना चाहिए।

युग क्रान्ति—लेखक और प्रकाशक—शिवदयाल जाङ्गिड़ बी० ए०, प्राप्ति स्थान—श्रमजीवी आश्रम सिहोदरी, लक्ष्मणगढ़ (जयपुर)। मूल्य १)

'युगक्रान्ति' में जो आठ कविताएँ हैं वे सब किसान मजदूरों के जीवन की दुर्दशा और शीर्षकों की क्रूरता का दिग्दर्शन कराती है और उन्हें पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में लेखक ने जिस चीज का चित्रण किया है उसके प्रति उसकी सच्ची सहानुभूति है। यों तो सभी कविताएँ गति और प्रेरणा देती हैं परन्तु हमें 'भूख-भवानी' विशेष प्रिय लगी। इसमें मानों कवि का अपना सब कुछ आगया है। कवि कहता है—

ओ मजदूरो और किसानो
खेत कारखानों के मालिक
आज भयानक भूख लगी है
आग लगेगी धन-कुबेर के
धरती नीची होगी निश्चय।

एक बात बड़ी खटकने वाली है और वह है भाषा और छन्द-विधान की। कई स्थानों पर गति-भङ्ग दोष होने से प्रवाह में बाधा पड़ जाती है। साथ ही 'नैश' के स्थान पर 'नैश्य', शीतमय झंझ-झोंक (झंझा के झौंके) 'तड़पड़ाती क्षीण विधुत' आदि अशुद्ध शब्दों का प्रयोग चिन्तनीय है। आशा है अगले संस्करण में कवि इस दोष का परिहार कर लेगा।

छत्रपति—रचयिता—श्री परमानन्द शर्मा एम० ए०। प्रकाशक—राष्ट्रभाषा मन्दिर, जालन्धर शहर। पृष्ठ १७६, मूल्य ४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वीर रस प्रधान महाकाव्य है, जो [illegible]पति महाराज शिवाजी के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। शिवाजी के जीवन की कोई ऐसी प्रमुख घटना नहीं है, जो इसमें न आई हो।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय की हल्दी घाटी की शैली पर लिखा गया यह काव्य जहाँ शिवाजी के शौर्य की झलक देता है वहाँ देशभक्ति की प्रेरणा भी। कारण, इसका उद्देश्य शिवाजी को हिन्दू-संस्कृति के उद्धारक के रूप में प्रस्तुत करने का है।

भाषा में उर्दू का पर्याप्त पुट है और शब्दों का अशुद्ध प्रयोग अनेक स्थलों पर है। फुटकर कविताओं के संग्रहों में तो हम मान भी सकते हैं कि शीघ्रता में प्रबन्ध न हो सका हो पर जहाँ पौने दो सौ पृष्ठ की एक शृङ्खलाबद्ध कहानी हो वहाँ ऐसी असावधानी होना चिन्त्य है। एक स्थान पर 'असि व्याली' को 'असि व्याला' कर दिया है। यह किस नियम से किया है, यह समझ में नहीं आता। लेखक महोदय को यह न भूलना चाहिए कि कविता के लिए व्याकरण की शुद्धता उतनी-ही आवश्यक है जितनी गति और यति की।

आह्वान-विसर्जन—ले—श्री० महेशशरण जौहरी ललित। प्रकाशक—धनीराम श्रीवास्तव, कमल प्रकाशन मन्दिर, ७५ ए० कौशलपुरी, कानपुर। मूल्य १॥)

यह लेखक के ५५ गीतों का संग्रह है। ये सभी गीत प्रणय-निवेदन से भरे हैं। कवि के जीवन की अतृप्ति और जलन का ऐसा स्वाभाविक प्रकाशन इन गीतों में हुआ है कि हृदय प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। सीधी-सादी सरल भाषा और स्वाभाविक अनुभूति दोनों ने इन गीतों को मर्म स्पर्शिता देदी है। ललितजी के ये गीत काव्य प्रेमियों के कण्ठहार होंगे, ऐसी आशा है।

—कमलेश

अतीत (गुरू गोविन्दसिंह) रचयिता—ले०—श्री निर्भय। प्रकाशक—अतीत महल, हाथरस। पृष्ठ ६६, मूल्य ६) वार्षिक।

"अतीत" अतीत-महल हाथरस से पुस्तिकाकार प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका है जिसका उद्देश्य प्राचीन काल के वीरों की वीरगाथाओं को काव्यरूप में प्रस्तुत करना है। यह अङ्क प्रथम वर्ष का पाँचवाँ अङ्क है। इसमें गुरू गोविन्दसिंह की जीवन-कथा लिखी गई है। पुस्तक में गुरू की युद्ध वीरता के सुन्दर वर्णन के साथ साथ देशोत्थान सम्बन्धी उपदेश भी बहुत रखे गये हैं। छुआछूत, विद्या प्रचार, नशा-निवारण आदि के सुन्दर उपदेश दिये गये हैं। पुस्तक कवित्वपूर्ण न होते हुए भी जन-साधारण में प्रचारित होने योग्य है।

—सरोज

चेतन—रचयिता—श्री बाबूराम पालीवाल। प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ ६४, मूल्य १॥)

यह संग्रह श्री बाबूरामजी पालीवाल की कविताओं का तृतीय संग्रह है। इसको श्री बालकृष्ण शर्मा नवीनजी के आशीर्वाद पूर्ण स्वागत का गौरव प्राप्त हुआ है। इस ग्रंथ की अधिकांश कविताएँ प्रणय गीतों के रूप में आई हैं। इन प्रणय गीतों की पृष्ठभूमि में चाहे वासना है किन्तु वर्तमान रूप में ये ऐन्द्रिकता की धरातल से ऊपर उठे हुए हैं। इन गीतों की जो 'प्रेयसि' आलम्बन है वह एक स्फूर्ति प्रदायिनी अधिष्ठातृ देवी का रूप धारण कर लेती है जिससे कवि को प्रेरणा मिलती है—

हे कल्याणि कवि की वाणी में
नित्य नई कविता लाओ,
कवि के प्राणों में करो वास
कवि के नयनों में छा जाओ।

कवि के हृदय में प्रणय और कर्तव्य का संघर्ष प्रतीत होता है जिसमें कर्तव्य ने प्रणय पर विजय प्राप्त करली है किन्तु फिर भी प्रणय की भावना अन्तस्तल से अपना मधुमय आकर्षण बनाये हुए है। देखिए—

चलते रहने का क्रम सहसा
रुक ही गया एक पल को तो,
गर्वोन्नत कर्तव्य भाल मम
झुक ही गया एक पल को तो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भावना हुई बिजयिनी
हार गया कर्तव्य विचारा।

कवि निराशावादी नहीं है—'मेरे दुख के अन्धकार में सुख की ज्योति छिपी रहती है।' संसार का चिरन्तन सत्य यही है कि 'मानव का सिक चिरन्तन नहीं है किन्तु सत्य तो है मानव की ममता, मानव का स्नेह।' कवि की भावुकता उसको ऊँचा उठा कर दार्शनिकता की भाव-भूमि में ला खड़ा कर देती है—

बस गया जो विश्व में
उस तात को तो अङ्क भर लूँ
छोड़ सीमा, आज भर
निःसीम का अनुराग रे कवि
मोह माया त्याग रे कवि।

इस संग्रह में प्रणय गीतों के अतिरिक्त जेठ की दुपहरी जैसे मानवता विरत जेठ की विषम गर्मी के वर्णन हैं और दो एक कविताओं में भाई-बहन का स्नेह भी है। कविताओं में अनुभूति और कल्पना है और उनकी सरस अभिव्यक्ति भी है। दार्शनिक चिन्तन और जीवन-मीमांसा की अपेक्षा भावुकता का पुट अधिक है। —गुलाबराय

नाटक

झाँसी की रानी—ले०—श्री मधुसूदन चतुर्वेदी एम० ए०, चेतना प्रकाशन ८३१ बेगमबाजार हैदराबाद (दक्षिण)। पृष्ठ १२, मूल्य २॥)

उक्त ऐतिहासिक नाटक में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के विवाह, वैधव्य, नत्थे खाँ और अँग्रेजों से युद्ध तथा मृत्यु का चित्रण किया गया है। मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण नाटकीय नियमों के बोझ से दब कर रह गये हैं। लक्ष्मीबाई के चित्रण द्वारा पाठकों के हृदय में टीस या ओज उत्पन्न नहीं किया जा सका है। गंगास्नान, विदूषक संवाद तथा नागरिक चर्चा आदि बहुत से अनावश्यक दृश्यों को नाटक में स्थान मिल गया है परन्तु रानी के अंग्रेजों से युद्ध' जैसे मुख्य विषय को तनिक छुआ भर गया है। (पुराने चाल के नाटकों में युद्ध का विस्तार दिखाने की अधिक गुञ्जाइस भी नहीं है। —सम्पादक)

नाटक की रचना पुराने ढङ्ग पर हुई है अतः इसमें मङ्गलाचरण, सूत्रधार, नटी तथा विदूषक आदि का समावेश मिलता है। भाषा विशुद्ध हिन्दी है। अधिकाँश कवितायें ब्रज-भाषा में हैं। संवाद अधिकतर नीरस, लम्बे तथा अस्वभाविक बन पड़े हैं। उनमें पद्यों का प्रयोग भी हुआ है।

नाटक रङ्गमञ्च पर खेला जा सकता है। परन्तु इसके शिथिल संवाद तथा साधारण दृश्य अभिनय को जीवन प्रदान कर सकेंगे, इसमें हमें कुछ संशय है।

—शशिभूषण सिंहल

कहानी

कसक—ले०—श्री साधुशरण, प्रकाशक-किशोरी ग्रन्थ-भण्डार, छपरा। पृष्ठ १५६, मूल्य २॥)

इस पुस्तक में लेखक की १० कहानियों का संग्रह है, जिसमें से अधिकांश देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं के वर्णन मात्र हैं। इनमें नाम आदि का किंचित परिवर्त्तन कर देने के अतिरिक्त लेखक की प्रतिभा का कोई कौशल प्रगट नहीं होता। कहानी के कथोपकथन निम्न स्तर के हैं और उनमें अन्तर्द्वन्द का सर्वथा अभाव है, जो आज की कहानी का एक आवश्यक अंग है। कहीं-कहीं कहानी बिलकुल अस्वाभाविक हो गयी हैं। उदाहरण के लिये 'कुल-कलंक' कहानी में जन्म के कट्टर राजभक्त राजा साहब साधूप्रसाद का बिना किसी पृष्ठभूमि के यकायक महात्मा गान्धी का केवल एक लेख पढ़कर ही कट्टर काँग्रेसी बन जाना और अपने पुत्र सुरेन्द्र को पिता की आज्ञा से बाध्य करके काँग्रेस में शामिल कराना एक ऐसी ही घटना है। सुरेन्द्र के जेल से माफी माँग कर छूट आने पर राजा साहब महीनों उसका मुख नहीं देखते और इसी व्यथा में खाट पर पड़कर मर जाते हैं—यह भी एक अव्यवहारिक घटना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य कहानियों की अपेक्षा 'अनोखा' कहानी अधिक कलात्मक है। फिर भी कहानी ... आन्दोलन की कुछ झाँकी उपस्थित करती हैं और इसलिये पठनीय हैं। लेखक को भविष्य में कहानी लिखते समय मनोविज्ञान पर भी दृष्टि रखनी चाहिये।

—रामनारायण अग्रवाल

करुण चित्र—लेखक–श्री चन्द्रदेव नारायण। प्राप्ति स्थान–शिवालय मोतिहारी (बिहार)। पृष्ठ ६४, मूल्य १)

उक्त पुस्तिका में ग्यारह कहानियों का संग्रह है। यह छोटी कहानियाँ समय-समय पर पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रत्येक कहानी के प्लाट में कहानी संग्रह के नामानुसार करुणा की झलक है। निर्धनों पर धनिकों द्वारा प्रतिदिन होने वाले अत्याचारों को भावुकता का पुट दे कर कहानियों के रूपमें रखा गया है।

'स्वागत' लिखते हुए कहीं 'शिवचन्द्र' महोदय ने यह लिखकर कि 'चन्द्रदेवनारायण जी ने अपने इस संग्रह की कहानियों का धरातल ठोस धरती के बाशिन्दे 'आदमी' को बनाया है' इस संग्रह की व्याज स्तुति की है। 'आदमी' से अभिप्राय यदि साधारण मानव से है तो वह बहुत पढ़ लिख कर चोरी करना स्वीकार नहीं करेगा और न स्त्री पर हाथ चला देना। न रिक्शावाला भी पहले चोरी करना पसन्द करेगा तब आत्मघात की ओर बढ़ सकेगा। यह स्पष्ट है कि करुण-चित्र प्रस्तुत करने के लिए लेखक को अस्वाभाविक संघटनाओं की शरण लेनी पड़ी है। 'रिक्शावाला' 'गङ्गा की गोद में', 'हेडक्लार्क', 'दिवाली का दिन' तथा 'गरीब का अभिशाप' आदि कहानियों में करुणा का विषाद छाया हुआ है।

इन कहानियों में शैली आवेग पूर्ण एवं भाषा व्यग्रता लिये हुए हैं। टेकनीक की दृष्टि से कहानियों के निर्माण में बहुत सी कमियाँ खटकती हैं। 'हृदय परिवर्तन' तथा 'जादूगर' आदि कहानियाँ इस कथन की प्रमाण हैं। सब कहानियों में एक प्रकार की अभिव्यक्ति देख कर पाठक ऊब उठे, तो आश्चर्य नहीं। प्रूफ रीडिङ्ग में बहुत सी त्रुटियाँ रह गयी हैं।

—शशिभूषण सिंहल

राजनीतिक

गाँधी हत्या-काण्ड—सम्पादक–श्री विहङ्गम। प्रकाशक–ज्ञान-मण्डल पुस्तक भण्डार, बनारस। पृष्ठ संख्या ४३२, मूल्य ५)

गाँधी हत्याकाण्ड का विचार का महत्व केवल इसी लिए नहीं है कि यह एक युग पुरुष की हत्या से सम्बन्धित है वरन् इसमें अभियोग प्रमाणित करने वाले पक्ष की लम्बी-चौड़ाहियों के साथ-साथ न्याय विधान की बारीकियाँ और पुलिस विभाग की तत्परता का भी पता चलता है। अभियुक्तों की मनोवृत्ति जिसका उद्घाटन उनके वक्तव्यों में हुआ है एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय उपस्थित करती है और गाँधीजी के बलिदान को महत्व प्रदान करती है। यद्यपि इस पुस्तक की अधिकांश सामग्री अखबारों में निकल चुकी है तथापि अखबार अस्थायी महत्व की वस्तुएँ होती हैं और ऐसे महत्व पूर्ण मुकद्दमे को पुस्तक रूपमें आजाना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ बातें ऐसी भी हैं जो अखबारों में कम आई हैं। उदाहरणतः बचाव की तैयारी के सम्बन्ध में जो है वह कुछ नया सा है।

गान्धी हत्या काण्ड के पूर्व बम फटने पर जो गान्धीजी का भाषण है वह चिर स्मरणीय रहेगा। — यद्यपि हम यह नहीं जान सके कि गोली लगने के पश्चात् गान्धीजी के क्या विचार थे तथापि बम फटने के बाद के भाषण से उनकी शान्ति पूर्ण और क्षमामय विचारों का पता चलता है। पुस्तक में इस मुकद्दमे की पूरी दैनिकी है जो भविष्य के विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से रुचिकर होगी।

—गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीनता की चुनौती—ले०—प्रो० शाँतिप्रसाद वर्मा। प्रकाशक—नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर। पृष्ठ ३७४, मूल्य ७)

दीर्घकाल के संघर्षोपरान्त इस देश को स्वतन्त्रता मिली। इसका एक परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोग राजनीति में रुचि लेने लगे। उनमें से कुछ विशिष्ट योग्य व्यक्ति आज हमारे देश का शासन संचालन कर रहे हैं। देश की परिस्थितियाँ उन्हें एक क्षण के लिए भी मुक्त नहीं रखतीं। उन्हें इतना भी अवकाश नहीं कि अपने राजनीति के अनुभवों को लिख सकें। इसीलिए हमारे हिन्दी साहित्य में राजनीति विषय पर अच्छी पुस्तकों का अभाव है। प्रो० वर्मा ने देश की राजनीति का एक चिन्तनशील विद्यार्थी की तरह से अध्ययन किया है। वे राजनीतिज्ञों से समय-समय पर परामर्श भी करते रहे हैं। उन्होंने 'हमारी राजनैतिक समस्याएँ' के बाद राजनीति क्षेत्र में अपनी यह अमूल्य देन इस पुस्तक के रूप में दी है।

दुर्भाग्य यह है कि इस देश में ऐसे महत्वाकांक्षी युवक अधिक हैं जो बिना राजनीति का अध्ययन किए ही इसमें प्रवेश कर उठते हैं। उनकी राजनैतिक सचेतना और भी परिपक्व तब हो जब वे पुस्तकों का अध्ययन करें।

'स्वाधीनता की चुनौती' पुस्तक का शीर्षक देखते ही यह लगता है कि कहीं यह किसी पुस्तक का अनुवाद तो नहीं है क्योंकि लूईफिशर की भी एक पुस्तक 'एक महान चुनौती' है। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। वर्माजी की यह मौलिक पुस्तक है। उन्होंने देश की वर्त्तमान परिस्थितियों में पुनर्निर्माण की रचना में प्रगति करने के लिए अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किए हैं। हो सकता है कि अनेक स्थानों पर पाठक का लेखक से मतभेद हो किन्तु हम फिर भी उन विचारों का स्वागत करते हैं। 'अन्तर्वर्ष और समाजवाद' शीर्षक के एक परिच्छेद में लेखक की स्पष्ट राय यह है कि 'यदि जनतन्त्र को जीवित रहना है तो पूँजीवाद को खत्म होना पड़ेगा।'

लेखक का मत है कि हमारे देश में राजनैतिक अथवा जीवन-सम्बन्धी किसी भी मौलिक, स्वस्थ और सुस्पष्ट चिन्तन का बहुत बड़ा अभाव रहा है। इस देश को गान्धी के रूप में विश्व का एक महान चिन्तक मिला। यह पुस्तक इस अभाव को किसी हद तक पूरा कराने में सहायता देगी, ऐसा हमारा विश्वास है। लेखक ने एक नए फासिज्म का रूप भारत में देखा है और उसके ऐतिहासिक विकारों की विवेचना की है। संघ के नेताओं तथा मुख पत्रों के उद्धरण देकर यह सिद्ध किया गया है कि संघ की विचारधारा का फासिज्म से गहरा सम्बन्ध है। वह एक नेता और एक पन्थ में विश्वास करता है। वर्माजी भी भारतीय संस्कृति की महानता मानते हैं। उसे संसार में सर्वश्रेष्ठ बताते हुए आपने कहा है कि इसने अपनी खिड़कियों को बाहर की ताजी हवा के लिए कभी बन्द नहीं किया।

अन्तर्राष्ट्रीय, राजनीति की पृष्ठभूमि में भारतीय राष्ट्रीयता का क्या रूप होना चाहिए, इस विषय को लेखक ने अधिक स्पष्ट तो नहीं किया है पर फिर भी सप्रमाण व्याख्या की गयी है और इतिहास का भी उल्लेख है। पुस्तक के पढ़ने से हमें एशिया के विभिन्न देशों जैसे चीन, हिन्देशिया, मलाया के स्वातन्त्र्य-आन्दोलनों का ज्ञान होता है। लेखक ने आशा प्रकट की है कि यदि हम सामाजिक समानता और जनतन्त्रीय समाजवाद के उद्देश्य से चले तो एक दिन पाकिस्तान पुनः भारत का एक अविभाज्य अंग बन जाने के लिए लालायित हो उठेगा। तभी भारत अपने एशिया के नेतृत्व के उत्तरदायित्व को पूर्ण कर सकेगा।

भारत की विदेशी नीति और उससे सम्बन्धित समस्याओं पर भी लेखक ने एक दृष्टिपात किया है। यहाँ पाकिस्तान को एक चेतावनी दी गयी है कि यदि उसने अपनी धार्मिक कट्टरता के मार्ग को अपनाया तो वह समूचे विश्व की सहानुभूति खो बैठेगा। किन्तु व्यवहार बता रहा है कि ऐसा नहीं हुआ। यह संकेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ठीक है कि उसे भारत के सक्रिय विरोध का सामना करना पड़ेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान भारतीय राजनीति से परिचित कराने तथा स्वस्थ राजनैतिक ज्ञान प्रदान करने में इस पुस्तक को बहुत श्रेय मिलेगा, यदि हमारे नवयुवकों ने इससे लाभ उठाया। प्रत्येक ऐसे युवक के लिए जो भारतीय राजनीति में प्रवेश करने का इच्छुक है, इस पुस्तक का अध्ययन केवल आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। यह इस विषय पर अकेली ही पुस्तक है। क्या हम आशा करें कि पाठकगण इस पुस्तक को पढ़कर लेखक को इस विषय पर अन्य पुस्तकें लिखने का उत्साह प्रदान करेंगे। —रमेशचन्द्र खंडेलवाल एम० ए०

स्फुट

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के बारह वर्ष—पृष्ठ सं० मूल ६४, परिशिष्ट १०६, मूल्य १।)

सन् १९१८ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में उसके सभापति महात्मा गाँधी जी के सुझाव पर 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना हुई। इसका क्षेत्र मद्रास तक ही रहा है। तब १९३६ में नागपुर अधिवेशन में समस्त अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में हिन्दी प्रचार के लिए 'हिन्दी-प्रचार-समिति' का निर्माण हुआ। इस समिति को कार्य करते बारह-वर्ष बीत चुके हैं। इस बीच में इसने आसाम, बङ्गाल, उत्कल, महाराष्ट्र, गुजरात, बम्बई और सिन्ध में प्रचार कार्य किया। इन क्षेत्रों में हिन्दी प्रचार की कहानी का एक रोचक वृत्त बन गया है। उसके प्रचारकों का मिशनरी उत्साह भी अभिनन्दनीय रहा है। इन सबका विवरण इसमें हमें मिलता है। हम उन व्यक्तियों का परिचय इसमें पा लेते हैं जिन्होंने राष्ट्र के भाषा-हित पर अपने को समर्पित कर दिया है। कठिनाइयों और अड़चनों का यह इतिहास अब समाप्त ही हुआ समझना चाहिए। जैसा महन्त आनन्द कौसल्यायनजी ने लिखा है "हिन्दी के लिए अब उपयुक्त अवसर उपस्थित हुआ है। सभा इस अवसर के उपयुक्त योजनाएँ एवं कार्य-क्रम बना रही है। आशा है भविष्य में पर्याप्त कार्य होगा।"—हम इस आशा को सफल हुआ ही समझते हैं, क्योंकि अबतक का इसका कार्य जब इतना विशेष और उत्साह जनक है तो अब समय बदल जाने से परिस्थितियाँ बहुत अनुकूल हो गयी हैं। विविध कार्यकर्त्ताओं के चित्रों से यह विवरण और भी आकर्षक हो गया है। —सत्येन्द्र

वस्त्र-कला (प्रथम भाग)—लेखक—आर० बी० ऐल० चौहरी, हैडमास्टर, कला-भवन, हापुड़। प्रकाशक—कृष्णा स्काउट स्टोर्स, रघुवीरगंज, हापुड़ के लिए साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा। पृष्ठ संख्या ८६, चित्र-पृष्ठ ६, मूल्य २)

इस पुस्तक में लेखक ने बहुत ही सरल भाषा में वस्त्र-कला का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। पहले लेखक ने वस्त्र-कला के सिद्धान्तों को समझाया है। मशीन का परिचय देकर सिलाई के प्रकार समझाये हैं। मनुष्य की आकृति का वस्त्रों की दृष्टि से वर्णन किया गया है। कपड़े को श्रिंक करने की विधियाँ भी बतायी हैं। काट-छाँट में लेखक ने अपने ढङ्ग से चित्र देकर उनकी व्याख्या की है। विविध पायजामे, बनियान, गान्धी टोपी, कुलनैक व कोटकालर कमीज, अन्य कमीजें, विविध कुरते, नेकर, पैंण्ट विविध बास्कट तथा जाकट, फ्राक, बाबासूट, झबला, जाँघिया जम्फर, वाडीस, ब्लाऊज, पेटीकोट की काट-छाँट दी गयी है। परिशिष्ट में विविध नापों का हिसाब दिया गया है। पुस्तक के सभी चित्र बिल्कुल सही पैमाने से बनाये गये हैं और उनकी नाप के लिए पैमाना भी पुस्तक में पृथक रख दिया गया है। पुस्तक, ऐसा प्रतीत होता है, हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी है, पर वस्त्र-कला में रुचि रखने वाले सभी को उपादेय सिद्ध होगी। — सत्येन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

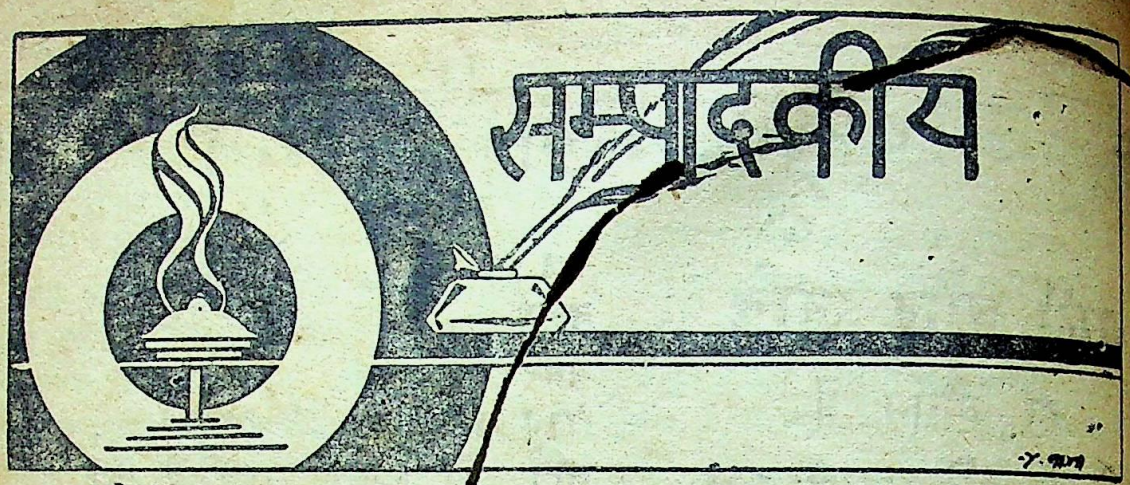

१५ वर्ष की अवधि—विधान-परिषद् के सदस्य इस बात में सहमत से होते हुए प्रतीत होते हैं कि अँग्रेजी की जीवन अवधि १५ वर्ष तक और बढ़ाई जाय। हम विधान-कार्य और उच्च शिक्षा कार्य की कठिनाई को स्वीकार करते हुए भी पन्द्रह वर्ष की अवधि को मानसिक शैथिल्य और अकर्मण्यता का परिचायक समझते हैं। अवधि जितनी लम्बी होती है उतनी ही लोगों को ढील मिलती है और प्रयत्न में शिथिलता आजाती है। हिन्दी तो राष्ट्रभाषा के रूपमें अभिषिक्त होने वाली थी उसके लिए पन्द्रह वर्ष की अवधि राम-वनोवास से कम हृदयद्रावक न होगी। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी को चौदह वर्ष का ही वनवास मिला था यदि यह बात अन्तिम रूप से स्वीकृत हो गई तो तुलसीदासजी के शब्दों में यही कहना पड़ेगा कि 'लिखत सुधाकर लिखगा राहू'।

पहले तो शिक्षा मन्त्रीजी पाँच वर्ष की बात कहते थे, वही लोगों को अखरती थी। अब पाँच की पन्द्रह होगई। जो विद्वानों की समिति बुलाई गई थी उसकी भी शिफारिश केवल १० वर्ष की ही थी। हमारी समझ में तो पाँच वर्ष की ही अवधि रक्खी जाती और हिन्दी की कमी की पूर्ति करने के लिए जोर से प्रयत्न चलता। फिर भी यदि कमी पूरी न होती तो पाँच वर्ष की अवधि और बढ़ा दी जाती। पन्द्रह वर्ष की माँग अपनी शक्तियों और राष्ट्र भाषा की सम्भावनाओं पर अविश्वास का प्रस्ताव पास करना है। राज्य की सहायता मिलने पर कम समय में कार्य भी सहज हो सकता है। विधान परिषद् चाहे जो कुछ कहे हिन्दी हितैषियों को इसी दृष्टि से कार्य करना चाहिए कि अवधि केवल पाँच वर्ष की ही है।

सम्पादक और सम्पादकीय कार्य—हिन्दी में आज कितने ही पत्र हैं, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, वार्षिक सभी प्रकार के स्थानीय भी और सार्वजनिक भी। जब पत्र हैं तो उनके सम्पादक भी हैं। जन-तन्त्र युग में सम्पादक का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। पर हिन्दी के अधिकाँश सम्पादक स्वयँ-भू हैं। भारत में संपादन-कला को शिक्षा का प्रयत्न ही अब तक बहुत कम हुआ है, हिन्दी में उससे भी कम। अँग्रेजी में जर्नलिज्य (पत्रकार-कला) की शिक्षा का प्रबन्ध अब कई विश्वविद्यालयों में होगया है, पर हिन्दी में सम्पादन कला की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाया। इधर ध्यान जाना आवश्यक है। पर इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि वर्तमान सम्पादकों की कला पर दृष्टि रखी जाय। उनकी सम्पादन-शैली और सम्पादकीय योजना तथा टिप्पणियों की चर्चा हो। उसके लिखे हुए वक्तव्यों की सच-झूठ की परीक्षा हो, और औचित्य की व्यवस्था हो। यह हम पत्रकार-सङ्घ का कर्तव्य समझते हैं। पत्रकार-सङ्घ पत्रकार-कला में दक्ष सहृदय विद्वानों को इसके लिए नियुक्त करे। ये विविध पत्रों और सम्पादकों पर समय-समय पर अपने विचार प्रकाशित करें, उचित परामर्श दें। जब तक भारतीय पत्रकारिता का धरातल बहुत ऊँचा नहीं होता भारतीय जन-तन्त्र की वास्तविक प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी०जी० फ्रूट प्रिजर्विंग फैक्टरी

गर्मी और जाड़े

हर मौसम में

जी० जी० ब्रान्ड

वस्तुएँ

व्यवहार में लाइये

...ण, लाभ, स्वाद में कोई कमी नहीं होती

...ल पेय	फल शर्बत
नारङ्गी	सन्तरा, नीबू
लेमन	स्ट्रोबेरी
लेमन ...र्ली	फान्सा
आम	मिक्स्ड फ्रूट
लाइमजूस कार्डियल	जाम, केला, बादाम

स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, सेब, अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेह (Orange Marmalade) तथा चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके फल सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

जी० जी०

चाकलेट फैक्टरी

जी०जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।

इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं॥

गिरधरगोपाल टिन फैक्टरी में

चार गैलन के टिन के अतिरिक्त

...ल्टियाँ, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की डिबियाँ व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं

हवा यंत्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है जिससे कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० ...य फैक्टरी

फुटबाल, क्रिकिट बाल, ...ल इत्यादि के अतिरिक्त आपके बच्चे की

शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये

सामग्री प्रस्तुत ...ती है।

खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मजबूत

जी० जी० ...न ड स्ट्रीज

आ
ग
रा

जी० जी० सेल्स डिपोः—

आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

(स्थापित १९३१)

प्रधान कार्यालय—स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

आंकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १९४६	...	...रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४७	...	...रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४८	...	...रु० ४२,००,००० से ऊपर।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व ऑर्गनाइजरों की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर

विद्यार्थियों के उपयोग की

चाक बत्ती एवं पेस्टिल

स्निग्ध, मजबूत, टिकाऊ एवं चटकीले रंग

भाव निम्न हैं—

					F. O. R. आगरा
चाक बत्ती :	Chalk Sticks	सफेद	100×100	दर	२८)
	"	रंगीन	"	"	५६)
	"	सफेद	144×100	"	४२)
	"	रंगीन	"	"	८४)
पेस्टील :	Anhok Pastel १२ रंग लाल डिब्बी			"	३०) प्रति ग्रोस
	"	१२ रंग सादा डिब्बी		"	२७) "
	"	९ "		"	२१) "
	"	६ "		"	१८) "
	Tiger Brand १२ रंग स्लाइडिंग डिब्बी			"	३६) "

अपनी आवश्यकताएँ निम्न पते पर लिखें—

बी० एम० सिंघल एण्ड कं०, जमुना रोड, आगरा।

गमचरनलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य संदेश

१२] आगरा—जौलाई १९५० [अङ्क १

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
एम० ए०, पी-एचं० डी०
महेन्द्र

*

प्रकाशक
हित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

*

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा

*

एक मूल्य ४), एक अङ्क का ।=)

इस अङ्क के लेख

१—हमारी विचार-धारा — सम्पादक
२—प्राचीन अलङ्कार शास्त्र की काव्य-निरूपण पद्धति — डा० भगवतस्वरूप मिश्र, एम० ए०
३—युग और साहित्य — डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
४—हिन्दी के अपेक्षाकृत अज्ञात कवि तरुण — डा० सोमनाथ गुप्त पी-एच० डी०
५—पन्तजी का नवीन दर्शन — प्रो० जयचन्द्रराय एम० ए०
६—कला-समीक्षा का आधुनिक मान — श्री [illegible]रेन्द्रनारायण चौधरी
७—योगमार्ग और हिन्दी साहित्य — श्री [illegible]र्थेन्द्र श्रीवास्तव
८—केशव की सीता — श्री [illegible]ग्रसाद कमठान
९—मधु-सञ्चय—
हिन्दी में आत्म-चरित — श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी
१०—हिन्दी उपन्यास का विकास — डा० किरनकुमारी गुप्ता, एम० ए०, पी-एच० डी०
११—साहित्य-परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के नियम

१. साहित्य सन्देश प्रत्येक मास के अंतिम सप्ताह में निकलता है।

२. साहित्य सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी ग्राहक बनना सुविधा जनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है।

३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर के साथ कार्यालय में भेजनी चाहिए, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।

४. किसी तरह का पत्र व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के संतोष जनक उत्तर देना संभव नहीं है।

५. फुटकर अंक मंगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।

हिन्दी का नया प्रकाशन

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं।)

आलोचना

नाथ सम्प्रदाय—हजारीप्रसाद द्विवेदी ४॥)
बुद्धि तरंग—सद्गुरशरण अवस्थी २।)
आ० कविता की संक्षिप्त रूप रेखा—कृष्णसहाय वर्मा ।॥)
काव्य चन्द्रिका—मंगलीप्रसाद शर्मा १।)
जयद्रथवध : एक झाँकी—नरेशमोहन कुमार १=)

कविता

विश्व ज्योति बापू—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' १॥)
मँझदार—राजबहादुरसिंह 'नीर' ॥=)

उपन्यास

स्वतंत्र भारत—शुकदेवबिहारी मिश्र ५)
अन्नपूर्णा—शरद ३)

कहानी

प्यारे राजाबेटा भाग १—रिखबदास राँका ॥=)
" " भाग २— " ॥=)
लंका महाराजिन—ओंकार शरद ३)

जीवनी

श्री शंकराचार्य—बलदेव उपाध्याय ७॥)

राजनीति

आजादी की कहानी—क्षेमचन्द्र सुमन २॥)

अर्थशास्त्र

आर्थिक कहानियाँ—ठाकुर देशराज १)
अर्थशास्त्र परिचय—महेन्द्रदत्त शर्मा एम. ए० १)
स्वतंत्र भारत की बहीखाता पद्धति पर विचार—कस्तूरमल बाँठिया ।)

दर्शन

सभाष्य रत्न मंजूषा—हरिदामोदर वेलणकर २)
केवल ज्ञान प्रश्न चूड़ामणि—नेमिचन्द्र जैन ४)
रत्नकरण्ड—प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी एम. ए. १)
नाममाला सभाष्य—पं० शम्भूनाथ त्रिपाठी ३॥)

ऐतिहासिक

पाटली पुत्र की कथा—सत्यकेतु विद्यालंकार १०)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तार—पंच आगरा

फून नं० २६८

साहित्य-रत्न-भंडार

पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक।

४, महात्मा गांधी रोड,
आगरा ३१ जुलाई १९५०.

श्री केन्द्र व्यवस्थापक जी

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी हमने हिन्दी विश्वविद्यालय प्रयाग की 'प्रथमा', 'मध्यमा' और 'उत्तमा' की संक्षिप्त विवरण पत्रिकाएँ निशुल्क बटवाने के लिए प्रकाशित कीं हैं जिनकी ५—५ प्रतियां इस पत्र के साथ आपकी सेवा में भेज रहे हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप एक एक प्रति अपने नोटिस बोर्ड पर लगवादें।

आपके विद्यार्थी जितनी चाहें संक्षिप्त विवरण पत्रिकाएं निशुल्क हमसे सीधे मंगा सकते हैं। आप चाहें तो हम आपको वितरण के लिए भेज सकते हैं। जितनी आवश्यकता हो लिखें। कष्ट के लिए क्षमा करें।

भवदीय,
रामचरनलाल
मैनेजर.

प्रथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमा परीक्षा सं० २००७-८-९

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

१—हिन्दी विश्व-विद्यालय की प्रथमा परीक्षा निम्न लिखित विषयों में देनी होगी।

१—हिन्दी साहित्य, २—इतिहास ३—भूगोल, ४—गणित तथा निम्नाङ्कित वैकल्पिक विषयों में से कोई एक विषय

(१) स्वास्थ्य रक्षा (२) अंग्रेजी (३) ड्राइङ्ग (४) संस्कृत (५) पालि (६) विज्ञान (७) धर्म शास्त्र ८) अर्थशास्त्र (९) राजनीति (१०) कृषि शास्त्र (११) संगीत

२—परीक्षा शुल्क ५) अर्थमन्त्री हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पते पर और आवेदन-पत्र मनीआर्डर की रसीद सहित केन्द्र व्यवस्थापक के द्वारा शिक्षामन्त्री के पास जायगा।

पाठ्य-क्रम

हिन्दी-साहित्य—प्रश्न-पत्र १—सूर पदावली ॥), २००७ के लिए २००८ और २००९ के लिए काव्य संग्रह प्रथम भाग, प्राचीन पद्य प्रभाकर १) नवीन पद्य संग्रह १।), २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए काव्य-संग्रह द्वितीय भाग※ प्रथमालङ्कार निरूपण।', ※ अलंकार प्रकाश ॥) ※सरल पिंगल ॥), रस-अलंकार और पिङ्गल १॥), काव्याङ्ग सार।

नोट:—उपर्युक्त तीनों चिन्हित पुस्तकें २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए तीनों पुस्तकों के स्थान पर काव्याङ्ग-कलपद्रुम,

प्रश्न-पत्र २—हिन्दी भाषा सार १॥', २००७ तथा २००८ के लिए, २००९ के लिए गद्य शौरभ चतुर्युग १।), वेदी के फूल १), सत्य हरिश्चन्द्र ॥), नूतन ब्रह्मचारी ॥=', हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ १।), २००७ के लिए, २००८ तथा २००९ के लिए गल्प सञ्चय, संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण १।), नवीन हिन्दी व्याकरण और रचना हिन्दी व्याकरण रत्नाकर १।) हिन्दी प्रयोग १॥), हिन्दी-व्याकरण और रचना

प्रश्न-पत्र ३—संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य १।), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३); हिन्दी-साहित्य की रूपरेखा।—), सम्बत् २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए उक्त दोनों पुस्तकों के स्थान पर हिन्दी-साहित्य परिचय, निबन्ध नवनीति १॥), हिन्दी निबंध माला ४), निबंध संग्रह लोकोक्तियाँ ॥=। अपठित हिन्दी रचना और तत्व

इतिहास—भारतवर्ष का इतिहास ३॥), लघु इतिहास प्रवेश ६),

भूगोल—भूगोल सार भाग १-२—२॥', भारतवर्ष का भूगोल २॥), मानव भूगोल १॥)।

गणित—अंक गणित, बीजगणित, रेखागणित, (कोई भी पुस्तक उपयोग में ली जा सकती है।)

वैकल्पिक विषय कोई एक

स्वास्थ्य—शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य—आरोग्य विधान ५), आदर्श भोजन १), स्वास्थ्य विधान भाग १-२-३ १।=)

कला—प्राइमर आफ आर्ट ३), कला और हस्तकार्य

संस्कृत—संस्कृत चन्द्रिका, नीतिशतक,

सामान्य विज्ञान—प्रारम्भिक जीव विज्ञान २।), जीव की कहानी १॥', प्रारम्भिक रसायन भाग १—१।), सामान्य भौतिक तथा रसायन विज्ञान पदार्थ परिचय १॥)

धर्मशास्त्र—श्री मद्भागवत संग्रह ॥=), धर्म शिक्षा ३)

अर्थ शास्त्र—अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३), अर्थ शास्त्र परिचय १)

राजनीति नागरिक शिक्षा १॥), हाई स्कूल नागरिक शास्त्र भारतीय राजनीति प्रवेशिका, भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की रूपरेखा ॥), काँग्रेस का संक्षिप्त इतिहास १, युक्तप्रान्त पंचायत राज्य कानून

कृषि शास्त्र—कृषि प्रवेशिका १।), प्रारम्भिक कृषि विज्ञान भाग १-२-३ ३), सुखी जीवन १॥)

संगीत—संगीत राग दर्शन भाग १-२, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग १-२-३-४, रागविज्ञान भाग १-२-३, संगीत कौमुदी भाग १-२-३

ग्राहस्थ्य शास्त्र—आरोग्य विधान ५), तीमारदारी ॥।), कन्या १), ग्राहस्थ्यशास्त्र २॥), स्वस्थ एवं सुखी संतान, नारी गृहलक्ष्मी और कल्याणी २॥)

पालि—जातक संग्रह, पाली प्रवोध १)

अंग्रेजी प्रश्नपत्र १—यह प्रश्नपत्र पाठ्यग्रंथ और व्याकरण पर होगा।

Gems of English prose १=), Poot-prints of the great १।), A Garden of Delights १),

प्रश्नपत्र २—इस प्रश्नपत्र के विषय अनुवाद, निबन्ध और अपठित गद्य तथा मुहाविरे होंगे। अपठित गद्य के लिये निम्नलिखित ग्रंथ पढ़े जा सकते हैं—Selections from Mahatma Gandhi १=), Letters from a father to has daughter, Modern High School Essays and Letter,

मध्यमा (विशारद) परीक्षा

१—मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए परीक्षार्थी को सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा, हाई-स्कूल परीक्षा, सरकारी कोविद परीक्षा, काशी विद्यापीठ की प्रथमा परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की प्रवेशिका परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ बम्बई की रत्न परीक्षा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी परीक्षा या वर्धा की विनीता इत्यादि परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

२—परीक्षा का शुल्क १०) है।

३—मध्यमा परीक्षा में हिन्दी साहित्य विषय अनिवार्य है।

शेष निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों के दो समूहों में से प्रत्येक में से एक विषय लेना होगा :—

(क)—(१) गणित (२) इतिहास (३) नैयायिक (४) अंग्रेजी (५) कृषि (६ दर्शन (७) धर्मशास्त्र (८) मनोविज्ञान तथा गार्हस्थय शास्त्र (महिलाओं को)।

(ख)—(१) संस्कृत (२) पालि (३) विज्ञान (४) भूगोल ५) राजनीति (६) अर्थशास्त्र (७) ज्योतिष (८) बंगला (९) गुजराती (१०) मराठी तथा संगीत (महिलाओं को)

पाठ्यक्रम

साहित्य—प्रश्न-पत्र १—ब्रजमाधुरीसार ४), [ब्रजमाधुरी सार की टीका ४)] कविता वली १।) (उत्तरकाण्ड छोड़कर), अयोध्या काण्ड १॥) पंचवटी ।=) केवल २००७ तथा २००८ के लिए, आधुनिक काव्य संग्रह १॥) २००९ के लिए नूतन काव्य संग्रह।

सहायक ग्रंथ—संक्षिप्त अलङ्कार मंजरी २), काव्य प्रदीप ३), नवीनपिङ्गल १॥), हमारे कवि २॥।), प्राचीन कवियों की काव्य साधना २॥, तुलसी माताप्रसाद गुप्त २), तुलसी (रामबहोरी शुक्ल ३॥)

प्रश्न पत्र २—कहानियाँ ३), संयचन २), जीवन यज्ञ २), २००७ और २००८ के लिए, हिंदी गद्य-निर्माण २), २००९ के लिए, हिन्दी गद्य पारिजात शकुन्तला १॥।), मुक्ति का रहस्य २), बहता पानी ३।). निम्नलिखित उपन्यासों में से इच्छानुसार कोई दो— चित्रलेखा २), लज्जा २), विसर्जन २), देहाती दुनियाँ पिपासा १॥।)

साहित्य की आलोचना, नाट्य-शास्त्र आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी प्रश्न पूछे जायेंगे। जिसके लिए साहित्य सन्देश मासिक देखें।

सहायक ग्रन्थ—हिन्दी-साहित्य समीक्षा २॥) संचारिणी २), विवेचना ४, रूपक रहस्य ३), समीक्षाञ्जलि १), आधुनिक हिन्दी नाटक १॥।)

प्रश्न पत्र ३—हिन्दी साहित्य का इतिहास-७), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३) भारतीय वाङ्मय के अमर-रत्न १), हिन्दी भाषा और लिपि १), नागरी अन्क और अक्षर ।=),

प्रश्न-पत्र ४—(निबन्ध रचना और सामायिक साहित्य)— लेखन कला १॥, निबन्ध-कला ३॥), रचनादर्श ॥।), अच्छी हिन्दी ३), भाषा की शक्ति १॥=) साहित्य-सुषमा १॥) विचार-वैभव, प्रबन्ध प्रभाकर ४।), सामयिक-साहित्य के ज्ञान के लिए परीक्षार्थीयों को अलोचना प्रधान मासिक साहित्य-सन्देश (आगरा) का अध्ययन करना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४), है। विशेषकर परीक्षार्थी प्रबोध ३),

वैकल्पिक विषय

इतिहास प्रश्न पत्र १ - इतिहास प्रवेश, मौर्य कालीन भारत २), प्राचीन भारत ७), भारतीय इतिहास की रूपरेखा ४), गुप्त साम्राज्य का इतिहास २ भाग, मुसलमानकाल का इतिहास २॥, अकबर की राज्य व्यवस्था, प्राचीन भारत का इतिहास हमारा राजस्थान ६) अशोक ४)

प्रश्न पत्र २—मराठों का उत्कर्ष १॥, शिवाजी की महत्ता १), सिक्खों का उत्थान पतन १॥) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ११) पश्चिचमी योरुप ३॥) फ्रान्स की राज्य क्रान्ति, १॥) वारेन हौस्टिंग्स ५), रावर्ट क्लाइव १॥)

अर्थशास्त्र प्रश्न पत्र १—भारतीय अर्थशास्त्र ५) कौटिल्य के आर्थिक विचार २), भारतीय राजस्व, अर्थशास्त्र की रूपरेखा ६), गान्धीवादी योजना २॥), सरल राजस्व १)

प्रश्न पत्र२—भारत में कृषि सुधार २॥), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थशास्त्र २), ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार २), भारतीय सहकारिता आन्दोलन ३॥), खादी मीमांसा ग्राम आन्दोलन की आवश्यकता, तेल घानी ३)।

गणित प्रश्न पत्र १—बीजगणित, त्रिकोणमिति, ६), विश्लेषिक ज्यामित, पिण्ड ज्यामित।

प्रश्न पत्र २- स्थित विज्ञान, गति विज्ञान चलन कलन, चलराशि कलन ४)

दर्शन और तर्कशास्त्र प्रश्न पत्र १—दर्शन की रूपरेखा, गीता में ईश्वरवाद आत्म विद्या ४), द्रव्य संग्रह ॥, तर्क संग्रह, श्रीं मद्भगवद्गीता अध्याय १-२-३-४

प्रश्न पत्र २—भारतीय तर्कशास्त्र, तर्कशास्त्र १-२-३) मनोविज्ञान २), जीवात्मा ३)

धर्मशास्त्र प्रश्न पत्र १-मनुस्मृति अध्याय १-२ तथा ७ का हिंदी अनुवाद ५), याज्ञवल्क्य स्मृति १।), उपनिषदों की कहानियाँ प्रथम भाग २॥)।

प्रश्न पत्र २—धर्म शिक्षा ३), भगवद्गीता का अनुवाद २, ३, ४, १६, तथा १८, अध्याय, उपनिषदों कहानियाँ भाग २, २॥)

ज्योषि प्रश्न पत्र १—(गणित ज्योतिष) सूर्य-ग्रहण्यन्ताधि, कार, सूर्य सिद्धान्त।

प्रश्न पत्र २—(फलित ज्योतिष) लघुपाराशरी जातक पारिजात, प्रश्न शिरोमणि।

वैद्यक प्रश्न पत्र १—सरल शरीर विज्ञान-१॥), शरीर और शरीर रक्षा ॥=), शरीर परिचय १।), शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, योगासन और अक्षुण्य युवावस्था, २), आरोग्य विधान ५), सरल स्वास्थ्य साधन, हम सौ वर्ष कैसे जीवें २), नैक-सर्गि आरोग्य १॥)।

प्रश्न पत्र २—निघंटु, गृहवस्तु चिकित्सा परिभाषा प्रबोध पथ्यापथ्य निरूपणं ॥)।

संस्कृत प्रश्न पत्र १—कुवार सम्भव पञ्चम सर्ग २), संस्कृत साहित्य सरणि १॥), व्याकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेशिका १।), संस्कृत साहित्य का इतिहास ५), अथवा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा ४॥)

प्रश्न पत्र २–संस्कृत गद्य-पद्य का हिन्दी तथा हिन्दीका संस्कृत में अनुवाद नीतिशतकपंचतन्त्र२॥) नीतिशतक—पालि प्रश्न पत्र १—खुद्दकपाठ सच्चा सङ्ग हो ।=) धम्मपद १॥)

प्रश्न पत्र २–पालि महाव्याकरण पालि प्रबोध

अंग्रेजी प्रश्न पत्र १—ए बुक आफ प्रोज,

डिकिन्स–ड़ेविढ कौफर फील्ड,

मैकवेथ–शेक्सपियर,

प्रश्न पत्र २—पाल्गेव, गोल्डेन ट्रैजिरी,

टैनीसन—मूर्ती डी० आर्थर

भूगोल प्रश्न पत्र १—भूतत्व २), फिजीकल जाग्रफी, भूपरिचय, भूगोल सार २॥)।

प्रश्न पत्र २—व्यापारिक भूगोल ७), भारत की खानिजात्मक सम्पत्ति, भारत का आर्थिक भूगोल २।), संयुक्तप्रान्त

कृषिशास्त्र प्रश्म पत्र १—कृषिशास्त्र ३।), संयुक्तप्रान्त में कृषि की उन्नति १), पशुओं का इलाज ॥), कृषिकार्य १॥) फल संरक्षण ।॥) साक भाजी. पैमाइश प्रबोध, ढ़ोरोंका इलाज ॥=)

प्रश्न पत्र २—हमारे गाँव और किसान ।॥), भारत में कृषि सुधार २।), ग्राम आन्दोलन की आवश्कता, तेल धानी ३), कृषि सुधार का मार्ग ।॥), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थ शास्त्र २) कानूनी कब्जा आराजी १)

राजनीति प्रश्न पत्र १—हिन्दू राज्य शास्त्र-६) कौटिल्य की शासन पद्धति २) कौटिलीय अर्थ-शास्त्र मीमांसा, भारतीय विधान ४), देशी राज्य शासन प्रथम भाग ३॥ . तथा देशी राज्यों की जन जाग्रत ५), राजनैतिक भारत २।), कांग्रेस राज्य में आधुनिक भारतीय शासन ५), प्रान्तीय स्वायत शासन

प्रश्न पत्र २—बीसवीं सदी की राजनैतिक विचारधाराएँ, नागरिक शास्त्र की समीक्षा ५), नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त, आदर्श भारत की रूपरेखा २॥), सरल नागरिक शास्त्र ५), ब्रिटिश साम्राज्य शासन १॥), संसार शासन २॥), व्यक्ति और राज्य १॥), नागरिक शास्त्र की विवेचना ४॥), आधुनिक शासन प्रणालियां, गान्धी विचार दोहन १॥), गांधी वाणी ३)।

मनोविज्ञान—बालमनोविकास ६), शिक्षा-मनोविज्ञान ४), शिक्षा के सिद्धान्त और शिक्षा मनोविज्ञान ४) सरल मनोविज्ञान ६)

ग्राहस्थ्य शास्त्र—प्रश्न पत्र १—शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, घर की लक्ष्मी २॥), पाकविज्ञान३)

प्रश्न पत्र २—मातृत्व, हमारे बच्चे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवी कैसे हों, भाई के पत्र ३)

प्रमाणिक हिन्दीकोष इसके सम्पादक नागरीप्रचारिणी सभा के श्री रामचन्द्र वर्मा हैं। यह कोष सर्वोत्तम है। शब्द संख्या ३१५६७ मूल्य १०॥=)

परीक्षार्थी-प्रबीध—इसमें ऐसे ३० निबन्ध हैं जो परीक्षार्थीयों के लिए लाभदायकहै—मूल्य ३)

अन्य प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका- १॥)

सूर पदावली की टीका- ।॥)

नवीन पद्य संग्रह की टीका- १॥)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-आदित्येश्वरकौशिक शास्त्री २००२ से २००६ तक ३)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००२ से २००६ तक २॥)

प्रथमा इतिहास प्रश्नोत्तर- १॥)

प्रथमा भूगोल प्रश्नोत्तर- १)

मध्यमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-वालेश्वर प्रसाद-शर्मा २००२ से २००६ तक ३॥।)

मध्यमा इतिहास प्रश्नोत्तर- ,, वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००० से २००६ तक २॥)

मध्यमा भूगोल प्रश्नोत्तर, ,, " २००२ से २००६ तक २॥)

सभी पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमा परीक्षा सं० २००७-८-९

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

१—हिन्दी विश्व-विद्यालय की प्रथमा परीक्षा निम्न लिखित विषयों में देनी होगी।
१—हिन्दी साहित्य, २—इतिहास ३—भूगोल, ४—गणित तथा निम्नाङ्कित वैकल्पिक विषयों में से कोई एक विषय (१) स्वास्थ्य रक्षा (२) अंग्रेजी (३) ड्राइङ्ग (४) संस्कृत (५) पालि (६) विज्ञान (७) धर्म शास्त्र ८) अर्थशास्त्र (९) राजनीति (१०) कृषि शास्त्र (११) संगीत

२—परीक्षा शुल्क ५) अर्थमन्त्री हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पते पर और आवेदन-पत्र मनीआर्डर की रसीद सहित केन्द्र व्यवस्थापक के द्वारा शिक्षामन्त्री के पास जायगा।

पाठ्य-क्रम

हिन्दी-साहित्य—प्रश्न-पत्र १—सूर पदावली ॥), २००७ के लिए २००८ और २००९ के लिए काव्य संग्रह प्रथम भाग, प्राचीन पद्य प्रभाकर १) नवीन पद्य संग्रह १।), २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए काव्य-संग्रह द्वितीय भाग* प्रथमालङ्कार निरूपण।, * अलंकार प्रकाश ॥) *सरल पिंगल ॥), रस-अलंकार और पिङ्गल १॥), काव्याङ्ग सार।

नोटः—उपर्युक्त तीनों चिन्हित पुस्तकें २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए तीनों पुस्तकों के स्थान पर काव्याङ्ग-कलपद्रुम,

प्रश्न-पत्र २—हिन्दी भाषा सार १॥), २००७ तथा २००८ के लिए, २००९ के लिए गद्य शौरभ, चतुर्युग १।), वेदी के फूल १), सत्य हरिश्चन्द्र ॥), नूतन ब्रह्मचारी ॥=), हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ १॥), २००७ के लिए, २००८ तथा २००९ के लिए गल्प सञ्चय, संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण १॥), नवीन हिन्दी व्याकरण और रचना हिन्दी व्याकरण रत्नाकर १।) हिन्दी प्रयोग १॥), हिन्दी-व्याकरण और रचना

प्रश्न-पत्र ३—संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य १।), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३); हिन्दी-साहित्य की रूपरेखा ।-), सम्वत् २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए उक्त दोनों पुस्तकों के स्थान पर हिन्दी-साहित्य परिचय, निबन्ध नवनीति १॥), हिन्दी निबंध माला ४), निबंध संग्रह लोकोक्तियाँ ॥=।अपठित हिन्दी रचना और तत्व

इतिहास—भारतवर्ष का इतिहास ३॥), लघु इतिहास प्रवेश ६),

भूगोल—भूगोल सार भाग १-२—२॥), भारतवर्ष का भूगोल २॥), मानव भूगोल १॥)।

गणित—अंक गणित, बीजगणित, रेखागणित, (कोई भी पुस्तक उपयोग में ली जा सकती है।)

वैकल्पिक विषय कोई एक

स्वास्थ्य—शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य—आरोग्य विधान ५), आदर्श भोजन १), स्वास्थ्य विधान भाग १-२-३ १।=)

कला—प्राइमर आफ आर्ट ३), कला और हस्तकार्य

संस्कृत—संस्कृत चन्द्रिका, नीतिशतक,

सामान्य विज्ञान—प्रारम्भिक जीव विज्ञान २।), जीव की कहानी १॥), प्रारम्भिक रसायन भाग १—१।), सामान्य भौतिक तथा रसायन विज्ञान पदार्थ परिचय १॥)

धर्मशास्त्र—श्री मद्भागवत संग्रह ॥=), धर्म शिक्षा ३)

अर्थ शास्त्र—अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३), अर्थ शास्त्र परिचय १)

राजनीति नागरिक शिक्षा १॥), हाई स्कूल नागरिक शास्त्र भारतीय राजनीति प्रवेशिका, भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की रूपरेखा ॥), काँग्रेस का संक्षिप्त इतिहास १, युक्तप्रान्त पंचायत राज्य कानून

कृषि शास्त्र—कृषि प्रवेशिका १।), प्रारम्भिक कृषि विज्ञान भाग १-२-३ ३), सुखी जीवन १॥)

संगीत—संगीत राग दर्शन भाग १-२, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग १-२-३-४, रागविज्ञान भाग १-२-३, संगीत कौमुदी भाग १-२-३

ग्राहस्थ्य शास्त्र—आरोग्य विधान ५), तीमारदारी ॥।), कन्या १), ग्राहस्थ्यशास्त्र २॥), स्वस्थ एवं सुखी संतान, नारी गृहलक्ष्मी और कल्याणी २॥)

पालि—जातक संग्रह, पाली प्रबोध १)

अंग्रेजी प्रश्नपत्र १—यह प्रश्नपत्र पाठ्यग्रंथ और व्याकरण पर होगा।

Gems of English prose १=), Poot-prints of the great १।), A Garden of Delights १),

प्रश्नपत्र २— इस प्रश्नपत्र के विषय अनुवाद, निबन्ध और अपठित गद्य तथा मुहाविरे होंगे। अपठित गद्य के लिये निम्नलिखित ग्रंथ पढे जा सकते हैं—Selections from Mahatma Gandhi १=), Letters from a father to has daughter, Modern High School Essays and Letter,

मध्यमा (विशारद) परीक्षा

१—मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए परीक्षार्थी को सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा, हाई-स्कूल परीक्षा, सरकारी कोविद परीक्षा, काशी विद्यापीठ की प्रथमा परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की प्रवेशिका परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ बम्बई की रत्न परीक्षा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी परीक्षा या वर्धा की विनीता इत्यादि परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

२—परीक्षा का शुल्क १०) है।

३—मध्यमा परीक्षा में हिन्दी साहित्य विषय अनिवार्य है।

शेष निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों के दो समूहों में से प्रत्येक में से एक विषय लेना होगा :—

(क)—(१) गणित (२) इतिहास (३) बंगला (४) अंग्रेजी (५) कृषि (६) दर्शन (७) धर्मशास्त्र (८) मनोविज्ञान तथा गार्हस्थय शास्त्र (महिलाओं को)।

(ख)—(१) संस्कृत (२) पालि (३) विज्ञान (४) भूगोल ५) राजनीति (६) अर्थशास्त्र (७) ज्योतिष (८) बंगला (९) गुजराती (१०) मराठी तथा संगीत (महिलाओं को)

पाठ्यक्रम

साहित्य—प्रश्न-पत्र १—ब्रजमाधुरीसार ४), [ब्रजमाधुरी सार की टीका ४)] कविता वली १।) (उत्तरकाण्ड छोड़कर), अयोध्या काण्ड १॥) पंचवटी ।=) केवल २००७ तथा २००८ के लिए, आधुनिक काव्य संग्रह १॥) २००९ के लिए नूतन काव्य संग्रह।

सहायक ग्रंथ—संक्षिप्त अलङ्कार मंजरी २), काव्य प्रदीप ३), नवीनपिङ्गल १॥), हमारे कवि २॥।), प्राचीन कवियों की काव्य साधना २॥), तुलसी माताप्रसाद गुप्त २), तुलसी (रामबहोरी शुक्ल ३॥)

प्रश्न पत्र २—कहानियाँ ३), संयचन २), जीवन यज्ञ २), २००७ और २००८ के लिए, हिंदी गद्य-निर्माण २), २००९ के लिए, हिन्दी गद्य पारिजात शकुन्तला १॥), मुक्ति का रहस्य २), बहता पानी ३), निम्नलिखित उपन्यासों में से इच्छानुसार कोई दो— चित्रलेखा २), लज्जा २), विसर्जन २), देहाती दुनियाँ पिपासा १॥।)

साहित्य की आलोचना, नाट्य-शास्त्र आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी प्रश्न पूछे जायेंगे। जिसके लिए साहित्य सन्देश मासिक देखें।

सहायक ग्रन्थ—हिन्दी-साहित्य समीक्षा २॥) संचारिणी २), विवेचना ४, रूपक रहस्य ३), समीक्षाञ्जलि १), आधुनिक हिन्दी नाटक १॥।)

प्रश्न पत्र ३—हिन्दी साहित्य का इतिहास-७), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३) भारतीय वाङ्मय के अमर-रत्न १), हिन्दी भाषा और लिपि १), नागरी अन्क और अक्षर ।=),

प्रश्न-पत्र ४—(निबन्ध रचना और सामायिक साहित्य)— लेखन कला १॥, निबन्ध-कला ३॥), रचनादर्श ॥।), अच्छी हिन्दी ३), भाषा की शक्ति १॥=) साहित्य-शुषमा १॥।) विचार-वैभव, प्रबन्ध प्रभाकर ४।), सामयिक-साहित्य के ज्ञान के लिए परीक्षार्थीयों को अलोचना प्रधान मासिक साहित्य-सन्देश (आगरा) का अध्ययन करना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४), है। विशेषकर परीक्षार्थी प्रबोध ३),

वैकल्पिक विषय

इतिहास प्रश्न पत्र १ - इतिहास प्रवेश, मौर्य कालीन भारत २), प्राचीन भारत ७), भारतीय इतिहास की रूपरेखा ४), गुप्त साम्राज्य का इतिहास २ भाग, मुसलमानकाल का इतिहास २॥, अकबर की राज्य व्यवस्था, प्राचीन भारत का इतिहास हमारा राजस्थान ६) अशोक ४)

प्रश्न पत्र २—मराठों का उत्कर्ष १॥, शिवाजी की महत्ता १), सिक्खों का उत्थान पतन १॥) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ११) पश्चिचमी योरुप ३॥) फ्रान्स की राज्य क्रान्ति, १॥) वारेन होस्टिंग्स ५), रावर्ट क्लाइव १॥)

अर्थशास्त्र प्रश्न पत्र १—भारतीय अर्थशात्र ५) कौटिल्य के आर्थिक विचार २), भारतीय राजस्व, अर्थशास्त्र की रूपरेखा ६), गान्धीवादी योजना २॥), सरल राजस्व १)

प्रश्न पत्र२—भारत में कृषि सुधार २।), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थशास्त्र २), ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार २), भारतीय सहकारिता आन्दोलन ३॥), खादी मीमांसा ग्राम आन्दोलन की आवश्यकता, तेल घानी ३)।

गणित प्रश्न पत्र १—बीजगणित, त्रिकोणमिति, ६), विश्लेषिक ज्यामित, पिण्ड ज्यामित।

प्रश्न पत्र २- स्थित विज्ञान, गति विज्ञान चलन कलन, चलराशि कलन ४)

दर्शन और तर्कशास्त्र प्रश्न पत्र १—दर्शन की रूपरेखा, गीता में ईश्वरवाद आत्म विद्या ४), द्रव्य संग्रह ॥, तर्क संग्रह, श्रीं मद्भगवद्गीता अध्याय १-२-३-४

प्रश्न पत्र २—भारतीय तर्कशास्त्र, तर्कशास्त्र १-२-३) मनोविज्ञान २), नोवात्मा ३)

धर्मशास्त्र प्रश्न पत्र १—मनुस्मृति अध्याय १-२ तथा ७ का हिंदी अनुवाद ५), याज्ञवल्क्य स्मृति १।), उपनिषदों की कहानियाँ प्रथम भाग २॥)।

प्रश्न पत्र २—धर्म शिक्षा ३), भगवद्गीता का अनुवाद २, ३, ४, १६, तथा १८, अध्याय, उपनिषदों कहानियाँ भाग २, २॥)

ज्योषि प्रश्न पत्र १—(गणित ज्योतिष) सूर्य-ग्रहण्यन्ताधि, कार, सूर्य सिद्धान्त।

प्रश्न पत्र २—(फलित ज्योतिष) लघुपाराशरी जातक पारिजात, प्रश्न शिरोमणि।

वैद्यक प्रश्न पत्र १—सरल शरीर विज्ञान-१॥), शरीर और शरीर रक्षा ॥=), शरीर परिचय १।), शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, योगासन और अक्षुय युवावस्था, २), आरोग्य विधान ५), सरल स्वास्थ्य साधन, हम सौ वर्ष कैसे जीवें २), नैक-सर्गि आरोग्य १॥)।

प्रश्न पत्र २—निघंटु, गृहवस्तु चिकित्सा परिभाषा प्रवोध पथ्यापथ्य निरूपणं ॥)।

संस्कृत प्रश्न पत्र १—कुवार सम्भव पञ्चम सर्ग २), संस्कृत साहित्य सरणि १॥), व्याकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेशिका १।), संस्कृत साहित्य का इतिहास ५), अथवा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा ४॥)

प्रश्न पत्र २–संस्कृत गद्य-पद्य का हिन्दी तथा हिन्दीका संस्कृत में अनुवाद नीतिशतकपंचतन्त्र२॥) नीतिशतक—पालि प्रश्न पत्र १—खुद्दकपाठ सच्चा सङ्ग हो ।=) धम्मपद १॥)

प्रश्न पत्र २–पालि महाव्याकरण पालि प्रबोध

अंग्रेजी प्रश्न पत्र १—ए बुक आफ प्रोज,

डिकिन्स–ड़ेविड कौफर फील्ड,

मैकवेथ–शेक्सपियर,

प्रश्न पत्र २—पाल्गेव, गोल्डेन ट्रैजिरी,

टैनीसन—मूर्ती डी० आर्थर

भूगोल प्रश्न पत्र १—भूतत्व २), फिजीकल जाग्रफी, भूपरिचय, भूगोल सार २॥)।

प्रश्न पत्र २—व्यापारिक भूगोल ७), भारत की खानिजात्मक सम्पत्ति, भारत का आर्थिक भूगोल २।), संयुक्तप्रान्त

कृषिशास्त्र प्रश्म पत्र १—कृषिशास्त्र ३।), संयुक्तप्रान्त में कृषि की उन्नति १), पशुओं का इलाज ॥), कृषिकार्य १॥) फल संरक्षण ॥।) साक भाजी ॥) माइश प्रबोध, ढ़ोरोंका इलाज ॥=)

प्रश्न पत्र २—हमारे गाँव और किसान ॥।), भारत में कृषि सुधार २।), ग्राम आन्दोलन की आवश्कता, तेल धानी ३), कृषि सुधार का मार्ग ॥।), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अथ शास्त्र २) कानूनी कब्जा आराजी १)

राजनीति प्रश्न पत्र १—हिन्दू राज्य शास्त्र-६) कौटिल्य की शासन पद्धति २) कौटिलीय अर्थ-शास्त्र मीमांसा, भारतीय विधान ४), देशी राज्य शासन प्रथम भाग ३॥ . तथा देशी राज्यों की जन जाग्रत ५', राजनैतिक भारत २।), कांग्रेस राज्य में आधुनिक भारतीय शासन ५), प्रान्तीय स्वायत शासन

प्रश्न पत्र २—बीसवीं सदी की राजनैतिक विचारधाराएँ, नागरिक शास्त्र की समीक्षा ५', नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त, आदर्श भारत की रूपरेखा २॥), सरल नागरिक शास्त्र ५), ब्रिटिश साम्राज्य शासन १॥), संसार शासन २॥), व्यक्ति और राज्य १॥), नागरिक शास्त्र की विवेचना ४॥), आधुनिक शासन प्रणालियां, गान्धी विचार दोहन १॥), गांधी वाणी ३)।

मनोविज्ञान—बालमनोविकास ६), शिक्षा-मनोविज्ञान ४), शिक्षा के सिद्धान्त और शिक्षा मनोविज्ञान ४) सरल मनोविज्ञान ६)

ग्राहस्थ्य शास्त्र—प्रश्न पत्र १—शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, घर की लक्ष्मी २॥।), पाकविज्ञान३)

प्रश्न पत्र २—मातृत्व, हमारे बच्चे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवी कैसे हों, भाई के पत्र ३)

प्रमाणिक हिन्दीकोष इसके सम्पादक नागरीप्रचारिणी सभा के श्री रामचन्द्र वर्मा हैं। यह कोष सर्वोत्तम है। शब्द संख्या ३१५६७ मूल्य १०॥=)

परीक्षार्थी-प्रबीध—इसमें ऐसे ३० निबन्ध हैं जो परीक्षार्थीयों के लिए लाभदायकहै—मूल्य ३)

अन्य प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका- १॥)

सूर पदावली की टीका- ॥।)

नवीन पद्य संग्रह की टीका- १॥)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-आदित्येश्वरकौशिक शास्त्री २००२ से २००६ तक ३)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर बालेश्वर प्रसाद शर्मा २००२ से २००६ तक २॥)

प्रथमा इतिहास प्रश्नोत्तर- १॥)

प्रथमा भूगोल प्रश्नोत्तर- १)

मध्यमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-बालेश्वर प्रसाद-शर्मा २००२ से २००६ तक ३॥।)

मध्यमा इतिहास प्रश्नोत्तर- ,, बालेश्वर प्रसाद शर्मा ' २००० से २००६ तक २॥)

मध्यमा भूगोल प्रश्नोत्तर, ,, " २००२ से २००६ तक २॥)

सभी पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमा परीक्षा सं० २००७-८-९

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

१—हिन्दी विश्व-विद्यालय की प्रथमा परीक्षा निम्न लिखित विषयों में देनी होगी। १—हिन्दी साहित्य, २—इतिहास ३—भूगोल, ४—गणित तथा निम्नाङ्कित वैकल्पिक विषयों में से कोई एक विषय (१) स्वास्थ्य रक्षा (२) अंग्रेजी (३) ड्राइङ्ग (४) संस्कृत (५) पालि (६) विज्ञान (७) धर्म शास्त्र ८) अर्थशास्त्र (९) राजनीति (१०) कृषि शास्त्र (११) संगीत

२—परीक्षा शुल्क ५) अर्थमन्त्री हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पते पर और आवेदन-पत्र मनीआर्डर की रसीद सहित केन्द्र व्यवस्थापक के द्वारा शिक्षामन्त्री के पास जायगा।

पाठ्य-क्रम

हिन्दी-साहित्य—प्रश्न-पत्र १—सूर पदावली ॥।), २००७ के लिए २००८ और २००९ के लिए काव्य संग्रह प्रथम भाग, प्राचीन पद्य प्रभाकर १) नवीन पद्य संग्रह १।), २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए काव्य-संग्रह द्वितीय भाग❀ प्रथमालङ्कार निरूपण।', ❀ अलंकार प्रकाश ॥) ❀सरल पिंगल ॥), रस-अलंकार और पिङ्गल १॥), काव्याङ्ग सार।

नोटः—उपर्युक्त तीनों चिन्हित पुस्तकें २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए तीनों पुस्तकों के स्थान पर काव्याङ्ग-कल्पद्रुम,

प्रश्न-पत्र २—हिन्दी भाषा सार १॥', २००७ तथा २००८ के लिए, २००९ के लिए गद्य शौरभ। चतुर्युग १।), वेदी के फूल १), सत्य हरिश्चन्द्र ॥।, नूतन ब्रह्मचारी ॥=', हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ १॥), २००७ के लिए, २००८ तथा २००९ के लिए गल्प सञ्चय, संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण १॥, नवीन हिन्दी व्याकरण और रचना हिन्दी व्याकरण रत्नाकर १।) हिन्दी प्रयोग १॥), हिन्दी-व्याकरण और रचना

प्रश्न-पत्र ३—संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य १।), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३); हिन्दी-साहित्य की रूपरेखा ।-), सम्वत् २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए उक्त दोनों पुस्तकों के स्थान पर हिन्दी-साहित्य परिचय, निबन्ध नवनीति १॥), हिन्दी निबंध माला ४), निबंध संग्रह लोकोक्तियाँ ॥=। अपठित हिन्दी रचना और तत्व

इतिहास—भारतवर्ष का इतिहास ३॥), लघु इतिहास प्रवेश ६),

भूगोल—भूगोल सार भाग १-२—२॥', भारतवर्ष का भूगोल २॥), मानव भूगोल १॥)।

गणित—अंक गणित, बीजगणित, रेखागणित, (कोई भी पुस्तक उपयोग में ली जा सकती है।)

वैकल्पिक विषय कोई एक

स्वास्थ्य—शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य—आरोग्य विधान ५), आदर्श भोजन १), स्वास्थ्य विधान भाग १-२-३ १।=)

कला—प्राइमर आफ आर्ट ३), कला और हस्तकार्य

संस्कृत—संस्कृत चन्द्रिका, नीतिशतक,

सामान्य विज्ञान—प्रारम्भिक जीव विज्ञान २।), जीव की कहानी १॥', प्रारम्भिक रसायन भाग १—१।), सामान्य भौतिक तथा रसायन विज्ञान पदार्थ परिचय १॥)

धर्मशास्त्र—श्री मद्भागवत संग्रह ॥।=), धर्म शिक्षा ३)

अर्थ शास्त्र—अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३), अर्थ शास्त्र परिचय १)

राजनीति नागरिक शिक्षा १॥), हाई स्कूल नागरिक शास्त्र भारतीय राजनीति प्रवेशिका, भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की रूपरेखा ॥), काँग्रेस का संक्षिप्त इतिहास १, युक्तप्रान्त पंचायत राज्य कानून

कृषि शास्त्र—कृषि प्रवेशिका १।), प्रारम्भिक कृषि विज्ञान भाग १-२-३ ३), सुखी जीवन १॥)

संगीत—संगीत राग दर्शन भाग १-२, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग १-२-३-४, रागविज्ञान भाग १-२-३, संगीत कौमुदी भाग १-२-३

ग्राहस्थ्य शास्त्र—आरोग्य विधान ५), तीमारदारी ॥।), कन्या १), ग्राहस्थ्यशास्त्र २॥), स्वस्थ एवं सुखी संतान, नारी गृहलक्ष्मी और कल्याणी २॥)

पालि—जातक संग्रह, पाली प्रवोध १)

अंग्रेजी प्रश्नपत्र १—यह प्रश्नपत्र पाठ्यग्रंथ और व्याकरण पर होगा।

Gems of English prose १=), Poot-prints of the great १।), A Garden of Delights १),

प्रश्नपत्र २— इस प्रश्नपत्र के विषय अनुवाद, निबन्ध और अपठित गद्य तथा मुहाविरे होंगे। अपठित गद्य के लिये निम्नलिखित ग्रंथ पढ़े जा सकते हैं—Selections from Mahatma Gandhi १=), Letters from a father to has daughter, Modern High School Essays and Letter,

मध्यमा (विशारद) परीक्षा

१—मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए परीक्षार्थी को सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा, हाई-स्कूल परीक्षा, सरकारी कोविद परीक्षा, काशी विद्यापीठ की प्रथमा परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की प्रवेशिका परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ बम्बई की रत्न परीक्षा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी परीक्षा या वर्धा की विनीता इत्यादि परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

२—परीक्षा का शुल्क १०) है।

३—मध्यमा परीक्षा में हिन्दी साहित्य विषय अनिवार्य है।

शेष निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों के दो समूहों में से प्रत्येक में से एक विषय लेना होगा :—

(क)—(१) गणित (२) इतिहास (३) वैद्यक (४) अंग्रेजी (५) कृषि (६ दर्शन (७) धर्मशास्त्र (८) मनोविज्ञान तथा गार्हस्थय शास्त्र (महिलाओं को)।

(ख)—(१) संस्कृत (२) पालि (३) विज्ञान (४) भूगोल ५) राजनीति (६) अर्थशास्त्र (७) ज्योतिष (८) बंगला (९) गुजराती (१०) मराठी तथा संगीत (महिलाओं को)

पाठ्यक्रम

साहित्य—प्रश्न-पत्र १—ब्रजमाधुरीसार ४), [ब्रजमाधुरी सार की टीका ४)] कविता वली १।) (उत्तरकाण्ड छोड़कर), अयोध्या काण्ड १॥) पंचवटी ।=) केवल २००७ तथा २००८ के लिए, आधुनिक काव्य संग्रह १॥) २००९ के लिए नूतन काव्य संग्रह।

सहायक ग्रंथ—संक्षिप्त अलङ्कार मंजरी २), काव्य प्रदीप ३), नवीनपिङ्गल १॥), हमारे कवि २॥।), प्राचीन कवियों की काव्य साधना २॥), तुलसी माताप्रसाद गुप्त २), तुलसी (रामबहोरी शुक्ल ३॥)

प्रश्न पत्र २—कहानियाँ ३), संयचन २), जीवन यज्ञ २), २००७ और २००८ के लिए, हिंदी गद्य-निर्माण २), २००९ के लिए, हिन्दी गद्य पारिजात शकुन्तला १॥), मुक्ति का रहस्य २), बहता पानी ३।). निम्नलिखित उपन्यासों में से इच्छानुसार कोई दो— चित्रलेखा २), लज्जा २), विसर्जन २), देहाती दुनियाँ पिपासा १॥।)

साहित्य की आलोचना, नाट्य-शास्त्र आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी प्रश्न पूछे जायेंगे। जिसके लिए साहित्य सन्देश मासिक देखें।

सहायक ग्रन्थ—हिन्दी-साहित्य समीक्षा २॥) संचारिणी २), विवेचना ४, रूपक रहस्य ३), समीक्षाञ्जलि १), आधुनिक हिन्दी नाटक १॥।)

प्रश्न पत्र ३—हिन्दी साहित्य का इतिहास-७), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३) भारतीय वाङ्मय के अमर-रत्न १), हिन्दी भाषा और लिपि १), नागरी अन्क और अक्षर ।=),

प्रश्न-पत्र ४—(निबन्ध रचना और सामायिक साहित्य)— लेखन कला १॥, निबन्ध-कला ३॥), रचनादर्श ।॥), अच्छी हिन्दी ३), भाषा की शक्ति १॥=) साहित्य-सुषमा १॥) विचार-वैभव, प्रबन्ध प्रभाकर ४।), सामयिक-साहित्य के ज्ञान के लिए परीक्षार्थीयों को आलोचना प्रधान मासिक साहित्य-सन्देश (आगरा) का अध्ययन करना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४), है। विशेषकर परीक्षार्थी प्रबोध ३),

वैकल्पिक विषय

इतिहास प्रश्न पत्र १ - इतिहास प्रवेश, मौर्य कालीन भारत २), प्राचीन भारत ७), भारतीय इतिहास की रूपरेखा ४), गुप्त साम्राज्य का इतिहास २ भाग, मुसलमानकाल का इतिहास २॥, अकबर की राज्य व्यवस्था, प्राचीन भारत का इतिहास हमारा राजस्थान ६) अशोक ४)

प्रश्न पत्र २—मराठों का उत्कर्ष १॥, शिवाजी की महत्ता १), सिक्खों का उत्थान पतन १॥) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ११) पश्चिचमी योरुप ३॥) फ्रान्स की राज्य क्रान्ति, १॥) वारेन होस्टिंग्स ५), रावर्ट क्लाइव १॥)

अर्थशास्त्र प्रश्न पत्र १—भारतीय अर्थशास्त्र ५) कौटिल्य के आर्थिक विचार २), भारतीय राजस्व, अर्थशास्त्र की रूपरेखा ६), गान्धीवादी योजना २॥), सरल राजस्व १)

प्रश्न पत्र२—भारत में कृषि सुधार २॥), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थशास्त्र २), ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार २), भारतीय सहकारिता आन्दोलन ३॥), खादी मीमांसा ग्राम आन्दोलन की आवश्यकता, तेल घानी ३)।

गणित प्रश्न पत्र १—बीजगणित, त्रिकोणमिति, ६), विश्लेषिक ज्यामित, पिण्ड ज्यामित।

प्रश्न पत्र २— स्थित विज्ञान, गति विज्ञान चलन कलन, चलराशि कलन ४)

दर्शन और तर्कशास्त्र प्रश्न पत्र १—दर्शन की रूपरेखा, गीता में ईश्वरवाद आत्म विद्या ४), द्रव्य संग्रह ॥, तर्क संग्रह, श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १-२-३-४

प्रश्न पत्र २—भारतीय तर्कशास्त्र, तर्कशास्त्र १-२-३) मनोविज्ञान २), नोवात्मा ३)

धर्मशास्त्र प्रश्न पत्र १—मनुस्मृति अध्याय १-२ तथा ७ का हिंदी अनुवाद ५), याज्ञवल्क्य स्मृति १।), उपनिषदों की कहानियाँ प्रथम भाग २॥)।

प्रश्न पत्र २—धर्म शिक्षा ३), भगवद्गीता का अनुवाद २, ३, ४, १६, तथा १८, अध्याय, उपनिषदों कहानियाँ भाग २, २॥)

ज्योषि प्रश्न पत्र १—(गणित ज्योतिष) सूर्य-ग्रहण्यन्ताधि, कार, सूर्य सिद्धान्त।

प्रश्न पत्र २—(फलित ज्योतिष) लघुपाराशरी जातक पारिजात, प्रश्न शिरोमणि।

वैद्यक प्रश्न पत्र १—सरल शरीर विज्ञान-१॥), शरीर और शरीर रक्षा ॥=), शरीर परिचय १।), शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, योगासन और अक्षुय युवावस्था, २), आरोग्य विधान ५), सरल स्वास्थ्य साधन, हम सौ वर्ष कैसे जीवें २), नैक-सर्गि आरोग्य १॥)।

प्रश्न पत्र २—निघंटु, गृहवस्तु चिकित्सा परिभाषा प्रबोध पथ्यापथ्य निरूपणं ॥)।

संस्कृत प्रश्न पत्र १—कुवार सम्भव पञ्चम सर्ग २), संस्कृत साहित्य सरणि १॥), व्याकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेशिका १।), संस्कृत साहित्य का इतिहास ५), अथवा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा ४॥)

प्रश्न पत्र २-संस्कृत गद्य-पद्य का हिन्दी तथा हिन्दीका संस्कृत में अनुवाद नीतिशतकपंचतन्त्र२॥) नीतिशतक—पालि प्रश्न पत्र १—खुद्दकपाठ सच्चा सङ्ग हो ।=) धम्मपद १॥)

प्रश्न पत्र २-पालि महाव्याकरण पालि प्रबोध

अंग्रेजी प्रश्न पत्र १—ए बुक आफ प्रोज,

डिकिन्स--डेविड कौफर फील्ड,

मैकवेथ--शेक्सपियर,

प्रश्न पत्र २—पाल्गेव, गोल्डेन ट्रैजिरी,

टैनीसन—मूर्ती डी० आर्थर

भूगोल प्रश्न पत्र १—भूतत्व २), फिजीकल जाग्रफी, भूपरिचय, भूगोल सार २॥)।

प्रश्न पत्र २—व्यापारिक भूगोल ७), भारत की खानिजात्मक सम्पत्ति, भारत का आर्थिक भूगोल २।), संयुक्तप्रान्त

कृषिशास्त्र प्रश्म पत्र १—कृषिशास्त्र ३।), संयुक्तप्रान्त में कृषि की उन्नति १), पशुओं का इलाज ॥), कृषिकार्य १॥) फल संरक्षण ॥।) साक भाजी, पैमाइश प्रबोध, ढ़ोरोंका इलाज ॥=)

प्रश्न पत्र २—हमारे गाँव और किसान ॥।), भारत में कृषि सुधार २।), ग्राम आन्दोलन की आवश्कता, तेल धानी ३), कृषि सुधार का मार्ग ॥।), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अथ शास्त्र २) कानूनी कब्जा आराजी १)

राजनीति प्रश्न पत्र १—हिन्दू राज्य शास्त्र-६) कौटिल्य की शासन पद्धति २) कौटिलीय अर्थ-शास्त्र मीमांसा, भारतीय विधान ४), देशी राज्य शासन प्रथम भाग ३॥ . तथा देशी राज्यों की जन जाग्रत ५', राजनैतिक भारत २।), कांग्रेस राज्य में आधुनिक भारतीय शासन ५), प्रान्तीय स्वायत शासन

प्रश्न पत्र २—बीसवीं सदी की राजनैतिक विचारधाराएँ, नागरिक शास्त्र की समीक्षा ५', नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त, आदर्श भारत की रूपरेखा २॥), सरल नागरिक शास्त्र ५), ब्रिटिश साम्राज्य शासन १॥), संसार शासन २॥), व्यक्ति और राज्य १॥), नागरिक शास्त्र की विवेचना ४॥), आधुनिक शासन प्रणालियां, गान्धी विचार दोहन १॥), गांधी वाणी ३)।

मनोविज्ञान—बालमनोविकास ६). शिक्षा-मनोविज्ञान ४), शिक्षा के सिद्धान्त और शिक्षा मनोविज्ञान ४) सरल मनोविज्ञान ६)

ग्राहस्थ्य शास्त्र—प्रश्न पत्र १—शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, घर की लक्ष्मी २॥।), पाकविज्ञान३)

प्रश्न पत्र २—मातृत्व, हमारे बच्चे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवी कैसे हों, भाई के पत्र ३)

प्रमाणिक हिन्दीकोष इसके सम्पादक नागरीप्रचारिणी सभा के श्री रामचन्द्र वर्मा हैं। यह कोष सर्वोत्तम है। शब्द संख्या ३१५६७ मूल्य १०॥=)

परीक्षार्थी-प्रबीध—इसमें ऐसे ३० निबन्ध हैं जो परीक्षार्थीयों के लिए लाभदायकहै—मूल्य ३)

अन्य प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका- १॥)

सूर पदावली की टीका- ॥।)

नवीन पद्य संग्रह की टीका- १॥)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-आदित्येश्वरकौशिक शास्त्री २००२ से २००६ तक ३)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००२ से २००६ तक २॥)

प्रथमा इतिहास प्रश्नोत्तर- १॥)

प्रथमा भूगोल प्रश्नोत्तर- १)

मध्यमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००२ से २००६ तक ३॥।)

मध्यमा इतिहास प्रश्नोत्तर- ,, वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००० से २००६ तक २॥)

मध्यमा भूगोल प्रश्नोत्तर, ,, ,, २००२ से २००६ तक २॥)

सभी पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमा परीक्षा सं० २००७-८-९

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

१—हिन्दी विश्व-विद्यालय की प्रथमा परीक्षा निम्न लिखित विषयों में देनी होगी।

१—हिन्दी साहित्य, २—इतिहास ३—भूगोल, ४—गणित तथा निम्नाङ्कित वैकल्पिक विषयों में से कोई एक विषय

(१) स्वास्थ्य रक्षा (२) अंग्रेजी (३) ड्राइङ्ग (४) संस्कृत (५) पालि (६) विज्ञान (७) धर्म शास्त्र ८) अर्थशास्त्र (९) राजनीति (१०) कृषि शास्त्र (११) संगीत

२—परीक्षा शुल्क ५) अर्थमन्त्री हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पते पर और आवेदन-पत्र मनीआर्डर की रसीद सहित केन्द्र व्यवस्थापक के द्वारा शिक्षामन्त्री के पास जायगा।

पाठ्य-क्रम

हिन्दी-साहित्य—प्रश्न-पत्र १—सूर पदावली ॥), २००७ के लिए २००८ और २००९ के लिए काव्य संग्रह प्रथम भाग, प्राचीन पद्य प्रभाकर १) नवीन पद्य संग्रह १।), २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए काव्य-संग्रह द्वितीय भाग❀ प्रथमालङ्कार निरूपण।, ❀ अलंकार प्रकाश ॥) ❀सरल पिंगल ॥), रस-अलंकार और पिङ्गल १॥), काव्याङ्ग सार।

नोट:—उपर्युक्त तीनों चिन्हित पुस्तकें २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए तीनों पुस्तकों के स्थान पर काव्याङ्ग-कल्पद्रुम,

प्रश्न-पत्र २—हिन्दी भाषा सार १॥, २००७ तथा २००८ के लिए, २००९ के लिए गद्य शौरभ चतुर्युग १।), वेदी के फूल १), सत्य हरिश्चन्द्र ॥), नूतन ब्रह्मचारी ॥=), हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ १॥), २००७ के लिए, २००८ तथा २००९ के लिए गल्प सञ्चय, संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण १॥, नवीन हिन्दी व्याकरण और रचना हिन्दी व्याकरण रत्नाकर १।) हिन्दी प्रयोग १॥), हिन्दी-व्याकरण और रचना

प्रश्न-पत्र ३—संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य १।), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३); हिन्दी-साहित्य की रूपरेखा।-), सम्वत् २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए उक्त दोनों पुस्तकों के स्थान पर हिन्दी-साहित्य परिचय, निबन्ध नवनीति १॥), हिन्दी निबंध माला ४), निबंध संग्रह लोकोक्तियाँ ॥=। अपठित हिन्दी रचना और तत्व

इतिहास—भारतवर्ष का इतिहास ३॥), लघु इतिहास प्रवेश ६),

भूगोल—भूगोल सार भाग १-२—२॥', भारतवर्ष का भूगोल २॥), मानव भूगोल १॥)।

गणित—अंक गणित, बीजगणित, रेखागणित, (कोई भी पुस्तक उपयोग में ली जा सकती है।)

वैकल्पिक विषय कोई एक

स्वास्थ्य—शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य—आरोग्य विधान ५), आदर्श भोजन १), स्वास्थ्य विधान भाग १-२-३ १।=)

कला—प्राइमर आफ आर्ट ३), कला और हस्तकार्य

संस्कृत—संस्कृत चन्द्रिका, नीतिशतक,

सामान्य विज्ञान—प्रारम्भिक जीव विज्ञान २।), जीव की कहानी १॥', प्रारम्भिक रसायन भाग १—१।), सामान्य भौतिक तथा रसायन विज्ञान पदार्थ परिचय १॥)

धर्मशास्त्र—श्री मद्भागवत संग्रह ॥=), धर्म शिक्षा ३)

अर्थ शास्त्र—अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३), अर्थ शास्त्र परिचय १)

राजनीति नागरिक शिक्षा १॥), हाई स्कूल नागरिक शास्त्र भारतीय राजनीति प्रवेशिका, भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की रूपरेखा ॥), काँग्रेस का संक्षिप्त इतिहास १, युक्तप्रान्त पंचायत राज्य कानून

कृषि शास्त्र—कृषि प्रवेशिका १।), प्रारम्भिक कृषि विज्ञान भाग १-२-३ ३), सुखी जीवन १॥)

संगीत—संगीत राग दर्शन भाग १-२, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग १-२-३-४, रागविज्ञान भाग १-२-३, संगीत कौमुदी भाग १-२-३

ग्राहस्थ्य शास्त्र—आरोग्य विधान ५), तीमारदारी ॥।), कन्या १), ग्राहस्थ्यशास्त्र २॥), स्वस्थ एवं सुखी संतान, नारी गृहलक्ष्मी और कल्याणी २॥)

पालि—जातक संग्रह. पाली प्रवोध १)

अंग्रेजी प्रश्नपत्र १—यह प्रश्नपत्र पाठ्यग्रंथ और व्याकरण पर होगा।

Gems of English prose १=), Poot-prints of the great १।), A Garden of Delights १),

प्रश्नपत्र २— इस प्रश्नपत्र के विषय अनुवाद, निबन्ध और अपठित गद्य तथा मुहाविरे होंगे। अपठित गद्य के लिये निम्नलिखित ग्रंथ पढे जा सकते हैं—Selections from Mahatma Gandhi १=), Letters from a father to has daughter, Modern High School Essays and Letter,

मध्यमा (विशारद) परीक्षा

१—मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए परीक्षार्थी को सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा, हाई-स्कूल परीक्षा, सरकारी कोविद परीक्षा, काशी विद्यापीठ की प्रथमा परीक्षा. हिन्दी विद्यापीठ देवघर की प्रवेशिका परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ बम्बई की रत्न परीक्षा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी परीक्षा या वर्धा की विनीता इत्यादि परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

२—परीक्षा का शुल्क १०) है।

३—मध्यमा परीक्षा में हिन्दी साहित्य विषय अनिवार्य है।

शेष निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों के दो समूहों में से प्रत्येक में से एक विषय लेना होगा :—

(क)—(१) गणित (२) इतिहास (३) वैद्यक (४) अंग्रेजी (५) कृषि (६ दर्शन (७) धर्मशास्त्र (८) मनोविज्ञान तथा गार्हस्थय शास्त्र (महिलाओं को)।

(ख)—(१) संस्कृत (२) पालि (३) विज्ञान (४) भूगोल ५) राजनीति (६) अर्थशास्त्र (७) ज्योतिष (८) बंगला (९) गुजराती (१०) मराठी तथा संगीत (महिलाओं को)

पाठ्यक्रम

साहित्य—प्रश्न-पत्र १—व्रजमाधुरीसार ४), [व्रजमाधुरी सार की टीका ४)] कविता वली १।) (उत्तरकाण्ड छोड़कर), अयोध्या काण्ड १॥) पंचवटी ।=) केवल २००७ तथा २००८ के लिए, आधुनिक काव्य संग्रह १॥) २००९ के लिए नूतन काव्य संग्रह।

सहायक ग्रंथ—संक्षिप्त अलङ्कार मंजरी २), काव्य प्रदीप ३), नवीनपिङ्गल १॥), हमारे कवि २॥।), प्राचीन कवियों की काव्य साधना २॥), तुलसी माताप्रसाद गुप्त २), तुलसी (रामबहोरी शुक्ल ३॥)

प्रश्न पत्र २—कहानियाँ ३), संयचन २), जीबन यज्ञ २), २००७ और २००८ के लिए, हिंदी गद्य-निर्माण २), २००९ के लिए, हिन्दी गद्य पारिजात शकुन्तला १॥), मुक्ति का रहस्य २), बहता पानी ३।), निम्नलिखित उपन्यासों में से इच्छानुसार कोई दो— चित्रलेखा २), लज्जा २), विसर्जन २), देहाती दुनियाँ पिपासा १॥।)

साहित्य की आलोचना, नाट्य-शास्त्र आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी प्रश्न पूछे जायेंगे। जिसके लिए साहित्य सन्देश मासिक देखें।

सहायक ग्रन्थ—हिन्दी-साहित्य समीक्षा २॥) संचारिणी २), विवेचना ४, रूपक रहस्य ३), समीक्षाञ्जलि १), आधुनिक हिन्दी नाटक १॥।)

प्रश्न पत्र ३—हिन्दी साहित्य का इतिहास ७), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३) भारतीय वाङ्मय के अमर-रत्न १), हिन्दी भाषा और लिपि १), नागरी अन्क और अक्षर ।=),

प्रश्न-पत्र ४—(निबन्ध रचना और सामायिक साहित्य)— लेखन कला १॥, निबन्ध-कला ३॥), रचनादर्श ॥।), अच्छी हिन्दी ३), भाषा की शक्ति १॥=) साहित्य-सुषमा १॥। विचार-वैभव, प्रबन्ध प्रभाकर ४।), सामयिक-साहित्य के ज्ञान के लिए परीक्षार्थीयों को अलोचना प्रधान मासिक साहित्य-सन्देश (आगरा) का अध्ययन करना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४), है। विशेषकर परीक्षार्थी प्रबोध ३),

वैकल्पिक विषय

इतिहास प्रश्न पत्र १ - इतिहास प्रवेश, मौर्य कालीन भारत २), प्राचीन भारत ७), भारतीय इतिहास की रूपरेखा ४), गुप्त साम्राज्य का इतिहास २ भाग, मुसलमानकाल का इतिहास २॥, अकबर की राज्य व्यवस्था, प्राचीन भारत का इतिहास हमारा राजस्थान ६) अशोक ४)

प्रश्न पत्र २—मराठों का उत्कर्ष १॥, शिवाजी की महत्ता १), सिक्खों का उत्थान पतन १॥) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ११) पश्चिचमी योरुप ३॥) फ्रान्स की राज्य क्रान्ति, १॥) वारेन होस्टिंग्स ५), रावर्ट क्लाइव १॥।

अर्थशास्त्र प्रश्न पत्र १—भारतीय अर्थशास्त्र ५) कोटिल्य के आर्थिक विचार २), भारतीय राजस्व, अर्थशास्त्र की रूपरेखा ६), गान्धीवादी योजना २॥), सरल राजस्व १)

प्रश्न पत्र२—भारत में कृषि सुधार २।), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थशास्त्र २), ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार २), भारतीय सहकारिता आन्दोलन ३॥), खादी मीमांसा ग्राम आन्दोलन की आवश्यकता, तेल घानी ३)।

गणित प्रश्न पत्र १—बीजगणित, त्रिकोणमिति, ६), विश्लेषिक ज्यामित, पिण्ड ज्यामित।

प्रश्न पत्र २- स्थिति विज्ञान, गति विज्ञान चलन कलन, चलराशि कलन ४)

दर्शन और तर्कशास्त्र प्रश्न पत्र १—दर्शन की रूपरेखा, गीता में ईश्वरवाद आत्म विद्या ४), द्रव्य संग्रह ॥, तर्क संग्रह, श्रीं मद्भगवद्गीता अध्याय १-२-३-४

प्रश्न पत्र २—भारतीय तर्कशास्त्र, तर्कशास्त्र १-२-३) मनोविज्ञान २), जीवात्मा ३)

धर्मशास्त्र प्रश्न पत्र १-मनुस्मृति अध्याय १-२ तथा ७ का हिंदी अनुवाद ५), याज्ञवल्क्य स्मृति १।), उपनिषदों की कहानियाँ प्रथम भाग २॥)।

प्रश्न पत्र २—धर्म शिक्षा ३), भगवद्गीता का अनुवाद २, ३, ४, १६, तथा १८, अध्याय, उपनिषदों कहानियाँ भाग २, २॥)

ज्योषि प्रश्न पत्र १—(गणित ज्योतिष) सूर्य-ग्रहण्यन्ताधि, कार, सूर्य सिद्धान्त।

प्रश्न पत्र २—(फलित ज्योतिष) लघुपाराशरी जातक पारिजात, प्रश्न शिरोमणि।

वैद्यक प्रश्न पत्र १—सरल शरीर विज्ञान १॥), शरीर और शरीर रक्षा ॥=), शरीर परिचय १।), शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, योगासन और अक्षुय युवावस्था, २), आरोग्य विधान ५), सरल स्वास्थ्य साधन, हम सौ वर्ष कैसे जीवें २), नैक-सर्गि आरोग्य १॥)।

प्रश्न पत्र २—निघंटु, गृहवस्तु चिकित्सा परिभाषा प्रवोध पथ्यापथ्य निरूपणं ॥)।

संस्कृत प्रश्न पत्र १—कुवार सम्भव पञ्चम सर्ग २), संस्कृत साहित्य सरणि १॥), व्याकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेशिका १।), संस्कृत साहित्य का इतिहास ५), अथवा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा ४॥)

प्रश्न पत्र २–संस्कृत गद्य-पद्य का हिन्दी तथा हिन्दीका संस्कृत में अनुवाद नीतिशतकपंचतन्त्र२॥) नीतिशतक—पालि प्रश्न पत्र १—खुद्दकपाठ सच्चा सङ्ग हो ।=) धम्मपद १॥)

प्रश्न पत्र २–पालि महाव्याकरण पालि प्रबोध

अंग्रेजी प्रश्न पत्र १—ए बुक आफ प्रोज,

डिकिन्स--डेविढ कौफर फील्ड,

मैकवेथ–शेक्सपियर,

प्रश्न पत्र २—पाल्गेव, गोल्डेन ट्रैजिरी,

टैनीसन—मूर्ती डी० आर्थर

भूगोल प्रश्न पत्र १—भूतत्व २), फिजीकल जाग्रफी, भूपरिचय, भूगोल सार २॥)।

प्रश्न पत्र २—व्यापारिक भूगोल ७), भारत की खानिजात्मक सम्पत्ति, भारत का आर्थिक भूगोल २।), संयुक्तप्रान्त

कृषिशास्त्र प्रश्म पत्र १—कृषिशास्त्र ३।), संयुक्तप्रान्त में कृषि की उन्नति १), पशुओं का इलाज ॥), कृपिकार्य १॥) फल संरक्षण ।॥) साक भाजी, पैमाइश प्रबोध, ढ़ोरोंका इलाज ॥=)

प्रश्न पत्र २—हमारे गाँव और किसान ।॥), भारत में कृषि सुधार २।), ग्राम आन्दोलन की आवश्कता, तेल धानी ३), कृषि सुधार का मार्ग ।॥), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थ शास्त्र २) कानूनी कब्जा आराजी १)

राजनीति प्रश्न पत्र १—हिन्दू राज्य शास्त्र-६) कौटिल्य की शासन पद्धति २) कौटिलीय अर्थ-शास्त्र मीमांसा, भारतीय विधान ४), देशी राज्य शासन प्रथम भाग ३॥ , तथा देशी राज्यों की जन जाग्रत ५, राजनैतिक भारत २।), कांग्रेस राज्य में आधुनिक भारतीय शासन ५), प्रान्तीय स्वायत शासन

प्रश्न पत्र २—बीसवीं सदी की राजनैतिक विचारधाराएँ, नागरिक शास्त्र की समीक्षा ५), नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त, आदर्श भारत की रूपरेखा २॥), सरल नागरिक शास्त्र ५), ब्रिटिश साम्राज्य शासन १॥), संसार शासन २॥), व्यक्ति और राज्य १॥), नागरिक शास्त्र की विवेचना ४॥), आधुनिक शासन प्रणालियां, गान्धी विचार दोहन १॥), गांधी वाणी ३)।

मनोविज्ञान—बालमनोविकास ६). शिक्षा-नोविज्ञान ४), शिक्षा के सिद्धान्त और शिक्षा मनोविज्ञान ४) सरल मनोविज्ञान ६)

ग्राहस्थ्य शास्त्र—प्रश्न पत्र १—शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, घर की लक्ष्मी २॥), पाकविज्ञान३)

प्रश्न पत्र २—मातृत्व, हमारे बच्चे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवी कैसे हों, भाई के पत्र ३)

प्रमाणिक हिन्दीकोष इसके सम्पादक नागरीप्रचारिणी सभा के श्री रामचन्द्र वर्मा हैं। यह कोष सर्वोत्तम है। शब्द संख्या ३१५६७ मूल्य १०॥=)

परीक्षार्थी-प्रबोध—इसमें ऐसे ३० निबन्ध हैं जो परीक्षार्थीयों के लिए लाभदायकहै—मूल्य ३)

अन्य प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका- १॥)

सूर पदावली की टीका- ।॥)

नवीन पद्य संग्रह की टीका- १॥)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-आदित्येश्वरकौशिक शास्त्री २००२ से २००६ तक ३)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००२ से २००६ तक २॥)

प्रथमा इतिहास प्रश्नोत्तर- १॥)

प्रथमा भूगोल प्रश्नोत्तर- १)

मध्यमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-वालेश्वर प्रसाद-शर्मा २००२ से २००६ तक ३।॥)

मध्यमा इतिहास प्रश्नोत्तर- ,, वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००० से २००६ तक २॥)

मध्यमा भूगोल प्रश्नोत्तर, ,, " २००२ से २००६ तक २॥)

सभी पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमा परीक्षा सं० २००७-८-९

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

१—हिन्दी विश्व-विद्यालय की प्रथमा परीक्षा निम्न लिखित विषयों में देनी होगी। १—हिन्दी साहित्य, २—इतिहास ३—भूगोल, ४—गणित तथा निम्नाङ्कित वैकल्पिक विषयों में से कोई एक विषय (१) स्वास्थ्य रक्षा (२) अंग्रेजी (३) ड्राइङ्ग (४) संस्कृत (५) पालि (६) विज्ञान (७) धर्म शास्त्र ८) अर्थशास्त्र (९) राजनीति (१०) कृषि शास्त्र (११) संगीत

२—परीक्षा शुल्क ५) अर्थ मन्त्री हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पते पर और आवेदन-पत्र मनीआर्डर की रसीद सहित केन्द्र व्यवस्थापक के द्वारा शिक्षामन्त्री के पास जायगा।

पाठ्य-क्रम

हिन्दी-साहित्य—प्रश्न-पत्र १—सूर पदावली ॥), २००७ के लिए २००८ और २००९ के लिए काव्य संग्रह प्रथम भाग, प्राचीन पद्य प्रभाकर १) नवीन पद्य संग्रह १।), २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए काव्य-संग्रह द्वितीय भाग* प्रथमालङ्कार निरूपण।', * अलंकार प्रकाश ॥) *सरल पिंगल ॥), रस-अलंकार और पिङ्गल १॥), काव्याङ्ग सार।

नोट:—उपर्युक्त तीनों चिन्हित पुस्तकें २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए तीनों पुस्तकों के स्थान पर काव्याङ्ग-कलपद्रुम,

प्रश्न-पत्र २—हिन्दी भाषा सार १॥', २००७ तथा २००८ के लिए, २००९ के लिए गद्य शौरभ। चतुर्युग १।), वेदी के फूल १), सत्य हरिश्चन्द्र ॥', नूतन ब्रह्मचारी ॥=', हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ १॥), २००७ के लिए, २००८ तथा २००९ के लिए गल्प सञ्चय, संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण १॥', नवीन हिन्दी व्याकरण और रचना हिन्दी व्याकरण रत्नाकर १।) हिन्दी प्रयोग १॥), हिन्दी-व्याकरण और रचना

प्रश्न-पत्र ३—संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य १।), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३); हिन्दी-साहित्य की रूपरेखा ।-), सम्वत् २००७ के लिए २००८ तथा २००९ के लिए उक्त दोनों पुस्तकों के स्थान पर हिन्दी-साहित्य परिचय, निबन्ध नवनीति १॥), हिन्दी निबंध माला ४), निबंध संग्रह लोकोक्तियाँ ॥=। अपठित हिन्दी रचना और तत्व

इतिहास—भारतवर्ष का इतिहास ३॥), लघु इतिहास प्रवेश ६),

भूगोल—भूगोल सार भाग १-२—२॥', भारतवर्ष का भूगोल २॥), मानव भूगोल १॥)।

गणित—अंक गणित, बीजगणित, रेखागणित, (कोई भी पुस्तक उपयोग में ली जा सकती है।)

वैकल्पिक विषय कोई एक

स्वास्थ्य—शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य—आरोग्य विधान ५), आदर्श भोजन १), स्वास्थ्य विधान भाग १-२-३ १।=)

कला—प्राइमर आफ आर्ट ३), कला और हस्तकार्य

संस्कृत—संस्कृत चन्द्रिका, नीतिशतक,

सामान्य विज्ञान—प्रारम्भिक जीव विज्ञान २।), जीव की कहानी १॥', प्रारम्भिक रसायन भाग १—१।), सामान्य भौतिक तथा रसायन विज्ञान पदार्थ परिचय १॥)

धर्मशास्त्र—श्री मद्भागवत संग्रह ॥=), धर्म शिक्षा ३)

अर्थ शास्त्र—अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३), अर्थ शास्त्र परिचय १)

राजनीति नागरिक शिक्षा १॥), हाई स्कूल नागरिक शास्त्र भारतीय राजनीति प्रवेशिका, भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की रूपरेखा ॥), काँग्रेस का संक्षिप्त इतिहास १ , युक्तप्रान्त पंचायत राज्य कानून

कृषि शास्त्र—कृषि प्रवेशिका १।), प्रारम्भिक कृषि विज्ञान भाग १-२-३ ३), सुखी जीवन १॥)

संगीत—संगीत राग दर्शन भाग १-२, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग १-२-३-४, रागविज्ञान भाग १-२-३, संगीत कौमुदी भाग १-२-३

ग्राहस्थ्य शास्त्र—आरोग्य विधान ५), तीमारदारी ॥।),कन्या १),ग्राहस्थ्यशास्त्र २॥),स्वस्थ एवं सुखी संतान, नारी गृहलक्ष्मी और कल्याणी २॥)

पालि—जातक संग्रह, पाली प्रवोध १)

अंग्रेजी प्रश्नपत्र १—यह प्रश्नपत्र पाठ्यग्रंथ और व्याकरण पर होगा।

Gems of English prose १=), Poot-prints of the great १।), A Garden of Delights १),

प्रश्नपत्र २— इस प्रश्नपत्र के विषय अनुवाद, निबन्ध और अपठित गद्य तथा मुहाविरे होंगे। अपठित गद्य के लिये निम्नलिखित ग्रंथ पढ़े जा सकते हैं—Selections from Mahatma Gandhi १=), Letters from a father to has daughter, Modern High School Essays and Letter,

मध्यमा (विशारद) परीक्षा

१—मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए परीक्षार्थी को सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा, हाई-स्कूल परीक्षा, सरकारी कोविद परीक्षा, काशी विद्यापीठ की प्रथमा परीक्षा. हिन्दी विद्यापीठ देवघर की प्रवेशिका परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ बम्बई की रत्न परीक्षा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी परीक्षा या वर्धा की विनीता इत्यादि परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

२—परीक्षा का शुल्क १०) है।

३—मध्यमा परीक्षा में हिन्दी साहित्य विषय अनिवार्य है।

शेष निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों के दो समूहों में से प्रत्येक में से एक विषय लेना होगा :—

(क)—(१) गणित (२) इतिहास (३) वैद्यक (४) अंग्रेजी (५) कृषि (६ दर्शन (७) धर्मशास्त्र (८) मनोविज्ञान तथा गार्हस्थय शास्त्र (महिलाओं को)।

(ख)—(१) संस्कृत (२) पालि (३) विज्ञान (४) भूगोल ५) राजनीति (६) अर्थशास्त्र (७) ज्योतिष (८) बंगला (९) गुजराती (१०) मराठी तथा संगीत (महिलाओं को)

पाठ्यक्रम

साहित्य—प्रश्न-पत्र १—व्रजमाधुरीसार ४), [व्रजमाधुरी सार की टीका ४)] कविता वली १।) (उत्तरकाण्ड छोड़कर), अयोध्या काण्ड १॥) पंचवटी ।=) केवल २००७ तथा २००८ के लिए, आधुनिक काव्य संग्रह १॥) २००९ के लिए नूतन काव्य संग्रह।

सहायक ग्रंथ—संक्षिप्त अलङ्कार मंजरी २), काव्य प्रदीप ३), नवीनपिङ्गल १॥), हमारे कवि २॥।), प्राचीन कवियों की काव्य साधना २॥), तुलसी माताप्रसाद गुप्त २), तुलसी (रामबहोरी शुक्ल ३॥)

प्रश्न पत्र २—कहानियाँ ३), संयचन २), जीवन यज्ञ २), २००७ और २००८ के लिए, हिंदी गद्य-निर्माण २), २००९ के लिए, हिन्दी गद्य पारिजात शकुन्तला १॥), मुक्ति का रहस्य २), बहता पानी ३॥). निम्नलिखित उपन्यासों में से इच्छानुसार कोई दो— चित्रलेखा २), लज्जा २), विसर्जन २), देहाती दुनियाँ पिपासा १॥।)

साहित्य की आलोचना, नाट्य-शास्त्र आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी प्रश्न पूछे जायेंगे। जिसके लिए साहित्य सन्देश मासिक देखें।

सहायक ग्रन्थ—हिन्दी-साहित्य समीक्षा २॥) संचारिणी २), विवेचना ४, रूपक रहस्य ३), समीक्षाञ्जलि १।, आधुनिक हिन्दी नाटक १॥।)

प्रश्न पत्र ३—हिन्दी साहित्य का इतिहास-७), विशेषकर हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३) भारतीय वाङ्मय के अमर-रत्न १), हिन्दी भाषा और लिपि १), नागरी अन्क और अक्षर ।=),

प्रश्न-पत्र ४—(निबन्ध रचना और सामायिक साहित्य)— लेखन कला १॥, निबन्ध-कला ३॥), रचनादर्श ।॥), अच्छी हिन्दी ३), भाषा की शक्ति १॥=) साहित्य-सुषमा १॥) विचार-वैभव, प्रबन्ध प्रभाकर ४।), सामयिक-साहित्य के ज्ञान के लिए परीक्षार्थीयों को आलोचना प्रधान मासिक साहित्य-सन्देश (आगरा) का अध्ययन करना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४), है। विशेषकर परीक्षार्थी प्रबोध ३),

वैकल्पिक विषय

इतिहास प्रश्न पत्र १ - इतिहास प्रवेश, मौर्य कालीन भारत २), प्राचीन भारत ७), भारतीय इतिहास की रूपरेखा ४), गुप्त साम्राज्य का इतिहास २ भाग, मुसलमानकाल का इतिहास २॥, अकबर की राज्य व्यवस्था, प्राचीन भारत का इतिहास हमारा राजस्थान ६) अशोक ४)

प्रश्न पत्र २—मराठों का उत्कर्ष १॥, शिवाजी की महत्ता १), सिक्खों का उत्थान पतन १॥) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ११) पश्चिचमी योरुप ३॥) फ्रान्स की राज्य क्रान्ति, १॥) वारेन होस्टिंग्स ५), रावर्ट क्लाइव १॥)

अर्थशास्त्र प्रश्न पत्र १—भारतीय अर्थशास्त्र ५) कौटिल्य के आर्थिक विचार २), भारतीय राजस्व, अर्थशास्त्र की रूपरेखा ६), गान्धीवादी योजना २॥), सरल राजस्व १)

प्रश्न पत्र२—भारत में कृषि सुधार २॥), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थशास्त्र २), ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार २); भारतीय सहकारिता आन्दोलन ३॥), खादी मीमांसा ग्राम आन्दोलन की आवश्यकता, तेल घानी ३)।

गणित प्रश्न पत्र १—बीजगणित, त्रिकोणमिति, ६), विश्लेषिक ज्यामित, पिण्ड ज्यामित।

प्रश्न पत्र २- स्थित विज्ञान, गति विज्ञान चलन कलन, चलराशि कलन ४।

दर्शन और तर्कशास्त्र प्रश्न पत्र १—दर्शन की रूपरेखा, गीता में ईश्वरवाद आत्म विद्या ४), द्रव्य संग्रह ॥, तर्क संग्रह, श्री मद्भगवद्गीता अध्याय १-२-३-४

प्रश्न पत्र २—भारतीय तर्कशास्त्र, तर्कशास्त्र १-२-३) मनोविज्ञान २), जीवात्मा ३)

धर्मशास्त्र प्रश्न पत्र १—मनुस्मृति अध्याय १-२ तथा ७ का हिंदी अनुवाद ५), याज्ञवल्क्य स्मृति १।), उपनिषदों की कहानियाँ प्रथम भाग २॥)।

प्रश्न पत्र २—धर्म शिक्षा ३), भगवद्गीता का अनुवाद २, ३, ४, १६, तथा १८, अध्याय, उपनिषदों कहानियाँ भाग २, २॥)

ज्योषि प्रश्न पत्र १—(गणित ज्योतिष) सूर्य-ग्रहण्यन्ताधि, कार, सूर्य सिद्धान्त।

प्रश्न पत्र २—(फलित ज्योतिष) लघुपाराशरी जातक पारिजात, प्रश्न शिरोमणि।

वैद्यक प्रश्न पत्र १—सरल शरीर विज्ञान-१॥), शरीर और शरीर रक्षा ॥=), शरीर परिचय १।), शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, योगासन और अक्षुण युवावस्था, २), आरोग्य विधान ५), सरल स्वास्थ्य साधन, हम सौ वर्ष कैसे जीवें २), नैक-सर्गि आरोग्य १॥)।

प्रश्न पत्र २—निघंटु, गृहवस्तु चिकित्सा परिभाषा प्रबोध पथ्यापथ्य निरूपणं ॥)।

संस्कृत प्रश्न पत्र १—कुवार सम्भव पञ्चम सर्ग २), संस्कृत साहित्य सरणि १॥), व्याकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेशिका १।), संस्कृत साहित्य का इतिहास ५), अथवा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा ४॥)

प्रश्न पत्र २–संस्कृत गद्य-पद्य का हिन्दी तथा हिन्दीका संस्कृत में अनुवाद नीतिशतकपंचतन्त्र२॥) नीतिशतक—पालि प्रश्न पत्र १—खुद्दकपाठ सच्चा सङ्ग हो ।=) धम्मपद १॥)

प्रश्न पत्र २–पालि महाव्याकरण पालि प्रबोध

अंग्रेजी प्रश्न पत्र १—ए बुक आफ प्रोज,

डिकिन्स–ड्रेविढ कौफर फील्ड,

मैकवेथ–शेक्सपियर,

प्रश्न पत्र २—पाल्गेव, गोल्डेन ट्रैजिरी,

टैनीसन—मूर्ती डी० आर्थर

भूगोल प्रश्न पत्र १—भूतत्व २), फिजीकल जाग्रफी, भूपरिचय, भूगोल सार २॥)।

प्रश्न पत्र २—व्यापारिक भूगोल ७), भारत की खानिजात्मक सम्पत्ति, भारत का आर्थिक भूगोल २।), संयुक्तप्रान्त

कृषिशास्त्र प्रश्म पत्र १—कृषिशास्त्र ३।), संयुक्तप्रान्त में कृषि की उन्नति १), पशुओं का इलाज ॥), कृषिकार्य १॥) फल संरक्षण ।॥) साक भाजी, पैमाइश प्रबोध, ढोरोंका इलाज ॥=)

प्रश्न पश २—हमारे गाँव और किसान ।॥), भारत में कृषि सुधार २।), ग्राम आन्दोलन की आवश्कता, तेल धानी ३), कृषि सुधार का मार्ग ।॥), गाँव की समस्याएँ १।, ग्राम्य अर्थ शास्त्र २) कानूनी कब्जा आराजी १)

राजनीति प्रश्न पत्र १—हिन्दू राज्य शास्त्र-६) कौटिल्य की शासन पद्धति २) कौटिलीय अर्थ-शास्त्र मीमांसा, भारतीय विधान ४), देशी राज्य शासन प्रथम भाग ३॥ . तथा देशी राज्यों की जन जाग्रत ५', राजनैतिक भारत २।), कांग्रेस राज्य में आधुनिक भारतीय शासन ५), प्रान्तीय स्वायत शासन

प्रश्न पत्र २—बीसवीं सदी की राजनैतिक विचारधाराएँ, नागरिक शास्त्र की समीक्षा ५', नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त, आदर्श भारत की रूपरेखा २॥), सरल नागरिक शास्त्र ५), ब्रिटिश साम्राज्य शासन १॥।), संसार शासन २॥), व्यक्ति और राज्य १॥।), नागरिक शास्त्र की विवेचना ४॥), आधुनिक शासन प्रणालियां, गान्धी विचार दोहन १॥।), गांधी वाणी ३।।

मनोविज्ञान—बालमनोविकास ६), शिक्षा-मनोविज्ञान ४), शिक्षा के सिद्धान्त और शिक्षा मनोविज्ञान ४) सरल मनोविज्ञान ६)

ग्राहस्थ्य शास्त्र—प्रश्न पत्र १—शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य, घर की लक्ष्मी २॥।), पाकविज्ञान३)

प्रश्न पत्र २—मातृत्व, हमारे बच्चे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवी कैसे हों, भाई के पत्र ३)

प्रमाणिक हिन्दीकोष इसके सम्पादक नागरीप्रचारिणी सभा के श्री रामचन्द्र वर्मा हैं। यह कोष सर्वोत्तम है। शब्द संख्या ३१५६७ मूल्य १०॥=)

परीक्षार्थी-प्रबीध—इसमें ऐसे ३० निबन्ध हैं जो परीक्षार्थीयों के लिए लाभदायकहै—मूल्य ३)

अन्य प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका- १॥)

सूर पदावली की टीका- ।॥)

नवीन पद्य संग्रह की टीका- १॥)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-आदित्येश्वरकौशिक शास्त्री २००२ से २००६ तक ३)

प्रथमा हिन्दी प्रश्नोत्तर वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००२ से २००६ तक २॥)

प्रथमा इतिहास प्रश्नोत्तर- १॥)

प्रथमा भूगोल प्रश्नोत्तर- १)

मध्यमा हिन्दी प्रश्नोत्तर-वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००२ से २००६ तक ३।॥)

मध्यमा इतिहास प्रश्नोत्तर- ,, वालेश्वर प्रसाद शर्मा २००० से २००६ तक २॥)

मध्यमा भूगोल प्रश्नोत्तर, ,, ,, २००२ से २००६ तक २॥)

सभी पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान—

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमा परीक्षा सं० २००७-८-९ (हिन्दी साहित्य)

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन की संक्षिप्त विवरण पत्रिका)

साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा

हिन्दी विश्वविद्यालय की उत्तमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रत्येक परीक्षार्थी को हिन्दी विश्वविद्यालय की मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक होगा। परन्तु जो परीक्षार्थी किसी 'बिश्वविद्यालय की हिन्दी अथवा संस्कृति लेकर बी० ए० अथवा किसी भी विषय की एम० ए० या एम० एस-सी०, संस्कृत कालेज काशी की आचार्य, बिहार संस्कृत एसोसिएशन की आचार्य, पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी-प्रभाकर, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की साहित्य भूषण महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्या भास्कर, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विदुषी (आनर्स) आन्ध्र विश्वविद्यालय की भाषा प्रवीण; या मद्रास विश्वविद्यालय की विद्वान परीक्षा पास होंगे वह बिना मध्यमा में उत्तीर्ण हुए ही उत्तमा परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

उत्तमा में परीक्षार्थी को अपने आवेदन पत्र के साथ केन्द्र-व्यवस्थापक द्वारा प्रमाणित अपने फोटो की दो प्रतियां भेजनी होंगी। चित्र बिना दफ्ती के आर ३।" × २।" नाप के होने चाहिये। महिलाओं के लिए चित्र भेजना आवश्यक न होगा।

उत्तमा परीक्षा दो खंडों में दो वर्षों में ली जायगी। प्रथम खंड पास कर लेने पर ही द्वितीय खंड की परीक्षा में बैठ सकेंगे।

प्रत्येक खण्ड में चार प्रश्नपत्र होंगे।

परीक्षा का शुल्क प्रत्येक खंड का १०) है।

नोट—उत्तमा के परीक्षार्थियों का 'परीक्षार्थी-प्रबोध' नामक पुस्तक मूल्य ३) जो परीक्षा में बहुत उपयोगी है अवश्य पढ़नी चाहिये।

प्रथम खंड

प्रश्नपत्र १—विद्यापति पदामृत ।।।); कबीर संग्रह; सूर संग्रह; पद्मावत-जायसी ५), रामचरितमानस उत्तरकांड २), विनयपत्रिका ६), मीराबाई की पदावली ३)

सहायक ग्रन्थ—विद्यापति की भूमिका; तसव्वुफ और सूफीकत ४), सूर निर्णय ५), गोस्वामी तुलसीदास १।।।), हिन्दी कवि चर्चा ३।।।), मीराबाई १।।)

प्रश्न-पत्र २, (क) वीर-काव्य (३५ अंक) डिंगल में वीर-रस ३), वीर-काव्य संग्रह ६), सूदन-रत्नावली १।।), सहायक ग्रन्थ-राजस्थानी भाषा और साहित्य ८)!

(ख) रीतकालीन काव्य (३५ अंक) देव रत्नावली १।।) बिहारी सतसई १।।), सेनापति कवित्त-सरसी ।।।), पद्माकर रत्नावली १।।), घनानन्द २), सहायक-ग्रन्थ—बिहारी की बाग्विभूति २)

(ग) काव्य शास्त्र (३० अंक) शब्द शक्ति, रस, अलंकार, दोष सहायक ग्रन्थ-रस-मीमाँसा ७), काव्य दर्पण १०), काव्य-प्रकाश ६)।

प्रश्न-पत्र ३, आधुनिक पद्य, प्रियप्रवास ३=),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत ३॥), कामायनी ६), आधुनिक कवि (पन्तजी) २॥), तुलसीदास १॥), हिमतरङ्गिनी ४॥),आधुनिक कवि (महादेवी वर्मा) २॥), कुरु-क्षेत्र ३॥), उद्धवशतक,२) सहायक ग्रन्थ–महाकवि हरिऔंध ४); कविप्रसाद की काव्य-साधना ३॥) प्रसाद (फतेहसिंह), जयशङ्करप्रसाद १॥), सुमित्रा नन्दन पन्त २॥), साकेत एक अध्ययन २॥), गुप्त जी की काव्यधारा ३॥), गुप्तजी की कला २), खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ २॥), हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद २।)।

प्रश्न-पत्र ४—गद्य निबन्ध—चिन्तामणि प्रथम भाग ३), भट्ट निवन्धावली १॥), अतीत के चल-चित्र २॥)।

कथा-साहित्य—नासिकेतोपाख्यान ।–), रानी केतकी की कहानी ।–), चन्दा १), कर्मभूमि ५), झांसी की रानी ६), अंगारे १॥), शेखर ५), नाटक—मुद्राराक्षस १॥), चन्द्रगुप्त ३), सिन्दूर की होली १।), विश्वमित्र और दो भाव-नाट्य ३) चारु मित्रा २।), देवताओं की छाया में २॥)।

सहायक ग्रन्थ—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ४), भारतेन्दु की विचार-धारा २), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), प्रसाद की नाट्यकला ३), साहित्य चिन्तन ४), हिन्दी नाटक साहित्य ४), हिन्दी गद्य-मीमांसा, हिन्दी उपन्यास, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५॥), नाटक की परख ३)।

द्वितीय-खण्ड हिन्दी साहित्य

प्रश्न-पत्र १—निम्नलिखित कवियों में से किसी एक वर्ग के कवि या कवियो का विशेष अध्ययन।

(क) कबीर तथा अन्य सन्त कवि अन्य कवियों के अन्तर्गत—

नानक, दादू, मलूकदास, जगजीवन साहब, पल्टू साहब, भीख साहब; सुन्दरदास तथा रदास का समावेश होगा।

(ख) सूरदास –
(ग) तुलसीदास—
(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि-
(ङ) जायसी और अन्य सूफी कवि,
(च) केशव
(छ) देव और विहारी—
(ज) हरिश्चन्द्र—
(झ) जयशङ्करप्रसाद
(ट) रत्नाकर
(क) कबीर–(पाठ्य-ग्रन्थ) कबीर-ग्रन्थावली ४), कबीर बचनामृत ३),

सहायक ग्रन्थ—निर्गुणीसन्तसाहित्य २), कबीर का रहस्यवाद ३॥)

(ख) सूरदास—सूरसागर १०), सूरदास ३॥), सूरदास ६), सूरसौरभ ५॥), सूर-निर्णय ५), सूर एक अध्ययन २।), सूर समीक्षा १॥)

(ग) तुलसीदास—रामचरितमानस १२), तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड ४॥), अथवा तुलसी रचनावली। कुण्डलिया रामायण ४)

सहायक ग्रन्थ—रामचरित मानस की भूमिका ३॥), गोस्वामी तुलसीदास १॥), गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दर दास) ६), तुलसी-दर्शन ५), तुलसीदास ८), तुलसीदास (चन्द्रबली पाँडे) ४॥), तुलसी ३॥), गोस्वामी तुलसीदास और उनकी समन्वय साधना २ भाग प्रति भाग का मूल्य ४), विश्व-साहित्य में तुलसीदास।

(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि:- ब्रज-माधुरी सार ४), नन्ददास ग्रन्थावली २ भाग प्रति भाग का मूल्य ६),अष्टछाप १॥), रास पञ्चाध्यायी और भँवर-गीत २)

सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप तथा बल्लभ सम्प्रदाय २०), अष्टछाप १॥), अष्ट-छाप परिचय ४)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) जायसी और अन्य सूफीकवि—जायसी ग्रन्थावली ५), अनुराग बांसुरी १।।), सूफीकाव्य संग्रह,

सहायक-ग्रन्थ—तसव्वुफ और सूफीमत ४), हिन्दी साहित्य का इतिहास ७),

(च) केशवदासः—रामचन्द्रिका ३); कविप्रिया, रसिक प्रिया, विज्ञान-गीता—

सहायक ग्रंथ—केशव पञ्च-रत्न १।।), केशव की काव्य-कला २।।), केशवदास, केशवरत्नावली केशवदास एक अध्ययन २।।)

(छ) देव और बिहारी—देवसुधा १।।), भावविलास १।।), देवदर्शन १।।), भवानीविलास बिहारी रत्नाकर, बिहारी सतसई १।।) रसविलास।

सहायक ग्रन्थ देव और उनकी कविता ६) बिहारी की वाग्विभूति २), हिन्दी नवरत्न, देव और बिहारी ३।।)

(ज) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु नाटकावली, भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, ४।।)

सहायक ग्रन्थः—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ५), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), भारतेन्दु युग २), भारतेन्दु की विचारधारा २), भारतेन्दु हरिश्चन्द्रः एक अध्ययन २।।)

(झ) रत्नाकरः—,रत्नाकर भाग १--२, ३)

सहायक ग्रन्थः—महाकवि रत्नाकर, उद्धवशतक की भूमिका, कविवर रत्नाकर।

(ञ) जयशंकर प्रसादः—चित्राधार, झरना १), लहर १।।), आँसू १), कामायनी ६), इत्यादि काव्य, अजातशत्र १।।), जनमेजय का नागयज्ञ १), राज्यश्री १।), कामना १) ध्रुवस्वामिनी १), स्कन्दगुप्त १।।), चन्द्रगुप्त ३), इत्यादि नाटक कंकाल ४); तितली ४), इरावती १।।) उपन्यास प्रतिध्वनि १), छाया, इन्द्रजाल २।।), आँधी २।।), आकाशदीप २।।), कहानी-संग्रह, काव्यकला तथा अन्य निबन्ध १।।)

सहायक ग्रन्थः—कविप्रसाद की काव्यसाधना ३।।), प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५।।), फतेहसिंह प्रसाद, प्रसाद की नाट्यकला, प्रसाद के नाटकीय पात्र ४), जयशङ्कर प्रसाद १।।), कामायनी एक अध्यय २।।), प्रसाद के तीन नाटक १), प्रसादजी की कला ३)

प्रश्न-पत्र २—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—खण्ड (१) (क) भाषा विज्ञान, ३० अंक तथा (ख) हिन्दी भाषा का इतिहास २० अंक (कुल ५० अंक) खंड २ प्रान्तीय भाषा ५० अंक।

खण्ड १—(क) भाषा विज्ञान (३० अंक) केवल २००७ के लिए, भाषा विज्ञान ४), समान्य भाषा विज्ञान ६), भाषा विज्ञान ३।।), तुलनात्मक भाषा विज्ञान ५) २००८ और २००९ के के लिए—योरीपीय भाषा और हिन्दी, सामान्य भाषा विज्ञान ६)।

(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास, (२० अंक) हिन्दी भाषा, (अप्राप्य) २।।), अथवा हिन्दी का इतिहास, १०)।

खण्ड २—बंगाली, गुजराती, मराठी, तेलगू, मलायालम, और कन्नड़ में से कोई एक प्रान्तीय भाषा (५० अंक) प्रान्तीय भाषाओं का पाठ्यक्रम मराठी।

गद्य—क्रोच-वध, स्वैर विचार,

पद्यः—मनाचे श्लोक,—१०१ से २०५, तांबें याची कविता,

सहायक ग्रन्थः—मराठी सुलभ व्याकरण, मराठी साहित्य समालोचना,

गुजरातीः—पद्य पारिजात, गद्य-साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक (चा) ओतराती दीवालो, साहित्य-विचार,

सहायक ग्रन्थः—हिन्दी गुजराती शिक्षा १।)

बंगलाः—साहित्य संचयन (नवीनतम संस्करण) मातृ भाषा समादर, नेत्र परीक्षा, विराट पुरुष, टाइटेनिकेर निरोधान,

खदिरांगार, जातक, विद्यासागर, चरितेर विशेषत्व, काव्यप्रतिभा, कथा और कहानी, बंगला साहित्य की कथा १।।)

तेलगूः—गद्य-पद्य संग्रह्य, आंध्र वाङ्मय चरित्र-संग्रहम मलयाललम, पद्य—चिराविटराय सीता, गद्य :—तच्चोत्मि औतेनन व्याकरण तथा साहित्य का इतिहास, केरलपाणिनीयम्।

कन्नड़—कानन विल्लु भाग २, पंचभारत सार पूर्व भाग, साहित्य-मन्त्रु जोपान, सर्वी गीता, पांव जन्य।

सहायकः—कर्णाटक कद कैपिडि कन्नड कैपिड, कन्नड साहित्य,

प्रश्न-पत्र ३—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—साहित्या-लोचन, साहित्य का इतिहास।

(क) साहित्य सम्बन्धी आलोचना,

सहायक ग्रन्थः—साहित्यालोचन ५।), साहित्य-मीमांसा ४)

(ख) हिन्दी-साहित्य का इतिहास ७) हिन्दी साहित्य ३।), हिन्दी साहित्यकी भूमिका ३।) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३)

प्रश्न पत्र ४—निबन्ध और संसकृत ७५अंक) सहायक ग्रन्थ मिट्टी की ओर ४), अशोक के फूल २।), सामायिकी ३।) विचार और विवेचन ४), संस्कृत सुषमा,

---

प्रथम खंड प्रश्न पत्र १-२) उत्तमा प्रश्नोत्तर सं० २००२ से २००६ तक ५)।

'साहित्य-सन्देश' आगरा—

(सम्पादक बा० गुलाबराय एम० ए०

निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों सेवा करता आरहा है। यह आलोचनात्मक मासिक पत्र है जो विद्यार्थियों को बहुत लाभ सिद्ध हुआ है। उत्तमा (साहित्य रत्न)· परीक्षा में साहित्य-सन्देश पढना बहुत उपयोगी होगा आज ही ४) मनीआर्डर भेज कर वार्षिक ग्राहक बन जाएँ।

परीक्षार्थी प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तय्यार की गयी है। प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, विदुषी-परीक्षा, स्वती, रत्न-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण-साहित्यालंकार, इण्टर, बी० ए० तथा एम० ए० आदि परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

साहित्य-संदेश के ग्राहकों को पौने मूल्य

यह पुस्तक दी जायगी इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायंगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायँगे।

सभी प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमा परीक्षा सं० २००७-८-९ (हिन्दी साहित्य).

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन की संक्षिप्त विवरण पत्रिका)

साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा

हिन्दी विश्वविद्यालय की उत्तमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रत्येक परीक्षार्थी को हिन्दी विश्वविद्यालय की मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक होगा। परन्तु जो परीक्षार्थी किसी विश्वविद्यालय की हिन्दी अथवा संस्कृति लेकर बी० ए० अथवा किसी भी विषय की एम० ए० या एम० एस-सी०, संस्कृत कालेज काशी की आचार्य, बिहार संस्कृत एसोसिएशन की आचार्य, पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी-प्रभाकर, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की साहित्य भूषण महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्या भास्कर, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विदुषी (आनर्स) आन्ध्र विश्वविद्यालय की भाषा प्रवीण; या मद्रास विश्वविद्यालय की विद्वान परीक्षा पास होंगे वह बिना मध्यमा में उत्तीर्ण हुए ही उत्तमा परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

उत्तमा में परीक्षार्थी को अपने आवेदन पत्र के साथ केन्द्र-व्यवस्थापक द्वारा प्रमाणित अपने फोटो की दो प्रतियां भेजनी होंगी। चित्र बिना दफ्ती के आर ३।" × २।" नाप के होने चाहिये। महिलाओं के लिए चित्र भेजना आवश्यक न होगा।

उत्तमा परीक्षा दो खंडों में दो वर्षों में ली जायगी। प्रथम खंड पास कर लेने पर ही द्वितीय खंड की परीक्षा में बैठ सकेंगे।

प्रत्येक खण्ड में चार प्रश्नपत्र होंगे।

परीक्षा का शुल्क प्रत्येक खंड का १०) है।

नोट—उत्तमा के परीक्षार्थियों का 'परीक्षार्थी-प्रबोध' नामक पुस्तक मूल्य ३) जो परीक्षा में बहुत उपयोगी है अवश्य पढ़नी चाहिये।

प्रथम खंड

प्रश्नपत्र १—विद्यापति पदामृत ।॥); कबीर संग्रह; सूर संग्रह; पद्मावत-जायसी ५), रामचरितमानस उत्तरकांड २), विनयपत्रिका ६), मीराबाई की पदावली ३)

सहायक ग्रन्थ—विद्यापति की भूमिका; तसव्वुफ और सूफीकत ४), सूर निर्णय ५), गोस्वामी तुलसीदास १॥।), हिन्दी कवि चर्चा ३॥।), मीराबाई १॥)

प्रश्न-पत्र २, (क) वीर-काव्य (३५ अंक) डिंगल में वीर-रस ३), वीर-काव्य संग्रह ६), सूदन-रत्नावली १॥), सहायक ग्रन्थ-राजस्थानी भाषा और साहित्य ८)।

(ख) रीतकालीन काव्य (३५ अंक) देव रत्नावली १॥) बिहारी सतसई १॥), सेनापति कवित्त-सरसी ।॥), पद्माकर रत्नावली १॥), घनानन्द २), सहायक-ग्रन्थ—बिहारी की बाग्विभूति २)

(ग) काव्य शास्त्र (३० अंक) शब्द शक्ति, रस, अलंकार, दोष सहायक ग्रन्थ-रस-मीमाँसा ७), काव्य दर्पण १०), काव्य-प्रकाश ६)।

प्रश्न-पत्र ३, आधुनिक पद्य, प्रियप्रवास ३८),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत ३।), कामायनी ६), आधुनिक कवि (पन्तजी) २।), तुलसीदास १।), हिमतरङ्गिनी ४।), आधुनिक कवि (महादेवी वर्मा) २।), कुरुक्षेत्र ३।), उद्धवशतक, २) सहायक ग्रन्थ—महाकवि हरिऔंध ४); कविप्रसाद की काव्य-साधना ३।) प्रसाद (फतेहसिंह), जयशङ्करप्रसाद १।), सुमित्रा नन्दन पन्त २।), साकेत एक अध्ययन २।), गुप्त जी की काव्यधारा ३।), गुप्तजी की कला २), खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ २।), हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद २।)।

प्रश्न-पत्र ४—गद्य निबन्ध—चिन्तामणि प्रथम भाग ३), भट्ट निबन्धावली १।), अतीत के चल-चित्र २।)।

कथा-साहित्य—नासिकेतोपाख्यान ।–), रानी केतकी की कहानी ।–), चन्दा १), कर्मभूमि ५), झांसी की रानी ६), अंगारे १।), शेखर ५), नाटक—मुद्राराक्षस १।), चन्द्रगुप्त ३), सिन्दूर की होली १।), विश्वमित्र और दो भाव-नाट्य ३) चारु मित्रा २।), देवताओं की छाया में २।)।

सहायक ग्रन्थ—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ४), भारतेन्दु की विचार-धारा २), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), प्रसाद की नाट्यकला ३), साहित्य चिन्तन ४), हिन्दी नाटक साहित्य ४), हिन्दी गद्य-मीमांसा, हिन्दी उपन्यास, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५।), नाटक की परख ३)।

द्वितीय-खण्ड हिन्दी साहित्य

प्रश्न-पत्र १—निम्नलिखित कवियों में से किसी एक वर्ग के कवि या कवियों का विशेष अध्ययन।

(क) कबीर तथा अन्य सन्त कवि अन्य कवियों के अन्तर्गत—

नानक, दादू, मलूकदास, जगजीवन साहब, पल्टू साहब, भीख साहब; सुन्दरदास तथा रदास का समावेश होगा।

(ख) सूरदास—
(ग) तुलसीदास—
(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि—
(ङ) जायसी और अन्य सूफी कवि,
(च) केशव
(छ) देव और बिहारी—
(ज) हरिश्चन्द्र—
(झ) जयशङ्करप्रसाद
(ट) रत्नाकर
(क) कबीर—(पाठ्य-ग्रन्थ) कबीर-ग्रन्थावली ४), कबीर बचनामृत ३),

सहायक ग्रन्थ—निर्गुणीसन्तसाहित्य २), कबीर का रहस्यवाद ३।)

(ख) सूरदास—सूरसागर १०), सूरदास ३।), सूरदास ६), सूरसौरभ ५।।), सूर-निर्णय ५), सूर एक अध्ययन २।), सूर समीक्षा १।।)

(ग) तुलसीदास—रामचरितमानस १२), तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड ४।), अथवा तुलसी रचनावली। कुण्डलिया रामायण ४)

सहायक ग्रन्थ—रामचरित मानस की भूमिका ३।), गोस्वामी तुलसीदास १।।), गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दर दास) ६), तुलसी-दर्शन ५), तुलसीदास ८), तुलसीदास (चन्द्रबली पाँडे) ४।), तुलसी ३।), गोस्वामी तुलसीदास और उनकी समन्वय साधना २ भाग प्रति भाग का मूल्य ४), विश्व-साहित्य में तुलसीदास।

(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि—ब्रज-माधुरी सार ४), नन्ददास ग्रन्थावली २ भाग प्रति भाग का मूल्य ६), अष्टछाप १।), रास पञ्चाध्यायी और भँवर-गीत २)

सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप तथा बल्लभ सम्प्रदाय २०), अष्टछाप १।), अष्ट-छाप परिचय ४)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) जायसी और अन्य सूफीकवि—जायसी ग्रन्थावली ५), अनुराग बांसुरी १।।), सूफीकाव्य संग्रह,

सहायक-ग्रन्थ—तसव्वुफ और सूफीमत ४), हिन्दी साहित्य का इतिहास ७),

(ञ) केशवदासः—रामचन्द्रिका ३); कवि-प्रिया, रसिक प्रिया, विज्ञान-गीता—

सहायक ग्रंथ—केशव पञ्च-रत्न १।।), केशव की काव्य-कला २।।), केशवदास, केशवरत्नावली केशवदास एक अध्ययन २।।)

(छ) देव और बिहारी—देवसुधा १।।), भावविलास १।।), देवदर्शन १।।), भवानीविलास बिहारी रत्नाकर, बिहारी सतसई १।।) रस-विलास।

सहायक ग्रन्थ देव और उनकी कविता ६) बिहारी की वाग्विभूति २), हिन्दी नवरत्न, देव और बिहारी ३।।)

(ज) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु नाट-कावली, भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, ४।।)

सहायक ग्रन्थः—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ५), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), भारतेन्दु युग २), भारतेन्दु की विचारधारा २), भारतेन्दु हरिश्चन्द्रः एक अध्ययन २।।)

(झ) रत्नाकरः—,रत्नाकर भाग १--२, ३)

सहायक ग्रन्थः—महाकवि रत्नाकर, उद्धव-शतक की भूमिका, कविवर रत्नाकर।

(ञ) जयशंकर प्रसादः—चित्राधार, झरना १), लहर १।।), आँसू १), कामायनी ६), इत्यादि काव्य, अजातशत्र १।।), जनमेजय का नागयज्ञ १।), राज्यश्री १।), कामना १) ध्रुवस्वामिनी १), स्कन्दगुप्त १।।), चन्द्रगुप्त ३), इत्यादि नाटक कंकाल ४); तितली ४), इरावती १।।) उपन्यास प्रतिध्वनि १), छाया, इन्द्रजाल २।।), आँधी २।।), आकाशदीप २।।), कहानी-संग्रह, काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध १।।)

सहायक ग्रन्थः—कविप्रसाद की काव्य-साधना ३।।), प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५।।), फतेहसिंह प्रसाद, प्रसाद की नाट्यकला, प्रसाद के नाटकीय पात्र ४), जय-शङ्कर प्रसाद १।।), कामायनी एक अध्यय २।।), प्रसाद के तीन नाटक १), प्रसादजी की कला ३)

प्रश्न-पत्र २—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—खण्ड (१) (क) भाषा विज्ञान, ३० अंक तथा (ख) हिन्दी भाषा का इतिहास २० अंक (कुल ५० अंक) खंड २ प्रान्तीय भाषा ५० अंक।

खण्ड १—(क) भाषा विज्ञान (३० अंक) केवल २००७ के लिए, भाषा विज्ञान ४), समान्य भाषा विज्ञान ६), भाषा विज्ञान ३।।), तुलना-त्मक भाषा विज्ञान ५) २००८ और २००९ के के लिए—योरीपीय भाषा और हिन्दी, सामान्य भाषा विज्ञान ६)।

(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास, (२० अंक) हिन्दी भाषा, (अप्राप्य) २।।), अथवा हिन्दी का इतिहास, १०)।

खण्ड २—बंगाली, गुजराती, मराठी, तेलगू, मलायालम, और कन्नड में से कोई एक प्रान्तीय भाषा (५० अंक) प्रान्तीय भाषाओं का पाठ्यक्रम मराठी।

गद्य—क्रोच-वध, स्वैर विचार,

पद्यः—मनाचे-श्लोक,—१०१ से २०५, तांबे याची कविता,

सहायक ग्रन्थः—मराठी सुलभ व्याकरण, मराठी साहित्य समालोचना,

गुजरातीः—पद्य पारिजात, गद्य-साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक (चा) ओतराती दीवालो, साहित्य-विचार,

सहायक ग्रन्थः—हिन्दी गुजराती शिक्षा १।)

बंगलाः—साहित्य संचयन (नवीनतम संस्करण) मातृ भाषा समादर, नेत्र परीक्षा, विराट पुरुष, टाइटेनिकेर निरोधान,

खदिरांगार, जातक, विद्यासागर, चरितेर विशेषत्व, काव्यप्रतिभा, कथा और कहानी, बंगला साहित्य की कथा १।।)

तेलगूः—गद्य-पद्य संग्रह्य, आंध्र वाङ्मय चरित्र-संग्रहम मलयाललम, पद्य—चिराविटराय सीता, गद्य :—तच्चोत्मि औतेनन व्याकरण तथा साहित्य का इतिहास, केरलपाणिनीयम्।

कन्नड़—कानन बिल्लु भाग २, पंचभारत सार पूर्व भाग, साहित्य-मन्वु जोपान, सर्वी गीता, पांव जन्य।

सहायकः—कर्णाटक कद कैपिडि कन्नड कैपिड, कन्नड साहित्य,

प्रश्न-पत्र ३—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—साहित्या-लोचन, साहित्य का इतिहास।

(क) साहित्य सम्बन्धी आलोचना,

सहायक ग्रन्थः—साहित्यालोचन ५।।), साहित्य-मीमांसा ४)

(ख) हिन्दी-साहित्य का इतिहास ७) हिन्दी साहित्य ३।।), हिन्दी साहित्यकी भूमिका ३।।) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३)

प्रश्न पत्र ४—निबन्ध और संसकृत ७५अंक) सहायक ग्रन्थ मिट्टी की ओर ४), अशोक के फूल २।।), सामायिकी ३।।) विचार और विवेचन ४), संस्कृत सुषमा,

---

प्रथम खंड प्रश्न पत्र १-२) उत्तमा प्रश्नोत्तर सं० २००२ से २००६ तक ५)।

'साहित्य-सन्देश' आगरा—

(सम्पादक बा० गुलाबराय एम० ए०)

निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सेवा करता आरहा है। यह आलोचनात्मक मासिक पत्र है जो विद्यार्थियों को बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। उत्तमा (साहित्य रत्न) परीक्षा में साहित्य-सन्देश पढना बहुत उपयोगी होगा। आज ही ४) मनीआर्डर भेज कर वार्षिक ग्राहक बन जाएँ।

परीक्षार्थी प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तय्यार की गयी है। प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण-साहित्यालङ्कार, इण्टर, बी० ए० तथा एम० ए० आदि परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

साहित्य-संदेश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायंगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायँगे।

सभी प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमा परीक्षा सं० २००७-८-९ (हिन्दी साहित्य)

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन की संक्षिप्त विवरण पत्रिका)

साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा

हिन्दी विश्वविद्यालय की उत्तमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रत्येक परीक्षार्थी को हिन्दी विश्वविद्यालय की मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक होगा। परन्तु जो परीक्षार्थी किसी विश्वविद्यालय की हिन्दी अथवा संस्कृति लेकर बी० ए० अथवा किसी भी विषय की एम० ए० या एम० एस-सी०, संस्कृत कालेज काशी की आचार्य, बिहार संस्कृत एसोसिएशन की आचार्य, पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी-प्रभाकर, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की साहित्य भूषण महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्या भास्कर, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विदुषी (आनर्स) आन्ध्र विश्वविद्यालय की भाषा प्रवीण; या मद्रास विश्वविद्यालय की विद्वान परीक्षा पास होंगे वह बिना मध्यमा में उत्तीर्ण हुए ही उत्तमा परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

उत्तमा में परीक्षार्थी को अपने आवेदन पत्र के साथ केन्द्र-व्यवस्थापक द्वारा प्रमाणित अपने फोटो की दो प्रतियां भेजनी होंगी। चित्र बिना दफ्ती के आर ३।" × २।" नाप के होने चाहिये। महिलाओं के लिए चित्र भेजना आवश्यक न होगा।

उत्तमा परीक्षा दो खंडों में दो वर्षों में ली जायगी। प्रथम खंड पास कर लेने पर ही द्वितीय खंड की परीक्षा में बैठ सकेंगे।

प्रत्येक खण्ड में चार प्रश्नपत्र होंगे।

परीक्षा का शुल्क प्रत्येक खंड का १०) है।

नोट—उत्तमा के परीक्षार्थियों का 'परीक्षार्थी-प्रबोध' नामक पुस्तक मूल्य ३) जो परीक्षा में बहुत उपयोगी है अवश्य पढ़नी चाहिये।

प्रथम खंड

प्रश्नपत्र १—विद्यापति पदामृत ।॥); कबीर संग्रह; सूर संग्रह; पद्मावत-जायसी ५), रामचरितमानस उत्तरकांड २), विनयपत्रिका ६), मीराबाई की पदावली ३)

सहायक ग्रन्थ—विद्यापति की भूमिका; तसव्वुफ और सूफीकत ४), सूर निर्णय ५), गोस्वामी तुलसीदास १॥।), हिन्दी कवि चर्चा ३॥।), मीराबाई १॥)

प्रश्न-पत्र २, (क) वीर-काव्य (३५ अंक) डिंगल में वीर-रस ३), वीर-काव्य संग्रह ६), सूदन-रत्नावली १॥), सहायक ग्रन्थ-राजस्थानी भाषा और साहित्य ८)!

(ख) रीतकालीन काव्य (३५ अंक) देव रत्नावली १॥) बिहारी सतसई १॥), सेनापति कवित्त-सरसी ॥।), पद्माकर रत्नावली १॥), घनानन्द २), सहायक-ग्रन्थ—बिहारी की बाग्विभूति २)

(ग) काव्य शास्त्र (३० अंक) शब्द शक्ति, रस, अलंकार, दोष सहायक ग्रन्थ-रस-मीमाँसा ७), काव्य दर्पण १०), काव्य-प्रकाश ६)।

प्रश्न-पत्र ३, आधुनिक पद्य, प्रियप्रवास ३८),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत ३॥), कामायनी ६), आधुनिक कवि (पन्तजी) २॥), तुलसीदास १॥), हिमतरङ्गिनी ४॥),आधुनिक कवि (महादेवी वर्मा) २॥), कुरु-क्षेत्र ३॥), उद्धवशतक,२) सहायक ग्रन्थ–महाकवि हरिऔध ४); कविप्रसाद की काव्य-साधना ३॥) प्रसाद (फतेहसिंह), जयशङ्करप्रसाद १॥), सुमित्रा नन्दन पन्त २॥), साकेत एक अध्ययन २॥), गुप्त जी की काव्यधारा ३॥), गुप्तजी की कला २), खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ २॥), हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद २॥)।

प्रश्न-पत्र ४—गद्य निबन्ध—चिन्तामणि प्रथम भाग ३), भट्ट निबन्धावली १॥), अतीत के चल-चित्र २॥)।

कथा-साहित्य—नासिकेतोपाख्यान ।–), रानी केतकी की कहानी ।–), चन्दा १), कर्मभूमि ५), झांसी की रानी ६), अंगारे १॥), शेखर ५), नाटक—मुद्राराक्षस १॥), चन्द्रगुप्त ३), सिन्दूर की होली १।), विश्वमित्र और दो भाव-नाट्य ३) चारु मित्रा २।), देवताओं की छाया में २॥)।

सहायक ग्रन्थ—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ४), भारतेन्दु की विचार-धारा २), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), प्रसाद की नाट्यकला ३), साहित्य चिन्तन ४), हिन्दी नाटक साहित्य ४), हिन्दी गद्य-मीमांसा, हिन्दी उपन्यास, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५॥), नाटक की परख ३)।

द्वितीय-खण्ड हिन्दी साहित्य

प्रश्न-पत्र १—निम्नलिखित कवियों में से किसी एक वर्ग के कवि या कवियो का विशेष अध्ययन।

(क) कबीर तथा अन्य सन्त कवि अन्य कवियों के अन्तर्गत—

नानक, दादू, मलूकदास, जगजीवन साहब, पल्टू साहब, भीख साहब; सुन्दरदास तथा रदास का समावेश होगा।

(ख) सूरदास –
(ग) तुलसीदास—
(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि-
(ङ) जायसी और अन्य सूफी कवि,
(च) केशव
(छ) देव और विहारी—
(ज) हरिश्चन्द्र —
(झ) जयशङ्करप्रसाद
(ट) रत्नाकर .
(क) कबीर–(पाठ्य-ग्रन्थ) कबीर-ग्रन्थावली ४), कबीर बचनामृत ३),

सहायक ग्रन्थ—निर्गुणीसन्तसाहित्य २), कबीर का रहस्यवाद ३॥)

(ख) सूरदास—सूरसागर १०), सूरदास ३॥), सूरदास ६), सूरसौरभ ५॥।), सूर-निर्णय ५), सूर एक अध्ययन २।), सूर समीक्षा १॥)

(ग) तुलसीदास—रामचरितमानस १२), तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड ४॥), अथवा तुलसी रचनावली। कुण्डलिया रामायण ४)

सहायक ग्रन्थ—रामचरित मानस की भूमिका ३॥), गोस्वामी तुलसीदास १॥।), गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दर दास) ६), तुलसी-दर्शन ५), तुलसीदास ८), तुलसीदास (चन्द्रबली पाँडे) ४॥), तुलसी ३॥), गोस्वामी तुलसीदास और उनकी समन्वय साधना २ भाग प्रति भाग का मूल्य ४), विश्व-साहित्य में तुलसीदास।

(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि-ब्रज-माधुरी सार ४), नन्ददास ग्रन्थावली २ भाग प्रति भाग का मूल्य ६),अष्टछाप १॥।), रास पञ्चाध्यायी और भँवर-गीत २)

सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप तथा बल्लभ सम्प्रदाय २०), अष्टछाप १॥), अष्ट-छाप परिचय ४)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) जायसी और अन्य सूफीकवि—जायसी ग्रन्थावली ५), अनुराग बांसुरी १।।), सूफीकाव्य संग्रह,

सहायक-ग्रन्थ—तसव्वुफ और सूफीमत ४), हिन्दी साहित्य का इतिहास ७),

(च) केशवदासः—रामचन्द्रिका ३); कविप्रिया, रसिक प्रिया, विज्ञान-गीता—

सहायक ग्रंथ—केशव पञ्च-रत्न १।।), केशव की काव्य-कला २।।), केशवदास, केशवरत्नावली केशवदास एक अध्ययन २।।)

(छ) देव और बिहारी—देवसुधा १।।), भावविलास १।।), देवदर्शन १।।), भवानीविलास बिहारी रत्नाकर, बिहारी सतसई १।।) रसविलास।

सहायक ग्रन्थ देव और उनकी कविता ६) बिहारी की वाग्विभूति २), हिन्दी नवरत्न, देव और बिहारी ३।।)

(ज) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु नाटकावली, भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, ४।।)

सहायक ग्रन्थः—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ५), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), भारतेन्दु युग २), भारतेन्दु की विचारधारा २), भारतेन्दु हरिश्चन्द्रः एक अध्ययन २।।)

(झ) रत्नाकरः—,रत्नाकर भाग १-२, ३)

सहायक ग्रन्थः—महाकवि रत्नाकर, उद्धवशतक की भूमिका, कविवर रत्नाकर।

(ञ) जयशंकर प्रसादः—चित्राधार, झरना १), लहर १।।), आँसू १), कामायनी ६), इत्यादि काव्य, अजातशत्र १।।), जनमेजय का नागयज्ञ १।), राज्यश्री १।), कामना १) ध्रुवस्वामिनी १), स्कन्दगुप्त १।।), चन्द्रगुप्त ३), इत्यादि नाटक कंकाल ४); तितली ४), इरावती १।।) उपन्यास प्रतिध्वनि १), छाया, इन्द्रजाल २।।), आँधी २।।), आकाशदीप २।।), कहानी-संग्रह, काव्यकला तथा अन्य निबन्ध १।।)

सहायक ग्रन्थः—कविप्रसाद की काव्यसाधना ३।।), प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५।।), फतेहसिंह प्रसाद, प्रसाद की नाट्यकला, प्रसाद के नाटकीय पात्र ४), जयशङ्कर प्रसाद १।।), कामायनी एक अध्यय २।।), प्रसाद के तीन नाटक १), प्रसादजी की कला ३)

प्रश्न-पत्र २—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—खण्ड (१) (क) भाषा विज्ञान, ३० अंक तथा (ख) हिन्दी भाषा का इतिहास २० अंक (कुल ५० अंक) खंड २ प्रान्तीय भाषा ५० अंक।

खण्ड १—(क) भाषा विज्ञान (३० अंक) केवल २००७ के लिए, भाषा विज्ञान ४), समान्य भाषा विज्ञान ६), भाषा विज्ञान ३।।), तुलनात्मक भाषा विज्ञान ५) २००८ और २००९ के के लिए—योरीपीय भाषा और हिन्दी, सामान्य भाषा विज्ञान ६)।

(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास, (२० अंक) हिन्दी भाषा, (अप्राप्य) २।।), अथवा हिन्दी का इतिहास, १०)।

खण्ड २—बंगाली, गुजराती, मराठी, तेलगू, मलायालम, और कन्नड़ में से कोई एक प्रान्तीय भाषा (५० अंक) प्रान्तीय भाषाओं का पाठ्यक्रम मराठी।

गद्य—क्रोच-बध, स्वैर विचार,

पद्यः—मनाचे-श्लोक,—१०१ से २०५, तांबे याची कविता,

सहायक ग्रन्थः—मराठी सुलभ व्याकरण, मराठी साहित्य समालोचना,

गुजरातीः—पद्य पारिजात, गद्य-साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक (चा) ओतराती दीवालो, साहित्य-विचार,

सहायक ग्रन्थः—हिन्दी गुजराती शिक्षा १।)

बंगलाः—साहित्य संचयन (नवीनतम संस्करण) मातृ भाषा समादर, नेत्र परीक्षा, विराट पुरुष, टाइटेनिकेर निरोधान,

खदिरांगार, जातक, विद्यासागर, चरितेर विशेषत्व, काव्यप्रतिभा, कथा और कहानी, बंगला साहित्य की कथा १।।)

तेलगूः—गद्य-पद्य संग्रह, आंध्र वाङ्मय चरित्र-संग्रहम मलयाललम, पद्य—चिराविटराय सीता, गद्य :—तच्चोत्मि औतेनन व्याकरण तथा साहित्य का इतिहास, केरलपाणिनीयम्।

कन्नड़—कानन बिल्लु भाग २, पंचभारत सार पूर्व भाग, साहित्य-मन्नु जोपान, सर्वी गीता, पांव जन्य।

सहायकः—कर्णाटक कद कैपिडि कन्नड कैपिड, कन्नड साहित्य,

प्रश्न-पत्र ३—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—साहित्या-लोचन, साहित्य का इतिहास।

(क) साहित्य सम्बन्धी आलोचना,

सहायक ग्रन्थः—साहित्यालोचन ५।), साहित्य-मीमांसा ४)

(ख) हिन्दी-साहित्य का इतिहास ७) हिन्दी साहित्य ३।), हिन्दी साहित्यकी भूमिका ३।) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३)

प्रश्न पत्र ४—निबन्ध और संसकृत ७५अंक) सहायक ग्रन्थ मिट्टी की ओर ४), अशोक के फूल २।), सामायिकी ३।) विचार और विवेचन ४), संस्कृत सुषमा,

---

प्रथम खंड प्रश्न पत्र १-२) उत्तमा प्रश्नोत्तर सं० २००२ से २००६ तक ५)।

'साहित्य-सन्देश' आगरा—

(सम्पादक बा० गुलाबराय एम० ए०)

निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सेवा करता आरहा है। यह आलोचनात्मक मासिक पत्र है जो विद्यार्थियों को बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। उत्तमा (साहित्य रत्न) परीक्षा में साहित्य-सन्देश पढना बहुत उपयोगी होगा। आज ही ४) मनीआर्डर भेज कर वार्षिक ग्राहक बन जाएँ।

परीक्षार्थी प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तय्यार की गयी है। प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण-साहित्यालङ्कार, इण्टर, बी० ए० तथा एम० ए० आदि परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

साहित्य-संदेश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायंगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायँगे।

सभी प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमा परीक्षा सं० २००७-८-९ (हिन्दी साहित्य)

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन की संक्षिप्त विवरण पत्रिका)

साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा

हिन्दी विश्वविद्यालय की उत्तमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रत्येक परीक्षार्थी को हिन्दी विश्वविद्यालय की मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक होगा। परन्तु जो परीक्षार्थी किसी 'बिश्वविद्यालय की हिन्दी अथवा संस्कृति लेकर बी० ए० अथवा किसी भी विषय की एम० ए० या एम० एस-सी०, संस्कृत कालेज काशी की आचार्य, बिहार संस्कृत एसोसिएशन की आचार्य, पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी-प्रभाकर, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की साहित्य भूषण महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्या भास्कर, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विदुषी (आनर्स) आन्ध्र विश्वविद्यालय की भाषा प्रवीण; या मद्रास विश्वविद्यालय की विद्वान परीक्षा पास होंगे वह बिना मध्यमा में उत्तीर्ण हुए ही उत्तमा परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

उत्तमा में परीक्षार्थी को अपने आवेदन पत्र के साथ केन्द्र-व्यवस्थापक द्वारा प्रमाणित अपने फोटो की दो प्रतियां भेजनी होंगी। चित्र बिना दफ्ती के आर ३।" × २।" नाप के होने चाहिये। महिलाओं के लिए चित्र भेजना आवश्यक न होगा।

उत्तमा परीक्षा दो खंडों में दो वर्षों में ली जायगी। प्रथम खंड पास कर लेने पर ही द्वितीय खंड की परीक्षा में बैठ सकेंगे।

प्रत्येक खण्ड में चार प्रश्नपत्र होंगे।

परीक्षा का शुल्क प्रत्येक खंड का १०) है।

नोट—उत्तमा के परीक्षार्थियों का 'परीक्षार्थी-प्रबोध' नामक पुस्तक मूल्य ३) जो परीक्षा में बहुत उपयोगी है अवश्य पढ़नी चाहिये।

प्रथम खंड

प्रश्नपत्र १—विद्यापति पदामृत ।॥); कबीर संग्रह; सूर संग्रह; पद्मावत-जायसी ५), रामचरितमानस उत्तरकांड २), विनयपत्रिका ६), मीराबाई की पदावली ३)

सहायक ग्रन्थ—विद्यापति की भूमिका; तसव्वुफ और सूफीकत ४), सूर निर्णय ५), गोस्वामी तुलसीदास १।॥), हिन्दी कवि चर्चा ३।॥), मीराबाई १॥)

प्रश्न-पत्र २, (क) वीर-काव्य (३५ अंक) डिंगल में वीर-रस ३), वीर-काव्य संग्रह ६), सूदन-रत्नावली १॥), सहायक ग्रन्थ-राजस्थानी भाषा और साहित्य ८)!

(ख) रीतकालीन काव्य (३५ अंक) देव रत्नावली १॥) बिहारी सतसई १॥), सेनापति कवित्त-सरसी ।॥), पद्माकर रत्नावली १॥), घनानन्द २), सहायक-ग्रन्थ—बिहारी की बाग्विभूति २)

(ग) काव्य शास्त्र (३० अंक) शब्द शक्ति, रस, अलंकार, दोष सहायक ग्रन्थ-रस-मीमाँसा ७), काव्य दर्पण १०), काव्य-प्रकाश ६)।

प्रश्न-पत्र ३, आधुनिक पद्य, प्रियप्रवास ३८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत ३॥), कामायनी ६), आधुनिक कवि (पन्तजी) २॥), तुलसीदास १॥), हिमतरङ्गिनी ४॥),आधुनिक कवि (महादेवी वर्मा) २॥), कुरु-क्षेत्र ३॥), उद्धवशतक,२) सहायक ग्रन्थ–महाकवि हरिऔध ४); कविप्रसाद की काव्य-साधना ३॥) प्रसाद (फतेहसिंह), जयशङ्करप्रसाद १॥), सुमित्रा नन्दन पन्त २॥), साकेत एक अध्ययन २॥), गुप्त जी की काव्यधारा ३॥), गुप्तजी की कला २), खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ २॥), हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद २।)।

प्रश्न-पत्र ४—गद्य निबन्ध—चिन्तामणि प्रथम भाग ३), भट्ट निबन्धावली १॥), अतीत के चल-चित्र २॥)।

कथा-साहित्य—नासिकेतोपाख्यान ।–), रानी केतकी की कहानी ।–), चन्दा १), कर्मभूमि ५), झांसी की रानी ६), अंगारे १॥), शेखर ५), नाटक—मुद्राराक्षस १॥), चन्द्रगुप्त ३), सिन्दूर की होली १।), विश्वमित्र और दो भाव-नाट्य ३) चारु मित्रा २।), देवताओं की छाया में २॥)।

सहायक ग्रन्थ—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ४), भारतेन्दु की विचार-धारा २), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), प्रसाद की नाट्यकला ३), साहित्य चिन्तन ४), हिन्दी नाटक साहित्य ४), हिन्दी गद्य-मीमांसा, हिन्दी उपन्यास, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५॥), नाटक की परख ३)।

द्वितीय-खण्ड हिन्दी साहित्य

प्रश्न-पत्र १—निम्नलिखित कवियों में से किसी एक वर्ग के कवि या कवियो का विशेष अध्ययन।

(क) कबीर तथा अन्य सन्त कवि अन्य कवियों के अन्तर्गत—

नानक, दादू, मलूकदास, जगजीवन साहब, पल्टू साहब, भीख साहब; सुन्दरदास तथा रदास का समावेश होगा।

(ख) सूरदास -
(ग) तुलसीदास—
(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि-
(ङ) जायसी और अन्य सूफी कवि,
(च) केशव
(छ) देव और विहारी—
(ज) हरिश्चन्द्र—
(झ जयशङ्करप्रसाद
(ट) रत्नाकर

(क) कबीर–(पाठ्य-ग्रन्थ) कबीर-ग्रन्थावली ४), कबीर बचनामृत ३),

सहायक ग्रन्थ—निर्गुणीसन्तसाहित्य २), कबीर का रहस्यवाद ३॥)

(ख) सूरदास—सूरसागर १०), सूरदास ३॥), सूरदास ६), सूरसौरभ ५॥।), सूर-निर्णय ५), सूर एक अध्ययन २।), सूर समीक्षा १॥)

(ग) तुलसीदास—रामचरितमानस १२), तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड ४॥), अथवा तुलसी रचनावली। कुण्डलिया रामायण ४)

सहायक ग्रन्थ—रामचरित मानस की भूमिका ३॥), गोस्वामी तुलसीदास १॥।), गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दर दास) ६), तुलसी-दर्शन ५), तुलसीदास ८), तुलसीदास (चन्द्रबली पाँडे) ४॥), तुलसी ३॥), गोस्वामी तुलसीदास और उनकी समन्वय साधना २ भाग प्रति भाग का मूल्य ४), विश्व-साहित्य में तुलसीदास।

(घ) सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के कवि-ब्रज-माधुरी सार ४, नन्ददास ग्रन्थावली २ भाग प्रति भाग का मूल्य ६),अष्टछाप १॥), रास पञ्चाध्यायी और भँवर-गीत २)

सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप तथा बल्लभ सम्प्रदाय २०), अष्टछाप १॥), अष्ट-छाप परिचय ४)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) जायसी और अन्य सूफीकवि—जायसी ग्रन्थावली ५), अनुराग बांसुरी १।।), सूफीकाव्य संग्रह,

सहायक-ग्रन्थ—तसव्वुफ और सूफीमत ४), हिन्दी साहित्य का इतिहास ७),

(ञ) केशवदासः—रामचन्द्रिका ३); कविप्रिया, रसिक प्रिया, विज्ञान-गीता—

सहायक ग्रंथ—केशव पञ्च-रत्न १।।), केशव की काव्य-कला २।।), केशवदास, केशवरत्नावली केशवदास एक अध्ययन २।।)

(छ) देव और बिहारी—देवसुधा १।।), भावविलास १।।), देवदर्शन १।।), भवानीविलास बिहारी रत्नाकर, बिहारी सतसई १।।) रसविलास।

सहायक ग्रन्थ देव और उनकी कविता ६) बिहारी की वाग्विभूति २), हिन्दी नवरत्न, देव और बिहारी ३।।)

(ज) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु नाटकावली, भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, ४।।)

सहायक ग्रन्थः—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ५), भारतेन्दु की नाट्य-कला ३), भारतेन्दु युग २), भारतेन्दु की विचारधारा २), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र: एक अध्ययन २।।)

(झ) रत्नाकरः—,रत्नाकर भाग १-२, ३)

सहायक ग्रन्थः—महाकवि रत्नाकर, उद्धवशतक की भूमिका, कविवर रत्नाकर।

(ञ) जयशंकर प्रसादः—चित्राधार, झरना १), लहर १।।), आँसू १), कामायनी ६), इत्यादि काव्य, अजातशत्र १।।), जनमेजय का नागयज्ञ १), राज्यश्री १।), कामना १) ध्रुवस्वामिनी १), स्कन्दगुप्त १।।), चन्द्रगुप्त ३), इत्यादि नाटक कंकाल ४); तितली ४), इरावती १।।) उपन्यास प्रतिध्वनि १), छाया, इन्द्रजाल २।।), आँधी २।।), आकाशदीप २।।), कहानी-संग्रह, काव्यकला तथा अन्य निबन्ध १।।)

सहायक ग्रन्थः—कविप्रसाद की काव्यसाधना ३।।), प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ५।।), फतेहसिंह प्रसाद, प्रसाद की नाट्यकला, प्रसाद के नाटकीय पात्र ४), जयशङ्कर प्रसाद १।।), कामायनी एक अध्ययय २।।), प्रसाद के तीन नाटक १), प्रसादजी की कला ३)

प्रश्न-पत्र २—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—खण्ड (१) (क) भाषा विज्ञान, ३० अंक तथा (ख) हिन्दी भाषा का इतिहास २० अंक (कुल ५० अंक) खंड २ प्रान्तीय भाषा ५० अंक।

खण्ड १—(क) भाषा विज्ञान (३० अंक) केवल २००७ के लिए, भाषा विज्ञान ४), समान्य भाषा विज्ञान ६), भाषा विज्ञान ३।।), तुलनात्मक भाषा विज्ञान ५) २००८ और २००९ के के लिए—योरीपीय भाषा और हिन्दी, सामान्य भाषा विज्ञान ६)।

(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास, (२० अंक) हिन्दी भाषा, (अप्राप्य) २।।), अथवा हिन्दी का इतिहास, १०)।

खण्ड २—बंगाली, गुजराती, मराठी, तेलगू, मलायालम, और कन्नड़ में से कोई एक प्रान्तीय भाषा (५० अंक) प्रान्तीय भाषाओं का पाठ्यक्रम मराठी।

गद्य—क्रोच-वध, स्वैर विचार,

पद्यः—मनाचे श्लोक,—१०१ से २०५, तांबे याची कविता,

सहायक ग्रन्थः—मराठी सुलभ व्याकरण, मराठी साहित्य समालोचना,

गुजरातीः—पद्य पारिजात, गद्य-साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक (चा) ओतराती दीवालो, साहित्य-विचार,

सहायक ग्रन्थः—हिन्दी गुजराती शिक्षा १।)

बंगलाः—साहित्य संचयन (नवीनतम संस्करण) मातृ भाषा समादर, नेत्र परीक्षा, विराट पुरुष, टाइटेनिकेर निरोधान,

खदिरांगार, जातक, विद्यासागर, चरितेर विशेषत्व, काव्यप्रतिभा, कथा और कहानी, बंगला साहित्य की कथा १।।)

तेलगूः—गद्य-पद्य संग्रह्य, आंध्र वाङ्मय चरित्र-संग्रहम मलयाललम, पद्य—चिराविटराय सीता, गद्य :—तच्चोत्मि औतेनन व्याकरण तथा साहित्य का इतिहास, केरलपाणिनीयम्।

कन्नड़—कानन बिल्लु भाग २, पंचभारत सार पूर्व भाग, साहित्य-मन्त्रु जोपान, सर्वी गीता, पांव जन्य।

सहायकः—कर्णाटक कद कैपिडि कन्नड कैपिड, कन्नड साहित्य,

प्रश्न-पत्र ३—यह पत्र दो भागों में विभक्त होगा—साहित्या-लोचन, साहित्य का इतिहास।

(क) साहित्य सम्बन्धी आलोचना,

सहायक ग्रन्थः—साहित्यालोचन ५।।), साहित्य-मीमांसा ४)

(ख) हिन्दी-साहित्य का इतिहास ७) हिन्दी साहित्य ३।।), हिन्दी साहित्यकी भूमिका ३।।) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३)

प्रश्न पत्र ४—निबन्ध और संसकृत ७५अंक) सहायक ग्रन्थ मिट्टी की ओर ४), अशोक के फूल २।।), सामायिकी ३।।) विचार और विवेचन ४), संस्कृत सुषमा,

———

प्रथम खंड प्रश्न पत्र १-२) उत्तमा प्रश्नोत्तर सं० २००२ से २००६ तक ५)।

'साहित्य-सन्देश' आगरा—

(सम्पादक बा० गुलाबराय एम० ए०)

निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सेवा करता आरहा है। यह आलोचनात्मक मासिक पत्र है जो विद्यार्थियों को बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। उत्तमा (साहित्य रत्न) परीक्षाओं में साहित्य-सन्देश पढना बहुत उपयोगी होगा। आज ही ४) मनीआर्डर भेज कर वार्षिक ग्राहक बन जाएँ।

परीक्षार्थी प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तय्यार की गयी है। प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण-साहित्यालङ्कार, इण्टर, बी० ए० तथा एम० ए० आदि परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

साहित्य-संदेश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायंगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायँगे।

सभी प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी-प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तैयार की गयी है। प्रथमा-मध्यमा-उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-भूषण-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण-साहित्यालंकार, इन्टर-बी० ए०-एम० ए० आदि के परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

'साहित्य-सन्देश' निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सहायता करता रहा है। उसने विगत ग्यारह वर्षों में जो विद्यार्थियोपयोगी निबन्ध अपने अङ्कों के द्वारा भेंट किये हैं, उनका सार और महत्व-पूर्ण अंश लेकर तथा आवश्यक नये निबन्ध जोड़कर यह पुस्तक तय्यार की गयी है। विद्यार्थी और परीक्षार्थी के लिए सदैव साथ रखने योग्य पुस्तक है। पृष्ठ संख्या लगभग ३०० मूल्य ३) मात्र है।

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी। इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायँगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायँगे।

मूल्य निम्न प्रकार लिया जायगा।

	ग्राहकों से	अन्य सज्जनों से
पेशगी प्राप्त होने पर रजिस्ट्री से मँगाने वालों से (पोस्ट फ्री)	२।)	३)
वी० पी० से मगाने वालों से	(मय पोस्टेज) २॥=)	३।=)

इसका प्रथम संस्करण एक मास में ही समाप्त हो गया अब द्वितीय संस्करण छप कर तय्यार है जिन ग्राहकों ने मियाद के पीछे अर्थात् ३० नवम्बर १९४९ के बाद आर्डर व रुपया भेजा है और जिनको परीक्षार्थी-प्रबोध अब तक नहीं मिला है उन्हें पौने मूल्य के हिसाब से नये संस्करण की वी० पी० भेजी जायगी।

इस पुस्तक के लेखों की संख्या विषय सूची इसके पीछे वाले पृष्ठ पर छपी हुई है।

आधे मूल्य की रियायत केवल ग्राहकों को ही मिलेगी। अतः ४) मूल्य भेजकर तुरन्त ग्राहक बन जायँ।

नोट—ग्राहक महोदय आर्डर देते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें। अन्यथा पुस्तक न भेजी जायगी।

पता:—साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

अथवा

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी प्रबोध का विषय-सूची

[साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में—मूल्य ३) ग्राहकों से २।)]

१—काव्य परिभाषा का विकास—डा० सत्येन्द्र एम० ए०

२—साधारणीकरण का शास्त्रीय विवेचन—श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०

३—हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध काव्य का विकास—श्री हरिनारायण वर्मा साहित्य-रत्न

४—आधुनिक हिन्दी-साहित्य में मनोविज्ञान—श्री इलाचन्द जोशी

५—पृथ्वीराज रासो—श्री पण्डित दशरथ शर्मा

६—सन्त-साहित्य में योगसाधना और ब्रह्मानुभूति—श्री बैजनाथप्रसाद खेतान

७—हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद का विकास—श्री शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०

८—हिन्दी कविता की नवीनतम प्रगति—प्रो० नगेन्द्र एम० ए०

९—कबीरदास के दार्शनिक सिद्धान्त—श्री गुलाबराय एम० ए०

१०—हिन्दी साहित्य में विद्यापति—श्री गुलाबराय एम० ए०

११—नन्ददास का भँवरगीत—श्री गुलाबराय एम० ए०

१२—भ्रमरगीत में सूरदासजी

१३—केशव की अलङ्कार योजना—श्री गुलाबराय एम० ए०

१४—बिहारी का कांइयापन—डा० सत्येन्द्र एम० ए०

१५—देव का काव्यात्व और आचार्यत्व—डा० सत्येन्द्र एम० ए०

१६—सेनापति का प्रकृति चित्रण—श्री गुलाबराय एम० ए०

१७—चन्दा : एक आलोचनात्मक परिचय—श्री अनिलकुमार साहित्य-रत्न

१८—यशोधरा एक सिंहावलोकन—प्रो० बी० बी० योहन एम० ए० बी० ए० (आनर्स)

१९—सिद्धराज पर एक दृष्टि—श्री भगवतस्वरूप मिश्र एम० ए०

२०—उद्धव-शतक में भक्तिकाल और रीतिकाल के सम्मिलित प्रभाव—श्री गुलाबराय एम० ए०

२१—युग कवि 'निरालाजी'—श्री हरिशङ्कर उपाध्याय 'विशारद'

२२—महादेवी की रहस्य साधना—श्री विश्वभरदयाल 'मानव' एम० ए०

२३—हिमकिरीटनी पर एक दृष्टि—श्री चन्द्रभानजी राधे राधे

२४—चित्रलेखा—श्रीमती उषादेवी मित्रा

२५—श्री रामकुमार वर्मा के एकाङ्की नाटकों की रूपरेखा—श्री नर्मदाप्रसाद खरे

२६—सिन्दूर की होली में समस्या-चित्रण—कुमारी शकुन्तला सक्सेना, एम० ए० विशारद

२७—गरुड़ध्वज पर एक दृष्टि—श्री ओंकारप्रकाश एम० ए०, एल० एल० बी० रिसर्च-स्कॉलर

२८—हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार—श्री मोहनलाल चेजारा एम० ए०

२९—कुछ पर कुछ—श्री भगवतस्वरूप मिश्र एम० ए०

३०—तुलसी की काव्य सुषमा—श्री प्रो० जगन्नाथ तिवारी

पता—साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गाँधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज, स्कूल, लाइब्रेरी और विद्यार्थियों के लिये

हिन्दी के विविध

शब्द-कोश

आजकल जितने भी अच्छे कोश प्राप्य हैं उनकी सूची हम नीचे लिख रहे हैं आप जिस प्रकार का भी कोश चाहें हमें लिखिये, हम उसे आपकी सेवा में भेज देंगे।

१—प्रामाणिक हिन्दी शब्द-कोश—
लेखक रामचन्द्र वर्मा—१०॥=)
२—हिन्दी शब्द सागर कुल ८ भाग हैं जिसमें प्राप्य ५ भागों का मूल्य- ५४)
३—शब्दार्थ पारिजात कोश— ६)
४—अग्रवाल हिन्दी शब्द कोश— ५)
५—हिन्दी साहित्य कोश— ५)
६—आधुनिक हिन्दी शब्द कोश— ४॥)
७—सुलभ हिन्दी शब्द कोश— ५)
८—विद्यार्थी शब्द कोश— ३)
९—हिन्दी रत्न-कोश— ४॥)
१०—शासन शब्द-कोश १५)
११—विधि शब्द-सागर—चार भाग २०)
१२—शासन शब्द-संग्रह— ३)
१३—अर्थ-शास्त्र शब्दावली— १॥।)
१४—राजनीति शब्दावली— २॥)
१५—टुएन्टीयथ सेन्चुरी ५ भाग अंग्रेजी —से हिन्दी ८०)
१६—भार्गव डिक्सनरी अंग्रेजी से हिन्दी ९)
१७— ,, ,, छोटा साइज अंग्रेजी से हिन्दी ४)
१८— ,, ,, हिन्दी से अंग्रेजी (अप्राप्य) ८)
१९—विविध ज्ञान शब्द-कोश— २)
२०—न्यायालय शब्द-कोश (अंग्रेजी से हिन्दी) २)
२१—उर्दू हिन्दी शब्द-कोश— ४॥)
२२—हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली
ज्योतिष विज्ञान— ॥=)
रसायन शास्त्र— ॥।)
गणित शास्त्र— १)
भौतिक विज्ञान— १)
कृषि शब्दावली— ।)
२३—समाचारपत्र शब्द कोश— १॥।)
२४—वाणिज्य शब्द कोश— १॥)
२५—हिन्दी संकेत लिपि वाक्यांश कोश— २॥)

सम्पूर्ण कोशों के मिलने का एकमात्र पता—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन

लेखक—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी०-एच० डी०

हमारी नयी भेंट—हिन्दी में ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में यह पुस्तक एक नवीन उद्योग है। सर्वथा नवीन है।

नयी दिशा—इसमें साहित्यिक अध्ययन की नयी दशा प्रस्तुत की गयी है। —सर्वथा नयी दिशा।

रोचक—इसकी शैली अत्यन्त रोचक है—

पांडित्यपूर्ण—साथ ही विद्वान लेखक का ज्ञान और पांडित्य इसमें कूट-कूट भरा हुआ है।

प्रशंसित—कितने ही विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इसमें क्या है ?

❀ लोकवार्ता का वैज्ञानिक अध्ययन और इतिहास। हिन्दी में इतना सांगोपांग अध्ययन अभी तक नहीं हुआ लोकवार्ता का विषय हिन्दी में सर्वथा नवीन है।

❀ लोकवार्ता और लोक-साहित्य—के सम्बन्ध का विवेचन।

❀ लोक साहित्य और लोक जीवन का सम्बन्ध—संग्रह और झाँकी।

ब्रज क्षेत्र के समस्त प्रकार के लोक साहित्य के संग्रह के निर्देश के साथ जीवन-संस्कारों से उनका वैज्ञानिक संबन्ध।

❀ लोकवार्ता और साहित्यक—संग्रह और सङ्कलन की प्रणाली विस्तार के साथ दी गयी है।

❀ ब्रज के लोक साहित्य—की प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक विकास—वेद-पूर्व से आज।

❀ ब्रज के बहाने समस्त भारतीय लोक वार्त्ता साहित्य का विश्व लोकवार्ता परम्परा में स्थान।

हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड पंडित, ब्रजभाषा के मर्मज्ञ प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० धीरेन्द्रवर्मा कहते हैं:—

"प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी लोकवार्ता-साहित्य के एक रूप—ब्रजभाषा लोक साहित्य—का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन है·····इस नवीन क्षेत्र के आधोपान्त पूर्ण अध्ययन का प्रथम श्रेय श्री सत्येन्द्रजी को प्राप्त हुआ।

"·····इस ग्रन्थ के पढ़ने से ब्रजलोक-साहित्य का पूर्ण आलोचनात्मक परिचय पाठक को प्राप्त हो जाता है।"

"आशा है कि सत्येन्द्रजी का यह सुन्दर और उपयोगी, प्रयास पथ प्रदर्शक स्वरूप सिद्ध होगा।"

"श्री सत्येन्द्रजी का प्रस्तुत अध्ययन भारतीय संस्कृति और साहित्य के इस भावी विशाल मन्दिर की नींव की एक सुदृढ़ ईंट है।"

हिन्दी के आलोचक-प्रवर, दार्शनिक, निबन्धकार और साहित्य-शास्त्री बाबू गुलाबराय का अभिमत—

"लोकसाहित्य का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है इसमें लोकगीत, धार्मिकता, कहानियाँ, लोकोक्तियाँ, मूढ़-भ्रान्त या अन्धविश्वास जादू टौने के मन्त्र-तन्त्र सब कुछ आ जाते हैं। साहित्य के विस्तृत अर्थ में तो यह साहित्य है ही किन्तु संकुचित अर्थ में भी सरस साहित्य इसमें पूर्ण रूप से मिलता है और लोक-साहित्य और भाँति समाज के साहित्य में आदान-प्रदान होता रहता है। लेखक ने इस बात को बड़े कौशल से दिखाया है।····"

"इस प्रकार लेखक ने लोक साहित्य का शास्त्र रचने का प्रयत्न किया है।····"

पृष्ठ संख्या ६२२, बड़ा आकार, मूल्य सजिल्द ६)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज, स्कूल, लाइब्रेरी और विद्यार्थियों के लिये

हिन्दी के विविध शब्द-कोश

आजकल जितने भी अच्छे कोश प्राप्य हैं उनकी सूची हम नीचे लिख रहे हैं। आप जिस प्रकार का भी कोश चाहें हमें लिखिये, हम उसे आपकी सेवा में भेज देंगे।

१—प्रामाणिक हिन्दी शब्द-कोश—लेखक रामचन्द्र वर्मा—१०॥=)
२—हिन्दी शब्द सागर कुल ८ भाग हैं जिसमें प्राप्य ५ भागों का मूल्य—५४)
३—शब्दार्थ पारिजात कोश— ६)
४—अग्रवाल हिन्दी शब्द कोश— ५)
५—हिन्दी साहित्य कोश— ५)
६—आधुनिक हिन्दी शब्द कोश— ४॥)
७—सुलभ हिन्दी शब्द कोश— ५)
८—बाल हिन्दी शब्द कोश— ३)
९—हिन्दी रत्न-कोश— ४॥)
१०—शासन शब्द-कोश १५)
११—विधि शब्द-सागर—चार भाग २०)
१२—शासन शब्द-संग्रह— ३)
१३—अर्थ-शास्त्र शब्दावली— १॥।)
१४—राजनीति शब्दावली— २॥)
१५—टुएन्टीयथ सेन्चुरी ५ भाग अंग्रेजी —से हिन्दी =०)
१६—भार्गव डिक्सनरी अंग्रेजी से हिन्दी ६)
१७— ,, ,, हिन्दी से अंग्रेजी =)
१८— ,, ,, छोटा साइज अंग्रेजी से हिन्दी ४)
१९—विविध ज्ञान शब्द-कोश— २)
२०—न्यायालय शब्द-कोश (अंग्रेजी से हिन्दी) २)
२१—उर्दू हिन्दी शब्द-कोश— ॥।)
२२—हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली ज्योतिष विज्ञान ॥=) रसायन शास्त्र ॥।) गणित शास्त्र १) भौतिक विज्ञान १) कृषि शब्दावली ।)
२३—समाचारपत्र शब्द कोश— ॥।)
२४—वाणिज्य शब्द कोश— ॥।)
२५—हिंदी संकेत लिपि वाक्यांश कोश—॥।)

हिन्दी की सभी पुस्तकें मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

अब मनीआर्डर भेजने की आवश्यकता नहीं

१९४९-५० की पूरी फाइल

साहित्य-सन्देश के ११ वें वर्ष—जुलाई १९४९ से जून १९५० तक—की पूरी फाइलें बन कर तैयार हैं। यह फाइल पूरी सिलसिलेवार विषय-सूची के साथ मोटी बसली की जिल्द व आकर्षक कवर के साथ बनाई गई हैं। मूल्य ५), पोस्टेज पृथक।

पूरे वर्ष में जो २-३ अंक समाप्त होगये थे वे बहुत प्रयत्न करके इसने संग्रह किये हैं—फाइलें थोड़ी बनी हैं अतः आर्डर तुरन्त भेजें—विषय-सूची मुफ्त मंगायें। जुलाई मास में मनीआर्डर से पेशगी भेजने पर पोस्टेज मुफ्त की रियायत हमने पिछले अंक में छापी थी वह अब समाप्त हो गई। अतः अब मनीआर्डर से पेशगी रुपया भेजने की आवश्यकता नहीं। आप वी० पी० से मेजने के लिये अपना पत्र भेजदें। यदि फाइल उपलब्ध होगी तो वी० पी० से भेजदी जायगी।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के १२ वें वर्ष के उपलक्ष में हिन्दी साहित्य की अपूर्व भेंट

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन

लेखक—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

अपूर्व भेंट

हमारी नयी भेंट—हिन्दी में ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में यह पुस्तक एक नवीन उद्योग है। —सर्वथा नवीन है।

नयी दिशा—इसमें साहित्यिक अध्ययन की नयी दिशा प्रस्तुत की गयी है। —सर्वथा नयी दिशा।

रोचक—इसकी शैली अत्यन्त रोचक है।

पांडित्यपूर्ण—साथ ही विद्वान लेखक का ज्ञान और पांडित्य इसमें कूट-कूट भरा हुआ है।

प्रशंसित—कितने ही विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इसमें क्या है ?

❀ लोकवार्ता का वैज्ञानिक अध्ययन और इतिहास। हिन्दी में इतना सांगोपांग अध्ययन अभी तक नहीं हुआ। लोकवार्ता का विषय हिन्दी में सर्वथा नवीन है।

❀ लोकवार्ता और लोक-साहित्य—के सम्बन्ध का विवेचन।

❀ लोक साहित्य और लोक-जीवन का सम्बन्ध, समग्र और झाँकी।

ब्रज क्षेत्र के समस्त प्रकार के लोक साहित्य के संग्रह के निदेश के साथ जीवन-संस्कारों से उनका वैज्ञानिक सम्बन्ध।

❀ लोकवार्ता और साहित्यिक-संग्रह और सङ्कलन का प्रणाली विस्तार के साथ दी गयी है।

❀ ब्रज के लोक साहित्य—की प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक विकास—वेद-पूर्व से आज तक।

❀ ब्रज के बहाने समस्त भारतीय लोक वार्ता साहित्य को विश्व लोकवार्ता परम्परा में स्थान।

सम्मतियाँ

हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड पंडित, ब्रजभाषा के मर्मज्ञ, प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, डा० धीरेन्द्रवर्मा कहते हैं:—

"प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी लोकवार्ता-साहित्य के एक रूप—ब्रजभाषा लोक साहित्य—का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन है.....इस नवीन क्षेत्र के आद्योपान्त पूर्ण अध्ययन का प्रथम श्रेय श्री सत्येन्द्रजी को प्राप्त हुआ।

".....इस ग्रन्थ के पढ़ने से ब्रजलोक-साहित्य का पूर्ण आलोचनात्मक परिचय पाठक को प्राप्त हो जाता है।

"आशा है कि सत्येन्द्रजी का यह सुन्दर और उपयोगी प्रयास पथ प्रदर्शक स्वरूप सिद्ध होगा।

"श्री सत्येन्द्रजी का प्रस्तुत अध्ययन भारतीय संस्कृति और साहित्य के इस भावी विशाल मन्दिर की नींव की एक सुदृढ़ ईंट है।"

हिन्दी के आलोचक-प्रखर, दार्शनिक, निबन्धकार और साहित्य-शास्त्री बाबू गुलाबराय का अभिमत—

"लोकसाहित्य का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। इसमें लोकगीत, धार्मिकता, कहानियाँ, लोकोक्तियाँ, मूढ़-भ्रान्त या अन्धविश्वास जादू टौन के मन्त्र-तन्त्र सब कुछ आ जाते हैं। साहित्य के विस्तृत अर्थ में तो यह साहित्य है ही किन्तु संकुचित अर्थ में भी सरस साहित्य इसमें पूर्ण रूप से मिलता है और लोक-साहित्य और पाठत समाज के साहित्य में आदान-प्रदान होता रहता है। लेखक ने इस बात को बड़े कौशल से दिखाया है।....

"इस प्रकार लेखक ने लोक साहित्य का शास्त्र रचने का प्रयत्न किया है।....."

पृष्ठ संख्या ६२२, बड़ा आकार, मूल्य सजिल्द ६)

साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेगा।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०] आगरा—मई, १९४९ [अङ्क ११

विषय-सूची

१—मान क्या—संघर्ष, कि समन्वय—श्री जैनेन्द्र कुमार ३९३
२—हिन्दी के दो महाकाव्य : साकेत सन्त और कृष्णायन—प्रोफेसर मुंशीराम शर्मा, एम० ए० ३९६
३—कला के दो रूप—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, ... ४००
४—बच्चन का जीवन-दर्शन—विश्वम्भर 'मानव' एम० ए० .... ४०३
५—महादेवी का रहस्यवाद—श्री शिवप्रसाद लोहानी 'साहित्यरत्न' ४०७
६—प्रेमचन्दजी के बालक—श्री ताराचरन श्रीवास्तव ४११
७—नाटक क्या है—डा० उदयभानुसिंह एम० ए०, पी-एच० डी० .... ४१४
८—मीरा सगुणोपासिनी—लेखक—एक विदुषी ४१८
९—उपेक्षिता कौन ? शत्रुघ्न—श्री तपेश्वरी तिवारी ४२२
१०—रूपक-रचना रहस्य—श्री अवध बिहारी पाण्डेय: व्याकरणाचार्य, हिन्दी विशारद ४२४
११—साहित्य-परिचय ४२६
१२—संपादकीय— ४३०

क—गुलाबराय एम० ए०
क—महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य रुपया ४)
इस अङ्क का ।=

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

आलोचना के पथ पर—कन्हैयालाल सहल एम० ए० ४)
अच्छी हिन्दी का नमूना—किशोरीदास वाजपेई २॥)
काव्यालोचन के सिद्धान्त—शिवनन्दनप्रसाद २॥)

कविता

जीवन रश्मि—डा० देवराज ३)

उपन्यास

पकौड़ीसाह जिन्दाबाद—विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त १)

राजनीति

राष्ट्रपिता—पं० जवाहरलाल नेहरू २॥)
हमारे स्वराष्ट्र निर्माता—रामनाथ सुमन ४)
पूँजीवाद की पोल—प्रो० रंजन एम० ए० १)

शिक्षा सम्बन्धी

पूर्वी बुनियादी तालीम—श्रीशान्ता नारूलकर १)

विज्ञान

साइन्स की कहानियाँ—उमाशंकर ६)

❀ हिन्दी के कुछ कोश ❀

हिन्दी शब्दसागर

ना० प्र० सभा काशी द्वारा प्रकाशित
इस कोश के ८ भाग में से केवल ५ भाग
इस समय उपलब्ध है। मूल्य ५४)

आदर्श हिन्दी कोश— १२)
विद्यार्थी शब्द कोश— ३)
सुलभ हिन्दी शब्द कोश— ५)
हिन्दी मुहावरा कोश— ३)

मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

विद्यार्थियों के उपयोग की

चाक बत्ती एवं पेस्टिल

स्निग्ध, मजबूत, टिकाऊ एवं चटकीले रंग

भाव निम्न हैं— F. O. R. आगरा

चाक बत्ती : Chalk Sticks सफेद 100×100 दर २८)
" रंगीन " " ५६)
" सफेद 144×100 " ४२)
" रंगीन " " ८४)

पेस्टील : Ashok Pastel १२ रंग लाल डिब्बी " ३०) प्रति ग्रोस
" १२ रंग सादा डिब्बी " २७) "
" ६ " " २१) "
" ६ " " १८) "
Tiger Brand १२ रंग स्लाइडिंग डिब्बी " ३६) "

अपनी आवश्यकताएँ निम्न पते पर लिखें—

बी० एम० सिंघल एण्ड कं०, जमुना रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १०] आगरा—मई, १९४९ [अङ्क ११

मान क्या—संघर्ष, कि समन्वय ?

(श्री जैनेन्द्र कुमार)

कुछ दिन हुए साहित्य-सन्देश में लिखते हुए मैंने आलोचना के मान की बात उठाई थी। मेरी समझ से वही मान साहित्य के भी होंगे। साहित्य एक और आलोचना दूसरी वस्तु है, क्या ऐसा मानना होगा? अन्तर तो है, पर शायद प्रकृतिगत वह नहीं है। साहित्य में स्फूर्ति विशेष चाहिए, तो आलोचना में किञ्चित कम से भी काम चल जाता हो। वह कदाचित् गति की अपेक्षा स्थिति के अधिक निकट हो। वहाँ बुद्धि को और बुद्धि के हिसाब को अधिक अवकाश हो, और विहरनशील चेतना की उतनी माँग न हो। फिर भी आलोचना श्रजन-शील न होगी ऐसा तो नहीं ठहराया जा सकता।

छोड़िए, ये बातें कभी मेरे लिये अपनी थीं, और मैं उनका था। आज तो लगता है मैं उस सबसे बाहर आ पड़ा हूँ। साहित्य में, आवारा की तरह घुमा किया हूँ, यह मुझे याद है, पर और भी अच्छी तरह याद है कि वहाँ मुझे बसेरा नहीं मिला था। पैर टेक कर साँस ले पाऊँ ऐसी वहाँ कोई धरती मिली है, यह मुझे पता नहीं चला। मतवादों की ऐसी भीड़ रही है और इतना कोलाहल कि उनमें से किसी स्वर या किसी वाद में मन लगाने की सुविधा नहीं हो पाई!

साहित्य से बाहर हो भटका उसके बाद का भी अपना हिसाब मेरे पास नहीं। अगर पाता कि पाँव के नीचे धरती आगई है, तो आपके खत पर झट लिख डालता कि 'साहित्य-सन्देश' में कुछ भी लिखने से अब मेरा छुटकारा है, पीठ की तरफ मुझे नहीं देखना है। हम्सलें (आलडस) महाशय जाने कहाँ लिख गये हैं "Life is lived forward and the right backward"। यह वाक्य पढ़ने के साथ ऐसा मन में बैठ गया है जैसे हम्सले से कम वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा अपना न हो। चाहता रहा हूँ कि पीछे न सोचूं, आगे का होकर बस जोता चलूं। पर जीवन की भी गति तीर की सी है ही नहीं। समस्त जीवन, सरसूप है। सिकुड़ कर बढ़ना होता है, और बढ़ कर और बढ़ने के लिये फिर कुछ सिकुड़ना चाहिए। यानी आगे जाना पीछे सोचने के बिना न होगा। इस तरह देखता हूँ कि आपके 'साहित्य-सन्देश' के लिये पीछे हट कर, स्फुट विचारों के रूप में ही सही, मैं कुछ फिर लिखने को तैयार बना हूँ।

आलोचना के मान की बात उठाई तो जान पड़ा था कि वह बहुतों की बात है। उस बारे में कई और लेख लिखे गये थे, और वह विषय कुछ काल चर्चा का और ध्यान का बना रहा था। मेरे लिए वह विषय व्यवहारिक आवश्यकता का था। निरा मानसिक न था। चर्चा हो और उद्वेलन हो, इतने भर से क्यों इति मान ली गई? प्रश्न काम का होने से चर्चा को आगे बढ़ाये जाना और उसमें से परिणाम निकालना था। काम न सधे तब तक आप उस प्रश्न को बराबर पीटते ही जावें, यह मैं चाहूँगा। इसलिए 'साहित्य-सन्देश' के कालमों में फिर उस प्रश्न को खोलने की सुविधा के बतौर यह पंक्तियाँ भेंट कर रहा हूँ।

प्रश्न की अनिवार्यता पहले से बढ़ गई है। उस बाद से हम आप परिचित हैं जो प्रगति के नाम पर चला था। सहारा जिस शब्द का लें, 'वाद अन्त में आग्रह होता है। कट्टरता में उपजता, और कट्टरता उपजाता है। सहज नहीं, कर्म शृंखलाबद्ध उसे इष्ट होता है। वह सम्प्रदायिकता मजबूत करता है उससे तू-तू मैं मैं शुरू होती है, जो कलह में और युद्ध में निष्पन्न होती है। एक युद्ध और दूसरे युद्ध के बीज बो जाता है। ऐसे वह दुष्ट-चक्र तीव्र और दृढ़ होता है, जो हमको परस्पर के द्वेष में जकड़े रखता है।

प्रश्न है कि साहित्य के लिये, फलतः उसकी आलोचना के लिये, मान के तौर पर, सङ्घर्ष जरूर होगा कि समन्वय? जिस मूल श्रद्धा को लेकर साहित्य को चलना है, वह युद्ध है, कि शान्ति? साहित्य में हम ललकार चाहेंगे कि स्वागत? यह बहुत बड़ा प्रश्न है और हर एक को अपने आगे लिये इससे निपट लेना होगा। शायद यह प्रश्न साहित्य का ही नहीं, राजनीति का भी है; बल्कि साहित्य बनाम राजनीति का है।

राजनीति कर्म की और राज की नीति होने की वजह से समग्र को पक्षों में, अखंड का खंडों में, बँटा हुए देखे, और समाधान को परस्पर की हार-जीत की भाषा से सोचे तो समझ में आ सकता है। कारण, उसका तल वह है। उसको काम काज के और संख्यागत अनेकता के बीच रहना होगा। उसका वही जिम्मा है। यद्यपि राजनीति में भी उससे ऊँची कल्पना न होगी, तो वह विधायक न हो सकेगी।

लेकिन स्वयं नीति का ही विचार उस तल पर रहकर नहीं चल सकता। यदि पक्ष ही है। और यदि एक कीमत पर दूसरे को चुन लेना ही उपाय है, तो ऐसे समग्रता नहीं साधी जा सकती। समग्र जीवन को यदि साधना है तो मूल मान द्वैत नहीं ऐक्य ही हो सकता है। कम से कम साहित्य जिसे कोई पक्ष रखना नहीं है, और किसी अमुक को गिराना नहीं है, इसके सिवा किसी दूसरे मूल्य को नहीं अपना सकता।

इस स्थापना में से हमें सहज ही कुछ सूत्र हाथ लग जाते हैं यथा:—

१—साहित्य रचना में मताग्रह को स्थान न होगा। आग्रह जितना है, या जितना तीव्र है उतनी रचना निकृष्ट है। एकमत के आग्रह में दूसरे मत का अनादर है। यह एक विकृत वृत्ति है। यह असांस्कृतिक है। फलतः साहित्य से विपरीत है।

२—विरोध और विग्रह के सहारे प्रभाव उत्पन्न करना साहित्य के लिये अनिष्टकर है। यह प्रकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ जितना उभरा हो वहाँ उतना ही हल्कापन है !

३:—घृणा प्रति-स्पर्धा और विद्वेष की शक्ति, क्योंकि अन्त में वह चेतन्य को खाती है, जिस रचना से उद्भुत हो वहाँ रचना में उतना ही विकार मानना चाहिए।

४—जगत्-कर्म सब चैतन्य से सिद्ध और संपन्न होते हैं। कर्म-सिद्धि में साहित्य सीधा आसक्त नहीं हो सकता। ऐसे कर्म जड़ता फलित होगी। साहित्य मूल चेतना के अवरोधों और विकारों को हटाता और प्रवाह को मुक्त करता है। इस तरह वह चेतना का परिष्कार करता, उसे जागृत और विकसित करता है। इस विधि उसका सब प्रकार की कर्म-सिद्धियों में अनायास योग होता है। जो सीधा कर्म सिद्धि की ओर जाता है, चाहे फिर वह देश का स्वराज्य ही क्यों न हो, उसका अत्यन्त सामयिक मूल्य है। शायद वह साहित्य ही नहीं है।

५—कर्म-जगत के व्यक्तियों को ऊँचे चढ़ाने या नीचे गिराने की चेष्ट जहाँ है वहाँ समदर्शिता या उसकी श्रद्धा, नहीं है। साहित्य समदर्शी होगा। अर्थात् कुछ व्यक्तियों पर, किन्ही दूसरे व्यक्तियों का आतंक चढ़ाना साहित्यिक रचनाकार को इष्ट नहीं हो सकता अन्तर-व्यथा में सब एक से निरीह हैं। इसलिए साहित्य में बड़ा वह दीखेगा जो खुशी के साथ छोटा है।

सूत्रों की संख्या और बढ़ाई जा सकती है, पर उससे लाभ नहीं। रियलिज्म के नाम पर एक रोमानटिक वृत्ति चल पड़ी है। नाना व्यक्तियों और कर्मों के बीच वह वैज्ञानिक समकक्षता देखने से डरती है और भावुक भेद-भाव में रस लेती है। कोई कैसे मानें कि स्टालिन सिर्फ नाम की वजह से आदमी से कुछ और है, या डालमियाँ सिर्फ मिल-मालिक कहलाने की वजह से इन्सान से कुछ अन्य हैं। उनके भेद को पकड़ने के लिये एक को देव और दूसरे को दानव बताकर जो दृष्टि चलना चाहती है, उसे अवैज्ञानिक और अयथार्थ न कहें तो क्या कहा जावेगा। अवश्य ही उसमें अधैर्य और उतावलापन है।

राजनीति के क्षेत्र में आवेशों से खूब काम लिया जाता है। उसमें हराना-गिराना जो लक्ष्य रहता है। जय पराजय ही लक्ष्य हो तब आयुध कोई ओछा नहीं रह जाता। ऐसे आदमी, उलटे गर्व-भाव में, पशुता पर उतर आता है और इसी धरती पर नरक रच उठता है। यह तो आये दिन की बात है। साहित्य में वह आवेश हठात् पहुँच कर उछल कूद मचाआवें इसमें तो अचरज नहीं है। संगठित दलबद्ध अहन्ताओं पर मर्यादा कोई डाले तो कैसे ? लेकिन उस उत्पात को प्रतिष्ठा प्राप्त हो, गंभीर स्वीकृति उसे मिलने लगी, फिर तो सब कुछ गया ही मान लेना होगा।*

— —

[* श्री जैनेन्द्र ने पहले भी आलोचना के मान के ऊपर साहित्य-चर्चा आरम्भ की थी। अब उन्होंने पुराने विषय को नवीनता के साथ उठाया है। हम इस विषय पर विचार-विनमय का स्वागत करेंगे। —सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के दो महाकाव्य : साकेत सन्त और कृष्णायन

(प्रोफेसर मुंशीराम शर्मा, एम० ए०)

महापुरुष इतिहास के निर्माता होते हैं। उनकी जीवन कहानी इतिहास के एक युग की कहानी बन जाती है। आर्य जाति में अनेक महापुरुष हुए हैं; पर जो स्थान उनमें राम और कृष्ण का है वह अन्य किसी का नहीं। रामायण युग और महाभारत युग इन्हीं दोनों की जीवनगाथा से अनुप्राणित हैं। पुण्य-श्लोक राम की जीवनगाथा आदि कवि वाल्मीकि के कण्ठ से निस्सृत होकर जिस प्रकार अनेक कवियों के काव्य का विषय बनी, उसी प्रकार महाप्राण योगीराज कृष्ण का चरित्र भी महामुनि व्यास की लेखनी से चित्रित होकर अनेक गायकों के गले का मणिरत्नहार बनता रहा। प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी में भी इन महापुरुषों की चरितावली को लेकर अनेक काव्यों की रचना हुई। तुलसी और सूर इन्हीं का चरित गाकर अमर हो गये। इस युग में भी पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' काव्य के द्वारा भगवान कृष्ण के उस पुनीत प्राचीन चरित्र को पुनः हमारे सामने प्रस्तुत किया है और पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने रामकथा के आधार स्तम्भ, साकेत के सन्त, निर्मल चरित्र भरत की यशोगाथा 'साकेतसन्त' में हमें फिर से सुनाई है।

कृष्णायन के लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपने चरितनायक के जीवन का अध्ययन करके कुछ उचित परिवर्तन किये हैं। इनसे पौराणिकता का परिहार होता है तथा आधुनिक युग के अनुकूल बुद्धिवाद की सन्तुष्टि। परम्परा के अनुसार, जयद्रथवध के प्रसङ्ग में भगवान कृष्ण ने अपनी वैष्णवी शक्ति द्वारा असमय में ही सूर्यास्त का दृश्य प्रगट किया था और जब जयद्रथ सूर्यास्त के भ्रम में पड़कर अर्जुन की चिता के निकट पहुँचा तो अकस्मात् आकाश में सूर्य-बिम्ब के दर्शन होने लगे। परिणामतः अर्जुन के धनुष से बाण छूटा और जयद्रथ शर-विद्ध होकर धराशायी हो गया। इस प्रकार छल के द्वारा किसी प्रकार अर्जुन के प्राण बचाये जा सके और जयद्रथ-बध सम्पन्न हो सका। कृष्णायनकार ने छल के इस प्रसङ्ग को अनुचित समझकर योद्धाओं के रण कौशल की अपूर्व अवतारणा द्वारा जयद्रथ वध भी सम्पन्न कराया है और अर्जुन के गौरव की रक्षा भी इसी प्रकार के कुछ परिवर्तन काव्य के अन्य स्थलों में भी किये गये हैं।

कृष्णायन महापुरुष के चरित्र को पूर्ण उत्कर्ष से दिखाने के साथ ही साथ काव्य के सुन्दर स्थलों को भी प्रस्तुत करता है। ऊँचे से ऊँचे कवियों ने रसानुभूति जाग्रत करने में जिन शैलियों को अपनाया है, उन सबको इस कवि ने अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा से निखार कर हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। अनेक रस और भाव पारस्परिक सामञ्जस्य के साथ हमारे हृदय में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पन्दन उत्पन्न कर प्रगट होते और विलीन होते रहते हैं। किस रस का किस रस के साथ विरोध है तथा किस रस की किस रस के साथ मैत्री है, इसका इस सुकवि ने सदैव ध्यान रखा है। उग्र रसों की अवतारणा करने के पश्चात् कवि हमारे हृदय के क्षोभ को कुछ कोमल भावों की अभिव्यक्ति द्वारा दूर करता है। युद्ध के भयानक दृश्यों के पश्चात् कवि ने आकर्षक प्राकृतिक दृश्य अथवा कुछ करुण एवं शान्त भाव के दृश्य सदैव उपस्थित किये हैं जिनसे हमारे विक्षुब्ध हृदय को विश्राम प्राप्त होता है। वीभत्स और भयानक दृश्यों के पश्चात् भी कवि ने इसी परिपाटी से हमें सान्त्वना दी है। जयद्रथ-वध के पश्चात् रात्रि में जो थोड़ा सा विराम मिला उसमें नवोदित चन्द्रोदय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कवि कहता है:—

तजि प्राची दिशि कन्दरा,
केसर किरण पसारि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगटेउ इन्दु मृगेन्द्र जनु,
वारण तिमिर विदारि ॥
दर्शित प्रथम व्योम अरुणाई।
जनु बधु रोहिणि अधर ललाई ॥
उदित पाण्डु द्युति पुनि मनहारी।
कुल कामिनि कपोल अनुहारी ॥
क्रमशः प्रकटित सित कर रूपा।
विशद नवल वधु हास स्वरूपा ॥
शोभित स्रवत सुधा निष्पन्दा।
सिहरी निखिल प्रकृति सानन्दा ॥

कथागत पात्रों के हृदय की अनुभूति उनकी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा पाठकों को होती रहती है। कवि ने इन चेष्टाओं, इन अनुभावों को सजीव रूप में काव्य में उपस्थित करके अपने चरित्रों को साकारता तथा काव्य की अनुभूति को गम्भीरता प्रदान की है।

अलङ्कारों में कवि ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है। कई स्थलों पर ऐसी सूक्तियाँ लिखी हैं जो रामचरितमानस का स्मरण दिला देती हैं। जैसे—

शृङ्ग अनार्य ललाट न जामा।
आर्यभाल नहिं विधु अभिरामा ॥
प्रिय न काहि पूजा सन्माना।
को न मुग्ध सुनि निज गुण गाना ॥
प्रिय स्वतन्त्रता क्लेश जेहि,
तेहि पै वारहुँ प्राण।
प्रिय दासत्व विभूति जेहि,
सुतहु सो गरल समान ॥

कृष्णायन के लिये कवि के सम्मुख रामचरितमानस का आदर्श था 'मानस' के समान ही कृष्णायन में सात काण्ड हैं; दोहे, चौपाई और सोरठा नाम के छन्द हैं; ब्रज अवधी मिश्रित भाषा है; लम्बे लम्बे रूपक हैं; वनस्थली और पार्वत्य प्रदेश के मनोहारी चित्र हैं और कथानक के क्रम विन्यास में भक्तिभाव का अपूर्व केन्द्र विन्दु है।

कवि ने समय की आवश्यकता को सदा अपने सामने रखा है। वह वर्ण व्यवस्था की प्राचीनता को मानते हुए भी उसकी-उस जड़ता को घृणा की दृष्टि से देखता है जिसके कारण सारे देश पर विपत्ति पड़ने पर भी जातियाँ एकत्व का अनुभव नहीं कर पातीं। कवि का तो सिद्धान्त यह है:—

परहि विपति जब देश पै,
सकल भेद बिसराय।
चारि वर्ण, योगी यतिहु,
आयुध लेंहि उठाय ॥

कवि मानता है कि सच्चा धर्म वह है जो लोक कल्याण करे। जिस धर्म के द्वारा लोक का कल्याण नहीं होता वह अधर्म है। वह कहता है:—

सिरजे जन तन राज्य हित,
विधि आयुध, धनु, बाण।
मनो राज्य हित हम लहे,
श्रुति साहित्य पुराण ॥

कवि के हृदय में भारत की अखण्डता तथा स्वतन्त्रता अटल रूप से विराज रही है। देश का स्वरूप कितनी भावनापूर्ण पंक्तियों में कवि उपस्थित करता है:—

मुकट मनोहर हिम-गिरि शोभत।
आनन सप्त सिन्धु मन मोहत ॥
मध्य देश जनु हृदय विशाला।
कटि तट मनहुँ विंध्य गिरि माला ॥

कॉंग्रेस का भक्त होने के साथ ही लेखक अपनी संस्कृति का भी अटल पुजारी है, अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान में उसकी अगाध श्रद्धा है। उसका विश्वास है कि यदि इस ज्ञान को नवीन रूप में विश्व के समक्ष उपस्थित किया जाय तो वह उसकी वर्तमान गुत्थियों को सुलझाने में सर्वथा समर्थ होगा। पाश्चात्य मनीषियों ने इन गुत्थियों को अपने ढंग पर सुलझाने का यत्न किया है, पर वे सुलझने के स्थान पर और भी अधिक उलझती चली जाती हैं। "उदधि पार के नित नव वादा" प्रतिदिन नवीन पीड़ा लेकर उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित होते हैं और वसुधा के अंचल को लहू लुहान करके एक अभिनव घातक विपत्तिवाद को उपस्थित कर जाते हैं। इस सम्बन्ध में कवि भारतीय ऋषियों के ज्ञान को आहूत करता हुआ कहता है:—

करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना।
भयेउ न आजहुँ सो निष्प्राणा॥
बीज रूप सब निज उर धारी।
माँगति कर्मभूमि नब वारी॥

आर्य संस्कृति की विशेषता कवि ने इन पंक्तियों में प्रगट की है:—

बुद्धि भावना सन्तुलन,
आर्य धर्म आधार।
नष्ट भावना आज प्रभु,
शेष बुद्धि व्यभिचार॥
करुणा आर्य धर्म आधारा।
मानव सम पशु सँग व्यवहारा॥

× × ×

अब हम दूसरे महाकाव्य पर आते हैं। यह है साकेत सन्त। कविवर पं० बलदेवप्रसाद मिश्र एम० ए० डी० लिट० ने महाकाव्य के प्राचीन आदर्शों के अनुकूल इस ग्रन्थ की रचना की है। इसका नायक धीरोदात्त है, राजकुल से सम्बन्ध रखनेवाला है और प्रजा के लिए आदर्श है। काव्य चतुर्दश सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक सर्ग नवीन छन्द से प्रारम्भ होता है। बीच-बीच में पर्वत, सरिता, ऋतु कानन आदि का मनोरम चित्रण हुआ है। १४ वें सर्ग में अष्टयामों की चर्या गीतों में वर्णित हुई है।

'साकेत सन्त' सेवाग्राम के सन्त स्वर्गीय महात्मा गांधी को समर्पित किया गया है। महात्माजी भाषा के जिस रूप को राष्ट्र में प्रचलित करना चाहते थे, उसी का समर्थन, कुछ सीमाओं के अन्तर्गत, इस ग्रन्थ में हुआ। अरबी और फारसी के अनेक शब्दों को तत्सम रूप में ही ग्रहण करने में कवि ने संकोच नहीं किया है। उर्दू के ढंग पर छन्दों और तुकों का भी प्रयोग किया गया है। साकेत सन्त काव्य को साधारण जन समुदाय के समझने योग्य बनाने का पर्याप्त प्रयत्न किया गया है। साकेत सन्त की भाषा का अनुमान इन पंक्तियों से हो जायगा:—

इस एक शब्द में हजारों रस रीतियाँ हैं।
मैंने दो वर ले लिये भूप से खासे।
किस मुख से मांगूँ क्षमा, सफाई क्या दूँ?

भाषा ही नहीं, महात्माजी के मानव जीवन सम्बन्धी आदर्श को भी कवि इन शब्दों में घोषित करता है:—

करुणा का बल अतुलित है,
क्षत्रियता जिस पर वारी।

अथवा

सहो काँटे कि यह उर फूल होवे।
सहो यह दुख कि विधि अनुकूल होवे॥

'साकेत सन्त' के कथानक में दो स्थानों पर नवीनता है। प्रायः सब कवि चित्रकूट में भरत के ससैन्य आगमन पर लक्ष्मण के क्रोध का वर्णन करते हैं। यह क्रोध तभी शान्त होता है जब भरत आकर राम के चरणों में लोटने लगते हैं। 'साकेत सन्त' में भरत का डेरा रात्रि आ जाने पर चित्रकूट के समीप ही लग जाता है। प्रातः वेला में भरत अपने डेरे से और भक्त के हृदय की बात जानने वाले राम अपनी कुटी से एक दूसरे की ओर चल पड़ते हैं और बीच ही में दोनों का मिलाप हो जाता है। इस प्रकार 'साकेतसन्त' का रचयिता लक्ष्मण के क्रोध-प्रदर्शन को एकदम बचा जाता है। दूसरी नवीनता चित्रकूट सभा के आयोजन में है। अन्य कवियों ने भरत और राम का संवाद इसी सभा में कराया है; पर 'साकेत सन्त' में राम और भरत प्रकृतिक दृश्यों की गोद में भ्रमण करने चले जाते हैं। वहीं राम भरत को अपना यह उद्देश्य बताते हैं कि दक्षिण-पथ को अनार्थ प्रभाव से बचाकर आर्य संस्कृति की ओर लाने के लिये मैं वन में आया हूँ। भरत भी राम के इस आदर्श को आदेश मान कर शिरोधार्य करते हैं।

'साकेत-सन्त' के कवि को सच्चा हृदय प्राप्त हुआ है। अपनी अनुभूति पर कल्पना का पुट चढ़ाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने साकेत सन्त को मनोहारी महाकाव्य का रूप दे दिया है। आधुनिक युग के जटिल प्रश्नों की ध्वनि भी इस ग्रन्थ में यत्र तत्र सुनाई पड़ती है। यथा—

क्षुद्रों की बलिवेदी पर
पनपी है सदा महत्ता।
निर्धन कुटियों को ढा कर
विकसी महलों की सत्ता॥

तथा

शासक है सच्चा तापस,
जग रक्षा तप का फल है।
वह शक्ति शक्ति ही कैसी,
दुर्बल बलि जिसका बल है॥

साम्यवाद को रामराज्य से मिलाते हुए कवि ने घोषणा की है:—

अभय हों सभी, शक्त हों सभी,
न कोई कहीं दुखी हों लोग।
राज्य से खुले रहें सब ओर,
अशक्तों की रक्षा के योग॥
योग्यता भर सब ही श्रम करें
और आवश्यकता भर प्राप्ति।
राज्य का हो यह ही आदर्श,
राज्य ही की हो पूर्ण समाप्ति॥

साकेत सन्त में गम्भीर से गम्भीर भाव व्यञ्जना सरल से सरल भाषा में अंकित हुई है, सम्पूर्ण साकेत अपने सन्त के साथ चित्रकूट जा रहा है। उस समय का कैसा सजीव चित्र कवि ने अंकित किया है:—

ऊषा चली सूर्य कुल गौरव की चाह भरी,
निशा चली मानों रामचन्द्र के मनाने को।
सेन ओज सानी नेह देह सी चली थी आज,
देह सी चली थी आज प्राण फेर लाने को॥

कवि में हृदय को स्पर्श करने की ही नहीं, उसे झकझोर देने की भी अद्भुत शक्ति है। भरत के भावों का स्थान स्थान पर अनुभव करके हृदय गद्गद् हो उठता है। केकय देश से लौटने पर, राम वनगमन का समाचार सुनते ही, भरत के हृदय की जो दशा हुई, उसका मर्मस्पर्शी चित्र खींचता हुआ कवि कहता है—

झंझा से काँपे, धधक उठे दावा से।
क्षणभर में रुक कर अचल हुए प्रोवा से॥
मस्तक पर सौ सौ गिरीं बिजलियाँ आकर।
गिर पड़े भूमि पर भरत सुचेत गँवाकर॥

कैकेयी का चरित्र 'साकेत' में द्रवित होकर जब से पवित्र बना है, तब से हिन्दी कवियों का मानस उस हृदय-द्रव से सिक्त होता आया है। साकेत सन्त में भी कवि ने कैकेयी के इस पवित्र स्वरूप की इस प्रकार अभिव्यंजना की है:—

अपनी ऊष्मा में आप जली जाती थी।
स्थिर थी, पर फिर भी बही चली जाती थी॥

हिन्दी काव्य में उदित हुई यह दिशा हमारे लिये आशा की अभिनव सन्देश-वाहिका है जिसको प्राप्त कर भारतमाता कैकेयी के स्वर में कह सकती है:—

"मैं जो कुछ हूँ खो चुकी, पुनः वह पाऊँ"।

साकेत सन्त का रचयिता परिस्थितियों के अनुकूल भाव और चेष्टाओं के चित्रण करने में कुशल है। हमारी मानसिक कर्दम को मिटा कर हृदय को प्रोज्वल रस-धार से अभिसिंचित करने वाला 'साकेत-सन्त' सभी दृष्टियों से हिन्दी का एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। इन दोनों महाकाव्यों को देखकर हम पूर्ण आशा और विश्वास के साथ कह सकते हैं कि हिन्दी बड़ी तीव्रगति से उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है। व्रज की उपेक्षा होने पर भी प्राचीन परिपाटी के महाकाव्य आजतक लिखे जाते हैं।

इन दोनों ग्रन्थों में भारत के दो आदर्श महापुरुषों के चरित्र अंकित किये गये हैं। भारत अपने राम, भरत और कृष्ण को भूल नहीं सकता। नवीन आदर्श यदि इन महापुरुषों के साथ सम्बद्ध होकर आवेंगे तो उनको प्रतिष्ठा के लिये लोगों के हृदय में समुचित स्थान होगा। इन दोनों सत्कवियों ने यही चेष्टा की है तथा वे अपनी चेष्टा और उद्देश्य में सफल हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला के दो रूप

(श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त,)

वर्ग समाज में कला के दो रूप हो जाते हैं। एक कला तो शासक वर्ग की कला होती है, परिष्कृत और प्रौढ़, क्योंकि इस वर्ग के पास संस्कृति और शिक्षा के सभी साधन होते हैं और प्राचीन परम्परा का उत्तराधिकार होता है। असंख्य शासित जनता शिक्षा, संस्कृति आदि से अलग रहते हैं, इसलिए उनकी कला में अभिजात वर्ग की बारीकियाँ और नफ़ासत नहीं आ सकतीं, किन्तु उनकी संस्कृति की अपनी धारा अवश्य ही धरती के नीचे-नीचे बहा करती है। इस धारा को लोक-संस्कृति हम कहते हैं, और इसमें अपने अनन्य गुण होते हैं। सभी देशों और जातियों में जनता की अपनी कला होती है, उनके गीत, नृत्य, चित्रकला, नाट्य-कला आदि, जिनके पीछे भी एक लम्बी परम्परा और कहानी है। यह कला जनता के भावों को, उसके दुःख सुख को, उसके सौन्दर्य-प्रेम को व्यक्त करती है। इस कला के रूप से भी अभिजात वर्ग के कलाकार बहुत कुछ सीख सकते हैं। इस कला में अभिव्यक्ति की सरलता और अनुभूति की एक सचाई रहती है, जो ह्रासकालीन उच्च वर्गों की कला के लिए दुर्लभ और दुष्प्राप्य है।

अपने देश में हम जनता की कला का बहुत विकासित रूप सन्त कवियों की रचनाओं में देखते हैं; लगभग उसी युग में दर्बारों में पली अभिजात वर्ग की कला का रीतिकालीन रूप भी हम देखते हैं। सन्त कवियों की कला के पीछे मूल रूप से अभिशप्त और त्रस्त जनता के उत्पीड़न की कथा और इस जीवन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया है। यही इस कला की महानता का रहस्य है।

हम देखेंगे कि कला का कोई शाश्वत, चिर-अपरिवर्त्तित रूप नहीं होता। अनेक युगों, जातियों और वर्गों में इसके अनेक रूप होते हैं, जो सतत परिवर्तनशील हैं। आदिम काल में मनुष्य अपने सौन्दर्य-बोध से अपनी गुफा की दीवार सजाता था, जिन जानवरों का वह शिकार खेलता था, उनके चित्र बनाता था, प्रकृति के देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गीत गाता था, नृत्य में अपनी जीवन की अनुभूति प्रगट करता था, अनेक रंग बिरंगे धागों से जीवन का निरूपण करता था। इस आदिम समाज में वर्ग-भेद न थे और इस कला में भी अविच्छिन्न एकता थी। पूरा समाज इस कला में भाग लेता था।

आदिम समाज के अन्त होने पर वर्ग-समाज का उत्थान होता है, जब कला और संस्कृति मूलतः शासक वर्ग की सम्पत्ति बन जाती है'। इस कला का अभूतपूर्व विकास शासक वर्ग करता है, लेकिन इस कला में शासक-वर्ग की भावनाएँ और अनुभूति ही अधिकतर रहती है। वर्ग-कला को इतिहास के कई काल-खण्डों में हम बाँट सकते हैं कृषि युग की कला, सामन्ती युग की कला और पूँजीवादी युग की कला। वर्ग-कला के चिर-स्मारक पिरामिड, यूनान की मूर्ति-कला, भारत का काव्य और नाट्य, साहित्य, प्राचीन मन्दिर और गिरजे, ताजमहल, शेक्सपियर, गेटे टॉलस्टॉय- आदि हैं। समाजवादी कला एक बार फिर पूरे समाज की कला होती है, जबकि वर्ग-संस्कृति की गङ्गा शोणितों की भूगर्भ में दबी सरस्वती जैसी समान कला से मिलती है।

वर्ग-कला का विकास सदा ही एक समान नहीं होता। इसमें उत्थान और पतन, प्रगति और ह्रास के क्षण होते हैं। जब पुराने युग का अस्त और नए का उदय होता है, तो कला भी इन दो रूपों में प्रगट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। कला का एक रूप प्राचीन के साथ जुड़ा होता है और उसमें ह्रास के सब लक्षण प्रगट होते हैं; दूसरा रूप नवीन के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है और प्रगति का पथ अपनाता है।

हिन्दी साहित्य के हर युग में प्राचीन और नवीन का यह संघर्ष हम देखते हैं। वीर-काव्य और भक्ति-काव्य में, भक्ति-काव्य और दर्बारी काव्य में, और अन्त में दर्बारी काव्य और खड़ी बोली के साहित्य में। खड़ी बोली का साहित्य पूँजीवादी युग का साहित्य है। अपने उत्थान काल में इस साहित्य को रीतिकालीन परम्पराओं के विरुद्ध भीषण संघर्ष करना पड़ा। नए साहित्य को पुराने आचार्यों के कोप का भाजन बनना पड़ा। अन्त में पन्त ने "वीणा" की भूमिका लिख कर इस वाग्युद्ध को समाप्त किया। आज जब पूँजीवादी समाज के गर्भ में नवीन जन्म लेने के लिए छटपटा रहा है, हम उसी विरोध की पुनरावृत्ति देखते हैं। विरोधी बदल गए हैं। कल के विद्रोही कवि आज प्रतिगामी होकर नए साहित्य को राजनीति और प्रचार कहकर उसका तिरस्कार करते हैं। लेकिन प्रगति के पथ का पथिक तरुण दल आगे बढ़ता ही जाता है।

इस सम्बन्ध में स्टालिन के शब्द स्मरणीय हैं। आप द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद की विवेचना करते हुए लिखते हैं:—

"कई तरह के सामाजिक विचार और सिद्धान्त होते हैं। एक ओर पुराने विचार और सिद्धान्त होते हैं जिनके दिन बीत चुके हैं और जो समाज की रूढ़िवद्ध शक्तियों के हितों की सेवा करते हैं। उनकी अहमियत यही है कि वे समाज के विकास को, उसकी प्रगति को रोकते हैं। दूसरी ओर नए और आगे बढ़े हुए विचार और सिद्धान्त होते हैं, जो समाज की प्रगतिशील शक्तियों के हितों की सेवा करते हैं। उनकी अहमियत यह है कि वे समाज के विकास, उसकी प्रगति में सहायक होते हैं; और उनका महत्व उतना ही ज्यादा होता है, जितनी सचाई से वे समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को प्रतिबिम्बित करते हैं।"

"नए सामाजिक विचार और सिद्धान्त तभी उठते हैं, जब समाज के भौतिक जीवन का विकास समाज के सामने नए कर्त्तव्य रखता है। लेकिन एक बार उठने के बाद वे एक बड़ी भारी शक्ति बन जाते हैं, जो समाज के भौतिक जीवन के विकास द्वारा प्रस्तुत किए नए कर्तव्यों को पूरा करने में मदद करते हैं, ऐसी शक्ति जो समाज की प्रगति में सहायक होती है।"

आज कल और संस्कृति में प्राचीन और नवीन का यही संघर्ष हम देख रहे हैं, मृत विचारों और सिद्धान्तों का जीवन-भार से आकुल नवीन विचारों और सिद्धान्तों से संघर्ष। आज कला और संस्कृति दो दलों में बँट गई है। अपने देश में और विदेशों में भी इन दो दलों को हम साफ देखते हैं।

एक ओर तो शासक वर्ग की व्यवसायी और विलासी कला है, जो जनता के लिए अफीम के समान है। यह कला निराशा और पराजय की भावनाओं को आश्रय देती है; यह व्यक्तिवाद और अहंवाद को पराकाष्ठा तक पहुँचा देती है, जहाँ कला दुर्बोध और अज्ञेय हो जाती है। रहस्यवाद, प्रतीकवाद, प्रयोगवाद, अस्तित्ववाद आदि नाना रूप वह धारण करती है। साम्प्रदायिकता, राष्ट्रवाद आदि संकीर्ण मनोवृत्तियों को वह बढ़ावा देती है। हॉलीवुड के फिल्म, जासूसी कहानियाँ, अश्लील यौन-कला आदि संस्कृति के कुछ रूप हैं। यह अभिजात वर्ग की कला में संकट के लक्षण हैं। अपने मृत्यु-काल के समीप पहुँच कर आज का शासक-वर्ग जीवन को सारहीन और निरर्थक पाता है। साथ ही क्रान्ति की उभरती शक्तियों को वह दबा कर रखने की कोशिश भी करता है। इसीलिए पश्चिम के देशों में चार्ली, चैपलिन, पाबलो, नेरूदा और हावर्ड फास्ट दमन के शिकार होते हैं, और भारत में यशपाल, अली सरदार जाफरी, कृष्णचन्द्र और नागार्जुन। इन प्रगतिशील कलाकारों की कला समाज की नई क्रान्तिकारी शक्ति की परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चायक है, इसीलिए पुराने शासक इसके विरुद्ध दमन का चक्र चलाते हैं।

हिन्दी साहित्य में भी हम यह प्रतिगामी धाराएँ बढ़े-चढ़े रूप में देखते हैं। वर्ग-संघर्ष जब तीव्रतम होता है, तो बीच में खड़े रहना दूभर हो जाता है। शासक वर्ग अपनी पूरी शक्ति ढुलमुल बुद्धिजीवी वर्ग को अपने पीछे घसीटने में लगा देता है। आर्थिक कठिनाइयों के शिकार अनेक लेखक अपनी कलम बेचने पर मजबूर होते हैं, लेकिन यहीं उनकी कला का अन्त भी होता है। इसके विपरीत अनेक कलाकार समाज की प्रगतिशील ताकतों से भी सम्बन्ध जोड़ते हैं, और यह उनकी कला में नए प्राण-बल की सूचना होती है।

आज के कुछ प्रमुख पत्र पानी पी-पी कर प्रगतिशील कला को कोसते हैं, किन्तु इतिहास ने इनके लिए जारशाही और चियाँगशाही के साथ स्थान सुरक्षित रख छोड़ा है। राजनीति और प्रचार से परहेज करने वाले इस साहित्य को किसान और मजदूर की राजनीति और कला से परहेज है, शोषक वर्ग के प्रचार और राजनीति से नहीं।

एक जमाने में जार्ज पंचम् की जय बोलना राजनीति नहीं समझा जाता था, महात्मा गान्धी की जय बोलना राजनीति था। शोषक वर्ग की राजनीति कला होती है, शोषित वर्ग की कला राजनीति होती है। आप किसी नेता की प्रशस्ति लिखिए, अभिनन्दन ग्रन्थ का संकलन कीजिए, अपने काव्य में साम्प्रदायिकता का प्रचार कीजिए, सत्ताधारियों के गुण गाइए, व्यवसाय के लिए चलताऊ चीज गान्धीजी के नाम पर लिखिए, तो यह राजनीति और प्रचार नहीं है, किन्तु सर्वहारा की जय का नारा बुलन्द करने वाली कला राजनीति और प्रचार है?

कला के दोनों रूपों की आवृत्ति हम हिन्दी साहित्य में देख रहे हैं। एक ओर अभिजात वर्ग की कला है, जो रहस्यवाद, निराशावाद, व्यक्तिवाद और नाशवाद का प्रचार करती है, जो शासक वर्ग की क्रीत दासी है और सर्वहारा के विरुद्ध हथियार बन गई है, किन्तु जो ह्रास के गढ़े में गिर चुकी है और कोई बनाव-सिंगार जिसके प्राण का सम्बल नहीं बन सकता।

दूसरी ओर जनता की कला है, जो दो धाराओं का संगम है, लोक-कला की भूगर्भ में दबी धारा का उच्च वर्गीय कला से फूटी प्रगतिशील धारा का संगम। जनता की कला का एक पक्ष है किसान-मजदूर कवियों के लोक-गीत और उनके लोक-नृत्य आदि जिन्हें प्रकाश में लाने का श्रेय जन-आन्दोलनों को और प्रगतिशील सांस्कृतिक संस्थाओं को है। जनता के साथ बुद्धिजीवियों का भी एक बड़ा जत्था अपने वर्ग से टूट कर आता है। इन्हें अभिजात वर्ग की संस्कृति के ह्रास की सूचना मिल चुकी है, और वे समाज की प्रगतिशील शक्तियों के साथ अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ते हैं।

प्राचीन संस्कृति फासिज्म की ओर जा रही है, उसका सन्देश मरण है। नवीन संस्कृति जनवाद और विश्व-शान्ति की ओर उन्मुख है, और उसका सन्देश जीवन और प्रगति है। पुरानी संस्कृति आज बहुसंख्यक जनता के सुख और समृद्धि की परिचायक नहीं है; वह उत्पीड़न और शोषण का पर्याय बन गई है। नई संस्कृति ही आज असंख्य जनता के असीम विकास का द्वार खोल सकती है, अतएव यह अनिवार्य है कि कला की प्रगतिशील धारा बढ़े और बलवती हो। पुरातन की थाली में जो कुछ संचय करने योग्य है, उसे लेकर वह आगे बढ़ेगी। एक बार फिर वर्ग हीन समाज में प्रौढ़तम कला और जनता का मिलन होगा; तब कला प्रागैतिहासिक युग समाप्त होगा और ऐतिहासिक युग शुरू होगा। वर्ग-हीन समाज की उस विराट संस्कृति की आज कुछ कल्पना ही हम कर सकते हैं, उसकी रूपरेखा तो आगे चल कर ही स्पष्ट हो सकेगी। क्या वह रूपरेखा होगी, इसका आभास हम सोवियत-जन संस्कृति में पाते हैं, जहाँ सम्पूर्ण जनता कला और संस्कृति के निर्माण में भाग लेती है, और उसका उपभोग करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन का जीवन-दर्शन

(विश्वम्भर 'मानव' एम० ए०)

'बच्चन' यौवन, सौंदर्य और प्रेम के कवि हैं। यौवन आता है। यौवन अपने साथ सौंदर्य और मस्ती लाता है। सौंदर्य और मस्ती आकर्षित करते हैं। प्रेम उत्पन्न होता है। इस प्रेम के गीत कवि गाता है। प्रेम के जीवन में आघात लगता है। सारा दृश्य ही बदल जाता है। प्रतीक्षा, निराशा, सूनेपन, एकाकीपन के दिन आते हैं। कवि उनका भी सम्मान करता है। पर फिर एक दिन रात की कालिमा को चीर कर उषा मुस्कराती है। बच्चन के जीवन में फिर एक बार सुख, श्री, स्वर्ण की वर्षा होती है। यह है अब तक उनके सारे जीवन का लेखा। जीवन में कवि ने मुस्कानें भी देखी हैं और आँसू भी। संक्षेप में बच्चन हर्ष-विषाद, आँसुओं और मुस्कानों के कवि हैं।

'बच्चन' के प्रेम के जीवन में भीतर से जितना सामंजस्य प्रतीत होता है, बाहर से उतना नहीं। छोटे-छोटे आकर्षणों की बात छोड़ दें तो 'बच्चन' ने अपनी कृतियों में तीन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से तीन बार स्पष्टतः प्रेम स्वीकार किया है (१) प्रारम्भिक रचनाओं में (२) निशा निमन्त्रण में (३) सतरंजिनी में। प्रारम्भिक रचनाओं में कवि ने नाम नहीं खोला। 'निशा-निमन्त्रण' और 'सतरंगिनी' में खोल दिया है। प्रारम्भिक रचनाओं में कवि ने प्रेम-प्रसंगों में 'सुषमा' शब्द का अधिक प्रयोग किया है। अतः उस अपरिचिता को हम 'सुषमा' का काल्पनिक नाम दिए देते हैं। प्रश्न यह है कि सुषमा, श्यामा और सुश्री तेजी में से कवि ने सच्चा प्रेम किसे किया है? क्या सभी को किया है? और यदि किया है तो क्या यह सम्भव है कि कवि एक के उपरान्त दूसरे और दूसरे के उपरांत तीसरे को पकड़े? क्या मन की ऐसी अस्थिर स्थिति प्रेम की संज्ञा की अधिकारिणी है?

अपने प्रारंभिक दिनों में कवि सुषमा के पीछे पागल रहा है। यह बात प्रारम्भिक रचनाओं से सिद्ध है। उसके चरणों पर वह सब कुछ न्यौछावर करने को प्रस्तुत है और उसने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया है। कवि प्रेम को ईश्वर से भी बड़ा बतलाता है और सुषमा से कहता है कि वह उसका 'धर्म' है वही 'कर्म' वही 'जीवन' और भगवान। आगे चलकर जब सुषमा एक दिन पूछती है। सबसे अधिक प्रेम तुम किसे करते हो? तो कवि उत्तर देता है 'तुम्हें।' बात बढ़ती है और एक दिन इस प्रेम की चर्चा चारों ओर फैल जाती है। इससे कवि को बहुत दुःख होता है और अन्त में 'कलङ्क' शीर्षक रचना में वह अपनी प्रेमिका को यहाँ तक समझाता है—

इससे आओ कर विषपान—
आपस में भुजहार पिन्हाएँ
फिर चिर चुम्बन में मिल जाएँ
कर दें जीवन-द्वैत-दीपों का साथ-साथ निर्वाण।

प्रेम के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की दूसरी स्थिति 'निशा-निमंत्रण' में आती है। 'निशा-निमंत्रण' निस्संदेह 'बच्चन' की सर्वश्रेष्ठ रचना है। भाव और भावाभिव्यक्ति दोनों ही यहाँ ऐसे समान तल पर मिले हैं कि उनकी मैत्री बेजोड़ सिद्ध हुई है। सुषमा को खोने और श्यामा को खोने के बीच की कवि-जीवन की कहानी का पता उसकी रचनाओं से नहीं लगता। इस बीच किस मानसिक संघर्ष का सामना उसने किया इसका कोई चिह्न प्राप्त नहीं। इतना ही पता चलता है कि श्यामा की मृत्यु ने एक बार उसके जीवन के तन्तुओं को झकझोर दिया। 'निशा-निमन्त्रण' में क्षोभ और कातरता से उसने कहा—

आज मुझसे दूर दुनिया!
भावनाओं से विनिर्मित
कल्पनाओं से सुसज्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर चुकी मेरे हृदय का स्वप्न चकनाचूर दुनिया!
"बात पिछली भूल जाओ
दूसरी नगरी बसाओ"
प्रेमियों के प्रति रही है, हाय, कितनी क्रूर दुनिया!
वह समझ मुझको न पाती
और मेरा दिल जलाती
है चिता की राख कर में, माँगती सिंदूर दुनिया!
आज मुझसे दूर दुनिया!

प्रणय का तीसरा तूफान 'सतरंगिनी' में आया। इस अनुरागिनी की चर्चा 'बच्चन' ने अत्यन्त चकित भाव से की है। जीवन में प्रवेश करते ही उसने घोर अंधकार को चीर कर आलोक विकीर्ण किया, दुःख की पुरानी कहानी की स्मृति मिटा दी, और नवीन जीवन-दान दिया। इस प्राणी की सुन्दरता, मधुरता और सहृदयता का उल्लेख कवि ने बड़े मनोयोग से किया है। सबसे बड़ी बात जो उसने उसमें देखी है वह है उसकी दुर्निवार शक्ति—

ले प्रलय की नींद सोया
जिन दृगों में था अँधेरा
आज उनमें ज्योति बन कर
ला रही हो तुम सवेरा
सृष्टि की पहली उषा की
यदि नहीं मुसिकान तुम हो।
कौन तुम हो?
तुम किसी बुझती चिता की
जो लुकाठी खींच लाती
हो, उसी से ब्याह मंडप
के तले दीपक जलातीं
मृत्यु पर फिर फिर विजय की
यदि नहीं दृढ़ आन तुम हो,
कौन तुम हो?
यह इशारे हैं कि जिन पर
काल ने भी चाल छोड़ी
लौट में आया अगर तो
कौन सी सौगन्ध तोड़ी
सुन जिसे रुकना असंभव
यदि नहीं आह्वान तुम हो।
कौन तुम हो?

'कौन सी सौगन्ध तोड़ी' पंक्ति पढ़ कर कुछ लोगों को मन करता है—पर रहने दीजिए। अपनी कृतियों में 'बच्चन' ने अपने व्यवहार के समर्थन में तर्क दिए हैं। सुनने वाले पर वे अपना जादू फेंकते हैं; पर गम्भीरता से विचार करने पर वे बड़े दुर्बल प्रतीत होते हैं। स्पष्ट है कि प्रेम में वे किसी की स्मृति को लेकर जीवित नहीं रह सकते। 'सतरंगिनी' में उन्होंने स्पष्ट कहा है—

जो मादकता के मारे हैं
वह मधु लूटा ही करते हैं,
वह कच्चा पीने वाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर।

अर्थात् व्यक्ति का कोई मूल्य बच्चन की दृष्टि में नहीं, सुख का है।

बच्चन का जीवन दर्शन—बच्चन का समस्त जीवन-दर्शन भौतिकवाद पर आधारित है। बचपन से ही इस व्यक्ति में नास्तिकता के परमाणु रहे हैं। 'प्रारंभिक रचनाओं' में ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में कहीं तो वह सन्देह की स्थिति में रहा है और कहीं स्पष्ट शब्दों में उसने उसकी सत्ता में अविश्वास प्रगट किया है। इस अविश्वास का कारण है व्यक्तिगत जीवन और सांसारिक जीवन का उसके मनोनुकूल न होना। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उसने कहा, यह स्वतः उत्पन्न है; इसका कोई स्वामी नहीं है। अतः वह हुआ प्रकृतिवादी, उसका दर्शन हुआ भोगवादी, जीवन का आदर्श हुआ—आज की चिंता, आज का सुखपूर्वक भोग।

नास्तिकता और भोगवाद की भावनाओं के बीजों के अंकुरित होने पर कवि की दृष्टि 'उमर खय्याम' पर पड़ी और उसमें उसने अपनी मान्यताओं की पुष्टि देखी। बड़ी तत्परता से उसने रुबाइयात का अनुवाद किया और उसके उपरान्त मधु सम्बन्धी कई रचनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी। इन रचनाओं में उसने संदेश दिया मस्ती का, सिद्धान्त रहा जीवन का आनंद, कारण रही सृष्टि के इस प्रसार में क्षणभंगुरता की वृत्ति। जब सब कुछ नाशवान है तब जो क्षण मिलें उनका भोग न करना भूल है। अपनी भावना की उमंग में उसने यहाँ तक कहा—

मैं देख चुका जा मस्जिद में
झुक झुक मोमिन पढ़ते नमाज़
पर अपनी इस मधुशाला में
पीता दीवानों का समाज
वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म
कह भी दूँ तो दूँ क्या सबूत
कब कञ्चन मस्जिद पर बरसा
कब मदिरालय पर गिरी गाज़
यह चिर अनादि से प्रश्न उठा
मैं आज करूँगा क्या निर्णय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन मेरा परिचय।

—मधुबाला

और इस प्रकार उसने सत्—असत्, पाप-पुण्य, पूजा-पाठ और मदिरापान के अन्तर को मिटा दिया!

इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उसका विरोध हुआ। इस विरोध का उत्तर बच्चन ने 'मधु-कलश' की रचनाओं में दिया। बच्चन के चिंतन में जो विश्वास का स्वर है, उसमें अविश्वास का स्वर बराबर प्रतिध्वनित है। अपनी बात का समर्थन बच्चनजी बड़े आवेश और आत्मविश्वास के साथ करते पाये जाते हैं, पर उनमें हीनता की भावना बराबर पाई जाती है। वे ईश्वर भावना को भ्रम बताते, हुए नियति से घबराते हैं, संसार को ललकारते साथ ही साथ उससे डरते भी जाते हैं। आक्षेप होते ही बच्चन जी कोई ऐसी आड़ लेते हैं जिसमें किसी प्रकार की असाधारणता का पुट हो। बच्चन की रचनाओं पर जब वासनात्मक होने का आक्षेप किया गया तो उन्होंने 'कवि की वासना' शीर्षक रचना में उत्तर दिया "कि ऐ जगत तू यह जान ले कि मैं देह धर्मों से बँधा हुआ नहीं हूँ।" इसकी पुष्टि में उन्होंने अपना सम्बन्ध उषा, संध्या, निशा, वायु, वसुंधरा, बिजली और न जाने किस किस से बतलाया, लेकिन झुंझलाहट में अन्तर की दुर्बलता व्यक्त हो ही गई—

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक?
वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी?

उस रचना की ये सबसे दुर्बल पंक्तियाँ हैं। इतनी देर से जिस बात की स्थापना कवि करता आ रहा था उसे उसने स्वयं ही मिटा दिया।

'हलाहल' में जिस सत्य के दर्शन कवि ने किए हैं उसमें कोई नवीनता नहीं है। प्रारम्भिक रचनाओं से लेकर हलाहल तक समस्याओं की चर्चा तो बच्चन के काव्य में है, लेकिन उनका समाधान क्या है, इस पर गहन चिंतन कवि नहीं कर पाया। जीवन निराशाओं से परिपूर्ण है, दुःख में कोई अपना साथ नहीं देता, सब कुछ परिवर्तनशील है। काल के क्रूर करों से कुछ नहीं बचता, ये ऐसे चिरन्तन सत्य हैं जिन पर सभी की दृष्टि पड़ती है। इन्हें दुहराने से क्या लाभ है? बच्चन की विकलता या तो वह पुराने संस्कारों को मिटाने में व्यस्त रही है या पुरुष की प्रशंसा करने में। परन्तु यह जिज्ञासाओं और प्रश्नों का उत्तर नहीं—

(१) प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर।
(२) यह महान दृश्य है।
चल रहा मनुष्य है॥
अश्रु—स्वेद रक्त से लथपथ, लथपथ, लथपथ।
अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ॥

कला—कला की दृष्टि से 'बच्चन' की प्रारम्भिक रचनाओं में बड़ा प्रयत्न पाया जाता है। इस प्रयत्न का बहुत ही सुन्दर विकास बच्चन के काव्य में आगे चलकर हुआ। गीति-काव्य के लेखकों में जो सरलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुबोधता उनकी रचनाओं में पाई जाती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'सतरंगिनी' की 'नागिन' रचना में प्रतीकों का विधान भी उनकी रचनाओं में एक दम निर्दोष तो नहीं, पर हिन्दी के बहुत से कवियों की अपेक्षा वह अधिक सरस सरल और सफल है। अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग 'बच्चन' ने खुल कर किया है। हिन्दी के छन्दों के अतिरिक्त उर्दू के बहुत से छन्दों को अपनाकर बच्चन ने सुन्दर लयों की सृष्टि की है। उनके गीतों में ध्वनि का सौन्दर्य तो नहीं पर एक प्रकार की गूँज की मार्दवता है जो हृदय में देर तक मँडराती है। इस गूँज की सृष्टि वे अनुरणन और अनुप्रास द्वारा तथा कुछ वाक्यांशों या वाक्यों को दुहरा करते हैं। यही उनकी कला का रहस्य है एकाध उदाहरण लीजिए—

(१) सुन! कलकल छलछल मधुघट से
गिरती प्यालों में हाला,
सुन! रुनझुन रुनझुन चल वितरण
करती मधु साकी बाला!
—मधुशाला

(३) प्रलय की रात में सोचे
प्रलय की बात क्या कोई,
मगर पड़ प्रेम बन्धन में
समझ किसने नहीं खोई।
किसी के पंथ में पलकें
बिछाए कौन बैठा है,
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
—सतरंगिनी

(४) हुई गुलाल मेघमाल अस्त जब
विहंग वृन्द में छिपे समस्त जब,
हुआ अशब्द और स्तब्ध जब गगन,
मुखर चरण ध्वनित हुए झनन, झनन।
—मिलन-यामिनी

मूल्यांकन—

इस युग के कवियों में 'बच्चन' का स्थान कहाँ है, यह अभी नहीं कहा जा सकता। उनके काव्य का विषय अभी बहुत सीमित सा है। व्यक्तिगत प्रेम की अभिव्यक्ति मात्र है वह। उनके प्रेम का रूप किस सीमा तक ग्राह्य है, इस सम्बन्ध में भी चुप रहना ही ठीक है। वास्तव में व्यक्तिगत जीवन के उस पक्ष को इस सीमा तक उन्हें काव्य में घसीटना नहीं था। उन्होंने जो कुछ भी कभी लिखा है उसे प्रकाशित देखने का बहुत भारी मोह भी उनके हृदय में है। उनके लगभग पाँच सौ से ऊपर गीतों में से एक भी गीत प्राकृतिक सौन्दर्य को लेकर नहीं है। इस प्रकार व्यापक जीवन तो दूर, प्रकृति भी स्वतन्त्र रूप से अभी तक उनके काव्य से बहिष्कृत रही है।

'बच्चन' अभी उपाध्यायजी या मैथिलीशरणजी के समान बाह्य जगत के सुख दुःख के साथ अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाये। निराला की सी शक्ति, 'प्रसाद' जैसी प्रौढ़ता, महादेवी जैसी गम्भीरता और पन्त जैसी कल्पना की कोमलता ने भी उन्हें अभी स्पर्श नहीं किया। उदाहरण के लिए जीवन की जिस क्षणभंगुरता, काल की जिस क्रूरता और सृष्टि के जिस परिवर्तन—चक्र की भावना ने 'बच्चन' की भावना को विचलित किया उसका कितना सुन्दर विश्लेषण और समाधान कामायनी में है। पर वैसे विवेचन के लिए वैसी प्रतिभा भी चाहिए। इन्हीं विषयों पर अपने आत्म-विश्वास के बल पर महादेवीजी ने जो पावन अध्यात्मिक शान्ति-धारा प्रवाहित की उससे भी यह व्यक्ति वञ्चित है। इन सभी दृष्टियों से 'बच्चन' की गणना अभी द्वितीय श्रेणी के कलाकारों में होगी। 'बच्चन' अभी तक घोर व्यक्तिवादी, अविश्वासी और भौतिकवादी रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी का रहस्यवाद

(श्री शिवप्रसाद लोहानी 'साहित्यरत्न')

अद्वैतवाद चिन्तन का विषय है रहस्यवाद भावना का। जिस प्रकार ज्ञानी जिज्ञासु को अपने विचार पर लाना चाहता है उसी प्रकार भावुक अपनी भावना पर। अद्वैतवादी भी परोक्ष सत्ता की अनुभूति करता है रहस्यवादी भी। दोनों का साध्य एक है साधन भिन्न। एक मस्तिष्क का विषय है दूसरा हृदय का। निश्चय ही दोनों जल, थल, आकाश आदि में सर्वत्र एक ही सत्ता का विस्तार देखता है किन्तु रहस्यवादी उस अनन्त शक्ति का वर्णन ऐसी सरस और हृदयग्राहिणी भाषा में करता है कि उसकी अनन्तता और व्यापकता सहज ही अनुभव गम्य हो जाती है।

रहस्यवादी भावना अमर भावना है देश-काल से परे। सृष्टि के आदि से लेकर आजतक इस भावना के सम्यक् व्यक्तीकरण का प्रयास किया जा रहा है और सम्भवतः किया जाता रहेगा भी। संसार की सभी उन्नत भाषाओं में इस भावना के प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा की जाती रही है। हिन्दी इससे वञ्चित नहीं। हिन्दी का जन्म ही ऐसे आध्यात्म-प्रवण देश में हुआ है कि वह इस पावन भावना की व्यञ्जना से अछूती नहीं रह सकती। यों तो कबीर के पहले भी यदा कदा रहस्यमयी भावनाएँ मिलती हैं किन्तु कबीर की रचनाओं में इसका स्पष्ट स्वरूप मिलता है। कबीर ने शुष्क अद्वैतवाद को सरस रहस्यवाद में वर्णन करने का सफल प्रयास किया। प्रतीकात्मक शैली में रहस्यमयी भावनाओं का वर्णन अच्छा है—

काहे रे नलिनी तू कुम्हलानी
तेरे ही नाल सरोवर पानी
जल में उत्पति जल में वास
फिर नलिनी तू काहे उदास

जायसी के काव्य में रहस्यमयी भावनाएँ अधिक हृदयस्पर्शी हैं। 'पद्मावत' में अनेक ऐसे स्थल हैं जो अन्तस्पर्शी एवं रमणीय हैं और जिनसे पद्मावत (आराध्य) की सार्वभौमता परिलक्षित होती है—

वेनी घोर भार जौं बारा
सरग पताल होइ अँधियारा

प्रेम दीवानी मीरा, के काव्य में रहस्यवाद का सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है। मीरा के उद्गार हृदय के अन्तरतम प्रदेश से निकले हैं जिनमें कृत्रिमता का लेश भी नहीं है। पर भावनाएँ छलकती-सी ज्ञात होती हैं। भाषा के ऊपर पूर्ण अधिकार नहीं रहने के कारण भाषारूपी प्याली से भाव-जल इधर उधर बहते-से लगते हैं, आकुल वेदना को शब्दों में समुचित रूप से नहीं बांध पाये हैं।

अन्य भक्त कवियों के काव्य में रहस्यवाद का पुष्ट स्वरूप नहीं मिलता है, यदि कहीं मिलता भी है तो उनकी संख्या इतनी थोड़ी है कि उन्हीं के बल पर उन्हें रहस्यवादियों की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता तलसी के काव्य में अपेक्षाकृत रहस्यवाद का कुछ पुष्ट स्वरूप मिलता है, 'केशव कहि न जाय का कहिये' आदि पदों में।

इसके पास हिन्दी-साहित्य में इसकी धारा क्षीण दिखाई पड़ती है। रीतिकालीन कवियों में कुछ ने रहस्यात्मक अनुभूति की वर्णना करने की चेष्टा की है किन्त वे महत्त्वहीन हैं, उनके कोई मूल्य नहीं। इधर प्रसाद, महादेवी, पन्त, निराला प्रभृति कवियों के काव्य में रहस्यात्मक अनुभूतियाँ देखने को मिलती हैं। इन सबों में महादेवी का स्थान रहस्यवादी कवियों में सर्व प्रथम है, क्योंकि इनके काव्य में रहस्यवाद का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रांजल और पुष्ट स्वरूप मिलता है। इनके काव्य में नारी-हृदय की सारी कोमलता, अनुभूति का विस्तृत साम्राज्य, प्रकृति-तादात्म्यता, भाव-गांभीर्य, पर्यवेक्षण का विराट कोष मिलन की उदात्त अभिलाषा परिव्याप्त है। इन्हीं कारणों से इनकी रहस्यमयी आध्यात्मिक भावनाएँ अपेक्षाकृत अधिक सप्राण और नैसर्गिक हैं। अनन्त और व्यापक शक्ति की खोज में ये पागल हैं। एक इच्छा एक भावना और एक निष्ठा, वह केवल मिलने की लय होने की। क्योंकि—

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक प्रकाश
गला कर मृत पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण

शतएव—

सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान।

श्री रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद की उद्देश्य-प्राप्ति में तीन परिस्थितियों की कल्पना की है। महादेवीजी के काव्य में इन तीनों स्थितियों का प्रस्फुटन हुआ है। प्रथम परिस्थिति वह है जब कवि उस अनन्त शक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़ने को अग्रसर होता है। ईश्वर की अनन्त शक्ति पर उसे आश्चर्य होता है। उसके विभिन्न स्वरूपों को वह जानना चाहता है कि इसका सूत्रधार कौन है—

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात।
मिटाता रञ्जता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार?

उसकी जिज्ञासा इतनी वेगवती एवं तीव्र हो जाती है कि उसके रहस्य को जानने के लिए वह आकुल हो जाता है—

शून्य काल के पुलिनों पर,
आकर चुपके से मौन।
इसे बहा जाता लहरों में,
वह रहस्यमय कौन?

प्रकृति के प्रत्येक अवयव को वह जानने की जिज्ञासा करता है। भावनाएँ इतनी सजग हो जाती हैं कि बिना जाने चैन नहीं।

तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींदके उच्छ्वास-सा, वह कौन है?

इस पहिली परिस्थिति की पूर्णावस्था में शङ्काएँ मिटने लगती हैं। और अनन्त-शक्ति से वह प्रभावित दीख पड़ता है—

सजनि कौन तम में परिचित-सा,
सुधि सा, छाया सा, आता?
सूने में सस्मित चितवन से,
जीवन-दीप जला जाता!

द्वितीय अवस्था में आत्मा परमात्मा से प्रेम करने लग जाती है, ससीम असीम के निकट पहुँच जाता है। आश्चर्य चकित होने की स्थिति समाप्त हो जाती है और वह चुपचाप अपने आराध्य को प्यार करने लग जाता है। भावना में उन्माद और मादकता छा जाती है। वह कौन? यह स्थिति समाप्त हो जाती है। स्वयं कवि उसके अभाव में सारे संसार को सारहीन समझने लगता है—

तुझ बिन हो जाता जीवन का
सारा काव्य असार
उस बिन मेरा दुःख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी

इतना ही नहीं वह असीम में मिल जाने का अभिलाषी हो जाता है; वह समझने लगता है कि सर्वत्र ही उसका साम्राज्य है। महादेवी कहती हैं—

तू जीवन में छिपा वेणु में,
ज्यों ज्वाला में वास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ में मिल जाना ही है,
जीवन का चरम विकास।

लिए—

इस आशा से मैं उसमें,
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल।
कभी तुम्हारे सस्मित अधरों
को छूते वे होंगे अनमोल॥

सदा एक चाह, आराध्य से मिलने की अभि-
ा। मिलन-अभाव की पीड़ा से संत्रस्त और
लिए की उत्कट चाह से मत्त—

एक करुण अभाव में,
चिर तृप्तिका संसार सञ्चित।
एक लघु क्षण दे रहा,
निर्वाण के वरदान शत-शत॥

तृतीय स्थिति रहस्यवाद की चरम सीमा है। इस
स्थिति में साधक और साध्य की भिन्नता नहीं रह
ती, दोनों में एकीकरण हो जाता है। आत्मा अपने
ी परमात्मा के गुणों का आरोपन कर लेती है।
पृथकता विनष्ट हो जाता है। महादेवी के कवि
स अवस्था की झाँकी भी ली है। कई स्थल पर
का आभास मिलता है। उस परम सत्य की तदा-
ता में आसीन होकर कवि अपने आराध्य की
नामयी समता का अधिकारी बन जाता है एवं
म के सभी गुण उसमें उद्भासित हो उठते हैं—

फैलते हैं सान्ध्य नभ में,
भाव मेरे ही रँगीले
तिमिर की दीपावली है
रोम मेरे पुलक गीले।

सभी वस्तुओं में एक परमसत्ता का ही आभास
ता है। निजत्व समाप्त हो जाती है—

मधुर मुझको हो गये प्रिय
मधुर प्रिय की भावना ले
हो गई आराध्यमय मैं
विरह की आराधना ले

जो अपने को उर्मि और आराध्य को सागर कहता है वही यह कहने लगता है—

वीणा भी हूँ मैं तुम्हारी
रागिनी भी हूँ।

किन्तु ऐसे पद विरल हैं। आत्म-विस्मृति में विभोर हो निजत्व को लय करने की स्थिति में आते ही कवि का 'स्व अपनो ओर घसीटने लगता है। क्योंकि यदि—

मिलन मन्दिर में उठा दूँ
जो सुमुख से सजल गुंठन

तो—

मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों
तप्त सिक्ता में सलिल कण

और भी—

सजनि मधुर निजत्व दे,
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं

कविवर रत्नाकर ने कहा भी है—

बनि है बिगरि है न वारिधिता वारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद विवश बिचारी की।

जहाँ महादेवीजी का निजत्व महादेवी के साधक को लय होने से रोक कर महादेवीजी का अहित कर रहा है वहाँ साहित्य जगत इससे अत्यधिक लाभा-न्वित भी है, क्योंकि महादेवी का विरह-काव्य अत्यु-त्कृष्ट है, यदि महादेवी के काव्य से विरह का अंश हटा दिया जाय तो उनके काव्याकाश का शशि ही डूब जाय। विरह-वर्णन महादेवीजी के काव्य का महत्वपूर्ण अंश है।

रहस्यवादी भावना अत्यन्त सूक्ष्म एवं अलौकिक है। कबीर ने तो इसे गूँगे का गुड़ कहा है, फिर भी इस अगोचर तथा इन्द्रियातीत भावना को बोधगम्य बनाने के हेतु रहस्यवादी कवियों ने विविध पद्धतियों का आश्रय लिया है। महादेवीजी ने जो शैली अप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायी है वह अपने ढङ्ग का अनूठी है, उसकी सौम्यता और मनोज्ञता मर्मभेदिनी है। उन्होंने प्रतीक-शैली और प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से अपनी भावनाओं को मूर्त रूप देने का सफल प्रयास किया है। 'मैं और तू' शीर्षक कविता में आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का चित्रण प्रकृति के उपकरणों द्वारा बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है—

तुम अनन्त जलराशि उर्म्मि मैं,
चञ्चल सी अवदात।

लौकिक जगत में प्रकृति की विशालता अनुपमेय है। उस विशाल प्रकृति का भी संचालन वही अनन्त शक्ति करती है। उसी की इच्छा से प्रकृति के विभिन्न कार्य संचालित होते हैं—

तेरी महिमा की छाया-छवि
छू होता वारीश अपार
नील गगन पा लेता घन-सा
तम-सा अन्त हीन विस्तार

इतना ही नहीं उसकी प्रसन्नता का एक क्षण भी असंख्य सुमन-वनों का जनक है। उसका भ्रकुटि। सञ्चालन ही भयङ्कर आँधी तूफान उत्पन्न करता है—

सुषमा का कण एक खिलाता
राशि-राशि फूलों के वन
शत शत झंझावात प्रलय
बनता पल में भ्रू-संचालन

सूक्ष्म भावनाओं को प्रतीक-शैली द्वारा प्रत्यक्षीकरण कराने की पद्धति अति प्राचीन है। उपनिषदों तक में इस पद्धति को अपनाया गया है। रहस्यवाद के प्रमुख कवि कबीर ने तो इस प्रतीक शैली द्वारा रूपकों में बड़े बड़े सूक्ष्म विचार रखे हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'कामिहि नारि पियारि जिमि' प्रभृति पदों में इसका अवलम्ब लेकर इस पद्धति को श्रीवृद्धि की है। महादेवीजी ने इस प्रतीक-शैली के रूपकों में प्रकृति के विविध उपकरणों की सहायता से जो सूक्ष्म भावनाओं को मूर्त्त स्वरूप देने का उपक्रम किया है वह बड़ा चित्ताकर्षक है। एक स्थान में अनन्त शक्ति-परमात्मा या ब्रह्म को इन्होंने नर्तकी के रूप में उपस्थित किया है—

रूपसि तेरा नर्तन सुन्दर
आलोक तिमिर सित-असित चीर
सागर गर्जन रुनझुन मंजीर
उड़ता झंझा में अलक-जाल
मेघों में मुखरित किंकिणि-स्वर
रवि-शशि तेरे अवतंस
सीमंत जटित तारक
चपला विभ्रम स्मित
हिमकण बन झरते स्वेद
रूपसी तेरा नर्तन

सम्प्रति महादेवी जी हिन्दी साहित्य के [illegible] का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। पूर्व के रहस्यवादी [illegible] की भाँति भले ही वाह्य विरक्ति से ये रहित हों किन्तु [illegible] गुण के अभाव के कारण रहस्यवाद के प्रति [illegible] कबीर की रचनाएँ सुष्ट नहीं और भाषा [illegible] की प्रणाली में अक्खड़पन ज्ञात होता है वह [illegible] में नहीं। जायसी के रहस्यवाद में यदि हृदय [illegible] भावनाएँ विद्यमान हैं तो वर्ण्य विषय में [illegible] विचारधारा तथा इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य [illegible] वाला है। मीरा के काव्य अवश्य ही रसमय [illegible] मर्मस्पर्शी है; माधकता और तन्मयता भी [illegible] किन्तु मीरा के आराध्य के स्वरूप में कुछ एक [illegible] और संकीर्णता परिलक्षित होती है। यद्यपि [illegible] आत्मा बड़ी दिव्य है। महादेवी के काव्य [illegible] सब कुछ नहीं, इनका आराध्य महान है जिस [illegible] में विशाल प्रकृति भी उसी भाँति व्यस्त है जिस [illegible] महादेवी। हाँ, अभी तक ये 'मधुर निज [illegible] त्यागना नहीं, चाहतीं। विरह, जो वस्तुतः [illegible] साध्य नहीं, माध्यम है आराध्य नहीं, की [illegible] आनन्दानुभूति करती हैं किन्तु एकरूपता [illegible] की जो तन्मयता इनमें है उससे भास [illegible] इनका 'मधुर निजत्व' भी एक दिन साधना [illegible] में वह जायगा बिन्दु सागर में विलीन हो [illegible] 'चिर-मिलन का प्रात' अवश्य ही उदित होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्दजी के बालक

(श्री ताराचरन श्रीवास्तव)

जीवन के आरम्भ काल से ही प्रेमचन्दजी की बालकों की ओर रही है उनकी आरम्भिक जीवन कहानियों में भी बालक आये हैं। घर और शासन समस्याओं के अतिरिक्त उनकी कहानियों में बालकों मनोवृत्ति, परीक्षा अध्ययन, उनके खेलने की रुचि, अस्थिर मति आदि का प्रसङ्गवशात् उल्लेख है। उससे उस वातावरण का जो उनके चारों ओर फैला हुआ है पता चलता है और उसका असर जो बालकों पर पड़ता है वह प्रत्यक्ष हो जाता है। 'पञ्च परमेश्वर' में पञ्चायत की तैयारियाँ होगई हैं, काम आरम्भ होने को है उस समय वहाँ के वातावरण का दृश्य उपस्थित करते हुए कहा है:—

"लड़के इधर उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली गलौज करते और कोई रोते थे।"

इन दो वाक्यों ने बालकों के सम्बन्ध में बहुत कह दिया है। ये बालक खेलने के लिये व्याकुल अवस्था में हैं। किसी प्रकार का भी विशेष समारोह बालकों के लिये विशेष आकर्षण का विषय होता है उसमें भी अपने आस पास के वातावरण का चहल पहल से गति और उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है वे अपने भीतर छिपी जीवनी शक्ति को कैसे रोकें, इस लिये उनकी भाग दौड़ शुरू हो जाती है और यह बालकों में स्वाभाविक ही है, साथ ही रोना। बालक वातावरण भूमिका के चित्रण करने की विविध रेखाओं में से एक रेखा है, विविध रङ्गों में से एक की भाँति आये और ओझल होगये हैं। ये रेखायें और रङ्ग यहाँ आवश्यक थे। लेखक को आवश्यकता ने आकर्षित किया और ये दो पंक्तियाँ उसकी लेखनी से चू पड़ीं। बालकों की सामूहिक और विशेष समारोहिक प्रवृत्ति का ही उल्लेख यहाँ हुआ है।

दूसरी अवस्था की कहानियों में प्रेमचन्द बालक को भी कहानी का पात्र बनाने लगे। 'विमाता' में मुन्नू के द्वारा विमाता के प्रेम का परिचय दिया गया है। बालक की स्नेह संवेदनशीलता, उसकी सहज निष्कर्ष बुद्धि और स्थिति को समझने की प्रवृत्ति का हमें परिचय मिलता है।" माँ मुझे प्यार करती थी वह मुझे छोड़कर स्वर्ग चली गई यह माँ मुझे पहिली माँ से भी अधिक प्रेम करती हैं, कहीं ये भी न छोड़ जायँ"।

उसमें माता का स्नेह और उसकी मृत्यु की भावी आशङ्का अश्रु बन कर उसकी संवेदन शील प्रकृति का परिचय देती है। पर वह औरों के सामने अपने निष्कर्ष को कैसे कहे, यह आँसू अपने वश की बात नहीं, अतः उसे बात बनानी पड़ी "रोता नहीं हूँ, आँखों में धुआँ लग गया है" यहाँ मुन्नू लेखक की टेकनीक का अङ्ग बन कर आया है। मुन्नू का यहाँ परिचय अभिप्राय दूसरा रखता है कहानी का अभिप्राय मुन्नू के बाल सुलभ तर्क कौशल, उसकी संवेदन शीलता, उसकी चतुरता का चित्रण करने के अतिरिक्त 'विमाता' का उज्ज्वल रूप रखने की उसकी लालसा रही है। इसके लिये मुन्नू केवल एक कसौटी है। मुन्नू का इसीलिये यह रूप हमारे समक्ष उपस्थित हुआ जो विमाता के सच्चे प्रेम को समझने के पहिले भ्रम उपस्थित करता है और फिर उस भ्रम का निवारण करता है जिससे प्रेम की उद्दीप्ति हो उठती है।

"बूढ़ी काकी" में बालिका मुन्नू की अपेक्षा कुछ विशेष उभर कर आई है। इस बालिका लाड़िली के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने से पूर्व बूढ़ी काकी के प्रति बालकों की क्रूरता की झलक उन्होंने दिखादी है। "लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है, और फिर जब माता का यह रङ्ग देखते तो बूढ़ी काकी को और भी सताया करते। कोई चुटकी काट कर भागता, कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता" अब आती है बालिका लाड़ली। उसे अपने भाइयों का भय लगता है, बूढ़ी काकी के पास स्थान निरापद है अतः अपने हिस्से की मिठाई चबेना वह बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती उसे बूढ़ी काकी से प्रेम होगया था। माता पिता ने काकी के साथ दुर्व्यवहार किया वह उसे व्यथित कर रहा था। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ नहीं खाईं और रात को चोरी चोरी सबके सो जाने पर वह काकी को खिलाने गई। बालिका में हमें यहाँ पवित्र संकल्प और प्रेम के दर्शन होते हैं उसमें सहानुभूति है। इस छोटे से चित्र द्वारा बालिका के बाहर भीतर का और निजी तथा संस्कारगत रूप लेखक ने उपस्थित कर दिया है।

दूसरी कोटि में 'दो भाई' तथा' दुर्गा का मन्दिर नामक कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें बालक का उल्लेख उत्तर चरित्र से अन्तर करने के लिये दिया गया है, या पिता के मानसिक क्षोभ के कारण के रूप में दिया है····"कलावती दोनों बेटों को जाँघों पर बिठा दूध और रोटी खिलाती थी····दोनों मुँह में कौर लिये, कई पग उछल कूद कर फिर जाँघों पर आ बैठते और अपनी तोतली बोली में·····रोनों में बड़ा स्नेह था"

दूसरी कहानी में "बाबू बज्रनाथ कानून पढ़ने में मग्न थे और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करने में। श्यामा चिल्लाती थी कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता मुन्नू रोता था कि श्यामा ने मेरी मिठाई खाली" पंच परमेश्वर में घर से बाहर कुदान मचाते बालकों के समूह देखे थे, बूढ़ी काकी में घर के बालकों में बालिकाही विशेष उभरी है। इन दोनों में घर के अन्दर क्रीड़ा किलोल करते बालक दिखाई पड़े इन कहानियों में बालक कहानी के आवश्यक नहीं हैं पर वे उसके अलङ्कारिक तत्व हैं!

"मुन्नू" कहानी में मुन्नू कसौटी की आवश्यक था। शङ्खनाद में बालक प्रेरणा का मन्त्र बन कर आया है महातीर्थ में वह मुख्य पात्र और कहानी के अभिप्राय और उसके अन्तर्गामित को प्रोज्वल करने के लिये वह यज्ञाग्नि है; सचाई का उपहार कहानी केवल बालकों के सम्बन्ध रखती है। उसमें सभी पात्र बालक हैं केवल प्रसङ्गवशात् उन बालकों के चित्र को विकसित करने के लिये सहायक यष्टि की भाँ लाये गये हैं। 'शंखनाद' में घर और बालक सम्बन्ध को प्रेमचन्दजी ने स्पष्ट किया और बालकों का मिठाई प्रेम भी दिखा दिया है।

इसमें बालक का 'हठ' भी चित्रित है। बा प्रसिद्ध है मिठाई का लोभ तो बड़ी चीज है, उत्तेजना मिलती है चिढ़ाने और ललचाने बालकों के हृदय जगत में इन दोनों तत्वों का मूल्य है और ये शस्त्र कितने तीखे हैं। चिढ़ बालकों को कितना आनन्द आता है। इस चिढ़ उत्तेजित होकर बालक को अपनी स्थिति का नहीं रहता समझाना फुसलाना कुछ काम नहीं देत साधारण रोना जब काम नहीं देता तो उन्हें अस्त्र को उग्ररूप देना पड़ता है—और यह है पृथ्वी पर लोट लोट कर चीखना। यह उनके रो पराकाष्ठा है इसके बाद या तो विजय या पराज क्रोधोन्माद।

उधर महातीर्थ में बालक मुख्य अंग तो वह दूसरों को तपाने के लिये है वह जैसे अपना खड़ा कर देने के लिये नहीं। बालक दाई क करता है दाई घर से निकाल दी जाती है, उसके लिये रोता है। वह शिशु है, लड़खड़ा चलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये भी छोटे बालक की मनोवस्था के चित्र हैं। और 'सचाई का उपहार' है बालकों का पाठशाला जाने का चित्र। इस कहानी में बालकों की कई मनोवृत्तियाँ स्पष्ट झलकती हैं। किसी भी काम को करने में सभी बालकों को रुचि नहीं होती। उनके घरेलू संस्कार और वर्ग का गर्व भी सहयोग करता है कई कहानियों में बालक साधारण भाग लेता है। 'नेडर' में बालक हैं और वे ही उसे काकी के मरने का सन्देश देते हैं। 'लड़कों ने दौड़कर, उछल कूद-कर, उसकी लकड़ी उसके हाथ से छीनकर, उसका स्वागत किया" गाँव के बालकों की बहुत दिन के बिछुड़े नेडर के प्रति यह असीम आत्मीयता कितनी स्वाभाविक और उष्म है। पर कितनी भावुक कि काकी की मृत्यु की सूचना देने पर जब वह निस्पन्द हो गया और फिर घर की ओर बढ़ा तो—"बालक वृन्द भी उसके पीछे दौड़े, मगर उनकी शरारत और चंचलता भाग गयी थी"

इसके साथ चित्र आता है उस बालिका का जो "दो बैलों की कथा" में सताये हुये बैलों के साथ सहानुभूति रखती है और चुपचाप उन दोनों बैलों को एक एक रोटी खिला जाती है। इस बालिका से यहाँ कथा का क्या चलता है उसकी सहानुभूति से लेखक ने कहानी की कथा को आगे बढ़ाने का कार्य किया है। इस कहानी में 'नेडर' कहानी जैसे भी बालक है, वे समूह के समूह बैलों का स्वागत करने के लिए इकट्ठे हो गये हैं और ताली बजा बजा कर स्वागत कर रहे हैं।

इस प्रकार कहानी की गति के साथ साथ कहानी के मनोवैज्ञानिक तत्व को स्पष्ट करने में और उसे आगे बढ़ाने में भी बालक सहायक पताकास्थानक की भाँति आये हैं। "लांछन" में शारदा का यही कार्य है। शारदा के आधार पर खेल कर ही महतर पति-पत्नी में खाई को बढ़ाता है शारदा को खिलोने देना, उसकी मातम पुर्सी करने आना, केवल कहानी के घटना प्रवाह में ही सहायक नहीं, उसके लिये मनोवैज्ञानिक भूमिका करने में, मनोवैज्ञानिक प्रगति देने में भी सहायक होती है। मनोवैज्ञानिक धरातल ही नहीं, एक भावमय क्षेत्र उत्पन्न करने और कहानी में हृदय स्पर्शिता लाने के लिये भी बालकों ने अपना स्थान बनाया है जैसे 'मृतक भोज' में। यहाँ पर बालकों का सहारा पाकर ही विविध पंचों की आन्तरिक मनोवस्था और क्रूरता की यर्थाथता का रूप सामने आता है। कहीं-कहीं बालक भूमिका के रूप में आकर कहानी की प्रस्तावना तैयार करते हैं जैसे 'सौभाग्य के कीड़े में"।

इन कहानियों के साथ साथ एक कहानी है 'प्रेरणा' एक उत्पात नटखट और उद्दण्ड बालक है अध्यापक के लिये एक समस्या। वही बालक अपने छोटे ममेरे भाई का अभिभावक बना। बालक से उसे प्रेम हो गया उसने अपना आदर्श जीवन बनाना आरम्भ किया और उन्नति कर गया। शासन से नहीं, आदर्श बनकर आदर्श उपस्थित करने की प्रेरणा से उसने अपना और उस बालक का उपकार किया। प्रेरणा मिलने पर मन में एक लगन पैदा हो जाने पर चरित्र को आदर्श बनाया जा सकता है शासन से नहीं। यही दिखाना इसका उद्देश्य है।

और तीन कहानियाँ हैं "राम लीला" "कजाकी" और "ईदगाह" इनका सम्बन्ध स्कूल से नहीं है इनका सम्बन्ध है घर तथा परिस्थिति से।

बालकों की इन कहानियों से हम यह बात पाते हैं कि लेखक ने विविध मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश किया है और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि बालकों का भी चरित्र होता है उनका भी व्यक्तित्व होता है, उनमें भी निजीपन होता है। उनके विचारों और कार्यों का सरल और स्वाभाविक धरातल केवल इस अर्थ में होता है कि जीवन के लिये अमहत्वपूर्ण बातों को वे गहरी नींव नहीं दे सकते।

प्रेमचन्द्र जी की कहानियों से बाल-मनोविज्ञान और बाल जीवन सम्बन्धी जो तथ्य निकलते हैं उनसे बालकों के चरित्र आदर्श बनाने में, उनके लिये महत्व-पूर्ण वातावरण तैयार करने में सहायक हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक क्या है ?

(डा० उदयभानुसिंह एम० ए०, पी-एच० डी०)

यवन-मनीषी अरस्तू के कला-विषयक अनुकरण-सिद्धान्त और भारतीय नाट्यशास्त्र पण्डित धनञ्जय, धनिक आदि के 'अनुकृति', 'अनुकार' आदि शब्दों को लेकर हिन्दी-संसार में गड्डालिका-प्रवाह चल पड़ा—"किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाटक कहते हैं।"

नाटक किस की अवस्था का अनुकरण है ? यदि नाटक में योजित सभी प्राणी अनुकार्य हैं तो गधे का अनुकरण किस प्रकार किया जायगा ? यदि कुछ को ही अनुकार्य माना जाय तो शेष के बहिष्कार की कसौटी क्या होगी ? क्या अवस्था का तात्पर्य सम्पन्नावस्था, विपन्नावस्था, युवावस्था, बाल्यावस्था, रुग्णावस्था आदि से है ? नाटक नट के कार्य का द्योतक है अथवा रचना का ? नाटक अनुकरण क्यों है ? वह पूर्ण अनुकरण है या अपूर्ण ? इन शङ्काओं का समाधान कहाँ है ?

अनुकरणवादियों के अनुसार मूल पात्र (चन्द्रगुप्त अजातशत्रु देवसेना आदि) अनुकार्य हैं और अभिनेता (या अभिनेत्री) अनुकारक। लोक व्यवहार में और भी अनुकारक हैं। न्यायालय में वादपत्र आदि की प्रतिलिपि तैयार करने वाला भी अनुकारक कहा जाता है। परीक्षा भवन में रवीन्द्र की पुस्तक में लिखित उत्तर का अनुकरण करने वाले दिनेश को अनुकारक कहते हैं। कृत्रिम मोती वास्तविक का अनुकरण और उसका कर्ता अनुकारक कहलाता है। धीरनाग ने अपने 'कुन्दमाला' नाटक में भवभूति के 'उत्तररामचरित' का अनुकरण किया है। 'सिद्धार्थ' की काव्यशैली 'प्रियप्रवास' की काव्यशैली का अनुकरण कहलाती है। 'साकेत' में मैथिलीशरण ने अयोध्या में ही राम की कथा का वर्णन करा दिया है। उसी के अनुकरण पर हरिऔध ने वैदेही-वनवास में ही रामचरित की कथा कहलाई है। इस प्रकार धीरनाग, अनूप-शर्मा और हरिऔध अनुकारक कहे जायँगे। मौलवी साहब ने गजराज से कहा—"कहो अलिफ।" उसने अविकल दुहरा दिया—"कहो अलिफ।" यह गजराज भी मौलवी साहब का अनुकारक कहा जाता है। बानर ने मनुष्य को दाढ़ी बनाते देखा उसके चले जाने पर आया और दर्पण के सामने छुरे से दाढ़ी बनाने लगा। वह बानर भी अनुकारक है। कोकिल की बोली का अनुकरण करने वाला मनुष्य भी अनुकारक ही कहलाता है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों में नकल नवीस अनुकारक नहीं, प्रतिलिपिकार है। धरिनाग, अनूपशर्मा और हरिऔध का कर्म अनुकरण नहीं अनुसरण है। गजराज भी अनुकारक नहीं। उसका कर्म भ्रान्त पुनरावृत्ति मात्र है। शूद्रक के 'असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता' के अनुसार "कुपुरुष-सेवा-ज्यों भई संतन मिथ्या दृष्टि" लिखने वाले, केशव अनुकारक नहीं, चोर कहे जायँगे नाटक में अनुकरण के कुछ तत्व अवश्य हैं—इस सत्य को कोई भी विचारशील अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु नाटक को अनुकरण नाम देना न्याय-विरुद्ध है।

अनुकरण में अनुकारक का अनुकार्य से भिन्न होना अनिवार्य है। मनुष्य, वानर, दिनेश, आदि क्रमशः कोकिल, मनुष्य, रवीन्द्र आदि से भिन्न हैं। अन्यथा अनुकरण असम्भव हो जाता। कहा जा सकता है कि अभिनेता अमरनाथ भी तो पात्र चन्द्रगुप्त शिवाजी, दुष्यन्त आदि से भिन्न है। ठीक है। यदि किसी नाटक के पात्र अमरनाथ स्वयं ही अपनी भूमिका ग्रहण करें तो फिर वे किसका अनुकरण करेंगे ?

अनुकारक अनुकार्य का पूर्ण ज्ञानी होता है। अभिनेता अमरनाथ को चन्द्रगुप्त का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। देशकाल की दूरी अनतिक्रम्य है। क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संसार में कोई पूर्णज्ञानी भी हो सकता है ? क्या अभिनेता को अध्ययन अथवा निर्देशक द्वारा पात्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता ? समस्त पदार्थों का ज्ञानी कोई नहीं हो सकता किन्तु लोकदृष्टि में किसी सीमित विषय का हो सकता है। अनुकरण का सम्बन्ध केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से है अतएव अभिनेता नाटक के उन्हीं पात्रों का अनुकरण कर सकता है जिनके कार्य का ज्ञान उसने प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा प्राप्त किया है। ऐतिहासक नाटक में तो यह सर्वथा असम्भव है।

अनुकरण-काल में अनुकारक को अनुकार्य का सम्यक् ज्ञान बना रहता है। नाटक में अभिनेता अमरनाथ को पात्र चन्द्रगुप्त का अखण्ड ज्ञान नहीं रहता। चन्द्रगुप्त उसके सामने नहीं है। यदि कल्पना द्वारा वह उसे अपने मानसिक लोचनों के सामने उपस्थित रखने की चेष्टा करेंगे तो फिर भावाभिव्यक्ति के लिए उन्हें अवकाश ही नहीं मिलेगा। उनका सीमित मन दो कार्य एक साथ नहीं कर सकता। तो क्या वे चन्द्रगुप्त के ज्ञान के बिना ही अभिनय करते हैं ? नहीं। वास्तविक चन्द्रगुप्त उनके चेतन मस्तिष्क में न होकर अर्धचेतन मास्तष्क की भूमिका में रहता है। अनुकरण में अनुकार्य चेतन मस्तिष्क का विषय है। अभिनेता अमरनाथ यह कभी नहीं सोचते कि मैं चन्द्रगुप्त बना हूँ या चन्द्रगुप्त का अनुकरण कर रहा हूँ। दूसरी ओर अनुकारक को यह ध्यान सदैव बना रहता है। अभिनेता अपनी अवास्तविकता को भूलता नहीं अन्यथा यथार्थ आचरण करने लग जाता। इसी प्रकार की विस्मृति के कारण एक बार अभिमन्यु भूमिकाग्राही अभिनेता ने जयद्रथ-भूमिकाग्राही पर तलवार चला दी थी।

अनुकरण केवल बाह्य या शारीरिक ही हो सकता है। अवस्था (स्थायी भाव) का अनुकरण असम्भव है। अनुकारक अनुकार्य की आत्मा में प्रवेश नहीं कर पाता। बानर या स्वानुकारक मनुष्य में दाढ़ी बनाने वाले व्यक्ति या कोकिल की आत्मा का कोई प्रतिविम्ब नहीं है। नाटक में ऐसा नहीं होता। यदि अभिनेता अमरनाथ चन्द्रगुप्त की आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकेंगे तो फिर उनका अभिनय साधारणीकरण उपस्थित करने में असमर्थ रहेगा।

अनुकरण केवल भूत या वर्तमान और वास्तविक का ही हो सकता है, भविष्यत् या अवास्तविक का नहीं। जो कर्म सम्पन्न हो चुका है या हो रहा है वही अनुकरण-साध्य है। श्मश्रुमुंडन, कोकिल-ध्वनि आदि का अस्तित्व था, अतः उनका अनुकरण हो सका। जो दृष्टिगोचर ही नहीं हुआ—जिसका करण ही नहीं हुआ—उसका अनुकरण कैसा ? जो अपने छप्पन योजन के वक्षःस्थल पर सहस्त्रों मानवों का आघात सहकर निर्विकार सो रहा हो—ऐसे कल्पित दानव का अनुकरण नहीं किया जा सकता। यह मनुष्य की शक्ति के परे है।

अनुकरण मूल-कार्य की पुनरावृत्ति है। यदि मूल पात्र ने सरिता-संतरण किया है, किसी के शाप से पक्षी के रूप में परिवर्तित या भस्म हो गया है, आत्म-हत्या या दूसरे का बध किया है तो अनुकरण के नाते अनुकारक को भी वही कर्म करना आवश्यक है। नाटक में ऐसा नहीं होता। और यदि कहीं चूक से अभिनेता वास्तविक का अनुकरण कर बैठता है (किसी पर वस्तुतः तलवार चला देता है) तो संसार उसके अभिनय को कला न कहकर मूर्खता या पागलपन कहने लगता है। क्या अभिनेता अमरनाथ दर्शक को चन्द्रगुप्त का अनुकरण करते हुए प्रतीत नहीं होते ? कदापि नहीं। वे उसे चन्दगुप्त ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण दर्शक की भ्रान्ति है (जो सुखदायक है)।

नाटक-जन्य भ्रांति और अनुकरण-जन्य भ्रांति में स्पष्ट अन्तर है। जब यवनिका के भीतर बैठे हुए अमरनाथ पं० नेहरू की ध्वनि का अनुकरण करते हैं तब हमें भ्रांति हो जाती है कि पं० नेहरू बोल रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यवनिका हट जाने पर अमरनाथ को पहचान कर हम विस्मय-पूर्वक कह उठते हैं—अरे, यह तो अमरनाथ हैं, पं० नेहरू नहीं हैं। विद्यालय के वार्षिकोत्सव के दिन एक कोढ़ी ने मेरे मित्र को छू दिया। उन्हें दुबारा स्नान करना पड़ा। पारितोषिक वितरण के समय कोढ़ी का सफल अनुकरण करने के उपलक्ष में अमरनाथ को प्रथम पुरस्कार मिला। हम सब चकित थे—अरे, वह अमरनाथ थे हमने उन्हें कोढ़ी समझ लिया था! उपर्युक्त उदाहरणों में अमरनाथ अनुकारक और पं० नेहरू तथा कोढ़ी अनुकार्य हैं। अनुकरण सफल एवं सुन्दर है। हम भ्रांतिवश अमरनाथ को ही पं० नेहरू या कोढ़ी मान बैठते हैं। किन्तु अन्त में वास्तविक ज्ञान हो जाने पर हमारी इस भ्रांति का निराकरण हो जाता है।

नाटक को लीजिए। 'चन्द्रगुप्त' नाटक खेला जाने वाला है। अभिनेताओं का नाम प्रकाशित कर दिया गया है। हम जानते हैं कि अमरनाथ ही चन्द्रगुप्त के भूमिका-ग्राही है। सफल अभिनय के समय हम अमरनाथ को सर्वथा भूल जाते हैं और भ्रांतिवश उन्हें ही चन्द्रगुप्त मान बैठते हैं। यदि हम उन्हें चन्द्रगुप्त न मानकर अमरनाथ ही मानने का दुराग्रह करें तो फिर हम न तो नाटक को समझ ही सकेंगे और न उसका रसास्वाद ही कर सकेंगे। क्योंकि नाटक की रसानुभूति चन्द्रगुप्त के साथ तादात्म्य स्थापित करने से ही हो सकती है। अभिनेता अमरनाथ को चन्द्रगुप्त मान लेने की हमारी भ्रांति अन्त तक बनी रही। नाटक समाप्त हो गया। अमरनाथ ने नेपथ्य उतार दिया। नेपथ्यशाला में हम भी उपस्थित थे। वह स्थल कभी नहीं आया—जहाँ हम अनुकरण-विषयक-विस्मय के साथ यह कह दें कि—अरे यह तो अमरनाथ हैं, चन्द्रगुप्त नहीं।

इस प्रकार नाटक-जन्य भ्रांति अनुकरण-जन्य भ्रांति से कई बातों में भिन्न हुई। अनुकरण में भ्रांति के पूर्व हमें अनुकारक का कोई ज्ञान नहीं रहता किन्तु नाटक में हमें अभिनेता का ज्ञान रहता है। ऐतिहासिक, पौराणिक या भावनाटकों में तो हम निश्चय ही यह जानते हैं कि अभिनेता मूल पात्र नहीं है। पात्र का स्वयं अभिनेता बनना अपवाद के अन्तर्गत आएगा। नाटक में अनुकरण की भाँति भ्रांति के निराकरण-सदृश कोई वस्तु नहीं। अनुकरण की भ्रांति पूर्ण किन्तु नाटक की भ्रांति अपूर्ण है। पूर्ण भ्रांति होने पर दर्शक में प्रतिक्रिया अनिवार्य हो जायगी जिस प्रकार कोढ़ी के छूने पर मेरे मित्र में हुई थी। वह भिखारी की भूमिका में अभिनेता को पैसे देने लगेगा या रावण की भूमिका में गाली। एक बार एक पूर्णतः भ्रान्त दर्शक ने अभिनेता पर जूता भी चला दिया था।

अतएव नाटक अनुकरण नहीं है। उसके कुछ तत्व नाटक में भी विद्यमान हैं। अनुकरण की भाँति नाटक में भी कार्यों का पुनःकरण होता है। इसी साम्य के कारण भ्रम हो जाता है कि नाटक अनुकरण है। वस्तुतः अनुकरण केवल कार्यों का पुनःकरण है और नाटक भावों का। उसमें कार्यों की पुनरावृत्ति अप्रधान एवं भावों की सफल व्यञ्जना के लिए सहायक रूप में की जाती है। वानर, दादुर आदि के भी कुछ तत्व मानव में विद्यमान हैं किन्तु मनुष्य वानर या दादुर नहीं है।

नाटक स्थायी-भावों का पुनःसर्जन है। यह भाव नाटक में सन्निविष्ट सभी पात्रों—मनुष्य, वानर, पशु, पक्षी आदि—का नहीं हो सकता। इसका सम्बन्ध रचना के प्रधान पात्र या एक ही नायक अथवा नायिका के अभाव में प्रधान पात्रों से है। अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, दुष्यन्त आदि के हृदय में उत्साह रति आदि की सृष्टि हुई थी। विशिष्ट परिस्थिति में उनका उदय और उद्दीपन हुआ था। अपने हृदय में उन भावों के वस्तुतः उदय या उद्दीपन न होने पर भी अभिनेता उन्हें वैसा प्रदर्शित करता है और वे अवास्तविक भाव सामाजिक को वास्तविक प्रतीत होते हैं।

व्यभिचारी भावों का पुनःसर्जन नाटक नहीं है। केवल व्यभिचारी भाव में इतनी शक्ति ही नहीं कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यानन्द की सम्यक् अनुभूति करा सके। नाटक में संचारी भावों की प्रतिष्ठा स्थायी की सहायतामात्र के लिए है। केवल संचारी भाव का पुनःसर्जन साधारण संलाप की कोटि से ऊपर नहीं उठ सकेगा; उदाहरणार्थ 'हीरा और कोयला' या 'सागर और मेघ'।

नाटक कार्यों का पुनःसर्जन नहीं है। अंगरेजी ड्रामा का मूल ग्रीक शब्द 'सम्पन्न कार्य' का समानार्थी है। धनिक का 'नट अवस्पन्दने' भी इसी व्यापार का द्योतक है किन्तु "अवस्थानु-कृतिर्नाट्यम्" के द्वारा ही उसका समाधान हो जाता है। वध आदि कार्यों का पुनःकरण असम्भव तथा चुम्बन, आलिंगन आदि का प्रदर्शन अतिशय क्षोभकारी होने के कारण अनुचित है। नाटक में कार्य साधन है, साध्य है रसादि। भावों का ही पूर्ण अनुव्यवसाय सम्भव है। स्थायी भाव का ही विकसित रूप रस है। इस कारण भी नाटक को स्थायी का पुनःसर्जन माना गया है।

स्थायी भाव का सम्यक् पुनःसर्जन अभिनय द्वारा ही हो सकता है। 'रामचरितमानस' में पात्रों की भाव-निबन्धना अत्यन्त सुन्दर हुई है किन्तु उसे हम नाटक नहीं कह सकते। इसका कारण अभिनय का अभाव है। भाव के पूर्ण पोषण के लिए चारों प्रकार के अभिनय अपेक्षित हैं। आंगिक, वाचिक, सात्विक या आहार्य, किसी एक, के अभाव में भी भाव-निर्वाह बाधित हो जायगा। नाटक वह काव्य है जिसमें अभिनय के द्वारा स्थायी भाव का पुनःकरण हो।

सुन्दर की अनुसर्जना द्वारा रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाली अभिव्यंजन-शैली होने के नाते नाटक एक कला है। उसका शरीर शब्दमय है। अतएव वह काव्य है। अपनी अभिनेयता के कारण वह अन्य काव्यरूपों—कविता, कहानी, उपन्यास आदि—से भिन्न है। नाटक पाठ्य भी हो सकता है। किन्तु यदि वह केवल पाठ्य है, नाट्य नहीं है, तो वह नाटक नाम के सर्वथा अनुपयुक्त है। आजकल रेडियो द्वारा प्रसारित नाटक श्रव्य की कोटि में भी आ गया है। उपर्युक्त दोनों प्रकार के नाटकों में पाठक या श्रोता अपनी कल्पना द्वारा ही वास्तविक अभिनय की अभावपूर्ति कर लिया करता है।

नाटक में काव्य के सभी तत्वों और ललित कलाओं के प्रायः सभी प्रकारों का समन्वय है। इसीलिए वह कला और काव्य की श्रेणी में सुन्दरतम है। उसके प्रस्थापन में गीत और वाद्य की कर्ण-प्रियता, अभिनय में नृत्य की भाव-व्यञ्जना, दृश्य-नेपथ्य-रचना में चित्र की नयनरञ्जनता, रंगमंडप-विधान में शिल्प आदि का लालित्य है।

नाटक से सभी प्रश्नों का उत्तर माँगना उचित नहीं। वेद, शास्त्र, इतिहास-पुराण, भूगोल, विज्ञान, अर्थ आदि विषयों का क्षेत्र भिन्न है। जीवन-सम्बन्धी इन विषयों का यथायोग्य यत्किंचित् समावेश ही नाटक में हो सकता है और होता है। उसका रूप कान्तासम्मित है; प्रभु, अध्यापक या सुहृत् की वाणी का नहीं। उनकी यथेष्ट जानकारी के लिए वहीं जाना होगा। अशन और वसन के उपाय का जिज्ञासु तत्सम्बन्धी संस्थाओं में जाए। रोटी, ब्रह्म या जगत् की समस्या सुलझाने में प्रयत्नशील मानव जब जीवन की नग्न वास्तविकताओं के विकट थपेड़ों से व्याकुल होकर थक जाता है तब उसे मानसिक शान्ति और चित्तरञ्जन के लिए कलाकार के रमणीयता-प्रतिपादक कल्पित जगत की आवश्यकता होती है। यहीं नाटक की प्रधान उपयोगिता है और इसीलिए वह नाटक है—रञ्जनानुप्रवेशेन सामाजिकानां हृदयानि नाट्यतीति नाटकम्। किन्तु यह नाटक-रचना के प्रयोजन का आदि है, अन्त नहीं। उसकी कला की परिणति दर्शक को साधारण भूमि से उठाकर उच्चतर स्तर पर प्रतिष्ठित कर देने में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरा सगुणोपासिनी ?

लेखक—एक विदुषी

मीरा की भक्ति सगुणोपासनी धारा के अन्तर्गत मानी जाती है। मीरा के पदों को सरसरी नजर से पढ़ने से भी ऐसा ही लगता है। प्रेमावेश में अपने गिरधर नागर की मूर्ति के सम्मुख 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' गा-गा कर नाच उठने वाली मीराँ परम वैष्णव के सिवाय और हो भी क्या सकती है। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित हरिकीर्तन और सुमिरण के मार्ग को मीराँ ने अपनाया। वृन्दावन जाकर चैतन्य महाप्रभु के अनन्य शिष्य श्री जीव गोस्वामी से अत्यधिक आग्रह के साथ मिलीं व कुछ दिन उन्हीं के आश्रय में रहीं, किम्वदन्ती है कि वे द्वारिका में रणछोड़जी की प्रतिमा में समा गईं। तथापि मीराँ अपने सम्पूर्ण शृङ्गार और सुहाग चिन्हों को त्याग कर अपने साहिब के अनुकूल 'जोगण वेष' धारण कर लेने को आकुल हैं। वे स्पष्ट ही कहती हैं 'जोई भेख म्हाँरो साहिब रीझै, सोई भेख धारणा'। अपने इस साहिब के लिये वे जोगण भी बनेंगीं 'तेरे खातर जोगण हूँगी, बाला खप्पर लेऊँ हाथ'।

किसी जोगी सतगुरु के विरह में विरहाकुल मीराँ जिस भेख को अपनाना चाहती हैं वह तत्कालीन नाथपन्थी धारा के अनुकूल पड़ता है। हिन्दी के प्रख्यात विद्वान श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी अपनी पुस्तक 'कबीर' की भूमिका में लिखते हैं 'यही लोग गोरखपन्थी कनफटे योगी कान में छिद्र करके वह कुण्डल धारण करते हैं, जिसे मुद्रा या दर्शन कहते हैं। यही दो तीन अंगुल की काली सींग की छोटी-सी सीटी गले में धारण करते हैं जिसे नाद, शृङ्गीनाद कहते हैं और जो सेली नामक काले ऊनी धागों से गुथा होता है। इनके हाथ में नारियल का एक खप्पर होता है। ये लोग गेरुआ वस्त्र और जटा धारण करते हैं, शरीर पर भभूत और ललाट पर त्रिपुण्ड धारण करते हैं।

मीराँ भी इन सब चिन्हों को अपनाने के लिये व्याकुल हैं। ऐसा क्यों? कृष्ण योगीराज हैं, गुडाकेश हैं, जरूर परन्तु उनका उपदेश भी हठयोग से परे है और जीवन भी राजसी है। शायद ही कहीं कृष्ण को योगी के रूप में देखा गया हो। कृष्ण के मधुर रूप का वर्णन और उसी मधुर भाव की भक्ति ही कृष्णभक्ति शाखा की विशेषता है। तब कृष्ण मूर्ति के व्याज से परब्रह्म की भक्ति करने वाली मीराँ तत्कालीन नाथपन्थी जोगी वेश को सर्वथा अपना लेने के लिये इतनी अधीर क्योंकर?

१—छापा तिलक बनाइयाँ, तज्याँ सबशृङ्गार।
२—माणिक मोती हम सब छोड्याँ,
गल में पहनी सेली।
३—तेरे खातर जोगणा हूँगी,
करवत लूंगी कासी।
४—तेरे कारण बन बन डोलूँ,
कर जोगणा की भेस।
५—चीर को फारूं, कंथा पहिरूँ,
लेलूँगी उपदेश।
६—मुद्रा माला भेख लूँ रे, खप्पर लेऊँ हाथ।
७—माला मुंदरा मेखलां रे,
बाला खप्पर लूँगी हाथ।

उदाहरण ६ और ७ करीब-करीब एक ही हैं। अन्तर है सिर्फ क्रिया पदों में। उदाहरण ६ के क्रिया पद वर्तमान काल के द्योतक हैं, जब कि उदाहरण सात के क्रियापद भविष्यत् काल के द्योतक हैं।

८—या तन उपरि भसम रमाऊँ,
खोर करूँ सिर केस।
भगवां भेख धरूँ तुम कारण,
ढूँढल ज्यारूँ देस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—तेरे कारण जोग लियो है,
घर घर अलख जगाई।

१०-सतगुरु सबद लखाया अंसरी,
ध्यान लगाया धुन में।

११-ढाला, मैं वैरागण हूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिये,
ताको ध्यान धरूँगी।

१२-उठतो चले अवधूत, मठी मां कोई ना विराजे,
उठ चले अवधूत।
पंथी हतो ते पंथी लाग्यो,
आसन पड़ रही विभूत।

श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रतिपादित धारा के अन्तर्गत हरि कीर्तन और सुमिरण को ही विशेष महत्व प्राप्त है, वहाँ गुरु को वह महत्ता प्राप्त नहीं जो पुष्टि मार्ग अनुयायियों में प्रचलित है तथापि किसी गुरु के प्रति आराधना और विरह भाव की अभिव्यक्ति मीरा में बार-बार मिलती है। यह सत् गुरु कौन है? शायद वही जिनके वियोग में मीराँ जोगण वेश अपनाने को अधीर हो उठी हैं। मीराँ के आराध्य ही तो मीराँ के सतगुरु हैं। सगुणोपासिनी मीराँ के आराध्य की प्रतिमूर्ति कृष्ण की प्रस्तर मूर्ति तो उन्हीं के पास है ही तब इतनी गहरी विरह वेदना अन्य किस आराध्य के लिये? मीराँ के 'ओलगिया' ही तो मीराँ के सतगुरु नहीं। पदों में व्यक्त अनुभूति इस सन्देह की पुष्टि करती है।

१—सतगुरु जी सूँ बातज करताँ,
दुरजन लोगा ने दोठि।

२—मीराँ ने सतगुरु जी मिलियाँ,
चरण कमल बलिहारी।

३—गुरु के ज्ञान रगूँ तन कपड़ा,
मन मुद्रा पैरुँगी।
प्रेम प्रीत सूँ हरि गुण गाऊँ,
चरणन लिपट रहूँगी।

४—गुरु प्रताप साधुरी संगति,
सहज ही तिर जास्याँ।

५—सत् गुरु म्हाँरी प्रीति निभाज्यो जी।
थे छो म्हाराँ गुणरा सागर,
औगुण म्हाराँ मति जाज्यो जी।

६—अब नहिं बिसरूँ म्हाँरे हृदय
लिख्यो हरिनाम।
म्हाँरे सतगुरु दियो बताय,
जब नहीं बिसरूँ रे॥

७—जनम जनम का सोध मनुवाँ,
सतगुरु सब्द सुन जागा।

८—मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछुड़ी मीराँ,
घर में लीन्हाँ आय॥

९—दाँ तो अमृत मेख, दया को बोलना।
उबटन गुरु ज्ञान को, ध्यान को धारणा।

१०-गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे,
धुर से कलम भिड़ी।

११—नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछानी हो।

१२-पटिया पारूँ गुरु ज्ञान की,
बुद्धि मांग सवारूँ हो।
पिया तेरे कारणे धन जोबन गारूँ हो॥

१३-सतगुरु मिल्याँ सुज पिछाणी,
ऐसा ब्रह्म में पाती।

१४-मिल्ताँ जाज्यो हो गुरु ज्ञानी,
थाँरी सूरत देखि लुभानी।

१५ जिन मारग म्हाँरा साध पधारे,
उन मारग म्हैं जास्याँ।

१६-रैदास संत मिलै मोहि सतगुरु,
दीन्हा सुरत सहदानी।
मैं मिलि जाय पाय पिय आपणा,
तब मेरी पीर बुझानी॥

१७-गुरु मिल्या रैदासजी, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।
.. ..
परम गुराँ के सरन में रहस्याँ,
परनाम कराँ लुटकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८–सतगुरु मित्याँ संसा भाग्याँ,
सैन बताई साँची।
१९—सतगुरु सबद लगाया अंसरा,
ध्यान लगाया धुन में।
२०–म्हाँरा सतगुरु बेगा आज्यो जी।
म्हांरी सुखरी सीर बुआव ज्यो जी।
तुम बिछुड़िया दुःख पाऊँ जी।
मन ही मन मुरझाऊँ जी।
मैं कोयल ज्यूँ कुरलाऊँ जी।
कछु बाहिर कह न जनाऊँ जी।
मां है बाघण विरह सतावै जी।
कोई कहा पार न पावै जी।
.....
.....
.....
अरज करै मीराँ दासी जी,
गुरु पद रज की प्यासी जी।
२१–सतगुरु दस्त धरयौ सिर ऊपर,
आँकुस दे समझाती।
२२–सतगुरु भेद बताइयाँ,
खोली मरम किवाड़ियाँ।

उपर्युक्त अभिव्यक्तियों में स्पष्ट है कि मीराँ के सतगुरु ही मीराँ के आराध्य हैं, पिव हैं, जोगी और साहिब भी हैं। तब क्या मीराँ के सतगुरु नाथपन्थी योगी हैं। नाथपन्थ के सिद्धान्तानुसार भी सतगुरु की महिमा बहुत है। श्री हजारीप्रसादजी 'कबीर' की भूमिका में 'नाथपन्थी सिद्धान्त और कबीर का मत' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं गोरखनाथ के योगी-मार्ग में गुरु की बड़ी महिमा गाई गयी है। गुरु ही समस्त श्रेयों का मूल है और एकमात्र अवधूत ही गुरु पद का अधिकारी हो सकता है। आगे लिखते हैं नाथपन्थ के आदि प्रवर्तक आदिनाथ अर्थात् स्वयं शिव माने जाते हैं। मीराँ के औलगिया सतगुरु भी शिव आराधना में रत जोगी हैं।

१—जोगिया ने कह ज्यो जी आदेस।
जोगियों चतुर सुजान, ध्यावै संकर सेस।

इसका पाठान्तर भी इसी भाव का समर्थन करता है।

२—कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।
आसण मांडि अडिग होय बैठ्या,
याही भजन की रीति।
३–तेरो भरम नहीं पायो जोगी।
आसण मांडि गुफा मांहि बैठ्यो,
ध्यान हरि को लगायो।
गल बीच सैली हाथ हाजरियौ,
अंग भभूति रमायो।
४—म्हारे घर रमतो ही आयो रे तू जोगिया।
कानां बीच कुंडला गले बीच सेली,
अंग भभूत रमाई रे।
५—जोगिया से प्रीति किया दुःख दोई।
६—जोगियारी प्रीति ही है दुःखड़ारो मूल।
७—जावा दे, जावा दे, जोगी किस का मीत।
सदा उदासी रहै मोरी सजनी
निपट अटपटी रीति।
८–धूतारा जोगी एकरसूँ हंसि बोल।
जगत बदीत करी मनमोहन,
कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृगछाला,
तू जनि गुदिया खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा,
उभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो,
अंजु मुनी मुख खोल।
चढ़ती बैस नैण अनिय लै,
तू धरि धरि मत डोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
बैरी भई बिन सोल।
९—जोगिया जी छाई रह्या परदेस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—जोगिया री सूरत मन में बसी।
११—जोगिया, कब रे मिलोगे आई।
तेरे कारण जोग लियो है
घर घर अलख जगाई।

मीराँ के सतगुरु शिव आराधक जोगी हैं, अपने साहिब के अनुकूल मीराँ भी जोगण बनने को अति आकुल हैं, तथापि साधना की इस हठयोगी प्रणाली के विरुद्ध आवाज उठाती हैं। कबीर की तरह वे भी सहज साधना को ही श्रेयस्कर मानती हैं।

१—कहा भयो है भगवा पहरया,
घर तज भए सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहीं जानी,
उलटि जनम फिर आसी।
२—यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हियेतै धूरी,
हियो तिलक सिर धाय।
.....
दासी मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग्य।
३—तेरो मरम नहिं पायो जोगी।
आसण मांडि गुफा में बैठी,
ध्यान हरि को लगायो।
गल बीच सेली हाथ हाजरियो,
अंग भभूति रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
भाग लिख्यो सो ही पायो।

'भाग लिख्यो सो ही पायो' स्पष्ट है कि 'जोगी' की हठयोगी साधना पर झुँझला उठी है और उसका विरोध कर रही है।

४—कहा भयो है भगवां पहरयां,
घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी,
उलटि जनम फिर आसी।

गिरधर गोपाल की उपासिका मीराँ किसी जोगी के विरह में आकुल है, अपने साहिब के अनुकूल भेख धारण के लिये छटपटा उठी है और तब भी हठयोगी साधना के प्रति अरुचि प्रदर्शित करती हुई सहज साधना की दुहाई देती है। यह सब अत्यन्त सन्देह-जनक है। शायद मीराँ ने गिरधर गोपाल को उनकी प्रति मूर्ति प्रस्तर प्रतिमा की रूप में नहीं, अपितु मानव मूर्ति के रूप में ही भेजा है। प्रेम अपनी चरम सीमा को पहुँच कर सहज ज्ञान हो जाता है। विकृत अहन्ता को समाप्त कर प्रेमी बना मानव सहज ही त्रिकुटी महल के झरोखे से पिय दर्शन कर लेता है।

प्रेम जन्य ज्ञानमय आल्हाद में मीराँ कबीर के सुर में सुर मिला कर गा उठती है—

१—त्रिकुटी महल में बना है झरोखा,
तहाँ से झांकी लगाऊँ, री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ
सुख की सेज बिछाऊँ, री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
बार बार बलि जाऊँ, री।
२—मेरा पिया मेरे हिरदे बसत है,
ना कहुँ आती जाती।
चन्दा जायगा, सूरज जायगा,
जायगा धरणि अकासी।
पवन पानी दोनों ही जायेंगे,
अटल रहै अविनासी।
सुरत निरत का दिवला संजोले,
मनसा की कर ले बाती।
प्रेम हरी का तेल मंगाले,
जगे रह्या दिन तें राती।
सतगुर मिल्याँ संसा भाग्या,
सैन बनाई आँची।
ना घर मेरा, ना घर तेरा,
गावे मीराँ दासी जी।

मीराँ के कठोर संघर्षमय जीवन तथा उनके पदों में व्यक्त भावनाओं के आधार पर मीराँ मूर्ति उपासिका मात्र साबित नहीं होतीं। किसी विकसित आत्मा में ही मीराँ ने असीम के सौन्दर्य की झाँकी देखी है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपेक्षिता कौन ? शत्रुघ्न

(श्री तपेश्वरी तिवारी)

काशी नरेश के समक्ष 'भारतेन्दुजी' ने 'बंदन पाठकजी' से एक प्रश्न किया था। प्रश्न था—'तुलसी के शत्रुघ्न सारी रामायण में किसी से एक शब्द भी नहीं बोले, क्यों? मुझे मालूम नहीं 'पाठकजी' ने इसका क्या उत्तर दिया किन्तु मेरे विचार से शत्रुघ्न की मूकता उनकी सतत कार्य तल्लीनता की ही द्योतक है। कार्य शील मनुष्य अपने हृद्गत भावों को सिर्फ शब्दों का ही रूप नहीं देते बल्कि उन्हें कर्म का ठोस रूप देकर, संसार के सामने उपस्थित करते हैं। मितभाषी में कार्यदक्षता की प्रचुरता और अमितभाषी में कार्य हीनता की प्रचुरता प्रायः देखी जाती है—

"कहता तो बहुते मिले, गहता मिले न कोय"।

हम जहाँ भी इन्हें देखते हैं, मानव प्रवृत्तियों—क्रोध, करुणा तत्परता आदि—के अनुसार कार्य में जुटे पाते हैं। वे कभी भी अपने भाइयों से अलग नहीं होते। बचपन में एक ही साथ खेलते हैं, खाते हैं। जनकपुर में एक ही साथ शादी भी होती है। इसी बीच हम उनके शान्त स्वभाव का भी संकेत पाते हैं। वे अपने भाई लक्ष्मण के उग्र स्वभाव के कारण साथ नहीं देते बल्कि भरत का साथ देते हैं। इनमें भी उग्रता थी किन्तु भरत की शान्ति-प्रियता के साथ चल सकने वाली उग्रता। मेरे विचार से चारों भाइयों का, शान्ति-प्रियता तथा गम्भीरता, के लिहाज से यह क्रम होना चाहिए—भरत, राम, शत्रुघ्न, लक्ष्मण। भरत को हम कहीं भी क्रोध करते नहीं पाते। हाँ, क्रोध से लिपटी कारुण्य- धारा कहीं कहीं फूट पड़ी है। पिता-मरण और राम-वन गमन सुन कर वे माता को डाँटते, फटकारते तथा कोसते हैं, फिर भी "हाय" शब्द जगाते जाते हैं। तुलसी ने उनके लिए कहीं भी 'क्रोध' जैसे शब्द का व्यवहार नहीं किया है। भरत ने वीरता भी दिखलाई है। हनुमान को राक्षस समझ शान्त भाव से ही बाण मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया है। किन्तु हमारे तुलसी के भरत गुप्तजी के भरत ऐसा कह बैठते कि—

अनुज मुझे रिपु-रक्त चाहिए, डूब मरूँ मैं

× × ×

रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लङ्का
मैं लक्ष्मण पथ-पथी उर्मिला से कह देना
लौटूँगा तो साथ उन्हीं के और नहीं तो
नहीं, नहीं वे मुझे मिलेंगे भला कहीं तो

हमारे तुलसी के भरत रो पड़ते हैं—

"अहह दैव कत जग जायउ,
प्रभु के एकहु काज न आयउ"।

शत्रुघ्न को भरत के साथ ही हम पाते हैं। वे भरत के ऐसे रोते नहीं, बल्कि—

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई,
जरहि गात रिस कछु न बसाई।

× × ×

हुमगि लात तकि कूबर मारा,

× × ×

लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।

वे भरत के साथ ही कौशल्या से मिलते हैं, विलाप करते हैं किन्तु किसी से कुछ कहते नहीं—"विलपहिं विकल भरत दोउ भाई"। शत्रुघ्न भी राम लखन के लङ्का में दुखी पा, चञ्चल हो उठते हैं। उनका क्रोध प्रज्वलित हो उठता है फिर भी वे बोलते नहीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर पर नत शत्रुघ्न भरत निर्देश धरे थे।
पर "जो आज्ञा" कह न सके आवेश भरे थे।
कूद पड़ा रणधीर, एक ने अश्व सँभाला।
नीरवही सब हुआ, न कोई बोलाचाला।

ये गुप्तजी की पंक्तियाँ तुलसी के शत्रुघ्न के पक्ष में हैं, किन्तु गुप्तजी आगे लिख बैठते हैं—

द्विषदस्यु अब जले हमारे द्वेषानल से

× × ×

तो हम उनको तोड़ शिलाओं पर पटकेंगे

× × ×

जीवन में ही नहीं मरण में भी निज जय है।

तुलसी के राम को हम अनेक बार क्रोध करते पाते हैं। जनकपुर में तथा समुद्र पार करते समय क्रोध करना पड़ा है—

कतहु सुधाइहु ते बड़ दोषू।
टेढ़ जानि वंदइ सब काहू,
वक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू।

× × ×

लछिमन बाण सरासन आनू।
सोखउ वारिध बिसिख कृसानू।

लङ्का की-लड़ाई में तो राम को अनेक बार क्रोधित होना पड़ा है किन्तु गम्भीरता के साथ ही। उग्रता नाम मात्र को भी नहीं आने पायी है। भरत को मैंने राम से अधिक गम्भीर तथा शान्तिप्रिय कहा है फिर भी एक बात हो सकती है कि भरत को राम के समान भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरना नहीं पड़ा है, तो भी तुलसी के द्वारा चित्रित भरत मेरे ही विचार के अनुकूल हैं।

तुलसी ने शत्रुघ्न को बोलने का कहीं मौका ही नहीं दिया है और दिया भी है तो अपने कला-कौशल से उनके भावों को प्रदर्शित करा दिया है, पर बोलने नहीं दिया है। इस तरह शत्रुघ्न से प्रमुख पात्र को नहीं बोलाना, उनकी श्रेष्ठता को सिद्ध करने का ही प्रयास है। मैं तो समझता हूँ कि तुलसी ने जितना शत्रुघ्न को कर्मशील सिद्ध करने की कोशिश की है उतनी किसी दूसरे पात्र को नहीं। शत्रुघ्न हमारे केवल समझने के विषय हैं।

रामायण में हम दो मर्मस्पर्शी स्थल पाते हैं—एक में समुद्र से घिरी लङ्का में राक्षसों के बीच राम को अपनी गोदी में मूर्छित भाई को ले, रोते हुए और दूसरे में शोक-सागर में डूबते हुए अयोध्या वासियों, रोती हुई विधवा माँओं, बिलखती हुई रानियों तथा उदासीन तपस्वी भरत के बीच शत्रुघ्न का दौड़-धूप तथा कार्य-दक्षता। हम दोनों क्षेत्रों में दोनों भाइयों—लक्ष्मण और शत्रुघ्न— को कार्य मग्न पाते हैं। एक को कार्य करते करते अपने प्राण को भी न्यौछावर करते पाते हैं तो दूसरे को हँसते खेलते तथा हँसाते खिलाते अयोध्या की डूबती नैया को सफलता पूर्वक किनारे लगाते पाते हैं।

राम भरत को भी हम अपनी अपनी जगह शान्त बैठे पाते हैं। राम की स्थिरता डोल उठती है, वे कह उठते हैं—"जो जनतेउ बन बन्धु बिछोऊ, पिता बचन नहिं मनतेउ ओऊ"। भले ही तुलसी ने इस पंक्ति को लिखकर उनकी मानव-लीला की सत्यता सिद्ध करने की कोशिश की हो, किन्तु साधारण तौर से देखा जाय तो विदित होता है कि वे पिता की भी आज्ञा उठा सकते थे। अतः हम उन्हें एक पक्ष पर अटल नहीं पाते किन्तु हमारे भरत अटल हैं। उनने पिता की आज्ञा नहीं मानी, नहीं मानी। अयोध्या ऐसे राज्य को भी ठुकरा दिया और अपनी भ्रातृ-भक्ति की रक्षा अन्त तक की।

लक्ष्मण ने अयोध्या की तनिक भी चिन्ता नहीं की। उसे श्मशान कहा। वे राम के साथ चले गए और उस समय चले गए जिस समय अयोध्या में भरत शत्रुघ्न भी नहीं थे। वे राम के अन्ध अनुगामी थे।

(शेष पृष्ठ ४२५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार विमर्श

रूपक-रचना रहस्य

(श्री अवध विहारी पाण्डेय: व्याकरणाचार्य, हिन्दी विशारद)

प्रस्तुत लेख में उपमा और रूपक ये दोनों भिन्न अलङ्कार हैं या एक दूसरे का क्रमिक विकास मात्र, इस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

किसी सज्जन के मत से यह माना गया है कि सर्व प्रथम मनुष्य हृदय में सन्तुलन का भाव उत्पन्न हुआ और उससे उपमा की सृष्टि हुई। शेष अलङ्कार रूपकादि उसके विकास मात्र हैं। मेरी राय में यह मत ठीक नहीं जँचता। सर्ग के प्रथमावस्था में लोग संकेत द्वारा काम चलाते होंगे, द्वितीयावस्था में उन्हें वस्तुओं से परिचय करना पड़ा होगा। रूप परिचय के साथ ही तत्तत् पदार्थों के नामकरण हुए होंगे। इस प्रकार भाषा निर्माण में भी रूपक रहस्य छिपा मालूम पड़ता है। तृतीयावस्था में एक पदार्थ देखने के बाद दूसरा वस्तु में समान धर्म वाला रूप देखने को मिल जाता होगा, रूपक की सृष्टि हो जाती होगी। इसके बाद सन्तुलन भाव का श्री गणेश होता है। लोक में भी हम देखते हैं कि जो लोग पढ़े लिखे नहीं हैं, निपट ग्रामीण और अनाड़ी हैं, रूपक की सृष्टि आसानी से कर लेते हैं। उदाहरण में— यदि किसी ने लम्बा मनुष्य देखा, झट से बोल उठता है—"ऊँट आया"। वह यह कदापि नहीं कहता कि यह ऊँट की तरह लम्बा है। इसी प्रकार कोई किसी मोटे आदमी को देखकर हाथी और मूर्ख को गधा कह डालते हैं। उपमा इससे आगे की वस्तु है।

प्रौढ़ावस्था में जब मानव जगत् ने मानव जगत् से परे (नियति कृत नियम रहिताम्) एक दूसरे लोक की सृष्टि की और कल्पना के वायुयान पर आरूढ़ हो साहित्य के विस्तृत विहायस में चक्कर काटने लगे, विभिन्न काव्यों और अलङ्कारों की सृष्टि हुई। इस समय भी रूपक को उच्चासन मिला। यहाँ तक कि दृश्यकाव्यों का नाम ही रूपक पड़ गया।

किन्हीं के मत से रूपक अलङ्कार और रूपक काव्य परिभाषापेक्ष है। अलङ्कार एक साधर्म्य वस्तु को दूसरे साधर्म्य वस्तु में आरोप को कहते हैं (रूपकं रूपिता रोपात् वस्तुनोः धर्म साम्ययोः)। रूपक काव्य में नरादि काव्य स्थित पात्रों का रूप धारण कर रङ्ग-मञ्च पर उतरता है। अतएव उस काव्य का नाम रूपक है (रूपकं कामतीति रूपकः)। नट में साधर्म्य का आरोप नहीं होता बल्कि उसको देखकर सहृदय हृदय में वासना (भावना) जाग उठती है और उस समय वह अपने को पात्र से अभिन्न समझता हुआ रसानुभूति करता है। यहाँ पर सहृदय की भावना हृदय का और आरोप बुद्धि का विषय माना गया है।

पूर्व-कथित मतानुसार यह स्वीकृत है कि वासना (भावना) के द्वारा नट में साधर्म्य का आरोप होने पर ही रसानुभूति होती है। किसी भी अवस्था में साधर्म्य कल्पना के बिना रसानुभूति असम्भव है। रस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मञ्च से भिन्न स्थान पर नट का कुछ भी मूल्य नहीं। वहाँ कवि की कल्पना ही सब कुछ है। कवि कल्पित पात्र का रूप धारण कर जब कोई नट रङ्ग-मञ्च पर आता है, सहृदय सर्व प्रथम उसमें साधर्म्य सारूप्य पात्र के आरोप द्वारा विभाव का अनुभव करते हैं। उसकी चेष्टाओं से अनुभावित होकर सञ्चारीभाव में प्रवेश करता है। तब वह आनन्द में विभोर हो लोकोत्तर चमत्कार भरे स्थायीभाव. रस का आस्वादन करते हैं।

यदि रङ्ग मञ्च पर आये हुए नट में साधर्म्यारोप के द्वारा पात्र गत धर्म और गुण से सम्पन्न नट को नहीं बल्कि नट में रहने वाले प्राकृत गुण एवं चरित्रों का मनन करें तो ऐसी अवस्था सहृदय के मन में उस नट के प्रति श्रद्धा हो सकती है? कदापि नहीं। क्या नट को देखने की सहृदय हृदय की भावना अचेतन बना देती है? यदि ऐसा हो तो विभावानुभाव सञ्चारीभाव की कोई आवश्यकता नहीं रहती। आरोप को बुद्धि का विषय मानने पर भी विभावानुभाव की उत्पत्ति पर्यन्त उसकी स्थिति अक्षुण्ण रह जाती है। भले ही रसानुभूति काल में बुद्धि की स्थिति न रहती हो और दर्शक अपने को अपनी भावना के द्वारा पात्र से अभिन्न समझ कर रसास्वादन करता हो। आश्चर्य है नट में साधर्म्यारोप के बिना सहृदयों की भावना जागृत ही कैसे हो सकती है। यदि वे उसे पात्र से भिन्न एवं तुच्छ मानें तो उनके हृदय में श्रद्धा ही नहीं उत्पन्न होगी और श्रद्धा के बिना भावना का जगना असम्भव होगा।

अब रह गयी बुद्धि और भावना की बात। बुद्धि और भावना में अन्तर अवश्य है। बुद्धि का विषय समाप्त होने पर ही भावना का विषय आता है। सर्व प्रथम बुद्धि के द्वारा किसी वस्तु का परिचय होता है तब भावना का सृजन होता है। उससे आरोप विषयक बातें सत्य प्रतीत होती हैं। भावनोत्पत्ति के बाद बुद्धि सुप्त नहीं होती अपितु यह कह सकते हैं कि भगवच्चित्रादिवत् बुद्धीन्द्रियगृहीतारोपित साधर्म्यता के द्वारा हमारी भावना जागृत होती है और वह बुद्धि के ऊपर तक हल्का पर्दा डाल, रसाभिव्यक्ति करा देती है।

(पृष्ठ ४२३ का शेष)

हमारे शत्रुघ्न भरत के अनुगामी थे किन्तु अन्ध अनुगामी नहीं। भरत ने तपस्वी का रूप बनाया किन्तु शत्रुघ्न ने? शत्रुघ्न ने माताओं, बहुओं नगर निवासियों तथा अन्य जनता की, आँसू पोंछने, उनकी रक्षा करने तथा हँसने हँसाने का ही कार्य-भार अपने नाजुक कंधे पर सहर्ष लिया। ये ही अयोध्या रूपी उजड़ी फुलवारी के एक कोमल कली थे। रोती-माताओं के लिऐ आशा-किरण थे और थे उदासीन चेहरों पर कभी कभी अजाने वाली हँसी की रेखा। देहातों में लोग कह बैठते हैं "उन्हें तो आजकल बोलने क्या, साँस लेने तक की फुर्सत नहीं"। शत्रुघ्न के साथ भी यही बात थी।

अयोध्या शोक-सागर में डूब उतर रही थी। राजा परलोक चले गये थे। राम, लखन और सीता बन को चले गये थे। भरत ने तपस्वी वेष धारण कर अलग धूनी रमाली थी। उर्मिला सूख कर काँटा हो रही थी। हर घर में दुःख का श्रोत बहता नजर आता था। माएँ विधवा वेष में पछाड़ पर पछाड़ खा रही थीं। ऐसी परिस्थिति में घर का इन्तजाम करने वाला, राज्य का इन्तजाम करने वाला बस बच गया था एक बेचारा शत्रुघ्न। ऐसी हालत में उसे बोलने, बातचीत करने का समय कहाँ था? उसे तो हम घोड़े की पीठ पर पाते हैं, किसानों की खबर लेते हुए पाते हैं और पाते हैं रोतों को हँसाते।

गुप्तजी की मांडवी के शब्दों में—

कोई तापस, कोई त्यागी कोई आज विरागी है।
घर संभालने वाले मेरे देवर ही बड़भागी हैं॥

फिर भी, "उपेक्षिता कौन"? ही क्यों? "उपेक्षित कौन"? भी क्यों नहीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य परिचय

कविता

वीर-सतसई—(अपूर्ण) ले०—वीररसावतार महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण कृत। सम्पादक—प्रो० कन्हैयालाल सहल, एम० ए०, प्रो० पतराम गौड़ 'विशद' एम० ए०, साहित्य रत्न, ठाकुर ईश्वरदत्त आशिया, प्रकाशक—बंगाल-हिन्दी-मण्डल कलकत्ता। पृष्ठ संख्या ६४१ मूल्य ५)

राजस्थान वीर-प्रसू भूमि है। वहाँ के वीर रस प्रधान वातावरण में ही यह सतसई रची गई थी और इसका सम्पादन भी उपर्युक्त सम्पादक त्रय के कुशल करों द्वारा हुआ है। डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसका प्राक्कथन लिख कर इसको और भी महत्ता प्रदान की है। यह सतसई उत्तरकालीन डिंगल भाषा में जो वीर रस के लिए विशेष उपयुक्त है लिखी गई है। इसके दोहे वीर-भावना से, जिसमें मरने और मारने दोनों को समान महत्व मिला है, ओत-प्रोत है। यहाँ पर दो दोहे उदाहरण स्वरूप दिये जाते हैं—

बंबी अन्दर पौठियौ, कालौ दबकै काय।
पूँगी ऊपर पाधरौ, आवे भाग उठाय॥

बाँवी के अन्दर सोया हुआ काला नाग पूँगी की आवाज सुनकर भी क्या दुबका हुआ रह सकता है? वह तो फन उठा कर सीधा उस पर आता है, ठीक उसी तरह रणभेरी की मोहक ध्वनि सुन कर वीर पुरुष उमंग से सिर ऊँचा किये निद्रा त्याग अपने घर से युद्ध भूमि की ओर लपक पड़ता है। मरण के उल्लास के सम्बन्ध में कवि लिखता है—

आज घरे सासू रहै, हरख अचानक काय।
वहू वलेबा हूलसै, पूत मरेवा जाय॥

घर पर सास को अक्समात हर्ष हो उठता है। बहू उसका कारण पूछती है तो मालूम पड़ता है कि पुत्र मरने के लिए रणक्षेत्र में जा रहा है और बहू अपनी मान मर्यादा की रक्षा तथा वीर पति के प्रेम में सती होने जा रही है।

कुछ दोहों में तथा भूमिका में उद्धृत पद्यों से सन् ५७ में राजपूतों की उदासीनता और अङ्गरेजों की सहायता करने पर कवि की सात्विक खीज भी प्रकट होती है। कवि सच्चे देशभक्त थे और उनकी वाणी में ओज आना स्वाभाविक ही था।

सम्पादक महोदयों ने लेखक की प्रामाणिक जीवनी के साथ उनके काव्य का भी विवेचन किया है जिसमें भाषा तथा अलङ्कारों और राजस्थानी काव्य-परम्पराओं का उल्लेख है। दोहों की टीका राजस्थानी काव्य में प्रवेश कराने में सहायक होगी।

—गुलाबराय

विद्रोही—रचयिता श्री श्रीहरि। प्रकाशक—भारत भारती, जयपुर। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ।।)

प्रस्तुत संग्रह में कवि की १६ देशभक्तिप्रधान कविताएँ हैं, जिनमें मुख्यतया बापू, नेताजी जयप्रकाश-नारायण आदि देश के गण्यमान्य नेताओं के प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ हैं। ये कविताएँ लोक-प्रिय एवं भावपूर्ण भाषा में लिखी हुई हैं। नेताजी के सम्बन्ध में कवि कहता है—

फिर प्राची में उदय हुआ रवि,
आया प्रात लिए स्वर्णिम छवि,
बजी दुन्दुभी, रण की भेरी—
थी न प्रलय मचने में देरी,
धरा हिल गई, व्योम हिल गया,
उठा इस तरह धुआँधार था—
भू से नभ का छोर मिल गया;
फिर जग ने देखा तो पाया—
नया जमाना,
नया फिसाना,
नया तराना।

—गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी—(संस्कृत में) ले० व प्रकाशक—पं० भगवानदत्त शास्त्री 'राकेश', गोयनका हाउस १४५ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

श्री बा० जयशंकर 'प्रसाद' कृत कामायनी हिन्दी का, विशेषकर वर्तमान पद्य-साहित्य का अभूतपूर्व प्रबन्ध काव्य है। ग्रन्थ विद्वानों के बीच इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ है कि एक ओर अंग्रेजी साहित्य के विद्वान उसका अनुवाद करने की कल्पना करते हैं (आलोचना तो अंग्रेजी में कई निकली हैं) तो दूसरी ओर संस्कृतज्ञ भी इसकी ओर आकर्षित हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी तरह का एक प्रयास है।

किन्तु आज के युग में हिन्दी की श्रेष्ठ पुस्तकों के संस्कृत अनुवाद का क्या प्रयोजन? दूसरे, अनुवादक महोदय अनुवाद करने के समय वैदिक शब्दावली के प्रति शुद्ध नहीं रह सके, जब कि मूल लेखक ने हिन्दी में भी वैदिक कथानक के साथ-साथ शब्दावली का भी अद्भुत ध्यान रक्खा है। हाँ, पुराने संस्कृत के विद्वानों में इस पुस्तक द्वारा हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न हो सका तो लेखक का प्रयत्न सफल रहेगा।

—कृष्णाचार्य

नाटक

बहन का बदला—लेखक—श्री भैरूलाल व्यास, साहित्य विशारद। प्रकाशक—शिवाजीराव, आबाजीराव सावंत, बेलगाँव।

यह एक सामाजिक नाटक है जो हिन्दुस्तानी भाषा और काका कालेलकर की प्रस्तावित देवनागरी लिपि में लिखा हुआ है। भाषा हिन्दुस्तानी है किन्तु बहुत ज्यादह उर्दू का मिश्रण नहीं है। इसमें तीन स्त्रियों और तीन पुरुषों की प्रणय कथा है। सब पात्र आधुनिक शिक्षा और संस्कारों में दीक्षित हैं और कुछ-कुछ स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें नवीना सुधीर के कहने पर अपनी बहन रेखा के हत्यारे श्याम को समाधान देकर उससे बहन का गान्धीवादी बदला लेती है और नाटक के नाम को सार्थक करती है। नाटक सुखान्त हो जाता है और इसी खुशी में आजादपुरी की स्थापना हो जाती है। —गुलाबराय

जीवन की झाँकियाँ (द्वितीय-खण्ड तृतीय खण्ड—ले०—श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पति। प्रकाशक—विजय पुस्तक भण्डार दिल्ली पृष्ठ ३२, ७४ मूल्य ।।) व १)

श्री इन्द्रजी की जीवन झाँकी के प्रथम भाग की चर्चा पहले हो चुकी है। इस समय द्वितीय और तृतीय भाग सामने हैं। द्वितीय भाग का नाम है 'मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला'। इन्द्रजी दो वर्ष की बाल अवस्था से ही बीमार रहने के अभ्यासी हैं और वह इस असाध्य रोग तक से मुक्ति पा चुके हैं, जिसे डाक्टरों ने टी० बी० न होने पर भी टी० बी० कह दिया था। इस पुस्तक में इन्द्रजी ने चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव लिखे हैं और अपनी बीमारी की अवस्था का सुन्दर चित्र खींचा है। साथ ही, ऐलोपेथी, आयुर्वेद और होमियोपैथी चिकित्सा प्रणाली की आलोचन भी है। पुस्तक रोगी समाज के लिये उपयोगी है।

तीसरे भाग में नौकरशाही जेल के अनुभवों का वर्णन है। जो सज्जन बिना ही जेल गये जेल जीवन का आनन्द लेना चाहें उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। जेल जीवन के लिये ४२० और जेल की ही भाषा में कहीं जाने वाली 'बदमाशी' की शिक्षा प्राप्त करना कितना आवश्यक है यह पुस्तक के आरम्भ में ही ज्ञात हो जाता है। पुस्तक बड़ी रोचक है और उसमें कहानी जैसा आनन्द मिलता है, परन्तु प्रूफ की भद्दी भूलें खटकती हैं। सिबिलसर्जन और बधाकाराम जेलर के परस्पर विरोधी चरित्र बड़े आकर्षक हैं। —रामनरायण अग्रवाल

शिक्षाविज्ञान

पाश्चात्य शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास—लेखक—श्री सरयूप्रसाद चौबे एम० ए०। प्रकाशक—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा संख्या २५६ मूल्य ८)

जहाँ हम हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बना रहे हैं वहाँ हमको पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में भी सचेत रहना आवश्यक है। हिन्दी में शिक्षा विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर दो एक इनी गिनी पुस्तकें थीं किन्तु पाश्चात्य देशों में शिक्षा विज्ञान के सिद्धान्तों के क्रम विकास के सम्बन्ध में पुस्तकों का अभाव ही सा है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक एक खटकते हुए अभाव की पूर्ति करती है। इससे यूनानी दार्शनिक सुकरात प्लेटो और अरस्तु से लगाकर रोमन आचार्यों के शिक्षा सिद्धान्त और उनसे प्रभावित इसाई मध्य युग के सिद्धान्तों का तथा विकास के विभिन्न युगों की सैर कराते हुए लेखक महोदय हमे मेडम मौन्तिसेरी तक ले आये हैं। लेखक की प्रतिपादन शैली सुगम और सुबोध है किन्तु इसमें कहीं कहीं परिभाषिक शब्दों के अनुवाद चिन्तनीय हैं। जैसे प्रेम मेटिज्म का फलकवाद। इस नाम से उस सिद्धान्त का कोई बोध नहीं होता वरन् यह भौतिक विज्ञान का शब्द लगता जिसका सम्बन्ध फलक (प्रिज्म के पक्ष या चाकू के फल) से मालूम पड़ता है। इसके लिए अर्थक्रियाकारित्व या व्यावहारिकतावाद ऐसा कोई शब्द प्रयुक्त होता। पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न बड़ा जटिल है उसमें विद्वानों के सहयोग की आवश्यकता है। इससे यह न समझा जाय कि सभी शब्द ऐसे है। लेखक ने सिद्धान्तों का विवेचन कर विद्यार्थियों की सुविधा के लिए उनका संक्षिप्त सार भी देदिया है और सहायक पुस्तकों की सूची भी देदी है। पाश्चात्य शिक्षा सिद्धान्तों के क्रम बद्ध इतिहास उपस्थित करने का यह सुन्दर प्रयत्न है। लेखक से हम आशा करते है कि वह शिक्षा सम्बन्धी और भी पुस्तकें हमको देंगे।

—गुलाबराय

राजनीति

राजनैतिक क्षेत्र में मारवाड़ी समाज की आहुतियाँ—लेखक–श्री राधाकृष्ण नेवटिया प्रकाशक–अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन, १५२ बी, हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ ४०७, मूल्य ५)

इस पुस्तक में लेखक ने स्वतन्त्रता के संग्राम में भाग लेने वाले ४८३ मारवाड़ी सज्जनों का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया है। आरम्भ में एक अध्याय में कॉंग्रेस का संक्षिप्त इतिहास है। इस इतिहास में जो चित्र दिये गये हैं यदि वह न दिये जाते तो ही अच्छा था।

जिन सज्जनों के विवरण पुस्तक में संग्रहीत है इनके चित्र भी देने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक को केवल मारवाड़ी समाज तक ही सीमित रखा गया है इसलिये वह सर्व साधारण के प्रेम की वस्तु कम रह गयी है। देश के स्वतंत्रता युद्ध में सम्पूर्ण देश ने ही भाग लिया था। बहुत सी माताओं ने अपनी गोदी खाली करदीं और माँगों के सिंदूर धो डाले और न जाने कितने युवक हँसते हँसते फाँसी पर झूल गये परन्तु उनके विवरण इस ग्रन्थ में नहीं आ सके क्योंकि लेखक महोदय मारवाड़ी पता के बन्धन से बँधे थे। स्वतन्त्रता के उस पावन पुण्य संग्राम के इतिहास में से किसी एक वर्ग या जाति को पृथक करके देखना हम उचित नहीं समझते, हमें तो यह एक प्रकार की साम्प्रदायिकता ही प्रतीत होती है जिसे राजनैतिक क्षेत्र में आश्रय नहीं दिया जाना चाहिये, फिर भी यदि यह पुस्तक मारवाड़ी समाज को देश के प्रति उनके कर्त्तव्य का सामयिक ज्ञान कराने में सहायक हुई तो लेखक का प्रयास सफल कहा जा सकेगा।

—रामनारायण अग्रवाल

धर्म

जैन धर्म—लेखक–श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री प्राक्कथन लेखक माननीय श्री सम्पूर्णानन्दजी शिक्षा-मन्त्री। प्रकाशक–मन्त्री साहित्य विभाग, भा० दि० जैन संघ मथुरा। पृष्ठ संख्या ३७२, मूल्य ४)

धार्मिक सहिष्णुता राष्ट्रीयता का एक प्रमुख अङ्ग है और धार्मिक सहिष्णुता के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न धर्मों का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त करें। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का विशेष महत्व है। इस में जैन धर्म के ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक, दार्शनिक और चारित्रिक आदि सभी पक्षों पर संक्षिप्त परन्तु एक सुसंस्कृत व्यक्ति के लिए पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। जैन-धर्म भारत की ही उपज है और दोनों की संस्कृतियाँ एक सी हैं इसीलिए उपदेशों की समानता के कारण यह भ्रम हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान ऋषभदेव जी के सम्बन्ध में कि ये उपदेश जैन धर्म के ही हैं या हिन्दू धर्म के भी हैं। ऐसा ही मालूम होता है कि भगवान ऋषभदेव की वैराग्यमयी प्रवृत्तियाँ विशिष्ट होकर जैन-धर्म के रूप में आ गई। लेखक ने सम्राट अशोक को भी जैन कहा है। अहिंसा के सम्बन्ध में दोनों धर्मों की शिक्षा-दीक्षा एक सी है। किन्तु 'देवानां प्रिय' जैन राजाओं के लिए ही विशिष्ट उपाधि थी यह युक्ति यदि इतिहास से प्रमाणित होती है तो लेखक की धारणा पुष्ट होती है। इसके लिए ऐतिहासिक खोज की आवश्यकता है। लेखक महोदय इस धारणा का पोषण करते हुए प्रतीत होते हैं कि सम्राट अशोक पहले जैन थे और पीछे बौद्ध हुए। यद्यपि यह बात जैन धर्म के गौरव को बढ़ाने वाली नहीं है कि अशोक ने जैन धर्म को छोड़ा फिर भी यदि यह, ऐतिहासिक सत्य है तो इसको स्वीकार करना चाहिए। सत्य साम्प्रदायिकता से ऊँची वस्तु है।

लेखक महोदय ने एक अध्याय जैन धर्म का भारत के अन्य धर्मों से सम्बन्ध पर भी दिया है। इसमें लेखक ने पाश्चात्य विद्वानों की इस धारणा को कि आर्य लोग बाहर से आये वेद-वाक्य की भाँति सत्य मान लिया है किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी है उसकी ओर लेखक महोदय ने ध्यान देने का कष्ट नहीं किया है। सम्भव है कि अंग्रेजी विद्वानों की ही बात ठीक हो किन्तु सत्य के अन्वेषक के लिए विपक्ष का भी उतना ही ध्यान रखना चाहिए जितना कि पक्ष का। इसी प्रकार प्रोफैसर राधाकृष्णन् के इस मत का कि जैन धर्म उपनिषदों से प्रभावित है का खण्डन करते हुए विदेशी विद्वानों द्वारा निर्धारित उपनिषदों की निर्माण तिथि को सत्य मान लिया है। यदि वह तिथि सत्य मान ली जाय तो उपनिषद अवश्य पीछे के ठहरते हैं। उपनिषद चाहे पीछे के भी रचे गये हों किन्तु उनके सिद्धान्त अलिखित रूप में बहुत काल पूर्व से जब से ऋषि लोग तपोवनों में सामगान करते थे चले आ रहे हैं। वास्तव बात यह है कि जैन धर्म और प्राचीन वैदिक धर्म की एक ही संस्कृति है और यह सिद्ध करना कि किस से किस ने लिया बहुत कठिन है। उपनिषदों के सिद्धान्त यदि अच्छे हैं तो हम को उन्हें भी अपना समझ कर गर्व करना चाहिए। इसी प्रकार हम को जैन धर्म के उच्च सिद्धान्तों पर गर्व करना चाहिए। अनेकान्तवाद में चाहे बाल की खाल हो किन्तु उसका मूल सिद्धान्त हम को सत्य के सभी पहलुओं पर दृष्टिपात करने के लिए बाध्य करता है। जैन धर्म के पंच-महाव्रत और अणुव्रत तथा योग के यम नियम और बौद्धों के शील एक ही संस्कृति के फल हैं। उन पर हम सभी को गर्व है। जैन-धर्म का संक्षेप में प्रामाणिक ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक उपादेय है।

—गुलाबराय

नीम के उपयोग—ले०-केदारनाथ पाठक, प्रकाशक-श्यामसुन्दर रसायनशाला, काशी। पृष्ठ ११२ मूल्य १)

स्वास्थ्य

पुस्तक में नीम के प्रयोग, उसके विविध गुण, रासायनिक तत्व और उसमें पाये जाने वाले विटामिनों के वर्णन के साथ ही नीम पर देशी और विदेशी विद्वानों की सम्मति भी संगृहीत हैं। पुस्तक में नीम के विभिन्न भागों (जड़ पत्तों आदि के) विविध उपयोग और विवरण भी दिये गये हैं। नीम से निर्मित होने वाली औषधियों की विधि भी देदी है।

इस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात हो सकता है कि केवल एक नीम के वृक्ष में ही प्रकृति ने कितने उपयोगी तत्वों का एकत्रीकरण कर दिया है। यदि अन्य वृक्षों के भी अनुसंधान करके इस प्रकार की पुस्तकें लिखी जावें तो इससे मानव समाज के ज्ञानवर्द्धन के साथ ही उसके अनेक रोगों का उपचार तथा विविध आवश्यकताओं की पूर्ति सहज ही हो सकती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि धीरे-धीरे मानव कृत्रिमता का पुतला बनकर प्रकृति से दूर हटता जा रहा है। यदि यह पुस्तक पाठकों को प्रकृति की ओर आकर्षित कर सकी तो इसके लिखने का श्रम फल होगा।

—रामनारायण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

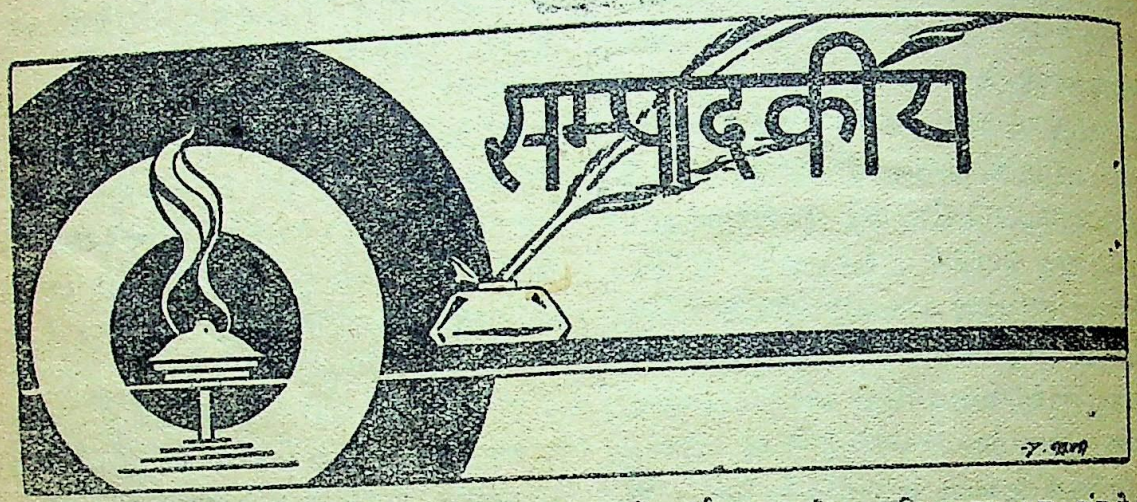

स्वतन्त्र आलोचना—जिस प्रकार सृजनात्मक साहित्य वादों में बटा हुआ है उसी प्रकार और कुछ उसी के अनुकूल आलोचनात्मक साहित्य भी वादों से प्रभावित है। यह साम्प्रदायिकता प्रगतिवादी आलोचकों तथा अन्य आलोचकों में भी पाई जाती है। आलोचक व्यक्तियों से तो कम आकर्षित होते हैं किन्तु वे वर्गों, वादों और सम्प्रदायों से अवश्य प्रभावित होते हैं। यह आलोचना की एकाङ्गिता है। सृजनात्मक साहित्य के वादों और उनसे प्रभावित आलोचकों के सम्प्रदायों के विषय में विद्वद्वर पं० नन्ददुलारे वाजपेई के विचारों को हम वीणा (अप्रैल १९४९) से यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। यद्यपि समालोचक नितान्त पक्षहीन नहीं हो सकता है तथापि उसको अपने वाद के बाहर की कृतियों को भी उतनी ही सहृदयता से देखना चाहिए जितनी कि वह अपने वाद की रचना को देखता है :—

शुक्लजी के पश्चात् हिन्दी समीक्षा कई दिशाओं में आगे बढ़ी है। कितने ही नए समीक्षक क्षेत्र में आए हैं और कार्य कर रहे हैं। नवीन साहित्य के मूल्यांकन में नवीन समीक्षकों ने हाथ बटाया है, और आज हिन्दी के प्रमुख कवियों, नाटककारों और औपन्यासिकों आदि पर विचारपूर्ण निबन्ध और पुस्तकें उपलब्ध हैं। प्राचीन साहित्य का अनुशीलन तथा शोध-सम्बन्धी कार्य भी अग्रसर हुआ है। यह भी हमारे वर्तमान समीक्षा-साहित्य का एक अंग है। स्वर्गीय डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी इस क्षेत्र के समीक्षक थे और हैं। नए साहित्य के समीक्षकों की भी अनेक शैलियाँ हैं और उनकी समीक्षा-दृष्टियों में भी पर्याप्त भेद है। कुछ समीक्षक अधिक भावुक और कल्पना-प्रवण हैं। वे अपनी समीक्षा में भी काव्यात्मक शैली का प्रयोग करते हैं और अपनी मानसिक प्रतिक्रिया को सुन्दर कल्पनाओं और रूपकों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। ऐसे समीक्षकों की समीक्षा में विषय के स्वरूप और उसके भेद-उपभेदों को ग्रहण करने में सहायता भले ही न मिलती हो, पर समीक्षकों की व्यक्तिगत प्रतिक्रिया का मनोरञ्जक अध्ययन अवश्य हो जाता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की समीक्षाएँ इसी श्रेणी की कही जा सकती हैं। डा० रामकुमार वर्मा की समीक्षाओं में भी काव्यात्मकता का सौन्दर्य है, यद्यपि उन्होंने वास्तविक विश्लेषण की ओर भी प्रयत्न किया है। कुछ अन्य समीक्षकों ने ऐतिहासिक विकासक्रम को ध्यान में रखते हुए कवियों की विशेषताओं का विवरण दिया है। उन्होंने रचनाओं तथा रचनाकारों के मानसिक तथा उनके काव्यात्मक सौन्दर्य को भी परखने की चेष्टा की है। कवियों के मानसिक विकास के क्रम उनके रचना सौन्दर्य की प्रगति का उन्होंने धारावाहिक आकलन किया है। उदाहरण के लिये 'हिन्दी साहित्य में बीसवीं-शताब्दी' नामक पुस्तक उपस्थित की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है, जिसमें कवियों की मनोवैज्ञानिक और कलात्मक विशेषताओं को परखने की चेष्टा की गई है।

इधर कुछ समय से वादों या विशेष मतों की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिसके कारण हिन्दी समीक्षा कई सम्प्रदायों में विभक्त होती जा रही है। एक ओर डॉक्टर रामविलास शर्मा और श्री शिवदानसिंह जैसे समीक्षक हैं, जो मार्क्सवादी विचार-पद्धति को अपनाकर समीक्षाएँ लिख रहे हैं। डॉ० रामविलास आरम्भ में ऐतिहासिक विकास और साहित्यिक सौन्दर्य का ध्यान रखकर समीक्षाएँ लिखा करते थे, परन्तु हाल की उनकी समीक्षाओं में अधिक कट्टरता आ गई है। अब वे समस्त काव्य को पूँजीवादी और क्रान्तिवादी काव्य की दो श्रेणियों में विभक्त करने के पक्षपाती हो गये हैं। इस प्रकार की समीक्षा-दृष्टि हमारे काव्य के वास्तविक विकास को परखने में कहाँ तक समर्थ हो सकेगी, यह संदेहास्पद है। समस्त काव्य को दो कठघरों में बंद करने की चेष्टा मेरे विचार से कृत्रिम और साहित्यिक आकलन के लिये अनुपयोगी है।

साहित्य-समीक्षा की इस एकाङ्गी प्रवृत्ति के प्रतिक्रिया स्वरूप समीक्षकों का एक अन्य वर्ग साहित्य के सामाजिक पक्ष को नितान्त अवहेलना कर उसे रचनाकार की अंतर्वृत्ति और अंतश्चेतना की स्वप्नाभिव्यक्ति मानने का पक्षपाती है। स्वप्नवादी समीक्षक-साहित्य के लिये एक असाधारण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का निर्देश करने लगे हैं। श्री इलाचन्द्र जोशी तथा श्री नगेन्द्र इसी प्रकार का समीक्षात्मक अनुशीलन करने लगे हैं। श्री नगेन्द्र मानसिक कुण्ठा को काव्य की प्रेरक बताते हुए लिखते हैं कि यह कुण्ठा जितनी ही विवशता-जन्य यानी व्यक्तिगत परिस्थिति के प्रतिकूल होगी उतनी ही अधिक मन में घुमड़न पैदा करेगी और फिर यह घुमड़न उतने ही अधिक दिवा स्वप्नों की सृष्टि करेगी। नगेन्द्रजी की इस उक्ति को यदि सत्य मान लिया जाय और साहित्य को दिवा-स्वप्न ही समझा जाय तो हमें साहित्य को सार्वजनिक और सांस्कृतिक वस्तु मानने के अपने भ्रम को दूर कर देना पड़ेगा।

हम कह सकते हैं कि हमारे साहित्य-निर्माण में जिस प्रकार की प्रवृत्तियाँ दृष्टि-गोचर हो रही हैं, हमारी साहित्य समीक्षा पर भी उनका प्रभाव पड़ रहा है। परन्तु समीक्षा की सार्थकता बदलते हुए साहित्यिक प्रयोगों और प्रणालियों के पीछे-पीछे चलने में ही नहीं है। हमें साहित्य का नेतृत्व और नियंत्रण भी करना होगा। स्वस्थ विचार-पद्धति, स्वस्थ-मनोविज्ञान, स्वस्थ सामाजिकता तथा सुव्यवस्थित कलात्मक अभिरुचि ही हमारी साहित्य समीक्षा के आवश्यक गुण हो सकते हैं।

संतोष की बात है कि हमारी वर्तमान समीक्षा में ऊपर कही हुई अतिवादी प्रवृत्तियों के होते हुए भी ऐसे समीक्षकों की कमी नहीं है जो किसी वाद के वशवर्ती न होकर स्वतंत्र साहित्यिक समीक्षा में प्रवृत्त हैं और हमारे काव्य-साहित्य के विविध अङ्गों और प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन करा रहे हैं। श्री प्रभाकर माचवे एक ऐसे ही समीक्षक हैं। ऐसे समीक्षकों की स्वस्थ उद्भावना हमारे साहित्य के विकास में सहायक हुई है और भविष्य में भी होगी।

साहित्य के विविध अङ्गों में से किसी एक या दो को अपनाकर विशेषता समन्वित समीक्षाएँ प्रस्तुत करनेवाले समीक्षक भी हिन्दी में हैं। अध्यापक श्री शिलीमुख हिन्दी के उपन्यास और कहानी साहित्य के विशेषज्ञ समीक्षक हैं। संगीत काव्य, नाटक तथा अन्य साहित्यांगों पर भी विश्लेषण-प्रधान पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। उदाहरणार्थ डा० जगन्नाथ प्रसाद की 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' नामक पुस्तकें हिन्दी के एक प्रमुख नाटककार के नाटकों पर प्रकाश डालती है। कुछ समीक्षक शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण कर समीक्षाएँ लिखते हैं और सैद्धान्तिक चर्चाएँ करते हैं। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री गुलाबराय तथा श्री कन्हैयालाल पोद्दार, आदि इसी प्रकार के शास्त्रज्ञ समीक्षक और लेखक हैं। काशी विश्व विद्यालय के संस्कृत अध्यापक श्री बलदेव उपाध्याय की ऐसी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पुस्तक 'भारतीय साहित्य शास्त्र' अभी अभी प्रकाशित हुई है।

हमारी समीक्षा का भविष्य उन प्रतिभा-सम्पन्न और अध्ययन शील तरुण लेखकों पर अवलम्बित है जो समय और समाज की विकासोन्मुख प्रवृत्तियों को पहचानते हैं, साथ ही जो साहित्य की अपनी परम्परा और विशेषता का ज्ञान रखते हैं। सामाजिक जीवन-विकास के साथ साथ काव्य-पद्धति और काव्य-स्वरूप की अंतरङ्ग और प्रशस्त अभिज्ञता रखनेवाले दृष्टि-संपन्न लेखकों के हाथों में ही हमारा समीक्षा-साहित्य सुरक्षित रह सकता है। सन्तोष और प्रसन्नता का विषय है कि ऐसे उदीयमान और प्रौढ़ समीक्षकों की एक अच्छी टोली हिन्दी में आज भी उपस्थित है, जो अपना उत्तरदायित्व समझती है और जो साहित्यिक साधना में संलग्न है। ये नये लेखक हिन्दी के दूरवर्ती क्षेत्रों में बिखरे हुए हैं। संयुक्त प्रान्त में श्री शिवनाथ, श्री विजयशंकर, बचनसिंह, गंगाप्रसाद पांडेय' सत्येन्द्र, अमृतराय, और नरोत्तम नागर मध्यप्रांत में श्री कमलाकान्त पाठक और श्री विनयमोहन शर्मा, बिहार में श्री जानकीबल्लभ शास्त्री, डा० देवराज, श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, श्री नलिन विलोचन शर्मा, राजस्थान में श्री कन्हैयालाल सहल, श्री देवराज उपाध्याय, देहली और पञ्जाब में श्री बलराज साहनी, बंगाल में मोहनसिंह सेंगर, आदि तरुण और वयस्क समीक्षकों के रहते हुए हिन्दी समीक्षा भविष्य के प्रति पूर्णतः आश्वस्त हो सकती है।

अवकाश और अध्ययन

विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षाओं के पश्चात् ग्रीष्मावकाश आरम्भ हो रहा है। ग्रीष्मावकाश जिस प्रकार भौतिक शक्तियों की पूर्ति के लिए आवश्यक है वैसे ही मानसिक क्षितिज के विकास के लिए भी वाञ्छनीय है। जब तक विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के सत्र चलते रहते हैं तब तक अध्ययन एक बँधी और कुछ-कुछ संकुचित प्रणाली में चलता रहता है किन्तु जीवन पाठ्यक्रम की सीमाओं से अधिक विस्तृत है। पाठ्य-क्रम की पूर्ति के लिए विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता रहती है और जीवन की तैयारी के लिए तो अध्ययन के बिस्तार की सीमा नहीं। विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वे आगामी वर्ष के लिए अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकों का पूर्वास्वाद लेकर उनके लिए ग्राहकता उपार्जन करलें। कक्षा के अध्ययन के लिए विषय का पूर्व परिचय अपेक्षित है। हर एक विषय के परिचय के लिए पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ साधारण पुस्तकें भी होती हैं। विद्यार्थीगण ऐसी पुस्तकों की खोज कर उनसे लाभ उठावें। साहित्य संदेश की पिछली फाइलें भी इस कार्य में सहायक होंगी।

हिन्दी में आलोचना साहित्य पर नीचे लिखी पुस्तकें पिछले दिनों निकली हैं—इनसे भी लाभ उठाया जा सकता है—

१—अध्ययन—भागीरथ मिश्र ३)
२—आलोचना के पथ पर—कन्हैयालाल सहल ४)
३—प्रगति और परम्परा—डा० रामविलास शर्मा २॥)
४—विचारधारा—अमरनाथ झा ३॥)
५—संस्कृति और साहित्य—डा० रामविलास शर्मा ३॥)
६—विचारदर्शन—डा० रामकुमार वर्मा (—)
७—साहित्यका—हंसकुमार तिवारी १॥)
८—कामायनी सौन्दर्य—श्री फतेहसिंह एम० ए० २)
९—भारतीय साहित्यशास्त्र—बलदेव उपाध्याय ८)
१०—रामचन्द्रिका—पुरुषोत्तमदास भार्गव २॥)
११—तुलसीदास—चन्द्रवली पाँडे ४॥)
१२—कबीर— " " २॥)
१३—भारतेन्दु की विचारधारा—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय २)
१४—राष्ट्र-भाषा हिन्दी—क्षेमचन्द्र सुमन ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी० जी० फ्रूट प्रिजर्विंग फैक्टरी

गर्मी और जाड़े
हर मौसम में
जी० जी० ब्रान्ड
वस्तुएँ
व्यवहार में लाइये
, लाभ, स्वाद में कोई कमी नहीं होती

फल पेय
नारङ्गी
लेमन
लेमन वार्ली
आम
लाइमजूस कार्डियल

फल शर्बत
सन्तरा, नीबू
स्ट्रोबेरी
फान्सा
मिक्स्ड फ्रूट
जाम, केला, बादाम

स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, सेव, अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेड (Orange Marmalade) तथा
चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके फल सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

जी० जी० चाकलेट फैक्टरी

जी० जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।
इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं॥

गिरधरगोपाल टिन फैक्टरी में

ार गैलन के टिन के अतिरिक्त
ड्रमों, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की
डिब्बियों व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं
ा यंत्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है
जिससे
कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टौय फैक्टरी

फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के अतिरिक्त
आपके बच्चों की
शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये
सामग्री प्रस्तुत करती है।
खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मजबूत

जी. जी. रन ड स्टो ज
आ ग रा

जी० जी० सेन्स डिपो:—
आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृंगराज तेल

मस्तिष्क की पीड़ा, अल्पावस्था में बाल का पकना, नेत्र सम्बन्धी
रोग नष्ट होते हैं और साथ ही दिमाग ठंडा रहता है आंखो की ज्यो
बढ़ती है।

सर्व श्रेष्ठ सुवासों से मिश्रित तथा शास्त्रोक्त ढंग से निर्माण किया
तेल विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त गुणकारी है।

हमारी अन्य उपयोगी औषधियाँ

१ कुमारी आसव—बुखार, शूल, कफ, खांसी के लिये।
२ सौराष्ट्रीय बिन्दु—आँख में डालने की दवा साफ रखने वाली।
३ दंत मंजन—दांत को चमकीले बनाने वाली।
४ द्राक्षासव—ताजगी और स्फूर्ति-दायक स्वादिष्ट पेय।

जामनगर शार्ङ्गधर लेबोरेटरी लि०, जामनगर (सौराष्ट्र)

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

स्थापित १९३१

प्रधान कार्यालय आगरा।

आँकड़े ही उन्नति के [illegible] हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १९४६	...	...रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४७	...	...रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४८	...	...रु० ४२,००,००० से ऊपर।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व ऑर्गनाइजरों
आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

—गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी जनरल मैनेजर

रामचरनलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरा—अप्रेल, १९५० [अङ्क १०

विषय-सूची

सूफी रहस्यवाद (शुक्लजी के आधार पर) श्री कृष्णनन्दन प्रसाद अभिलाषी बी० ए० ३७१
कविता में प्रकृति-वर्णन—श्री गणेशदत्त एम० ए०, साहित्य-रत्न ३७८
तुलसी के गुरु—श्री फूलचन्द जैन 'विशारद' ३८२
रीतिकालीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ—श्री शिवकुमार बालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० (आनर्स) ३८४
भारतेन्दु का नाट्यादर्श—श्री कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंहजी ३९२
'गुञ्जन' में पन्तजी के दार्शनिक विचार—श्री रघुवंश नारायणजी ३९७
रामायण—श्रीमती नीलिमा भागवत ४०१
साहित्य परिचय ४०२

प्रकाशक—
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मू
एक अङ्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती हैं जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

१—सिद्धान्त और समीक्षा— २॥)

कविता

२—विभावरी—श्री श्यामनन्दन प्रसाद 'किशोर' १॥)

३—नीलिमा—प्रो० गौरीशङ्कर मिश्र २)

उपन्यास

४—दुश्चरित्र—श्री मन्मथनाथ गुप्त ३॥)

५—संघर्ष और समर्पण—कन्हैयालाल ओझा एम० ए० ५॥)

कहानी

६—रण अभियान—अयोध्याप्रसाद झा० १।)

७—चाय का रंग—देवेन्द्र सत्यार्थी ४॥)

८—रेखाएँ बोल उठीं— ३)

राजनीति

९—सत्याग्रह और विश्व शान्ति—रंगनाथ दिवाकर १॥।)

१०—गांधी गीता—प्रो० इन्द्र एम० ए०, २)

११—बापू की कारावास कहानी—डा० सुशीला नैयर १०)

१२—सबके बापू—हरिभाऊ उपाध्याय ॥)

१३—पुण्य स्मरण " " २॥)

१४—राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद—प्रो० शिवपूजनसहाय २॥)

नाटक

१५—पारिजात मंजरी—प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा १॥)

१६—सुख किसमें—गोविन्ददास २)

१७ राम से गांधी—गोविन्ददास ४॥)

१८—ईशावास्य वृत्ति—विनोबा १)

मनोविज्ञान

१९—चिन्ता—डा० जॉन कैनेडी १)

२०—अध्ययन कैसे करें—डब्ल्यू कार्न हॉसर १)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की

प्रथमा, मध्यमा, और उत्तमा की

विवरण पत्रिकाएँ मुफ़्त मँगायें

संवत् २००७ से २००९ तक की संक्षिप्त विवरण पत्रिकाएँ जो अभी-अभी हमने प्रकाशित की हैं मुफ्त मँगाकर लाभ उठाएँ। कृपया यह स्पष्ट लिखें कि आपको कौनसी विवरण पत्रिका चाहिए।

सम्मेलन से प्रकाशित सम्पूर्ण विवरण पत्रिका के लिए १॥) मनीआर्डर से भेजें।

हमारे यहाँ इन परीक्षाओं की समस्त पुस्तकें मिलती हैं।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ११] आगरा —अप्रल, १९५० [अङ्क १०

सूफी-रहस्यवाद

(शुक्लजी के आधार पर)

श्री कृष्णनन्दनप्रसाद अभिलाषी बी० ए०

भारतीय परम्परा के अन्तर्गत 'अद्वैतवाद' का रूपण आर्य जाति (भारती और यूनानी) के चिन्तकों द्वारा दार्शनिक पद्धति पर हुआ है। तः इस 'अद्वैतवाद' के मूल में दार्शनिक सिद्धान्त । वह मनुष्य के बुद्धि-प्रयास या तत्व चिन्तन का ल है। वह ज्ञान-क्षेत्र की वस्तु है। भारत में तो यह ान-क्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञान क्षेत्र में ही ः पर अरब, फारस तथा योरोप में जाकर यह ानक्षेत्र के बीच मनोहर रहस्य-भावना के रूप में ला। इसका कारण यह था कि सभी पैगाम्बरी मतों यहूदी-ईसाई-इसलाम) में तत्वचिन्तन या ज्ञान- ावाद का समावेश न था। उसमें मनुष्य की स्वाभा- िक बुद्धि या अक्ल का दखल न था। अतः जब क मतों में स्थूल एकेश्वरवाद (जो वास्तव में 'देववाद' ही है) के स्थान वह प्राचीन-आर्य-दर्शनिकों द्वारा प्रतिपादित 'सर्ववाद' (Panthiesm) लेने की आवश्यकता हुई, तब वह बुद्धि द्वारा प्रस्तुत ज्ञान के रूप में तो लिया नहीं जा सकता था—इससे वह ईश्वर द्वारा रहस्यात्मक ढङ्ग से प्रेषित ज्ञान के रूप में ही लिया गया। उस प्रकार भारतीय अद्वैतवाद का ग्रहण (आध्यात्मिक ज्ञानोपलब्धि का ग्रहण) रहस्यवाद के रूप में हुआ। इस स्वरूप में पहुँचकर वह धार्मिक विश्वास में बाधक नहीं समझा गया। इसके परिणाम स्वरूप जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की वे ही बातें जो यूनान या भारत के प्राचीन दार्शनिक कह गये थे—विलक्षण रूपकों द्वारा कुछ दुर्बोध और अस्पष्ट बनाकर उनके सन्त लोग (ईसाई सन्त तथा सूफी-फकीर) कहा करते थे। अस्पष्टता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असम्बद्धता इसलिए आवश्यक था कि तत्थ्यों का साक्षात्कार छाया रूपों में ही माना जाता था। इस प्रकार भावात्मक और ज्ञानात्मक रहस्यवाद का प्रयत्न हुआ।

उपरोक्त कारण से ही पाश्चात्य दृष्टि में भारतीय भक्तिमार्ग रहस्यवाद के अन्तर्गत ही दिखाई पड़ती है। 'उपनिषदों' के ज्ञान को जो कुछ पाश्चात्य लेखकों ने रहस्यवाद की कोटि में रखा है, वह उनका भ्रम या दृष्टि सङ्कोच है।' बात यह है कि उस प्राचीन काल में दार्शनिक विवेचन को व्यक्त करने की व्यवस्थित शैली नहीं निकली थी। जगत और उसके मूल कारण का चिन्तन करते-करते जिस तथ्य तक वे पहुँचते थे उसकी व्यञ्जना वे अनेक प्रकार से करते थे। जैसे आजकल किसी गंभीर विचारात्मक लेख के भीतर कोई मार्मिक स्थल आजाने से लेखक की मनोवृत्ति भावोन्मुख हो जाती है—और वह काव्य के भावात्मक शैली का अवलम्बन करता है, उसी प्रकार उन प्राचीन ऋषियों को भी विचार करते-करते गम्भीर मार्मिक तथ्य पर पहुँचने पर भावोन्मेष हो जाता था और वे अपनी उक्ति का प्रकाश रहस्यात्मक और अनूठे ढङ्ग से कर देते थे।

हमारे यहाँ भक्ति-मार्ग, ज्ञान-मार्ग और योगमार्ग से भिन्न है। 'भक्ति मार्ग शुद्ध हृदय की भावना लेकर चलता है। इसी से भारतीय भक्त रहस्यवाद को अपने रास्ते का कंटक समझते हैं। ज्ञान मार्ग शुद्ध-बुद्धि की स्वाभाविक क्रिया अर्थात् चिन्तन पद्धति का आश्रय लेता है—और योग-मार्ग चित्त की वृत्तियों को अनेक प्रकार के अभ्यासों द्वारा अस्वाभाविक (Abnormal) बनाकर अनेक प्रकार की अलौकिक सिद्धियों के बीच होता हुआ अन्तःस्थ ईश्वर तक पहुँचना चाहता है।' अतः हमारे यहाँ जो रहस्यवाद पाया जाता है वह योग का साधात्मक और क्रियात्मक रहस्यवाद हैं। तन्त्र-मन्त्र, रसायन आदि भी साधनात्मक रहस्यवाद हैं—पर निम्नकोटि के। इसी साधनात्मक और क्रियात्मक रहस्यवाद का विकास यहाँ हुआ। इसके विकास में बौद्धों ने बहुत कुछ योग [illegible] हठयोग की परम्परा बौद्धों की ही थी। मत्स्येन्द्र शिष्य गोरखनाथ ने उसे शैव रूप दिया—[illegible] पन्थ के अनुयाइयों ने भारतीय भक्तिमार्ग [illegible] बाधा पहुँचाई थी; फल स्वरूप भक्ति लोगों [illegible] से तिरोहित होती हुई दिखाई पड़ने लगी; [illegible] इसका साफ उल्लेख किया है 'गोरख जगाये भक्ति भगायो लोग।' अरब और फारस का [illegible] रहस्यवाद—[illegible] समें हृदय की भावुकता थी—जब सूफी हिन्दुस्तान पहुँचे तब उन्हें यहाँ [illegible] सम्प्रदाय मिली इसी से उन्होंने हठयोग की [illegible] बड़ी उत्कण्ठा के साथ अपने सम्प्रदाय में [illegible] किया। जायसी आदि सूफी कवियों की पुस्तकों [illegible] और रसायन की बहुत सी बातें बिखरी मिल [illegible] अतः जिस समय वे यहाँ आए उन्हें रहस्य [illegible] 'हठयोगियों' (साधनात्मक योग), रसायनि [illegible] तांत्रिकों (क्रियात्मकयोग—रहस्य वाद) में [illegible] पड़ी। हठयोग की तो अधिकांश बातों का [illegible] उन्होंने अपनी साधना पद्धति में कर लिया [illegible] योगियों या नाथ पन्थियों की तीन बातें [illegible] सूफियों और निर्गुण मतवाले सन्तों को अपने [illegible] दिखाई पड़ी—(१) रहस्य की प्रवृत्ति (२) [illegible] केवल मन के भीतर समझना और ढूँढना [illegible] बाहरी पूजा और उपासना का त्याग।'

'सूफियों की देखा-देखी उनके मेल का [illegible] मार्ग निर्गुण पन्थ' के नाम से कबीर के [illegible] चला उसमें भी रहस्य की प्रवृत्ति (भक्तों में [illegible] ज्ञान के आरोप द्वारा सामान्य [illegible] कौतूहल उत्पन्न करने की प्रकृति) पूरी-पूरी [illegible] "कबीर ने भारतीय उपनिषदों में [illegible] प्रतिपादित [illegible] और सूफियों की प्रेमभावना मिलाकर जो [illegible] तैयार किया था उसमें भी इड़ा पिंगला सुषुम्ना तथा भीतरी भक्तों की पूरी चर्चा है। कबीर [illegible] पन्थ में योगियों के स्वान्तःस्थ ईश्वर का भी [illegible] कर लिया। अतः 'निर्गुण-सम्प्रदाय' [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगियों को स्वान्तःस्थ-ईश्वर तथा सूफियों की ...-इन तीनों के समिश्रण का फल है। ...ी को, जान या अनजान में, सम होकर ...के प्रेम मार्ग का एक नया और विलक्षण ...तैयार हुआ। उक्त पन्थ की वाणी जहाँ प्रेमभाव ...ना करती है, वहाँ तो सूफी ढंग पूरा पूरा रहता ...जहाँ वहँ ज्ञानोन्मुखी होती है, वहाँ योगियों ...पुरुष वेदान्तियों का रंग चढ़ा रहता है। इस ...का ढाँचा सूफी ही रहा केवल उपास्य का स्वरूप ...के निर्गुण परब्रह्म' का भी ग्रहण कर लेने से ...स्थित हो गया। कबीर में 'माधुर्य-भाव' भी ...ही पाया जाता है—'हरि मोर पिय, मैं राम ...हुरिया।' यह सूफियों के प्रभाव का ही फल है।

अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद के दो पक्ष हैं पहला है ...ा और परमात्मा की एकता का रूप और दूसरा ...और जगत की एकता का रूप। दोनों मिलकर ...वाद की प्रतिष्ठा करते हैं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सभी ...पैगम्बरी मतों—(यहूदी-ईसाई तथा इस्लाम की धर्म ...सत्ता तथा भक्ति मार्ग)—में जब अद्वैतवाद का ...रहस्यात्मक ढंग पर हुआ तब सूफियों और पुराने ...भक्तों ने उपासना के क्षेत्र में प्रथम पक्ष को ही ...नाया। पर सूफियों ने भाव पक्ष में जाकर दूसरे ...को ग्रहण किया। और प्रकृति की नाना विभूतियों ...में उस ब्रह्म की छवि का अनुभव करने लगे।" ...चलकर—जब ईसा की १६ वीं शताब्दी में ...रहस्यात्मक कविता का पुनरुत्थान योरोप के कई प्रदेशों ...हुआ तब उसमें सर्ववाद का (Panthiesm) ...और जगत की एकता का भी बहुत कुछ आभास ...। इस प्रकार ईसाइयों ने भी भावक्षेत्र में दूसरे ...को अपनाया।

उपरोक्त विवेचन के अनुसार सभी पैगम्बरी मतों में ...अद्वैतवाद के दो रूप हुए—एक साधनात्मक ...आत्मा और परमात्मा की एकता) और दूसरा ...(ब्रह्म और जगत की एकता)। इसी के क्रमानुसार रहस्यवाद भी दो प्रकार का होता है—(१) साधनात्मक और (२) भावात्मक। हमारे यहाँ का योग मार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। तंत्र और रसायन जो वास्तव में क्रियात्मक रहस्यवाद है—साधनात्मक रहस्यवाद ही हैं, पर निम्न कोटि के "भावात्मक रहस्यवाद की भी कई श्रेणियाँ हैं जैसे, भूत, प्रेत की सत्ता मानकर चलने वाली भावना अथवा परम पिता के रूप में एक ईश्वर को सत्ता मानकर चलने वाली भावना स्थूल रहस्यवाद के अन्तर्गत होगी। किन्तु, अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद को लेकर चलने वाली भावना से सूक्ष्म और उच्चकोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।" सर्ववाद को लेकर जब भक्त की मनोवृत्ति रहस्योन्मुख होगी। तब वह अपने हृदय को जगत् के नाना रूपों के सहारे उस परोक्ष-सत्ता की ओर ले जाता हुआ जान पड़ेगा। वह खिले हुए फूलों में, सुन्दर मेघ-माला में, निखरे हुए चन्द्र बिंब में, शिशु के स्मित आनन में उसके सौन्दर्य का, गम्भीर-मेघ-गर्जन में बिजली की कड़क में, भूकम्प आदि प्राकृतिक विप्लवों में उसके रौद्र-मूर्ति का, संसार के समान्य वीरों, परोपकारियों और त्यागियों में उसकी शील-शक्ति आदि का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार अवतारवाद का मूल भी रहस्य भावना ही ठहरती है।

गीता के दसवें अध्याय में—सर्ववाद का भावात्मक प्रणाली पर निरूपण है। वहाँ भगवान ने अपनी विभूतियों का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। पर अवतार के सिद्धान्त रूप में ग्रहित होने पर, राम-कृष्ण के व्यक्त ईश्वर विष्णु के अवतार स्थिर होने पर, रहस्य दशा की एक प्रकार से समाप्ति हो गई। फिर राम और कृष्ण का ईश्वर के रूप में ग्रहण व्यक्तिगत रहस्य-भावना के रूप में नहीं रह गया। वह समस्त जन-समाज के धार्मिक विश्वास का एक अंग हो गया। इसी व्यक्त-जगत के बीच प्रकाशित राम-कृष्ण लीला भक्तों के भावोद्रेक का विषय हुई। अतः राम-कृष्णोपासकों की भक्ति रहस्यवाद की कोटि में नहीं आती है। पर श्रीमद्भागवत के उपरान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण-भक्ति को जो रूप प्राप्त हुआ उसमें रहस्य-भावना की गुञ्जाइश हुई। भक्तों की दृष्टि से जब धीरे-धीरे कृष्ण का लोक-संग्रही रूप हटने लगा और वे प्रेम मूर्ति-मात्र रह गए, तब उनकी भावना एकान्तिक हो चली। गोपियों का प्रेम जिस प्रकार एकान्त और रूप माधुर्य मात्र पर आश्रित था। उसी प्रकार भक्तों का भी हो चला। यहाँ तक कि कुछ राम-भक्तों में भगवान् के प्रति उसी रूप का प्रेम भाव (भगवान को प्रियतम के रूप में ग्रहण करना) स्थान पाने लगा जिस रूप का गोपियों का कहा गया था। यहीं से 'माधुर्य-भाव का श्री गणेश समझना चाहिए। बड़े-बड़े मन्दिरों में देवदासियों की जो प्रथा थी, उससे इस 'माधुर्य-भाव' को और भी सहारा मिला। 'अंदाल' ऐसी ही एक प्रसिद्ध भक्तिन हो गई है। इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य और स्वाभाविक है। पर भारतीय भक्ति का सामान्य-स्वरूप रहस्यात्मक न होने के कारण इस 'माधुर्य-भाव' का अधिक प्रचार नहीं हुआ।

इस 'माधुर्य-भाव' का समावेश सूफियों तथा ईसाइयों में भी हम पाते हैं। "जिस प्रकार सूफी 'हाल' की दशा में उस माशूक से भीतर ही भीतर मिला करते थे, उसी प्रकार पुराने ईसाई भक्त साधक भी दुलहने बनकर उस दुलहे से मिलने के लिए अपने अन्तर्देश में, कई खण्डों के रङ्ग महल तैयार किया करते थे।" सूफियों के इस 'माधुर्य-भाव' का प्रभाव कुछ कृष्ण भक्तों पर भी पड़ा। 'मीराबाई' इस पद्धति की प्रसिद्ध भक्तिन हो गई है। इसके साथ ही साथ "चैतन्य महा-प्रभु में भी सूफियों की प्रवृत्तियाँ साफ चमकती हैं, जैसे सूफी कव्वाल गाते-गाते 'हाल' की दशा में हो जाते हैं। वैसे ही महा-प्रभु की मण्डली भी नाचते-नाचते मूर्छित हो जाती थी। कृष्ण की मधुर-मूर्ति ने कुछ आजाद सूफी फकीरों को भी आकर्षित किया। नजीर अकबराबादी ने खड़ी बोली के अपने बहुत से पद्यों में कृष्ण का स्वरूप प्रेमालंबन के रूप में किया है।" ईसाई धर्म में माधुर्य भाव की प्रसिद्ध भक्तिन 'सैफो' और सेंट टेरेसा (Theresa) आदि कई हो गई हैं।

कबीरदास में जो 'रहस्यवाद' पाया जाता वह अधिकतर सूफियों के प्रभाव के कारण। कबीर पर इस्लाम के कट्टर 'एकेश्वरवाद' और के 'मायावाद' का रूखा संस्कार भी पूरा-पूरा उनमें 'वाक्यातुर्य था, प्रतिभा थी, पर प्रकृति के में भगवान् की कला का दर्शन करने वाली न थी।" इसका कारण, उनके 'निर्गुन पन्थ' वेदान्त के ब्रह्मवाद और हठयोग, के शुष्क सिद्ध का समावेश था। इसी शुष्कता ने उनके काव्य वह माधुर्य तथा भावुकता न आने दी जो सूफी जायसी में पूर्ण रूप में थी। "जायसी कवि थे भारवर्ष के कवि थे। भारतीय पद्धति के कवियों दृष्टि फारस वालों की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं व्यापारों पर कहीं अधिक विस्तृत तथा उनके मर्मस्थ एवं रूपों को कहीं अधिक परखने वाली होती है।

जायसी की भावुकता का दूसरा कारण सूफियों की भक्ति-पद्धति थी। वे सूफी की इसी भक्ति-भावना—भावनात्मक रहस्य जिसमें हृदय की भावुकता अधिक तीव्र थी—के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखते जगत् के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप, गुण की छाया देखते हैं। और कहीं सारे प्राकृतिक दृश्य और व्यापारों का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के शृङ्गार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं। दूसरे प्रकार की भावना 'पद्मावत' में अधिक मिलती है। 'पद्मावत' के ढंग के रहस्यपूर्ण प्रबन्धों की परम्परा जायसी के पहले की है। 'मृगावती' 'मधुमालती' आदि की रचना जायसी पहले हो चुकी थीं। और उनके पीछे भी ऐसी रचनाओं की परम्परा चली। कबीरदास में यह बात नहीं है। उन्हें बाहर जगत् में भगवान् की रूप-कला नहीं दिखाई देती। वे सिद्धों और योगियों के अनुकरण पर ईश्वर को केवल अंतस में बताते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मोको कहाँ ढूढ़ै बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे-कलारा मैं ॥'

जायसी ने भी कहीं-कहीं उसे भीतर ही बताया है।

'पिउ हिरदय महँ भेंट न होई।
को रे मिलाव, कहौं केहि रोई ॥'

इसका कारण सूफीमत में योग के साधनात्मक पक्ष (हठ योग) का समावेश था।

कबीर में जायसी की तरह—न वह चित्रों (Imagery) की अनेक समता है और न वह भावुकता ही—वह मधुरता ही जायसी ने अपने भावनात्मक रहस्यवाद में प्रेम की पीर दोनों ओर से ('पद्मावत' में) से दिखाई है। पर कबीर में केवल जीव की प्रतीक स्वरूपा स्त्री की ओर से ही।

जायसी का वियोग पक्ष बहुत ही व्यापक है। वियोग की ज्वाला के कारण उसके अन्तर दाह के कारण सारी प्रकृति ही उस ज्वाला में जलती सी जान पड़ती है। देखिए रत्नसेन (परमात्मा) से नागमति (आत्मा, जीव, व्यक्ति) का वियोग कितना लोक व्यापी है—

कुहुकि कुहुकि जस कोयल रोई।
रकत आँसू घुँघची बन बोई ॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होई बन बासी।
तहँ तहँ होइ घुँघची कै रासी ॥
बूँद बूँद महँ जानहु जीऊ।
गूँजा, गूँज करै, पिउ पिऊ ॥

नागमती वियोगनी है अतः उसे सारी प्रकृति ही वियोग जन्य जान पड़ती है। यह स्वाभाविक है। व्यक्ति अपनी भावनाओं के अनुसार ही जगत को देखा करता है। अथवा यों कहिए कि व्यक्ति की भावना ही, उसके विचार की प्रतिछाया ही यह जगत है। इसी भाव का एक उदाहरण हम 'दिनकर' के 'द्वन्द्व गीत' में भी पाते हैं। कवि की आत्मा ईश्वर से दूर है। माया ने दोनों के बीच अपना व्यवधान डालकर दोनों को अलग-अलग कर दिया है। यद्यपि जीव ईश्वर अंश है—ईश्वर अंश जीव अविनासी—पर फिर भी वह आज परम-पिता परमेश्वर से विमुक्त है। इस वियोग के ही कारण कवि की प्रकृति के सारे व्यापारों में उसी वियोग-जन्म व्याकुलता की छाप मिलती है जिससे वह स्वयं घायल है। अतः उसकी वेदना फूट पड़ती है—

"तारे लेकर जलन मेघ
आँसू का पारावार लिए।
संध्या लिए विषाद, पुजारिन
ऊषा विकल उपहार लिए।
हँसे कौन! तुझको तजकर
जो चला वही हैरान चला।
रोती चली ब्यार, हृदय में
मैं भी हाहाकार लिए।"

जायसी के रहस्यवाद के विषय में शुक्लजी कहते हैं—"हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बड़ी ही उच्च कोटि की है। पर "इस अद्वैती रहस्यवाद के अतिरिक्त जायसी कहीं-कहीं उस रहस्यवाद में भी आ फँसे हैं जो पाश्चात्यों की दृष्टि में 'झूठा रहस्यवाद है। उन्होंने स्थान-स्थान पर हठयोग रसायन आदि का भी आश्रय लिया है।"

शुक्लजी ने रहस्यवाद के तीन रूप कहे हैं—उनमें पहला है भावोपलब्धि के साधन के रूप में—भक्ति रस में यह रहस्य प्रकृति ईश्वर को कुछ ज्ञात और कुछ अज्ञात भूमि में रख कर उनके महत्व और असीमता की भावना करने में—जिसे अचिन्त्यैश्वर्य-योग कहते हैं—काम आती है। यह भावना ईश्वर को जितना ही अधिक अज्ञात की ओर रखकर होगी उतनी ही रहस्यात्मक कही जायगी। ऐसी भावना में कुतूहल या आश्चर्य प्रधान भाव होगे।

दूसरा है ज्ञानोपलब्धि के साधन के रूप में—इसमें रहस्य ज्ञानी-भक्त अथवा रहस्यवादी कवि प्रकृति के रंग-रूप को लेकर तरह-तरह के विरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता में प्रकृति-वर्णन

श्री गणेशदत्त एम० ए० साहित्य-रत्न

आचार्य शुक्ल के अनुसार कविता वह साधन है जिसके द्वारा मानव का शेष सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध स्थापित होता है। शेष सृष्टि के अन्तर्गत मानव और मानवेतर सभी वस्तुएँ आती हैं। एक जिज्ञासु के मस्तिष्क में प्रश्न उठ सकता है कि मनुष्य ने कविता में प्रकृति का वर्णन क्यों अनिवार्य समझा? इस प्रश्न का समाधान आसान नहीं फिर भी निम्न लिखित कुछ कारण हो सकते हैं—

१—आधुनिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य पशुओं की तरह जीवन यापन करता था और वास्तव में जिन विकासावस्थाओं में होकर इसे निकलना पड़ा उससे यही सिद्ध होता है कि वह स्वयं इस जड़ प्रकृति का कभी एक अंग था। मानव ने ज्ञानावस्था और अज्ञानावस्था दोनों में ही प्रकृति के साथ लाखों वर्ष क्रीणाएँ की हैं और वही क्रीणाएँ संस्कार वश साकार रूप में कवि कल्पना में प्रगट हो उठती है।

२—इस विराट-विश्व के प्रथम प्रहर में जब मनुष्य ने आँख खोली तो अपने को प्रकृति की गोद में खेलता हुआ पाया। उसे एक कौतूहल हुआ और वह अपने को रोक न सका, हृदय का बाँध टूट गया और उद्गारमयी कविता वैदिक ऋचाओं में फूट निकली। मानव की मूकवाणी का प्रथम प्रस्फुटन कविता के रूप में हुआ, और प्रकृति के प्रति एक कौतूहल की भावना हुई। वास्तव में प्रकृति स्वयं ही एक उच्चकोटि की कविता है जिसकी प्रत्येक साँस मानव-हृदय में भिन्न भिन्न प्रकार के रसों का संचार करती है।

३—मानव, सभ्यता की प्राथमिक अवस्था में, प्रकृति के आधीन था। उसके हृदय में एक आतंक छाया हुआ था। प्रकृति उसके लिये एक अज्ञेय अलौकिक शक्ति के रूप में प्रगट हुई। मानव परिस्थिति के कारण नत-मस्तक हुआ और प्रकृति में दैवत्व की स्थापना कर बैठा। उसी अलौकिक शक्ति में उसे विश्वास था और अपने को उसके सन्मुख हीन और नगण्य समझता था। प्रकृति उसके लिये जीवन-दायिनी प्रमुख शक्ति थी। इस देवी तथा परोपकारी भावना के कारण भी मनुष्य ने कृतज्ञता के गान गाये। एमर्सन के शब्दों में "साहित्य, कविता और विज्ञान प्रकृति देवी के चरणों में मनुष्य की श्रद्धाञ्जलि है।"

४—मनुष्य सौन्दर्य का उपासक है क्योंकि इससे उसे आनन्द प्राप्त होता है और आनन्द ही उसके जीवन का उद्देश्य है। प्रकृति अपने में पूर्ण है। सर्वत्र सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। उसके मानवी सौन्दर्य के वर्णन के लिये प्रकृति से उपमाओं का संकलन किया। प्रकृति से सौन्दर्य ही नहीं स्वर भी लिये, संगीत की ध्वनियाँ (स र ग म) इसके प्रमाण है। यह ध्वनियाँ क्रमशः मोर गाय, अज और कोयल से ली गई हैं।

५—प्रकृति मानव हृदय का दर्पण है, उसकी हृदय गत भावनाओं का प्रति रूप है। मानव के हृदय में सुन्दर सुकुमार भावनाएँ हैं, प्राणों में ओज और

और अलौकिक चित्र खड़ा कर यह धारणा उत्पन्न करना चाहते हैं कि हमारी दिव्य कल्पना उस असीम तक पहुँचा करती है।

और तीसरा है अर्थोपलब्धि के साधन के रूप में—योग की अनेक प्रकार की अलौकिक सिद्धियाँ—यंत्र-तंत्र-मंत्र आदि इसी कोटि के हैं।

पाश्चात्य दृष्टि में अन्तिम रूप ही झूठा रहस्यवाद है। पर शुक्लजी दूसरे को भी उसी कोटि में रखते हैं क्योंकि उसकी धारणा ठीक नहीं है। काव्य में इसे चित्रण का कुछ मूल्य है अवश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुर्य्य का योग है। उसमें जिस प्रकार दो विरोधी भावों का जैसे-हर्ष विषाद, आकर्षण विकर्षण, सुख-दुख और दया क्रोध आदि का अजस्र स्रोत बहता रहता है उसी प्रकार प्रकृति में भी सुन्दर असुन्दर और सौम्य तथा विकराल रूप रहते हैं। मानव ने इस एक रूपता को पहिचाना और उनका वर्णन करके वर्णोन्नता का परिचय दिया।

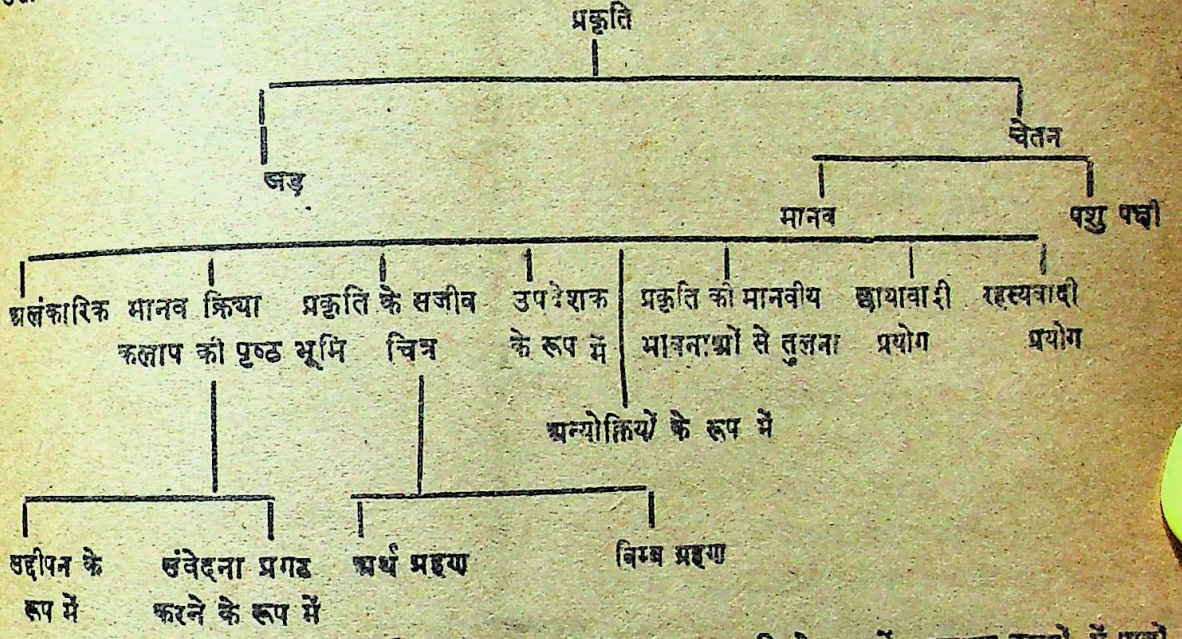

प्रकृति जड़ और चेतन दो भागों में विभक्त है और दोनों भागों का ही विशद वर्णन कविता में देखने को मिलता है। जड़ प्रकृति युग युगान्तर से मनुष्य के आकर्षण का रूप रही है और उसका वर्णन भी भिन्न भिन्न प्रकार से हुआ है।

अलंकारिक—संस्कृत और हिन्दी काव्य में अलंकारिक ढंग को बहुत अपनाया है। इस अलंकारिक वर्णन में सादृश्य को अधिक लिया गया है। इसके अन्तर्गत उपमा रूपक उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति आदि अलङ्कार आते हैं। वास्तव में इस प्रकार के वर्णन का उद्देश्य विषय का आँखों के सम्मुख चित्र उपस्थित करना है किन्तु बाद में अति ने इसको एक मजाक बना दिया और ऐसी ऐसी उपमाएँ दी जाने लगी जिनमें मानसिक व्यायाम करना पड़ता था। तुलसी की अलङ्कार योजना देखें:—

नील-सरोरुह, नीलमनि, नील नीरधर श्याम।
लाजहिं तनुशोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम॥

पृष्ठ भूमि के रूप में—प्रबन्धक काव्यों में पात्रों के क्रिया कलाप के अनुकूल पृष्ठ भूमि देने की आवश्यकता होती है, इस कारण प्रकृति का वर्णन भी इस प्रकार से किया जाता है कि वह उनके क्रिया कलाप में सहायक हो और वातावरण उस कथा के विषय के अनुकूल हो जाय। इससे क्रिया कलाप, भाव एवं विचार को समझने में सहायता मिलती है।

ठौर ठौर अनेक अध्वर-यूप है,
जो सुसंवत के निदर्शन रूप है।
राघवों की इन्द्र मैत्री के बड़े,
वेदियों के साथ साक्षी से खड़े।

सूर ने रास क्रीड़ाओं के लिए चन्द्र, ज्योत्स्ना, जमुना पुलिन का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। ऐसे वर्णन उद्दीपन के अन्तर्गत आते हैं, षड्-ऋतु वर्णन की परम्परा उद्दीपन के ही कारण चली।

इसके साथ ही प्रकृति का सम्वेदनात्मक रूप है। प्रकृति भी मानव की प्रसन्नता में प्रसन्न और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख में दुःखी दिखाई देती है। संवेदनात्मक वर्णनों में जायसी और सूर सबसे आगे है।

देखियत कालिन्दी अति कारी
कहियो, पथिक! जाय हरि सों
ज्यों भई विरह जुर-जारी।

प्रकृति के सजीव चित्रण—प्रकृति का चित्रण उद्दीपन के दृष्टि से न होकर जब आलम्बन की दृष्टि से किया जाता है तो उसका वास्तविक चित्र उतारना पड़ता है। भारतीय काव्य में वे दो प्रकार से वर्णन किये गये हैं। अर्थग्रहण और बिम्ब ग्रहण। संस्कृत साहित्य में कालिदास और भवभूति प्रकृति-दृश्य वर्णन में सबसे आगे थे। हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी ने संश्लिष्ट योजना की है मगर रीतिकालीन कवि इसमें पूर्ण सफल नहीं हुये। खड़ी बोली में इसका प्रारम्भ श्रीधर पाठक से होता है।

अर्थ ग्रहण में केवल वस्तुओं के नाम गिना दिये जाते हैं। चित्र उपस्थित नहीं किया जाता।

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल लकुच बकुल कुल केरि नारियर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै।
सारी शुककुल कलितचित्त कोकिल अविमोहै।

उपरोक्त वर्णन में एला, लवंग और पुंगीफल का बिहार के जङ्गलों में होना असंभव है फिर भी कवि ने उनका वर्णन किया है जो ठीक नहीं है। ऐसे वर्णनों में ऋतु, स्थान को देखकर वर्णन करना चाहिये।

बिम्ब ग्रहण में प्रकृति का चित्र नेत्रों के सामने उपस्थित किया जाता है केवल नाम नहीं गिनाये जाते। कवि प्रकृति के निसर्गदत्त सौन्दर्य और उल्लास का चित्रण करता है।

चारु चन्द्र की चञ्चल किरणें
खेल रही हैं जल थल में।
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है,
अवनि और अम्बर तल में॥
पुलक प्रगट करती है धरती,
हरित तृणों की नोकों में।
मानो झूम रहे हैं तरु भी,
मन्द पवन के झोंकों से॥

सौन्दर्य वर्णन के साथ प्रकृति के विकराल भयङ्कर रूप को देखिये:—

पञ्चभूत का भैरव मिश्रण,
शंपाओं के सकल निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ,
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात॥
× × ×
धंसती धरा धधकती ज्वाला,
ज्वालामुखियों के निश्वास।
और संकुचित क्रमशः उसके,
अवयव का होता था ह्रास॥

उपदेशक के रूप में—प्रकृति और मानव में अधिक सामंजस्य है इसलिये प्रकृति के भिन्न भिन्न दृश्यों को लेकर उनसे कवि ने उपदेश ग्रहण किये हैं अथवा उनका उपयोग दृष्टान्त-निरूपण के लिये किया है। इस प्रकार के वर्णनों के विषय में आलोचक एक मत नहीं हैं कुछ उन्हें ठीक नहीं समझते और कुछ उन्हें उपयोगी समझते हैं। तुलसी जैसे उच्चकोटि के कवि ने ऐसे वर्णन किये हैं:—

दामिन दमकि रही घन मांही,
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं।

तुलसी का शरद वर्णन दृष्टान्त-निरूपण के लिये देखिये:—

फूले कमल सोह सर कैसे,
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसे॥
× × ×
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी,
जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी॥

अन्योक्ति के रूप में—अन्योक्ति पद्धति ने साहित्य में अपना विशेष स्थान बना लिया है, जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अन्योक्ति अलङ्कार के अन्तर्गत आती है परन्तु किसी विशेष के ऊपर रख कर कही हुइ उक्ति से हम दूसरा ही अर्थ लगाते हैं इस कारण इस प्रकार के प्रयोगों को पृथक स्थान देना ही ठीक है। दीनदयालगिरि की अन्योक्तियाँ साहित्य क्षेत्र में विशेष स्थान प्राप्त कर चुकी हैं:—

रम्भा! झूमत हो कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते हैं गये, अरु ह्वै हैं इहि खेत॥
अरु ह्वै है इहि खेत, मूल लघु शाखा हीने।
ताहू पै भज रहे दीठि, तुम पै प्रति दीने॥
बरनै 'दीनदयाल' हमें लखि, होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि, कहा झुक झूमत रम्भा।

प्रकृति की मानवी भावनाओं से तुलना—प्रकृति के भिन्न भिन्न दृश्यों को देख कर उनकी मानवी भावनाओं एवं क्रियाओं से तुलना करना ही इसका उद्देश्य है। इसके विरुद्ध आधुनिक कविता में मानव की हृदय गत भावनाओं का प्रकृति में आरोप किया जाता है। प्रथम में प्रकृति वर्णन मुख्य है और द्वितीय में भावनाओं का वर्णन ही मुख्य है। तुलसी और सूर में ऐसे वर्णन मिलते हैं।

दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई,
वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।

छायावादी प्रयोग—छायावाद में प्रकृति वर्णन कई प्रकार से होता है, और वह एक अलग लेख का विषय है। मुख्यतः उसमें नारी का आरोप, मानव भावनाओं का आरोप तथा ब्रह्म के क्रिया कलापों को देखना है। कुछ आलोचक 'ब्रह्म के क्रिया कलापों को देखना' रहस्यवाद के अन्तर्गत रखते हैं। क्योंकि रहस्यवादी के लिये सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म-मय हो जाती है, प्रकृति उसकी आँखों से ओझल हो जाती है और सर्वत्र प्रकृति ब्रह्म-मय अथवा ब्रह्म-रूप हो जाती है।

छायावादी प्रयोग देखिए:—

झंझा झकोर गर्जन है बिजली है नीरद माला।
पाकर शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला॥

झंझा, बिजली और नीरदमाला हृदय की भिन्न भिन्न मनोदशाएँ हैं।

नारी का आरोप—बीती विभावरी जागरी।
अंबर पनघट डुबा रही—
तारा घट उषा नागरी॥

रहस्यवादी प्रयोग—प्रकृति के माध्यम द्वारा आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन होता है। मानव की इस पद्य में कई अवस्थाएँ आती हैं, वह जिज्ञासु के रूप कह उठता है:—

महानील इस परम व्योम में,
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह-नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते हैं सन्धान॥

× + ×

हे विराट! हे विश्वदेव! तुम,
कुछ हो ऐसा होता भान।
मंद गंभीर धीर स्वर संयुत,
यही कर रहा सागर गान॥

प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत मानव की स्वाभाविक मुद्राओं तथा सौन्दर्य-वर्णन भी आते हैं। मुद्राओं के अंकन के बिना भाव की अभिव्यक्ति कुछ क्षीण हो जाती है, क्योंकि उसमें मूर्तता नहीं रहती—राम पिता से विदा होकर जाते हैं, नौकरों का साहस पूछने का नहीं होता, विस्मय विमूढ़ होकर देखते हैं:—

झुका कर सर प्रथम, फिर टक लगा कर।
निरखते पार्श्व से थे भृत्य आकर॥

पशु पक्षियों का वर्णन भी एक आवश्यक अंग है, प्रकृति उनके बिना अपूर्ण है और वास्तव में वही उसके सच्चे साथी हैं।

इन खोहनि में दल रीछनि को बसि।
जोवन जोर मरोर बतावै॥
गिर गूँज के संग उपङ्ग भरयौ,
भयकारी धुनी घनघोर मचावै।
कहुँ कुञ्जर सों रुँदि कुन्दरुकी,
कुचली निज गाँठिन को दरसावै।
तिनसों कहूँ सीतल और कसाय,
चुई रस-गंधि चहूँ छिति छावै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी के गुरू

श्री फूलचन्द जैन 'विशारद'

हमारे हिन्दी साहित्याकाश के चमकते हुए चन्द्रमा श्रीतुलसी के गुरू के बारे में मिश्रबन्धुओं ने अपने "हिन्दी नवरत्न" के पृष्ठ ६३ पर लिखा है कि "इनके गुरू नरसिंहदास थे"।

माननीय पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी अपनी रामचरितमानस की टीका की भूमिका के पृष्ठ ८ और ६७ पर इनके गुरू को नरसिंहदास ही बताया है।

पू० स्व० आचार्य शुक्लजी अपने हिन्दी साहित्य के पृष्ठ १२५ पर लिखते हैं कि रामानन्दजी के शिष्य परम्परानुसार देखें तो भी तुलसीदास के गुरू का नाम नरहर्यानन्द और नरहर्यानन्द के गुरू का नाम अनन्तानन्द असंगत ठरहता है। फिर आप अपने उसी इतिहास के पृष्ठ १२७ पर लिखते हैं कि बाबा नरहरिदास ने उसे (तुलसीदासकी) अपने आप रख लिया और शिक्षा दीक्षा दी इन्हीं गुरू से गोस्वामीजी राम कथा सुना करते थे। इन्हीं अपने गुरू बाबा नरसिंहदास के साथ गोस्वामीजी काशी में आकर पंचगङ्गा घाट पर स्वामी रामानन्दजी के स्थान पर रहने लगे। वहाँ एक परम विद्वान महात्मा शेष सनातनजी रहते थे जिन्होंने तुलसी को वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि में प्रवीण कर दिया।

परन्तु डाक्टर बलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल० एल० बी०, डी० लिट् ने अपने दर्शन के पृष्ठ ५ के अन्तिम पैरेग्राफ में लिखा है कि कुछ लोगों का कहना है कि गोस्वामीजी को बचपन में यह शिक्षा स्वयं शङ्कर भगवान ने नरहर्यानन्द द्वारा दिलाई थी। (मूल गोसाईं चरित)

बहुमत यह है कि महात्मा नरसिंहदास ने उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी थी फिर उसी पुस्तक के पृष्ठ ६ पर लिखा है कि किसी मनुष्य ने ही सूकर क्षेत्र में गोस्वामीजी को रामकथा बारम्बार सुनाई थी क्योंकि "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत" में निज शब्द गोस्वामीजी के गुरू को जगद गुरू-शङ्कर से पृथक कर रहा है और बहुत सम्भव है कि वह "निज गुरू" स्वामी नरहर्यानन्द, नरहरिदास या नरसिंहजी हो परन्तु हमारी समझ में गोस्वामीजी ने किसी अनित्य मर्त्य के बदले एक नित्य व्यक्ति को ही सच्चा गुरू माना है। "वन्दे बोध में मय नित्य गुरू शङ्कर रूपिणम्, का "नित्य" शब्द यही संकेत कर रहा है, नरहरिदास की अनुपस्थिति में भी गोस्वामीजी गुरूपदरज से अपने विलोचन आँजने की बात लिखते हैं। उन्होंने स्पष्टतया नरहरिदासजी या और किसी नामधारी व्यक्ति को अपना गुरू स्वीकार भी नहीं किया है। रामचरितमानस में केवल एक जगह "वन्दौ गुरु पद कन्ज कृपा सिन्धु नर रूप हरि" लिखा हुआ मिलता है जिससे नरहरिदास का नाम ध्वनित हो रहा है परन्तु इस पंक्ति का "हरि" पाठ भी संदिग्ध ही कहा जाता है क्योंकि एक तो उस स्थान के सब सोरठों के क्रम के अनुसार "निकर" के साथ "हर" का तुक होना चाहिए न कि "हरि" का और दूसरे श्रावण कुन्ज में रखी हुई बालकाण्ड की प्राचीन प्रति में कहा जाता है, 'हर" पाठ ही था जो पीछे से हरताल लगाकर "हरि" के रूप में परिवर्तित किया गया है। (आज कल इस सम्बन्ध का मूल पन्ना गायब हो गया है देखिए माताप्रसादजी का तुलसी संदर्भ)

इन सब बातों से विदित होता है, कि राम-कथा की महिमा के प्रथम प्रचारक के नाते भगवान शंकर ही को गोस्वामीजी अपना वास्तविक गुरू मान रहे हैं। यद्यपि उन्होंने अपने बाल्यकाल के उपदेशक को भी उस अनमोल शिक्षा ही के नाते 'निज-गुरु' का आदर दे दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने अपनी रामचरित मानस की टीका की भूमिका के पृष्ठ ८ पर लिखा है कि—"तुलसीदास के विद्या-गुरू का नाम नरसिंह था"। रामचरित मानस के प्रारम्भ में गुरू की वन्दना करते हुए तुलसीदास ने अपने गुरू का नामोल्लेख आदर के साथ किया भी है।

बन्दौं गुरु पदकंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम-पुञ्ज, जासु वचन रविकर निकर॥

'हरि' 'शब्द' 'सिंह' और नारायण दोनों का पर्यायवाची है। कुछ लोग 'हरि' पाठ शुद्ध नहीं मानते। उनका कथन है कि 'नररूपहर' पाठ शुद्ध है इसमें वे दो दलीलें देते हैं। पहला यह कि तुलसीदास, 'शिव' को गुरू मानते थे। बालकाण्ड के तीसरे श्लोक में उन्होंने 'गुरू-शङ्कर रूपिणम्' लिखा भी है। इसलिए शिव का पर्यायवाची 'हर' शब्द ही उन्होंने लिखा होगा। मुन्शी सुखदेवलाल ने स्वसम्पादित रामचरितमानस में 'हर' ही पाठ रखा है। काशी के रामायणी पं० विश्वानन्द त्रिपाठी आजकल रामचरित मानस का प्रकाशन करा रहे हैं, उन्होंने भी 'हर' ही पाठ रखा है।

दूसरी दलील यह है कि तुलसीदास ने उक्त सोरठे के ऊपर के चारों सोरठों में उनके दूसरे और चौथे चरण के तुक भी मिलाकर लिखे हैं, जैसे बदन-सदन, गहन-दहन, नयन-सयन और अयन-मयन। इसी क्रम से पाँचवें सोरठे का भी तुक हर और निकर मिलना चाहिए। 'हरि' होने से अनुप्रास ठीक नहीं मिलता।

अब हम दोनों दलीलों पर विचार करते हैं। अभी तक मेरे देखने में 'मानस' की एक भी हस्तलिखित प्रति ऐसी नहीं मिली, जिसमें 'हर' पाठ हो। अयोध्या की प्रति संवत् १६६१ की है, उसमें भी 'हरि' ही पाठ है। मलिहाबाद की प्रति तुलसी के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, यद्यपि उसमें कहीं सम्वत् का उल्लेख नहीं है। उसमें भी 'हरि' पाठ है।

मलिहाबाद में दूसरी प्रति सं० १७७६ की है उसमें भी 'हरि' पाठ है। अतएव 'हरि' पाठ को हम आधुनिक कैसे मानें। अब रही यह बात कि तुलसीदास ने सोरठे के पहले 'गुरु शङ्करूपिणम्' लिखकर गुरू को शिव का रूप दिया है। यही भाव सोरठे में भी होना चाहिए। पर तुलसीदास के लिए कहीं यह बन्धन तो था नहीं कि वे नर में नारायण को अभिव्यक्त न करें।

रुद्र की अपेक्षा 'हरि' में तो अधिक कृपा का भाव माना जाता है, और यदि उन्होंने अपने गुरू नरसिंह के 'सिंह' को 'हरि' नाम से व्यक्त किया है तब तो 'हर' पाठ हो ही नहीं सकता।

दूसरी दलील तुक मिलने की बहुत जोरदार नहीं है। तुलसीदास ने अच्छे से अच्छे तुक मिलाये हैं, पर लापरवाहियाँ भी कम नहीं की हैं। उसी सोरठे ही में उन्होंने 'कञ्ज' का तुक 'पुञ्ज' से मिलाया है। जब वे तुक के मामले में इतने स्वतन्त्र थे, तब निकर के लिए वे विवश माने जाँय, यह युक्ति सङ्गत नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शुद्ध पाठ 'हरि' ही है, और वह नरसिंह के 'सिंह' के लिए भी व्यवहृत हुआ है।

साहित्य के इन महारथियों के विचार वैभिन्न से साहित्य का विद्यार्थी कितने झमेले में पड़ जाता है, फिर परीक्षार्थियों की तो बात ही छोड़ दीजिये। बिना पूरे अध्ययन के वे उससे कोई निर्णय ही नहीं लगा पाते हैं। हमें अब इस बात का पता लगाना है कि दोनों में कौनसा पाठ शुद्ध है? और क्यों? या दोनों ही पाठ शुद्ध हैं या दोनों ही अशुद्ध हैं?

इसके लिए हम पहिले दोनों पाठ 'नररूपहरि' और 'नर रूप हर' को ठीक मान कर हमारी कसौटी 'तुलसी के गुरु' कौन थे पर परख लेते हैं और जो ठीक हो उसे मान लेते हैं। तो पहिले हम 'नर रूप हरि' को लेते हैं तो इसका अर्थ होता है 'मनुष्य रूप बन्दर' क्योंकि 'हरि' माने बानर भी होता है और यह प्रसङ्ग 'हनूमानजी के कोढ़ी रूप धारण करने और

(शेष पृष्ठ ३९१ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीतिकालीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ

श्री शिव बालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए०, (आनर्स)

Poetry is the interpretation of life through imagination and emotion. —Hudson.

संसार की प्रत्येक भाषा के साहित्य की अपनी विशेषताएँ होती हैं। हिन्दी-कविता भी किन्हीं विशेषताओं से समलंकृत है। भक्तिकाल में सूर और तुलसी ने कृष्ण और राम का चरित्राङ्कन इसलिए किया कि निर्गुणिए कवियों के राम और हरि ऐसे नहीं थे जो जनता के संसार में स्वयं अवतरित होकर एक नई चेतना और अभिनव प्रगति प्रदान करते हुए अपना जीवन भी सामान्य-मानव के जीवन से मिला देते। काल-गति के अनुसार ही मानवीय मनोवृत्तियों में अन्तर हुआ करता है। अतः ऐतिहासिक परिस्थिति का बहुत बड़ा प्रभाव रीति कालीन कविता पर पड़ा कारण कि 'कवि और युग एक दूसरे को प्रभावित किया करते हैं।*

हम जानते हैं कि अकबर के शासन-काल के उपरान्त मुगल शासकों में जीवन की तरल अल्हड़ता का समारम्भ हो गया था। वैभव-विलास और श्रीसम्पन्नता ने जीवन को एक साधारण प्रवाह से दूसरी ओर ही मोड़ दिया था। जहाँ जीवन में वैभव का स्वतन्त्र शासन हो वहाँ मनुष्य सुख के अतिरिक्त और क्या चाहेगा—

गुलगुली गिल में गलीचा है गुनीजन हैं—
—पद्माकर

अतः मुगलकालीन छोटे मोटे राजाओं ने भी सुरा और सुन्दरी का लोभ संवरण नहीं किया। फिर क्या था। आधुनिक सरकार के हेतु जैसा डा० कुमारप्पा ने कहा है, Give them a little more rope and they will hang themselves वैसे ही कवियों ने तनिक वल्गा ढीली करदी और उन रीतिराजाओं ने लालसा-ललाम को राजमार्ग पर सरपट धावित किया। ऐसे ही युग की कविता के हेतु शब्द सार्थक हुए—

सुभासित रसास्वाद बढ़ रोमाञ्च कञ्चुका।
विनापि कामनी संगम् कवयः सुखमासते।

किसी काल की पूर्ण परिसमाप्ति कभी भी नहीं की जा सकती। साहित्य के काल-विभाजन में एक संक्रान्ति काल कठिनता से पायेंगे तथा एक युग को दूसरे युग के बीच में विभाजन रेखा खींचना कठिन समझेंगे। भक्तिकाल के अन्त में रीतियुग का आरम्भ हुआ था और केशव दोनों युगों के विष्कम्भक माने जाते हैं। किन्तु केशव के पूर्व भी रीति ग्रन्थों की सृष्टि हुई है। भक्तिकाल में भी रहीम ने बरवै नायिका भेद लिखा है। अतः भक्ति काल का भक्ति भावभरित प्रभाव अथवा उसकी छाया हम रीति युग में पड़ी हुई पाते हैं। राम और कृष्ण कवियों के चिर आराध्य रहे थे। रीति युग में राम काव्य का भी प्रणयन भी हुआ। सेनापति, पद्माकर आदि ने रामायण के विशिष्ट अंशों के कवित्त छन्द में परिचित कर दिया। मधुसूदनदास का रामाश्वमेध यद्यपि मनोहर प्रबन्ध काव्य है। भगवंतराय खीची ने बाल कांड रामायण कवित्त छन्द में लिखी। रही कृष्ण काव्य की बात। कृष्ण लोक संग्रही पहले और मर्यादा पुरुषोत्तम बाद में हैं। अतः राम की अपेक्षा कृष्ण जन-गन-मन अधिनायक हो गये। यहाँ तक कि भिखारीदास को कहना पड़ा—

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

प्रबन्ध-काव्य-प्रणयन की जो प्रणाली प्रेमसागर

---

* The Poet and the age react upon each orher. Mathew Arnold

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अन्योक्ति अलङ्कार के अन्तर्गत आती है परन्तु किसी विशेष के ऊपर रख कर कही हुई उक्ति से हम दूसरा ही अर्थ लगाते हैं इस कारण इस प्रकार के प्रयोगों को पृथक स्थान देना ही ठीक है। दीनदयालगिरि की अन्योक्तियाँ साहित्य क्षेत्र में विशेष स्थान प्राप्त कर चुकी हैं:—

रम्भा! झूमत हो कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुमस कंत है गये, अरु ह्वै हैं इहि खेत॥
अरु ह्वै हैं इहि खेत, मूल लघु शाखा हीने।
ताहू पै भज रहे दीठि, तुम पै प्राते दीने॥
बरनै 'दीनदयाल' हमें लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लाग, कहा झुक झूमत रम्भा।

प्रकृति की मानवी भावनाओं से तुलना—प्रकृति के भिन्न भिन्न दृश्यों को देख कर उनकी मानवी भावनाओं एवं क्रियाओं से तुलना करना ही इसका उद्देश्य है। इसके विरुद्ध आधुनिक कविता में मानव की हृदय गत भावनाओं का प्रकृति में आरोप किया जाता है। प्रथम में प्रकृति वर्णन मुख्य है और द्वितीय में भावनाओं का वर्णन ही मुख्य है। तुलसी और सूर में ऐसे वर्णन मिलते हैं।

दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई,
वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।

छायावादी प्रयोग—छायावाद में प्रकृति वर्णन कई प्रकार से होता है, और वह एक अलग लेख का विषय है। मुख्यतः उसमें नारी का आरोप, मानव भावनाओं का आरोप तथा ब्रह्म के क्रिया कलापों को देखना है। कुछ आलोचक 'ब्रह्म के क्रिया कलापों को देखना' रहस्यवाद के अन्तर्गत रखते हैं। क्योंकि रहस्यवादी के लिये सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म-मय हो जाती है, प्रकृति उसकी आँखों से ओझल हो जाती है और सर्वत्र प्रकृति ब्रह्म-मय अथवा ब्रह्म-रूप हो जाती है।

छायावादी प्रयोग देखिए:—

झंझा झकोर गर्जन है बिजली है नीरद माला।
पाकर शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला॥

झंझा, बिजली और नीरदमाला हृदय की भिन्न भिन्न मनोदशाएँ हैं।

नारी का आरोप—बीती विभावरी जागरी।
अंबर पनघट डुबा रही—
तारा घट उषा नागरी॥

रहस्यवादी प्रयोग—प्रकृति के माध्यम द्वारा आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन होता है। मानव की इस पद्य में कई अवस्थाएँ आती हैं, वह जिज्ञासु के रूप कह उठता है:—

महानील इस परम व्योम में,
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह-नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते हैं सन्धान॥

× + ×

हे विराट! हे विश्वदेव! तुम,
कुछ हो ऐसा होता भान।
मंद गंभीर धीर स्वर सयुत,
यही कर रहा सागर गान॥

प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत मानव की स्वाभाविक मुद्राओं तथा सौन्दर्य-वर्णन भी आते हैं। मुद्राओं के अंकन के बिना भाव की अभिव्यक्ति कुछ क्षीण हो जाती है, क्योंकि उसमें मूर्तता नहीं रहता—राम पिता से विदा होकर जाते हैं, नाकरों का साहस पूछने का नहीं होता, विस्मय विमूढ़ होकर देखते हैं:—

झुका कर सर प्रथम, फिर टक लगा कर।
निरखते पार्श्व से थे भृत्य आकर॥

पशु पक्षियों का वर्णन भी एक आवश्यक अंग है, प्रकृति उनके बिना अपूर्ण है और वास्तव में वही उसके सच्चे साथी हैं।

इन खोहनि में दल रीछनि को बसि।
जोवन जोर मरार बतावै॥
गिर गूँज के संग उपङ्ग भरयौ,
भयकारी धुनी घनघोर मचावै।
कहुँ कुञ्जर सों रुँदि कुन्दरुकी,
कुचली निज गाँठिन को दरसावै।
तिनसों कहूँ सीतल और कसाय,
चुई रस-गंध चहूँ छिति छावै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी के गुरू

श्री फूलचन्द जैन 'विशारद'

हमारे हिन्दी साहित्याकाश के चमकते हुए चन्द्रमा श्रीतुलसी के गुरू के बारे में मिश्रबन्धुओं ने अपने "हिन्दी नवरत्न" के पृष्ठ ६३ पर लिखा है कि "इनके गुरू नरसिंहदास थे"।

माननीय पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी अपनी रामचरितमानस की टीका की भूमिका के पृष्ठ ८ और ६७ पर इनके गुरू को नरसिंहदास ही बताया है।

पू० स्व० आचार्य शुक्लजी अपने हिन्दी साहित्य के पृष्ठ १२५ पर लिखते हैं कि रामानन्दजी के शिष्य परम्परानुसार देखें तो भी तुलसीदास के गुरू का नाम नरहर्यानन्द और नरहर्यानन्द के गुरू का नाम अनन्तानन्द असंगत ठरहता है। फिर आप अपने उसी इतिहास के पृष्ठ १२७ पर लिखते हैं कि बाबा नरहरिदास ने उसे (तुलसीदासकी) अपने आप रख लिया और शिक्षा दीक्षा दी इन्हीं गुरू से गोस्वामीजी राम कथा सुना करते थे। इन्हीं अपने गुरू बाबा नरसिंहदास के साथ गोस्वामीजी काशी में आकर पंचगङ्गा घाट पर स्वामी रामानन्दजी के स्थान पर रहने लगे। वहाँ एक परम विद्वान महात्मा शेष सनातनजी रहते थे जिन्होंने तुलसी को वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि में प्रवीण कर दिया।

परन्तु डाक्टर बलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल० एल० बी०, डी० लिट् ने अपने दर्शन के पृष्ठ ५ के अन्तिम पैरेग्राफ में लिखा है कि कुछ लोगों का कहना है कि गोस्वामीजी को बचपन में यह शिक्षा स्वयं शङ्कर भगवान ने नरहर्यानन्द द्वारा दिलाई थी। (मूल गोसाईं चरित)

बहुमत यह है कि महात्मा नरसिंहदास ने उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी थी फिर उसी पुस्तक के पृष्ठ ६ पर लिखा है कि किसी मनुष्य ने ही सूकर क्षेत्र में गोस्वामीजी को रामकथा बारम्बार सुनाई थी क्योंकि "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत" में निज शब्द गोस्वामीजी के गुरू को जगद गुरू शङ्कर से पृथक कर रहा है और बहुत सम्भव है कि वह "निज गुरू" स्वामी नरहर्यनिन्द, नरहरिदास या नरसिंहजी हों परन्तु हमारी समझ में गोस्वामीजी ने किसी अनित्य मर्त्य के बदले एक नित्य व्यक्ति को ही सच्चा गुरू माना है। "वन्दे बोध में मय नित्य गुरू शङ्कर रूपिणम्, का "नित्य" शब्द यही संकेत कर रहा है, नरहरिदास की अनुपस्थिति में भी गोस्वामीजी गुरूपदरज से अपने विलोचन आँजने की बात लिखते हैं। उन्होंने स्पष्टतया नरहरिदासजी या और किसी नामधारी व्यक्ति को अपना गुरू स्वीकार भी नहीं किया है। रामचरितमानस में केवल एक जगह "वन्दौ गुरु पद कन्ज कृपा सिन्धु नर रूप हरि" लिखा हुआ मिलता है जिससे नरहरिदास का नाम ध्वनित हो रहा है परन्तु इस पंक्ति का "हरि" पाठ भी संदिग्ध ही कहा जाता है क्योंकि एक तो उस स्थान के सब सोरठों के क्रम के अनुसार "निकर" के साथ "हर" का तुक होना चाहिए न कि "हरि" का और दूसरे श्रावण कुन्ज में रखी हुई बालकाण्ड की प्राचीन प्रति में कहा जाता है, "हर" पाठ ही था जो पीछे से हरताल लगाकर "हरि" के रूप में परिवर्तित किया गया है। (आज कल इस सम्बन्ध का मूल पन्ना गायब हो गया है देखिए माताप्रसादजी का तुलसी संदर्भ)

इन सब बातों से विदित होता है, कि राम-कथा की महिमा के प्रथम प्रचारक के नाते भगवान शंकर ही को गोस्वामीजी अपना वास्तविक गुरू मानते हैं। यद्यपि उन्होंने अपने बाल्यकाल के उपदेशक को भी उस अनमोल शिक्षा ही के नाते 'निज-गुरु' का आदर दे दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने अपनी रामचरित मानस की टीका की भूमिका के पृष्ठ ८ पर लिखा है कि—"तुलसीदास के विद्या-गुरू का नाम नरसिंह था। रामचरित मानस के प्रारम्भ में गुरू की वन्दना करते हुए तुलसीदास ने अपने गुरू का नामोल्लेख आदर के साथ किया भी है।

बन्दौं गुरू पदकंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम-पुञ्ज, जासु बचन रविकर निकर॥

'हरि' 'शब्द' 'सिंह' और नारायण दोनों का पर्यायवाची है। कुछ लोग 'हरि' पाठ शुद्ध नहीं मानते। उनका कथन है कि 'नररूपहर' पाठ शुद्ध है इसमें वे दो दलीलें देते हैं। पहली यह कि तुलसीदास, 'शिव' को गुरू मानते थे। बालकाण्ड के तीसरे श्लोक में उन्होंने 'गुरू-शङ्कर रूपिणम्' लिखा भी है। इसलिए शिव का पर्यायवाची 'हर' शब्द ही उन्होंने लिखा होगा। मुन्शी सुखदेवलाल ने स्वसम्पादित रामचरितमानस में 'हर' ही पाठ रखा है। काशी के रामायणी पं० विश्वानन्द त्रिपाठी आजकल रामचरित मानस का प्रकाशन करा रहे हैं, उन्होंने भी 'हर' ही पाठ रखा है।

दूसरी दलील यह है कि तुलसीदास ने उक्त सोरठे के ऊपर के चारों सोरठों में उनके दूसरे और चौथे चरण के तुक भी मिलाकर लिखे हैं, जैसे बदन-सदन, दहन-दहन, नयन-सयन और अयन-मयन। इसी क्रम से पाँचवें सोरठे का भी तुक हर और निकर मिलना चाहिए। 'हरि' होने से अनुप्रास ठीक नहीं मिलता।

अब हम दोनों दलीलों पर विचार करते हैं। अभी तक मेरे देखने में 'मानस' की एक भी हस्तलिखित प्रति ऐसी नहीं मिली, जिसमें 'हर' पाठ हो। अयोध्या की प्रति संवत् १६६१ की है, उसमें भी 'हरि' ही पाठ है। मलिहाबाद की प्रति तुलसी के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, यद्यपि उसमें कहीं सम्वत् का उल्लेख नहीं है। उसमें भी 'हरि' पाठ है।

मलिहाबाद में दूसरी प्रति सं० १७७६ की है उसमें भी 'हरि' पाठ है। अतएव 'हरि' पाठ को हम आधुनिक कैसे मानें। अब रही यह बात कि तुलसीदास ने सोरठे के पहले 'गुरु शङ्कररूपिणम्' लिखकर गुरू को शिव का रूप दिया है। यही भाव सोरठे में भी होना चाहिए। पर तुलसीदास के लिए कहीं यह बन्धन तो था नहीं कि वे नर में नारायण को अभिव्यक्त न करें।

रुद्र की अपेक्षा 'हरि' में तो अधिक कृपा का भाव माना जाता है, और यदि उन्होंने अपने गुरू नरसिंह के 'सिंह' को 'हरि' नाम से व्यक्त किया है तब तो 'हर' पाठ हो ही नहीं सकता।

दूसरी दलील तुक मिलने की बहुत जोरदार नहीं है। तुलसीदास ने अच्छे से अच्छे तुक मिलाये हैं, पर लापरवाहियाँ भी कम नहीं की हैं। उसी सोरठे ही में उन्होंने 'कञ्ज' का तुक 'पुञ्ज' से मिलाया है। जब वे तुक के मामले में इतने स्वतन्त्र थे, तब निकर के लिए वे विवश माने जाँय, यह युक्ति सङ्गति नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शुद्ध पाठ 'हरि' ही है, और वह नरसिंह के 'सिंह' के लिए भी व्यवहृत हुआ है।

साहित्य के इन महारथियों के विचार वैभिन्न से साहित्य का विद्यार्थी कितने झमेले में पड़ जाता है, फिर परीक्षार्थियों की तो बात ही छोड़ दीजिये। बिना पूरे अध्ययन के वे उससे कोई निर्णय ही नहीं लगा पाते हैं। हमें अब इस बात का पता लगाना है कि दोनों में कौनसा पाठ शुद्ध है? और क्यों? या दोनों ही पाठ शुद्ध हैं या दोनों ही अशुद्ध हैं?

इसके लिए हम पहिले दोनों पाठ 'नररूपहरि' और 'नर रूप हर' को ठीक मान कर हमारी कसौटी 'तुलसी के गुरु' कौन थे पर परख लेते हैं और जो ठीक हो उसे मान लेते हैं। तो पहिले हम 'नर रूप हरि' को लेते हैं तो इसका अर्थ होता है 'मनुष्य रूप बन्दर' क्योंकि 'हरि' माने बानर भी होता है और यह प्रसङ्ग 'हनूमानजी के कोढ़ी रूप धारण करने और

(शेष पृष्ठ ३८१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीतिकालीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ

श्री शिव बालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए०, (आनर्स)

Poetry is the interpretation of life through imagination and emotion. —Hudson.

संसार की प्रत्येक भाषा के साहित्य की अपनी विशेषताएँ होती हैं। हिन्दी-कविता भी किन्हीं विशेषताओं से समलंकृत है। भक्तिकाल में सूर और तुलसी ने कृष्ण और राम का चरित्राङ्कन इसलिए किया कि निर्गुणिए कवियों के राम और हरि ऐसे नहीं थे जो जनता के संसार में स्वयं अवतरित होकर एक नई चेतना और अभिनव प्रगति प्रदान करते हुए अपना जीवन भी सामान्य-मानव के जीवन से मिला देते। काल-गति के अनुसार ही मानवीय मनोवृत्तियों में अन्तर हुआ करता है। अतः ऐतिहासिक परिस्थिति का बहुत बड़ा प्रभाव रीति कालीन कविता पर पड़ा कारण कि 'कवि और युग एक दूसरे को प्रभावित किया करते हैं।*

हम जानते हैं कि अकबर के शासन-काल के उपरान्त मुगल शासकों में जीवन की तरल अल्हड़ता का समारम्भ हो गया था। वैभव-विलास और श्रीसम्पन्नता ने जीवन को एक साधारण प्रवाह से दूसरी ओर ही मोड़ दिया था। जहाँ जीवन में वैभव का स्वतन्त्र शासन हो वहाँ मनुष्य सुख के अतिरिक्त और क्या चाहेगा—

गुलगुली गिल में गलीचा है गुनीजन हैं—
—पद्माकर

अतः मुगलकालीन छोटे मोटे राजाओं ने भी सुरा और सुन्दरी का लोभ संवरण नहीं किया। फिर क्या था। आधुनिक सरकार के हेतु जैसा डा० कुमारस्वा ने कहा है, Give them a little more rope and they will hang themselves वैसे ही कवियों ने तनिक वल्गा ढीली करदी और उन देशी राजाओं ने लालसा-ललाम को राजमार्ग पर सवेग धावित किया। ऐसे ही युग की कविता के हेतु ये शब्द सार्थक हुए—

सुभाषित रसास्वाद बद्ध रोमाञ्च कञ्चुका।
विनापि कामनी संगम् कवयः सुखमासते॥

किसी काल की पूर्ण परिसमाप्ति कभी भी कहीं नहीं जा सकती। साहित्य के काल-विभाजन में हम संक्रान्ति काल कठिनता से पायेंगे तथा एक युग और दूसरे युग के बीच में विभाजन रेखा खींचना कठिन समझेंगे। भक्तिकाल के अन्त में रीतियुग का आरंभ हुआ था और केशव दोनों युगों के विष्कम्भक माने जाते हैं। किन्तु केशव के पूर्व भी रीति ग्रन्थों की सृष्टि हुई है। भक्तिकाल में भी रहीम ने बरवै नायिका भेद लिखा है। अतः भक्ति काल का भक्ति भाव भरित प्रभाव अथवा उसकी छाया हम रीति युग पर पड़ी हुई पाते हैं। राम और कृष्ण कवियों के चिर आराध्य रहे थे। रीति युग में राम काव्य का कुछ प्रणयन भी हुआ। सेनापति, पद्माकर आदि ने रामायण के विशिष्ट अंशों के कवित्त छन्द में परिवर्तित कर दिया। मधुसूदनदास का रामाश्वमेध यश एक मनोहर प्रबन्ध काव्य है। भगवंतराय खीची ने सातों कांड रामायण कवित्त छन्द में लिखी। रही कृष्ण काव्य की बात। कृष्ण लोक संग्रही पहले और मर्यादा पुरुषोत्तम बाद में हैं। अतः राम की अपेक्षाकृत कृष्ण जन-गन-मन अधिनायक हो गये। यहाँ तक कि भिखारीदास को कहना पड़ा—

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है॥

प्रबन्ध-काव्य-प्रणयन की जो प्रणाली प्रेममार्ग

* The Poet and the age react upon each orher. Mathew Arnold

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि पन्त और नरेन्द्र पलाश-पुष्प में आग अब देखते हैं तो सेनापति ने उन्हें काम द्वारा सुलगाये हुए 'ज्वैला' पहले ही बताया था रीतियुग का प्रकृति वर्णन बहुत कुछ परिपाटी विहित था फिर भी द्विज देव ने पुराने चश्मे को उतार कर आँखों से काम लिया था। उनका यह प्रकृति वर्णन आधुनिक युग में हमें श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी में दिखाई पड़ता है।

राम और कृष्णाराधना के अतिरिक्त दुर्गा गङ्गा हनुमान आदि की भी वन्दना करने की प्रवृत्ति इस युग में देख पड़ी। इसका संकेत वीर काव्य के प्रसङ्ग में हम कर आये हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के देखने से प्रतीत होता है कि अनेक चण्डी चरित्र (दयालु, मारकण्डेय मिश्रकृत) दुर्गा भक्ति चन्द्रिका (कुलपति मिश्र) दुर्गाचालीसा (देवीदास) दुर्गास्तुति (इच्छाराम) तथा हनुमत-पचीसी, छब्बीसा हनुमान पेंज, बंदीमोचन, हनुमान-स्तुति, तमाचा, महावीर-कवच आदि पुस्तकें विभिन्न कवियों द्वारा लिखी गईं। सेनापति ने 'सुर न दाजै' द्वारा गङ्गा का जयघोष कराने की व्यवस्था कर मित्र-द्वय का सदेह स्वर्ग पहुँचवाया। पद्माकर ने विचलते हुए दगादार पातक का गङ्गाकछार में स्नान का प्रयास किया। लेखराजजी ने गङ्गा पर अशिथल अनु-राग दिखाते हुए अपनी 'गंगाभूषण' पुस्तक में अल-ङ्कारों का निदर्श किया है।

खोज रिपोर्टों में 'देव वन्दना' द्वारा वीर रस संचार किया। इतिहासकार इस प्रकार के साहित्य खण्डों में से कुछ उत्कृष्ट कवियों का उल्लेख भी नहीं कर सके हैं।

भावव्यञ्जना के दृष्टिकोण से इस युग में कलापक्ष का विशेष स्थान रहा है। हृदय पक्ष की नितान्त अव-हेलना भी नहीं हुई। कला और पाण्डित्य-प्रदर्शन इतना बढ़ा हुआ था कि समस्यापूर्ति में कवियों को विशेष आनन्द आता था। और कवि अपनी कला शब्दों की तोड़-मरोड़ में दिखाया करते थे। गोपाल मिश्र कृत 'खूब तमाशा' समस्या पूर्ति की अच्छी पुस्तक है। राजाओं का आमोद भरे वातावरण में काव्यानन्द ग्रहण और कवियों की समस्यापूर्तियाँ यह प्रवृत्ति ज्ञानी बलवती थी कि 'कविवचनसुधा' से लेकर सुकवि (सनेही द्वारा सम्पादित) में आज भी दृष्टिगोचर हो रहा है।

कल्पना प्रसंग में कभी-कभी कवि अर्थ का ध्यान न रख भावभूमि को पीछे छोड़ उड़ते ही चले जाते थे और कभी-कभी बेतुकी बात भी कह देते थे। भला 'आनन ओप उजास' से दिन हो सकता है और विरह से छः सात हाथ चलती हुई नायिकाएँ कहीं हो सकती हैं। अतिशयोक्ति की सीमा दो उदाहरणों द्वारा द्रष्टव्य है—

छाले परिबे के डरनि, सकै न हाथ छुवाय
झिझकति हिए गुलाब के, झँवाँ झँवावत पाय
—बिहारी

बिहारी ने तो गुलाब का झाँवा प्रयुक्त कराया है। अब रसलीनजी का दोहा लीजिये—

तुव पदतल मृदुताचितें कवि बरनत सकुचाहिं।
मन में आवत जाभलौ, मत छाल पारजाहिं॥

रसलीन की काल्पनिक दुनिया में ही ऐसी सुकु-मारता मिल सकती है सत्य है 'कवयः किं न जल्पंति।'

चित्रकाव्य यों तो बुरा माना गया है परन्तु सेनापति ने पाँचवी तरङ्ग के अन्त में यदि एक छन्द में (ल) अक्षर का ही प्रयोग कर खिलवाड़ की है तो दूसरे में न अक्षर केन्द्र मान कर मा दा ध अक्षरों द्वारा मान दान धन शब्द बनाये हैं। [कवित्त रत्नाकर] श्लेष की तो बात दूर रही बलदानसिंह काशिराज ने सप्तार्थ कवित्त भी अपनी 'चित्रचंद्रिका' में दिए—

वर हंस करि सोहैं धारण किये हैं हरि,
दायक परम शिव जग में बरवानिए।
कह्यो नंन मुद्रा प्रिय सब गण राजत है,
पद्म मैं रुचिर रुचि लोक-लोक गानिए॥
धरम प्रकट किया रुचिर सकति धर,
भग छवि छाजत हैं बचन प्रभानिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भनि काशिराज ऐसे हरि हरि हरि हरि,
ऐसे हरि हरि किधौं प्रौढ़ातिय जानिए ॥

महाकवि सेनापति ने भी निमीत्रिक छन्द लिखे हैं पर काशिराजजी का एक छन्द लीजिए—

कनक लजत तन अमल वसन सजु,
वदन कमल वर कचन सवन घन।
मलन करत कर रदन चमक पर,
वचन सरस मन बसन अतन तन ॥
नयन समन सर गमन लजत गज,
चरन नरम छँद सरँग फबन बन।
रमत गहन वन चलत न धव अब,
तरल लखत पथ कहत अपन पन ॥

कामधेनु आदि चित्र सुन्दर ही बनते थे। पर यह सब मस्तिष्क की उद्भावना ही थी विप्रलम्भ शृङ्गार वर्णना, नख-शिख नियोजना में मानव के आन्तरिक भावों के निदर्शन का सुन्दर प्रयास किया गया है, प्रेम-व्यञ्जना प्रगीत पद्धति पर न होकर कुछ अति-रञ्जना लिए हुए है, फिर भी सबकी अपनी महत्ता है। कारण कि कवि का कंठ युग के स्वर से मुखर रहता है। फिर अतिशयोक्ति तो उस युग की अपनी वस्तु है। जब—

तान तुकताला हैं विनोद के रसाला हैं,
सुबाला है दुसाला है विसाला चित्रसाला हैं।

तो फिर कथन की करामात और सच्ची भावानुभूति साथ-साथ व्यक्त हुई।

जहाँ तक छन्दों का प्रश्न है इस युग में दोहा कवित्त और सवैया छन्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति ही प्रधान रही। किन्तु छप्पय, त्रोटक रोला, हरिगीति की कुण्डलियाँ और चौपाई भी के इमें दर्शन हुए। यत्र-तत्र पद-रचना भी हुई नागरीदास के पद सहज में भुलाये जाने की वस्तु नहीं। दोहों की छोटी सी मंजूषा में बिहारी मतिराम ने अपने नाम से 'सतसई' ग्रन्थ लिखे। रामसहायदास की शृङ्गार सतसई, और रसनिधि के रतनहजारा में दोहा छन्द ही प्रयुक्त है।

भाषा प्रमुख रूप से ब्रजभाषा ही प्रयुक्त हुई है। किन्तु प्रेममार्गी शाखा के कवियों में परिगणित किये जाने वाले नूर मुहम्मद ने अपनी इन्द्रावती दोहा-चौपाई शैली में अवधी में लिखी। रघुनाथ और महन्त सीतल ने खड़ी बोली का प्रयोग किया। दोनों की रचनाओं के उद्धरण लीजिए।

देख हे देख या ग्वालिन की,
मग नेकु नहीं थिरता गहती हैं।
आनन्द सों 'रघुनाथ" पगी पगी,
रङ्गन सौं फिरतै रहती है ॥
छोर को छोर तरयौना को छ्वै कर,
ऐसी बड़ी छवि को लहती हैं।
जोबन आइबे की महिमा,
अँखियाँ मनो-कानन सों कहती हैं ॥
—इश्क महोत्सव से

मुख सरद चन्द पर ठहर गया,
जानी के बुन्द पसीने का।
या कुन्दन कैकद कली ऊपर,
झमकाहट रक्खा मीने का ॥
देखे से होश कहाँ रहवै,
जो पिदर बू अली सीने का।
या लाल बदख्शाँ पर खींचा,
चौका इल्मास नगीने का ॥
—गुलजार चमन से

यह तो हुए खड़ी बोली की बात। इस काल की भाषा में अरबी और फारसी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ। खलक इजाफा, मखतूल किबलतुमा गैरमिसिल प्रभृति शब्द विभिन्न कवियों ने प्रयुक्त किये। विदेशी शब्दों में देशी प्रत्यय जोड़ने की भी प्रवृत्ति जोर पर थी। 'भाषा की सफाई के उस्तादों' ने लरजा से लरजना आदि लिखा। इस समय मुहावरे लोकोक्तियाँ आदि भी प्रयुक्त हुई। बुन्देलखण्डी शब्दों के प्रयोग बिहारी भूषण में पर्याप्त मात्रा में मिले। प्राकृत-अपभ्रंश मिश्रित भाषा का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यत्र तत्र मिला। सेनापति, भूषण और कुलपति मिश्र ने ऐसी भाषा प्रयुक्त की है, भूषण आदि शक्ति वन्दना में कहते हैं—

जै जै निसुंभ सुंभहलीन,
भनि भूषन जै जै मननि।
सरजा समत्त सिवराज कहँ,
देहि विजे जै जगजननि॥

कुलपति मिश्र लिखते हैं—

दुजन मद महन समथ्थ जिमि पथ्थ दुहुँनिकर,
बहत समर डरि अमर कंप, थरहर लगाय धर।

उन पंक्तियों के रेखाङ्कित शब्द विचारणीय है। कहना न होगा कि इस युग की भाषा विविध प्रकार की बोलियों से श्री सम्पन्न रही। पूर्वी प्रयोगों का अभाव शब्दों की तोड़ मरोड़ तो होती रही। पर शब्दों के लक्षक और व्यञ्जक रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति प्रधान रही।

अन्त में हम कह सकते हैं कि रीतिकालीन जिन प्रवृत्तियों पर ऊपर विचार किया गया है वे प्रमुख प्रवृत्तियाँ आधुनिक काव्य साहित्य के मूल में पहुँचकर जल और खाद्य का काम कर रही हैं। मस्तिष्क की प्रमेय शक्ति एवं अन्तर की रागात्मक उदारवृत्ति का प्रयोग करने वाले साहित्य के विद्यार्थी मेरे मत के अनुमोदन करने में आपत्ति न करेंगे। इस विषय में पुनः कभी विचार प्रकट करूँगा। इस समय यह कहना अप्रसांगिक न होगा कि ये सभी प्रवृत्तियाँ आधुनिक हिन्दी कविता में वट-वृक्ष की जटाओं सी प्रसरित प्रतीत होती हैं।

(पृष्ठ ३८३ का शेषांश)

राम दर्शन करवाने के समय घटित होता है और उसी दर्शन के समय 'रामलीला' द्वारा वे इन्हें रामायण (रामचरितमानस) का ज्ञान कराते हैं दूसरा पाठ है 'नररूपहर' और इसका अर्थ है महादेवजी मनुष्य के रूप में। महादेवजी ने प्रत्यक्ष तौर पर तुलसी को किसी भी स्थल पर रामचरित मानस का ज्ञान नहीं दिया है परन्तु हनुमानजी भी तो शङ्कर ही के आंशिक अवतार थे। इसलिए उन्हीं को लक्ष्य कर सम्भव है तुलसी ने अंश के रूप में पूर्ण को ही 'हर' शब्द से प्रकट किया होगा। आगे 'गुरुपितुमातु महेस भवानी' में गुरु शब्द शंकर किन्तु भाव में हनुमानजी के लिए प्रयुक्त हुआ है। बालकाण्ड में 'वन्दे बोध मय नित्य गुरु शङ्कर रूपिणम्' लिखा है अगर शंकर प्रत्यक्ष ही में इनके गुरु होते तो 'प्रत्यक्ष शङ्कर लिखना चाहिए था परन्तु स्पष्टीकरण के लिए ही उन्होंने 'शङ्कर रूपिम्' लिख कर अपने गुरु हनुमानजी को शङ्करजी से अलग बतलाया है परन्तु अलग होते के साथ ही साथ वे (हनुमानजी) उन्हीं (शङ्करजी) का रूप भी हैं 'नित्य' शब्द से देखते हैं तो ये अमर रहने का वरदान पाये हुए होने के कारण 'नित्य' हैं ही उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है, कि उनके वास्तविक गुरु न नरसिंहजी या नरसिंहदासजी, नरहयनिन्दजी अथवा शिवजी थे वरन ज्ञानागार अमर रहने का वरदान पाये हुए हनुमानजी ही थे। और 'नररूप हर' तथा 'नररूपहरि' दोनों ही पाठ ठीक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु का नाट्यादर्श

श्री कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंहजी

हिन्दी में साहित्यिक नाटक का अभ्युदय भारतेन्दु की कला के प्रकाश में हुआ। रङ्ग मञ्च के उपयुक्त साहित्यिक नाटक हिन्दी में कोई नहीं था और न रङ्ग-मञ्च तथा अभिनय की ही कोई साहित्यिक परम्परा थी। 'भारतेन्दु ने नाटक लिखने की ही परम्परा को जन्म नहीं दिया, उन्होंने नाटक खेलने की परिपाटी भी आरम्भ की और स्वयंम् अभिनय करके लोगों के सामने एक आदर्श स्थापित किया।' अकेले इस नाट्य-परम्परा के प्रवर्त्तन की दृष्टि से ही भारतेन्दु का उदय हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्व-पूर्ण घटना है।

भारतेन्दु को नाटक-रचना की प्रेरणा अपने समय और समाज से मिली। अँगरेजों का राज्य स्थापित हो जाने तथा अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के परिमाणस्वरूप पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान से जो सम्पर्क हुआ था, उससे देश में एक नवीन-चेतना ने जन्म लिया, यह चेतना भारतीय साहित्य में क्रमशः उद्वेग और विक्षोभ के बीज भी बोने लगी। कारण, अँगरेजों के शासन की शोषण-नीति धीरे-धीरे प्रकाश में आने लगी। सन् १८५८ ई० में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के अत्याचार-पूर्ण शासन का अन्त हुआ और विक्टोरिया ने भारत को इगलैण्ड के राज्य के अधीन घोषित करते हुए अनेक मधुर आश्वासनों से परिपूर्ण घोषणा-पत्र प्रचारित किया। दुर्भाग्य से इस घोषणा-पत्र के प्रचारित होने के बाद से ही देश में अकालों का ताँता लग गया। सन् १८६६ ई० से लगाकर १९०० ई० तक देश का कोई न कोई भाग भयानक दुर्भिक्ष से पीड़ित रहा। ऊपर से देश के विभिन्न भागों में जो बन्दोबस्त हो रहे थे उनमें लगान इतना बढ़ा दिया गया था कि कर देकर किसान के पास कुछ रह ही नहीं जाता था। वह बन्दोबस्त दुर्भिक्षों को चिरस्थायी बना रहे थे। 'टैक्स पर टैक्स अकाल पर अकाल और मरी पर मरी यहीं देखी जाती है। नित्य नये-नये आईनों से बँधा जाता है और नित्य नई स्पीचों से नोन छिड़का जाता है। (सार-सुधा-निधि) इस परिस्थिति में अँगरेजी साम्राज्यवाद का असली रूप कब तक छिपाया जा सकता था? भूटान राज्य का उपजाऊ प्रदेश छीन कर, बरमा को अपने राज्य में मिलाकर और अफगानिस्तान को व्यापारिक सन्धि के लिये विवश करके अगरेजों ने अपनी साम्राज्य लिप्सा का वास्तविक स्वरूप और भी स्पष्ट कर दिया था। अँगरेजों के साम्राज्यवाद के शिकञ्जे में जकड़ा हुआ यह समूचा देश ही भारतेन्दु के साहित्य की मूल प्रेरणा है।

गोस्वामी तुलसीदासजी की तरह भारतेन्दु ने भी लोक-हित-साधना और साहित्य-साधना को एक रूप कर दिया था। 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई'—साहित्य-साधना का यही उदात्त आदर्श भारतेन्दु ने भी अपनाया था, अपने साहित्य द्वारा जन-जागरण के लिए वह एक विशाल आन्दोलन चलाना चाहते थे, परन्तु अपने साहित्य द्वारा जिस समाज को उन्हें प्रबुद्ध करना था, वह दो प्रकार का था। एक ओर असंख्य अशिक्षित जनता थी जिसको अक्षर ज्ञान भी नहीं था; ऐसे लोगों के लिये नाटक, उपन्यास, और काव्य आदि उच्च साहित्य की रचना व्यर्थ समझकर भारतेन्दु ने जनपदीय भाषाओं में लोकगीत और सब प्रकार के जन-साहित्य की रचना की माँग की। डा० रामविलास शर्मा ने ही कहीं लिखा है—कि हिन्दी में जब यह जन-साहित्य की माँग हो रही थी तब रूस और इंगलैण्ड में पुराने प्रतिक्रियावादी साहित्य का दौर-दौरा था। भारतेन्दु-कालीन समाज का दूसरा वर्ग वह था जो संख्या में अल्प होते हुए भी शिक्षित था। प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भारत में उच्च शिक्षा की जो विधि चली आती थी, वह विघटित कर दी गयी थी। अँगरेजी शासन के सूत्रधारों ने अपने साम्राज्य के हित के लिए ही इस प्राचीन शिक्षा-विधि को बदलकर उसके स्थान पर अँगरेजी की शिक्षा के प्रचार और प्रसार का व्यापक उद्योग किया था। माध्यमिक से लगाकर उच्च शिक्षा तक सबका माध्यम अँगरेजी भाषा ही बना दी गयी थी, जिसका उद्देश्य हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का उन्मूलन और उसके स्थान पर देश में पाश्चात्य-सभ्यता और संस्कृति की प्रतिष्ठा करना था। अतएव इस समय का शिक्षित समाज अँगरेजी शिक्षा की परम्परा में पलने के कारण धीरे-धीरे अपने साहित्य, सभ्यता और संस्कृति से विमुख होता जा रहा था। इस वर्ग को राष्ट्र की ज्योतिर्मयी परम्परा में दीक्षित करना, वर्त्तमान की विषम समस्याओं और देश के क्लेशों का उन्हें परिचय एवं अनुभव कराना, तथा भविष्य के नव निर्माण के लिए उन्हें अग्रसर करना भारतेन्दु के सामने साहित्य के द्वारा जीवन की इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति का प्रश्न था। भारतेन्दुजी ने अपनी यात्राओं के बीच अनुभव किया था कि बङ्गाल में नाटक और रङ्ग-मञ्च सफलतापूर्वक यह कार्य सम्पादन कर रहे हैं। अतएव उन्होंने बड़े उत्साह से हिन्दी में नाटक-प्रणयन का श्रीगणेश किया। भारतेन्दुजी ने स्वयम् अपने नाटक नामक निबन्ध में समाज संस्कार और देश-वत्सलता को नाटक रचना के मुख्य उद्देश्यों में गिनाया है, जो भारतोक्त नाट्यादर्श —वेद व्यवहार को सार्ववर्णिक बनाना—के अनुकूल ही है। समाज-संस्कार और देश-वत्सलता का यह सन्देश जनता तक नाटक द्वारा जिस सरलता से पहुँचाया जा सकता है, उतना अन्य किसी साहित्यिक माध्यम द्वारा नहीं। नाटक शिक्षित ही नहीं, अशिक्षित वर्ग को भी प्रभावित कर सकता है। दृश्य-काव्य की इस प्रभुविष्णु का अनुभव भी भारतेन्दुजी ने किया। कालिदास की तरह भारतेन्दुजी भी यह अच्छी तरह से समझते थे कि नाटक ही एक ऐसा साधन है जो विभिन्न रुचि रखने वाले व्यक्तियों का समान रूप से मनोरञ्जन कर सकता है—

'नाट्यं भिन्न रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।'

देश और समाज के हित के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के नव निर्माण की भी समस्या थी। हिन्दी साहित्य इस समय रीति काल की रूढ़ियों में जकड़ा होने के कारण एकांगी और निर्जीव था। उसमें और सब कुछ होते हुए भी नाटक नहीं थे और गद्य फोर्ट-विलियम कालेज में पलकर तथा राजा लक्ष्मणसिंह तथा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की लेखनी का अवलम्ब पाकर भी अभी तक अर्द्ध-विकसित और अनिश्चित दशा में था। नाटक रचना द्वारा भारतेन्दु ने अपनी प्यारी हिन्दी के इन सब अभावों की एक साथ पूर्त्ति की। नाट्य-साहित्य की परम्परा का भी धूमधाम से अबाध प्रवाह बह चला, और 'हिन्दी नयी चाल में ढली।' भूषण के लगभग डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् हिन्दी साहित्य पुनः राष्ट्रीय-चेतना के जीवन-स्पन्दनों से पुलकित और जाग्रत हो उठा। हिन्दी के स्थान पर उर्दू को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का जो षडयन्त्र चल रहा था भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के नाटकों के प्रचार से वह भी उस समय विफल हो गया।* और भारत की प्रकृत राष्ट्र-भाषा हिन्दी की विजयिनी प्रतिभा का उत्कर्ष पुनः जन जीवन का अन्धकार दूर करने में समर्थ हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु की साहित्य-साधना के मूल में राष्ट्र के सर्वोदय की कामना निहित थी। अकेले उनके नाटकों से ही भाषा साहित्य, समाज और राष्ट्र सबका बहुमुखी हित सधा।

भारतेन्दु एक नवीन नाट्यादर्श की प्रतिष्ठा करना चाहते थे जिसमें प्राचीन और नवीन अर्थात् पूर्वी और पश्चिमी नाट्य-धर्म का समन्वय हो। उन्होंने अपने 'नाटक' नामक निबन्ध में लिखा है—'प्राचीन काल

* नाटकों का प्रचार एक कारण तो माना जा सकता है, सम्पूर्ण कारण नहीं। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अभिनयादि के सम्बन्ध में तात्कालिक कवि लोगों की और दर्शक मण्डली की जिस प्रकार रुचि थी, वे लोग तदनुसार ही नाटकादि दृश्य-काव्य-रचना करके सामाजिक लोगों का चित्त-विनोदन कर गये हैं; किन्तु इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इससे सम्प्रति प्राचीन मत अवलम्बन करके नाटक आदि जिस समय में जैसे सहृदय जन्म-ग्रहण करें और देशीय रीति-नीति का प्रवाह जिस रूप से चलता रहे उस समय में उक्त सहृदय गण के अन्तःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीति-पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना कर नाटकादि दृश्य-काव्य प्रणयन करना योग्य है। नाटकादि दृश्य-काव्य प्रणयन करना यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो सब प्राचीन रीति व पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होगी, वह सब अवश्य ग्रहण होगी। नाट्य-कला-कौशल दिखलाने को देश काल और पात्र गण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी चाहिए।' इस अवतरण में सबसे पहले ध्यान इस बात पर जाता है कि भारतेन्दु केवल नवीनता के लिए नवीन को आग्रह नहीं कर रहे थे, उनकी दृष्टि अपने समय के समाज और उसकी बदलती हुई विलक्षण रुचि पर थी, साथ ही वे अपने नाटकों में 'प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग' करने के पक्ष में भी नहीं थे। वे 'देश-काल और पात्र गण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि' रखते हुए एक मध्यम मार्ग की खोज में थे। भारतीय साहित्य में पहले पहल भारतेन्दु के द्वारा ही भारतीय और योरोपीय नाट्य-कलाओं के समन्वय का यह सजग-उद्योग हुआ था। इस समय का बँगला नाटक अपनी प्राचीन नाट्य-परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न हो गया था और उसमें अंगरेजी का अंधानुकरण चल रहा था।

इस नवीन नाट्यादर्श की स्थापना के लिये भारतेन्दु ने जिस कौशल का प्रयोग किया, वह उनके नाटकों के विषय भेद और स्वरूप पर दृष्टि डालने से प्रकट हो जाता है। उनके नाटक मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के हैं। अनुवाद के लिये नाटक-ग्रन्थों के चुनाव में भी भारतेन्दुजी ने नवीन नाट्यादर्श की स्थापना का अपना लक्ष्य सदैव सम्मुख रखा। जिन संस्कृत नाटकों का उन्होंने अनुवाद किया है वे संस्कृत नाट्य साहित्य के इतिहास के विभिन्न युगों की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि नवीन नाट्यादर्श की स्थापना के लिए भारतीय प्राचीन शैलियों से सम्यक परिचय कराने की आवश्यकता थी। इसी दृष्टिकोण से भारतेन्दुजी संस्कृत नाटकों के अनुवाद में प्रवृत्त हुए। वे शैलियों को हृदयंगम करा के नयी स्थापना के लिए भूमि तैयार कराना चाहते थे। संस्कृत नाटकों के विशाल इतिहास में वे कालिदास से आरम्भ करते। किन्तु संस्कृत के सर्व प्रसिद्ध नाटककार कलिदास की शकुन्तला का अनुवाद राजा लक्ष्मण-सिंह कर ही चुके थे। अब भारतेन्दुजी ने हर्ष की रत्नावली नाटिका का अनुवाद किया क्योंकि उनके मत से शकुन्तला के सिवाय और सब नाटकों में रत्नावली नाटिका बहुत अच्छी और पढ़ने वालों को आनन्द देने वाली है.....।' रत्नावली का स्थान संस्कृत साहित्य में बहुत ऊँचा है। इसके बाद उन्होंने 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद किया। इसकी शैली रत्नावली और शकुन्तला की तरह कोमल और सुकुमार नहीं अपितु ओज, तेज, और पौरुष से मण्डित है। तत्पश्चात् उन्होंने अपने को वाल्मीकि, भवभूति और भर्तृमेण्ठ का अवतार मानने वाले कविराज राजशेखर की कृति 'कर्पूरमञ्जरी' का हिन्दी अनुवाद किया। कर्पूर मञ्जरी एक सट्टक है; प्राकृत भाषा में लिखी गई नाटिका जिसमें प्रवेशक और विष्कम्भक न हो सट्टक कहलाती है। सट्टकों में कर्पूर मञ्जरी सर्व श्रेष्ठ है। काञ्चनाचार्य कृत धनञ्जय विजय व्यायोग का भी अनुवाद उन्होंने किया। स्त्री पात्र रहित एकाँकी रूपक को व्यायोग कहते हैं जिसमें एक ही दिन की कथा में युद्ध का निदर्शन होता है। इसके बाद उन्होंने कृष्ण मिश्र कृत प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक के तीसरे अङ्क का अनुवाद किया जिसका नाम पाखण्ड-विडम्बन रखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद इतना सुन्दर हुआ है कि वह अपने में पूर्ण एक मौलिक एकांकी नाटक प्रतीत होता है। कृष्ण मिश्र का प्रबोध-चन्द्रोदय संस्कृत में प्रतीक नाटकों की परम्परा का प्रवर्त्तक है। बौद्ध-काल में भी यह प्रतीक नाटकों की परम्परा विद्यमान थी, किन्तु वह कालान्तर में टूट गयी थी जिसे कृष्ण मिश्र ने पुनर्जीवित किया। प्रतीक नाटकों में पात्र अमूर्त्त पदार्थों के प्रतीक होते हैं उनमें शान्ति, करुणा, श्रद्धा, भक्ति आदि मानवीय वृत्तियों और भावनाओं को पात्रों का रूप दिया जाता है। कृष्ण मिश्र का प्रबोध-चन्द्रोदय प्राचीन हिन्दी कवियों में भी लोकप्रिय हुआ था और उसके अनेक अनुवाद अथवा छायानुवाद भक्ति काल तथा रीति-काल में हुये थे।

संस्कृत से अनुवाद के लिए चुने ग्रन्थों की शैली और स्वरूप में विविधता है। इनके द्वारा जहाँ संस्कृत साहित्य की विभिन्न युगों की प्रतिनिधि रचनाओं को भारतेन्दु हिन्दी को भेंट करना चाहते थे; वहाँ वे दृश्य-काव्य के अनेक भेदोपभेदों का प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाएँ भी हिन्दी में लाना चाहते थे। संस्कृत में नाटक दृश्य-काव्य की एक उपजाति मात्र है। दृश्य-काव्य के दो भेद हैं, रूपक और उपरूपक। इनके भी क्रमशः दस और अठारह भेद माने गये हैं। रूपक के दस भेदों में प्रधान और सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक, प्रकरण, भाग, व्यागोग और प्रहसन है। और उप-रूपकों में नाटिका और सट्टक ही अधिक लोकप्रिय रहे हैं। मुद्राराक्षस और धनञ्जय विजय के रूप में रूपक के दो प्रमुख भेद नाटक और व्यायोग हिन्दी में आ गये तथा रत्नावली और कर्पूर मञ्जरी के अनुवादों के रूप में उपरूपकों में प्रमुख नाटिका और सट्टक भी। संस्कृत नाटक के प्रधान रस वीर और शृङ्गार हैं, अन्य रस गौण माने गये है। मुद्राराक्षस और धनञ्जय विजय सात्वती और आरभटी वृत्ति वाली वीर रस की रचनाएँ हैं, जिनके नायक चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अर्जुन वीर शान्त और धीरोदात्त हैं। रत्नावली और कर्पूर मञ्जरी कैशिकी वृत्ति बहुलाशृङ्गाररस की कृतियाँ है जिनके नायक उदयन और कुमार चन्द्रपाल दोनो धीरललित हैं। धनञ्जय-विजय रूपक का एक अङ्क वाला सबसे छोटा रूप है और मुद्राराक्षस सात अङ्क वाला उसका एक सबसे बड़ा भेद। पाखण्ड विडम्बन का प्रतिपाद्यरस शान्त है। साथ ही यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि मुद्राराक्षस, धनञ्जय-विजय प्रबोध चन्द्रदय, रत्नावली आदि के अनुवाद संस्कृत से हुए हैं और कर्पूर-मञ्जरी का प्राकृत से। इस प्रकार संस्कृत और प्राकृत दोनों की नाट्य कला के आदर्श रूप का परिचय हिन्दी जनता को कराया जा सका।

इनके अतिरिक्त विद्यासुन्दर का अनुवाद उन्होंने महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर की इसी नाम की कृति की छाया ग्रहण करके प्रस्तुत किया। विद्यासुन्दर के कथानक का आधार चौर-कवि की सरस-रचना चौर पंचाशिकार है। यह कथानक बङ्गाल में बहुत लोकप्रिय है और उसके आधार पर कई काव्य ग्रन्थ और नाटक बङ्गाल में लिखे गये हैं। नवीन शैली के नाटक की रचना का श्रीगणेश पहले पहल बङ्गाल में ही हुआ। इसलिये भारतेन्दु ने उस भाषा की कृति का भी एक उदाहरण हिन्दी को भेंट किया। भारतेन्दुजी ने अपने नाटक निबन्ध में स्वयं लिखा है। 'आजकल यूरोप के नाटक की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बङ्गदेश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं, वे सब नवीन भेद में परिगणित हैं। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारम्बार दृश्यों के बदलने में है, और इसी हेतु एक-एक अङ्क में अनेक अनेक गर्भाङ्कों की कल्पना की जाती है, क्योंकि इस समय में नाटक के खेलों के साथ विभिन्न दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है।' विद्या-सुन्दर में तीन अङ्क अनेक गर्भाङ्कों में विभाजित है।

योरोपीय नाटक का अधिक निकट का परिचय कराने के लिये भारतेन्दुजी ने 'दुर्लभ-बन्धु' के नाम से 'मर्चेन्ट आव वेनिस' का अनुवाद प्रारम्भ किया। संघर्ष घटना वैचित्र्य, यथार्थवाद, व्यक्ति-वैचित्र्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रण, आदि पाश्चात्य नाट्य-कला के प्रधान गुण हैं। 'मर्चेन्ट आव वेनिस' के अनुवाद द्वारा भारतेन्दु हिन्दी नाटकों में भी इन गुणों के यथोचित समावेश के लिये उपयुक्त वातावरण तयार करना चाहते थे। 'दुर्लभ-बन्धु' में शेक्स पियर के मूलनाटक के कथानक और वातावरण के भारतीय करण की चेष्टा की गयी है। इस प्रकार वे विदेशी-साहित्य के भावों एवं आदर्शों को आत्मसात् करने का ऐसा मार्ग निकालते हुऐ दिखायी देते हैं जो उसके अजन बीपन को दूर करदे और भारतीय साहित्यादर्श के अनुकूल हो। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु नवयुग की चेतना के अनुरूप नवीन नाट्य-धर्म के अभ्युत्थान के के लिये एक सुनिर्धारित योजना के अनुसार काम कर रहे थे, उनका अनुवाद कार्य इस योजना का प्रधान अङ्ग था।

भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में भी हम उनकी यह योजना व्यवहृत होते देखते हैं। उनके कुछ मौलिक नाटक भारतीय नाट्य शास्त्र का अनुसरण करते हैं और कुछ में पाश्चात्य नाट्यशैली के प्रयोग किये गये सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक है, चन्द्रावली नाटिका है, विषस्य विषं औषधम् भाग है, भारत-दुर्दशा नाट्य-रसिक है और वैदिक हिंसा हिंसा न भवति तथा अंधेर-नगरी प्रहसन। इनमें रूपक के दो नये भेद भाव और प्रहसन तथा उपरूप का एक भेद नाट्य रसिक और आगये हैं, जो अनुवाद ग्रन्थों में नहीं थे। भारत-जननी को भारतेन्दुजी ने ओपेरा और नील देवी तथा सती प्रताप का गीति-रूपक कहा है। ये दोनों ही पाश्चात्य नाटक के भेद हैं। 'ये नवीन नाटक मुख्य दो भागों में बँटे हैं—एक नाटक और दूसरा गीति रूपक, जिनमें कथा भाग विशेष और गीति न्यून हों नाटक; और जिसमें गीति-विशेष हो वह गीति-रूपक ('भारतेन्दु—'नाटक' निबन्ध)। इस प्रकार भारतेन्दु जी ने भारतीय दृश्य काव्य और पाश्चात्य नाटक के अनेक रूपों की अवतारणा हिन्दी में करके भारतीय और पाश्चात्य नाट्य-कलाओं के समन्वय का मार्ग उद्घाटित किया। इस समन्वय-कार्य को उन्होंने कितना आगे बढ़ाया और इसमें उन्हें कितनी सफलता मिली, यह दूसरा विषय है।

—पठनीय सामग्री—

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक : अध्ययन—रामरतन भटनागर २॥)
२—भारतेन्दु की विचारधारा—लक्ष्मीसागर २)
३—भारतेन्दु युग—रामविलास शर्मा २)
४—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—ब्रजरत्नदास ५)
५—भारतेन्दु नाटकावली दो भाग ६)
६—आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र १॥)
७—हिन्दी नाट्यविमर्श—गुलाबराय २)
८—हिन्दी नाट्य चिन्तन—शिखरचन्द्र जैन ५)
९—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—सामनाथ गुप्त ४)
१०—हिन्दी नाट्य साहित्य—ब्रजरत्नदास २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गुञ्जन' में पन्तजी के दार्शनिक विचार

श्री रघुवंशनराथणजी

'मैं पल्लव से गुञ्जन में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ" —पन्त

'पल्लव' में कवि ने रूप ढूँढ़ा था, 'गुञ्जन' में वह अरूप ढूँढ़ रहा है। 'पल्लव' में कवि ने सुषमा खोजी थी, 'गुञ्जन' में वह लोक-कल्याण का संधान कर रहा है। 'पल्लव' में उसके नयन परितृप्त हुए थे, 'गुञ्जन' में वे परितोष मांग रहे हैं। इसी लिए कवि 'पल्लव' की पल्लवित एवं सुषमा- सिक्त भूमि से 'गुञ्जन' के चिन्तन-लोक में उतरा है।

पिता के निधन और अपनी दीर्घ रुग्नता के पश्चात् स्वास्थ्य-लाभ के प्रति क्रिया-रूप में कवि ने 'परिवर्त्तन' शीर्षक कविता को जन्म दिया, जिसमें कवि सौन्दर्य-द्रष्टा न होकर मानव-द्रष्टा हो गया है—सृष्टि के 'निष्ठुर परिवर्त्तन' पर वह कातर हो जाता है। मानव-जग म सुख-दुख, दिवा-निशा, जन्म-मृत्यु आदि का क्रम लगा रहता है।

आज बचपन का कोमल गात।
जरा का पीला पात!
चार दिन सुखद चाँदनी रात,
और फिर अन्धकार अज्ञात!,

और—

[पृष्ठ ७८ 'पल्लव']

'खोलता इधर जन्म लोचन'
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण;

[पृष्ठ ७६]

जीवन की इस वास्तविक कठोरता से टकरा कर 'पल्लव' और 'गुञ्जन' के बीच कवि की किशोर कल्पना का सौन्दर्य-स्वप्न टूट गया। दर्शन और उपनिषद् के अध्ययन ने उसके रागतत्व में मंथन पैदा कर दिया और कवि ने सौन्दर्य-लोक से उतर कर मानव के चिरन्तन भाव-जगत में प्रविष्ट किया। स्वदेशी आन्दोलन एवं छायावाद की विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप कवि पीड़ित मानव के सुख-दुःख को देखने के लिए विकल हो उठा। इस प्रकार 'पल्लव' का व्योम-विहारी गीत-खग गुञ्जन में जीवन के विटप पर उतर आया है। कवि ने जीवन-तरु की डाली-डाली फेरी लगाई है और पाया है कि इस तरु की डाली में 'सुख के तरुण फूल' हैं और कुछ 'दुःख के करुण शूल'। मानव-उर-आँचल को जहाँ पराग ने सुवासित किया है, वहाँ काँटों ने उसे झांझर भी किया है—

'देखूँ सब के उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण फूल,
सब में कुछ दुःख के करुण शूल;
सुख-दुःख न कोई सका भूल?'

[पृष्ठ सं० १७]

मनुष्य सुख की कामना करता है—निरन्तर सुख-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है। किन्तु उसे दुःख ही मिलता है; पग-पग पर उसे 'कुटिल काँटों' का सामना करना पड़ता है—उसके शरीर लहु लूहान हो जाते हैं। यह कैसी असंगति है। कवि जीवन की इस पहेली पर विचार करता है और पाता है कि हमारे दुःखों के मूल में हमारी मृग-तृष्णा है—हमारी अमर्यादित अभिलाषाएँ हैं—हमारी 'अति इच्छा' है। इसीलिए हमारा रुदन है, असन्तोष है!

'बह जाता बहने का सुख,
लहरों का कलरव, नर्तन,
बढ़ने की अति इच्छा में
जोता जीवन से जीवन।'

[पृष्ठ सं० १४]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि पन्त जब इस वस्तु-जगत में आँखें दौड़ाता है तो पाता है कि कोई दुःखों के आधिक्य से पीड़ित है तो सुखों के भार से विकल !

'जग पीड़ित है अति-दुःख से,
जग पीड़ित रे अति-सुख से,

कवि कहता है कि जिस तरह शहद में मधुप के पर भींग जाते हैं और वह गुञ्जार न कर पाता—वास्तविक आनन्द का अनुभव नहीं कर पाता, उसी तरह अत्यधिक सुखों में निर्लिप्त रहने वाला मानव सुखों के वास्तविक आनन्द की उपलब्धि नहीं कर सकता। उसका जीवन शिथिल, क्रिया हीन और पंगु हो जाता है। फिर दीर्घ अत्यधिक वेदना से मनुष्य का अन्तर भारी हो जाता है, जिससे उसकी वाणी मूक हो जाती है—स्वर तार-तार हो जाते हैं। हृतन्त्री के तार ढीले पड़ जाते हैं और विपंची निर्वाक् हो जाती है। देखिए—

'अपने मधु में लिपटा कर
कर सकता मधुप न गुञ्जन;
करुणा से भारी अन्तर
खो देता जीवन कम्पन।'

[पृ० सं०-२०]

अतः कवि चाहता है कि मानव जगत में दुःख-सुख समान रूप में बँट जाए—न किसी को बहुत अधिक सुख हो, न किसी को बहुत अधिक दुःख हो; कवि चाहता है कि 'सुख-दुख के मधुर-मिलन से' मनुष्य का जीवन पूर्ण हो। कवि के शब्दों में—

मानव-जग में बँट जावें,
दुख सुख से औ' सुख दुख से।

[पृ० सं०-१६]

और—

'सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण ;
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।'

[पृ० सं०-१६]

यह जीवन के प्रति कवि का सामञ्जस्य वादी दृष्टिकोण है। पंतजी ने कहा भी है—"गुञ्जन में मेरी वहिर्मुखी प्रकृति सुख-दुःख में समत्व स्थापित कर अन्तर्मुखी बनने का प्रयत्न करती है।"

कवि कहता है कि सुख-दुःख क्षणिक है। आत्मा ही चिरन्तन है, शाश्वत है। आत्मा सुख-दुःख के परे है। आत्मानन्द सुख-दुःख के कठोर प्रहारों से विचलित नहीं होता।

'अस्थिर है जग का सुख-दुःख,
जीवन ही नित्य चिरन्तन !
सुख-दुख के ऊपर, मन का
जीवन ही रे अवलम्बल !'

सुख-दुःख की दार्शनिक विवेचना के बाद कवि मनुष्य-जीवन के और विविध अङ्गों पर भी अपना मत देता है।

ईश्वर और सर्ववाद (Pantheism)—पन्तजी की ईश्वर के अस्तित्व पर पूरा भरोसा है। वे कहते हैं:—

'ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे'

किन्तु पन्तजी का वह ईश्वर अद्वैतवाद का नहीं, उन्हें ईश्वर के प्रत्यक्ष रूप से प्रेम है। अद्वैत ब्रह्म को वे 'मोती वाली मछली' कहते हैं, जिसके लिए उन्हें सागर के नितल जल में जाना होगा, जीवन की गहराई में उतरना पड़ेगा; यह उनके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। वह द्वैत इसलिए पसन्द करते हैं कि द्वैत में ही उसका व्यक्तित्व सुरक्षित रह सकता है। वह विश्व-सुन्दरी प्रकृति के रस-सौन्दर्य एवं सौन्दर्य के बीच बैठकर ही ईश्वर का मनोहारित्व देखना चाहता है।

'सुनता हूँ, इस निस्तल-जल में
रहती मछली मोती वाली,
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल-माली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आएगी मेरे पुलिनों पर
वह मोती की मछली सुन्दर
मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी-भर।'

[पृष्ठ ७१]

कवि प्रत्यक्ष सत्ता—द्वैत तो मानता है, पर द्वैत वादियों की तरह जड़—चेतन में विभिन्नता वह नहीं मानता। उनका कहना है कि समस्त जड़—चेतन में एक ही प्राण की स्पन्दन है, एक ही आत्मा दोनों में बोल रही है—दोनों के प्राणों में किसी परोक्ष सत्ता का प्रतिविम्ब है। कवि की भावना सर्ववाद (Pan theism) के बहुत निकट है। सर्ववाद में ईश्वर की कल्पना तो नहीं होती, पर समस्त जड़-चेतन में किसी विराट एवं महीम सूक्ष्म सत्ता का प्रति फलन मान्य होता है। देखिए:—

'मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगनी के अखिल चराचर,
चों मौन-मुग्ध किसके बल।'

आत्मा:—कवि पन्त को आत्मा की सत्ता पर पूर्ण आस्था है। आत्मा जड़—चेतन दोनों में समान-रूप से विद्यमान कवि मानता है।

'आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है सरिता।'

[पृ० सं० १४]

आत्मा सुख-दुःख के आघातों से कलुषित नहीं होती। यह 'सुख-दुख के ऊपर मन का अवलम्बन' है।

'सुख-दुःख के ऊपर, मन का,
जीवन ही रे अवलम्बन।'

[पृ० सं० २०]

मुक्ति और बन्धन:—मुक्ति के सम्बन्ध में कवि के विचार अत्यन्त सुन्दर हैं। वह वेदान्तवादियों की मुक्ति नहीं चाहता—वह निराकार परमसत्ता में अपने व्यक्तित्व का लोप करदेना नहीं चाहता। वह ऐसी मुक्ति नहीं चाहता जो सदा के लिए उसे विश्व-माधुरी के पास से विलग करदे। कवि दृष्टि में सृष्टि-सौन्दर्य के बीच रहना सच्ची मुक्ति है। सगुण से मुक्त हो कर परमात्मा में समाहित हो जाता तो अदृश्य बन्धन है।

'तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन,
गन्ध ही न तू गन्ध युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन!
मूर्तिमान बन, निर्धन!
गल रे गल निष्ठुर मन।'

[पृ० स० ११]

कवि जगत के बन्धन के बीच रहना पसन्द करता है। जब उसका हृदय विश्व-सौन्दर्य से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। तो उसका हृदय विश्व की सङ्कीर्ण कारा से मुक्त होकर अक्षय आनन्द का अनुभव करता है। कबीर की तरह वह भेद के बीच अभेद देखता है—उसके मन के रज और तम-भाव तिरोहित हो जाते हैं—सात्विक भाव का उद्रेक होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—"हृदय की मुक्तावस्था का नाम ही रस-दशा है। रस-दशा में सहृदय का अन्तः करण अपनी संकीर्णताओं से मुक्त होकर सभी दिशाओं में प्रसारित होता है और विश्व-सौरन्दर्य से अपना अभेद स्थापित कर लेता है।' कवि पन्त भी इसी अवस्था को—रसदशा को—'सहज मुक्ति का मधुर क्षण' मानता है। मुक्ति का मधुर क्षण जीवन के लिए निसर्ग—सिद्ध है परन्तु वेदान्त के अनुसार जो मुक्ति का सिद्धान्त है—परमात्मा में एकाकार होकर जगत के बन्धन से मुक्त हो जाना—कवि के लिए निसर्ग-सिद्ध नहीं है—वह कठोर साधन का विषय है। उस मुक्ति को कवि कठिन बन्धन ही मानता है। जगत के बीच रह कर—भेद-भाव को भूलकर जो मुक्ति की रसदशा मिलती है, उसमें क्षण-क्षण परिवर्तित सौन्दर्य की रमणीयता है, उससे कवि का मन नहीं उबता।

है सहज मुक्ति का मधु-क्षण,
पर कठिन मुक्ति का बन्धन!

[पृ० सं० २८]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य और प्रकृति:—'पल्लव' प्रकृति-काव्य है, गुञ्जन मानव-काव्य। गुञ्जन में प्रकृति मानव-भावों की रङ्गभूमि है—उसमें चेतना का स्पन्दन है, प्राणों की धड़कन है। प्रकृति और मानव में कोई अन्तर नहीं है। दोनों का निर्माण एक ही तत्त्व से हुआ—दोनों एक ही प्रकार के सुख-दुःख, आशा-निराशा से प्रभावित हैं। प्रकृति सुशृङ्खलित और सुव्यवस्थित है—उसमें एक स्वरता है, एक सङ्गीत है; मानव में अव्यवस्था है, उसमें एक सङ्गीत का अभाव है। प्रकृति दुःख के क्षणों में भी मुस्कान की ही कली बिखेरती है—पर मानव दुर्दिन में कातर हो जाता है, उसके अन्तःतल में वेदना का ज्वार उठ जाता है। मानव और प्रकृति में यही अन्तर कवि दिख लाता है—

'कुसुमों के जीवन का पाल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा।'

[पृ० सं० २१]

नारी, प्रेम और सौन्दर्य—नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण आधुनिक है। मानव-जीवन-रथ के पुरुष और नारी दो पहिए हैं—प्रसाद के ये विचार कवि को पूर्णतः मान्य है। कवि जीवन की प्रगति के लिये नारी और पुरुष दोनों में अनन्योन्याश्रयी सम्बन्ध मानता है। नारी पुरुष की पूरक है—

'निखिल जब नारी नर संसार
मिलेगा नव-सुख से नव वार,
अधर पर से उर अधर समान
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण।'

गुञ्जन का कवि नारी-मूर्ति में समस्त विश्व की कोमलता, कमनीयता, माधुर्य और सौन्दर्य का समुच्चय पाता है। कवि नारी का सौन्दर्य प्रकृति के सौन्दर्य से बढ़कर पाता है।

'तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के वन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार कचनार
लालसा की लौ से उठ लाल।'
'कपोलों की मदिरा पी प्राण!
आज पाटल गुलाब के जाल,
विनत शुक-नासा का कर ध्यान,
बन गये पुष्प पलाश अराल।

[पृष्ठ सं०—५६]

प्रकृति के रूपों को जब मूर्तिमत्ता होती है तो नारी मूर्ति का सृजन करती है।

'दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि—निभृत शयन पर,
वह छबि की छुई-मुई-सी
मृदु-मधुर लाज से मर-मर।'

[पृष्ठ संख्या ८६]

नारी प्रणय का शाश्वत नीड़ है। किन्तु नारी का प्रेम ऐन्द्रिक नहीं, वरन् उसका सम्बन्ध उसके अन्तर की आत्मा से है—वह आध्यात्मिक प्रेम है। नारी सदा 'आत्म-निर्मलता में' निरत रहती है—

'आत्म-निर्मलता में तल्लीन
चारु-चित्रा-सी, आभासीन;

पृ० सं० ६४]

कवि ने जहाँ-जहाँ सौन्दर्य का चित्रण किया है, वहाँ नारी के रूप का नहीं, प्रभाव का प्रेषण किया है। नारी का सौन्दर्य अनान्द्रीय और भावात्मक है। उस सौन्दर्य में उसका उन्मादकारी एवं भावमय व्यक्तित्व की झाँकी मिलती है—

तारिका-सी तुम दिव्याकार,
चन्द्रिका की झंकार!
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार
अप्सरी-सी लघुभार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोदगार,
प्रणय-हंसिनि सुकुमार?
हृदय-सर में करने अभिसार,
रजत-रति, स्वर्ण-विहार!

[पृ० सं० ६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णायन

श्रीमती नीलिमा भागवत

हिन्दी साहित्य जगत् में महाकाव्यों की रचना कम ही हुई है। तुलसी जायसी आदि प्रथम उन्नायकों को छोड़ दिया जाये तो महाकाव्य मिलना ही कठिन है। हिन्दी का साहित्य काल ही संकोच की ओर बढ़ता अपने युग के कुछ अस्फुट भाव अस्फुट के ही गीतों दोहरों और छन्दों में भरता आगे बढ़ा है। अर्वाचीन साकेत, प्रियप्रवास आदि भी बड़े प्रबन्ध काव्य ही हो सके हैं। महाकाव्य की सीमा को छू सकने वाला ग्रन्थ हमें बहुत काल पश्चात ही मिला। कृष्णायन आज का महाकाव्य है इसमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश आदि साहित्यों की सारी परम्परा अपने नव रूप में आई है। युग की भावनाओं का, ऐतिहासिक गरिमा का और पौराणिक महत्ता का एक साथ ऐसा समन्वय कदाचित् कहीं न मिलेगा। 'कल' को आज के रूप में और 'आज' को कल की परछाँई में दिखाने में मिश्रजी की प्रतिभा पराकाष्ठा को पहुँच गई है। आज के साहित्य का केवल यही ऐसा ग्रन्थ है जो कि 'कृष्णयश' सुनने वाले 'लाख-करोरी' के पास पहुँच सकता है। 'बहुजन हिताय' सिद्धान्तो को 'रामायण प्रिय' उत्तरापथ को जनता के पास पहुँचाने की कृष्णायन ऐसा ही ग्रन्थ चाहिए। जिस जनता को तुलसी अपनी सरलता और विदग्धता से युग युग तक प्रभावित कर चुके हैं उसे मिश्रजी भी कर सकेंगे ऐसी आशा है।

तुलसी की रामायण से प्रभावित उसी की आकृति में आ, कृष्णायन हमें संस्कृत के अनगनित कुसुमों का अवचय देता है। कालिदास माघ भारवि और सूरदास आदि से कवि ने बहुत कुछ लिया है। ये कवि अपने काव्योत्कर्ष को चरम सीमा पर पहुँचा चुके थे और उसके आगे जाना शायद कवि को आगे जाना असम्भव होता पर इतने कवियों के काव्य कुसुम एक साथ आपने नव रूप में कृष्णायन में ही मिलेंगे। कवि पर भारवि का काफी असर है। पूजा काण्ड का द्रौपदी कृष्ण भीम और युधिष्ठिर का सम्वाद भारवि के किरातार्जुनीय के प्रथम और द्वितीय सर्ग से मिलता है। दोनों में एक ही से भाव और प्रबन्ध है। सिर्फ प्रयोग दूसरे हैं।

कवि कहता है—

वारिद बसत दूरि, नभ माँही।
भृगपति पहुँच तहाँ लगि नाहीं॥
तबहुँ सुनत धन गर्जत घोरा।
करत कटास गरजि तेहि ओरा॥
तेजस्विन उर सहज अमर्षा।
सहत न कबहुँ शत्रु उत्कर्षा॥

भारवि कहते हैं—

किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्ध्वनतः
प्रार्थयते मृगाधिपः।
प्रकृति खलु का महीयकः
सहते नान्य समुन्नतिं यथा॥

भाव एकही हैं केवल भाषा का अन्तर है। दूसरा उदाहरण उसी प्रसंग से—

कवि कहता है—

सुधा शीत शय्या निशि सोभी।
मंगल गीतन जागत जोई॥
कुश शय्या कोइ कोय भुवाला।
उठत अशुभ सुनि शब्द शृगाला॥

भारवि कहते हैं—

पुराधि रूढः शयनं महाधनं।
विबोध्यसे यः स्तुति गीत मङ्गलैः॥
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं।
जहासि निद्राम शिवैः शिवारुतैः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह कवि पर संस्कृत साहित्य का बहुत प्रभाव है जो कवि के संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन बताता है।

जहाँ कवि किसी का आसरा न ले स्वतः आगे बढ़ा है वहाँ उसकी प्रतिभा और भी निखर उठी है। वहाँ उसका सच्चा रूप हमें मिल जाता है उदाहरणार्थ कृष्ण बलराम के मृगया वर्णन में एक दोहा देखिये—

कस्मात् तुरगहु अड़े,
खुर्त खूंद फुफु रात
देखउ वनचर राम काउ,
आवत दुरग सघात।

मिश्रजी के काव्य उत्कर्ष उनकी प्रबन्ध पटुता में है। उसमें प्रबन्ध काव्य के सब गुण एक साथ प्रदीप्त हुए हैं। बहुसंख्य घटनाओं का चुनाव, उनका यथा स्थान विभाजन, वर्णन में तीव्रता, सक्षेप और वेग आदि कमी मिलता है। घटनायें चित्रपट के विभिन्न चित्रों की तरह हमारे सामने आती और चली जाती है। किसी घटना में ऊहा पोह या अनावश्यक वर्णन नहीं मिलता। घटनायें केवल बालकृष्ण के चरित्र को 'योगीश्वर' कृष्ण का रूप देने ही सामने आती और चली जाती हैं। मुख्य चरित्र का उत्कर्ष ही कवि का ध्येय है। अर्जुन भीम युधिष्ठिर और बलराम भी कृष्ण की छाया में आते जाते हैं। कोई भी कृष्ण को नहीं ढँक पाया। महाभारत में हमें योगीश्वर कृष्ण का रूप अवश्य मिलता है पर प्रत्येक पर्व में कोई विशेष नायक या उपनायक हमें प्रभावित करता रहता है। श्रीमद्भागवत में गोपीवल्लभ कृष्ण कृष्ण के जीवन का एकांगी चित्रण है। कृष्णायन के कृष्ण आद्यन्त हमारी भावनाओं को साथ लेकर कार्य करते हैं। हमारा ध्यान कृष्ण की ओर ही रहता है।

कृष्णायन में हमें महाभारत युग की समस्त भावधारायें मिल जाती हैं। धर्म की जय के प्रणेता कृष्ण का स्वरूप मुख्यतः सामने आता है। पाँडवों की कथा कृष्ण चरित्र से गौण होते हुए भी उपेक्षित नहीं। पूजा काँड के बाद तो 'राजपुर' की समस्त राजनीति कृष्ण ही परिचालित करते हैं।

वीररस का ऐसा उन्नत काव्य हिन्दी में आज तक नहीं लिखा गया। भूषण का ग्रन्थ प्रबंध काव्य नहीं अलङ्कार ग्रन्थ है। वहाँ वह समन्वित प्रभाव नहीं पड़ता जो कृष्णायन में पड़ता है। चन्द के काव्य में प्रक्षिप्त अंश कितना है इसका अभी तक निर्णय नहीं। आज का युग शृङ्गार का ही रहा है। छायावादी कवि अपनी कोमल कल्पना अंगुलियाँ काव्य वीणा पर धीरे-धीरे चला रहे थे। फिर शृङ्गार की झङ्कार क्यों न निकलती। पर मिश्र जी का उद्दाम कवि सजग चेतना का बोधक क्यों न बनता। राष्ट्र-प्रेमी देश भक्तों के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाले कवि को देश की दशा और उसके उद्धार के लिये क्या रुचता। और फिर 'बंदिगृह' शृङ्गार या अन्य रसों की रचना के लिये योग्य स्थान भी तो नहीं। चरित्र नायक भी एक युग पुरुष है ऐसी परिस्थिति में वीररस में रङ्गी वाणी क्यों न निकलती। शृङ्गार के समस्त वर्णन भी वीरभावनाओं की छाया में ही हैं। बिना विग्रह के शायद ही कोई प्रणय हुआ है।

वीररस की उद्भावना काव्य में उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। जयकाण्ड में तो वह पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। महाभारत का युद्ध जिस भावना के साथ हुआ है उसके वर्णन में तो कवि ने मानों आज के ही युद्ध का वर्णन किया है। वीररस की इतनी सुन्दर अभिव्यञ्जना, शब्दों की ओज शक्ति का इतना विकास, चौपाई और दोहा सरीखे छन्द में इतनी ओजस्विनी शक्ति शायद ही कोई भर सका हो। यहाँ हमें महाभारत के युद्ध वर्णन को ही छटा मिल जाती है। बहुत सी उपमायें और रूपक महाभारत से जाने या अन जाने ही आ गये हैं। पर जो कुछ वर्जित है वह हिन्दी साहित्य के लिए एकदम नवीन है।

शृङ्गार वर्णन में कहीं-कहीं महाकवि कालिदास की झलक मिल जाती है। शृङ्गार मिश्रजी अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सके अन्य रस वीर के ही सहायक होकर आते हैं।

कृष्णायन घटना प्रधान महाकाव्य है। इसमें चरित्र की विविधता नहीं आने पाई। कृष्ण के चरित्र को छोड़कर और कोई भी चरित्र पूर्णतः चित्रित नहीं है यहाँ तक कि कृष्ण की नायिकाओं के चरित्र तक अधूरे हैं। कृष्ण के चरित्र के सम्बन्धित किसी पात्र का चरित्र में आने वाली घटनाओं के कारण यदि कुछ विकास हो गया है वह केवल आनुषंगिक रूप में किसी चरित्र को विशेष रूप के निखारने का प्रयत्न नहीं। अर्जुन धर्मराज तथा भीष्म के चरित्र ही कुछ अधिक विकसित है। जरासन्ध दुर्योधन कंस आदि का दानवी रूप ही अंशतः हमारे सामने आता है।

कृष्णयन की भाषा अवधी है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता है। तुलसीदास के समान कोमल-कान्त पदावली का सम्मिश्रण नहीं। वीर काव्य के उपयुक्त कठोर वर्णयुक्त पदावली का कवि ने सञ्चय किया है' यथा—

हतेऊ सुतीक्ष्ण विशिख वक्षःस्थल
गिरेऊ सुदक्षिज विद्ध धरणि तल,
भ्रष्ट किरीट नष्ट तनु त्राणा
कीर्ण आभरण भर निष्प्राणा।

मिश्रजी के काव्यों में अनेक अलङ्कारों की भरमार है। उपमा रूपक विरोध आदि सभी स्थान-स्थान पर मिलते हैं। जयकाँड के युद्ध वर्णन में तो अलङ्कारों की लड़ियाँ ही हैं।

हरि अर्जुन रथ अजिर विराजे,
संध्या सङ्ग रवि शशि जनु रागे।

उपमा—

मनोहरण भीषण उजियारा,
जनुनिशि दीप दाप बनसारा॥

इसमें विरोध उपमा आदि का अंकुर है। हर शब्द में अर्थ गौरव है।

बड़े-बड़े रूपक मिश्रजी ने अधिक नहीं बाँधे पर वे सर्वथा अनुपस्थित नहीं।

रचहु अवहिं रण यज्ञ महाना,
यज्ञाचार्य आयु भगवाना।
धर्मसुत दीक्षित मुखवारी,
ब्रह्म धारणि ब्रह्म कुमारी॥
ऋत्विय पाण्डव, नृप आताय,
रण माहं यज्ञ स्थान्।
बलिपशु कौरव बल निखिल,
फल जय कीर्ति महान्॥

मिश्रजी के काव्य के का सबके मुख्य गुण हैं उनका अर्थ गौरव। थोड़े से में बहुत कह डालना उनकी प्रतिभा का एक खास अङ्ग है। किसी भी वर्णन में केवल उतने ही शब्द रखे गये हैं जितने पर्याप्त हों। इसके काव्य में एक वेग आ गया गया है। और इसी गुण के कारण कवि तीन-तीन बृहद ग्रन्थों का कथाकार एक ही ग्रन्थ में उपस्थित कर सके हैं। उदाहरणार्थ—

कुमुद देह पूर्णेन्दु मुख,
कर पद उषा विलास
वेणि श्रेणि अलि, मधु अधर,
शरद चन्द्रिका हास।

कवि प्रकृति में कहीं भी अधिक नहीं रम पाया है कृष्णायन के प्रकृति वर्णन महाकाव्य के एक अङ्ग की पूर्ति के लिये हैं। कवि ने जिस कौशल के नगरों का वर्णन किया उसके प्रकृति का नहीं। द्वारका, हस्तिनापुर तथा इन्द्र प्रस्थ के महल और उद्यान अब बहुत अच्छी तरह चित्रित हैं। द्वारका के वर्णन की भी सफलता अन्यत्र नहीं है। वैसे रेवा तीर निवासी होने के कारण कवि को यह भी लिखना पड़ा है।

सुरसरि जल मज्जन किये,
विनसत जावन पाप
रेवा सुमिरन मात्रते,
नष्ट कलुष त्रयताप

यह वैसे ही हैं जैसे मानस में काशी का प्रशंसा।

कृष्णायन की अन्य किसी विशेषताओं को देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए भी कृष्णायन भक्ति काव्य नहीं जान पड़ता तुलसी के साहित्य में सूर के पदों में जो भक्ति की स्रोतस्विनी धारा है वह हमें कृष्णायन में नहीं मिलती वह सरस्वती नदी के समान शायद समय के प्रावह से लोप हो गई है। कृष्ण को भक्तों के समान स्वामी, सखा, पति, या प्रियतमा के रूप में नहीं देखा गया केवल इष्ट देव के रूप में ही देखा गया है। कवि के नेत्र सूरदास के समान 'निसदिन' कृष्ण प्रेम की धारा में नहीं 'बरष' पाये। कृष्णायन धार्मिक ग्रन्थ के रूप में नहीं केवल अपने साहित्यिक रूप में ही देखा जाना चाहिये। आज के युग में भक्ति काव्य या धर्म ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं थी। कृष्णायन आँकता नहीं बल्कि गिराता है।

कृष्णायन के कृष्ण मानव नहीं हैं। वे ईश्वर के अवतार है और पृथ्वी का भार उतारने को पृथ्वी पर आये हैं। उनका उद्देश धर्मराज्य स्थापित करना है। 'प्रिय प्रवास' के कृष्ण नृरत्न हैं और कृष्णायन के ईश्वर। यह अवतार वाद एक पीछे की ओर ले जाने वाला कदम है। इस युग में ईश्वर को मानव भावनाओं से ढ़क कर काम निकालते हैं पर कृष्णायन के ईश्वर कृष्ण का रूप मानव कृष्ण से कहीं अच्छा है। जिसे हम समझा नहीं सकते उसे युग भावनाओं पर ही छोड़ दिया गया है। कृष्ण के चरित्र के कई अंश इसी तरह बिना किसी मनोवैज्ञानिक कारण के वंचित हैं। पर सच तो यह है कि यदि हमें मानव आदर्श चाहिये तो हम निर्माण कर सकते हैं उसके लिये हमें युग के अवतारी पुरुषों का घसीटने की जरूरत नहीं।

आज तक सम्भव है कि दूसरे किसी ग्रन्थ का इतना प्रचार नहीं हुआ। यह प्रचार प्रोपेगन्डा के रूप में ही अधिक है। वैसे सभी साहित्य विज्ञ इसे अपने हृदय का हार बना चुके हैं पर इससे प्रचार अधिक नहीं होता। ग्रन्थ का मूल्य ही उसे सर्वसाधारण जनता के पास तक पहुँचने नहीं देता। रेडियो पर कृष्णायन पाठ विश्वविद्यालय में कृष्णायन के द्वारकाकांड का पाठ्य पुस्तक होना ग्रन्थ के बहुश्रुत होने के साक्षी हैं।

कृष्णायन का एक अपना सन्देश है वह कृष्ण के मुख से बार बार वर्जित है। अन्तिम कांड में मैत्रेय को उपदेश तो मानों कवि का अपना सन्देश—आत्म-दर्शन है—युग की भावनाओं को घटना प्रवाह में जहाँ कहीं स्थान मिला है अवश्य आ गई हैं। कृष्ण का मथुरा में स्वागत, धर्मराज का हस्तिनापुर में स्वागत, आजकल के एक बड़े नेता के स्वागत के समान हैं। कवि का देश प्रेम उसके देश वर्णन के शब्द शब्द में झलकता है। कृष्ण का आर्यसाम्राज्य के लिये प्रयत्न धर्म का भीष्म द्वारा कथित इतिहास और धर्म की नूतन व्याख्या आदि भाषा की विचार-धारायें हैं। देश में एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना जिसमें शासक धर्म के शाकिन हो, जनता साष्टांग दे यही सम्भव कवि का आदर्श है। आज देश देश में विप्लव का वही रूप है जो महाभारत काल में था। आज की समस्यायें भी महाभारत काल के समान है। उस गुत्थी को कृष्ण ने सुलझाया था। आज हमें फिर कृष्ण की आवश्यकता है आज का मार्ग सीधा और सरल नहीं। आज नीतिकार मार्ग नहीं बना सकता। रण में युद्ध और पलायन भी, दूसरों का संहार और अपने कुटुम्ब का भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा-विज्ञान

हिन्दी निरुक्त—ले०—किशोरीदास वाजपेयी, प्र०—जनवाणी प्रकाशन—१६१.१ हरिसनरोड़, कलकत्ता ७। पृ० सं० १२४, मूल्य २।) सजिल्द।

निरुक्त या निर्वचन शास्त्र भाषा-विज्ञान का मूल है। 'देश, काल तथा अन्य ऐसे ही कारणों से शब्द में जो परिवर्तन होता है, अर्थ में जो विकास होता है, उसी के विचार को 'निरुक्त' कहते हैं।' महर्षि यास्क का प्रसिद्ध निरुक्त बहुत पुराना है। हमारी बुरी आदत पुराने लोगों की प्रशंसा कर सन्तोष करने की थी जिसके कारण हमारा वर्तमान बिगड़ा है और हम दीन बने। भाषा-सम्बन्धी मौलिक खोज की हम लोगों में अभी बहुत कमी है। निरुक्त शास्त्र पर यह छोटी-सी पुस्तक लिखकर वाजपेयीजी ने हिन्दी का बड़ा उपकार किया है। हिन्दी के बहुत से शब्दों के इतिहास का हमें जरा भी ज्ञान नहीं। वर्णागम, वर्णव्यत्यय, वर्णविकार, वर्णनाश—शब्द-परिवर्तन के इन चारों प्रकारों का विद्वान लेखक ने सटीक, सोदाहरण विश्लेषण किया है और यत्रतत्र तथाकथित डाक्टर-विद्वानों की अच्छी खबर भी ली है। वाजपेयीजी में अक्खड़पन है पर उसका आधार पाण्डित्य है इसलिए अखरता नहीं। लेखक की शैली रुचिकर एवं साहित्यिक है। 'बाबू' का बहुवचन, 'बाबुओं' नहीं 'बाबुओ' होना चाहिए—इसका कारण उन्हीं के शब्दों में सुनिए 'जिसकी कोई आवाज नहीं वह जी नहीं सकता, किंवा जीता हुआ भी कुछ नहीं' 'बाबुओं' की 'वों' ध्वनि सुनता कौन है—इसलिए 'ओ' को 'ओ' बनना पड़ा। इस पुस्तक से अनेक शब्दों के मूल का सही ज्ञान होगा। बहुतों को अन्दाज नहीं होगा कि अपनी बिटिया को हम 'मुन्नी' क्यों कहते हैं—यह वर्ण-विकार की कृपा है 'मुण्डी' से 'मुन्नी; स्त्रियाँ प्रायः सभी देशों में सिर पर सुन्दर केश रखती हैं। परन्तु छोटे बच्चों के केश कुछ दिन तक कटाते रहते हैं और प्रायः सात-आठ वर्ष की अवस्था से लड़कियों के केश रखने की चाल है। तो छोटी बच्चियों को खिलाते समय प्यार में लोग 'मुन्नी-मुन्नी' कहने लगे।....जिसके सिर पर केश न हों, जो सिख न हो, उसे (सिख लोग) 'मुन्ना' कहते हैं।' 'शुद्ध' से 'सुध' आदि हिन्दी शब्दसागर की भ्रामक व्युत्पत्तियों की ओर लेखक ने ध्यान आकर्षित किया है—इसी तरह 'पकाना' को प्रेरणार्थक क्रिया मानने वाले वैयाकरणों की भूल बताई है। 'भिश्र' और 'स्तीफा' की जगह 'अभिश्र' और 'इस्तीफा' होना चाहिए—'इस्तीफा' फारसी 'इस्तीफ' का तद्भव रूप जो है। 'इस तरह के 'भिश्र' लोग यदि भाषा-संस्कार का काम छोड़ कर, अपना 'स्तीफा' दाखिल करके, कुछ और काम करें, तो अधिक अच्छा हो।' पृ० ६६ हिन्दी की 'ने' विभक्ति का विकास संस्कृत 'बालकेन' आदि में स्थित 'एन' अंश को लेकर वर्ण—व्यत्यय से सिद्ध बताया गया है। हिन्दी की विकास-प्रवृत्ति समझाने के लिए पर्याप्त रोचक उदाहरण इस पुस्तक में मिलेंगे—दक्षिण में पाठक 'फाटक' बन गया। 'हिन्दी में शब्द-विकास का कारण संक्षेप, सौकर्य तथा सौष्ठव की ओर प्रवृत्ति ही है, उच्चारण-अशक्ति नहीं' (पृ० ११६) इससे हम पूर्ण सहमत नहीं क्योंकि 'जनता' को संयुक्ताक्षरों के उच्चारण में अवश्य दिक्कत पड़ी ही होगी। काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय के नौकर चाकर आर्टस कालेज को अब भी आठ कालेज कहते हैं। 'शाक्त' से 'छाकटा' बना—इसमें क्या उच्चारण-अशक्ति नहीं रही होगी? घृणा प्रदर्शित करने के लिए भी चाहे 'नकटा' के अनुकरण पर 'छाकटा' का 'टा' आया हो। भाषा के बड़े रोचक रहस्य हैं—उनको खोलने वाला कोई पारखी चाहिए। यह पुस्तक निरुक्त पर 'प्रबन्ध' नहीं, 'निबन्ध'-मात्र है। इसमे भाषाविदों को 'प्रबन्ध' लिखने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। विषय की पूर्णता तभी सम्भव है क्योंकि यह तो स्वयं लेखक के शब्दों में ही 'निरुक्त की पहली पुस्तक है। इसमें व्यापक रूप से नियम और अपवाद सब कैसे दिये जा सकते हैं? दिशा-निर्देश मात्र है।' (पृ० ८५) हमें विश्वास है स्वयं वाजपेयीजी भी अपने काम को आगे बढ़ाएँगे। इस पुस्तक में दी गई कुछ व्युत्पत्तियों से (जैसे भैंस के बच्चे के लिए 'पड़ा' शब्द की) पाठकों का मत-वैभिन्य भी हो सकता है पर पुस्तक ज्ञानवर्धक तथा सर्वसंग्रहणीय है तथा लेखक बधाई के पात्र हैं इसमें कोई सन्देह नहीं।

राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण—लेखक—श्री किशोरीदास वाजपेयी। प्रका०—जनवाणी प्रकाशन, १६१।१ हरीसन रोड कलकत्ता ७। पृष्ठ संख्या १६८, मूल्य ४)

यह व्याकरण विशेषतः अहिन्दीभाषियों के लिये लिखी गई है पर व्याकरण के मौलिक तथा आधारभूत सिद्धान्तों का अन्तर्भाव होने के कारण हिन्दी भाषी विद्वानों को भी इससे लाभ अवश्य पहुँचेगा। हिन्दी भाषा की सरलता और सुबद्धता असंदिग्ध है। नई भाषा सीखने में थोड़ा श्रम तो उठाना ही पड़ता है पर हिन्दी सीखने के लिए सबसे कम मेहनत की जरूरत है। लिङ्ग आदि की कठिनाइयाँ वास्तविक से अधिक कल्पित हैं—संस्कृत की अपेक्षा बहुत कम। फिर आखिर राष्ट्रभाषा बनने का मतलब हिन्दी का 'स्वरूप' —नाश तो नहीं हो सकता—ऊपरी हेर फेर में तो कुछ बुराई नहीं है। "इस व्याकरण से हिन्दी को हम सरल नहीं बना रहे हैं; प्रत्युत उसके स्वतःसिद्ध सरल रूप को स्पष्ट कर रहे हैं।" (पृ० ८) जैसे 'ने' विभक्ति का नियम बताया कि 'केवल भूतकाल के कर्मवाच्य या भाववाच्य प्रयोग होने पर कर्ता कारक में 'ने' विभक्ति लगती है।' (पृ० १४) अथवा 'विभक्तियाँ सदा अलग लिखने की अपेक्षा हटाकर लिखने में अधिक सुविधा है।' यह व्याकरण ही नहीं, अनेक स्थानों पर व्याकरण का व्याकरण बन गया है। निरुक्त का भी इसमें समावेश है तथा लोगों की भूल बताने का आकर्षण भी है ('उस एम० ए० को या साहित्यरत्न को लेकर हम क्या करें जिसे यह भी नहीं मालूम कि शुद्ध शब्द 'छः' है या 'छह') सब + हा = सभा आदि हिन्दी की संधियाँ तो दी पर यद्यपि, तथापि, मनोहर आदि संस्कृत संधियों को लेखक भूल ही गये। समास की चर्चा तक नहीं है। राष्ट्र भाषा में संस्कृत सन्धि और समास का सर्वथा बहिष्कार तो नहीं हो सकता। इससे प्रथमा, मैट्रिक आदि परीक्षाओं के लिए यह पूर्णोपयोगी नहीं रहा। 'हिन्दी व्याकरण बहुत सरल है, पर व्याकरणों ने उसे न जाने क्या बना दिया है।' (पृ० १४३) पर स्वयं वाजपेयीजी भी सरल भाषा का सरल व्याकरण तो नहीं दे सके। अधिकाँश व्याकरण अँग्रेजी या संस्कृत व्याकरणों पर आधारित है इसलिए सर्वत्र सही भी नहीं पर 'हिन्दी के आधार पर हिन्दी का यह व्याकरण' जान अनजान में कुछ क्लिष्ट हो ही गया है। श्री अमरनाथ झा से पुस्तक की भूमिका तो वाजपेयीजी ने अँग्रेजी में लिखवाई पर उससे भी अधिक आवश्यक है (Simplified Grammar of Hindi) अँग्रेजी में लिखवाने की। यह व्याकरण साहित्यिक भी है—व्याकरण की कई गुत्थियाँ भी इससे सुलझेंगी। पर पुस्तक का मूल्य जरूर कुछ अधिक लगता है।

—नागरमल सहल, एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक

रोगी का स्वर्ग—ले०—श्री लक्ष्मीनारायण टण्डन 'प्रेमी', प्र०—विद्यामन्दिर, लखनऊ। पृष्ठ संख्या ५५, मूल्य एक रुपया।

रोगी का स्वर्ग, जाति के सेवक तथा रोगी के मित्र इन तीन एकांकी नाटकों का यह सङ्कलन है। पहले नाटक में अस्पतालों के कुप्रबन्ध की आलोचना है—रोगी चाहे मरें डाक्टर की बला से। दूसरे नाटक में जाति-सेवकों का स्वार्थ दिखाया गया है। बिना सेवा भाव के केवल स्वार्थबुद्धि से प्रेरित हो लोग जाति-सेवक समाज-सेवक बनने का दम्भ करते हैं—इसी से किसी का कल्याण नहीं होता। तीसरे एकाङ्की में दिखाया गया है कि रोगी के वास्तव में कोई मित्र नहीं होते—गरीब की बात उसकी स्त्री भी नहीं पूछती। मौखिक सहानुभूति दिखाने के अलावा कोई कुछ करता धरता नहीं। तीनों नाटक सोद्देश्य हैं। समाज-सुधार की भावना से प्रेरित हो लेखक ने आदर्श की ओर संकेत करने का प्रयत्न किया है। सम्पूर्ण पुस्तक भुक्तभोगी की करुण कथा सी मालूम होती है (पर टी० बी० के रोगी शुक्लजी को अन्य रोगियों के साथ एक ही अस्पताल में रखने से यथार्थ को व्याघात पहुँचा है।) नैतिकता और उपयोगिता पर लेखक का जोर है—इससे भी कलात्मकता का ह्रास हुआ है। नाटक साधारण कोटि के हैं। एकाङ्की का रूप है पर सम्वेदन की नाटकीय तीव्रता नहीं।

—प्रो० नागर

कविता

कामायिनी (संस्कृत)—प्रथमखण्ड, सर्ग—१, २, ३ मूल हिन्दी लेखक—महाकवि जयशङ्कर प्रसाद, अनुवादक—पं० भगवानदत्त 'राकेश' साहित्याचार्य, साहित्य-रत्न। प्रकाशक—गोयनका हाउस, १४५, कालाराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य—१॥)

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी की सुप्रसिद्ध काव्य रचना कामायिनी के प्राथमिक तीन सर्गों का संस्कृत अनुवाद है। हमारी जानकारी में सम्भवतः यह सर्वप्रथम रचना है जिसका हिन्दी से संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली में अनुवाद किया गया है। अनुवाद के सम्बन्ध में लेखक ने लिखा है :—

"मैंने यथासाध्य एक पद्य का एक ही पद्य में अनुवाद करने का प्रयत्न किया है। परन्तु कई छन्द ऐसे हैं जिनका भावार्थ बहुत व्यापक है और प्रसादजी ने अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण उस लम्बे-चौड़े अर्थ को एक ही पद्य में सीमित कर दिया है। ऐसे छन्दों का मैंने दो-दो अथवा तीन-तीन छन्दों में अनुवाद किया है। जगह जगह मैंने अपनी स्वतन्त्र कल्पना करने की भी अनधिकार चेष्टा की है।"

रचना-शैली सरल तथा प्रसाद गुण पूर्ण है। अनुवाद के कुछ उदाहरण देखिए:—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय-प्रवाह॥

हिमालयस्योन्नतमस्तकास्य
शिलायां समाश्रित्य शिलास्थलीनाम
एको मनुष्योऽश्रुविषिक्त नेत्रः।
सम्पश्यति स्म प्रलय प्रवाहम्॥

× × ×

उस एकान्त नियति-शासन में,
चले विवश धीरे-धीरे।
एक शान्त स्पन्दन लहरों का,
होता ज्यों सागर-तीरे॥

समुद्र तीरे पवमान चोदिता—
श्चलन्ति यद्वत्पवला महोर्मयः।
तथा स्वयं भाग्य विधाऽनुशासित—
स्तदिच्छया कार्यमसायन्मनु॥

इस प्रकार कामायिनी का प्रस्तुत अनुवाद सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन पड़ा है और इसके लिए अनुवादक महोदय धन्यवादाई हैं; परन्तु यह अच्छा होगा कि वह अपनी प्रतिभा का उपयोग मौलिक साहित्य की सर्जना में करें।

—राजकुमार, साहित्याचार्य

उपन्यास

मुक्तिपथ—लेखक—इलाचन्द्र जोशी, प्र०—हिन्दी-भवन जालंधर और इलाहाबाद। पृ० ४३१, मू० ६॥)

यह विचारोत्तेजक सामाजिक उपन्यास है जिसमें हिन्दू विधवा की समस्याओं के समाधान का सजग प्रयत्न किया गया है। दर-दर भटकती हुई, लाँछित तिरस्कृत विधवाओं को यह 'मुक्तिपथ' दिखाता है—इसीसे उपन्यास का यह नामकरण हुआ है। कला का प्रयोग कला के लिए न होकर समाज के उन्नयन के निमित्त हुआ है। यथार्थवादी आधारशिला पर आदर्श का सौध खड़ा किया गया है। प्रेमचन्दजी के शब्दों में 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' का यह उपन्यास सुन्दर निदर्शन है। लेखक कभी इस उपन्यास के नायक राजीव कभी नायिका सुनन्दा (यद्यपि सुनन्दा और राजीव का विवाह नहीं होता) के मुख से अपने विचारों की स्पष्ट अभिव्यञ्जना करते हुए मालूम होते हैं। इसका नायक राजीव, बी० ए० बड़े क्रान्तिकारियों में था। अण्डमन जेल से छूट कर वह उमाप्रसाद के घर रहने लगा है जिनकी स्त्री कृष्णाजी का बड़ा सच्चा, सही, यथार्थवादी चित्रण हुआ है। उमाप्रसाद की दूर की बहिन युवती सुनन्दा अज्ञातयोनि विधवा है—वही इस घर की प्रबन्धकर्त्री है। राजीव और सुनन्दा का पारस्परिक आकर्षण बढ़ता है। उनका सामीप्य तथा उनकी ठिठोलियाँ कृष्णाजी तथा घर की पुरानी नौकरानी मन्थरारूप बिनासिया को अच्छी नहीं लगती। उमाप्रसाद की बड़ी लड़की प्रमीला एम० ए० में पढ़ती है। उसकी सलाह तथा दक्षता से राजीव और सुनन्दा अलग मकान में रहने लगते हैं पर उनके सम्बन्ध में कोई दोष नहीं आ पाता। ये दोनों फिर एक शरणार्थी—शिविर में जाकर डेरा जमाते हैं तथा वहाँ बड़े श्रमपूर्वक नई-नई योजनाओं का श्रीगणेश करते हैं। क्रान्तिकारी राजीव गाँधीजी के सिद्धान्तों का सच्चा पुजारी बन सुनन्दा के सहयोग से एक स्वतन्त्र संस्था खोल लेता है जहाँ देशी करघे, चरखा, सिलाई देशी कागज, दस्तकारी, साबुन, चित्रकारी, संगीत पाकशास्त्र, बागवानी आदि सब उपयोगी और कलात्मक काम सिखाये जाते हैं। Women in Revolt तथा Women in Bondage आदि पुस्तकों से प्रभावित होकर राजीव और सुनन्दा नारी को स्वावलम्बी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। सुनन्दा को राजीव के प्रति श्रद्धा है, पर वह चाहती है प्रेम और राजीव के वैराग्य से व्याकुल होकर आश्रम छोड़ आती है। देव-मूर्त्ति राजीव से उसके हृदय का भूख नहीं मिटती। जाती हुई सुनन्दा को राजीव रोकना चाहता है अपनी भूल के लिए क्षमा माँगता है पर सुनन्दा उसको पथभ्रष्ट भी नहीं करना चाहती। वह कहती है 'छी-छी! इतनी दुर्बलता का प्रदर्शन करते आपको लज्जा नहीं मालूम होती?' और वह चली ही जाती है। मस्तिष्क और हृदय के सन्तुलन बिना किसी भी योजना के स्थायित्व और साफल्य में सन्देह ही बना रहेगा—लेखक का जैसे इसी की ओर संकेत है। सुनन्दा कहती है राजीव को—"आप श्रम, केवल श्रम, और उसके द्वारा मुक्ति-केवल मुक्ति चाहते हैं। मैं जीवन में श्रम भी चाहती हूँ और विश्राम भी, मुक्ति भी चाहती हूँ और बन्धन भी" (पृ० ४२६) उमाप्रसाद की संकुचित चहारदीवारी छोड़ वह बृहत् परिवार में तो आई पर 'मैं मनुष्य हूँ, कोई यन्त्रचालित पुतली नहीं।' सुनन्दा में नारीसुलभ कोमलता है पर सक्रिय हिंसक क्रान्तिकारी राजीव अहिंसक क्रान्ति (या शान्ति) मूर्त्ति बन जाता है। अपने जीवन के मध्याह्न में बी० ए० पास को १५) मासिक देने वाले प्रोप्राइटर के गाल पर कस कर तमाचे जड़ने वाला राजीव जीवन के अपराह्न में 'महात्मा' बन जाता है। जो शिकायत राजीव के प्रति सुनन्दा की है वही पाठक की उपन्यास के लिए हो सकती है। महात्मा राजीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर उठ कर देव-तुल्य हो गया है—इसलिये हमारे लिए पाषाणवत् भी (केवल अन्तिम पृष्ठ में सुनन्दा को रोकते समय उसमें मानव की दुर्बलता परिलक्षित होती है) उपन्यास का परवर्ती भाग तत्वज्ञान की गरिमा और लेखक की उपदेश प्रवणता से कुछ नीरस, शुष्क और बोझिल हो गया है।

उपन्यास में गाँधीजी के प्रति असीम श्रद्धा पर गाँधीवादियों के प्रति घोर अश्रद्धा और वितृष्णा का भाव भी स्पष्ट विद्यमान है। राजीव का पुराना साथी विजय काँग्रेसी है—बिना मार खाये थोड़ी सी कैद भुगत माफी माँग कर छूटने वाला विजय बड़े चैन से रहता है पर है पूरा अर्थ लोलुप। घृणित स्वार्थ से भरे हुए हैं ऐसे अधिकांश, तथाकथित काँग्रेसी। गाँधीजी के स्वार्थी चेलों ने काँग्रेस को बदनाम कर रखा है—वे तो अपनी तथा अपने कुनबे की सेवा में ही मेवा पाते हैं तो फिर देश का क्या हो—इसी की ओर बारबार संकेत है। विजय का प्रमीला से विवाह होता है—घूसखोरी आदि मामले में फँसने के कारण उसको आत्महत्या करनी पड़ती है। आज के बौद्धिक युग की माँग है कि किसी के प्रति अन्धश्रद्धा मत रखो। १३ पृष्ठों का राजीव का नव-निर्माण-सङ्घ का उद्घाटन भाषण है 'मानवीय विकास का स्वाभाविक रूप है सबकी समचेतना, सबके सम अधिकार और सबकी समशक्तियों के सम-सामूहिक विकास द्वारा समकल्याण की चरमतम परिस्थिति की ओर सबकी सम प्रगति।' (पृ० ३६४) स्वार्थ, ढोंग और झूठ को दुनियाँ से ऊपर उठना है। सामाजिक विकट विषमताओं को दूर करना है। गाँधीवादी समाजवाद की ओर लेखक का झुकाव है। उपन्यास की शैली अधिक संस्कृत गर्भित होने से सर्वसामान्य के पूरे उपयोग का नहीं। पर इसमें सन्देह नहीं कि जोशीजी के इस उपन्यास का हिन्दी जगत् में खूब स्वागत होना—जैसा होना भी चाहिए। यह उपन्यास सबके पठनीय योग्य है।

—नागरमल सहल एम० ए०

कहानी

समुद्र के फेन—लेखक—श्री रांगेय राघव। प्रकाशक—शारदा प्रकाशन, बनारस। पृ० सं० २३६ मूल्य २॥)

नई पीढ़ी के लेखकों में रांगेय राघव की लेखनी में अत्यधिक बल, अत्यधिक स्फूर्ति है। साहित्य के कई रूपों को उसने अपनाया है और उनमें अपनी अभिव्यक्ति की है प्रस्तुत पुस्तक लेखक की १४ कहानियों का संग्रह है। जीवन के अनेक स्तरों से इन कहानियों का विषय चुना गया है। इनमें जीवन के उस स्तर का स्पर्श किया गया है जिसे समाज ने त्यक्त या तिरस्कृत कर रखा है। 'गुलाम सुलतान' 'अमरता एक क्षण' का विषय ऐतिहासिक है—उनमें इतिहास का सत्य न हो, पर लेखक की कल्पना का सत्य अवश्य है जिससे कहानियों के वातावरण को यथार्थ रूप मिला है। 'सारनाथ के खण्डहरों में' लेखक चेतन-उपचेतन, स्मृति-विस्मृति के द्वारा इस कहानी कला को नवीन व्यञ्जना देता है—महाराजकुमार रघुवीरसिंह की संभव विक्षेप शैली है, पर बौद्धिक चेतना को अपने तल में सहेजे हुए।

जीवन के किसी भी स्तर से रांगेय राघव ने अपनी कहानियों का विषय क्यों न लिया हो उसकी सबसे बड़ी विशेषता वातावरण की सृष्टि और व्यंग्य की मार्मिकता है। ऐसा लगता है मानों जीवन में कुछ शून्य है, कुछ खो सा गया है। जीवन मानों अवसाद का छल हो। इस छल पर तीव्र आवेश के साथ शब्द छटपटा उठते हैं, फूट पड़ते हैं। कहीं-कहीं शब्दों के अम्बर में लेखक स्वयं खो जाता है—वहाँ वातावरण चरित्र, या समस्या में उभार नहीं आ सका है, लेकिन इसका कारण अन्दर की सचाई का अभाव नहीं वह उसके पास अनुपम है।

स्वप्न-भङ्ग—लेखिका—श्रीमती होमवती। निष्काम प्रकाशन, मेरठ। पृ० सं०-१४८, मूल्य २) 'स्वप्न-भङ्ग' लेखिका की १५ कहानियों का संग्रह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"मैंने कभी कहानी लिखने के लिए ही कहानी लिखी हो, यह बात ध्यान में नहीं आती। हाँ, जब जैसा भला या बुरा अनुभव हुआ तभी जैसे कुछ लिख डालने के लिए बाध्य सी हो गई।" लेखिका की 'अपनी बात' होने के कारण इन शब्दों का मूल्य है। कहानी उसके लिए मानसिक ऐश (Mental luxury) नहीं जीवन-अनुभूति की सचाई है। यद्यपि इन कहानियों को पढ़ने के लिए किसी गहराई में जाने की आवश्यकता का बोध नहीं होता, लेकिन जिस सरल आस्था के साथ ये लिखी गई हैं, वह सहज ही अनुभव-गम्य है। उसकी सहानुभूति इतनी तरल है कि उसका अनुभव सुगमता पूर्वक ग्राह्य हो जाता है और उसका व्यंग्य इतना स्निग्ध है कि उसकी तिक्तता कटु विद्रोह में कभी परिवर्तित नहीं होती।

देश, काल और परिस्थितियों के संघर्ष में इस संकलन की अधिकांश कहानियाँ लिखी गई हैं। 'प्रवास' और 'स्वप्न-भङ्ग' में एक देश से दूसरे देश में जनता के निष्कासन या प्रवास की समस्या पर विचार किया गया है। 'टी-पार्टी' 'मीरा की जीत', 'त्यागीजी' आदि में कांग्रेसी पदाधिकारियों और उनके पारिवारिक जीवन की चुटकी ली गई है। 'विडम्बना' 'नया अङ्क', 'उपहार', 'गृहिणी' आदि में कलाकार और उसके घर के जीवन की विडम्बना पर व्यंग्य है। 'जीवन-क्रम', और 'वारन्ट' मेहनत-मजदूरी करके पेट भरने वाले प्राणियों की कहानियाँ हैं। अधिकांश कहानियाँ भारतीय घर के वातावरण को चित्रित करती हैं—वह भारतीय घर जो अपने जर्जर रूढ़िगत् मूल्यों को खो रहा है। लेखिका का ध्यान उधर नहीं है, वह उसे समझना भी नहीं चाहती, पर मध्यवर्गीय समाज की खिसकती हुई मर्यादा और सम्मान-भावना पर हल्का-सा व्यंग्य वह अवश्य कर देती है। उसकी सम्वेदनशीलता उसकी कहानियों की विशेषता है।

'पन्तियों का द्वीप'—लेखक—श्री रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी'। प्रकाशक—राजेन्द्र प्रकाशन मन्दिर, लोहामण्डी, आगरा। पृ० सं० १६३, मूल्य २)

पुस्तक लेखक की १६ कहानियों का संग्रह है। लेखक ने इसे 'मौलिक कहानी संग्रह' की संज्ञा दी है। समाज की जिन आशाओं और आकांक्षाओं, उसके अभाव और विक्षोभ की अभिव्यञ्जना जिस प्रकार आज कहानियाँ कर रही हैं, इस संग्रह की कहानियाँ उनसे भिन्न हैं और इस दृष्टि से मौलिक भी। समय, स्थान, घटना-तारतम्य और कार्य-कारण की मर्यादा को जिस सस्मित उल्लास-भावना से उसने तिरोहित किया है, वह पाठक को कहीं भी नहीं खटकता। उसका चुहल और विनोद अपनी सरसता के कारण अत्यंत प्रतीति-योग्य है। यद्यपि लेखक ने पाठकों से कुछ कहने का ध्येय ही अपने समीप अधिक रखा है, किन्तु फिर भी जीवन के कोलाहल में वह अपनी जिन्दादिली से मुस्कराहट के कुछ तत्व संजो देता है।

ईसा की २१ वीं सदी के डाईलामारिकगिशन क्लब' का यहाँ आपको परिचय मिलेगा; ईसा की तेतीसवीं सहस्राब्दी में नवीन ग्रहों के प्राणियों से आप 'पहला संदेश' सुन सकते हैं, पन्तियों के द्वीप' में भ्रमण कर सकते हैं, 'एक लाख का घर' अनायास पा सकते हैं, 'दृश्य की माया' समझ सकते हैं; एक ऐसी 'लेडी डाक्टर' के सम्पर्क में आ सकते हैं जिसकी कमर से नीचे का सारा हिस्सा किसी खास तरह की ठोस रबड़ का बना हुआ है और जिसके बाँए हाथ की हथेली में चमड़ी के भीतर 'आर्टीफिशल नर्वस् सिस्टम' का प्रसार है।

लेखक ने बड़ी आस्था के साथ ये कहानियाँ लिखी हैं—'कहानी में अगर सच लिखने में कोई हर्ज न हो तो' यह वह पहले ही यह देता है। उसने जिज्ञासा, रहस्य, आश्चर्य और अलौकिकता का जो पुट दिया है उससे कहानियों में मनोरञ्जन की सुषमा आ गई है। उसका प्रयत्न सुन्दर है।

—मोहनलाल, एम० ए० साहित्यरत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य-व्यङ्ग्य

दो घड़ी—लेखक—श्री शिवपूजनसहाय। प्रका०—दी अजन्ता प्रेस लिमिटेड पटना। पृष्ठ सं० ६२ मूल्य ॥।)

बिहार के साहित्यकारों में श्री शिवपूजनसहाय का ऊँचा स्थान है। दो घड़ी उनके हलके क्षणों की रचना है किन्तु उसमें उनकी शैली की प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। कुछ निबन्ध तो शुद्ध हास्य के हैं, कुछ में व्यङ्ग्य के साथ राजनीतिक पुट है, जैसे गुलाब नहीं, आम और कटहल चाहिए। आम और कटहल ही बिहार की मेवा है। और वे कर्तव्य और सस्ता के पोषण के प्रतीक हैं। प्रोपेगेन्डा प्रभू का प्रताप भी राजनातिक पुट लिए हुए है। मैं अन्धी में हास्य नहीं है करुणा। किन्तु उसमें बाण भट्ट की सी समास प्रधान शैली करुणा में कुछ कृत्रिमता ले आती है मैं रानी हूँ की करुणा कुछ अधिक वास्तविक और गम्भीर है। मैं धोबी हूँ मैं काफी रसिकता है।

कहीं-कहीं श्री शिवपूजनसहायजी का हास्य-व्यङ्ग्य काफी तीखा होगया है। उसकी तह में वेदना है। शिवपूजनजी का हास्य धौल-धप्पे और हास्यमय परिस्थितियों का हास्य नहीं। वह पर्यायरूप से साहित्यिक है। उसमें अन्तर्क्रियाएँ और साहित्यिक उद्धरण भरे पड़े हैं—बड़ी सुन्दर सजीव और अछूती उपमाएँ जैसे थर्डक्लास के भीड़-भड़क्के सम्बन्ध में आप लिखते हैं—जैसे फीस वाली दरार में साँप घुस जाता है वैसे ही अङ्ग-अङ्ग समेट कर में भी घुस गया। अनुप्रास की छटा दिखाने में तो शिवपूजनजी पण्डित हरिऔधजी के भी अग्रज प्रतीत होते हैं कहीं बोलचाल की भाषा में सांस्त (कब्ज) जैसे प्राचीन साहित्यिक शब्दों का भी प्रयोग होगया है। इस पुस्तक की भाषा कहीं-कहीं तो गद्य साधारण से ऊँची उठकर पद्य की तटस्पर्शिनी बन गई है।

—गुलाबराय एम० ए०

नीति और सदाचार

सनातन धर्म-मीमांसा—लेखक—श्री किशोरीदास वाजपेयी। प्रकाशक—जनवाणी प्रकाशन मूल्य २।) पृष्ठ संख्या १४६।

आजकल धर्म और संस्कृति ह्रास हो रहा है साम्प्रदायिकता के भय से धर्म की भी अवहेलना की जा रही है। भूसी के साथ गेहूँ भी फटक्न में फेंका जा रहा है। ऐसे समय धर्म के ऐसे शुद्ध स्वरूप की जो साम्प्रदायिकता से परे हो अत्यन्त आवश्यकता है। वाजपेयीजी की पुस्तक यद्यपि मनुस्मृति पर अवलम्बित है तथापि वह वास्तव में मानवधर्म है। वाजपेयीजी ने धर्म का कर्तव्य और सांस्कृतिक पक्ष ही अधिक लिया है। यज्ञ के सम्बन्ध में जो वाजपेयीजी के नई उद्भावना है वह नितान्त मौलिक तो नहीं है क्योंकि पशुबलि के सम्बन्ध में प्रायः कहा जाता है कि यह मनुष्य में बसनेवाली पाशवी प्रवृत्ति के हनन के लिए बताई गई है। ब्राह्मण लोग प्रायः औदरिक (पेटू तो होते ही हैं (औदरिकस्य आहारमेव विषयः) इसलिए वाजपेयीजी की दृष्टि उदरस्थ जठराग्नि की ओर गई और वैद्य होने के नाते वाजपेयीजी ने घी से वायु की शुद्धि का अर्थ लगाया है बात पित्त कफ की वायु। हवन में केवल घी ही नहीं डाला जाता। ऐसी दूर की कौड़ियाँ लाने में चाहे कवित्व अवश्य हो किन्तु वस्तु स्थिति से दूर पहुँच जाते हैं। आशा है वाजपेयीजी मुझे इस इस विनोद के लिए क्षमा करेंगे।

'मनाचे श्लोक' का हिन्दी अनुवाद—अनुवादक—श्री दिवाकर जोगलेकर 'साहित्यरत्न' प्रकाशक—अनुवादक स्वयं मूल्य १।) पृष्ठ सं० छोटा साइज १६७

श्री स्वामी समर्थ रामदासजी महाराष्ट्र के धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन में एक विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने अमूल्य धार्मिक विचारों को मनाचे-श्लोकों में छन्दबद्ध प्रबोधन के रूप में दिये हैं। श्री जोगलेकरजी ने उन्हीं श्लोकों का हिन्दी अनुवाद कर हिन्दी भाषा भाषियों को स्वामीजी का उपदेशामृत पान कराया है इन श्लोकों में भक्ति और कर्तव्य का उपदेश दिया गया है। लेखक ने भावार्थ के अतिरिक्त शब्दार्थ भी दिया है जिससे कि हिन्दी भाषा भाषियों को थोड़ा सा भाषा भी ज्ञान हो सकता है।

भारतीय संस्कृति की दो धाराएँ—लेखक—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री इन्द्रचन्द्र एम० ए० प्रकाशक—श्री सन्मतिज्ञानपीठ आगरा मूल्य ।–) पृ० सं० ४८।

विद्वान लेखक ने इस पुस्तिका में भारत की दो सांस्कृति धाराओं का विवेचन किया है। एक है जैन बौद्धों की श्रमण संस्कृति और दूसरी है ब्राह्मणों की शर्मन संस्कृति लेखक ने श्रमण संस्कृति को अहिंसात्मक कहा है और शर्मन संस्कृति को हिंसात्मक। यद्यपि वैदिक संस्कृति कुछ काल के लिए यज्ञ प्रधान हो गई थी तथापि उसी ने शिवि और दलीप जैसे आदर्श दिये। लेखक ने ईमानदारी से यह स्वीकार किया है कि उपनिषदों में वैदिक हिंसावाद की प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है किन्तु वह काफी जेरदार नहीं थी पहले तो यह संदिग्ध है कि वैदिक कर्मकाण्डी हिंसावादी था। हिंसात्मक वेदों के नाम पर हुआ अवश्य है लेकिन उसका सुधार भी ब्राह्मण धर्म के भीतर हो गया है जैन और बौद्ध भी वर्णव्रतधर्म की भाँति सुधारक धर्म हैं। गीता की सुधारक प्रवृत्ति को लेखक ने स्वीकार किया है। लेखक ने ईमानदारी से जैन धर्म की विकृति की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। इस ईमानदारी की पूर्णता तभी होती जब श्रमण और ब्राह्मण संस्कृति के भेदों के साथ यम, नियम, तप और त्याग की समानताओं पर भी प्रकाश डाला जाता।

सर्वोदय की दिशा में—लेखक—श्री जवाहरलाल जैन मूल्य १) पृष्ठ ७२।

इस ग्रन्थ में गाँधीजी प्रतिपादित और अनुमोदित बारह वृत्तों का बड़ी सरल और सुबोध भाषा में विवेचन किया गया है। वे बारह व्रत्त इस प्रकार हैं—अहिंसा सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य अपरिग्रह (संग्रह न करना) शरीरश्रम, अस्वाद, निर्भयता, स्वधर्म स्वाभिमान, स्वदेशी, समानता (स्पर्श भावना) क्षमा और दृढ़ता। काँग्रेस और गाँधीजी के अनुयायियों पर इन व्रतों का देश के कल्याणार्थ मनन करना चाहिए। —गुलाबराय एम० ए०

सर्वोदय—ले०—श्री रामकृष्ण, प्रकाशक—सर्वोदय साहित्य संघ काशी। पृष्ठ ६८ बड़ा आकार, मू० १)

महात्मा गाँधी के सर्वोदय सिद्धान्त के प्रचार के लिए यह पुस्तकमाला प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत खंड में चर्खा, नारी, सर्वोदय और सेवापुरी शीर्षक चार भागों में क्रः निबन्ध संग्रहीत हैं। गाँधी साहित्य सर्वोदय प्रेमियों को ही नहीं सभी लोगों को यह साहित्य उपयोगी है।

—म०

विविध

सरल पाली शिक्षा—लेखक—भिक्षु सद्धातिस्स प्रकाशक—महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस। मू० ।।।)

यह पाली भाषा का प्रारम्भिक व्याकरण है। बड़े हर्ष की बात है अब हमारा ध्यान पाली भाषा तथा साहित्य की ओर आकर्षित हुआ है। बुद्धकालीन भारत को समझने के लिए पाली का साहित्य ही एक प्रामाणिक साधन है। भारतीय भाषा शास्त्र के विद्यार्थी के लिए भी पाली का ज्ञान अनिवार्य है। हिन्दी भाषा के विकास में पाली का एक महत्वपूर्ण स्तर है। पाली वांगमय की हमारे साहित्य तथा समाज पर गहरी छाप है। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है जिस भाषा तथा साहित्य का जन्म हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त में हुआ था समय के फेर ने उसे अपनी जन्मभूमि से बिलकुल उत्सक कर दिया। कुछ समय पूर्व देवनागरी लिपि में पाली साहित्य की कोई भी प्रामाणिक पुस्तक उपलब्ध नहीं होती थी। हाँ, कुछ योरोपियन विद्वानों ने रोमन लिपि में पाली साहित्य का प्रचार अवश्य किया था। यह सौभाग्य की बात है अतः पाली का प्रचार होने लगा है तब देवनागरी लिपि में पाली की पुस्तकें भी छपने लगी हैं। इधर आठ या दस वर्षों से हिन्दी एम० ए० में पाली का अध्यापन करते हुए एक सरल तथा छात्रोपयोगी-पाली व्याकरण के अभाव का अनुभव मैंने किया था। सरल पाली शिक्षा इस दिशा में एक अच्छा प्रयास है। पाली को प्रारम्भ करने वाले छात्र इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं भविष्यत्काल, भूतकाल तथा कृदन्त की विशेषताओं का कुछ अधिक विस्तार किया जाता तो पुस्तक का उपयोगिता और बढ़ जाती। आशा है नये संस्करण में सन्धि प्रकरण को भी कुछ अधिक विस्तार दिया जायेगा।

—कृष्णानन्द पन्त एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी बीमा कं० लि०, आगरा

स्थापित (१९३१)

प्रधान कार्यालय—स्वदेश बीमा नगर, आगरा ।

आँकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

	नया काम	किस्तों की आय,	जीवन बीमा फंड	पूंजी : (ऐसेट्स)
सन् १९४६ में	२६,००,००० से ऊपर	४,०४,८४९ रु०	१८,१८,९९१ रु०	२५,७३,१४२ रु०
सन् १९४७ में	३६,००,००० से ऊपर	४,८३,३१२ रु०	१८,९०,२७३ रु०	२९,८२,९१४ रु०
सन् १९४८ में	४२,००,००० से ऊपर	५,३८,३७२ रु०	२१,१९,८८५ रु०	४१ ५७,७०५ रु०

एक मुस्ती घातक दुर्घटना बीमा की योजना स्वदेशी की एक विशेषता है ।

हमें कमीशन पर कार्य करने के लिए प्रभावशाली एवं कुशल कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें

गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर

गीता प्रेस गोरखपुर की

धार्मिक पुस्तकें

आप हमारे यहाँ से मँगा सकते हैं, हम उनके एजेन्ट हैं ।

प्रमाणिक हिन्दी-कोष

यह कोष अभी निकला है, इसके सम्पादक नागरी प्रचारिणी सभा के श्री रामचन्द्र वर्मा हैं । अब तक के कोषों में सर्वोत्तम है, शब्द संख्या ३१५९७, मूल्य १०।=)

आज ही आर्डर भेजें—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तैयार की गयी है। प्रथमा-मध्यमा-उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-भूषण-प्रभाकर, प्रवेशिका-भूषण साहित्यालंकार, इन्टर-बी० ए०-एम० ए० आदि के परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषय पर इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

'साहित्य-सन्देश' निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सहायता करता रहा है। उसने विगत ग्यारह वर्षों में जो विद्यार्थियोपयोगी निबन्ध अपने अङ्कों के द्वारा भेंट किये हैं, उनका सार और महत्व-पूर्ण अंश लेकर तथा आवश्यक नये निबन्ध जोड़कर यह पुस्तक तय्यार की गयी है। विद्यार्थी और परीक्षार्थी के लिए सदैव साथ रखने योग्य पुस्तक है। पृष्ठ संख्या लगभग ३०० है।

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी। इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायँगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायँगे।

मूल्य निम्न प्रकार लिया जायगा।

	ग्राहकों से	अन्य सज्जनों से
पेशगी प्राप्त होने पर रजिस्ट्री से मँगाने वालों से (पोस्ट फ्री)	२।)	३)
वी० पी० से मँगाने वालों से (मय पोस्टेज)	२॥=)	३।)

इसका प्रथम संस्करण एक मास में ही समाप्त हो गया अब द्वितीय संस्करण छप कर तय्यार है जिन ग्राहकों ने मियाद के पीछे अर्थात् ३० नवम्बर १९४९ के बाद आर्डर व रुपया भेजा है और जिनको परीक्षार्थी-प्रबोध अब तक नहीं मिला है उन्हें पौने मूल्य के हिसाब से नये संस्करण की वी० पी० भेजी जायगी।

इस पुस्तक के लेखों की संख्या विषय सूची द्वारा मुफ्त मंगा सकते हैं।

पौने मूल्य की रियायत केवल ग्राहकों को ही मिलेगी। अतः ४) मूल्य भेजकर तुरन्त ग्राहक बन जायँ।

नोट—ग्राहक महोदय आर्डर देते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें। अन्यथा पुस्तक न भेजी जायगी।

पता:—साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

अथवा

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

रामचरनलाल से साहित्य-देव, आगरा से छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११] आगरा—फरवरी, १९५० [अङ्क ८

विषय-सूची

१—करुण-रस—श्री रामनारायण परमार बी० ए० ऐल-ऐल बी० .... २९३
२—भक्ति-काल : हिन्दी-साहित्य तथा धर्म-प्रसाद की आधार-शिला—
श्री डी० सी० मिश्र, एम० ए०, बी० ए० (आनर्स) बी० टी० २९७
३—हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण—श्री आनन्दनारायण शर्मा, बी० ए० 'आनर्स' ३००
४—प्रसाद की काम सम्बन्धी भावना—श्री डा० सोमनाथ गुप्त एम० ए०, पी० एच डी० ३०६
५—छायावाद—श्री रघुवीरशरण 'मित्र' ३१०
६—इन्शा की—'रानी केतकी की कहानी'—श्री अनिलकुमार 'साहित्य-रत्न' ३१६
७—गोपा और गौतम के दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेषण—श्री कृष्णनन्दनप्रसाद ३१८
८—प्रेमचन्दजी और प्रकृति—श्री शिवप्रसाद लोहनी 'साहित्य रत्न' ३२१
९—साहित्य-परिचय— ३२५
१०—सम्पादकीय— ३३२

प्रकाशक—
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य
एक अङ्क का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती हैं जो हाल ही में प्रका
हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

भाषा विज्ञान की रूपरेखा—श्री जगदम्बाप्रसाद १)
चित्रलेखा : एक अध्ययन—श्रीराम खेलावन ।।।)
काव्यदीपिका—स्व० पं० चन्द्रशेखर पण्डेय ।।।)
तुलसी सौरभ—डा० किरण कुमारी गुप्ता २)
गरुड़ध्वज : एक अध्ययन—जगदीश स्वरूप ।।)
हिन्दी रचना सर्वस्व—रामस्वरूप एम० ए० ४)
भारतीय इतिहास की रूपरेखा—श्रीराम त्यागी ४)
नयी समीक्षा—अमृतराय ४।।)

कविता

मृत्युञ्जय—शिवकुमार श्री वास्तव १)
गाण्डीव—राम इकबालसिंह "राकेश" ६)
पूर्णिया—शिशुपालसिंह १।)
अन्तिम ज्योति—तरन्तसिंह भटनागर ।।।=)
उन्मीलिका—शम्भूनाथ शेष २)
यथार्थ और कल्पना—उदयशङ्कर भट्ट २।।)

उपन्यास

युग सन्देश—पृथ्वीनाथ शर्मा ३।।।)
और इन्सान मर गया—रामानन्द सागर

कहानी

प्रदर्शिनी—देवीप्रसाद भवन 'विकल'
खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर—
भगवतशरण उपाध्याय

राजनीति

आज की राजनीति—राहुल सांकृत्यायन
राष्ट्रतीर्थ वर्धा व सेवाग्राम—उमाशङ्कर शुक्ल
काश्मीर देश व संस्कृति—शिवदान सिंह
रजाकार पतन—सीताराम गोस्वामी
महाप्रयाण— " "
भारतीय प्रजातन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति बाबू—
बाबा गोविन्ददास

नाटक

जीवन ज्योति—प्रो० रामदीन पाण्डेय
महाराणा अमरसिंह—पातीराम भट्ट
सत्य हरिश्चन्द्र—वासुदेव नन्दन प्रसाद एम०ए०
विश्वामित्र और भाव नाटक—उदयशङ्कर भट्ट

स्वदेशी बीमा कं० लि०, आगरा

प्रधान कार्यालय—स्वदेशी बीमा नगर, आगरा। (स्थापित १९३१)

आकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १९४६ .... रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४७ .... रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४८ .... रु० ४२,००,००० से ऊपर।

स्वदेशी बीमा कम्पनी का कार्य सन् १९४९ ई० में भी अब तक गत वर्ष की अपेक्षा प्रति मास डेढ़ गुने से भी अधिक रहा है, जबकि अधिकांश बीमा कम्पनियों का काय घट रहा है।

एक मुश्ती घातक दुर्घटना पालिसी तथा फिक्स्ड डिपोजिट की योजना स्वदेशी की एक विशेषता है।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व आर्गनाइजरों की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ११] आगरा—फरवरी, १९५० [अङ्क ८

करुण-रस

श्री रामनारायण परमार बी० ए० ऐल-ऐल० बी०

करुण-रस के विवेचन के पूर्व रस की कुछ शास्त्रीय-मीमांसा अभीष्ट होगी। साहित्य में नौ रस माने गये हैं:—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त। नाट्य शास्त्र में प्रथम आठ रस ही माने जाते थे। "शममपि केचित्याहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य"—दशरूप। इनके अतिरिक्त प्रेम, वात्सल्य, कौल्य, कार्पण्य तथा भक्ति को भी आचार्यों ने रस के अन्तर्गत माना है जिनकी स्थायी भाव से निष्पत्ति होती है। नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने रस की निष्पत्ति विभाव अनुभाव व व्यभिचारी के संयोग से मानी है। "विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगात् रसनिष्पत्तिः" तथा "न रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते"; कोई काव्यार्थ रसहीन होना ही नहीं चाहिये। विभाव, दो प्रकार के होते हैं। आलम्बनगत और उद्दीपनगत। आकृति परिवर्तन अनुभाव कहलाते हैं, क्योंकि वे हार्दिक भावों के अनुगामी होते हैं।' अनुभाव कायिक, मानसिक तथा सात्विक तीन प्रकार के होते हैं। कायिक तथा मानसिक तो कई प्रकार के हो सकते हैं; किन्तु सात्विक आचार्यों ने आठ माने हैं; रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वैवर्ण्य, अश्रु, स्वेद, वेपथु, स्तंभ और प्रलय। भाव दो प्रकार के होते हैं, स्थायी और सञ्चारी अथवा व्यभिचारी। प्रत्येक रस का एक स्थायी भाव होता है। इस प्रकार नौ स्थायी भाव माने गये हैं; शृङ्गार का रति, हास्य का हास, करुण का शोक, रौद्र का क्रोध, वीर का उत्साह, भयानक का भय, बीभत्स का जुगुप्सा, अद्भुत का विस्मय और शान्त का शम। व्यभिचारी भाव ३३ माने गये हैं। निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, आदि। ये संचारी भाव स्थायी भावों के अनुकूल तथा विरोधी भी होते हैं। विभाव भावों के कारण होते हैं और अनुभाव कार्य। इन विभावों, भावों तथा अनुभावों के संयोग से रस का परिपाक होता है। इन्हीं का क्रमिक विकास रस-सिद्धान्त है। परन्तु इस रस के आनन्द प्राप्ति के विषय में चार मत-भेद हैं—

(१) लोल्लट का उत्पत्ति-वाद (२) शंकुक का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमिति वाद (३) भट्टनायक का भुक्तिवाद (४) अभिनवगुप्त का अभिव्यक्ति अथवा अभिव्यञ्जना वाद।

शृङ्गार के दो पक्ष हैं। संयोग शृङ्गार व विप्रलम्भ या वियोग शृङ्गार तथा वीर के युद्ध वीर, दयावीर और दानवीर तीन विभाग हैं।

कभी-कभी विप्रलम्भ शृङ्गार और करुण को एक मानने की भूल हो जाती है; अतः इनका अन्तर जान लेना आवश्यक है। प्रिय व्यक्ति या इष्ट वस्तु के अनर्थ अथवा नाश होने से और अप्रिय व्यक्ति या अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने से हृदय में जो क्षोभ या क्लेश (शोक) होता है उसी की व्यञ्जना से करुण की उत्पत्ति होती है। करुण की सी दशा विप्रलम्भ में भी होती है परन्तु विप्रलम्भ में समागम या संयोग की आशा या सम्भावना बनी रहती है। करुण में बहुधा मिलने की आशा नहीं रहती है। करुण में प्रिय के अनर्थ पर दुख होता है और विप्रलम्भ में प्रिय के वियोग में दुख होता है। अर्थात् करुण का स्थायी भाव शोक है और विप्रलम्भ शृङ्गार का रति। दोनों में शास्त्रीय दृष्टि से यही अन्तर है। वैसे ही भाव व रस का अन्तर भी स्पष्ट कर लेना है। जहाँ पूर्ण सामग्री होती है वहाँ तो रस होता है किन्तु जहाँ देवता, गुरु आदि के प्रति रति हो अथवा अन्य भावों से अपुष्ट स्थायी भाव हो अथवा सञ्चारी को मुख्यता दी गई हो वहाँ रस न हो कर भाव मात्र होता है। क्योंकि स्थायी भाव को खोज कर ही रस की पहचान हो सकती है।

शृङ्गार रस को आचार्यों ने कुछ निम्न लिखित विशेषताओं के कारण रस-राज की उपाधि से विभूषित किया है।

(१) शुद्ध रति या शृङ्गार में स्वार्थ त्याग सबसे बड़ी वस्तु है जो अन्य रसों में नहीं होती। इसी प्रकार तनमयता की पराकाष्ठा भी होती है। द्वैत भावना का इसमें लोप हो जाता है।

(२) शृङ्गार प्राणी मात्र के अनुभव की वस्तु है। हास्य के समान वह मानव समाज की ही वस्तु नहीं है।

(३) इसके उद्दीपन विभाव सब सुन्दर होते हैं। इसमें कई प्रकार के उद्दीपनों की प्रचुरता रहती है—स्वर्गीय, प्राकृतिक, मानवीय तथा दैव आदि।

(४) शृङ्गार में अनुभावों की सख्या अधिक रहती है। वैसे ही ३३ में से अधिकांश सञ्चारियों का उपयोग शृङ्गार रस की पुष्टि के लिये हो सकता है।

(५) सात्विक भावों का अनुभाव या प्रतिपक्ष शृङ्गार जैसी अन्य रसों में नहीं होती है।

(६) शृङ्गार में विरोधी रसों की भी अवस्थिति सुन्दर रूप से हो सकती है।

(७) शृङ्गार संयोग व वियोग दो पक्ष का होने से अधिक व्यापक क्लेश वाला रस है।

इस प्रकार शृङ्गार के रस-राजत्व के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित होने पर भी करुण की स्थिति साहित्य में रस की दृष्टि से तथा लोक पक्ष में व्यवहार दृष्टि से (अन्तर्जगत तथा बाह्य जगत के लिये) शृङ्गार से कहीं अधिक महत्व पूर्ण प्रतीत होती है।

करुणा ही काव्य का उद्गम स्थल, उत्स है। आदि कवि वाल्मिकि का आत्मा एक मोहित क्रौञ्च-युग्म में से एक को व्याध के द्वारा कठोर तीक्ष्ण बाण द्वारा निष्प्राण भूमि-शायी होते देखकर करुणा से, सहानुभूति से द्रवित होकर व्याध को सैकड़ों वर्षों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त न होने का भयङ्कर शाप दे बैठती है। "मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत् क्रौञ्चमिथुनादेकं अवधीः काममोहितम्"। हमारे कोमल कान्त कवि वर पन्त भी काव्य का उद्गम आँसू से ही मानते हैं।

"वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान॥"

भवभूति तो इन सबसे आगे बढ़ जाते हैं और केवल करुण रस को छोड़ कर अन्य रसों की स्थिति भी स्वीकार नहीं करते हैं तथा अन्य रसों को करुण का विकार विकृत स्वरूप मात्र मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एको रसः करुण एव निमित्त भेदात् भिन्नः पृथग्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।"

भ्रम या अज्ञान वश किसी वस्तु को उसके प्रकृत रूप में न देखकर अन्य रूप की प्रतीति होना विवर्त है। जैसे आलोक के अभाव में रज्जु में सर्प का भ्रम होना। वैसे ही निमित्तों के पृथक्-प्रथक् होने से करुण भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देता है। जैसे बुद्बुद्, तरङ्ग, फेन आवर्त्त, हिम आदि जल के ही भिन्न-भिन्न रूप है। प्रधानता एक ही तत्व की है।

हमारे आधुनिक प्रतिनिधि कवि गुप्तजी ने अपने काव्य में सर्वत्र कारुण्य की धारा प्रवाहित की है। उनकी यशोधरा—उनके कारुण्य की प्रतीक है। नारी की व्याख्या में कहा है:—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध, और आँखों में पानी।"

महादेवी वर्मा तो असीम के वियोग में चिर वियोगिनी बनी रहना चाहती है। प्रेम-दिवानी मीराँ तो अपने प्रियतम की तल्लीनता में दरद-दिवाणी होकर वन-वन डोलना चाहती हैं। हमारे रहस्यवादी सन्त कबीर अपनी सधुक्कड़ी अटपटी बानी में कहते हैं कि सुख की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि:—

"सुख के माथे सिलि परै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय।"

पाश्चात्य अंग्रेजी कवि शैली भी लिखता है कि हमारे मुस्कान व गान भी वेदना और विषाद् की छाया से अनुप्राणित रहते हैं।

"Our sincerest loughter
With some pain is brought.
Our sweetest songs are those
That tell of saddest thought."

प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर को भी सुन्दरी के आँसू उसकी मुस्कान की अपेक्षा अधिक प्रिय हैं। "Beauty's teas are lovelier than her sm les." इसीलिए कवि वेदना में ही आनन्द और सुख मानते हैं। कविवर द्विज ने कहा है;

"अमर वेदना ही हो मेरे,
सकल सुखों का मीठा सार।"

Love's pain is a sweet beauty. "प्रेम की पीर ही मृदु सौन्दर्य है। महादेवी वर्मा भी तो कहती हैं" विरह बना आराध्य, क्या द्वैत कैसी बाधा। हम उसी वस्तु को चाहते हैं, उसी वस्तु को प्रिय समझते हैं जिसमें हमारा स्वार्थ होता है। याज्ञवल्क ने मैत्रेय से कहा है—"न वारे पुत्रस्य कामाय पुत्रः प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति। न वारे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति। आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति। "पुत्र धन, माता, पिता तथा गृहिणी उनके लिए हमें प्रिय नहीं होते हैं किन्तु वे इसीलिए प्रिय हैं कि वे हमारे लिए होते हैं। कला जिस वेदनामयी अनुभूति का साक्षात्कार करती है उसे अपनी भावनाओं का, अपनी अनुभूतियों का प्रतिरूप मानकर आनन्द पाती है। सच्चा, मधुर, निखरा हुआ प्रेम का रूप, संयोग की अपेक्षा वियोग में ही मिलता है। वियोग की अग्नि में आत्मा का सारा कलुष जल जाता है और आत्मा विरह के आँसुओं से धुलकर पवित्र, निर्मल हो जाती है। "वस्ल में हिज्र का गम, हिज्र में मिलने की खुशी। कौन कहता है जुदाई से बिसाल अच्छा है।" क्योंकि जो आनन्द वियोग में है वह संयोग में कहाँ—"जो मजा इन्तजार में देखा वह नहीं वस्ले यार में देखा।"

मिलन में प्रिय अपने पास ही रहता है किन्तु वियोग में वह सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। हमें प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में, वन में, लता में, वृक्ष में, नदी में, पक्षी में उसी की छाया दिखायी देती है। हंस में गति, खञ्जन में नेत्र, चन्द्र में मुख तथा कोकिल में उसके स्वर की छवि मिलती है। इस समय हमारा हृदय समवेदना या सहानुभूति की आकांक्षा करता है। तभी तो वियोग की उन्माद अवस्था में वियोग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा सहते हुए रामचन्द्रजी लता से, मृग से, नदी से अपनी खोई हुई सीता का पता पूछते हैं। वियोग अवस्था में प्रिय विश्वमय हो जाता है। प्रकृति को भी अपने सुख से सुखी व दुख से दुखी देखता है। ऐसी स्थिति में वियोग के, चिर वियोग बने रह देने की कामना करता है क्योंकि इससे सुन्दर स्थिति और क्या हो सकती है।

"तुमको पीड़ा में खोजा, तुम में खोजूंगी पीड़ा।
तुम्हें ढूँढने के मिस, परिचित होलूं कण-कण से॥"

प्रियतम की प्राप्ति के पश्चात् भी महादेवी पीड़ा ही खोजना चाहती है।

सुख दूसरों की ईर्ष्या को उद्दीप्त करता है, सद्-भावों को प्रेरित नहीं करता है। किन्तु दुख, शोक अन्य व्यक्तियों की समवेदना को, सहानुभूति को आकृष्ट करता है और उसे व्यापक बनाता है। यह करुणा की कितनी स्पृहणीय अवस्था है। जीवन की वह दशा कितनी अच्छी है जब हमें सब अपने से लगने लगते हैं। वह स्थिति वियोग में, शोक में, दुख में, करुणा में ही होती है। सहानुभूति (आत्म भाव) की परिधि जितनी व्यापक होती जायगी वहाँ उतनी ही रसोत्पत्ति होगी। अन्त में हृदय की मुक्त अवस्था होकर रस-दशा हो जाती है। आत्मभाव से ही प्रेम होता है। "(भोजराज का आत्म भाव का सिद्धान्त) इस तरह करुणा की सर्व व्यापिणी स्थिति प्रतिष्ठित हो जाती है। महान नाटककार कालिदास के विश्व विख्यात अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के विषय में प्रसिद्ध है।—

"काव्येषु रम्यं नाटकं, तत्ररम्या शकुन्तला।
तत्र रम्यः चतुर्थांकः, तत्रापि श्लोकचतुष्टयम्॥"

चौथा अङ्क गान्धर्व रूप से विवाहित शकुन्तला की अपने प्रिय के देश व विदाई का करुण चित्र उपस्थित करता है। इसी कारण यह अङ्क इतना रमणीय लगता है।

मानव जीवन का अधिकांश भी दुखमय, वेदनामय है। जीवन की यह वेदना, करुणा सत्य शाश्वत है। यह सदैव सब देशों में सब काल में, साहित्यों में अपने अविचल रूप से महत्व पूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित रहेगी। यही करुणा मानव को अपनी स्थिति पर अवस्थित किये हुये है। अन्यथा वह दुर्दान्त क्रूर, हिंस्र जन्तु जैसा होकर दया, करुणा के लिये निरवकाश हो जाता। संसार के समस्त वैभव विलास को निस्सार समझ उन्हें त्याग कर महाभिनिष्क्रमण करने वाले महान आध्यात्मिक पुरुष तथागत बौद्ध ने विश्व कल्याण के लिये करुणा का ही उपदेश दिया था। करुणा में शीतल अग्नि होती है जो क्रूर से क्रूर व्यक्ति का हृदय भी आर्द्र कर देती है। करुणा अन्तर्जगत का उच्चतम विकाश है जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुये हैं। नारी का क्या, समस्त विश्व का अन्तिम अस्त्र आँसू, रोना ही है। आँसू अन्त में विजयी होता है।

आज के युद्ध से भयभीत, विद्रोह, पराधीनता, अशान्ति, क्रान्ति, से त्रस्त, पीड़ित विश्व को कल्याण तथा मैत्री के लिये करुणा की ही नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि "यदि एक भी रोते हुये हृदय को तुमने हंसा दिया तो ओ स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होगा।"

संसार द्वैतमय है। एक होते हुये भी उसके दो रूप हैं। इसी तत्व को लेकर अध्यात्मक क्षेत्र में कई मत और सम्प्रदाय निकले संसार सुख दुख मय है। हास व रुदन जीवन के दो छोर हैं वैसे ही शृङ्गार और करुण एक ही वस्तु के दो रूप हैं। सुख आधिक्य दुख हो जाता है और दुख का आधिक्य सुख में परिणित हो जाता है। जीवन को सरस, मधुर व स्पृहणीय बनाने के लिये करुणा की उतनी ही आवश्यकता है जितनी सुख की।

शृङ्गार, विप्रलम्भ के कारण ही अधिक व्यापक हो सका है, क्योंकि विप्रलम्भ का आधार एक प्रकार की करुणा ही है। जीवन में दुख का आधिक्य है इसीलिये करुणा का महत्व शृङ्गार से अधिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति-काल : हिन्दी-साहित्य तथा धर्म-प्रासाद की आधार-शिला

श्री डी० सी० मिश्र, एम० ए०, बी० ए० (आनर्स), बी० टी०

हिन्दी-साहित्य का इतिहास वीर-गाथा काल से आरम्भ होता है। अर्थ यह है कि हमारे साहित्य की मान्यता इसी काल से दी गई है, इस प्रकार हमारे साहित्य का इतिहास चार भागों में बाँटा गया है—वीर-गाथा-काल, अथवा चारण-काल, भक्ति-काल, रीतिकाल, और आधुनिक-काल। चारण-काल, हिन्दी-साहित्य का आदि काल है। इस काल में हम हिन्दी का शिशु-रूप देखते हैं। परन्तु उस शिशु को देखकर हम यह नहीं कह सकते कि वह किस जाति का है। इस काल में हम हिन्दी के स्वरूप को नहीं पहिचान पाते। हम उसे, इस प्रकार हिन्दी न कहकर अपभ्रंश कहते हैं। इस युग की केवल यही महत्ता है कि यह साहित्य का आदि-काल है और इसके अन्त होते-होते हिन्दी का एक अस्थि-पंजर बन गया। इस पञ्जर में मांस-पेशियाँ तथा प्राण, भक्ति-काल ने ही डाला। वीर-गाथा काल की भाषा तो अपभ्रंश थी ही, साथ ही साथ इस काल में ऐसी रचनाएँ भी नहीं हुईं जिससे हिन्दी-साहित्य को गौरव हो अथवा जिनसे हिन्दी-साहित्य अपना एक विशेष रूप ग्रहण कर सके। ज़रा इस काल की भाषा की ओर देखिए—

"पुरासान मुलतान खंधार मीरं।
बलष स्यो बलं तेग अच्चूक तीरं॥"

अब इस काल की रचनाओं को लीजिए—जितनी रचनाएँ इस काल की प्राप्य अथवा ज्ञात है, वे गिनी-गिनाई हैं। जैसे—"खुमान रासो", "बीसल-देवरासो", "पृथ्वीराज रासो" "आल्हा" आदि। इन रचनाओं की विशेषता यह है कि प्रायः सभी रचनाएँ एक सी, एक ही विषय अथवा भाव को लेकर लिखी गई हैं—युद्ध वर्णन, आखेट वर्णन आदि।

इसके पश्चात् 'भक्ति-काल' आता है। एक तो भारत अनेकों छोटे-छोटे राज्यों में बँटा था और फिर राजा सदैव आपस में ही लड़ा करते थे। प्रत्येक बात की एक सीमा रहती है, जिसके परे वह असहनीय एवं अप्रिय हो जाती है। आदि-काल युद्ध का काल था। युद्ध एक प्रकार से प्रतिदिन का कार्य सा था। बेचारी जनता राजाओं के आपसी वैमनस्य अथवा सुन्दरी-हरण का प्रतिफल भोगती थी। उसे शान्ति का नाम तक न था। इसी प्रकार के जीवन से वह ऊब उठी। जब पापों का घड़ा भर जाता है तब वह ऊपर से बहने लगता है; फूट ही जाता है। अब उन राजाओं तथा छोटे-छोटे राज्यों का अन्तिम समय निकट था। जनता कब तक सहती। अन्त आ ही गया। जनता शान्ति-शान्ति के लिए कराह उठी। उसे कहीं शान्ति नहीं मिली। चारों ओर रक्त-प्रवाह युद्ध के बाजे और तेगों की झङ्कार उनके कानों में कर्कश हो रही थी। उन्हें आवश्यकता थी उस स्वर की जो उन्हें शान्ति प्रदान कर सके।

जब मनुष्य चारों ओर से निराश हो जाता है, उस समय केवल उसे ईश्वर का सहारा ही एक सहारा दिखता है। यही हुआ भी, सन्त कवि भारती भक्ति-वाणी लेकर आगे बढ़े। निरीह और अशान्त जनता के कानों में मधु-रस फूँका। यह था भक्तिकाल। इस प्रकार जब वीरगाथा-काल का अन्त हुआ उस समय हिन्दी साहित्य को जर्जर नौका का खेवनहार केवल भक्ति-काल ही हुआ। इस काल के संत कवियों ने उस मँझधार में पड़ी हुई हिन्दी साहित्य की जर्जर नौका की पतवार को सँभाला, अन्यथा, अन्त अवश्य-म्भावी था। सर्व प्रथम निर्गुणधारा आई। इसके भी दो भाग हुए—एक ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी प्रेममार्गी (सूफी) शाखा। जैसा कि पहले कह चुके हैं, इस समय तक हिन्दी का रूप बिखर गया था। शिशु अब शैशव को छोड़कर बाल्यावस्था में था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों में कबीर रैदास, नानक, दादू, मलूकदास, आदि थे। इन संत कवियों की वाणी में उपदेश के साथ-साथ शान्ति का भी सन्देश था। डूबती हुई जनता को तिनके का सहारा मिला। जहाँ जनता को इन सन्त कवियों ने शान्ति का सन्देश दिया और वहाँ अपनी बानी द्वारा साहित्य के भण्डार को भरते रहे। हिन्दी साहित्य इनकी रचनाओं द्वारा उत्तरोत्तर उन्नत तथा गौरवपूर्ण होने लगा। इनकी रचनाओं ने भविष्य का पथ-प्रदर्शन भी किया। साहित्य की दृष्टि से इनकी रचनाएँ सर्वोत्कृष्ट थीं। इधर जनता भी इनकी ओर अधिक आकृष्ट हुई। क्योंकि उसका विश्वास तो सगुण-ब्रह्म से हट ही गया था। यहाँ तक कि ईश्वर की सत्ता पर भी वह शक करने लग गई थी। मन्दिरों में, ईश्वर प्रतिमाओं के समक्ष रक्त-प्रवाह हो रहा था। ईश्वर-भक्त त्राहि-त्राहि कर रहे थे, परन्तु वे दीनबन्धु, दुख-हरता भगवान कहाँ, जो कि एक गज की करुण-पुकार सुनकर नंगे पाँव दौड़े आए थे, आज वही मानव-रक्त-प्रवाह देखकर, मानवों के करुण-चीत्कार को सुनकर भी चुप बैठे हैं। मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। मूर्तियाँ तोड़ी जा रही थीं।

ईश्वर-भवन में ही ईश्वर आश्रितों का रक्त बहाया जा रहा था। यहाँ तक कि स्वयं ईश्वर-प्रतिमा पर प्रहार किया जा रहा था; भग्न किया जा रहा था। ऐसी दशा में यदि 'वह' सर्व-शक्तिमान है तो फिर क्यों नहीं आता? अपनी स्वयं की ही रक्षा क्यों नहीं करता? यह दशा थी, उन निराश्रित हृदयों की। अब उन्हें किसका सहारा। चारों ओर अन्धकार था। इसी समय इन ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों ने उनका हाथ पकड़ा। उन्होंने ईश्वर का कोई रूप न मान कर उसे निर्गुण बताया। वह ईश्वर कहाँ केवल एक पाषाण-प्रतिमा थी। उसमें इतनी शक्ति कहाँ कि आकर उनका उद्धार करे। वह तो निर्गुण है। योग ही एक मार्ग है जिसके द्वारा वह प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञान का मार्ग ही उस तक पहुँचने का सीधा और सरल मार्ग है। इस प्रकार ज्ञान और योग का सहारा लेकर इन सन्त कवियों ने उन निराश्रित अशान्त हृदयों में सांत्वना का सञ्चार किया। इस प्रकार इन्होंने डूबते हुए हिन्दू धर्म की रक्षा की और उसे सँभाला। यही नहीं वरन् हिन्दू-धर्म प्रासाद की आधारशिला का शिलान्यास किया।

उस ओर हिन्दी साहित्य-भवन का शिलान्यास भी इन्हीं कवियों ने किया। इन कवियों की रचनाएँ साहित्य की अमूल्य रचनाएँ हैं। महात्मा कबीर तो साहित्य के एक महान निर्माता हैं। उनको भाषा, भाव, रस आदि सभी क्षेत्रों में पूर्ण अधिकार था और इस प्रकार साहित्य के स्तर को ऊँचा किया—

"गहना एक कनक ते गहना,
इन महँ भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापिन,
इक निमाज, इक पूजा॥"

इसके साथ-साथ उन्होंने समाजिक बुराइयों को दूर कर सब धर्मों में समन्वय स्थापित करने का एक अद्वितीय प्रयत्न किया—

"दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय।"
"बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, तिनको कौन हवाल॥"

और इसके पश्चात्, ईश्वर का सच्चा दर्शन कराया—

मुझको क्या तू ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।"

इस प्रकार जनता को सहारा मिला। जनता इस ओर खिंची। डूबते को तिनके का सहारा। परन्तु अब कुछ समय पश्चात् जब देखा कि तिनका उनकी रक्षा नहीं कर सकता, तब फिर वह व्यकुल हो उठी। योग और ज्ञान उन्हें अधिक देर तक न बचा सका। उसने उनका हाथ छोड़ दिया, क्योंकि यह कबीर रैदास, मलूकदास आदि सन्तों के ही योग्य था। वह साधारण जनता के लिए बहुत कठिन था। सामाजिक प्राणियों के लिए ये क्रियायें असम्भव प्रतीत हुईं। इस प्रकार फिर जनता का झुकाव धर्म की ओर से अलग होते हुए दृष्टिगोचर हुआ। परन्तु इसी बीच में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र एक हाथ इन्हें मिलता है, जो शायद पार ले ...व। जनता ने आशा से उसका हाथ पकड़ा। ...ा हाथ था प्रेममार्गी (सूफी) शाखा का। ज्ञान और ...ेम, सामाजिक जीवन के व्यवहार से दूर था। प्रेम ...ी सामाजिक जीवन का आधार ही है। इस प्रकार ...न सूफी कवियों ने ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग बताया। ...ग भी सीधे सीधे नहीं वरन् सुन्दर कथाओं के रूप में। ...इस प्रकार इस शाखा के मुख्य कवियों—कुतबन ...ुन्न और मलिक-मुहम्मद जायसी आदि ने प्रेमगाथा ...ी प्रणाली को हिन्दी साहित्य में देकर, हिन्दी साहित्य ...ी और हिन्दू धर्म की रक्षा की। इस प्रकार इन ...नों प्रासादों की हिलती हुई आधार-शिला को फिर ...ढ़ किया गया। सूफी मुसलमान होते हुए भी, ...हिन्दुओं की कहानियों को हिन्दुओं की ही बोली में ...हृदयता और जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के ...ाथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामञ्जस्य दिखा ...या। कबीर ने जहाँ केवल भिन्न प्रतीत होती हुई ...ोक सत्ता की एकता का आभास दिया वहाँ जायसी ...ने प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखा।

परन्तु सभी तो सन्त हो नहीं सकते। समाज में ...कर, अनेक जीवन की परिस्थितियों पड़ कर, जनता ...स प्रकार निर्गुण ईश्वर पर अपना चित्त एकाग्र ...र सकती है। उसके सम्मुख तो एक मोहक और ...ाथ ही साथ सर्व शक्तिमान् ईश्वर का रूप चाहिए। ...स प्रकार अब सूफियों का भी अन्तिम समय आया। ...र फिर अनाथ होने लगा। सूफियों ने जहाँ अपनी ...कृष्ट प्रेम-गाथाओं द्वारा साहित्य के भण्डार को ...रा वहीं अब उसके खाली भाग को भरने के लिए ...ोई भी न बचा। इसी बीच फिर हमारे बीच सगुण-...धारा आती है, जिसने आवश्यकतानुसार ईश्वर के ...प को जनता के समक्ष रखा। उन प्रासादों को ...धारशिला को, जो जरा से झंझावात से ...कने लगती थी, इन सगुण-भक्त कवियों ...इतनी दृढ़ की कि फिर उसके आधार ...र उत्तरोत्तर मंजिल पर मंजिल बनती चली गई। ...ुण धारा की दो शाखाएँ हुईं—एक रामभक्ति शाखा और दूसरी कृष्ण-भक्ति शाखा। स्वामी रामानुजाचार्य के द्वारा प्रतिपादित रामभक्ति शाखा के गौरव-पूर्ण महाकवि गोस्वामी तुलसीदास और स्वामी वल्लभाचार्य के द्वारा प्रतिपादित कृष्ण-भक्त शाखा के अष्ट-छाप में सूरदासजी ने हिंदू धर्म और साहित्य में एक सर्वोच्च पद प्राप्त किया। इस प्रकार यह तो स्पष्ट ही है कि हिंदू-धर्म की रक्षा भक्ति-काल के द्वारा हुई अन्यथा वह अब तक तो रसातल में पहुँच गया होता। गोसाईंजी का 'मानस' तो हिंदू-धर्म का एक मुख्य और श्रेष्ठ ग्रन्थ है, साथ ही साथ सूर, मीरा, रसखान, नरोत्तम आदि ने धर्म को और सरल तथा मोहक बना दिया। उनके ग्रन्थों का साहित्यिक मूल्य तो आँका ही नहीं जा सकता। वह अमूल्य है।

सूर और तुलसी वैसे ही हिन्दी साहित्य के सर्वोच्च कवि माने जाते हैं।—

"सूर सूर तुलसी शशि, उडगन केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकाश॥"

इस प्रकार इसका साहित्यिक मूल्य तो निर्विवाद है।

इतना ही नहीं वरन् हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य, आगे इन्हीं भक्त-कवियों की प्रतिपादित लकीरों पर ही उन्नति करता रहा और आज भी, अन्त तक बराबर हम उनकी छाप अपने साहित्य में देखते हैं। सूर की ब्रज-भाषा और उनकी कृष्ण-भक्ति के पद, उनका वर्णन, उनकी लीलाओं का दर्शन अब भी बराबर आधार रूप से हिन्दी-साहित्य में चला आ रहा है। ब्रजभाषा को ही साहित्य के उपयुक्त काव्य-भाषा कहा गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भक्ति-काल ने अपने नाम के अनुसार हिन्दू-धर्म की रक्षा कर उसे दृढ़ किया परन्तु साथ ही साथ भक्ति-काल ने ही हिन्दी-साहित्य को इतना उन्नत किया कि आज हमारा साहित्य अन्य साहित्य से सर्वोत्तम है। यह श्रेय भक्ति-काल को ही और उस काल के उन भक्त-कवियों को ही है। भक्ति-काल हिन्दू-धर्म-प्रासाद की तथा हिन्दी-साहित्य-प्रासाद की आधार-शिला ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण

श्री आनन्द नारायण शर्मा, बी० ए० (आनर्स)

सृष्टि के आरम्भ से ही मानव-समाज का प्रकृति से गहरा सम्बन्ध रहा है। डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त को यदि हम न भी मानें, तब भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि अपनी आदिम अवस्था में मनुष्य बहुत कुछ अंशों में जङ्गली जैसा था। प्रकृति के खुले मैदान में रहना और सीधे प्राकृतिक उपादानों से ही अपनी खाद्य-सामग्री ग्रहण करना उसने जाना था। प्रकृति से उसका सम्पर्क बहुत निकट का था। वह उससे घिरा हुआ था। लेकिन वन, पर्वत, कन्दराओं, उपत्यकाओं द्वारा जहाँ वह पोषित तथा रक्षित था, वहीं ज्वालामुखी के विस्फोट, दावाग्नि, घनघोर वृष्टि द्वारा भक्षित भी। बड़ी-बड़ी नदियाँ न केवल अपने उभय कूलों को प्लावित कर कृषि के योग्य जमीन तैयार करती थीं, अपितु अपनी सबल धारा से सैकड़ों बस्तियों का संहार भी कर देती थीं। प्रकृति के प्रकोप से बचने के लिए तब आज की तरह सुलभ साधन तो थे नहीं। इसलिए आदिम मानव के हृदय में प्राकृतिक उपादानों के प्रति पूजा की आस्था थी और भय का भाव भी। संभव है भय ही पूजा का कारण हो। और उसने इनके एक-एक कल्पित देवता मान कर अर्चना आरम्भ कर दी। प्रकाश, अन्धकार, हवा, आग और पानी के लिए मित्र, वरुण, सूर्य, पवन, अग्नि, सवित्ति, पूषण, इन्द्र आदि की कल्पना उसी युग की याद दिलाती है। स्मरण रहे, ये देवता उस आदि वैदिक-काल के हैं जब त्रिदेवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की भी उत्पत्ति नहीं हुई थी।

यह नहीं कि प्रकृति की उपयोगिता ने ही केवल मानव-मन को प्रभावित किया था। निश्चय ही उसके सौन्दर्य ने भी उसे आकृष्ट किया होगा। प्रकृति के रमणीय दृश्य ऊषा की स्निग्ध छटा, सान्ध्यकालीन समुद्र तट पर समीर की मन्थर गति, पावस के इन्द्रधनुष का सतरङ्गा आलोक सदा से मनुष्य के हृदय में उल्लास का स्रोत बहाते रहे हैं। ऋग्वेद की—

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि
व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।

× × ×

प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैः
रुषाऽऽभाति सुभुजा स्वेन।

जैसी सौन्दर्यानुभूति परक पंक्तियों को निरे उपयोगितावाद की कसौटी पर कसना उनके साथ अन्याय करना होगा। प्रगतिशील शब्दों में ही कहें तो मानव की भूख ही सब कुछ नहीं। उस जमाने में भी मन की भूख उतनी ही बलवती होगी, जितनी आज है। इन्हीं कारणों से प्रकृति ने मनुष्य के जीवन में भी एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। और जब उसकी भावनाएँ हृदय की कारा तोड़ कर बाहर निकलीं, विचारों ने वाणी पाई, अनायास ही प्रकृति के चित्र का उसमें समावेश हो गया। वाल्मीकि या हिन्दी के ही आदि कवियों ने प्रकृति का चित्रण इसी रूप में किया है। प्राकृतिक दृश्यों के निरीक्षण से उनके मन में जो आनन्द उत्पन्न हुआ, उसको उन्होंने जैसा तैसा वर्णित कर दिया है। अपनी ओर से उसमें कुछ नहीं मिलाया। संस्कृत वालों को छोड़ दें तो हिन्दी के सिद्ध और वीरगाथा कालों में भी इसके उदाहरण मिल जायँगे।

किन्तु सभ्यता के विकास के साथ ही मानव के भावों में भिन्नता आती गई। उसने क्रमशः बना दिया मानव-मस्तिष्क को। अब उसमें सरोवर शान्त जल जैसी स्वच्छन्दता, स्थिरता न रह गई वह प्रकृति में अपने हृदयगत भावों का खोजने और देखने लगा। प्रेममार्गी भक्ति-शाखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों को प्रकृति अपने सुखों के साथ हँसती और दुखों के साथ रोती दिखलाई देती थी। जायसी के 'पद्मावत' में सारी प्रकृति का पुरुष से समागम के हेतु शृङ्गार, उत्कण्ठा या विरह-विकलता का चित्रण है। कुछ बाद की कविता में ऐसे ही वर्णनों का आधिक्य है, मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघातों का साम्राज्य है।

और आगे बढ़ने पर प्रकृति से पृष्ठभूमि तथा उद्दीपन का काम लिया गया मिलेगा। किसी घटना का पूर्वाभास या उसके बाद की अवस्था दिखलाने के लिए भी प्रकृति की आवश्यकता होती है। शृगाल या उल्लू का अपशकुन के लिए तथा भरे कलश और मोर का शकुन के लिए बहुधा प्रयोग होता है। बेर का वृक्ष अशुभ माना जाता है, सहकार शुभ। दृश्यों की इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक योजना द्वारा प्रभाव और प्रेषणीयता में बहुत वृद्धि हो जाती है। राम-वन गमन के समय अयोध्या में शोक का व्यापक प्रसार हो गया था। तुलसी ने वहाँ प्रकृति को भी रोता हुआ चित्रित किया है। क्या जड़ क्या चेतन उस समय श्री राम के वियोग में विलाप करते हैं। सूर ने भी कृष्ण के व्रज छोड़ते समय कुछ ऐसी ही दशा दिखलाई है। यहाँ तक आते-न-आते प्रकृति का निजी महत्व बहुत कुछ कम हो जाता है एवं उसकी स्वतन्त्री सत्ता समाप्त होने लगती है। उसके सारे क्रिया-कलाप अपने न रहकर मानव-मस्तिष्क के अधीन हो जाते हैं।

चौथे प्रकार के प्रकृति-चित्रण में प्रकृति के नाना रूपों का प्रयोग केवल उपमा या उदाहरण के लिए होता है। इस कोटि की कवितायें हिन्दी में सब से अधिक मात्रा में मिलती हैं। कहने को तो इस शैली की उद्भावना वीरगाथा-काल में ही हो चुकी थी, क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' में

चन्द-वदन चरन-कमल भौंह जनु भ्रमर गंध रत,
कीर नास बिंबोष्ठ दशन ज्यों दामिनी दमकत।
भुज-मृणाल कुचकोक सिंहलंकी गति वारुन,
कनक कांति दुति देह जंघ कदलीदल आरुन॥

अलसंग नयन भयनं मुदित,
रुदित अनंगह अंग तिहि।
आनी सुमन्त आरम्भ वर,
भूलत देखत देह जिहि॥"

जैसी पंक्तियाँ मिलती हैं, पर रीतिकाल वालों ने तो इस दिशा में कमाल ही कर दिया। जहाँ कहीं नायक या नायिका की सुन्दरता का वर्णन करना हुआ' बस लीजिए, उपमानों की झड़ी लगा दी गई, जैसे वर्णित व्यक्ति के अंग अपने में कोई महत्त्व ही न रखते हों। 'मुख-कमल' और 'मुख-चन्द्र' का रूपक कविता के आदिकाल से चला आ रहा है। तुलसीदास तक इस परंपरा का मोह न छोड़ सके। एक ही पंक्ति में एक उपमान चार-चार उपमेयों के साथ लाया गया है—

नख-कंज-लोचन कंज-मुख कर-कंज पद कंजारुणम्

और रीतिकाल का तो कहना ही क्या! आँखों के लिए कमल, नाक के लिए शुक, दाँतों के लिए कुंदकली बाँहों के लिए मृणाल, जाँघों के लिए कदली-स्तंभ, वेणी के लिए सर्प, चाल के लिए गज—तात्पर्य यह कि हर अंग के लिए प्रकृति से उन लोगों ने उपमान ग्रहण किए। इनका प्रचलन इतना बढ़ा कि उपमाओं की लड़ी-सी लगादी गई। अतएव आज भी अलङ्कारों में उपमा का स्थान सर्व-प्रथम है। रीतिकालीन कविता में इसके उदाहरण पग-पग पर पड़े मिलेंगे। ऐसी बाढ़ है कि उपयुक्तता-अनुपयुक्तता का ध्यान भी बह-सा गया है। श्रीपति कवि कहते हैं—

"गोरी गरबीली तेरे गात की गुराई आगे चपला,
निकाई अति लागत सहल—सी।"

इसे यदि केवल 'व्यतिरेक' अलङ्कार का उदाहरण माना जाय तब तो कोई बात नहीं, मगर जरा भी गौर करने पर गात की गुराई की चपला की चमक से उपमा देना अनुचित लगेगा। इसी तरह 'नित-प्रति पूनों ही रहत आनन ओप उजास' में भी चमत्कार भले ही हो, कवित्व की मात्रा नहीं के बराबर है। फिर क्यों न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"खिड़की से मत झाँकियो चन्द्रबदनि अभिराम।
नहीं फेल कर जायगा ब्लक आउट प्रोग्राम॥"

को भी सत्कविता की उपाधि दे दी जाय। रीतिकालीन कुछेक कवियों ने प्रकृति से उद्दीपन विभाव का भी काम लिया है। कहीं तो ये विभाव इतना छा गए हैं कि केवल उन्हीं से रस की निष्पत्ति भी मान ली जाती है। उदाहरणार्थ शृङ्गार का एक विभाव—

"नभ में घनघोर से स्यामघटा,
अति जोर भरी घहरान लगी।
पिक, चातक, मोरन की धुनिहू,
चहुँ ओरन धूम मचान लगी॥
मलयानिल सीतल मन्द अली,
मदनानल को धधकान लगी।
निरखै किन पीतम पाय परे?
रहिहैं कबलौं अब मान पगी?"

बहुत से कवि उपदेश देने के लिए भी प्रकृति का सहारा लेते हैं। उपदेश देने या दार्शनिक तत्त्वों का समावेश करने में इस बात का सदा ध्यान रखना होता है कि कल्पना मनमाना काम न करने पाए। साधर्म्य का आरम्भ होना अनिवार्य है। तुलसीदास ने वर्षा और शरद ऋतुओं के वर्णन के साथ बहुत-से उपदेश दिए हैं। चित्रकूट की पयस्विनी नदी का मानस में वर्णन कवि के मानसिक विचारों का ही द्योतक है। दो-एक उदाहरण किष्किन्धा-काण्ड से—

"दामिनि दमक रही घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि नियराए।
जथा नवहिं बुध विद्या पाए॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन सन्त सह जैसे॥
छुद्र नदी भरि चली तोराई।
जस थोरेहु धन खल बौराई॥
पंक न रेनु सोह अस धरनी।
नीति निपुन नृप के अस करनी॥"

प्राकृतिक उपादनों को लेकर संस्कृत-हिन्दी में बहुत सी 'कवि-प्रसिद्धियाँ' चल पड़ी हैं। इनमें से अधिकांश वस्तु-जगत में नहीं देखी जातीं, कुछ अभ्यास के विपरीत होती हैं और कुछ पर तो वास्तव में हँसी आती है। संस्कृत के आचार्यों ने इनका बड़ा विशद विवेचन-विश्लेषण किया है। लेकिन हिन्दी में ये सीधे संस्कृत से ग्रहण कर ली गई हैं। वृक्षों पुष्पों के सम्बन्ध में कुछ कवि-प्रसिद्धियाँ यों हैं—सुन्दरियों के पटु-मृदु हास्य से चम्पा, बीक्षणभान्त से तिलक, स्पर्श से त्रिभंगु, गर्भकाव्य से मंदार, मुख मदिरा से सिंचकर कुल और सपकार, आलिंगन से कुरवक, पदाघात से अशोक और सामने नृत्य करने से कर्णिकार विकसित और पुष्पित होते हैं। इनमें कल्पना को छूट कर उड़ान भरने का अवसर दिया गया है। कुछ ऐसे 'कविसमय' हैं जो सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के अभाव में चल पड़े हैं; जैसे अशोक, चन्दन, बेंत, आदि में फूल-फल नहीं लगते, ऐसा माना जाता है। गोसाईं जी ने स्पष्ट 'फूलें फलै न बेंत, जदपि सुधा बरसहिं जलद' लिखा है। पर सत्यता इसके विपरीत है। कोकिल का केवल वसन्त में बोलना और चकोर का अंगार खाना भी ऐसी ही भ्रान्तियाँ हैं। कविता में प्रकृति से किनारा कशी ठीक नहीं, पर उसे इस प्रकार अनुचित ढङ्ग से भी न घसीटना चाहिए। आज के वैज्ञानिक युग में इस तरह के वर्णन हास्यप्रद ही कहे जायेंगे। इस लिए अब इनका प्रचलन भी कम हो गया है। फिर भी ये रीतिकाल के प्रकृति-चित्रण के एक महत्त्वपूर्ण अंश हैं, जहाँ इनमें आचार्यों ने अपनी सारी कला खर्च करदी है। उन्होंने प्रकृति को दूर से देखा है, उससे साहचर्य नहीं स्थापित किया।

आधुनिक युग के आरम्भ के साथ ही प्रकृति-चित्रण के तरीके भी बदल जाते हैं। खड़ी बोली के कवियों ने प्राकृतिक वस्तुओं को उपमान बना कर उनकी माला गूँथने का अपेक्षा उनका स्वतन्त्र चित्रण करना ही श्रेयस्कर समझा। प्रकृति, जो मनुष्य के चारों ओर आज भी अपनी राशि-राशि सुषमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिखेरती हुई निष्प्रयास, निष्प्रोयजन नहीं, बिखरी पड़ी है एकदम अस्तित्व हीन, स्पन्दनशून्य नहीं फिर क्यों उसे अचेतन-निष्प्राण की तरह चित्रित किया जाये, जबकि गत्यात्मकता आज के युग की पहली शर्त है। फलतः नवयुग के प्रकृति-चित्रण में दो ही प्रकार के चित्र अधिक निकलेंगे चाहे तो कैमरे से लिया हुआ एक दृश्य का स्नेप या चल-चित्रों की रवानी, जिसमें जीवन की गति हो। खड़ीबोली की कविता के प्रादुर्भाव काल में, जब गत्यात्मक चित्रों की ओर कलाकारों का ध्यान नहीं गया था अथवा उन्हें शब्दों में उतारने की शक्ति उनके पास नहीं थी, उसकी स्टैटिक सुन्दरता, जो गतिशील न होकर भी सजीव थी, कविता का विषय बनी। भारतेन्दु, श्रीधर पाठक आदि में हम वही पाते हैं। खड़ीबोली के पहले महाकाव्य 'प्रियप्रवास' का आरम्भ भी एक ऐसे ही वर्णन से होता है। यथा—

"दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला;
तरुशिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा॥"

यह प्रकृति का एक निष्कलुष चित्र है। इसमें अपनी ओर से कवि ने उसे न तो कुछ दिया है, न उसकी सजीवता ही हरण की है। गुप्तजी के काव्य में भी ऐसे चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलेंगे।

छायावादी युग ने प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण को एक नई दिशा दी है। छायावाद एक शब्द में प्रकृति-काव्य है। उसमें प्रतीकवादी विधान अपनाया जाता है। उसकी अधिकांश लक्षणाएँ और व्यञ्जनाएँ प्रकृति से सम्बद्ध हैं। प्रकृति की सूक्ष्म भावनाओं के मूर्त लाक्षणिक रूप से छायावाद की कविता अनुप्राणित हुई है। उसकी व्यञ्जनाओं में प्रकृति के मूक दृश्यों ने वाणी पाई है, जिसके शब्दों में उसका संगीत मुखर हो उठा है। लहर, हिलोर, तरङ्ग, वीचि और ऊर्मि का अन्तर पहली बार छायावाद ने ही परखा; संध्या की झुटपुट वेला में बाँसों के झुरमुट में 'टी वी टुट टुटु' चहकती चिड़िया की ओर पहली बार उसी की नजर गई। प्रसाद ने प्रकृति के वासनात्मक पहलू को अपना कर उस पर गीत लिखे हैं। प्रकृति से जिस प्रकार का इन्द्रिय ग्राह्य सुख-दुख उन्हें प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने ज्यों-का-त्यों वर्णित किया है। विराट् को सीमा में बाँधने की शक्ति उनमें ही थी। 'कामायनी' में प्रकृति के विविध रूपों के अनुपम चित्र उतारे गए हैं। जहाँ मिट्टी की कठोर वस्तुवादी मान्यताओं से पलायन कर प्रकृति की गोद में उन्होंने शान्ति पाई है, वहीं उससे आगे बढ़ने, कर्म करने की प्रेरणा भी ली है।

पन्त किसी समय प्रकृति के कवि ही थे। हिन्दी को जितने अधिक प्राकृतिक चित्र उन्होंने दिये हैं, उतने शायद ही किसी दूसरे कवि द्वारा मिले हों। पर पन्त की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह प्रसाद या महादेवी की तरह तह में नहीं पैठ सकते। उन्हें डूबने का गम है और 'सतह की चल-जल माली' ही ज्यादा भाती है। यह उनकी अचेतन स्वीकारोक्ति है। इसलिए उनमें मुग्ध करने की शक्ति अधिक है; वह रुक कर कुछ देर सोचने को बाध्य नहीं करते। कहीं-कहीं उन्होंने प्रकृति को बहुत अधिक मूर्त्तिमान कर दिया है। निस्सन्देह वहाँ उनकी कला अपने उत्कर्ष पर है। एक उदाहरण—

"कौन-कौन तुम परिहृत-वसना
म्लान मना भू-पतिता-सी?
धूलि-धूसरा मुक्त-कुन्तला
किसके चरणों की दासी?
अहा! अभागिनी हो तुम मुझसी
सजनि, ध्यान में अब आया,
तुम इस तरु की छाया हो
मैं उनके पद की छाया!"

इस प्रकार की कविता समस्त रीति-युग में एक भी नहीं मिलेगी। उस समय यह सम्भव ही न थी। बाद की कुछ प्रगतिवादी कविताओं में पन्त ने प्राकृतिक उपादानों से प्रतीकों का काम लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा आशय 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र', 'गा कोकिल, बरसा पावक कण !' आदि से है। 'स्वर्ण-किरण' तथा 'स्वर्ण धूलि' में अपराजिता भाषा के साथ चित्रमयी कल्पना पुनः निखर रही है।

निराला के चित्रों में दार्शनिकता का अधिक समावेश हुआ है। निराला ध्वनि को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। वह किसी बात को सीधी तरह न कहकर एक समाँ बाँध देते हैं, एक वातावरण उपस्थित कर देते हैं। उन्होंने अपनी पहले की कविताओं में कुछ ऐसे क्षण प्रस्तुत किये हैं, जिन पर पाठक सहसा दो क्षण सोचने को बाध्य हो जाता है। यही उनकी कला की सफलता है। 'तुलसीदास' में प्रकृति सदैव कुछ कहती-सी जान पड़ती है। एक दूसरा चित्र संध्या का कितना शांतिमय, कितना सजेस्टिव है, देखिए—

"आता चल रवि, जल छल-छल
छवि स्तब्ध विश्व कवि, जीवन उन्मन।
मंद पवन बहती सुधि रह-रह
परिमल की कह कथा पुरातन ॥"

इसे देख कर वर्ड्सवर्थ की ये पंक्तियाँ जो पुनः पुनः प्रशंसित हो चुकी हैं, सहसा याद आ जाती हैं—

It is a beauteous
evening calm and free,
The holy time is
quiet as a Nun,
Breathless with adoration
the broad sun
Is sinking down
in its tranquility."

कहीं-कहीं प्रकृति-चित्रण में निरालाजी रवींद्र से हड़ लेते से दीखते है।

महादेवी के काव्य में प्रकृति का चित्रण उद्दीपन स्वरूप होता है। उन्होंने अपने अनन्त विरह को प्रकृति के विरह के साथ मिलाकर एकाकार कर दिया है। उनका प्रिय सदैव प्रकृति के धुँधले चित्रों में छिपा रहता है, जिसे खोजने मिस वह उसके पट-पर पट उघारती जाती हैं। दीपशिखा की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"प्रकृति का शांत रूप जैसे मेरे हृदय को चंचल स्पर्श से भर देता है, उसका रौद्र रूप वैसे ही आत्मा को प्रशांत अस्थिरता देता है। अस्थिर रौद्रता की प्रतिक्रिया ही सम्भवतः मेरी एकाग्रता का कारण रहती है। मेरे अन्तर्मुखी गीतों में तो यह एकाग्रता ही व्यक्त हो सकती है, परन्तु चित्रों में उनका बाह्य आवरण भी चित्रित हो सका है। मेरे निकट आँधी, तूफान, बादल, समुद्र आदि कुछ ऐसे विषय हैं, जिन पर चित्र बनाना अनायास और बना लेने पर आनन्द स्थायी होता है।" उनका प्रकृति चित्रण यथार्थ का प्रतिविम्ब न होकर स्थूलगत सूक्ष्म का भावक है।

प्रकृति की तस्वीर उतारने वाले कवियों में बच्चन और नेपाली मुख्य हैं। व्यक्ति की प्रधानता जितनी बच्चन की कविता में है, आधुनिक युग के किसी अन्य कवि की कविता में उतनी नहीं। व्यक्ति, उसके मनोभाव और फिर उसको चहार दीवारी—बच्चन को बस इतने की ही आवश्यकता है। इसलिए वह प्रकृति को कहीं और कभी नहीं छोड़ सके हैं। प्रकृति में बराबर उन्होंने अपनी मनःस्थिति का विश्लेषण पाया है। वह उनके सारे कार्य व्यापारों की अर्द्धिणी है। अपनी इधर की रचनाओं में उन्होंने प्रकृति के वासनात्मक पहलू को ही अपनाया है। 'मिलन यामिनी' के कुछ गीत सचमुच बहुत सुन्दर उतरे हैं। एक ओर जहाँ उनमें प्रिय शेष बहुत है 'रात, अभी मत जाओ !' और 'प्रिय मौन खड़े जलजात, अभी मत जाओ !' की उद्दामवासना और आकर्षण है तो दूसरी ओर 'कुदिन लगा, सरोजिनी सजा न सर' और 'मैं गाता हूँ इसलिए कि पूरब से सुरभित जो सोना शुभ्र-सलोना नित्य बरसता है, उसको कोई बस प्रात किरण मत कह बैठे।' की दुर्दम अनुरक्ति भी। 'प्रहार शीत वात का हुआ निदुर' आदि कुछ प्रगीतों में सांकेतिकता का प्रयोग बेजोड़ है। नेपाली तो जैसे रूप और रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक प्रकृति के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति की रमणीयता को गीत-चित्रों में बाँधा है। जैसे हम कोई अत्यन्त मनोरम दृश्य देखकर उसका एक स्नैप ले लेते हैं, वैसे ही नेपाली की आँखें कैमरे की आँख हैं। उनके चित्रों में गति तो नहीं मिलेगी, पर रंगों की विविधता दर्शनीय हो जाती है। और रङ्ग भरने की कला में उन्हें इतना कमाल हासिल है कि कभी वह पुनरावृत्ति नहीं होने देते। 'नवीन' में उनकी कविता का नया निखार है, अपनी नई दिशा में वह पूरे सफल हैं। दो-एक कल्पनाएँ—

"दो मेघ मिले हौले-हौले,
बरसाकर दो-दो फूल चले!"

और "उषा ने मले अबीर-गुलाल
कमल के गाल लाल कर दिए।"

प्रगतिवादियों का प्रकृति-निरीक्षण छायावादियों और रोमांटिकों से तत्त्वतः भिन्न है। जहाँ रोमांटिक कवि प्रकृति के सुनहले पक्ष को देखकर ही उससे आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता था, वहाँ प्रगतिवादी कवि उसके कुरूप-रूप की ओर भी आकृष्ट हुआ है और उसमें भी उसने सुन्दरता पाई है।

"कुड़ा-करकट जो कुछ भू पर,
सब कुछ सार्थक सब कुछ सुन्दर!"

प्रगतिवाद की वर्त्तमान प्रचलित व्याख्या को मार्क्सवाद का व्यावहारिक साहित्यिक रूप मानना अनुचित न होगा। मार्क्सवाद को आधुनिक समाज-व्यवस्था से सन्तोष नहीं। वह सृष्टि का पुनानमाण चाहता है जो कुछ प्राचीन और रूढ़िवादी हैं उन सबको तोड़-फोड़ कर वह नई दुनिया नये सिरे से बनाना चाहता है। उसकी दृष्टि में साहित्य आइना नहीं, हथौड़ा है। (ट्राट्स्की)। उसका चित्रण कल्पना से दूर विशुद्ध यथार्थवादी होता है। नरेन्द्र शर्मा, अञ्चल, सुमन आदि का दृष्टिकोण प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में प्रगतिवादी रहा है। पन्त की 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' तो प्रगतिवाद का जयघोष ही हैं। इनमें कवि अपनी मूर्त्ति-विधायनी शक्ति छोड़ सादे पेंसिल-स्केच बनाते दीखते हैं। तुच्छता में गौरव-दर्शन की प्रवृत्ति ने निराला के विचारों में भी क्रान्ति ला दी है, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने कुरूप 'कुकुरमुत्ता' का भी चित्र दिया है। नरेन्द्र शर्मा के 'मिट्टी और फूल' में भी फूल के सौरभ से मिट्टी की पार्थिवता ही अधिक है। इस दिशा में अज्ञेय अधिक सफल होते यदि उनके सिद्धान्त और व्यवहार-पक्षों में साम्य होता।

यह विचारणीय है कि इन दिनों हमारे अधिकांश कवि गाँवों में न रहकर बड़े-बड़े शहरों में रहते हैं। फलतः उन्हें नगर-सुलभ दृश्य ही अधिकतर देखने को मिलते हैं। उनके सामने प्रकृति को वन-उपवनों, मुक्त आकाश में देखने की अपेक्षा खिड़की से अपने घर के सामने कृत्रिमरूप से लगाए गए गमले की गुलदाउदी और स्वीट-पी को ही देखने का अवसर ज्यादा रहता है। वे तरु-गुल्मादि आच्छादित शैल-शृङ्गों का गगन-चुम्बन देखने की अपेक्षा पास के कारखाने की चिमनी से उठता धुआँ ही देखा करते हैं। अतः दिनों-दिन हिन्दी-कविता से प्रकृति-चित्रण दूर होता जा रहा है। जहाँ है भी एक बहुत संकुचित वातावरण के चित्र के रूप में गद्यात्मक, सेकेण्ड-हैंड जैसा। दूसरी बात, अब उसकी सुन्दरता-शालीनता की अपेक्षा रौद्रता-भयङ्करता ही कवियों को अधिक आकृष्ट कर रही है। आजकल नई रचनाओं में विध्वंस, कुरूपता के ही चित्र ज्यादा देखने को मिलते हैं। इस सम्प्रदाय के कवियों में सबसे सशक्त व्यक्तित्व दिनकर का है। यों उनके 'द्वंद्वगीत' में प्रकृति-चित्रण का दार्शनिकता के साथ संयोग किया गया है। व्यङ्ग और कटुता की मात्रा प्रभाकर माचवे और रांगेय राघव में ज्यादा है।

आज के इस प्रयोगवादी युग में प्रकृति चित्रण की नई-नई प्रणालियों से काम लिया जा रहा है। हिन्दी कविता एक बहुत संकुचित क्षेत्र में पहुँचा दी गई है। अतः दृष्टिकोण और कैनवास में भी प्रसार की आवश्यकता है कुछ प्रगति के चिह्न भी दिखलाई दे रहे हैं मगर इस दिशा में परिणतियों से संभावनाएँ ही अधिक हैं। भविष्य में काव्य का प्रकृति से क्या और कैसा सम्बन्ध रहेगा, यह तो वही जाने लेकिन अगर अनुकरण को छोड़ कर चिन्तन-अनुवीक्षण से काम लिया गया तो निस्संदेह एक नया अध्याय जुड़ेगा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद की काम सम्बन्धी भावना

श्री डा० सोमनाथ गुप्त एम० ए०, पी० ऐच० डी०

'कामा' शब्द के साथ जो अर्थ और भावनाएँ लगी हुई हैं, उनका इतिहास और स्वरूप साहित्य के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण विषय है। आज के हिन्दी साहित्य में 'काम' प्रायः 'कामदेव' का पर्यायवाची है। इस शब्द का प्रयोग होते ही 'रतिनायक', 'शृङ्गाररस के अधिकृत देवता', 'पञ्च-सर', 'तपस्याओं के भङ्ग करने वाले' और 'प्रेम के अग्रदूत' एक देवता की मूर्ति सामने खड़ी हो जाती है। यह महाशय 'अतनु' होते हुए भी मूर्तिमान दिखाई देते हैं। इन्हीं से सम्बन्धित कुछ शब्दों का भी प्रयोग साहित्य में होता है—'कामना' 'वासना', 'इच्छा' आदि। धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ 'काम' भी उन चार पदार्थों में से है जिसकी प्राप्ति के लिए संसार का मानव प्रयत्न-शील है और जो उसके जीवन-आदर्शों की एक व्यवहारिक साधना है।

परन्तु साधारण बोलचाल में 'काम' का प्रयोग 'सम्भोग' और उसी के साथ की सभी भावनाओं एवं क्रिया-व्यापारों के लिए प्रायः होता है। अतएव आचार शास्त्र की दृष्टि से 'काम' में अश्लीलता का समावेश हो गया है और विज्ञान की दृष्टि से वह मानव मस्तिष्क और उसके कार्यों के अध्ययन की एक परम आवश्यक सामग्री बन गया है।

परिणाम यह हुआ है कि 'काम' के इस अनेकोन्मुखी रूप ने संसार में अनेक अनर्थ कर डाले हैं। इसके कारण अनेक अनात्मिक वृत्तियों का जन्म हुआ है। स्वार्थ, विलास, अहम्, क्रोध, मद, लोभ और मत्सर आदि शत्रुओं की उत्पत्ति का एकमात्र कारण 'काम' का भौतिक रूप है। विश्व में पायी जाने वाली विषमता-समरसता का अभाव-इसी काम की सृष्टि है। वह लज्जा, घृणा और पाप का उद्बोधक है। उसका—कामोपासना का अन्तिम परिणाम अपने भक्तों की सृष्टि का विनाश है।

'प्रसाद' ने 'काम' की इस अनात्मवादिता को अच्छी प्रकार पहचाना था। उसके इस भौतिक रूप के जघन्य परिणाम से उनकी आत्मा तड़प उठी थी। देवताओं की सृष्टि-विनाश का भी यही मूलकारण था। 'कामायनी' में काम के इस स्वरूप का वर्णन स्वयं काम द्वारा कराया गया है:

"मेरी उपासना करते वे,
मेरा संकेत विधान बना;
विस्तृत जो मोह रहा मेरा,
वह देव विलास वितान तना।
"मैं काम रहा सहचर उनका,
उनके विनोद का साधन था;
हँसता और हँसाता था,
उनका मैं कृतिमय जीवन था।"
—पृ०

और इसका परिणाम हुआ—

देवों की सृष्टि विलीन हुई,
अनुशीलन में अनुदिन मेरे
मेरा अतिचार न बन्द हुआ,
उन्मत्त रहा सबको घेरे

काम के इस स्वरूप से अनुप्राणित व्यक्ति अमङ्गल, तथा धर्म-अधर्म का विचार नहीं करता। फिर ऐसी अवस्था में प्रलय से अधिक उपयुक्त सृष्टि का दूसरा परिणाम भी होना असम्भव है।

मनु भी उसी कामोपासक दैवी-सृष्टि के हुए प्राणी थे। अतएव एकाकी होने पर भी, सब खो जाने पर भी, वह अपनी मूल प्रवृत्ति से पृथक् हो सके। इड़ा-'बुद्धि'-के सम्पर्क में रहकर भी अपनी अन्तरात्मा में स्थित काम के भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नहीं समझा। अपने जीवन के आरम्भ में वासना को प्रमुख स्थान देने के कारण मनु नारी के सत्स्वरूप को भी नहीं पहचान सके। यह तो श्रद्धा की जड़-देह पर आसक्त थे। जीवन की कल्याण-भूमि और उसके अमृत-धाम हृदय तक उनकी पहुँच कब सम्भव थी। श्रद्धा ने उन्हें अमृत दिया और मनु ने उस सौन्दर्य-जलधि से केवल गरल-पात्र भरा—

"मनु! उसने तो कर दिया दान।
वह हृदय प्रणय से पूर्ण सरल,
जिसमें जीवन का भरा मान॥
जिसमें चेतनता ही केवल निज,
शान्त प्रभा से ज्योतिमान।
पर तुमने तो पाया सदैव,
उसकी सुन्दर जड़ देह मात्र॥
सौन्दर्य-जलधि से भर लाये,
केवल तुम अपना गरल-पात्र॥
—पृष्ठ १६३,

जिस प्रकार भगवान् शङ्कर ने 'काम' के कायिक रूप को भस्म कर दिया था उसी प्रकार प्रसाद ने भी उसके भौतिक रूप को जो मनु में पैतृक सम्पत्ति के परिणाम स्वरूप रह गया था 'श्रद्धा' द्वारा विनष्ट करा के मनु को 'काम' का आध्यात्मिक आलोक दिखाया है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद में 'काम' का यह भौतिक रूप भी प्रस्तुत है पर ग्राह्य नहीं है।

'काम' का एक दूसरा रूप भी हमारे शास्त्रों में आया है। काम-सूत्र में वात्स्यायन ने 'सामान्य' और 'विशेष काम की चर्चा की है।* पाँच इन्द्रियों के पाँच विषयों (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श) में प्रकृति अनुकूल सुखद पदार्थों के अनुभव की इच्छा सामान्य-काम है। 'इच्छा', 'वासना', 'तृष्णा' आदि इसी सामान्य काम के पर्याय हैं। पतङ्ग रूप में, मछली रस में, भ्रमर गन्ध में, हरिण शब्द में और हाथी स्पर्श में आसक्त देखे जाते हैं; परन्तु मनुष्य में इन सब का समावेश पाया जाता है और इसीलिए वह पञ्च-शर का दास बनता है। मनु ने इसका अनुभव किया है—

"पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ,
यह स्पर्श, रूप, रस, गंध भरा।
मधु लहरों के टकराने से,
ध्वनि में है क्या गुञ्जार भरा॥
—पृष्ठ—६६,

स्वयं 'काम' ने इसी के कारण अपना अवसाद प्रगट किया है—

"प्यासा हूँ, मैं अब भी प्यासा,
सन्तुष्ट ओघ से मैं न हुआ।
आया फिर भी वह चला गया,
तृष्णा को तनिक न चैन हुआ॥
—पृष्ठ—७१

स्त्री और पुरुष एक दूसरे के शरीर में इन्हीं पाँचों विषयों का सार अनुभव करते हैं। वात्सायन के विशेष काम की भावना स्पर्श-सुखानुभूति की प्रतीति पर अवलम्बित है (काम-सूत्र प्रथम अधिकरण, अध्याय ३, सूत्र १२)। 'वासना' सर्ग में मनु के काम का यह स्वरूप प्रसाद ने चित्रित किया है—

चल पड़े कब से हृदय दो पथिक से अश्रान्त,
यहाँ मिलने के लिए जो भटकते थे भ्रान्त।
× × ×
एक जीवन-सिन्धु था, तो वह लहर लघु लोल;
एक नवल प्रभात, तो वह स्वर्ण किरण अमोल।
एक था आकाश वर्षा का सजल उद्दाम,
दूसरा रञ्जित किरण से श्री कलित घनश्याम।

परस्पर प्रीति की इसी पृष्ठ-भूमि में भावी प्रणय के अनेक अनुकूल उपादान अनायास ही उपस्थित हो जाते हैं। मतवाली प्रकृति ऐसे ही अवसर पर राशि-राशि नक्षत्र पुष्पों को, 'दो' होकर भी 'एक' बनने वालों के चरण-प्रान्तों में लुटकर अपने को धन्य मानती है। 'मनु' और 'श्रद्धा' के उस मिलन में भी काम-विशेष का यही मङ्गलमय सङ्गीत प्रतिध्वनित हो गया था। मनु कहने लगे—

* वात्स्यायन, कामसूत्र १–२, ११–१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज ले लो चेतना का यह समर्पण दान ।
विश्व रानी ! सुन्दरी नारी । जगत का मान ॥
—पृष्ठ-९३

और श्रद्धा जैसे धरती में गड़ी जा रही थी—

"स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल ।
खिला पुलक कदम्ब सा था भरा गदगद बोल ॥
किन्तु बोली—क्या समर्पण आज का हे देव ।
बनेगा चिर-बन्ध नारी हृदय हेतु सदैव ?
आह मैं दुर्बल, कहो क्या ले सकूँगी दान ॥
वह, जिसे उपभोग करने में विकल हो प्रान ॥
—पृष्ठ ९४

सामान्य-काम से आगे बढ़ते हुए दोनों विशेष-काम की अवस्था पर आते हैं। प्रसाद यदि चाहते तो इस प्रसङ्ग में बह जाते और नारी-प्रणय का एक अत्यन्त भव्य और अनुरञ्जित चित्र अङ्कित कर डालते क्योंकि यह प्रसङ्ग ही ऐसी है। कृष्ण भक्त कवियों ने काम-विशेष का वर्णन 'दान-लीला' और 'मान-लीला' के अन्तर्गत किया है और उस पर अध्यात्मवाद का रङ्ग चढ़ाया है; रीतिकालीन कवियों ने इसी प्रसङ्ग में नायक-नायिका भेद के अन्तर्गत पूर्व-राग, और संयोग के अन्तर्गत भाव-प्रदर्शन कर उसे रस-पटल से आवरित कर दिया है परन्तु बुद्धिवादी युग में रहने वाले प्रसाद के सामने दोनों आवरण अनावश्यक थे। उन्होंने न देवत्व का आश्रय लिया और न लम्पट-शाही भद्रता के आचार्यत्व का। उन्होंने मनोवैज्ञानिक चित्रपटी पर अपनी सुचारु अनुभूति की संस्कार-तूलिका से एक बोधगम्य परन्तु मनोरम छाया-चित्र अङ्कित कर दिया है। यह संयमित और श्रद्धामूलक नारी का चित्र है जो जीवन के सुन्दर समतल में पीयूष-स्रोत के समान बहती हैं, जो अपने जीवन के स्वर्ण स्वप्नों का अश्रु-सलिल हाथ में लेकर पहिले ही उसे दूसरों को दान कर चुकी है और जो मन का सब कुछ रख कर भी आँसू से भीगे अञ्चल पर अपनी स्मिति-रेखा से एक सन्धि-पत्र लिखने के लिए प्रस्तुत है।

'काम' का एक अन्य विशद रूप भी प्रसाद ने प्रस्तुत किया है। यह रूप एक अद्भुत आकर्षण लेकर आता है जिसके फलस्वरूप सभी विश्लिष्ट पदार्थ संश्लिष्ट रूप धारण करते हैं और जीवन एकाकी न रह कर, अपने में दूसरों को मिलाकर उस मिलन का आनन्द उठाता है। तब—

प्रत्येक नाश विश्लेषण भी
संश्लिष्ट हुए बन सृष्टि रही,
ऋतुपति के घर कुसुमोत्सव था,
मादक मरन्द की वृष्टि रही।
भुजलता पड़ी सरिताओं की,
शैलों के गले सनाथ हुए;
जलनिधि का अञ्चल व्यजन बना,
धरणी का दो दो साथ हुए।

यद्यपि देखा जाय तो यह रूप काम का विशेष रूप ही है। भेद केवल इतना ही है कि 'काम-विशेष' की यह परिमिति स्त्री और पुरुष तक सीमित नहीं, उसका क्षेत्र प्रकृति का विस्तृत प्रांगण है; उसकी लीला-भूमि अंग्रेजी कवि Patmore के शब्दों में 'In married life, unity means a pair' मात्र नहीं वरन वह क्षेत्र 'एकोऽहं' का विराट क्रीड़ा-स्थल है जिसमें वह 'बहुस्यामि' होते हुए भी फिर 'एकोऽहं पर आ जाता है और इस प्रकार एकत्व में अनेकत्व तथा अनेकत्व में एकत्व का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है।

प्रसाद का 'काम' एक सृजक शक्ति है और वह शक्ति अनुरागमयी है,

'वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई,
अपने आलस का त्याग किए;
परमाणु-बाल सब दौड़ पड़े,
जिसका सुन्दर अनुराग लिए।'
—पृ० ७२

'काम' का यही रूप वेदों में 'विश्व-रेतस्' कहा गया है। विश्वोन्मीलन का आधार यही काम है और इसी को पाने और जानने के लिए ऋषियों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या की है। 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ' (गीता, ७–११) में काम के अध्यात्म रूप का ही वर्णन अर्जुन के सामने किया गया है। मोह-जन्य काम और धर्म-अविरुद्ध काम का अन्तर 'काम' सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक व्याख्या का बड़ा सूक्ष्म और उपयोगी प्रकरण है!

प्रसाद 'काम' को केवल मूलशक्ति ही नहीं मानते, वरन् उसे 'प्रेम-कला' भी स्वीकार करते हैं—

'यह लीला जिसकी विकस चली, वह मूलशक्ति
थी प्रेम-कला' प्रसाद 'काम' के अन्दर निहित ऐषणा की भावना की ओर से सतर्क हैं। 'काम' कहता है—

'आरम्भिक वात्या उद्गम मैं,
अब प्रगति बन रहा संस्कृति का'

परन्तु अपने इस व्यवहार का परिशोध वह स्वयं करना चाहता है और वह भी मानव की शीतल छाया में—मानवी सृष्टि में, दैवी-सृष्टि का परिणाम उसे दिखायी दे ही चुका है। जल-प्लावन से जो धक्का पहुँचा है, यह ऋणशोध-प्रवृत्ति उसी का परिणाम है। कितनी स्वाभाविक प्रेरणा है—शुद्ध विकास के लिए—

'दोनों का समुचित प्रतिवर्तन,
जीवन में शुद्ध विकास हुआ,
प्रेरणा अधिक अब स्पष्ट हुई,
जब विप्लव में पड़ ह्रास हुआ।'

—पृ० ७६

काम के इस मानवीकरण द्वारा प्रसाद ने शिव द्वारा भौतिक-काम के उन्मूलन की पौराणिक कथा को कविता का रूप देकर बुद्धिवादी की अनुभूति के अनुरूप बना दिया है।

कामायिनी काम-गोत्रजा है। समस्त संघर्ष के उपरान्त मनु को शान्ति प्राप्त करने में इड़ा (बुद्धि) की अपेक्षा श्रद्धा ही सहायक होती है। इस चरित्र-चित्रण द्वारा प्रसाद ने सिद्ध किया है कि संसार की उत्पत्ति से लेकर उसकी विषमताओं में जिन-जिन तत्वों का समावेश है उनमें 'काम' प्रधान है। 'काम' के वास्तविक स्वरूप के पहचानने के लिए बुद्धि के साथ-साथ श्रद्धा भाव की आवश्यकता है। श्रद्धा के अभाव में केवल बुद्धिवाद से अकेले काम नहीं चल सकता।

आजकल के बुद्धिवादियों को प्रसाद की यह बड़ी भारी चुनौती है। प्रसाद अपने 'काम' को मस्तिष्क-परिवर्तन का अग्रदूत बना गये हैं। भारतीय विचारधारा के आधार पर विषमता में समता स्थापित करने का यह ढंग कितना स्वभाविक, मनोवैज्ञानिक सुगम और दृढ़ है, अभारतीय विचारों से ओतप्रोत विद्वानों को शान्तिपूर्वक इस पर विचार करने की आवश्यकता है। सम्भव है तब वे पहचान सकेंगे कि पश्चिम की चकाचौंध उनकी दृष्टि-ज्योति को कैसा विकृत किये दे रही है।

—

हिन्दी-गुजराती शिक्षा

* विशारद और साहित्य-रत्न में गुजराती लेने वालों के लिये एकमात्र पुस्तक
* लेखक—आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा कमलेश एम० ए०, सा० रत्न

मिलने का स्थान—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावाद

श्री रघुवीरशरण 'मित्र'

पत्तों की पायलें बजाती हुई प्रकृति रूप और शृङ्गार में अलबेली है। उसकी अठखेलियों में आँखें उलझाये कोई हँसता है और कोई रोता हुआ गा रहा है। अन्तरिक्ष में मेघमाला की मनुहारें न जाने कितनी कल्पनाएँ करती हैं पर पूरी नहीं होतीं। हार कर बरस पड़ती हैं। पीड़ा के वे आँसू ही तो हरियाली प्रकृति के स्वरूप हैं या कहो कि ये ही शून्य के हृदय की छाया हैं।

पल्लवों पर कितनी ही कहानियाँ लिखी हुई हैं, विद्युत की कौंध और इन्द्रधनुष की रङ्गीनी नयनों की हार जीत ही तो है। चाँद-तारों में नीलाम्बरा सजा-सी चाँदनी पर चुपके-चुपके चलती और ढलती है एवं, साथ ही साथ जलता और ढलता रहता है स्नेह भरा दीपक, जिसकी ज्योति में दाह होता है।

सुन्दर शून्य की उस नीरव छाया में तरु के तने से कमर लगाये कलाकार कुछ लिखता हुआ छाया को देखने लगा।

छाया के उस मौन वातावरण में तरु के नीचे भी एक और छाया थी। और उस छाया में भी कलाकार की छाया छाई हुई थी। कलाकार के ऊपर पत्ते थे। पत्तों के ऊपर चाँदनी, चाँदनी के ऊपर चाँद-तारे, चाँद-तारों के ऊपर नीलाकाश, और उससे भी ऊपर शून्य, तथा शून्य से भी परे न जाने कितना विस्तार था!

कलाकार की धड़कन मचली। उसने करुणा की प्रतिमा एक सुन्दरी से हृदय जोड़ा, आँखें मिलते ही वह उसे पाने के लिए छटपटाने लगा। प्रलय-हुँकारी, पत्थर बरसे पर उसकी दृष्टि निर्निमेष ही रही।

व्यवधान भी पथ पर अड़े हुए थे और कलाकार भी अडिग था। कलाकार ने तट पर से सागर की लहरों को गिनना छोड़ा। वह मृत्यु को ललकारकर सिन्धु की गरजती हुई लहरों में कूद पड़ा। कूदते ही उसके हृदय-बीचियों की छाया सागर की लहरों पर थी। उसकी अन्तराग्नि बड़वानल पर छा गई। उसका जीवन जलधि के जीवन पर लहराने लगा। उसकी छाया के कोष अथाह के रत्नों को खोजने लगे। न जाने कितने दुःखों के सिन्धु पार करने पर भी वह प्यार के पल न पा सका, तब वह विरह की आग में आँखों के आँसू बरसाता हुआ गा उठा। उसकी गति समस्त कल्पनाओं की अनुभूतियों में चमत्कृत हुई। दृश्य-लोक के प्रत्येक कम्पन के साथ उसका हृदय जा मिला। उसका प्रेम प्रकृति के हृदय में नाचने लगा। अपने प्रेम का अमूल्य कोष लिए हुए वह सम्पूर्ण जगत खोजने को आकुल हुआ। उसके हृदय में समर्पण की चाह मचली, अधरों पर गीत और आँखों के आगे रीझ खीज के स्पन्दन आदि व्याकुलता में भूला सा वह शेष प्रकृति में परिभ्रमण करने लगा।

बस जब कवि खोया-खोया-सा अपनी आन्तरिक छाया प्रकृति स्पन्दनों में अङ्कित करता है तभी उसकी कविता छायावादी कहलाती है। जब उसकी भावनाएँ दृश्य लोक की रमणीयता में झलकती हैं तभी वे छायावादी कहलाने लगती हैं। जब वह शेष जगत में अपनी हृदयगत अनुभूतियों को खोजता हुआ चित्र खींचता है तभी कविता का छायावादी रूप हमारे सामने आता है। जब अदृश्य भावुकता की छाया स्वर के सहारे ईश्वर की सत्ता में झलकती है तभी छायावादी धारा झिलमिलाती हुई निनादित होती है। जब परमात्मा की सत्ता आत्मा की सत्ता में तादात्म्य हो साकार दिखाई देती है तभी छाया की आकृति उदित होती है। भावुकता से विह्वल स्वर में घुलकर निकली हुई भावनाएँ आत्मीयता खोजने में खो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती हैं, उन अनुभूतियों की छाया शेष दृश्यलोक की कम्पनों में स्पन्दित होती हैं। साहित्य में यही छाया छायावादी रचना के नाम से अभिहित है।

स्थूल सृष्टि में प्रत्येक वस्तु की छाया होती है। इसलिये हम इस मर्त्यलोक को छायालोक भी कह सकते हैं। यहाँ दीखनेवाली कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसकी छाया न पड़ती हो। शरीर की छाया होती है, दीवार की छाया देखते हैं। पेड़ की छाया में बैठते हैं। क्या इस छायालोक में कोई ऐसा कण है जो प्रतिबिम्बात्मक नहीं।

ठीक इसी प्रकार कवि के हृदय की छाया हर ओर पड़ती है। फूल पर वह छाया डालता है पत्तों पर वह छाया छोड़ता है, बरसात में उसकी छाया बोलती है, पतझड़ में उसकी छाया छटपटाती है, बिजली में उसकी छाया काँपती है, मेघों में उसकी छाया मचलती है, और उससे भी परे जहाँ-जहाँ उसका हृदय जाता है वहाँ वहाँ छाया छायी रहती है। अर्थात् अनुभूतियों की प्रकृत्यात्मक अभिव्यञ्जना ही छाया वादी रचना है।

यही वह रचना होती है जो सुन्दर की छाया प्रकृति के सौन्दर्य में झलकाती है। यही वह यथार्थ सत्य है जो जड़ में चेतना भरता है। यही वह अभिव्यक्ति है जो कल्पना के पङ्खों पर उड़ती हुई छायात्मक दर्शन देती है। यही वह प्राणों की छाया है जो दृश्यलोक पर बिखरती है और रूप बनकर निखरती है।

कवि अनुभूतियों को जिस स्थिति में होता है हृदय की छाया का वही रूप लाक्षणिक सौन्दर्य में झलकता है; रीझ-खीज, आनन्द-उत्साह, वात्सल्य-करुणा आदि मानसिक वृत्तियों की छाया प्रकृति की किसी भी वस्तु पर अपना रूप ले लेती है जैसे बसन्त ऋतु में सरसों के खिले हुए फूलों को देखकर कोई कहे 'आज प्रकृति में फूल खिले हैं, किस पीड़ा से पीले'—तो मधु ऋतु के इस मनोहर मूर्त स्वरूप में भी हम कवि के हृदय की टीस देखने लगते हैं। हृदयगत भावों की यही छाया बसन्ती फूलों में पीड़ा की साकार तस्वीर सी दीखती है।

शेष-जगत में भाव-जगत का यही हृदय काव्य में छायावाद का स्वरूप है। मनोवृत्तियों की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ प्रकृति के स्पन्दनों में मुखरित होती हैं। संयोग की तरङ्गों में उन्माद की छाया स्वर-लहरी की तान सङ्गीत के सुर में भरती है। अर्थात् जब चलता-चलता कवि अपनी उपासना के फलस्वरूप हृदय की चाह को पकड़ संयोग की वीणा बजाता है तो वह अपने प्रेम की अभिव्यक्ति प्रेयसि के सौन्दर्य की छाया लिये हुए शेष संसार के कम्पनों में करता है। इन चित्रों को कला एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ छायावादी कहने लगते हैं।

पर कवि की यह साधना छाया-रूप होते हुए भी अमृत है। क्योंकि यह छाया पार्थिव की नहीं सूक्ष्म की होती है। साकार उपासना की भक्ति भरी रचनाएँ भी इसी तत्व के अन्तर्गत आती हैं क्योंकि अनुभूति एवं भावनायें सतत होती हैं। नश्वर रूप पर मचलती हुई चाहें भी उस अनन्त के अन्दर व्याप्त छाया से ही प्रेम करती हैं। उस विराट की छाया ही तो आँखों के विषय में सौन्दर्य में छिपी हुई है।

इस प्रकार कवि के हृदय की छाया उस विराट की छाया में तादात्म्य कर लेती है। और काव्य के स्वर में गूँजता हुआ वही तादात्म्य छायावादी काव्य है। मेरी पहुँच के अनुसार तो यथार्थ की सीधी अभिव्यक्तियों को छोड़ कल्पना की उड़ान के साथ कवि का जो तादात्म्य प्रकृति से होता है वही छायावादी है।

छायावाद में हृदय की स्पष्ट छाया शेष प्रकृति में दिखायी देती है पर उस छाया में नश्वरता नहीं होती, और न वह मूक ही होती है, वह सदा बोलती है, वह स्वयं बहुत स्पष्ट है पर अस्पष्ट उलझन में वह सुलझती नहीं, सुलझती तब है जब उसी अनुभूति में अन्तर्मुखी चातक घुल जाये।

प्रेमी कभी नश्वर नहीं होता नश्वर तृप्ति होती है। वासना की तृप्ति एक पृथक वस्तु है और प्रेम की पृथक। प्रेम में प्यास होती है और वासना में भंगुर तृप्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः क्योंकि कवि प्रेम का पुजारी होता है उसकी तृप्ति नहीं होती वह अपनी हृदय की उपास्य वस्तु के शृङ्गारार्थ शेष सारे लोकों को खोजता है। जहाँ तक पहुँचकर वह अपने हृदय की स्पष्ट छाया डाल पाता है, वहाँ तक उसकी रचना छायावादी रहती है। वहाँ तक की उसकी भावनाएँ शाश्वत और स्पष्ट होती हैं। वह जो कुछ अनुभव करता है उसे कह पाता है पर उसके कहने में एक अनश्वर छायावादी चित्र होता है।

प्रकृति के व्यापारों एवं व्यवहारों में भावुक की अनुभूतियों की छाया रहती है। इस छाया को रस परिपूर्णता की अवस्था में हम काव्य की आत्मा भी कह सकते हैं। पार्थिव शरीर के नष्ट होने पर भी जैसे आत्मा नष्ट नहीं होती ऐसे ही कवि की दीर्घ यात्रा होने पर भी उसके हृदय की छाया नाश को प्राप्त नहीं होती। कारण कि इसके हृदय की छाया शेष सबके हृदयों की छाया के रूपक से प्रकृति के स्पन्दनों में झलकती रहती है।

छायावाद में कवि द्वैतवादी प्रेम की अमूल्य निधि लिये हुए अपने हृदय का तादात्म्य उस कलाकार की कम्पनों में खोजता हुआ गाता है। प्रकृति की हर कम्पन के साथ उसका हृदय मिला रहता है। तथा प्रकृति और हृदय के संयोग से जो ध्वनि बांसुरी से निकलती है वही तो छायावादी रचना है।

वैसे तो संसार का प्रत्येक प्राणी स्वभाव से ही कवि है। हरएक के हृदय में भावनाएँ उठती हैं, प्रत्येक को अपने हृदय का प्रतिबिम्ब शेष जगत में दीखता है। कवि न होने पर भी वियोगी को चाँदनी जलाती है। दुखी को सारा संसार दुखी दिखायी देता है, सुखी को रुदन के रङ्ग-मञ्च पर भी रङ्गीनियाँ सूझती हैं। अर्थात् जैसी जिसकी मानसिक स्थिति होती है वह प्रकृति को वैसी ही देखता है। पर साधारण प्राणी में अभिव्यंजक शक्ति नहीं होती।

भावनाएँ तो होती हैं पर प्रत्येक अपनी भावनाओं से दूसरे को गति नहीं दे सकता। उसकी अनुभूति अपने ही हृदय की परिधि में रहती है। किन्तु कवि के हृदय की अनुभूति प्रत्येक के हृदय की छाया एवं आत्मैक्य रूप से झिलमिलाती है। वह विद्युत को, मेघों को, वर्षा को, ज्योत्स्ना को, पतझड़ को, वसन्त को, वीचियों को, एक अद्भुत उड़ान के साथ देखता है। प्रकृति का प्रत्येक कम्पन उसके हृदय में हिलोर लेता है अधरों पर फड़कता है, आँखों में नाचता है, और उसमें भावुक की अनुभूति का स्वर गूंजता है, भावना का चित्र झिलमिलाता है तथा इस सुरभित गूंज पर हम सब झूमते रहते हैं।

यह है छायावाद का वह स्वरूप जो अन्तश्चेतना बताती है। यह है वह पहेली जो तरह तरह से सुलझाई जा रही है। यह है वह स्पष्टता जो साहित्य में अस्पष्ट सी उलझन है। सीधे और सरलता से कहना चाहो तो ऐसे कहदो कि जैसे छाता लगाने पर उसकी छाया हमारे ऊपर पड़ती है वैसे ही कवि के हृदय की छाया शेष जगत पर पड़ती है जिसे हम छायावाद कहते हैं।

कुसुमों के सुरभित कानन में पेड़ों की छाया की मधुरता कितनी रसास्वादक होती है। छाया शब्द में ही शान्ति है। भाव यह है कि आत्मा की छाया शान्ति में प्रतिबिम्बित होने लगती है और इस छाया में प्राणी प्रेम से विभोर रहता है।

कविता का प्रयोजन तो लोक-रञ्जन की अपेक्षा हृदय-रञ्जन ही अधिक है। कविता कवि के प्रेम आँसुओं से सिंच हृदय से फूट कर निकलती है। मेरे अनुभव में यही गङ्गा कविता के स्वरूप में आयी है। इसी प्रेम की छाया आत्मा और परमात्मा पर पड़ती है, या आत्मा की छाया परमात्मा पर और परमात्मा की छाया आत्मा पर। अर्थात् जीवात्मा के हृदय का वह प्रकाशन जो अनन्त शान्ति से अपना छायात्मक सम्बन्ध जोड़ता है छायावाद ही कहलायेगा। प्रेम के इस पृथक स्वरूप में भी द्वैत भाव नहीं रहता। ईश्वर के सभी गुणों की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है। प्रकृति और जीवात्मा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तादात्म्य भाव छायावाद है। हृदय के अनन्त प्रेम का आभास शान्त और सुन्दर प्रकृति में होने लगता है। सीमित परिधि में असीमित की छाया पड़ती है। हृदय-वाणी की असीमित छाया जब कवि प्रकृति के अङ्गों में चित्रित करता है तो वह चित्रण छायावादी कहलाने लगता है।

छायावादी कविता स्वरूप के दर्शन कराती है और तादात्म्य पंथ का निर्देश भी करती है। वह 'शान्त' में लीन रहती है। छायावादी छाया रूप से दोनों लोकों में विहार करता है, वह नक्षत्र-लोक से परे भी पहुँचता है, और गगन की रंग विरंगी सुन्दरता में भी झलकता है। वह अलौकिक प्रकृति में घुला रहता है तथा लौकिक प्रकृति में विचरण करता है। यह भी नहीं भूलना चाहिये कि छायावादी कविता बच्चों का खेल नहीं है इसकी भावुकता में ताशों का घर बुल्ला नहीं जो हवा में हो बिखर जाये। छायावादी रचना वही कही जायेगी जिसमें गहरी गम्भीरता हो। चिड़ियों की चीं चीं सी चिल्लाहट छायावादी कविता नहीं।

छायावाद में रहस्यमयी स्मृति और प्रेम की अमूल्य निधि का होना ही सौन्दर्य है। छायावादी की तड़प विद्युत की कौंध की तरह पलभर में दमक कर छिपती नहीं। उसकी तड़प की छाया छायी रहती है, उसमें अमिट स्थिरता की निस्पन्दित वर्तिका दीपित होती है। वह ज्योति किसी आवरण से ढकती नहीं। छायावाद का सौन्दर्य कभी बूढ़ा नहीं होता। छायावाद का 'सत्यशिव' छिपाये नहीं छिपता। उसकी छाया में प्रकाश होता है।

माना कि परमात्मा की सत्ता सर्वोपरि है पर आत्मा की सत्ता का अस्तित्व भी संसार में है। अतः आत्मा का साक्षात्कार शेष जगत में गम्भीरता से निनादित होता रहे यही कलात्मक काव्य की विशेषता है।

अनुभव, व्याख्या, एवं मीमांसा से मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि छायावाद एक सूक्ष्म शैली का नाम है। अनुभूति के कलात्मक चित्रों को ही छायावाद कहना चाहिये। काव्य की यह शैली आदि से ही पायी जाती है। सस्ती और स्पष्ट भावुकता से परे हृदय मिलाकर जो कल्पना कवि करता है वही छायावादी कविता हो जाती है। यह तो मैं मानता हूँ कि छायावादी शैली बहुत बारीक है। काव्य का निखरा हुआ स्वरूप इसी शैली में दीखता है। यही शैली काव्य की सुन्दरता भी है। पर मैं यह कदापि नहीं कह सकता कि यह शैली पश्चिम से आयी है। यह शैली तो कवि में स्वाभाविक है। वह कविता ही नहीं जिस पर शेष स्पन्दनों की छाया नहीं। वह कवि ही नहीं जो प्रकृति में घुल नहीं जाता।

कवि ही क्या प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से ही छायावादी है। किन्तु क्योंकि कवि का हृदय तादात्म्य प्राप्त कर प्रकृति में झलकता है वह सबके हृदयों का प्रतिबिम्ब है। छायावाद काव्य में कोई आज या कल की वस्तु नहीं जब से काव्य है तभी से छाया है। और जब से छाया है तभी से काव्य। कोई छाया का आनन्द लेता है, कोई छाया बनकर छाता है। यही छायावाद क्रम तो छायावादी साहित्य है।

भारतीय साहित्य की परम्परा 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' रही है। और यह भी सिद्ध है कि भारतीय काव्य-साहित्य की तुलना में कहीं का काव्य-साहित्य नहीं बैठता। आदि सृष्टि के अनुसार आदि काव्य का आविर्भाव भी यहीं से हुआ। यहाँ के काव्य की सुन्दरता एवं सूक्ष्मता की व्यापकता बहुत कोमल है। अनुभूतियों की गहरायी और उसका शेष जगत से तादात्म्य रूप कल्पना की तरह ऊँचा है। इसे देखने के लिए दृष्टि जितनी ऊँची उठती है वह उतना ही ऊँचा उड़ता चला जाता है, उसके काव्य की ध्वनि प्रकृति में साकार मानसिक प्रवृत्तियों सी मुखरित हो। है। यह कहना घोर अनीति है कि छायावाद पश्चिम की कोई बड़ी भारी देन है। कुछ का कहना है कि छायावाद अंग्रेजी से बंगला में और बंगला से हिन्दी में आया पर मैं कहता हूँ कि यह कवि की स्वाभाविक शैली है; एवं संस्कृत कवियों में वह सर्वाधिक गम्भी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रता, सुन्दरता, सूक्ष्मता और पूर्णता से मुखर हुई है। छायावादी की विशेषता यह है कि वह जड़ में भी चेतना लादे।

इस प्रकार की प्रकृत्यात्मक चेतना संस्कृत कवि 'कालिदास' में महान् है। यह बात जर्मन के महा-कवि 'गेटे' ने भी गायी है, उनके शकुन्तला नाटक के बारे में। तरुण बसन्त के फूल और परिणित बसन्त के फल साथ ही स्वर्ग और मर्त्य को शकुन्तला नाटक में देख हम काव्य की सच्ची परिभाषा पर आ जाते हैं। और यही छायावाद की विशेषता है। उनके शकुन्तला नाटक को प्रकृति कवि के हृदय की छाया ही नहीं अपितु शकुन्तला की प्रिया सखी बनकर शृङ्गार करती है। आत्मा का तादात्म्य तो यहाँ प्रकृति वही हृदय होकर बोलने लगती है। प्रत्यक्ष के लिए ये पंक्तियां देखिये—

क्षौमं केनचिदिन्दु पाण्डु-
तरुणा मांगल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोग सुलभो
लाक्षारसः केनचित।'*
'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति
जलं युष्मास्वपीतेषु या।'†

यह याद दिलाकर 'कण्व' ने जब कहा—

'सेयंयाति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्'‡

तब वे बनवास के बन्धु तरु शकुन्तला को आज्ञा देते हैं—

अनुमत गमना शकुन्तला..... ।+

यहाँ छायावाद भी बोल उठता है। यही नहीं 'मेघदूत' तो सारा ही बोलता हुआ छायावाद पत्तों की बजती हुई स्वागत बाँसुरी एवं वायु व्यजनादि अनेक चित्र साक्षात हैं। 'कालिदास' ही क्या समस्त संस्कृत काव्य ही इस सुन्दरता से सज्जित है।

ऐतिहासिक धारा में सुन्दरता की, ये अजस्र लहरें बराबर दिखाई देती हैं। प्रेममार्गी सूफी शाखा और भक्ति काव्य में यह वीणा बहुत मधुर बजी है। तुलसी की सर्वाङ्गीणता ने तो काव्य की परिस्थिति धारा और वाद का कोई अङ्ग छोड़ा ही नहीं। ब्रज भाषा की स्वर-लहरी में तो यह स्वर जवानी सा थिरकता है, रूप सा मचलता है, एवं लजा सा लालिमा लिये हुए है।

पर आज की खड़ी बोली के काव्य में इस गम्भीर रूप हम जयशङ्करप्रसाद में पाते हैं। उनकी 'कामायनी' में केवल आनन्द और रहस्य को छोड़ कर शेष में छायावाद की चेतनामय अभिव्यक्ति है वे चिन्ता, काम, सौन्दर्य, श्रद्धा, कर्म, इड़ा आदि मानसिक स्थितियों की छाया शेष ब्रह्माण्ड में खेलती हैं। अन्तर्जगत तथा बहिर्जगत की छाया तादात्म्य रूप से खेलती हुई आकर्षण करती है। क्या कामायनी काव्य का छायावादी सौन्दर्य अनोखा नहीं? सब मर्मज्ञ ऐसा कह सकते हैं?

हिन्दीकाव्य की इस नवीन धारा में यह प्रकृति मधुर स्वर में गूंजता हुआ गा रहा है। करुण जीवन, सौन्दर्य, शृङ्गारादि की छाया प्रकृति में बोलती है। मैं तो समझता हूँ कि जीवन और प्रकृति के अन्तर निकालने के लिये यहाँ विज्ञान को अवतरित होना पड़ेगा। समालोचना के बुद्धिवादी स्वर में छायावाद का रहस्य उलझाना प्रसाद की 'उलझी अलकें' नहीं 'तर्क जाल', जैसी उक्ति है। छायावाद तो जीवन की कला है। इसका स्वर कला के चित्रों में ही सुनाई होता है।

---

* किसी वृक्ष ने शुभ्र मांगलिक वस्त्र दे दिया, किसी ने पैर में लगाने को महावर दे दी।

† हे तपोवन के वृक्षो! जो पहले तुम्हें पिलाये बिना स्वयं जल नहीं पीती थी ....

‡ वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब इसे प्रेम से विदा तो दो।

+ कोकिल ने कूकने की आवाज से शकुन्तला को जाने की अनुमति दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो सत्य है कि छायावादी काव्य ही सुन्दर काव्य है पर यह उन्हीं के लिये सुगम है जो गहरे में उतर सकें। जिन्हें अनुभूतियों पर मधुकर की तरह झूमना एवं परिभ्रमण करना भाता है।

इस लोक में जो कुछ हम देखते हैं वह सब शून्य की छाया ही तो है। इसमें हम स्वयं भी छाया रूप हैं। वास्तव में आत्मा और परमात्मा एक ही रूप है पानी का बुलबुला पानी के ऊपर दिखाई देता है, यही परमात्मा पर आत्मा की छाया है और बुलबुले में जो चेतना है वह परमात्मा की छाया आत्मा में। सूर्य की छाया ज्योतिर्मय है वह सबको प्रकाश देती है पर उसकी छाया में उसके हृदय का दाह भी होता है। दुनियां दाह नहीं देखती। क्षणिक रूप से चांद तारे रातादि की छाया में छाया-पुरुष अभिनय करता है तथा यवनिकायें उठती और गिरती रहती हैं। छाया चित्रों की तरह हम चित्र देखते हैं तथा फिर अन्त में छाया विराट में लीन हो जाती है क्योंकि जो कुछ भी साकार देखते हैं वह सब उस विराट की छाया ही है। वास्तव में सब एक ही तत्व है। गीता में कहा है....

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्चं सदसच्चाहमर्जुन॥

अर्थ यह कि उसी विराट की छाया के चित्र छाया-पुरुष कवि तादात्म्य भाव से चित्रित कर छाया रूप में शाश्वत रहता है। यही छाया कवि की कला है और यही कला वह तूलिका है जो अनन्त कलाकार कवि की प्रकृति में रचता है। कलात्मक कृति के ये छायाचित्र उनींदे नेत्रों के सदृश्य एक विचित्र झूले पर झूलते हुए गाते और रिझाते हैं।

जीवन की चेतना काव्य है, और काव्य की अन्तश्चेतना अनुभूति तथा अनुभूति में प्रकृति की चेतना छाया।

पर प्रकृति का घूंघट नहीं खुलता।

आलोचना सम्बन्धी साहित्य

विशिष्ट कवियों की आलोचना के लिये

सुमित्रानन्दन पन्त—डाक्टर नगेन्द्र इस पुस्तक में छायावाद के स्वरूप साथ उसके टेकनीक का विवेचन और पन्तजी की नवीनतम कृतियों की आलोचना की है। मूल्य २॥)

साकेत एक अध्ययन—डा० नगेन्द्र मूल्य २॥)

हिन्दी काव्य विमर्श—ले० गुलाबराय एम० ए०। इस पुस्तक में प्राचीन और नवीन कवियों की आलोचनाओं के साथ विभिन्न युगों की साहित्यिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस में वैदेही वनवास, उद्धवशतक आदि पुस्तकों की भी आलोचना है। ३॥)

रस अलङ्कार दोष और छन्दों के लिए साहित्य और समीक्षा—ले० श्री गुलाबराय एम० ए०। मूल्य ३॥)

परीक्षोपयोगी विभिन्न लेखों के लिए परीक्षाथी-प्रबोध—द्वितीय संस्करण मूल्य ३)। साहित्य-सन्देश के ग्राहकों के लिए पौने मूल्य में।

साहित्य के इतिहास के लिए हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास। ले०—श्री गुलाबराय एम० ए० मूल्य ३)

जो लोग आचार्य शुक्लजी का इतिहास नहीं खरीद सकते हैं वे इसे अवश्य पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंशा की—'रानी केतकी की कहानी'

श्री अनिलकुमार, 'साहित्य-रत्न'

हिन्दी गद्य का वह आरम्भ-काल था। आरम्भ की रचनाओं में न तो भाषा की वलिष्ठता मिल सकती है। न लेखकों में व्यञ्जना-शक्ति की प्रौढ़ता प्रारम्भिक गद्य में किसी गम्भीर विषय की चर्चा भी क्या सम्भव है। वाल्यावस्था में जैसे कहानी से प्रेम होता है, वैसे ही गद्य भी वाल्यावस्था में कहानी का आश्रय बहुधा लेती है। इस साधन से गद्य को प्रसार में सुविधा होती है। और अभिव्यक्ति शक्ति भी बढ़ती है। मुन्शी सदासुखलाल और इन्शा अल्लाखाँ ने भी हिन्दी-गद्य की नींव डालते हुए यही किया। एक 'कथा' का रूप लेकर आये और दूसरे ने 'कहानी' लिखी। एक ने 'सुखसागर' लिखकर धर्म सम्बन्धी उपदेशों द्वारा लोगों को आकृष्ट किया और दूसरे ने मनोरञ्जन के लिये एक 'कहानी' गढ़कर लोगों का मन बहलाया। मुन्शीजी ने अपना कार्य पण्डिताऊ पद्धति से आरम्भ किया और खाँ साहब ने चटपटी उछल-कूद द्वारा जिसमें शब्द-समुदाय के साथ ही वाक्य-संगठन भी उर्दू ढङ्ग का बन पड़ा है।

उद्भावना की दृष्टि से खाँ साहब का प्रयास नया था। उनकी रचना का प्राचीन आधार नहीं था अतः वह पूर्ण मौलिक थी। यहाँ पूर्ण मौलिकता से अभिप्राय यही होना चाहिए कि गद्य में इस प्रकार किसी लेखक ने पहले कहानी नहीं लिखी—कहानी मौलिक नहीं। क्योंकि वह लोक—प्रचलित था। प्रचलित लोक-कहानी को ही इंशा ने लिया था। कथा-निर्वाह क्रमबद्ध तथा घटनायें सङ्गठित हैं। भाषा में चमत्कार और वर्णन शैली में आकर्षण अच्छा पाया जाता है। शैली में चटक-मटक और गढन्त शब्दों का अतिरेक देखकर पढ़ते-पढ़ते बरबस हँसी आ जाती है। इसके अतिरिक्त गद्य में भी पद्य के समान तुक मिलाने की एक विचित्र धुन इस 'रानी केतकी की कहानी' में पाते हैं। ऐसी भाषा गूढ़ विषयों के प्रतिपादन में समर्थ नहीं हो सकती अतः उसमें 'धींगा-धींगी' खूब पाई जाती है। अबतक साहित्य-रचना पद्य में होती थी। अतः तुकबन्दी का लेखकों और पाठकों में बना हुआ था। इंशा ने भी अपनी कहानी में इस पूर्व संस्कार का परिचय दिया है। यथा—

"आपने मुझे सौ-सौ रूप से खोला और बहुत-सा टटोला, तब तो लाज छोड़ के हाथ जोड़ के मुँह फाड़ के घिघिया के यह लिखता हूँ—" पृष्ठ ६

"जब सूरज डूबा, मेरा जी बहुत ऊबा।" पृष्ठ १०

"यह कैसी चाहत जिसमें लोहू बरसने लगा और अच्छी बातों को जी तरसने लगा।" पृष्ठ ११""आदि

इनकी रचना में कहावतों का बड़ा परिष्कृत रूप मिलता है, जो उस समय की बोलचाल की भाषा का स्वरूप व्यक्त करता है। इनकी वाक्य योजना फारसी ढङ्ग की थी। जैसे—"सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ अपने बनाने वाले के सामने" में वाक्य का रूप ही उलटा है। प्रायः अंग्रेजी वाक्य-विन्यास की भाँति क्रिया, कर्ता के बाद तथा कर्म के पूर्व रखी गई है। सदल मिश्र ने अपने 'नासिकेतो-पाख्यान' में (जो इंशा की 'कहानी' से परवर्ती रचना है—) क्रिया को वाक्य के अंत में रखा है। जैसे—"सकल सिद्धि-दायक वो देवतन में नायक गणपति को प्रणाम करता हूँ।' क्रिया का इस प्रकार वाक्य के अन्त में प्रयुक्त होना समीचीन है। किन्तु सदल मिश्र ने भी क्रिया को सर्वत्र अन्त में नहीं प्रयुक्त किया। जैसे—"दूर ही से दण्डवत कर हाथ जोड़ लगी स्तुति करने।" पृष्ठ ५ और "वह बहुत प्रसन्न हो खोलकर लगी उसे सूँघने।" पृष्ठ ८ आदि""

इन्शा ने विषय के अनुकूल ही अपनी कहानी की भाषा चुनी थी। फड़कती हुई भाषा का बड़ा सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप उसने प्रस्तुत किया है। बीच-बीच में पद्य का प्रयोग पाया जाता है। तुक के जोड़ मिलाने की अपेक्षा अधिक चमत्कार इन पद्य-पंक्तियों में नहीं है। फिर भी खड़ी बोली पद्य के इतिहास का निर्माण-कालीन रूप हमें इन पंक्तियों में दिखाई देता है। महत्वपूर्ण घटनाओं अथवा अंशों का उल्लेख अनेक लेखकों द्वारा लेखक ने किया है। इनका गठन भी अंग्रेजी वाक्यों का-सा है। जैसे—"ठाट करना गोसाईं महेन्दर गिर का" "अच्छापन घाटों का", "आ पहुँचना कुँवर उदेभान का ब्याह के ठाट के साथ जुलहन की ड्योढ़ी पर" आदि ....।

'तथ्य' की दृष्टि से कहानी अनेक अस्वाभाविकताओं से युक्त है। चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ही लेखक ने सारी उछल-कूद की है। तिलस्मी और जादुई घटनाओं से वह स्वाभाविक और जीवन के निकट की नहीं रह जाती। रानी केतकी के विवाह के समय सोने-चाँदी और रत्नों की लूट 'सहस्र-रजनी' (Arabian nights) के ईरानी वैभव का दृश्य उपस्थित करती है। पर सहस्र रजनी के वर्णन अधिक कलित एवं प्रभाव अधिक भव्य है। रानी केतकी की भाषा अपनी प्रायोगिकता के कारण वर्णनों को हास्यास्पद बना डालती है। 'आतियाँ-जातियाँ' आदि प्रयोगों की भरमार परिष्कृति में बाधा पहुँचाती है। परन्तु इससे इन्शा की भाषा का मूल्य घट नहीं जाता। इन्शा का उद्देश्य ऐसी कहानी कहने का था कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले।' 'बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो।' 'हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।' पृष्ठ ५

'हिन्दवी छुट' से इन्शा का तात्पर्य 'हिन्दी मात्र' का ठेठ हिन्दी से था। रानी केतकी की कहानी की शब्दावली केवल ठेठ और तद्भव शब्दों से बनी है। क्योंकि 'बाहर की' अर्थात् अरबी-फारसी आदि विदेशी और 'गँवारी' अर्थात् ब्रज, अवधी, बुंदेलखण्डी आदि प्रादेशिक भाषा के शब्दों का मेल अपनी 'बहार' में न करने की बात वह स्वयम् घोषित कर चुका है। इसी प्रकार 'भाखापन' अर्थात् संस्कृत की तत्सम शब्दावली से युक्त भाषा को भी उसने अपनी रचना के लिए वर्जित माना था। इन सबसे बचाने पर भी भाषा का 'हिंदवीपन' भी सुरक्षित रहे इसके लिए इन्शा विशेष चिन्तित मालूम पड़ते हैं। (यथा उद्धृत वाक्य)

इस प्रकार केवल परिष्कृत, अन्य प्रभावों से मुक्त भाषा का प्रयोग करना इंशा का लक्ष्य था। इस प्रयोग में अनेक कठिनाइयाँ एवं पूर्व निर्देशन का सर्वथा अभाव होने पर भी 'रानी केतकी' के निर्माण से वह बहुत दूर तक सफल रहा। यही तो मौलिक निर्माण की दृष्टि से हिन्दी गद्य के निर्माताओं में इंशा का स्थान सर्वोच्च है।

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी के चार (इंशाअल्लाखाँ, सदासुखलाल, लल्लूलाल, सदल मिश्र) गद्य लेखक हुए। मौलिकता की दृष्टि से इंशा सबसे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं, यद्यपि परिनिर्णय की दृष्टि से उनका स्थान सदासुखलाल के बाद का है।

इंशा ने अपने समय से आगे के शब्दों का प्रयोग कर (अर्थात् ऐसे शब्दों का प्रयोग कर जो भविष्य में अधिक परिमाण में अपनाये गये) सृजन के क्षेत्र में अपनी भूमिका महत् सिद्ध की। उसने अपनी भाषा के 'वर्तमान' में खड़ी बोली का भविष्य अङ्कित कर रखा था; इसीलिए हिन्दी-गद्य के इतिहास में इंशाअल्लाखाँ और उनकी 'रानी केतकी की कहानी' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपा और गौतम के दार्शनिक सिद्धांतों का विश्लेषण

श्रीकृष्णानन्दन प्रसाद

'यशोधरा' गुप्तजी-प्रदत्त एक बौद्ध-साहित्य है जिसके अन्तर्गत बौद्ध-सिद्धान्तों का बहुत कुछ निरूपण हुआ है। स्वयं 'बुद्ध' इसके मुख्य पात्र हैं। अतः यशोधरा की पृष्ठ-भूमि में बौद्ध-विचार-धारा ही हो सकती है। इस धारा के अन्तर्गत 'निराशावाद' की और जगत् की निस्सारता की प्रमुखता है। किन्तु हमारे कवि वैष्णव भावनाओं के पूरे पोषक हैं जिसमें 'आशावाद' को मुख्य स्थान प्राप्त है। उनके प्रत्येक साहित्य में हम वैष्णव भावना का प्रतिपादन देखते हैं—अतः 'यशोधरा' में दो विरोधी भाव-धाराओं का संघर्ष प्रस्तुत हो गया है। एक ओर बुद्ध के निराशा-वाद का प्रवाह फूटा है, दूसरी ओर वैष्णव-भावना का प्रतिनिधित्व करती हुई यशोधरा के आशावाद की धारा भी उससे होड़ लेती हुई चल रही है। यशोधरा के सिद्धान्त बुद्ध के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए आगे बढ़ते हैं। इससे यह विदित होता है कि 'यशोधरा' में वैष्णव भावना की प्रमुखता स्थापित करना ही—गुप्तजी का उद्देश्य है, कुछ उदाहरणों से ही इस तथ्य का स्पष्टीकरण सम्भव है। देखिए, किस प्रकार यशोधरा समय-समय पर अपने सिद्धान्तों का निरूपण करती हुई आगे बढ़ती है—

विचारशील गौतम की अन्तर्भेदनी दृष्टि ने विश्व में एक घूमता हुआ चक्र देखा। यह माया का क्रूर चक्र था जिससे अनुशासित हो मनुष्य बार-बार जन्म लेता है और बार-बार मृत्यु की गोद में सो जाता है। मानव प्रत्येक बार नया परिधान पहन कर, नया रूप बदल कर आता है और चला जाता है। अतः यह दुःखदायी है, दयनीय है। गौतम ने भी इसका अनुभव किया। किन्तु उनका बाल-सुलभ हृदय जब इसका पूरा रहस्य न जान सका, तब वह प्रश्नात्मक रूप में बोल उठा—

घूम रहा है—कैसा चक्र?
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र

गोपा को इसमें कोई तथ्य दीख न पड़ा। उसने सोचा कि मनुष्य बार-बार आता है और चला जाता है—फिर भी वास्तव में उसकी आत्मा तो एक-सी रहती है। केवल उसका बाह्य-रूप ही नित्य नवीन रहता है। मानव का शरीर ही नाशवान है। उसकी आत्मा तो अक्षय है। उसका नाश कभी नहीं होता। उसका परिवर्तन नहीं होता। इसी से गौतम के सिद्धान्त की उपेक्षा करती हुई वह अपनी सखी से कहती है।

आली चक्र कहाँ चलता है?
सुना गया भूतल ही चलता,
भानु अचल जलता है।

मनुष्य परिवर्तनशील है। जो आज बालक है वह कल युवा बनेगा, और जो युवा है—वह वृद्ध होगा। मानव-जीवन का यह क्रमिक विकास (या विनाश) है। गौतम ने जब किसी वृद्ध को देखा और उसके कष्टों का मानसिक अनुभव किया तो उनकी आत्मा काँप उठी। वे भीतर ही भीतर रो उठे। उन्हें अपनी गोपा के भविष्य की चिन्ता होने लगी। यह सोचकर कि उनकी गोपा भी एक दिन वृद्धा हो जायगी। उसके कुसुम से खिले कोमल-कपोल पर झुर्रियाँ पड़ जायगी। वे तिल-मिला उठे। उनकी व्यथित हुई आत्मा ने अपनी व्यथा को यों प्रकट किया—

देखी मैंने आज जरा
हो जावेगी क्या ऐसी ही, मेरी यशोधरा

पर गोपा को इसकी चिन्ता नहीं। जरा उसे दुःखदायी-प्रतीत नहीं होती। वह तो उसमें त्याग और संयम का रूप देखती है। उसे तो वह निर्मम नहीं लगती। मृत्यु जीवन में नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—उसे नया रूप देती है तथा उसके मलों को धो डालती है। इसीसे गोपा कहती है—

वह जरा एक विश्रान्ति, जहाँ संयम है
नव-जीवन दाता मरण, कहाँ निर्मम हैं?

मानव जीवन में वृद्धावस्था के बाद मृत्यु की बारी आती है। यह विनाश-काल है। इससे कोई परे नहीं, कोई वञ्चित नहीं। मानव ही नहीं, संसार के सभी पदार्थ—क्या जड़ क्या चेतन—जन्म-मरण के बन्धन से बँधे हैं। वसन्त के पश्चात् पतझड़ का आना अनिवार्य है। इसका अपवाद हो नहीं सकता। जो आम आज फले हैं—कल उन्हें सड़ना भी है। उनका विनाश भी इससे गौतम कहते हैं—

मैं सूँघ चुका वे फुल्ल फूल
झड़ने को हैं सब अहित भूल
भव देख चुका हूँ मैं समूल
सड़ने को हैं वे अखिल आम

पर गोपा का आशावादी हृदय यह कैसे माने कि जगत् में केवल दुःख ही दुःख है। सुख का कहीं नाम नहीं। उसमें कुछ सार नहीं। क्या काँटे हमें सदा चूभते हैं? और क्या सभी आम सड़ ही जाते हैं?

माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते हैं
जाना, ये दाड़िम आम सभी सड़ते हैं
पर क्या यों ही ये कभी टूट पड़ते हैं?
या काँटे ही हमें चिर-काल गड़ते हैं?

गौतम की दृष्टि में मानव क्षणभंगुर है, नाशवान है। अतः उसे दुःख से भी सामना करना पड़ता है। व्याधियाँ भी उसे सताती हैं—जिसके कारण उसका जीवन सुखी नहीं रह पाता। उसे वियोग को भी अपनाना पड़ता है। अतः मानव उन्हें रोगों से घिरा दीख पड़ता है जिससे उन्हें दुःख है—

अध्ययन रोग हैं प्रकट भोग
संयोग मात्र भावी वियोग

पर गोपा इन रोगों को मनुष्यकृत समझती हैं। ये कोई विधि-विधान नहीं। मनुष्य यदि अपने कर्त्तव्य-पथ पर, व्रत और संयम पर चले तो उसे इन छुटकारा मिल सकता है। नहीं इनका पालन न करने से ही उसे दुःख भोगना पड़ता है। अन्यथा दुःख का कहीं स्थित्व ही नहीं। मनुष्य सदा निरोग और स्वस्थ रहे यदि—

यदि हममें अपना नियम और शम-दम है
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है

गौतम को मृत्यु सो दुःख नहीं है वरन् बार-बार के मरण से क्षोभ है। एक बार मरण किसी जन्म के साथ अनिवार्य है; किन्तु कष्ट तो तब होता है जब उसे बार-बार मृत्यु की गोद में सोना पड़ता है आवगमन के चक्कर में घूमना पड़ता है। इसी से उन्हें बहुत क्षोभ है—

एक बार तो किसी जन्म के
साथ मरण अनिवार्य हाय
बार-बार धिक्कार किन्तु यदि
रहे मृत्यु का शेष दाय

किन्तु जैसा कि अभी लिख आए हैं, गोपा की मृत्यु कभी दुःखदायी नहीं। वह तो नव जीवन दान देने वाला है। नव-विधान करने वाला है। बार-बार समीर के झोंके जो आ आकर चले जाते हैं, वे नव गन्ध लाने जाते हैं। बादल जो बार-बार लौट जाते हैं तो वे प्रत्येक बार जल लाने जाते हैं, जिससे जगत का अधिक कल्याण हो। इसी से गोपा कहती है—

झोंके समीर के झूम-झूम जाते हैं
जा-जा कर नीरद नया नीर लाते हैं
तो क्यों जा-जाकर लौट न मैं भी आऊँ
× × × ×

संसार हेतु शतबार मरें हम

गौतम संसार के त्रिविध ताप को मिटाना चाहते हैं और वह भी अपने पौरुष के बल से। जब तक वे अपने पौरुष पर खड़े न होंगे—जब-तक मायारूपी सागर को पार करने के लिए मुक्तिरूपी सेतु प्राप्त न होगा—तब तक दुःख का मरण सम्भव नहीं। अतः वे इसके लिए तैयार होते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं त्रिविध-दुःख-विनिवृति हेतु
बाँधूँ अपना पुरुषार्थ सेतु
सर्वत्र उड़े कल्याण केतु

किन्तु गोपा की दृष्टि में भी इन दुःखों का कोई मूल्य है। वे व्यर्थ नहीं है। यदि दुःख न हो तो फिर सुख का मूल्य ही क्या रहेगा। एक के बिना दूसरा नीरस है। जीवन के वे दो पहलू हैं जिनसे होकर जीवन-धारा नित्य बहा करती है। इसी तथ्य को 'गुञ्जन' में कवि पन्त ने भी कहा है—

सुख-दुःख के निशा-दिवा में
सोता जगता जग जीवन

× × ×

सुख-दुःख के मधुर मिलन से
जीवन हो परिपूर्ण

यशोधरा ने भी यही कहा—

होता सुख का क्या मूल्य जो न दुख रहता!
प्रिय हृदय सदय हो तपा-ताप क्यों सहता!

गौतम की तरह गोपा को मृत्यु मान्य नहीं! वह उनकी तरह जगत् से मुख मोड़ना नहीं चाहती। गौतम मन जगत् के झंझटों से मुख मोड़ चल दिया जङ्गल की ओर। किन्तु गोपा ऐसा करना उचित नहीं समझती। वह तो जनक की तरह जगत के बीच रह कर ही मुक्ति को प्राप्ति करेगी। इससे दूर भागना तो शायद उसकी दृष्टि में कायरता है। सच्ची मुक्ति तो तो 'विश्व-वेदना' में पलने से ही मिल सकती है 'पन्त' ने भी एक स्थल पर ऐसा ही कहा है—

"तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन"

गोपा भी अपने बन्धनों को तोड़ना नहीं चाहती वरन् वह उससे और सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। इन भावनाओं की अभिव्यक्ति उसने इन पंक्तियों में की है—

निज बन्धन को सम्बन्ध सतत बनाऊँ
कह मुक्ति भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

गौतम भोग-विलास को त्याग कर चल दिये थे। उन्होंने नारी को मुक्ति-पथ की बाधा समझा था। पर गोपा ऐसा नहीं समझती। वह तो जगत् के भोग-विलास को सार्थक समझती है, मुक्ति-पथ-बाधक नहीं। उसके मतानुसार मुक्ति-प्राप्ति का स्थान जङ्गल नहीं; वरन् यह मायामय संसार है। इसी से वह अपने पति को जङ्गल से लौट आने को कहती है जिससे वे जगत् में ही हाव-विभाव के बीच रखकर मुक्ति पालें।

आओ, प्रिय! भव में भाव विभाव भरें हम।
डूबेंगे नहीं कदापि, तरे न तरें हम॥

और फिर बाहर जाने की आवश्यकता ही क्या है! वन-बाल की जरूरत ही क्या है! "यदि मन-चङ्गा तो कठौत में गङ्गा।" भक्त यदि ईश्वर को हृदय से चाहता है, 'मन-वचन और कर्म से उसकी सेवा सेवा करता है—तो फिर उसे कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। भक्तों के पास भगवान तो स्वयं दौड़ आते हैं। उन्हें खुद इसकी चिन्ता है। इसी से तो गोपा कह उठती है—

भक्त नहीं जाते कहीं।
आते हैं भगवान्॥

यह कोई झूँठी बात नहीं—मिथ्या का भ्रमजाल नहीं। इसमें कुछ तथ्य है। इसकी सार्थकता हमें उस समय विदित होती है जब बुद्ध स्वयं गोपा के निकट जाकर उसे हृदय से लगाते हैं। और निर्माण-हेतु ब्रह्मानन्द की दिव्य-ज्योति का दर्शन कराते हैं।

(पृष्ठ ३२३ का शेष)

स्वरूपों से मानव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में प्रभावित होता है उनके वर्णन से वर्ण्य विषय को सजीव और पूर्ण बनाने का इन्होंने सफल प्रयास किया है। उपर्युक्त उदाहरणों में पाठक देख चुके हैं कि इन्होंने किन रूपों में प्रकृति के विविध स्वरूपों का चित्रण किया है। हाँ इतना अवश्य है कि प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूपों और क्रिया-कलापों का इनकी रचनाओं में एकान्त अभाव पाया जाता है जिसे कुछ लोग दोष और कुछ लोग गुण मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्दजी और प्रकृति

श्री शिवप्रसाद लोहानी, 'साहित्य-रत्न'

हिन्दी-कथा-साहित्य प्रेमचन्दजी का चिर ऋणी रहेगा; क्योंकि इन्होंने अपनी रचनाओं का क्षेत्र इतना विस्तृत और व्यापक रखा है कि उसमें मानव जीवन के सारे अङ्गों का सम्यक् चित्रण हो जाता है। किन्तु ये उन अङ्गों के चित्रण में विशेष सचेष्ट हैं जिनके एकान्त अभाव हिन्दी में थे। ऐसे चित्रण को सजीव और व्यापक बनाने के लिए जिन बातों का सामान्यता उपयोग किया जाता है उनमें सामञ्जस्य-स्थापना इनकी विशिष्टता है। भावों के प्रकाशन एवं वातावरण-सृष्टि के लिए लोग प्रकृति का आश्रय लेते रहे हैं। मानव का प्रकृति में सम्बन्ध अनादिकाल से है। उस एकान्त मानव की सहचरी प्रकृति ही तो थी जो प्रलय के बाद बच पाया था। अद्यावधि प्रकृति उसी रूप में मानव की आनन्दानुभूति कराती रही है, कराती रहेगी भी—जीवन से प्रकृति को अलग नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि साहित्य में प्रकृति को उचित स्थान मिलता रहा है। किन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि काव्य-साहित्य में प्रकृति के आश्रय की जितनी अपेक्षा है उतनी कथा-साहित्य में नहीं। काव्य में रस की सम्यक् उद्भावना लय और छन्द की परिधि से बाहर होकर नहीं की जा सकती। और मानव के अणु-अणु में प्रकृति अप्रत्यक्ष रूप से स्थित है। इससे प्रकृति का आंचल थाम मनोभावों का शाब्दिक रूप काव्य में दिया जाता है। कथा-साहित्य में रस की उद्भावना के निमित्त, लय उद्-भावना के निमित्त लय और छन्द की अपेक्षा नहीं। इस कारण उनमें प्रकृति-साहाय्य की उतनी अपेक्षा नहीं। 'प्रसादजी' के कथा-साहित्य में प्रकृति-चित्रण का प्राचुर्य्य उनके विशाल पाण्डित्य और प्रकृति-पर्य्यवेक्षण का परिचायक है अवश्य किन्तु सर्वसाधा-रण के लिए तो वह दुरूह हो गया है—प्रसादगुण से रहित। कहा तो यहाँ तक जाता है कि यदि प्रसादजी के कथा-साहित्य में प्राकृतिक ऊहापोह नहीं होता तो उनके कथा-साहित्य को सर्वोच्च स्थान मिलता। यह स्मरणीय है कि प्रेमचन्दजी सुधारक प्रकृति के थे। उनमें उपयोगिता का दृष्टिकोण सर्वोपरि था। उन्होंने कहा भी है—मेरा पक्का मत है कि परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सभी कलाएँ उपयोगिता के सामने घुटना टेकती हैं।' ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं कि उनकी रचनाओं में प्राकृतिक चित्रण के बाहुल्य की आशा की जाय। तात्पर्य यह कि उन्होंने जहाँ आवश्यकता समझी है वहाँ प्रकृति का सहारा लिया है—वह भी बड़े संयत रूप में; विशेषतः वातावरण सृष्टि के लिए। 'पञ्चपरमेश्वर' में पञ्चायत के वातवरण को मुखर बनाने के लिए लिखा है—जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरव युक्त पञ्चायत पेड़ों पर बैठी तब वहाँ भी पञ्चायत आरम्भ हुई।' तीसरे दिन उसी पेड़ के नीचे जब फिर पञ्चायत बैठी उसका वर्णन यों किया है—'वही संध्या का समय था। खेतों में कौवे पञ्चायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय यह था कि कि मटर की फलियों पर उनका स्वत्व है या नहीं और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मण्डली में यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्य की उन्हें बेमुरौवत करने का क्या अधिकार है; जब उसे स्वयं अपने मित्रों को भी दगा देने में सङ्कोच नहीं होता।' वातावरण की सृष्टि के लिए जो प्रकृति का आश्रय लिया गया है उनमें दुरारूढता नहीं है। पाठक सहज स्वाभाविक रूप से इन वर्णनों का भी आनन्द लेता हुआ आगे बढ़ता जाता है। कथा-विकास में ये चित्रण बाधक नहीं होते। यथा····बहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जा बैठे।''''फागुन का महीना था। आमों के बौर से महकती हुई मन्द-मन्द वायु चल रही थी। कभी कभी कोयल की सुरीली तान सुनाई दे जाती थी। खलिहान में किसान आनन्द से उन्मत्त हो होकर फाग गा रहे थे।

प्रकृति-चित्रण द्वारा इन्होंने कहीं कहीं पात्रों के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। प्रकृति से मानव का व्यविछिन्न सम्बन्ध होने के कारण वह प्रकृति के स्वरूप को पढ़कर स्थिति की सहजानुभूति करता है। अस्तु, ये प्राकृतिक वर्णन जितने स्वाभाविक होंगे उतने ही अधिक व्यापक और प्रभावपूर्ण भी। 'घासवाली' कहानी में मुलिया के गौर वर्ण की कमनीय आकृति की अभिव्यञ्जना के लिये प्रभात-चित्रण देखिये—'प्रभात का समय था, पवन आम को बौर की सुगन्ध से मतवाला हो रहा था, आकाश पृथ्वी पर सोने की वर्षा कर रहा था। मुलिया सिर पर झौआ रखे घास छीलने चली तो उसका गेहुँआ रंग प्रभात की सुनहरी किरणों से कुन्दन की तरह चमक उठा।' मनोदशा की सम्यक् अभिव्यक्ति के लिए नीचे के अवतरण में प्रकृति की सहायता जो ली गयी है वह अवलोकनीय है—'''' बाहर की ओर झाँका और किवाड़ खोलकर चले आये। चारों ओर अंधेरा था, उनकी चिन्ताओं की भाँति सामने अपार और भयकारी गोमती नदी बहती थी''''''आकुल हृदय को जल तरंगों से प्रेम होता है, शायद इसलिए कि लहरें भी व्याकुल हैं'''।'

विशाल समुद्र के अधोप्रदेश में रहने वाले सीपी के अन्दर किसने स्वाती-जल को प्रविष्ट होकर मोती बनते देखा है? किसने चकोर को अंगार खाते देखा है? किसने काठ छेदने वाले भौंरे को कमल के अन्दर शमि व्यतीत करते देखा है? किसने चातक को स्वाती-जल-पान हेतु महीनों प्रतीक्षा करते देखा है? किसने कमल को सूर्योदय और सूर्यास्त के समय क्रमशः विकसित होते और मुदते देखा है? सम्भव है 'किसी ने नहीं' कहने में कुछ को आपत्ति हो किन्तु 'नहीं के बराबर' कहने में विवाद की गुञ्जायश नहीं फिर भी परम्परा के अनुरूप साहित्य में अब हर्ष-विषाद, प्रेम-विग्रह आदि मनोभावों के लिए के लिए प्रकृति के इन क्रियाकलापों और स्वरूप चित्रण किया जाता है। यद्यपि इनकी व्यञ्जना समझ सकते हैं जो इनसे पूर्व परिचित कराये गये जिन्होंने साहित्य का अध्ययन-मनन किया है। प्रेमचन्द जी विशेषतः प्रकृति के इन परम्परा-प्राप्त तथ्यों के भावों की अभिव्यञ्जना के लिए आँखें मूँद कर व्यवहार नहीं करते। वे जानते थे कि प्रकृति ये स्वरूप सर्व-साधारण को अभीष्ट भाव की व्यञ्जना नहीं करा सकते, अपितु कौतूहल और विस्मय उद्भूत करायेंगे। इसलिए उन्होंने प्रकृति के स्व को ही अपनी रचनाओं में स्थान दिया, जिन्हें पाठक समझ सकें। जिनकी अनुभूति वे प्रत्यक्ष में करते हैं उन्हीं का चित्रण इन्होंने किया फल स्वरूप पाठक सुगमतया लेखक के मनोभाव समझ लेता है। 'प्रेमाश्रम' का यह अंश पठनीय 'अमावस की रात थी। तारागण भी बादलों में छिपाये हुए थे। अन्धकार ने जल और बालू, और आकाश को समान कर दिया था। केवल की मधुर ध्वनि गङ्गा का पता देती थी। ऐसा छाया हुआ था कि जलनाद भी उसमें निमग्न जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि पृथ्वी अभी के गर्भ में पड़ी हुई है।' कहना नहीं होगा कि कितना स्वाभाविक और सहज बोध-गम्य है। ऐसा व्यक्ति होगा जिसने काली रात्रि में ऐसी नहीं की हो। इसका उदाहरण देखिये—'पवन हुए खेतों में विश्राम करने जा रहा था, सूर्य की गोद में विश्राम करने जा रहा था और उस प्रकाश में खड़ा चैनसिंह मुखिया की विलीन हुई रेखा को खड़ा देख रहा था।' गोदान का अवतरण भी प्रेक्षणीय है—'जेठ का सूर्य आधी झुरमुट से निकल कर आकाश पर छाई हुई को अपने प्रताप से तेज-प्रदान करता हुआ ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था और हवा में गरमी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम-राम करते और सम्मान भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था।'

प्रेमचन्दजी के प्रकृति-चित्रण यथार्थ और सत्य हैं। उनमें कल्पना की ऊँची उड़ान और परम्परा के प्रति आकर्षण—क्या मोह नहीं है। नित्य प्रति के सर्व-साधारण जीवन में प्रकृति के जिन रूपों को मानवी आँखों से मानव देखता है उन्हीं के शब्द-चित्र इन वर्णनों में हैं। शास्त्रीय परम्परा के व्यवहृत प्रकृति को जिन विभिन्न काल्पनिक स्वरूपों के चित्रण, इतर लेखकों ने किये हैं इनकी रचनाओं में उनके अभाव हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस अभाव ने कला के उच्च प्राकृतिक-विवरण को प्रस्तुत करने से वञ्चित रखा जिसके परिणाम-स्वरूप कला की सुकोमल भावनाओं में आनन्द लेने वालों को सम्भवतः निराश भी होना पड़ता है; किन्तु इन मुट्ठी भर कला-प्रेमियों को निराश कर कोटि-कोटि लोगों में जिस साधारण कला के माध्यम से ज्योति जगायी गयी है वह कम महत्व नहीं रखता।

मानव मन के सूक्ष्म भावनाओं के चित्रण की क्षमता शब्दों में नहीं इसी कारण लोग उनके सम्यक् अभिव्यञ्जना के हेतु उपमा का सहारा लेते रहे हैं। प्रेमचन्द जी ने भी प्रचुर उपमाओं का प्रयोग किया है। इनकी उपमायें बड़ी नपी-तुली, सुघर और प्रभावोत्पादक होती हैं यथा—'चित्त में दृढ़ हो जाने वाला निश्चय चूने का फर्श है जिसको आपत्ति के थपेड़े और भी पुष्ट कर देते हैं।' प्रकृति से सम्बन्धित उपमायें भी कम नहत्व पूर्ण नहीं। सीधी-सादी प्रकृति के उसी स्वरूप से तुलना करते हैं कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। 'आत्म-संगीत' शीर्षक कहानी में लिखा है—'...मैं उसी तरह उस स्वर्गीय संगीत के लिए व्याकुल हूँ। उस संगीत में कोयल की सी मस्ती है; पपीहे की संवेदना है, श्यामा की सी विकलता है—इसमें झरनों का-सा जोर है; आँधी का-सा वेग।' इस अवतरण में जितनी प्राकृतिक उपमायें हैं उनके अनुभव जन-साधारण सुगमतया कर सकते हैं। 'गोदान' का यह अंश—'लू चल रही थी, बगोले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था—जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो....' भी कम स्वाभाविक नहीं। एक स्थान पर इन्होंने यों लिखा है—'पुष्प वाटिका में ठूँठ जैसा दिखाई देता है अथवा ललित संगीत में जैसे कोई बेसुरी तान कानों को अप्रिय लगती है, उसी तरह शर्मा जी की सहृदयतापूर्ण दृष्टि में मंडराते हुए सिपाही दिखायी दिये' इस अवतरण का उपमान उपमेय के वास्तविक स्वरूप को कितने स्वाभाविक रूप से विचित्र करता है यह द्रष्टव्य है।

कहीं कहीं प्रकृति के द्वारा जो भाव-प्रेषण किया है उके वास्तविक स्वरूप को हृदयंगम करने के लिए साधारण-सी सर्व-बोधगम्य उपमा सामने रखी है—प्रकृति को उपमेय मानकर यथा—'रंग भूमि' का यह अवतरण 'अरावली की हरी भरी, झूमती हुई पहाड़ियों के दामन में जसवन्त नगर यों सो रहा है जैसे बालक माता की गोद में। माता के स्तन से दूध की धारें प्रेमोद्गार से विकल, उबलती, मीठे स्वरों में गाती निकलती हैं और बालक के नन्हें से मुख में न समा-कर नीचे बह जाती है। प्रभात की स्वर्ण-किरणों में नहा कर माता का स्नेह-सुन्दर मुख निखर गया है और बालक भी, अञ्चल से मुँह निकाल कर, माता के स्नेह पल्लवित मुख की ओर देखता है, हुमुकता है और मुस्कुराता है, पर माता बराबर उसे अंचल से ढक लेती है कि कहीं उसे नजर न लग जाये।'

प्रेमचन्द जी की रचनाओं में सूक्ष्म निरीक्षण का तत्व पाया जाता है। फल स्वरूप स्थिति या व्यक्ति-विशेष की वर्णना में छोटी-मोटी बातें भी छूटने नहीं पायी है। उनके वर्णन इस बारीकी से किये गये हैं कि उनमें कम या अधिक कुछ नहीं। प्रकृति-वर्णन में भी यही बात पायी जाती है। प्रकृति के जिन

(शेष पृष्ठ ३२० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

आलोचना के पथ पर—लेखक–श्री प्रोफेसर कन्हैयालाल सहल एम० ए०, प्रकाशक–प्रो० नागरमल सहल एम० ए०, महाराजा कालेज, जयपुर, मूल्य ४) पृष्ठ २०२।

हिन्दी के बढ़ते हुए प्रभाव के साथ-साथ जो दिवालियापन हमारे आलोचकों में आ रहा है, वह शोभनीय नहीं है। चिन्तन और मनन यदि कहीं है भी तो वह इतना अस्पष्ट और दुरूह है कि उसके लिये एक और भाषा या आलोचना पुस्तक होनी चाहिए। ऐसी अवस्था में यदि एक भी सुलझी हुई पुस्तक सामने आ जाती है तो हृदय प्रसन्न हो जाता है। श्री प्रो० कन्हैयालाल सहल की 'आलोचना के पथ पर' एक ऐसी ही पुस्तक है।

इस पुस्तक में लेखक के २६ निबन्धों को संग्रहीत किया गया है। निबन्धों के लिखने की प्रेरणा लेखक को अपने अध्यापन कार्य से मिली है। विद्यार्थी के सम्मुख विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए ईमानदार अध्यापक को स्वयं के चिन्तन और अन्य ग्रन्थों के अध्ययन का आश्रय लेना पड़ा है और तब एक निश्चित रूप रेखा बनाकर निबन्ध प्रस्तुत करने पड़े हैं। परिणाम यह हुआ है कि निबन्धों में कहीं भी उलझन नहीं है और पाठक के ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ वे उसके विचारों को नवीन उद्भावना के लिये उत्तेजना भी देते हैं, जो निबन्ध का सब से बड़ा गुण है।

इन निबन्धों में शैली का स्वरूप, औचित्य सिद्धान्त, अलङ्कार और मनोविज्ञान, साधारणीकरण और रसास्वाद के विघ्न, नाट्य दर्पणकार का रस विवेचन, करुण रस की सुखात्मकता, स्वभावोक्ति का अलंकारत्व, आदि शास्त्रीय विषयों पर लिखे निबन्ध हैं। रहस्यवाद का स्वरूप, गीति-काव्य और उसके भेद, कला की उत्पत्ति, कहानी का तंत्र, महाकाव्य की परिभाषा, सूफी धर्म, साहित्य में स्वच्छन्दतावाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और प्रगतिवाद, मानटेन शैली के निबन्ध आदि विवादास्पद वादों तथा आधुनिक विषयों से सम्बन्धित निबन्ध हैं। 'लहर'-समीक्षा, कामायनी, कामायनी का काम-सर्ग, कामायनी का लज्जा सर्ग, यौवन की औत्सुक्य योजना, 'साकेत' में प्रधान रस, 'अनन्त के पथ पर' (विहङ्गम दृष्टि) विशिष्ठ पुस्तकों पर लिखे गये निबन्ध हैं और कबीर की साखियों का सम्पादन तथा राजस्थानी कहावतें ऐसे निबन्ध हैं, जिनमें पहले में कबीर ग्रन्थावली में संग्रहीत कबीर की साखियों की सम्पादन सम्बन्धी भूलों की ओर संकेत तथा उपयोगी सुझाव हैं और दूसरे में राजस्थानी कहावतों के सौंदर्य का दिग्दर्शन है।

जो निबन्ध रस या आधुनिक विषयों पर लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं वे पूर्ण हैं और न केवल विद्यार्थी ही वरन् विद्वान् और मर्मज्ञ साहित्यिक भी उनसे ज्ञानवर्द्धन कर सकते हैं। साधारणीकरण, रहस्यवाद, स्वच्छन्दता वाद और प्रगतिवाद का विवेचन अत्यन्त स्पष्ट है। करुण रस की सुखात्मकता और नाट्य दर्पणकार का रस-विवेचन नाम के निबन्धों में लेखक की स्वतन्त्र चिंतन-वृत्ति के दर्शन होते हैं। सहलजी से हम यह आशा करते हैं कि वे यदि रस सम्बन्धी समस्याओं पर विस्तार से विचार प्रस्तुत कर सकें तो बड़ा काम हो। उनका इस विषय का विवेचन हमें तथाकथित आचार्यों से कहीं अधिक स्पष्ट लगा है। इसीलिए हम यह कह रहे हैं। पुस्तकों से सम्बन्धित निबन्धों में कामायनी और साकेत पर लिखे निबन्ध बड़े प्रौढ़ हैं। वैसे हमारी सम्मति में पुस्तकों से सम्बन्धित निबन्ध यदि इसमें न रखे जाते तो अच्छा होता क्योंकि उनसे पुस्तक का वजन कम हो गया है।

सबसे बड़ी विशेषता इन निबन्धों की स्पष्टता है। विषय का सम्यक विवेचन होने के साथ-साथ शैली में सारल्य और आकर्षण दोनों हैं। स्वतन्त्र चिन्तन ने विषय को नीरस होने से बचा लिया है। —कमलेश।

सूर-निर्णय—लेखक—सर्व श्री द्वारकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल। प्रकाशक—श्री प्रभूदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा। पृष्ठ संख्या १+१२+८+३५४, मूल्य ५)

इसमें पुस्तक परिचय हिन्दी के प्रतिष्ठित ब्रजभाषा मर्मज्ञ डा० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है, १५ पंक्तियों में। इस पुस्तक में पांच परिच्छेद हैं: सामग्री निर्णय, चरित्र-निर्णय, ग्रन्थ-निर्णय, सिद्धान्त-निर्णय तथा काव्य-निर्णय। अन्त में तीन अनुक्रमणिकायें हैं। सहायक ग्रन्थों की सूची भी दी गयी है। ग्रन्थ का अधिकांश भाग सूर के चरित्र और ग्रन्थों के निर्णय में व्यय हुआ है। लेखकों ने अबतक के वैज्ञानिक अध्ययनों के दोष दिखाने की चेष्टा की है—और उनका मुख्य आधार यह माना गया है कि इन आलोचकों और अध्ययन कर्त्ताओं ने सूर के सम्प्रदाय में मिलने वाली साक्षियों का उचित सम्मान नहीं किया है। इस धारणा के कारण लेखकों को यह चेष्टा रहते हुए भी कि शोध का वैज्ञानिक आधार रखा जाय साम्प्रदायिक साक्षियों को अवैज्ञानिक महत्व दे दिया गया है। सम्प्रदाय में मिलने वाली समस्त साक्षियों की गहरी वैज्ञानिक छानबीन होनी चाहिए—इसीलिए 'परिचय' में डा० वर्मा ने यह संकेत कर दिया है कि—

"इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा इसकी पूर्ण परीक्षा होनी चाहिए।" फलतः इसके निर्णय अन्तिम नहीं, न सुलझे हुए ही हैं। हाँ, इस पुस्तक का एक महत्व निर्विवाद है। परीखजी वल्लभ संप्रदाय के प्रमुख विद्वानों में हैं। सम्प्रदाय की समस्त सामग्री का उपयोग वे कर सकते थे। अतः सूर के सम्बन्ध में सम्प्रदाय जो कुछ कह सकता है वह संभवतः सब इसमें एक स्थान पर संग्रहीत मिल जायगा। इससे सूर की यथार्थ वैज्ञानिक शोध को सहायता मिलेगी। सिद्धान्त निर्णय में वल्लभ सम्प्रदाय की दृष्टि से सूर के सिद्धान्तों की पुष्टि की गई है। इससे वल्लभ सम्प्रदाय का भी प्रामाणिक स्वरूप प्रस्तुत होता है। सूरदास के काव्य का विवेचन बहुत शिथिल और अव्यवस्थित हुआ है। इस सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा का यह अल्पमत समीचीन है।" स्वतन्त्रता-पूर्वक उद्धरण देने से पुस्तक विशेष रोचक और उपयोगी हो गई है, यद्यपि साथ ही आलोचनात्मक अंश में कमी करनी पड़ी है। पुस्तक सुन्दर छपी है। —सत्येन्द्र।

तुलसी—लेखक—श्री रामबहोरी शुक्ल एम० ए० बी० टी०, प्रकाशक—हिन्दी-भवन इलाहाबाद। मूल्य २), पृष्ठ २७४।

कवि के साथ सहानुभूति-पूर्ण दृष्टिकोण किसी कृति के अध्ययन का एक आवश्यक उपकरण है। लेखक महोदय ने तुलसीदासजी के साहित्य के विवेचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इसी दृष्टिकोण को अपनाया है किन्तु उनकी सहृदयता और भावुकता अधिकांश में बुद्धिवाद से संयत रही है। तुलसीदासजी के समय के वातावरण पर प्रकाश डाल कर आन्तरिक और वाह्य सामग्री के आधार पर जीवनचरित का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। तुलसीदासजी के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन उनके प्रमुख ग्रन्थ रामचरितमानस के ही प्रसङ्ग में करा दिया गया है। लेखक ने उनको किसी समुदाय विशेष के घेरे में न बाँधकर उनकी कृतियों में शाङ्कर सम्प्रदाय के अद्वैतवाद और रामानन्दी सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैतवाद के तत्वों को पुष्ट करने वाले उद्धरण दे दिये हैं।

रामचरितमानस में जिन संस्कृत ग्रन्थों की छाया है उनके उपयुक्त अवतरण देकर 'नानापुराण निगमागम सम्मतम्' की बात को भली प्रकार प्रमाणित कर दिया गया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता था तथापि स्थल संकोच के कारण केवल प्रमुख स्थल ही दिये गये हैं। रामचरितमानस के अतिरिक्त इसमें छोटे-बड़े ग्यारह और ग्रन्थों का विवरण दिया गया है। ग्रन्थों के परिचय में काव्य सौष्ठव दिखलाते हुए मानव स्वभाव और भाव जगत के उद्घाटन के साथ-साथ प्रकृति-चित्रण पर भी प्रकाश डाला गया है और मानस के प्रसङ्ग में तो उसके अलङ्कारों आदि का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

शुक्लजी की शैली सरल और सुबोध है। यद्यपि इसमें सूक्ष्म विश्लेषण का अपेक्षाकृत अभाव है तथापि विद्यार्थियों के लिए इसमें प्रायः मुख्य-मुख्य सामग्री उपस्थित करदी गई है।

—गुलाबराय

गरुणध्वज : एक अध्ययन—लेखक—श्री जगदीशस्वरूप एम० ए०, प्रकाशक—शर्मा बुकडिपो, आगरा। पृष्ठ ५८, मूल्य ॥)

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के नवीनतम नाटक गरुणध्वज, जो अब परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रन्थ है, पर यह एक समालोचनात्मक पुस्तक है जो विद्यार्थियों के हित की दृष्टि से लिखी गई है और उनके लिए सचमुच उपयोगी है।

—म०

कविता

अन्तिम ज्योति—लेखक—श्री तख्तसिंह भटनागर, प्रकाशक—एन० पी० भटनागर, जेंटिलमेन स्ट्रीट, उदयपुर। पृष्ठ १३२, मूल्य ॥≡)

महात्मा गान्धी के निधन पर लिखी गई इस कविता पुस्तक में सन्ध्या, महानिशा, और उषा शीर्षक तीन खंडों में उस महापुरुष की महायात्रा का वर्णन किया गया है। लेखक अपनी तन्मयता में जो भाव जहाँ आए हैं—लिखता चला गया है। जिसमें एक ओर उसके क्षोभ, घृणा, निराशा तथा दूसरी ओर भक्ति, प्रेम और उदारता के भाव स्पष्ट झलक पड़ते हैं। कविता की दृष्टि से पुस्तक बहुत उच्चकोटि की नहीं बन पाई है फिर भी साधारण जनता के लिए अच्छी है एक दो नमूने लीजिए :—

"बापू न हमारा गया किन्तु,
मानवता का अवतार गया।
करुणा का पारावार गया,
भूमण्डल का शृङ्गार गया॥"

"आँखों के कोण लजाते थे,
उस वैरागी के वैभव पर।
उस बिना ताज के राजा पर,
थे ताज जगत के न्यौछावर॥"

"इस पुण्य स्थान पर गिरे हाय,
बापू तो मूर्छा खाकर के।
पर मानव उठा करेगा नित,
इस भू के दर्शन पाकर के॥"

मृत्युञ्जय—लेखक—श्री शिवकुमार श्रीवास्तव। प्रकाशक—कला-मण्डल, सागर। मूल्य १)

इस पुस्तक में पूज्य बापू के जीवन से सम्बन्धित 'हा बापू' बुझ गई ज्योति, जीवनदान, मृत्युञ्जय, अरे तथागत, बापू की पूजा पर, जब बापू थे, युगपुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अभिनन्दन नामक कविताओं का संग्रह है। बापू के जीवन के आदर्श और सिद्धान्तों को लेकर चलने वाली इन कविताओं में कवि का हृदय बोलता है। प्रत्येक कविता से यह स्पष्ट है कि कवि की अनुभूति गहरी है और उसके पास अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। कविताएँ पढ़कर कवि के उज्ज्वल भविष्य की आशा करना स्वाभाविक है।

बापू चालीसा—लेखक–श्री वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली'। प्रकाशक–भार्गव पुस्तकालय, काशी। मूल्य।)

नाम से ऐसा लगता है कि पुस्तक हनुमान चालीसा जैसी कोई चीज है पर ऐसा नहीं है। वास्तव में इस पुस्तक में महात्मा गाँधी के जीवन को बड़ी सरलभाषा में पद्यबद्ध किया गया है और इसका उद्देश्य साधारण जनता को गांधीजी के जीवन का महत्व बताना है। अन्त में 'गांधी अष्टक' जोड़कर उनके महाप्रयाण की घटना पर भी प्रकाश डाला गया है। गाँव की जनता के लिए यह बड़ी उपयोगी पुस्तक होगी।

उल्कापात—लेखक–श्री लखनप्रतापसिंह 'उरगेश'। प्रकाशक–उरगेश विद्याभवन कटिया। डाकघर–माधवगढ़ रीवाँ विन्ध्यप्रदेश। मूल्य १॥)

इस संग्रह में कवि की ४३ विभिन्न विषय सम्बन्धी कविताओं का संग्रह है। कवि की कविताओं में द्विवेदी युग और छायावादी दोनों की भावनाओं का समावेश है। कविताएँ सरल और तरल अनुभूति से ओत-प्रोत हैं। काव्य प्रेमियों को इनसे अवश्य संतोष होगा।

आभा—लेखक और प्रकाशक वही। मूल्य भी वही।

यह उरगेशजी का दूसरा संग्रह है। इसमें कवि की कविताएँ कुछ अधिक निखार पर हैं। कहीं-कहीं छन्दोभंग दोष है पर कल्पना और भावना की गति शिथिल नहीं है। प्रकृति से सम्बन्धित कविताएँ काफी अच्छी हैं। न जाने क्यों हमें उसके कवित्त अधिक सुन्दर जान पड़ते हैं। ठाकुर गोपालशरणसिंह के बाद ऐसे सुन्दर कवित्त हमें आभा में ही देखने को मिले हैं। कवि का यह संग्रह स्वागत की वस्तु है।

—कमलेश

उपन्यास

युग-संदेश (सामाजिक उपन्यास)—ले०–पृथ्वीनाथ शर्मा। प्रकाशक–हिन्दी भवन, जालंधर और इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या २५२ मूल्य २॥)

'युग-संदेश' में इस युग की घटनाओं का वर्णन अवश्य है—विशेषतः कलकत्ता पर हुई बम-वर्षा तथा बंगाल के दुर्भिक्ष का पर युग का कोई संदेश नहीं। इसका नाम 'दुविधा' या 'उलझन' ज्यादा अच्छा रहता क्योंकि उपन्यास का मुख्य विषय नायक रमेश के मन का द्वन्द्व या उसकी दुविधा है। पिता हरिदत्त चाहते हैं कि रमेश वकालत करे पर रमेश को इस पेशे से घृणा है—इसीलिए मातापिता से रूठ कर वह कलकत्ता चला जाता है और वहाँ डा० जीवन के फन्दे में आकर लुट जाता है और विवाहित होते हुए भी शैला के प्रेम-पाश में फँस जाता है। उसकी पत्नी तारा के वहाँ पहुँचने पर स्थिति विषम हो जाती है। तारा या शैला ?–यही रमेश की उलझन है जिसको सुलझाने का श्रेय मिलता है उसके मामा सोमेश को। सोमेश आदर्श चरित्र के रूप में अंकित किया गया है। वह सबको एक भोज में आमंत्रित करता है—सुरेश, तारा, नवीन, प्रतिभा, गगन, शैला आदि सभी को। शैला वहां शराब के प्याले पर प्याले चढ़ाती है। रमेश का मन इस कारण शैला से फिर जाता है और उपन्यास सुखान्त बन जाता है—रमेश और तारा के पुनर्मिलन में। शैला से रमेश इतनी जल्दी विरक्त कैसे हो गया तथा चतुर शैला ने ऐसा मौका क्यों कर दिया होगा इसकी मनोवैज्ञानिक सूझ का अभाव है। रमेश के अंतर्द्वन्द्व का भी बहुत बारीक अध्ययन नहीं हो पाया। अंतिम अध्याय में सहसा इस परिवर्तन के साथ ही उपन्यास समाप्त हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। चरित्र और कथा-वस्तु के कार्य-कारण सम्बन्ध का सर्वत्र निर्वाह हो नहीं पाया है। कहीं कहीं अनावश्यक ब्यौरे भी मिलते हैं जैसे रमेश के कलकत्ता में नवीन का मकान ढूंढने के प्रयास। रमेश तथा तारा की विवाहोपरान्त बातचीत में कहीं कहीं अस्वाभाविकता भी है। सम-वर्षा तथा दुर्भिक्ष का तथ्यात्मक या इतिवृत्तात्मक वर्णन ही अधिक हुआ है, करुणोत्पादक या हृदयद्रावक नहीं। वैसे शैली साफ सुथरी, रोचक है। कथावस्तु में भी घटनाओं का घटाटोप नहीं। सीधी बात सीधी भाषा में कही गई है। प्रकृति-वर्णन में विशेषतः काव्यात्मकता का भी सुन्दर समावेश हुआ है। कहानी-लेखक तथा नाटककार शर्मा जी का यह प्रथम उपन्यास उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है।

मूक तपस्वी (सामाजिक उपन्यास)—लेखिका—कुमारी कंचनलता सब्बरवाल, एम० ए०, आगरा। प्र०-वही। पृ० सं० २७६, मूल्य ४)

इस दुःखान्त उपन्यास में पारिवारिक समस्याओं का ही चित्रण अधिक हुआ है; परिवार से बाहर अधिक से अधिक क्लब और भुवाली सैनेटोरियम तक पहुँच पाते हैं। लखनवी जीवन की—विशेषतः मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों की इसमें अच्छी झाँकी है तथा लेखिका को स्त्री हृदय का अच्छा परिज्ञान भी है। नन्दिनी आदर्श हिंदू नारी है तथा डा० शालिनी पाश्चात्य रंग में रंगी हुई सर्वथा उच्छृङ्खल, मदमत्त धनी, मानिनी, मद्यपी। शालिनी पाश्चात्य सभ्यता की प्रतीक है—अंग्रेजी ढंग के नृत्यों की पूरी शौकीन। वह विवाह नहीं करती है पर हैरीसन, डेविड, टामस, निसार अहमद, महेश, रविदत्त आदि न जाने कितनों को लुब्ध करती कराती है। शालिनी का चित्रण हुआ है यथार्थवादी पर परिणति हुई है आदर्शवाद में। मूक तपस्वी गिरीश के प्रभाव में आकर वह सर्वथा बदल जाती है और अपनी सारी संपत्ति गिरीश के अस्पताल में दे देती है। गिरीश को वह प्राप्त करना चाहती अवश्य है पर प्राप्त न कर सकने पर भी उसके हृदय की वृत्तियाँ चंचल नहीं रह पाती हैं। पाश्चात्य प्रसाधन सब उसको सारहीन प्रतीत होने लगते हैं। गिरीश सहसा आकृष्ट हुआ नंदिनी की तरफ; नंदिनी भी उसकी तरफ पर दोनों का विवाह न हो सका। नन्दिनी का विवाह हुआ डा० महेश से जो इस उपन्यास का अधम चरित्र है। पति की अनुपस्थिति में ससुराल वालों के कुव्यवहार से वह बराबर बीमार रहने लगती है; महेश के पुनरागमन से ठीक भी होने लगी है पर महेश की बहिन उसके टी० बी० कराके ही मानती है। महेश के दूसरे विवाह की तैयारी होने लगती है पर नन्दिनी की देवरानी मालिनी इसका सफल विरोध करती है। महेश शालिनी के चक्कर पीछे फिरता है पर शालिनी उसे ठुकरा देती है। नन्दिनी अंत तक पति से तिरस्कृत-लांछित होकर भी पति के सिवाय पर-पुरुष का ध्यान तक नहीं कर पाती—गिरीश से भी मन को हटाती है। यह हिन्दू नारी घुलघुल कर मरती है, पति के लिए पर पतिदेव सैर सपाटे करते हैं चुलबुली शालिनी आदि के साथ। लेखिका ने ऐसी नारी की वकालत की है और महेश जैसे पुरुष की भर्त्सना। गिरीश को नन्दिनी से विवाह नहीं हुआ, इसलिए वह 'मूक तपस्वी' बन जाता है। विवाह न करना तथा विवाह करना—दोनों के घातक दुष्परिणाम इस उपन्यास में देखने को मिलेंगे। रविदत्त में निर्धनों की मूक व्यथा वाचाल बनती है इन मर्म भरे शब्दों में—'मँहगाई के दिन, तीनसौ रुपये, उन्नीस प्राणियों का परिवार। फिर लड़की का विवाह। रुपये-पैसे के लेन से भरा हुआ विवाह-संस्कार। और उद्दण्ड हुए पर अदालत में सरकार की ओर से चलाया केस! उसके लिए भी धन की आवश्यकता। यह के मध्यवर्ग की सच्ची पुकार है। लेखिका का आदर्शों की तरफ झुकाव स्पष्ट है। शालिनी गतिशील (dynamic) है पर गिरीश नन्दिनी का स्थिर (static)। गिरीश ही अधिक है, कथा कम। बड़ी-बूढ़ी सत्यनारायण की कथा आदि धार्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी भीरुता, निष्कपटता, प्रेम—इन सबके साथ नई फैशन की पढ़ी लिखी लड़कियों का दम्भ, अविनय, सिनेमा का शौक, चरित्र हीनता आदि सबका इस उपन्यास में रोचक वर्णन पढ़ने को मिलेगा। पढ़ी लिखी लड़कियों में नलिनी का चरित्र निखरा है—उसकी करुणा-बुद्धि जागरूक है। वह स्वतन्त्र है, उच्छृङ्खल नहीं; उसमें शालिनी की वाचालता और दुर्लुलता नहीं, सच्ची शालीनता है। शिक्षित नारी सच्ची बनकर अपने अधिकार समझे—यह इस युग की माँग है। इस उपन्यास में चरित्रों की बहुलता है; विमला आदि कुछ भरती के चरित्र भी हैं। कुछेक', 'इधेक' का बार-बार प्रयोग खटकता है। 'सो तो है हीं' आदि जो है सो वाली पण्डिताऊ शैली की भी छाप स्पष्ट है, लेखिका शास्त्री जो ठहरीं। छापे की अशुद्धियाँ भी रही हैं पर पुस्तक रोचक और मननीय है—देवर, भौजाई, ननद, मासी, सखी-सहेली, बहिनजी आदि सबके मनोवैज्ञानिक चित्रों को लिये हुए।

—नागरमल सहल, एम० ए०।

कहानी

प्रदर्शनी—लेखक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल', प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर। मूल्य ३), पृष्ठ १६२।

इस कहानी संग्रह में कहानियों के विषय का वैविध्य उसके प्रदर्शनी नाम को सार्थक करता है। यद्यपि कहानियों में वैविध्य है तथापि उनमें से अधिकांश में जैसे साड़ी की साध, खोटा सोना, कला का मूल्य, इस बार तो मैं जाता, कठोर सत्य उसका पवित्र और प्रतिज्ञा में कसक और विषाद की बड़ी गहरी रेखा है। भलेमानुसों की बस्ती, उपदेशिका, रक्त लूट आदि कहानियों में दिखाया गया है कि समाज के इस भव्य रूप के भीतर हड्डियों का ही कंकाल भरा है। धर्म और समाज सेवा के भीतर अधिकांश में निजी वैयक्तिक स्वार्थ ही रहता है। 'देवियों की माँग' नाम की कहानी सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखी गई है। इसमें दिखलाया गया है जो लड़के-वाले कन्यापक्ष के लोगों को तंग करते हैं उन्हें भी वैसा ही तंग होना पड़ता है। जीजाजी की चोरी में एक स्त्रियों के समलिङ्गी प्रेम की झलक है। सुखद हास्य के साथ अमर की कब्र सम्बन्धी कहानी में एक नवीनता और कौतूहल को तो स्थान मिल जाता है कि मनूची के क्षीण ऐतिहासिक आधार पर यह धारणा पैदा कर देना कि अकबर की कबर में से उसका शव निकाल लिया गया। कहानीकार की स्वतन्त्रता का दुरुपयोग है। कहानियों में कौतूहल के साथ-साथ समाज की दशा का बड़ा मार्मिक चित्रण है।

—गुलाबराय

राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान—(लेखक—और प्रकाशक—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम ए० बिड़ला कालेज पिलानी। मूल्य ३)

इस महत्वपूर्ण पुस्तक को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। ऐसे प्रबन्धों और उपाख्यानों का सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक है। ऐतिहासिक खोज की कसौटी पर कसे जाने के बाद उनमें वर्णित घटनाओं के मूल आधार के सत्य प्रमाणित हो जाने के बाद तो वे इतिहास के मूल आधारों में स्थान पा जाते हैं। पुनः इतिहास की क्षुद्र कड़ियों तथा अन्तर्हित भावनाओं को अत्यावश्यक परम्परा को जानने के लिए ये उपाख्यान बहुत ही उपयोगी होते हैं। इस संग्रह ने राजस्थान की सांस्कृतिक भूतकालीन परम्परा को प्रकाशित करने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। विभिन्न उपाख्यानों की ऐतिहासिकता सम्बन्धी सुझाव बहुत ही उपयोगी हैं। ऐसे अनेकों संग्रह बन सकते हैं, और मेरा विश्वास है कि अन्य राजस्थानी नवयुवा-साहित्यकार भी इस ओर ध्यान देंगे। इस पुस्तक का आमुख तो बहुत ही सुन्दर बन गया है।

—डा० रघुवीरसिंह

पनघट—लेखक—श्री सुदर्शन, प्रकाशक—बोरा ऐण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स, लि०, ३, राउण्ड बिल्डिंग, बम्बई २। पृष्ठ २३५, मूल्य ३॥)

हिन्दी के पुराने और प्रतिष्ठित लेखक श्री सुदर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चौदह कहानियों का यह सुन्दर संग्रह कहानी क्षेत्र में रुचि के साथ पढ़ा जायगा। इसकी कहानियाँ समाज के वर्त्तमान रूप का सही चित्रण करती है। अंतिम कहानी 'हेर-फेर' में एक मजदूर का चित्र खींचा गया है जो एक धनी की बरात के सामने से धक्के देकर हटा दिया गया था। यही मजदूर जब अपने परिश्रम से स्वयं धनी हो गया। तो उसका भी दिमाग इतना बिगड़ गया कि अपने सामने से आने वाली मजदूरों की बरात को डंडे मारकर हटवा दिया।

धनिक की यह स्वाभाविक मनोवृत्ति और परिस्थिति बदलने पर मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन का यह चित्र बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। 'दो परमेश्वर' वाली एक दूसरी छोटी कहानी में एक जोगी के द्वारा रूप और मस्ती का तिरस्कार और उसके द्वारा जोगी का पिटना तथा दूसरे दिन वेश्या का जोगी की कुटी पर माथा टेकना तथा जोगी के विचित्र उत्तर की कहानी भी बड़ी ही उपदेश-प्रद और आकर्षक है। और भी सभी कहानियाँ पढ़ने योग्य हैं।

—म०

नाटक (प्रहसन)

महाराणा अमरसिंह—अनु० श्री पातीराम भट्ट, प्रकाशक—साहित्य निकेतन, कानपुर। पृष्ठ ५४, मूल्य ।।।)

यह छोटा सा नाटक एक बंगला पुस्तक का अनुवाद है। महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह के जीवन और चित्तौड़ के युद्ध का वर्णन करते हुए इसमें राजपूतों की वीरता, उदारता, आदि अनेक उदात भावों का दिग्दर्शन कराया गया है। नाटक की दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। पूरी पुस्तक को पढ़ जाने पर भी मुसलमानों के प्रति न तो घृणा ही पैदा होती है न क्षोभ ही, उल्टा यह भान होता है कि उनमें गुणों का आदर करने की भावना है। दूसरी विशेषता है इसमें स्त्री पात्रों का न होना। इस प्रकार विद्यार्थियों के लिए यह बहुत उपयोगी नाटक है।

—म०

इन्सपेक्टर साहब—अनुवादक—पं० भूपनारायण दीक्षित एम० ए०, प्रकाशक—शर्मन पेपर मार्ट, रायबरेली, मूल्य १।), पृष्ठ संख्या ११६।

यह प्रहसन एक रूसी प्रहसन का अनुवाद है। इसमें यह दिखलाया है कि कुछ लोग खोखले होते हुए भी परिस्थितियों और दूसरों की कमजोरियों से लाभ उठाकर दूसरों को ठगते हैं। ऐसे आदमियों की न यहाँ कमी है और न रूस में। पुस्तक में रूसी नामों को बदल कर मीनमेखप्रसाद चापलूसदास आदि रख दिये! ऐसे नाम सस्ता हास्य उपस्थित करने में तो सहायक होते पर कथानक की वास्तविकता में बाधक होते हैं।

—गुलाबराय

राजनीति

आज की राजनीति—लेखक—राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृ० सं० ३१८, मूल्य ४॥)।

जैसा कि शीर्षक से विदित है इसमें आज की सामयिक राजनीति की समस्या पर राहुलजी ने अपने विचार लिखे हैं। सामयिक समस्याओं का अध्ययन आज बहुत आवश्यक है—आज जन जन को भारतीय राजनीति को समझना है और मत बनाना है। जितना स्वस्थ मत जन-जन का होगा, उतना ही प्रजातन्त्र में राष्ट्र स्वस्थ होगा। इसीलिए ऐसी सामयिक पुस्तकों की आवश्यता है। हिन्दी जन को ऐसी पुस्तकों को पढ़ने की रुचि बढ़ाने की बहुत आवश्यकता है। हिन्दी-जन को दृष्टि में रखकर ही राहुलजी ने इसे संवादात्मक रूप दिया है। पहले इस संवाद में भाग लेने वाले पाँच पक्षों का परिचय है—इसमें कांग्रेसी, समाजवादी आदि दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व कराया गया है, लेखक साम्यवादी दृष्टिकोण का पोषक है, फलतः 'महोप' में कुछ उग्रता दिखाते हुए भी उसके दृष्टिकोण को मान्यता मिली है और युधिष्ठिर को सन्तुलन के लिए रखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक राजनीति की समस्त समस्याओं को लिया गया है, सरकार की आलोचना की गयी है, उपहास भी उड़ाया गया है, पर इस सबको संयत रखने की चेष्टा सतत मिलती है।

लेखक ने अपने कथनों को तथ्यों, आँकड़ों और प्रमाणों से पुष्ट करने की चेष्टा की है। 'आज की राजनीति' पर जो व्यक्ति समाजवादी पहलू जानना चाहता है--वह इसमें मिलेगा। लेखक ने जो चित्र दिया है उससे निराशा पैदा होती है। पर समाजवाद उसका हल है, यह सिद्ध किया है। लेखक ने पं० जवाहरलाल को विशेष लक्ष्य बनाया है। पुस्तक ऐसे ढङ्ग से लिखी गई है कि पं० जवाहरलाल हमें एकदम बुद्धू, राजनीति की मोटी मोटी बातें भी न समझ सकने वाले, गलत पक्ष करने वाले, व्यर्थ की बढ़ बढ़ कर बातें करने वाले, यथार्थ जनहित की किञ्चित भी चिन्ता न करने वाले और न जाने क्या क्या प्रतीत होते हैं। प्रश्नों पर प्रकाश डालने में लेखक का पक्ष-पात स्पष्ट परिलक्षित होता है। पर देश की दशा का ऐसा चित्र अवश्य उतरता है कि पाठक अपनी अवस्था पर विचार करने के लिए विवश हो जाय। —सत्येन्द्र

राष्ट्र-पिता।—लेखक—पं० जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक—सस्ता साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ १६५, मूल्य २॥)

महात्मा गान्धी के निधन से पूर्व और उसके पश्चात् सैकड़ों पुस्तकें गान्धीजी के सम्बन्ध में लिखी गईं और प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं में से एक है। इसकी विशेषता यही है कि यह पुस्तक महात्माजी के पट्ट शिष्य और वर्त्तमान राजनीति के प्रधान पुरुष पं० जवाहरलाल नेहरू की लिखी हुई है। नेहरूजी के विभिन्न अवसरों पर महात्माजी के संबंध में दिए भाषण या उनके लिखे हुए लेखों का इसमें संकलन है। पुस्तक में गान्धीजी के जीवन पर उतना प्रकाश नहीं डाला गया है जितनी उनकी विचार-धारा की चर्चा की गई है। छः अध्यायों में पुस्तक समाप्त हुई है। और इन में प्रायः सभी प्रमुख विषयों की चर्चा हो गई है। अनेक स्थलों पर गान्धीजी और नेहरूजी के पारस्परिक सम्बन्ध पर जो मधुर प्रकाश पड़ता है वह पुस्तक को और भी महत्व-पूर्ण बना देता है। वर्त्तमान राजनीति के पाठकों के लिए यह पुस्तक पठनीय है। —म०

संस्कृत

काव्य दीपिका (अष्टम शिखा)—लेखक—स्व० पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय, एम० ए० शास्त्री, साहित्य-रत्न। प्रकाशक—साहित्य निकेतन, कानपुर। मूल्य ॥।)

इसमें बड़ी उत्तमता के साथ आगरा विश्व-विद्यालय की बी० ए० परीक्षा के संस्कृत विषय के पाठ्यक्रम में निर्धारित अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि इक्कीस अलङ्कारों का विशद विवेचन किया गया है। विवेचन-शैली सरल और सुबोध है। यद्यपि कतिपय स्थलों में प्रूफ-सम्बन्धी अशुद्धियां रह गई हैं, फिर भी 'काव्य-दीपिका' से परीक्षार्थी विद्यार्थियों को पूरा लाभ होगा। —राजकुमार साहित्याचार्य

(पृष्ठ ३३२ का शेष)

कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट से अलग करने तथा गौरव वृद्धि लिए राष्ट्राधिपति अच्छा होता। जब विधान में 'से' और Act के पर्याय में अधि (अधिनियम) का प्रयोग हुआ तब राष्ट्रपति में 'अधि' का न होना खटकता है।

(Retire) के लिए निवृत्त होना रक्खा गया। निवृत्त होना कभी दूसरे अर्थ में भी आता है, इसे वृत्ति विरमित होना कहा जा सकता था।

दोष दर्शन के लिए तो बात बात में दोष निकल सकते हैं किन्तु काम चलाने के लिए यह बहुत अच्छा कोष है। सब से बड़ी बात यह है कि इसको विद्वानों का अनुमोदन प्राप्त हो गया है। इस कोष की शब्दावली पर्याप्तरूप से अर्थ व्यञ्जक और गौरव शालिनी है। यदि यह शब्दावली अपना संस्कृत प्रधान रूप रखते हुए भी जनता की भाषा के निकट होती तो और भी अच्छा होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

विधान कोष—

संविधान के अंग्रेजी अनुवाद में जिस शब्दावली का प्रयोग हुआ है वह भारत की प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के प्रतिनिधियों की एक समिति द्वारा निश्चित की गई थी। केन्द्रीय सरकार ने उसकी वर्णानुक्रम तालिका बनाकर उसे पुस्तकाकार छपा दिया है।* इस में अंग्रेजी से हिन्दी और हिन्दी से अंग्रेजी पर्याय दिए गए हैं। यह सन्तोष की बात है कि इसके बनाने में सब प्रान्तीय भाषाओं का सहयोग प्राप्त है और संविधान के अनुवादों में इसके द्वारा एकरसता लाई जा सकेगी। वैज्ञानिक शब्दावली को भी यदि ऐसा ही सहयोग प्राप्त हो जाय तो विज्ञान के क्षेत्र में प्रान्तीय सहकारिता बहुत-कुछ सुलभ हो जायगी।

यह शब्दावली विद्वानों द्वारा मान्य हुई है अतः अब उसके सम्बन्ध में कुछ कहना निरर्थक सा लगता है। तथापि भविष्य में सुधार की दृष्टि से कुछ शब्दों पर विचार कर लेना अनुचित न होगा।

Federal court के लिए मालूम नहीं क्यों फैडरेल न्यायालय रक्खा। अंग्रेजी और हिन्दी शब्द का गठजोड़ा अच्छा नहीं लगता। विशेष कर जब कि हिन्दी शब्द संधीय बन सकता था। जहाँ Criminal Law के लिए दण्डविधि रक्खा है वहाँ Criminal के लिये मुख्य शब्द दण्ड सम्बन्धी या दण्डाधिकारी ही ठीक रहता। Criminal के लिए अपराधी लिखना अंग्रेजी की मक्खी मार नकल है। अंग्रेजी में Criminal द्वयर्थक है हिन्दी में भी उसको द्वयर्थक बनाये रख कर दण्डाधिकारी न्यायालयों का अपराधी बना देना उचित नहीं है। Civil के लिए व्यवहार यद्यपि प्राचीन शब्द है तथापि Dealings के लिए भी व्यवहार शब्द का उपयोग होने के कारण दोनों में प्रथकता लाने के लिए यदि Civil के लिए अर्थ व्यवहार शब्द होता तो अच्छा होता।

Currency के लिए 'चल अर्थ' रक्खा गया है। चल Moveable के अर्थ में भी आता है जैसे चल सम्पत्ति। वैसे तो अर्थ चल ही होता है। (लक्ष्मी चला है ही), किन्तु इसके स्थान में यदि सीधा-सादा 'चालू सिक्का' शब्द होता तो अच्छा होता जैसे अब हजार रुपये का नोट चालू सिक्का नहीं है। Decree के लिए वैकल्पिक शब्द डिक्री रक्खा यदि इसका प्रचलित तद्भव शब्द डिग्री रक्खा जाता तो अच्छा होता।

सब स्थानों में शब्द निर्माण का एकसा नियम भी नहीं है जैसे Financial के लिए वित्त में प्रथम लगाकर वित्तीय बनाया गया और Legal के लिए विधि सम्बन्धी रक्खा है इसमें भी प्रत्यय लगाकर वैध या और कोई शब्द रख दिया जाता तो अच्छा था या Financial के लिए वित्त सम्बन्धी हो जाता। कहीं-कहीं क्रिया और संज्ञा में भेद नहीं किया गया, Maintain के लिए और Maintenance के लिए भी पोषण लिखा गया है। Maintain के लिए पोषण करना लिखना चाहिए था।

Form के लिए 'रूप' शब्द दिया गया है। इसका उत्तर प्रदेश में प्रचलन भी हो चुका है किन्तु फारम भराने के लिए रूप भर दो अच्छा नहीं लगता। फारम शब्द ही ठीक था या कोरा या खाका कहा जाता तो लोक भाषा के अधिक निकट होता।

Local Board के लिए स्थानीय मंडली के स्थान में यदि पुल्लिंग मंडल शब्द होता तो अधिक गौरवपूर्ण होता। मंडली, भजन मण्डली, रास मण्डली आदि से अधिक सम्बन्धित है।

Memo के लिए ज्ञाप के स्थान में ज्ञापक अच्छा लगता है। Memo-randum के लिए 'ज्ञापन' शब्द का व्यवहार हुआ है। ज्ञापन का अर्थ होगा जानकारी कराने का कार्य (भाव वाचक रूप में) मेरी समझ में 'स्मृतिपत्र' होता तो अच्छा होता Official Residence के लिए प्रदावास दिया गया है, पदीय आवास अधिक अर्थव्यञ्जक होता।

Preside के लिए 'पीठासीन' है इसके लिए पीठासीन होना या अध्यक्षता करना होना था। President के सम्बन्ध में पर्याप्त वादविवाद चला है।

(शेष पृष्ठ ३३१ पर)

* Glossary of Technical terms used in the constitution of India.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी प्रबोध की विषय-सूची

[साहित्य सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में—मूल्य ३) ग्राहकों से २।)]

१—काव्य परिभाषा का विकास—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
२—साधारणीकरण का शास्त्रीय विवेचन—श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०
३—हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध काव्य का विकास—श्री हरिनारायण वर्मा साहित्य-रत्न
४—आधुनिक हिन्दी-साहित्य में मनोविज्ञान—श्री इलाचन्द जोशी
५—पृथ्वीराज रासो—श्री पण्डित दशरथ शर्मा
६—सन्त-साहित्य में योगसाधना और ब्रह्मानुभूति—श्री बैजनाथप्रसाद खेतान
७—हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद का विकास—श्री शिवनन्दनप्रसाद बी० ए०
८—हिन्दी कविता की नवीनतम प्रगति—प्रो० नगेन्द्र एम० ए०
९—कबीरदास के दार्शनिक सिद्धान्त—श्री गुलाबराय एम० ए०
१०—हिन्दी साहित्य में विद्यापति—श्री गुलाबराय एम० ए०
११—नन्ददास का भँवरगीत—श्री गुलाबराय एम० ए०
१२—भ्रमरगीत में सूरदासजी
१३—केशव की अलङ्कार योजना—श्री गुलाबराय एम० ए०
१४—बिहारी का कांइयापन—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
१५—देव का काव्यात्व और आचार्यत्व—डा० सत्येन्द्र एम० ए०
१६—सेनापति का प्रकृति चित्रण—श्री गुलाबराय एम० ए०
१७—चन्दा : एक आलोचनात्मक परिचय—श्री अनिलकुमार साहित्य-रत्न
१८—यशोधरा एक सिंहावलोकन—प्रो० बी० बी० योहन एम० ए० बी० ए० (आनर्स)
१९—सिद्धराज पर एक दृष्टि—श्री भगवतस्वरूप मिश्र एम० ए०
२०—उद्धव-शतक में भक्तिकाल और रीतिकाल के सम्मिलित प्रभाव—श्री गुलाबराय एम० ए०
२१—युग कवि 'निरालाजी'—श्री हरिशङ्कर उपाध्याय 'विशारद'
२२—महादेवी की रहस्य साधना—श्री विश्वभरदयाल 'मानव' एम० ए०
२३—हिमकिरीटनी पर एक दृष्टि—श्री चन्द्रभानजी 'राधे राधे'
२४—चित्रलेखा—श्रीमती उषादेवी मित्रा
२५—श्री रामकुमार वर्मा के एकाङ्की नाटकों की रूपरेखा—श्री नर्मदाप्रसाद खरे
२६—सिन्दूर की होली में समस्या-चित्रण—कुमारी शकुन्तला सक्सेना, एम० ए० विशारद
२७—गरुड़ध्वज पर एक दृष्टि—श्री ओंकारप्रकाश एम० ए०, एल० एल० बी० रिसर्च-स्कॉलर
२८—हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार—श्री मोहनलाल चेजारा एम० ए०
२९—कुछ पर कुछ—श्री भगवतस्वरूप मिश्र एम० ए०
३०—तुलसी की काव्य सुषमा—श्री प्रो० जगन्नाथ तिवारी

पता—साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ महात्मा गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी-प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तैयार की गयी है। प्रथमा-मध्यमा-उत्तमा, विदुषी-सरस्वती, रत्न-भूषण-प्रभाकर, प्रवेशिक-भूषण-साहित्यालंकार, इन्टर—बी० ए०—एम० ए० आदि के परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है।

'साहित्य-सन्देश' निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सहायता करता रहा है। उसके विगत ग्यारह वर्षों में जो विद्यार्थियोपयोगी निबन्ध अपने अङ्कों के द्वारा भेंट किये हैं, उनका सार और महत्व-पूर्ण अंश लेकर तथा आवश्यक नये निबन्ध जोड़कर यह पुस्तक तय्यार की गयी है। विद्यार्थी और परीक्षार्थी के लिए सदैव साथ रखने योग्य पुस्तक है। पृष्ठ संख्या लगभग ३०० मूल्य ३) मात्र है।

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी। इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायँगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायँगे।

मूल्य निम्न प्रकार लिया जायगा।

	ग्राहकों से	अन्य सज्जनों से
पेशगी प्राप्त होने पर रजिस्ट्री से मँगाने वालों से (पोस्ट फ्री)	२)	३)
वी० पी० से मगाने वालों से (मय पोस्टेज)	२॥=)	३।)

इसका प्रथम संस्करण एक मास में ही समाप्त हो गया अब द्वितीय संस्करण छप कर तय्यार है जिन ग्राहकों ने मियाद के पीछे अर्थात् ३० नवम्बर १९४९ के बाद आर्डर व रुपया भेजा है और जिनको परीक्षार्थी-प्रबोध अब तक नहीं मिला है उन्हें पौने मूल्य के हिसाब से नये संस्करण की वी० पी० भेजी जायगी।

इस पुस्तक के लेखों की संख्या विषय सूची इसके पीछे वाले पृष्ठ पर छपी हुई है।

पौने मूल्य की रियायत केवल ग्राहकों को ही मिलेगी। अतः ४) मूल्य भेजकर तुरन्त ग्राहक बन जायँ।

नोट—ग्राहक महोदय आर्डर देते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें। अन्यथा पुस्तक न भेजी जायगी।

पता:—साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

अथवा

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

रामचरनलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२] आगरा—अक्टूबर, १९४९ [अङ्क ४

विषय सूची

१—कल्पना—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी० .... १२९
२—कला का विवेचन—श्री गोवर्द्धन शर्मा १३२
३—हिन्दी का एक भावुक लेखक—वियोगी हरि श्री चन्द्रमाप्रसाद खेर १३४
४—सन्त साहित्य : पृष्ठ भूमि और परिणति—श्री आनन्द नारायण शर्मा, बी० ए० 'आनर्स' १३७
५—ठाकुर गोपाल शरण सिंह जी की कविता की पृष्ठ भूमि—
कुंवर सूर्य वली सिंह एम० ए०, साहित्य रत्न ... १४६
६—प्रिय प्रवास' के वियोग वर्णन का एक रूप—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए० १५५
७—साहित्य पर गांधीवाद का प्रभाव—श्री जितेन्द्रनाथ बी० ए० 'आनर्स' १५७
८—चन्दा : एक आलोचनात्मक परिचय—श्री अनलकुमार 'साहित्य-रत्न' १६१
९—पुस्तक परिचय— १६५
१०—सम्पादकीय—.... .... १६७

—गुलाबराय एम० ए०
—महेन्द्र

प्रकाशक

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य ४)
एक अङ्क का ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

१—मीराँबाई—डा० श्रीकृष्णलाल १॥)
२—भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र—श्री शङ्करसहाय सक्सैना एम० ए० एम० काम ७)
३—हिन्दी का विवेचनात्मक इतिहास—हरिहर निवास द्विवेदी एम० ए०, एल० एल० बी० २)

कविता

४—जीवन संगीत—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ४)
५—रिमझिम—श्री भरत व्यास १।)
६—अभिव्यक्ति—श्रीमती प्रेमकुमारी गुप्ता २॥)
७—इन्द्रधनुष—अनुवादक पं० छविनाथ पांडेय ३॥)

कहानियाँ

९—फूलों का कुर्त्ता—यशपाल २)
१०—पक्का कदम—यशपाल ४)
११—दो घड़ी—शिवपूजन सहाय ॥।)

जीवनी

१२—गोविंदबल्लभ पन्त—श्री शिवनारायण टंडन
१३—हमारे गुरुजी—श्री जगतकुमार शास्त्री
१४—चन्द्रशेखर आजाद—रतनलाल बंसल
१५—अभिनव शकुन्तला—श्री पारसनाथसिंह
१६—भगवान बापू—राजेन्द्रदेव सेंगर

नाटक

१७—अछूत नहीं-नहीं—श्रीरत्न बी० ए०

बालोपयोगी

१८—बच्चों के बापू—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी०

वैद्यक-सम्बन्धी

१९—वृक्ष विज्ञान—श्री प्रवासीलाल वर्मा मालवीय

मनोविज्ञान

२०—मनोविज्ञान—जगदानन्द ए० एम०

❀ फाइलों के लिये आर्डर न भेजें ❀

साहित्य सन्देश की परीक्षोपयोगी फाइल नं० १ व अन्य वार्षिक फाइलें जिनके लिये हमने पिछले अङ्क में विज्ञापन दिया था, वे सब समाप्त हो गई हैं—कृपया अब उनके लिये आर्डर व मनीआर्डर भेजने का कष्ट न करें। इस समय तो

❀ परीक्षार्थी प्रबोध ❀

जो हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिये परीक्षोपयोगी पुस्तक है—छप रही है और १० नवम्बर से भेजी जायगी। जिसका मूल्य २०० पृष्ठ की पुस्तक का ३) है और साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को आधे मूल्य में मिलेगा। के लिये

आर्डर भेजें

विशेष विवरण इस अङ्क में अन्यत्र छपे विज्ञापन से ज्ञात होगा।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ११] आगरा—अक्टूबर, १९४९ [अङ्क ४

कल्पना

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

एक विद्यार्थी ने अपनी एक पाठ्य-पुस्तक में पढ़ा "कल्पना" मिथ्या का दूसरा नाम है। मिथ्या कवि के पास आकर कल्पना बन जाती है। दूसरे शब्दों में पाठ्य-पुस्तक के उस निबन्ध-लेखक ने यह स्थापित कर दिया कि कल्पना मिथ्या अथवा असत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और तब आचार-शास्त्री ने यह निर्णय सुनाया कि कवि को कभी स्वर्ग नहीं मिल सकता!

'यह तो कोरी 'कल्पना' है'....यथार्थवादी ने बल-पूर्वक कहा। यथार्थ से परे ही है कल्पना, जब एक कल्पना 'कल्पना' है वह यथार्थ नहीं हो सकती। वह आदर्श हो सकती है—क्योंकि यथार्थ आदर्श से चिढ़ता है, वह आदर्श को ही यह नाम दे सकता है।

एक व्यवसायार्थी को व्यवसाय-पति ने यह कह-कर अपने यहाँ से निकला दिया कि 'तुम में कल्पना का अभाव है। कल्पना हीन व्यक्ति व्यवसाय के अयोग्य है।"—और वह कल्पना हीन व्यवसायार्थी अपने अभाव को उन शब्दों में आज तक नहीं समझ सका।

विधायक कल्पना वैज्ञानिक के लिए अनिवार्य है। विधायक कल्पना ने ही समस्त वैज्ञानिक शोधों को अग्रसर किया है, और सफलता दिलाई है।

'कवि-प्रेमी, दार्शनिक और उन्मादी, सभी कल्पना-ग्रसित होते हैं—'ये शब्द शेक्सपीयर ने अपने एकपात्र से कहलाये हैं।

'स्वर्ण पखो' की परी! आदि कल्पने'...कवि ने कल्पना के मानसिक सरस और रञ्जित साक्षात्कार से पुलकित और विभोर हो कर लिख डाला!

कल्पना का मनोविज्ञान—कल्पना एक मानसिक व्यापार है। मस्तिष्क के द्वारा मन कितने ही व्यापार-सम्पादित करता है जिन्हें हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—एक ओर यह 'जगत' है; दूसरी ओर मानस है।

२—मानस ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जगत से सम्पर्क प्राप्त करता है।

३—यह प्रथम सम्पर्क 'इन्द्रिय-ज्ञान' होता है। चक्षु-कर्ण, घ्राण, जिह्वा तथा त्वचा जगत का जो प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने हैं और जिसे पूर्व किसी अनुभव का सहयोग नहीं होता, वह इन्द्रिय-ज्ञान है। इन्द्रिय-ज्ञान वस्तुतः ज्ञान की सीमा को छूता है।

४—इन्द्रिय-ज्ञान मानस के स्मृति कोष में समा जाता है।

५—पुनः इन्द्रिय-ज्ञान होने पर पिछले स्मरण के सहयोग से कुछ समझने योग्य रूप तैयार होता है। यह परिज्ञान है।

६—इस प्रकार का परिज्ञान पुनः पुनः समृद्ध होता जाता है, पुराने अनुभव, नये अनुभव, इनसे बने विविध रूप ये सब 'ज्ञान' हो जाते हैं। मनुष्य ज्ञानकार अथवा ज्ञानवान कहा जाने लगता है। प्रत्येक ज्ञान का पृष्ठभूमि स्मृति होता है और नया अनुभव उसे उद्वेलित करता रहता है।

७—ज्ञान-ग्रहण तक शुद्ध 'सत' का भाव रहता है। जो कुछ भी सामने आता है, इन्द्रियाँ ग्रहण करती जाती हैं। वह मानस-कोष में एकत्र होता जाता है।

८—ज्ञान-सम्पादन में मस्तिष्क में तीन प्रक्रियायें होती मिलती हैं।

(अ) इन्द्रिय-ज्ञान से प्राप्त अनुभव सामग्री।

(आ) परिज्ञान से उद्भुदित-तुलनात्मक चेतना, स्वयं प्रेरित (instinctive) होती है, अतः मात्र 'सत' अथवा 'जड़' की ही एक गति है।

(इ) बोध-सामग्री तथा तुलना से सहज ही कोई निष्कर्ष उपलब्ध हो जाता है : यह रूपात्मक हो सकता है, अथवा केवल सूक्ष्म भाव सम्बन्धी हो सकता है।

९—अतः ज्ञान-सम्पादन की क्रिया से स्वयंमें एक चेतना तथा बोध उदय होता है। इनसे मनुष्य का 'स्व' निर्माण होता है, और 'पर' से भेद स्पष्ट होने लगता है।

१०—प्रकृति-दत्त आत्म-निर्माण और आत्म-रक्षा की सहजात प्रवृत्ति इस 'स्व' को और अधिक पुष्ट करती है—तुलना और बोध में 'स्व' का मूल केन्द्र 'स्व' की दृष्टि से ग्राह्य और अग्राह्य की भावना को जन्म देता है—यही भावना विशेष गतिवान होकर 'बुद्धि' का रूप ग्रहण कर लेती है। यह बुद्धि तुलना और बोध से बहुत काम लेती है—और वस्तु का नाम रूप से भी सूक्ष्म भावों को जागृत करने का कारण बन जाती है।

११—बुद्धि की गति को 'विचार' कहते हैं। क्योंकि 'स्व' की दृष्टि से निबद्ध 'बुद्धि' 'स्व' और 'पर' का भेद प्रत्येक ज्ञान में स्थापित करना चाहती है। ये 'स्व' और 'पर' प्रश्न-रूप में उसके समक्ष खड़े होते हैं? प्रश्न अपने साथ 'विचार' लाता है।

१२—मनुष्य में जहाँ आत्म-निर्माण और आत्म-रक्षा की सहजात भावना है, वहीं आत्म-समर्पण अथवा तादात्म्य का भी भाव सहजात है। विचार 'स्व-पर' के चिन्तन में मग्न कभी दोनों को भिन्न कभी अभिन्न देखता है। वह यह चाहता है कि दोनों स्वरूप स्थिर रहे—क्या किसका है इसे वह निश्चय नहीं कर सकता, तब विवेक का उद्भव होता है। विचार जहाँ तुलना का चेतन रूप है, विवेक बोध का चेतन रूप है। विचार और विवेक से 'चित्त' अथवा चैतन्य की वृत्ति पूर्ण बलवती होने लगती है।

१३—बलवती चेतना में बड़ी गति और चञ्चलता रहती है। यह उदय होकर मानस और मस्तिष्क की प्रत्येक प्रवृत्ति पर शासन जमाती है और प्रेरणा देती है। यही चेतना इसलिए व्यग्र रहती है कि आत्म-साक्षात्कार किया जाय—यह अपनी गति और व्यग्रता से उपलब्ध सामग्री से अपनी मौलिक खोज के सन्तोष के निमित्त कितने ही रूपों को स्वयं निर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ने के लिए प्रवृत्त होती है। यही आनन्द के लिए उत्कण्ठित होती है। चेतना का यह आत्म-रूप उद्योग ही कल्पना कहलाती है। यह कल्पना ही चेतना का यथार्थ लक्षण है। इसी की ऊर्ध्व गति होती है तब आनन्द की अनुभूति हो पाती है। यहीं, इसी के द्वारा मनुष्य अपने व्यक्तित्व को खड़ा कर सकता है, यहीं वह कुछ सृजन करने का दावा कर सकता है।

११—चित्त की तीसरी वृत्ति कल्पना ही सृजन-भाव को उद्रेक कर 'मनुष्य' के अहङ्कार को अवस्थित करती है।

इस विवेचन से 'कल्पना' का मनोवैज्ञानिक रूप स्थिर होता है। भारतीय ऋषियों ने समस्त सृष्टि में तीन स्थितियों की परिकल्पना की। उन्होंने उन तीनों के द्वारा ही ब्रह्म-सृष्टि के विराट तथा सृष्टि के मूल का नाम करण करके उसे 'सच्चिदानन्द' कहा। सत, चित और आनन्द कि मानसिक क्षेत्र में शोध से ज्ञात होता है कि कुछ मानसिक वृत्तियाँ केवल सत है—मन और बुद्धि तक हम 'सत' मान सकते हैं, कारण यह है कि ये वृत्तियाँ शरीर के अन्य आवश्यक धर्मों की भाँति शारीरिक सत्ता से सम्बद्ध हैं, इनमें स्वयं कर्तृत्व न होकर ग्राहक शक्ति विशेष है। भारतीय दार्शनिकों ने इसीलिए मन तथा बुद्धि के उपरान्त 'चित्त' को माना। 'चित्त ही मनुष्य की 'चेतन-वृत्ति' है। यही मनुष्य को विचार-विवेक और कल्पना से मुक्त करती है, विचार और विवेक तक मनुष्य का चेतन मानस पदार्थ की जड़ सीमाओं से घिरा रहता है। कल्पना के लिए जड़ जगत से अतिरिक्त चेतन जगत की सत्ता भी है।

और इसी चेतन जगत अथवा सत्ता की शक्ति और कर्तव्य को कल्पना प्रकट करना चाहती है—वह सर्व निर्माण में प्रवृत्त होना चाहती है, जो सामग्री उसे प्राप्त है ज्ञान-राशि के रूप में उसका वह स्वच्छन्दता पूर्वक उपयोग करना चाहती है, वह बन्धनों के बन्धन-रूप में ग्रहण नहीं कर सकती। चित्त की यही वृत्ति है जो मानस-क्षेत्र में 'अहंकार' को उभारती है और आध्यात्मिक में आनन्द की शोध करती है और सत और आनन्द को मिलाती है। यहीं हम यह समझ सकते हैं कि मनुष्य के विकास और उसके जीवन को सजीव बनाने के लिए कल्पना अनिवार्य है।

किन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि से केवल मानसिक वृत्तियों का निरूपण ही पर्याप्त नहीं होता। भाव भी एक आवश्यक तत्व है, और उन्हें मनोविज्ञान में महत्व प्राप्त है। भावों में आरम्भिक भाव औत्सुक्य अथवा उत्कण्ठा का होना चाहिये। ज्ञान अथवा अनुभव के लिए इसके बिना तत्परता नहीं हो सकता। दूसरा स्थान भावों का है। भावोपरान्त 'राग'। यही 'राग' रस और अलौकिक आनन्द में परिणति पा लेता है। मन का सम्बन्ध उत्कण्ठा से होना, बुद्धि का का स्वार्थ-श्रेय से, 'स्व' से, चित्त की 'विचार' वृत्ति का भाव से, विवेक का विराग से और कल्पना का 'राग' से। इस दृष्टि से कल्पना मननः और भावतः दोनों से 'आनन्द' के लिए मानव को प्रस्तुत कर देती है।

कल्पना और आनन्द—कल्पना मनुष्य के ज्ञान और अनुभव की सामग्री से मन चाहे रूप प्रस्तुत करती है। ऐसा करने में कल्पना एक पावन आध्यात्मिक कर्म करती होती है। वह ऐसे रूप गढ़ती है जो 'स्व' के होते हुए भी 'पर' के हो जाते हैं, और 'पर' के होकर भी 'स्व' के होने का दावा करते हैं। कल्पना ही 'स्व' और 'पर' के बीच की भित्ति को ढहा देती है। यह 'स्व' का 'पर' में और 'पर' का 'स्व' में तादात्म्य और समाहार कर देती है। यही 'साधारणीकरण' का व्यापार है। यह बिना कल्पना के संभव नहीं। 'स्व' और 'पर' के तादात्मय और समाहार का एक अर्थ है 'अहं' का 'परम' में विलीन हो जाना। कल्पना चित्त अथवा चेतन की सबसे प्रधान और प्रमुख वृत्ति है, सब वृत्तियों से ऊपर, अपने सृजनशील चमत्कार से सभी वृत्तियों को अभिभूत कर लेती है—'कल्पना' में मानव के मानस-व्यक्तित्व का संपूर्णत्व प्रतिष्ठित हो जाता है, और मानव में जो विधायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला एक विवेचन

श्री गोवर्द्धन शर्मा

कला क्या है ?—कला क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर यदि हम यह आशा करें कि हमें इस प्रश्न के उत्तर में एक ऐसी परिभाषा प्राप्त होगी जो प्रश्न को चारों खूटों से बाँधलें तो वह एक दुराशामात्र ही सिद्ध होगी। विद्वानों ने इसके लिये अनेक परिभाषायें गढ़ी हैं। भिन्न-भिन्न लोगों के अलग-अलग मत प्रगट किये हैं। शैली की राय है कि कल्पना को अभिव्यक्त करना ही कला है। टालस्टाय के शब्दों में कला मानवीय चेष्टा है। रवीन्द्रनाथ ने कहा है—जो सत् है, जो सुन्दर है, वही कला है। उपनिषद् कहता है—वास्तव में कलाविद् एक ईश्वर है और यह सृष्टि ही कला है। कला की सार्थकता को बताते हुये प्रसिद्ध इटालियन शिल्पी लिजानाद्वस्की ने कहा है मनुष्य एवं उसकी आत्मा की आकांक्षा को तूलिका की सहायता से प्रस्फुटित कर देने में ही कला की सार्थकता है। कला की विशेषता, सम्पूर्णता का आदर्श यही है, अथवा दूसरे शब्दों में शिल्पी मनुष्य की बाह्य प्रकृति के भीतर की उस मूर्ति को भी चित्रित कर देता है, जिसे देखना असंभव है, जिसे देखा नहीं जा सकता। अपूर्णता सम्पूर्णता की ओर बढ़ना ही इसका लक्ष्य होना चाहिये।

कला की विशेषता—कला की बहुत बड़ी विशेषता है और उसी की वजह से उसकी लोकप्रियता बनी हुई है। कला केवल यथार्थ का चित्र ही नहीं है वरन् उसमें एक आदर्श का समन्वय भी है। वह विशेषता है सम्पूर्णता का आदर्श दूसरे शब्दों में हृदय और मस्तिष्क का मधुर समन्वय ही कला है। यद्यपि कला का लक्ष्य सब दिन विवादास्पद विषय रहा है और है भी पर इतना तो सभी मानते हैं कि कला से हमें ऐसी शक्ति अवश्य मिलनी चाहिए जिससे हम अपना दुख भार हलका कर सकें। कुछ लोग जो उपयोगिता-वाद के कायल हैं, यह भी कहते हैं कि कला को हृदयंगम

मौलिक वृत्ति है, उसका उत्कर्ष हो उठता है। इन दोनों से ही मानव का निजी व्यक्तित्व और उसका मोह व्युत्पन्न होता है, यही 'अहं' की स्थिति है और इसकी मानव की अनुभूति 'अहंकार'। 'अहंकार' में समस्त व्यक्ति समा जाता है। उधर 'अहं' से अतिरिक्त-मानव के निजी व्यक्तित्व से बाहर जो 'पर' की पराकाष्ठा है वह तत्व 'परम-तत्व' है। व्यष्टि का चरम अहं—समष्टि का चरम 'परम'। व्यष्टि का चरम 'अहं' जिस प्रकार मन-बुद्धि के सत पर आरूढ़ चित के उत्कृष्ट करण पर प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार सृष्टि का—समष्टि का 'परम' भी 'प्रकृति के सत और पुरुष के चित के ऊपर आनन्द' में समाहित है। चित-चेतन-क्रिया से ऊपर 'आनन्द' है, नीचे निरानन्द सत की भूमि निरानन्द है वह तो मात्र धर्म से धारण की हुई है—कर्तृत्व और निर्माण में जो 'अहं-परं' की अभिव्यक्ति का 'आनन्द' है वहाँ नहीं। अतः 'अहं' व्यष्टि के 'आनन्द' का पर्याय है—जो सत व्यापी मन-बुद्धि उपार्जित संस्कार-परिभाषाओं से आवृत्त है। कल्पना मन और बुद्धि की इस जड़ता को उच्छिन्न करके 'अहं' को 'परम' के 'आनन्द' में, और 'परम' के आनन्द को 'अहं' की पुट्टा में उँड़ेल देती है तभी कवि रहस्य-भेद न करते हुए अवाक् कह उठता है।

'हेरन हार हिरान समुद समानो बुन्द में'—इसी से उसमें मुग्धता आती है. पर समष्टि का परम-सत्य उसे आनन्द विभोर कर देता है। यही कल्पना का यथार्थ पुरुषार्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर हमें एक ऐसा उत्साह मिलना चाहिये जिससे हम अपनी गूढ़ समस्याओं को सुलझा कर संसार में अपना स्वत्व प्राप्त कर मानवता की ओर अग्रसर हो। यही कला में निहित शक्ति है। ऐसी ही कला के लिये शायद थियोफिल गाँटियर ने कहा था—"सभी चीजें नष्ट हो जाती हैं, केवल महान् कला ही जीवित रहती है। नगर ध्वंस हो जाते हैं किन्तु मूर्ति नहीं।

कला का माप दण्ड—विद्वानों में इस विषय पर अनेक मतभेद हैं। मेरी समझ में तो सच्ची कला वह है, जिसमें दृष्टा अपने आपको भूल जाय, आत्म-विस्मृत हो जाये। ओलम्पिया की प्रसिद्ध यूसियस की विराट मूर्ति के लिये ये सर्व-विदित उद्गार मेरे मत की पुष्टि करते हैं कि कोई व्यक्ति जो अपनी आत्मा में भारीपन अनुभव कर रहा हो, जिसने अनेक आपद और कष्टों को अपने जीवन में झेला हो, जिसको सुख की नींद भी न बदी हो वह भी इस विशाल मूर्ति के सम्मुख अपनी क्षणभंगुर जीवन के समस्त दुर्भाग्यों और आपदाओं को भूल जायेगा। कला की यह एक महान् विशेषता है कि वह हमें आत्म-विस्मृत कर देती है—हम अपने आप में खो जाते हैं। यदि आप किसी कलाकृति को देख कर आत्मविभोर हो उठते हैं, वह निसंदेह एक श्रेष्ठ कला का नमूना है चाहे उसकी शैली वा स्वरूप कुछ भी हो। यदि किसी कला-कृति को देख कर आप आत्मविस्मृत नहीं हो पाते तो चाहे वह श्रेष्ठ कलाकार की कृति क्यों न हो वह महान् कला का द्योतक नहीं हो सकता। यदि किसी हँसी के चुटकुले को आनन्ददायक बनाने के लिये समझाना जरूरी हो तो वह किसी भी हालत में अच्छा चुटकुला नहीं कहला सकता। ठीक इसी प्रकार महान् कला-कृतियों का प्रभाव अनायास ही दृष्टा पर पड़ जाना चाहिये। कला के लिये यही मापदण्ड मेरी समझ में सबसे उपयुक्त है। महान् कला इसीलिये स्थायी और सबल सांस्कृतिक प्रतीक होती है।

कला तथा धर्म व नैतिकता—कला के विकास में धर्म वा नैतिकता ने बहुत सहायता की। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि धर्म और नैतिकता के लिये, कला का होना आवश्यक था। दोनों एक दूसरे पर अवलम्बित रहे, एक दूसरे से अनुप्राणित होते रहे। पर इसका अर्थ यह नहीं कि कला में नैतिकता अवश्य हो। किसी विद्वान लेखक ने लिखा है—'उच्च अङ्ग की कला के भीतर किसी तत्व की खोज करना सौंदर्य देवी के मन्दिर को कलुषित करना है' यदि नीति की छोटी मोटी बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता तो हम आज महाभारत के समान विपुल काव्य से वञ्चित रहते। द्रोपदी के पाँच पति, कुन्ती का कौमार्यावस्था में माता बनना कहाँ तक नीति सङ्गत है। कालिदास का मेघदूत क्या नीति सिखाता है? पर दूसरी ओर यह कहने वाले भी हैं कि कलाकार की आज की चित्रांकणशाला कल मानवता का मन्दिर होगी।

कला का सत्य—आज के वैज्ञानिक प्रखर सत्य-शोधक आइन्स्टीन ने अपनी पुस्तक "World as I see it" में, भावना द्वारा सत्य की रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखा है—वह सुन्दरतम वस्तु, जिसका कि हम अनुभव मात्र कर सकते हैं, वह रहस्यमय है। वह तो मौलिक भावानुभूति (Emotions) है। जो सच्ची कला और सच्चे विज्ञान के पालने में झूल रही है। जो उसे नहीं जानता और विस्मृत-विमुग्ध नहीं हो सकता, वह मृत है, एक बुझी हुई मोमबत्ती की तरह है।" इसी रहस्यानुभूति का प्रगटीकरण ही कला का धर्म है। इस मायने में और केवल इसी मायने में कला और धर्म के अन्तरङ्ग सत्य में कोई भेद नहीं है।

धर्म की तरह ही कला मनुष्यमात्र के लिये है। महाकवि गेटे ने एक बार लूइर्न से कहा था—"कला और विज्ञान में मैं व्यथाजनकभाव से त्राण पाता हूँ, क्योंकि उनका सम्बन्ध समग्र संसार से है, उनके आगे राष्ट्रीयता की संकीर्ण सीमा टूट जाती है।" और एक स्थान पर उसने लिखा था—'इस सीधी सी बात पर लोग विश्वास करना नहीं चाहते कि कला का महत्व उद्देश्य उच्च भाव को चित्रित करना है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि कला में सत्य शिवं सुन्दरं की भावना किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। और यही कला का सत्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का एक भावुक लेखक—वियोगी हरि

श्री चन्द्रमाप्रसाद खरे

गद्य-काव्य पढ़ने में काव्य से कुछ कम आनन्द नहीं आता। कवि की 'हृदय-तन्त्री के तारों के स्वर से हमारी भी तन्त्री झंकृत हो जाती है; कवि के समान हमारा हृदय भी छटपटा उठता है और उसे निस्संदेह आल्हाद प्राप्त होता है। श्री वियोगी हरि की रचनाएँ भी किसी सहृदय के सरस हृदय पर बिना 'सजीव-आघात' किये नहीं रहतीं। ये आध्यात्मिकता से ओतप्रोत हैं। भक्ति के उद्‌गार मार्मिक होने के कारण मर्म-स्पर्शी हैं। यद्यपि उनकी भक्ति-भावना और प्रेम सम्बन्धी विचारों पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव है, 'उन्हीं सा ही प्रेम का अक्खड़पन' उनके गद्य-काव्यों में हमारे सामने आता है, परन्तु संयोग तथा वियोग की अनेक दशाओं की कल्पना बड़ी ही मर्मस्पर्शी तथा प्रभावोत्पादक हैं। आपके छोटे-छोटे गद्य-गीत "भावना" तथा "अन्तर्नाद" में प्रस्फुटित हो पड़े हैं। आलोचक प्रवर श्री रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'उनमें आलम्बन के प्रति प्रेम भाव का जैसा पुनीत उत्कर्ष है उसी के अनुरूप मनोरम रूप विधान और सरस पद विन्यास भी है।' उनकी "भावना" मिलन-पुष्पाञ्जलि लिए आरती सजाए हृदय-मंदिर के द्वार पर उत्कंठित खड़ी है। वह कहती है, "....स्वीकार क्यों नहीं कर लेते?...." यहीं से उनकी पंक्तियों में अदृश्य की प्रेरणा से वह शक्ति और भक्ति आ जाती है जिससे उनके भाव सात्विकता से कम्पित हो जाते हैं और उनकी 'विरही-प्रीति' जान्हवी से भी अधिक पवित्र हो जाती है....उसकी स्मृति धारा उनके लिए वेणु में लहराने वाली एक सरस स्वर-धारा हो जाती है और इसे वे कल्पना-धारा में मिल जाने वाली प्रतिभा धारा के रूप में देखने लगते हैं। इस पुनीत धारा की तरङ्ग-तरङ्ग में दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता है। इसी आध्यात्मिकता से जीवन पाकर उनकी भावना वेग पाती जाती है; इसी से उसको गति मिलती है।

कवि के इन गीतों को समझने से पहले उसकी दार्शनिक पृष्ठ-भूमि का ज्ञान होना आवश्यक है। कवि ने स्वयं अपनी 'दार्शनिक परिभाषाओं' के विषय में बहुत कुछ कह सुन लिया है। अतः यहाँ पर हम उसी के शब्द उद्धृत करते हैं—

(अ) "अपने मत को मैं वशेषिक वादियों एवं नैयायिकों के शब्दों में 'परिमाणुवाद' और 'आरम्भवाद' कहता हूँ।"

(ब) "कपिल सिद्धान्त से मेरा 'गुण-परिमाणवाद' कुछ भिन्न है।"

(स) "प्रत्येक भावुक भ्रमर का आस्वादन अनुभव स्व स्व दृष्टि से सत्य और सम्यक् है.....यही मत 'अनेकान्तवाद' है।"

(द) "हृदय नाथ! भक्तों की दृष्टि में तुम सगुण और साकार भासित होते हो।.....तुम एक हो या अनेक, यह मेरे परिमित ज्ञान से परे है किन्तु यह तो निर्णीत और निश्चय है कि तुम्हारा प्रेम निसन्देह एक और अद्वैत है। तुम्हारी प्राप्ति के साधनों की उसी प्रेम से उत्पत्ति, उसी में स्थिति और उसी में संहति भी है। उसी में सत् चित् आनन्द की अनिर्वाच्य अनुभूति प्राप्त होती है। "अद्वैतवाद" का प्रत्यक्ष दर्शन मुझे अपने इसी मत द्वारा हुआ है। इसीसे मैं 'अहं ब्रह्मास्मि' न कह कर अहं प्रेमास्मि कहता हूँ।"

कवि अपने आपको 'शास्त्र-विहीन', 'शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ' बताता है, पर ऐसा है नहीं। उसकी पंक्ति-पंक्ति में दार्शनिक चिन्तन है। चिन्त्य प्रयोग बड़ी ही सतर्कता के साथ कल्पनापूर्ण ढङ्ग से व्यक्त किये गए हैं इसलिए वे अधिक दुरूह नहीं हो पाए। देखिए—'तस्यां जागर्ति संयमी'—अर्थात् जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा संसार सोता है तब संयमी जागता है, क्योंकि यही उसकी साधना का समय है—कितने सुन्दर ढङ्ग से व्यक्त किया गया—

"फूलों की डलिया लेकर वह मालिन नित्य आधीरात को उद्यान में पहुँच जाती है। फूल चुनने का भला यह भी कोई समय है! माला गूँथने की यह भी कोई बेला है!"

उपास्य अस्पृश्य है, इसी कारण उसके रूप को 'सुन्दर-ज्वाला' की संज्ञा दी—

"संतप्त नेत्रों को ठण्डा करले, कोई रोकता नहीं पर मूर्ख, उसके स्पर्श से अपने शीतल अंगों को कहीं जला न बैठना....।" इसकी अभिव्यक्ति खिले हुए पङ्कज-पद्म के रूप में करना कितना सार्थक है—

"अधीर भावुक! तू ही बता, नीरस दृष्टि को उसकी सरसता में विभोर कर लेना कल्याणकर है अथवा उसे तोड़ कर अपने अमल अङ्ग पर कीचड़ का अङ्गराग कर बैठना?"

अपनी 'मधुकरी-यात्रा' पूर्ण करने की कवि की कल्पना भी हृदय-स्पर्शी तथा दार्शनिक है। वह किसी स्थितप्रज्ञ महापुरुष के ध्यान-सरोवर में विकसित परानन्द पद्म से यथेष्ट मधु लेकर अपनी 'मधुकरी यात्रा' पूर्ण करना चाहता है। उसकी फुलवारी झुलस चुकी है, पर वह जानता है इसी 'मधु' से उसका यह उजड़ा उपवन फिर से हरा भरा हो सकता है। 'सूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी' वह यह आशा रखता है।

"उस पार" पर भी कवि के चिन्तन में समुचित गांभीर्य तथा दार्शनिकता है। उसके मन में—'इस पार प्रिये तुम हो मधु है, उस पार न जाने क्या होगा—का संशय नहीं है। उसकी विरह-वाटिका जल कर राख की ढेर हो गई इसी कारण उससे यह 'विलास-भवन' भी देखा नहीं जाता और वह कह उठता है—"(माँझी) यह झाँझरी नाव शीघ्र खोल दे!"....पार अज्ञात है पर कवि का इसको चिन्ता नहीं इसी कारण वह एक स्थान पर 'न जाने क्या होगा' का विचार न कर कहता है—

"उस नदी के राह ही तुम उस स्थान पहुँच जावोगे जहाँ से लौटकर यहाँ पुनरागमन नहीं होता।"

इस प्रकार कल्पना की उड़ान में कवि की दृष्टि जीवन से हट नहीं गई है। वह उसके दार्शनिक पक्ष पर लगी हुई है। इसी कारण उसकी उक्तियाँ गम्भीर तथा चिन्तनीय हैं।

अब कवि की 'साधना' पर दृष्टि डालिए। उसने संसार में कामना को साधना और साधना को कामना के रूप में देखा। "वासना में उपासना और उपासना में वासना की प्रतिच्छाया देखकर मैं आजतक अपने जीवन मरण में सामञ्जस्य स्थापित न कर सका" उसकी यह उक्ति प्रत्यक्ष रूप से संकेत करती है कि संसार में लोग क्षीर को फेंक कर नीर से नवनीत निकालने की यावज्जीवन चेष्टा करते हैं—सार वस्तुओं को छोड़कर असार वस्तुओं में लगी रहते हैं। "वाणी अनृत और अश्लील संलाप से कटु और कलुषित हो गई....परापवाद की प्रताड़ना ने सरसा रसना का रस-च्युत कर दिया....स्वर में मनोज्ञता का लेश मात्र भी न रह गया"....फिर आज कैसे ईश्वर का आह्वान-गायन किया जा सकता है? "नेत्र निरर्थक और निन्द्य दृश्य देखते देखते धुँधले और ज्योतिर्हीन हो गए!" फिर कैसे जीवितेश्वर का दर्शन किया जावे? पर कवि को निराशा नहीं। वह कहता है कि "मैंने अश्रुओं से पाप-पङ्क पखारा है....इन्हीं सुधा-सीकरों से मैंने कई बार अपने हृदय की प्यास बुझाई है। इसीसे इन्हें मैं 'तीर्थ-निर्झर' मानता हूँ।" अश्रुओं से पापी से पापी हृदय भी धुल जाता है। बिना प्रेमाश्रु बहाए हमारी आँखें निष्कपट सेवा कर ही नहीं सकतीं। इन्हीं प्रेमाश्रुओं का वरदान है कि कवि का चञ्चल चित्त चाहता है कि वह चञ्चरीकवत् निरन्तर अपने हृदय-वल्लभ के पाद-पद्मों के पराग का पान करता रहे और इसी में तन्मय बना रहे। यही तन्मयता उसके गद्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गातों में सवत्र पाई जाती है। यहाँ हम उसका तन्मयता के कुछ उदाहरण देते हैं—

(अ) "तुम हटाते हो, मैं गले में हाथ डालकर तुम्हारे हृदय से चिपट जाता हूँ! तुम दुलारते हो, मैं रूठ कर मचल जाता हूँ!"

(ब) "हृदय हारी! मेरा था ही क्या? अपना एक चञ्चल चित्त ही तो था। सो उसे अपना कर अच्छा ही किया, मुझे कोई उपालम्भ देने को नहीं। तुम मुझे जो अपनी स्मृति माण दे गए उसे पाकर मैं किसी अलकेश से कम भाग्यवान नहीं।"

(स) "गर्व क्या बुरा है? और फिर भी तुम्हारे ध्यान का।...."

कवि को 'कच्चे धागे' की प्रणय-रज्जु में बँधे रहने में ही सच्चा आनन्द है। पर उसका आनन्द पारलौकिक है। उसने सांसारिक रूप रसिक देखा पर वह सौन्दर्य का अर्थ न लगा सका। इसी विचार से वह कहता है कि "रूप देखा और रूप रसिक भी देखा, उपास्य देखा और उपासक भी देखा पर जिस रूप में मैं तन्त्री का तार और उसकी झनकार देखता हूँ उस रूप में अद्यापि रूप और रूपरसिक तथा उपास्य और उपासक न देख सका।" पारलौकिक रूपासव के लिए उसकी चाह देखिए—

"उड़ेल दो प्यारे! थोड़ा सा रूपासव इन खाली प्यालियों में। यह तो निश्चय ही है कि तुम्हारा लावण्य मद्य छोड़ कर ये हठीली प्यालियाँ स्वर्ग की सुधा को भी अपने हृदय में स्थान न देंगी!" इसी में वह सम्पूर्णता समझता है, इसीलिए वह संसार को सावधान हो जाने के लिए कहता है—

"सावधान! यों ही न हाथ डाल देना! वह एक अछूता कटोरा है। उसे वसंत के मृदु समीर ने उल्लसित कुसुम कलियों से रस ले ले कर भरा है। रसिक मधुकर उस पर मँडराता ही है, ओठ लगाने का वह भी साहस नहीं करता। फिर तू क्यों उसमें कोयले से रँगा काला बेलूटा हाथ डाले देता है! क्या तू उस रस का निर्दयता और नीरसता के साथ उपभोग कर उसे अक्षुण्ण नहीं रखना चाहता?" 'आज जगत के हँसते फूल अपने रूप और यौवन को प्रेम की महो पर गला कर न जाने कहाँ चले गए!', 'अब सीप के वे अनबेधे दाने कहाँ?'....यह सोचकर उसको दुख होता है और वह—"विलासियों! इसी माला को कण्ठ से लगा कर अब उन अनबेधे दानों की याद किया करो!" यह कह कर आँसू बहाता है। उसकी सम्पूर्ण सद् इच्छाएँ मानव के साथ हैं।

कवि किन उद्देश्यों को लेकर चला इस प्रश्न का उत्तर हमें उसकी रचनाओं के अध्ययन करने पर ज्ञात हो सकता है। उसके उद्देश्य सुलझे रूप में हमारे सामने आते हैं। यहाँ केवल संकेत के लिए हम "अन्तर्नाद" से दो-तीन उद्धरण उपस्थित करते हैं—

(अ) (ईश्वर को) कड़ी धूप में मजदूर के पसीने की टपकती हुई बूदों में देख। दीन दुखियों की आँसू भरी आँखों में देख।

(ब) तुम्हें अपना सौन्दर्य ही देखना है तो उसे आत्मा के निर्मल दर्पण में क्यों नहीं देखते? चले जावो आत्मा के नीरव अन्तस्तल में। वहीं तुम अपने लावण्य और माधुर्य का यथेष्ट चित्राङ्कण कर सकोगे.... यह नकली दर्पण तो उसी क्षण तुम्हारे हाथ से छूट कर गिर पड़ेगा!"

(स) देख, घोड़े की बाग मोड़ ले, नहीं तो आगि धड़ाम!....देख बाग मोड़ ले....तू उस तङ्ग गली से जा....बहादुर सवार, जब तेरा यह मस्त सैलानी घोड़ा हाँफने लगे, पसीने से तर हो जावे तब उतर पड़ना। बस वहीं सफर पूरा हुआ समझना। तू अपना लक्ष्य स्थान पा लेगा। सुना है उस स्थैर्य को स्थित-प्रज्ञों ने "ब्राह्मी-स्थिति" का नाम दिया है।

कवि के विषय में एक और विशेष बात है। उसे मानव का सदैव ध्यान है। इसी कारण वह वर्तमान परिस्थितियों से असम्बद्ध नहीं है। वर्तमान दशा पर झुँझला कर उसकी लेखिनी से अग्नि-उद्गार" और उद्गार निकल पड़े। वह कब तक चुपचाप आँसू बहाता, इसी से विवश होकर उसने जोर से कह दिया—

(शेष पृष्ठ १६० पर)

GC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-साहित्य : पृष्ठभूमि और परिणति

श्री आनन्द नारायण शर्मा, बी० ए० 'आनर्स'

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ ही उन भावनाओं से हुआ है, जिनका विकसित रूप हम सन्त-काव्य में पाते हैं।

ईसा की आठवीं-नवीं शताब्दियों में भारत का राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक वातावरण अन्धकार पूर्ण हो रहा था, क्षुब्धता से भर गया था। सारी भारत कई छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा हुआ था, जिनमें पारस्परिक संघर्ष होते रहते थे। बौद्ध धर्म विकृत होकर 'वज्रयान' सम्प्रदाय के रूप में फैला हुआ था, जहाँ तन्त्रवाद अपनी चरम सीमा को छूने गया था। तारा, कृत्या आदि की पूजा होने लगी थी। जिस अवतारवाद पर बुद्ध ने अविश्वास प्रकट किया था, उसे ही अपनाकर बुद्ध के चेले स्वयं आलोचना का विषय बन गए थे। ब्राह्मण धर्म के पाखण्ड और बिडम्बना का उनमें भी प्रवेश हो रहा था। अन्धविश्वास में पड़ा समाज प्रकाश-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील था।

ऐसी ही अवस्था में कुछ महात्माओं का अविर्भाव हुआ, जिन्होंने व्यक्तिगत साधना के बल पर धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति की। और उसी की अभिव्यञ्जना तत्कालीन कला और वाङ्मय द्वारा हुई। इन महात्माओं में मुख्य थे हिन्दी के आदि कवि सरहजा, कण्हपा, कण्हर्पो, कणेड़िया प्रभृति, जिन्होंने परम्परागत भाषा संस्कृत प्राकृत का परित्याग कर जन भाषा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी में अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन और उपदेश किया। अनेकता में एकता, रूप में सत्य, उच्छृङ्खलता में संयम और शृङ्खला की संस्थापना इनके द्वारा हुई।

पढिअ सकल सन्त बक वाणइ।
तेहरि बुद्ध बसन्त म जाणइ॥

अभणागमण न तेन बिखंडिअ।
तोनि णिलज्ज भणइ हउँ पण्डिअ॥'

इन पर बौद्ध धर्म के वज्रयानी सिद्धान्तों का प्रभाव था। फिर भी सुधार की जो चेष्टा इन्होंने की, वह स्तुत्य है। और सबसे बड़ी इनकी महत्ता तो यह है कि संस्कृत की रूढ़ि के प्रति विद्रोह कर हिन्दी का झण्डा इन्होंने फहराया। जनभाषा में जैन धर्मावलम्बी साधुओं और मुनियों ने भी कम प्रयोग नहीं किये हैं। भले ही इनमें सांप्रदायिकता की भावना अधिक हो, पर अपभ्रंश को सजाने-सँवारने का श्रेय इनको ही है। बल्कि राहुलजी ने तो यहाँ तक कहा है कि 'जैनों ने अपभ्रंश साहित्य की रचना और सुरक्षा में सबसे अधिक काम किया।' (हिन्दी काव्य धारा) इनके द्वारा निर्मित अपभ्रंश ही आगे चलकर हिन्दी के रूप में विकसित हुआ।

ये सन्त रहस्यात्मक उक्तियाँ कहा करते थे। जिनका सांकेतिक अर्थ आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख रहता था। लौकिक पक्ष की ओर भी उनका अर्थ लग सकता था। इनका धर्म 'महासुखवाद' था। महासुख या महासुहवाद के अनुसार साधक-शून्य में इस प्रकार विलीन हो जाता है जैसे नमक पानी में। इसको मूर्त्त किया गया युग-बद्ध (स्त्री-पुरुष का आलिङ्गन बद्ध जोड़ा) की प्रतिभा बनाकर, इसके अन्तर्गत प्रज्ञा और योग द्वारा परमानन्द की प्राप्ति बतलाई गई है। प्रज्ञा बुद्धि का ही एक तत्त्व-विशेष है, जिसकी साधना एकाग्रता में है। इनकी अटपटी वाणी—'काया तरुवर पंच बिड़ाल', 'गंगा जमुना माँझि बहेरी एक नाड़ी' आदि योग की ओर आध्यात्मिक ढंग से संकेत करती हैं। साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्त्व न होने पर भी इन ग्रन्थों का ऐति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हासिक महत्त्व है। इन्हीं की चलाई प्रणाली से सन्त-साहित्य की सृष्टि हुई है। इसी परम्परा का विकसित रूप गोरखनाथ के नाथ सम्प्रदाय में तथा व्यापक एवं पुष्ट रूप ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति-शाखा में पाया जाता है, जहाँ सन्त-काव्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा प्रतीत होता है।

लेकिन इन सन्तों की अटपटी वाणी का, जटिल सिद्धान्तों और रहस्यात्मक प्रकृति का व्यापक प्रभाव जनसमाज पर अच्छा नहीं पड़ा। इनके अयोग्य शिष्यों ने कालान्तर में सांकेतिक पदावली का उल्टा अर्थ लगाया, जिसमें आध्यात्मिकता का अभाव और लौकिकता का बाहुल्य था। कुपरिणाम में लोग भ्रष्ट होने लगे। कौल, कापालिक आदि निकले, अशिव की परिख्याप्ति हुई और सिद्ध सम्प्रदाय और साहित्य का ह्रास होने लगा। उल्टा अर्थ लगाने के कारण वासना, भोग-लिप्सा का आग्रह हुआ और 'पंचमकार' जीवन के लक्ष्य बन गए। आध्यात्मिक अर्थ को लोगों ने नहीं समझा और जनसाधारण का झुकाव कुरुचि की ओर हुआ। सिद्धों की सिद्धई समाप्त हो गई। यदि इस भग्न खंडहर का प्रतीक मत्स्येन्द्रनाथ को माना जाय तो 'जाग मछन्दर गोरख आया' का अर्थ स्पष्ट हो जायगा। यह उद्‌बोधन केवल मत्स्येन्द्रनाथ के लिए नहीं, अपितु तत्कालीन जन-समाज के लिए भी उतना ही सार्थक है।

बहुत संभव था कि सिद्धों की परम्परा समाप्त हो जाती कि गोरखनाथ नामक एक प्रतिभा-सम्पन्न हठ-योगी का प्रादुर्भाव हुआ। यों तो नाथ-पन्थ का आरम्भ आदि-नाथ से ही माना जाता है, पर उसके अभिनव रूप को प्रतिष्ठित कराने का श्रेय गोरखनाथ को ही है। गोरखनाथ पहले बौद्ध थे, बाद में शैव हो गए थे। इन्होंने अपने मत में योग को प्रधानता दी। योग का मूल-मन्त्र है 'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः' और मार्ग है कष्टसाध्य-साधनाएँ। शारीरिक आभास और मन के वेग का भिन्न-भिन्न प्रकारों से दमन कर एकाग्रता का उपदेश इसमें दिया गया है। गोरखनाथ ने मूर्ति-पूजा, तन्त्रवाद आदि का खंडन कर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। यहीं सिद्ध-काव्य में जकड़ी हुए 'अशिव' का अन्त होकर उसके एक नए संस्करण का निर्माण होता है। गोरखनाथ ने ब्रह्मचर्य सदाचार-संयम को महिमा बतलाई है। मनुष्य सांसारिक सत्ता और तत्सम्बन्धी द्वैत-भाव का लो तथा उसके स्थान पर परमात्म सत्ता या अद्वैत में हो जाना ही योग की व्यापक व्याख्या है। सिद्धान्त के अनुसार 'महाकुण्डलिनी' नामक शक्ति है, जो सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त है। व्यष्टि व्यक्त होने पर इसी शक्ति को 'कुण्डलिनी' कहते आगे चलकर इसमें शरीर में 'षट्चक्र' की कल्पना गई है, जिन्हें भेद न करने के बाद मस्तक में 'शून्य चक्र' है, जहाँ जीवात्मा को पहुँचा देना योगी चरम लक्ष्य है। इन योगियों की अद्भुत आश्चर्यजनक करामातों की सैकड़ों कहानियाँ देश प्रचलित हैं। योगमार्ग में रहस्यवाद की झलक स्थान-स्थान पर मिलती है। लेकिन इसका रहस्य पूर्ववर्ती कवियों के रहस्यवाद की तरह अटपटी पर आश्रित नहीं है। भाषा और भाव दोनों से वह उत्कृष्ट और मार्जित है। गोरखनाथ के इस शाखा को बल मिला जालंधर, कणेरीपा चरपटनाथ, धूँधलीमल आदि से। इन महात्मा की महत्त्व साहित्यिक और ऐतिहासिक दोनों से है। इन्होंने वह पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत की, जिस पर कबीर ने अपना साहित्य प्रतिष्ठित किया।

फिर भी नाथपन्थ का हठयोग और कबीर रहस्यवाद एकदम एक ही नहीं। इनमें प्रधान अन्तर है कि योगमार्ग आचरण या जीवन की साधना का है, जो उन साधनाओं को पार करता हुआ अलौकिक सत्ता की ओर ले जाता है। परन्तु ज्ञान योग की चरम कोटि के बाद प्रारम्भ होता है। जब योगी तपस्या द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो योग की छूट जाती है। अतएव जहाँ योगमार्ग की परिसमाप्ति वहीं से ज्ञानमार्ग का आरम्भ। दूसरी बात यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की साधना में प्रेम और रागात्मकता की प्रधानता जबकि योगियों में इसका नितान्त अभाव था। न सांख्य और वेदान्त दर्शनों की विषमता है, पर कहीं योग का खंडन नहीं किया है। हाँ, उसमें और वैष्णवमतों का समावेश अवश्य कर दिया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में सहजमानी और नाथपंथी मार्गियों का अक्खड़पना कबीर पूरी मात्रा में है और उसके साथ ही उनका स्वाभाविक फक्कड़पन मिल गया है। इस परम्परागत अक्खड़पन और व्यक्तिगत फक्कड़पन ने मिलकर कबीरदास को अत्यधिक प्रभावशाली और आकर्षक बना दिया है।'

अपनी अव्यावहारिकता के कारण धीरे-धीरे सिद्ध सम्प्रदाय का भी ह्रास हो गया। वह कुछ योगियों तक ही सीमित होगया और जनता को एक ऐसे धर्म की आवश्यकता पड़ी, जो अपेक्षाकृत अधिक सरल हो। यह प्रौढ़ संत-मत का आविर्भाव-काल था। प्रौढ़-संत मत के विधायक कबीर हैं। उन्होंने आडम्बरों का तिरस्कार कर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उन्होंने अपने मत में रहस्यवाद के साथ सिद्ध और नाथ-साहित्य की मूलभूत विशेषताओं का समन्वय कर दिया। उनके अनुसार योग एक साधन है, उद्देश्य नहीं। ज्ञानाश्रय पर आसीन कबीर ने जब योग पर कुठाराघात किया तो वह उन्हें नीचा ही लगा। उनपर एक ओर भक्ति योग, एकेश्वरवाद और आडंबरों का तिरस्कार की भावना के रूप में सिद्धों तथा नाथपंथियों का प्रभाव है तो दूसरी ओर प्रेम की तीव्रता और भक्ति, माधुर्य उपासना के रूप में सूफ़ियों तथा वैष्णवों का प्रेम पर कबीर और उनके समकालीन संतों ने इतना अधिक जोर दिया है कि भक्त के बिना भगवान को भी अपूर्ण बतलाया है। सीमा और असीम के इस प्रेम मय ढंग से ही यह काव्य एक अभिनव सौंदर्य से सम्पन्न हो गया है।

कबीर ने अनेकता में एकता पाने का प्रयत्न कर जिस चिरंतन सत्य की गहरी और तीव्र अनुभूति प्राप्त की। मूर्ति पूजा का बहिष्कार उन्होंने इसलिए किया कि मुसलमानी शासन-काल में उसके लिए अवकाश ही न था। उसी प्रभाव के कारण उन्हें एकेश्वरवाद भी स्वीकार करना पड़ा, जहाँ वह हिन्दू-मुसलमान दोनों को मिला देना चाहते थे। उन्होंने राम-नाम को अपना कर जन साधारण के परिचित भगवान से अपने भगवान की एकात्मता साबित की। इसके अतिरिक्त रूपकों द्वारा योगमार्ग, वैष्णव मत आदि अत्यधिक प्रचलित मतों की अपने ढँग पर व्याख्या कर उन्होंने जनता का विश्वास अर्जित कर लिया। किन्तु उनके उपास्य शास्त्र वर्णित ईश्वर नहीं, मन, हृदय और प्राण में परिव्याप्त ईश्वर हैं। वह परमानन्द रूप हैं। पंडितों के संकीर्ण विधान वाले शास्त्र, धार्मिकों के बँधे हुए आचारों के नियम उनके लिए सुगम नहीं थे।

एक बात विचित्र है कि इस काल के प्रायः सभी संत कवि अंत्यज थे। सदन कसाई, दादू धुनियाँ, रैदास चमार, नाभादास डोम, नामदेव दर्जी, कबीर जुलाहा और नानक खत्री थे। इसलिए शास्त्र ज्ञान, बाह्य पूजा, मंदिर आदि के द्वार उनके लिए धर्म के ठेकेदारों द्वारा बन्द कर दिये गए थे। फलस्वरूप उन्हें अन्तर के मिलन-मन्दिर का महत्त्व और मर्म पाना पड़ा था। हिन्दी के लिए एक तरह से यह अच्छा ही हुआ अन्यथा सम्भव था कि वैभक्तिक साधना की आँच में तपे इन महात्माओं की वाणी का प्रसाद पाने से वह वञ्चित रह जाती। इनकी साधना सच्ची और अनुपम थी, जिसके बल पर अमरत्व की विभूति तथा ईश्वरत्व की अनुभूति इन्होंने प्राप्त की। उस अनुभूति की अभिव्यञ्जना ही सन्त-काव्य कहलाई। सन्त-काव्य की कला जीवन के लिए है। 'कला कला के लिए' का सिद्धान्त माननेवाले आलोचकों को हिन्दी-साहित्य के इस भाग में प्रवेश करने पर निराशा ही होगी। सन्तों की विचार-धारा सत्य की खोज में प्रवाहित हुई थी, जिसे काव्यत्व का प्रकाश मिला है। उसमें वाणी का चमत्कार या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न की बोझिलता नहीं, एक नैसर्गिक स्वच्छता और सरलता है, निष्कलुष हृदय का योग है। हार्दिक उमङ्ग की सहज विदग्धता, जो उनकी उक्तियों में आगई है, वह अत्यन्त भावापन्न है। यह ठीक है कि केशव और बिहारी की भाषा की प्रांजलता का अभिमान वे नहीं कर सकते, तुलसी, सूर, जायसी आदि की व्यापकता और सरसता ही उनमें मिलेगी, लेकिन भावों की एक तीव्रता है, जो स्वयं प्रभावोत्पादक है, इतनी कि उसे किसी संबल की आवश्यकता नहीं।

सन्त काव्य का ईश्वर निर्गुण है, एक है और अलक्ष्य है।

"मेरा साहिब एक है,
दूजा कहा न जाय।
सहिब दूजा जो कहूँ,
साहिब खरा रिसाय॥"
लोक मुख माथा नहीं,
नाहीं रूप कुरूप।
पुहु पलास ते पातरा,
ऐसा तत्त अनूप॥

साम्प्रदायिकता की संकीर्णता नहीं है उसमें।

और

"दोउ जन राह बिगाड़ि न भाई।
हिन्दू कहत है राम हमारा,
तुरुक कहै रहमाना।
आपस में दोऊ लरि-लरि मूए
मरम न काहू जाना॥"

अथवा

"काँकर पाथर जोरिके
मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे
बहिरा हुआ खुदाय॥"

× × × ×

"पाहन पूजे हरि मिलै,
तो मैं पूजुँ पहार।
ताते या चाकी भली,
पीस खाय संसार॥"

मुल्लाओं की फटकार—

"मुल्ला ते मुर्गा भला शहर जगावै सुब्ह।"

परम तत्त्व की प्राप्ति में बाधक माया का रूप—

"माया के दुई रूप हैं, सत्-मिथ्या संसार॥"

उस माया से छुटकारा गुरू की कृपा बिना संभव नहीं है।

"मिथ्या माया मोहिनी, जैसे मीठी खाँड़।
सद्गुरु की किरपा भई, नहिं तो करती भाँड़॥"

ज्ञान के लिए गुरु का होना अनिवार्य-सा है। इसलिए गुरु की महिमा बड़े आदर-सहित गाई गई है।

"गुरु गोविंद दोनों खड़े
काके लागौं पाय।
बलिहारी वा गुरू की
गोविंद दिया बताय॥"

योग का भी, जैसा कहा जा चुका है, सर्वथा परित्याग नहीं है। रहस्यात्मक ढङ्ग से उसकी ओर संकेत?

"रस गगन-गुफा ते अजर झरै।"

रहस्यवाद की प्रधानता है इस सन्त काव्य में। यहाँ आत्मा को एक पतिव्रता स्त्री माना गया है, जो पति (परमात्मा) से मिलने पर प्रसन्न हो उठती है। और उसी प्रसन्नता में उसका लय हो जाता है।

"दुलहिन गावहु मङ्गलचार।
हमरे घर आए राजा राम भरतार॥"

लेकिन यह मिलन बड़ी साधना और प्रतीक्षा के बाद होता है। इसलिए सन्त-काव्य में विरह की प्रधानता है। लेकिन वह साधारण विरह नहीं, इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका महत्त्व किसी भी भाँति कम नहीं है। वियोग की बात भी वे उसी मौज से कहते हैं, जिस तरह संयोग की।

"बिरहा-बिरहा मत कहू, बिरहा है सुलतान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान॥"

फिर भी कभी-कभी वेदना असह्य हो जाती है—

"कै बिरहिन कूँ मीच दै, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय॥"

बिरह-सम्बन्धी एक दूसरी अन्योक्ति—

"साँझ भए दिन बीतता, चकवा दीन्हा रोय।
चल चकवी वा देश को रन कभी ना होय॥"

कहीं तो यह पति-पत्नी सम्बन्ध है और कहीं दीपक और बाती का सम्बन्ध भी देखने को मिलता है। यहाँ रहस्यवाद एक दूसरे रूपक का आधार ग्रहण करता है।

"प्रभुजी तुम दीपक हम बाती।
जाकी जोति जगे दिन राती॥"

सन्तों के प्रेम में गलदश्रु भावुकता नहीं जो जरा-सी आँच से पिघल जाय। यह प्रेम ज्ञान द्वारा नीति और श्रद्धा द्वारा अनुमानित है। उनका मन जिस प्रेम रूपी मदिरा से मतवाला है, उसमें हिस्टीरिक प्रेमोन्माद का एकान्त अभाव है। भक्ति के अतिरेक में उन्होंने कभी अपने को सूर या तुलसी की भाँति पतित नहीं समझा। सिर से पैर तक वे मस्तमौला थे, बेपरवाह, दृढ़, उग्र। उन्होंने कहीं-कहीं निर्गुण और सगुण दोनों से परे अपनी उपासना को बतलाया है—

"निर्गुण-सगुण से परे तहाँ हमारो ध्यान।"

इसीलिए शुक्लजी को यह कहने की आवश्यकता पड़ गई कि "न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी।" फिर भी ईश्वर को उन्हीं नामों से उन लोगों ने भी पुकारा है, जिनसे साकार उपासनावाले पुकारते हैं।

"एक राम घर-घर में बोले।
एक राम दशरथ घर डोले॥
एक राम का जगत पसारा।
एक राम सबसे है न्यारा॥"

दरिया साहब इस 'राम' की जगह 'सत्पुरुष' शब्द का प्रयोग करते हैं।

निराकार ईश्वर से सम्बन्ध जोड़ने का प्रधान साधन है उपासना, जहाँ भय और श्रद्धा दोनों के लिए अवकाश है। वहाँ प्रेम का स्थान नहीं, भय-नियमों की कठोर साधना है। पर सन्तों में वैष्णव प्रगति-स्वरूप भक्ति का प्राधान्य है। ऐसी स्थिति में निराकार भावना का रूप स्पष्टतया पाकर कुछ-कुछ साकार का आभास देने लगता है। कबीर ने भक्ति को प्रधानता दी थी। उनका व्यक्तित्व इतना सशक्त था कि समग्र सन्त-साहित्य पर आच्छादित हो गया। इसलिए न तो उसमें निराकार की पूर्ण उपासना है, न साकार की उचित भक्ति, और सन्त-काव्य की ईश्वरीय भावना अस्पष्ट तथा कुछ असङ्गत सी हो जाती है।

सन्त-काव्य में गीतों की प्रधानता है, महाकाव्य नहीं के बराबर है। कारण यह कि वे महात्मा कुछ कविता लिखने के लिए नहीं लिखते थे। उस समय देश में जो प्रगतिशीलता और विषमता आ गई थी, उसे ही दूर करना उनका मुख्य उद्देश्य था। वे अपनी सीधी-सादी सधुक्कड़ी भाषा में जनता को विभिन्न मतवादों के जञ्जाल से निकल कर एक ईश्वर से आस लगाने का उपदेश दिया करते थे। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रबन्ध-पटुता की आवश्यकता न थी। गीत ही सबसे सरल और बोधगम्य साधने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए उन्हें जँचे, जो सीधे जनता के कण्ठ और अन्तर में उतर सकें। फिर उनका पिङ्गल ज्ञान भी कुछ इतना कम था कि अन्य छन्द वे आसानी से लिख नहीं सकते थे। कबीर जैसे महाकवि, जो भाव पक्ष की दृष्टि से तुलसी-सूर को समता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, यह दुःखद है कि दोहा जैसे सरल छन्द का भी भली भाँति निर्वाह नहीं कर पाते। समग्र सन्त-साहित्य में पद या गीत 'शब्द' अथवा 'सबद' के नाम से मिलते हैं और दोहा के लिए 'साखी' का प्रयोग हुआ है। एक तीसरा छन्द 'झूलना' है, जिसका प्रयोग भी सन्त-काव्य में यत्र-तत्र मिलता है।

सन्त-काव्य की भाषा के सम्बन्ध में बहुधा अटकल-बाजियाँ लगाई जाती हैं। एक ही छन्द में ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी और खड़ीबोली आदि का मेल देख कर प्रायः लोग चौंक उठते हैं और उसे तरह-तरह के उट पटाँग नामों से पुकारा जाता है। सन्त-काव्य की भाषा में स्वरूपता न होने का प्रधान कारण यह है कि वे सन्त अधिकतर भ्रमणशील होते थे। अतः वे जहाँ जाते थे, वहाँ की भाषा का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। फिर उनकी रचनाएँ लिपिबद्ध तो होती न थीं। वे तो जनता के कण्ठ में स्थान पाने के कारण ही आज तक सुरक्षित रही हैं। उस समय इस मत का देशव्यापी प्रचार हुआ, इस कारण उनके गीत भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गए। कालक्रम से उनमें विकृति आने लगी और उनकी मौलिकता नष्ट हो गई। इसी कारण भाषा का पँचमेल हमें उनमें देखने को मिलता है। दूसरी बात यह कि उनका स्वयं भी ध्यान भाषा की ओर नहीं था, इसलिए उसमें कुछ गँवारूपन आगया है। कहीं-कहीं तो शब्द हथौड़े की कोटि में जा बैठते हैं। हाँ, सखिभाव के पदों में लालित्य अवश्य है।

प्रधानतः इस काव्य का रस 'शान्त' या 'भक्ति' है। कभी-कभी प्रतीकात्मक उक्तियों के अन्तर्गत विरह-वर्णन के कारण विप्रलंभ शृङ्गार भी बन गया है। उलट-बाँसियों तथा सृष्टि की विचित्रता सम्बन्धी कविताओं में अद्भुत रस गौण रूप से आता है। हठयोग वर्णन में वीभत्स रस भी आता है, वहाँ जुगुप्सा और घृणा उत्पन्न हो जाती है। किन्तु ऐसे स्थान नगण्य हैं और समग्र सन्त-साहित्य में रस की एकाङ्गिता मानी जानी चाहिए।

इस धारा का सबसे बड़ा दोष यह है कि अपने सिद्धान्तों के प्रचार के हेतु सन्तों ने खण्डनात्मक प्रणाली को आश्रय दिया। वे दलित थे इसलिए अपनी श्रेणी के प्रति की गई उपेक्षा को न भूल सके। उनकी नस-नस में इस अकारण दण्ड के विरुद्ध विद्रोह का भाव भरा था। जितना ध्यान विरोध की ओर दिया गया, उसका अंश भी यदि सृजन की ओर दिया जाता तो इतने अल्प समय में इसका लोप नहीं होता। फिर इसका दर्शन जो था—निर्गुण—वह जन साधारण की समझ से परे था। जब ध्यान एक दृश्य पदार्थ पर ही प्रयत्न से केन्द्रित होता है, तो अदृश्य और अमूर्त्त की उपासना सर्व ग्राह्य होगी, यह कल्पना ही भ्रम है। व्यक्तिवाद के प्राबल्य के कारण आद्यांत संत-साहित्य में कोई दार्शनिक व्यवस्था न आ सकी। कहीं-कहीं उसका दर्शन अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का एक विचित्र सम्मिश्रण-सा हो गया है। इस काव्य में वैयक्तिक साधना पर इतना जोर दिया गया कि समष्टि के लिए सेवा और त्याग का महत्व रहा ही नहीं। कबीर में युग प्रवर्त्तक का विश्वास था और लोक नाम की हमदर्दी। इसलिए वह लोकप्रिय हो सके। पर परवर्ती सन्तों में इन गुणों का अभाव था, जिसके कारण जनता से वे दूर हटते गए। व्यावहारिक क्षेत्र में लोकोपकार के आदर्श इस काव्य में नहीं हैं। इसका परिणाम प्रशस्त नहीं हुआ। व्यक्ति की इकाई समाज और राष्ट्र की इकाई से पृथक रह गई और काव्य-क्रम से यह काव्य अलोकोपयोगी ठहरा। पण्डित, मुल्लाओं तथा शास्त्रीय वर्ग से विरोध ने सन्त-काव्य में सामाजिक अशिष्टता और उच्छृङ्खलता भर दी। इसके प्रतिकार के लिए तुलसी, सूर की आवश्यकता हुई। या अधिक संयत शब्दों में कहा जाय तो यहीं भक्ति-काव्य की पृष्ठ-भूमि तैयार होती है।

जन जीवन से सम्पर्क टूट जाने पर भी व्यक्ति रूप में सन्त होते रहे। इस तरह सिद्धकाल से चल कर इन निर्गुणी सन्तों की अठारहवीं शताब्दी में दरिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग प्रवर्तक श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

प्रो० ब्रजेन्द्र स्नातक एम० ए०

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी का प्रवर्तक या जन्मदाता कहा जाता है। हिन्दी भाषा और साहित्य की सर्वाङ्गीण विकास करने तथा साहित्यिक चेतना उत्पन्न करने में भारतेन्दु की तुलना उनके पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी भी व्यक्ति से नहीं की जा सकती। भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य में नव जागरण का युग है। उनकी प्रेरणा और प्रतिभा द्वारा रीति कालीन परम्पराओं का अवसान और नूतन प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। रूढ़ि ग्रस्त काव्य रचना का परित्याग करके भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य में क्रान्ति की भावना को जन्म दिया। दरबारी कवियों की शृङ्गार और विलास चेष्टा पूर्ण कविता से जनता का ध्यान हटाकर राष्ट्र प्रेम समाज-सुधार और देशोपकार की ओर उन्मुख करने वाले भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम कवि हैं। स्वदेश स्व-भाषा और स्व संस्कृति की गरिमा को स्वीकार कर सबसे पहले इनकी वाणी मुखरित हुई। रीतिकालीन साहित्य साधना का आदर्श एकनिष्ठ था। राजा रईसों को प्रसन्न और परितुष्ट करने की प्रवृत्ति उनकी प्रेरणा का स्रोत था। इस परम्परा में भारतेन्दु की प्रतिभा से ही अन्तिम अध्याय लगा और जागृति तथा जीवन विकास का नया काव्य प्रारम्भ हुआ आपने साहित्य को राजप्रासादों, के संकीर्ण वातावरण

साहब के समय तक की एक लम्बी परम्परा तैयार हो जाती है। उस समय तक इसमें काफी विकृति आई थी। जगह-जगह इनके मठ बन गए थे, जिनमें अन्य सांसारिक जीवों के रहन-सहन में कोई अन्तर नहीं रह गया था। कबीर जैसे अवतारवाद के विरोधी को ही इन लोगों ने अवतार मान लिया। दूसरी ओर अकलुष भक्ति-साहित्य की चका-चौंध थी, जिसके आगे इसका क्षीण प्रकाश अधिक देर टिक न सका।

कुछ आलोचक इन सन्तों को, जिनमें अधिकांश मुसलमान थे, मुसलमानी परम्परा की उपज बतलाने की असफल कपाल क्रिया करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कदाचित् कि उपस्थापन पद्धति, विषय, भाव, अलङ्कार, भाषा, छन्द पद आदि सब इन सन्तों के सौ फीसदी भारतीय परम्परा में पड़ते हैं। उनके पारिभाषिक शब्द, उनकी रूढ़ि-विरोधिता, उनकी खंडात्मक वृत्ति और उनकी अक्खड़ता उनके पूर्ववर्ती साधकों की देन हैं। उनमें भक्ति का रस है, वेदान्त का ज्ञान है, जो उनकी भारतीयता को पूर्णतः प्रमाणित करता है। उनका वातावरण मुसलमानी अवश्य था, पर इस कारण उन्हें उस परम्परा में डाल देना उनके साथ अन्याय करना होगा।

छायावाद ने जिस प्रकार मिटकर भी हिन्दी-साहित्य को वह दिया, जो प्रगतिवाद चिरन्तन होकर नहीं दे सकता; उसी प्रकार सन्त काव्य भी एक महत्वपूर्ण, रिक्त स्थान की पूर्ति करता है। इसकी दो स्थाई देन हैं—

(१) वैदिक और ब्राह्मण धर्म के प्रति अविश्वास तथा साहित्यिक क्रांति की भावना और (२) आधुनिक रहस्यवाद-छायावाद, जो रवीन्द्र के माध्यम से हिन्दी में आया है।

संक्षेपतः इस साहित्य की ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्ताएँ अनुपम हैं। इसकी गहरी अनुभूति, सैद्धान्तिक तत्त्व और अकृत्रिमता चिरकाल तक प्रेरणा का स्रोत रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निकाल कर जनता जनार्दन के समीप ला खड़ा किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के अभ्युदय के लिए अपने जीवन का एक-एक क्षण अपनी सम्पत्ति का एक-एक पैसा अपनी प्रतिभा की एक-एक रेखा का सहर्ष उत्सर्ग कर दिया। फिर हम उन्हें युग प्रवर्तक क्यों न कहें।

शताब्दियों की दासता के कारण जर्जर और निष्प्राण देश की अकर्मण्यता को दूर करने के लिए साहित्य को साधन बनाने वाले गोस्वामी तुलसीदास के बाद आप पहले व्यक्ति थे। आपने युग की राजनैतिक धार्मिक आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का भली भाँति अध्ययन करके अपनी विलक्षण प्रतिभा अविचल दृढ़ता और गहन दूरदर्शिता द्वारा जैसा चित्र अपने नाटक और लेखों में भारतेन्दुजी ने उपस्थित किया उसे देखकर विस्मय-विमुग्ध हुए बिना नहीं रहा जाता।

युग प्रवर्तक की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म इसीलिए और भी महत्व-पूर्ण है कि वे अपने उदय के साथ एक नूतन आलोक लेकर आये। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनके आगमन से नये अध्याय की नूतन युग की अवतारणा हुई। अपनी सार्वभौम प्रवृत्तियों और सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने के साथ आपने उसे गौरवान्वित बनाया। आधुनिक युग की चेतना का मूल बीज भी हम भारतेन्दु युग में ही देखते हैं। देश की नाड़ी टटोल कर जन-भावना को साहित्य द्वारा मुखरित करने का एक मात्र श्रेय उस युग में भारतेन्दु बाबू को ही दिया जा सकता है। साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन की दृष्टि से भावों का परिवर्तन प्रधानता रखता है जो कवि साहित्यिक चेतना में नवीनता ला सके वह अवश्य ही युग को बदल सकेगा। भारतेन्दु बाबू इस कसौटी पर सोलहो आने खरे उतरे हैं। उन्होंने सबसे पहले शृङ्गार नीति और भक्ति की संकीर्ण परिधि को तोड़कर देश जाति, धर्म, समाज और राजनीति को आपने काव्य और नाटकों का विषय बनाया। भारत के अतीत गौरव के चित्र प्रस्तुत करके जातीय जीवन में आन्दोलन उपस्थित किया। दम्भ पाखंड और रूढ़ियों के प्रति तीक्ष्ण व्यंग्य लिखकर सामाजिक उद्बोधन का मार्ग प्रशस्त करना भी आपकी साधना का ध्येय था। आचार्य शुक्ल के शब्दों में भारतेन्दुजी प्राचीन और नवीन के सन्धिस्थल पर खड़े होकर दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का परिवर्धित रूप प्रतीत हो न कि ऊपर से लपेटी हुई वस्तु। प्राचीन और नवीन का यह सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का माधुर्य है।

भाव क्षेत्र में नवीनता प्रस्तुत करने के साथ ही कला तथा विधान के क्षेत्र में भी भारतेन्दु ने अनेक महत्व पूर्ण-कार्य किये। गद्य शैली का निर्माण नाटक-प्रणयन निबन्ध-लेखन समाचार-पत्र-प्रकाशन अनुवाद कार्य साहित्यिक क्लबों की स्थापना आदि ऐसे अनेक कार्य हैं जो भारतेन्दु की युगप्रवर्तक बनाने में सहायक हुए।

हिन्दी गद्य शैली के निर्माण में भारतेन्दु की नवनवोन्मेद शालिनी प्रतिभा ने जो कार्य किया वह पूर्ववर्ती लेखक के सम्मिलित प्रयत्न से भी न हो सका था। इसमें सन्देह नहीं कि पूर्ववर्ती लेखक की कृतियों से गद्य का शिलान्यास हो चुका था किन्तु उस में सुस्पष्ट अभिव्यञ्जना और सुरुचि पूर्ण भावनाओं को स्थान नहीं मिला था। भारतेन्दु की लेखनी से सर्व प्रथम इस प्रकार की व्यञ्जना पूर्ण परिष्कृत शैली के गद्य का निर्माण हुआ। अभी तक के गद्य लेखकों में गोकुलनाथ और सदासुखलाल का आदर्श धार्मिक भावनाओं का प्रचार था लल्लूलाल तथा सदल मिश्र उपदेशात्मक पंडिताऊ प्रवृत्ति का गद्य लिखते थे। ईन्शाअल्ला खाँ का दृष्टिकोण भाषा की उछल कूद के साथ उर्दू और फारसी की चुस्ती तक ही सीमित रहा। फलतः गद्य का जन्म हो जाने पर कभी उपयुक्त वातावरण के अभाव में गद्य को शैली का सुन्दर परिधान प्राप्त नहीं हुआ। भारतेन्दुजी के समकालीन लेखकों में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के संकीर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि-कोण तथा प्रच्छन्न राजकीय भय से हिन्दी की उर्दू शरीर में विकास के लिए नहीं मुक्ति के लिए छट्पट रही थी। राजा लक्ष्मणसिंह के उद्योग से उसे आश्वासन तो मिला उसका विकास, ब्रज भाषा की संकीर्ण परिधि के कारण वहाँ भी एकाङ्गी रहा। ऐसे संकट के समय भारतेन्दु की प्रतिभा और प्रयत्न से हिन्दी गद्य को विकास के लिए उपयुक्त वातावरण मिला। हिन्दी भाषा के लिए वह संकट की सबसे भीषण घड़ी थी। और यदि उसे भारतेन्दु का आलोक प्राप्त न होता तो कौन जाने आज हिन्दी का भविष्य क्या होता। गद्य शैली के आवश्यक उपकरण भाषा भाव और रूप को नवीन कलेवर में देकर निबन्ध नाटक उपन्यास कहानी समाचार पत्र आदि लिखने के योग्य बनाने वाले भारतेन्दु पहले व्यक्ति हैं। हिन्दी गद्य में भावानुकूल अभिव्यञ्जना की क्षमता तथा प्रौढ़ता का पुट सबसे पहले भारतेन्दुजी की ही भाषा में दृष्टि गत होता है। एक सफल और समर्थ राजनैतिक की भाँति ही भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा के क्षेत्र में गद्य का प्रवर्तन किया। उनकी शैली के प्रधान गुण सरलता सरसता एवं सजीवता है जो किसी भी लेखक को लोक प्रिय बनाने में सहायक होते हैं।

भाव और भाषा में युगान्तर के साथ ही भारतेन्दु की विशेषता उनकी सार्वभौम प्रवृत्तियों में है। नाटक-रचना भारतेन्दुजी की अपनी शैली की विशेषता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में नाटकों का यथाविधि सूत्रपात आपके ही नाटकों से होता है। विद्या-सुन्दर आपका पहला नाटक है जो बङ्गला से अनूदित है। इसके बाद आपने सात मौलिक नाटक तथा दो अपूर्ण मौलिक नाटक लिखे। पाँच नाटकों का विभिन्न भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद किया। मौलिक नाटकों में सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रावलि, अन्धेरनगरी, भारत-दुर्दशा और नीलदेवी पर्याप्त रूपेण प्रसिद्ध हैं। नाटक रचना में भारतेन्दुजी की अपनी विशेषता विषय तथा विधान (टेकनीक) दोनों में है। आपके नाटकों के विषय सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक तथा धार्मिक है। आपने मनोरञ्जन के साथ ही अपने नाटकों में देशोपकार तथा धर्म रक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखा। श्रद्धा परायण जनता की मानसिक परितुष्टि और मन बहलाव के साथ-साथ वे जनता को सद्प्रवृत्ति की ओर लेजाना चाहते थे। देश की दुर्दशा और उसके प्रतिकार के उपाय सबसे पहले भारतेन्दु के नाटकों में ही प्रतिफलित हुए। विद्या या टैकनिक की दृष्टि से भी भारतेन्दु ने नवीन धारा को प्रवाहित किया। उन्होंने अपने नाटकों में भारतीय प्राचीन परम्परा का न तो सर्वथा बहिष्कार ही किया और न उसकी जटिलता और दुर्बोधता को ज्यों का त्यों रखा। अङ्गरेजी नाट्य कला के उपयोगी तत्वों के सम्मिश्रण से आपने अपने नाटकों को सर्वजन प्रिय बनाने के साथ उपादेय भी बनाया। सामाजिक परिस्थितियों को हृदयङ्गम करके यथार्थवादी दृष्टि कोण से हिन्दी में नाटक प्रणयन नहीं हुआ था। संक्षेप में भारतेन्दु की नाटक परम्परा का आधार मूलतः प्रगति की ओर है। जर्जर रूढ़ियों से पराङ्मुख होकर ही भारतेन्दु के नाटकों में सजीवता के दिव्य गुण का सञ्चार हुआ है। नाटक रचना का उद्देश्य जैसा भारतेन्दु के युग में सजीव रहा वैसा उनके बाद भी नहीं रह पाया।

नाटक रचना के बाद युग प्रवर्तक की दृष्टि से उनका चौथा कार्य है—समाचार पत्र प्रकाशन। भारतेन्दु के उदय से पूर्व हिन्दी में तीन चार साप्ताहिक व पाक्षिक और मासिक पत्र प्रकाशित हुए थे किन्तु हिन्दी प्रेमियों की तृप्ति करने में कोई पूर्ण रूप से समर्थ न हुआ था। भारतेन्दु ने इस अभाव का अनुभव किया और अपने ही बल पर चार समाचार पत्रों का प्रकाशन किया। कवि-वचन-सुधा, हरिश्चन्द्र मेगजीन, चंडिक और बाल-बोधिनी नाम से ये चार पत्र पत्रिकाएँ प्रकाश में आईं। खेद है कि भारतेन्दु की आर्थिक स्थिति तथा हिन्दी प्रेमियों की उपेक्षा के कारण ये पत्र-पत्रिकाएं स्थायी रूप ग्रहण न कर सकीं।

साहित्य साधना में लीन रहने वाले इस महा पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुर गोपालशरणसिंहजी की कविता का पृष्ठभूमि

(कुँवर सूर्यवलीसिंह एम० ए०, साहित्य-रत्न)

जब हिन्दी कविता में वादों का वितण्डावाद चला तब से उसके स्वरूप का पता चलाना प्रायः कठिन सा हो गया। उसका लयकारी स्वरूप नष्ट हो गया और वह कुतूहल की वस्तु बन गई। किसी ने अभिव्यञ्जनावाद को कविता कह कर उसे वाग्जाल में फँसाया, किसी ने प्रतीकवाद को अपनाकर उसे गोरखधन्धा बनाया तो किसी ने रहस्यवाद को कवि की चरम साधना मान उसे अलौकिकता का चोला पहिनाया। छाया और माया के चक्कर से उसका उद्धार न हो पाया था कि प्रगतिवाद ने उसे आ दबाया। इस प्रकार कविता के समस्त अङ्ग अङ्गी बन गये, उसकी सार्वभौमिकता दब गई और उच्छृङ्खल व्यक्तिवाद तथा क्लिष्ट कल्पना कवियों की साधना हो गई। 'क्षणे क्षणेयम् नवतामुपैति' की दुहाई दी जाने लगी और कविगण सरलता छोड़ कृत्रिम असामान्यता की ओर झुक पड़े। बहुत कम ऐसे कवि बचे जिन्होंने उसे प्रकृत सामान्य स्तर में बनाये रखने की साधना की। इन्हीं कुछ इने-गिने कवियों में हमारे ठाकुर गोपालशरणसिंहजी आते हैं।

ठाकुर साहब की काव्य-साधना की पृष्ठ-भूमि गुप्तजी की भाँति उनकी स्वभावसिद्ध सरलता है। जिस प्रकार उनकी वेश-भूषा रहन-सहन आडम्बर-विहीन हैं, उसी प्रकार उनकी कविता का विकास दिखाई पड़ता है। उनकी यह स्वतः उद्भूत सरलता विस्तृत जगत के कोने-कोने से सार ग्रहण करती है—कहीं वह तरल तरंगों का नाचना देखती है तो कहीं रम्य बनों में पक्षियों का गाना सुनती है। कहीं 'मंडु मेदिनी' में 'निराली हरियाली' की ओर खिंचती है तो

की दृष्टि कितनी व्यापक और पारदर्शी थी यह उसके कार्यों की विविधता को देख कर ही समझ में आ सकती है। नाटक और नाट्य शास्त्र की रूपरेखा देकर भारतेन्दु ने निबन्ध, समालोचना, उपन्यास काव्य, इतिहास और अनुवाद का जो महान् कार्य किया वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदैव अमिट अक्षरों में अङ्कित रहेगा। एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न, कुछ जगबीती कुछ अपबीती, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन आदि के निबन्ध व्याख्या विवेचना तथा वर्णन की दृष्टि से बड़े सुन्दर हैं। रामायण का समय, उदय पुरोदय आदि आपके ऐतिहासिक अनुसंधान परक लेख हैं। हिन्दी भाषा नाम की आपकी समीक्षा शैली पर लिखी एक लघु पुस्तका है, जो गुण दोष विवेचन की शैली पर आलोचना का आभास देता है। कविता क्षेत्र में यद्यपि आपने ब्रजभाषा की साहित्यिक आदर्श भाषा स्वीकार किया किन्तु विषय की अनेकता तथा छन्दों की नवीनता का विधान करके उसकी प्राचीनता को धो डाला। ब्रजभाषा भी लावनी गजल ख्याल और कजली के नूतन परिधान में नव-युवती सी दमक उठी। छन्द योजना की दृष्टि से भी हम भारतेन्दु में युग प्रवर्तन की प्रवृत्ति का संकेत पाते हैं।

संक्षेप में भारतेन्दु अपने युग के प्रवर्तक युगान्तरकारी कवि और लेखक हैं। उनके विषय नये हैं, उनकी भाषा नई है और उनकी शैली और परिधान में अभिनव दीप्ति और कान्ति है। सच-मुच वे अपने युग के नेता हैं। वे प्रतिभाशाली कवि हैं, सफल नाटककार हैं। सतर्क आलोचक हैं, समर्थ निबन्धकार हैं। हम उन्हें हिन्दी साहित्य की नव चेतना और जागृति का जाज्वलमान प्रतीक कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। उनकी रचनाओं में देश जाति और धर्म का सामूहिक स्वर स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित होता हुआ सुनाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की 'लोल वृन्त दोल' पर फूलों का झूलना निरखती है। निरखती ही नहीं है वरन् उसी में लीन हो जाती है। किन्तु उसकी कल्पना रहस्य सिद्धान्तों (Mystic Dogma) को लेकर अनेक क्षेत्र खोलने का आडम्बर नहीं करती और न उसमें अनिर्दिष्ट स्मृति सम् स्वप्न की बाढ़ ही आने पाती। एक सरल जिज्ञासा का उदय होता है और सरलता बोल उठती है—

किस अनजाने जग जीवन के स्वागत को
उड़ रही सरस सुगन्ध है पवन में।

इसके अनन्तर स्वाभाविक गति से प्रश्न पर प्रश्न उठने लगते हैं—

किसके मनोज्ञ मुख चन्द्र को निहार कर
मेरा उर सागर सदैव है उछलता।
किसके समीप शुद्ध भाव से पहुँच कर,
किसी ओर मेरा चल चित्त भी न चलता॥
मेरा प्राण वायु किसे पंख झलता है सदा,
किसका अनूप रूप आँखों में टहलता।
यह तो बतादो जरा मेरे मन मन्दिर में,
किसका पुनीत प्रेम दीपक है जलता॥

और कवि मानो इस सारग्राहिणी सरलता पर ही 'तेरी छवि' के पर्याय से गा उठता है—

शून्य नभ को भी चमकाती निज ज्योति से जो,
घन को घटा में छिटकाती छटा प्यारी है।
तुच्छ भूमि को भी कर देती जो सुवर्ण मयी,
ऊजड़ बनों को भी बनाती रम्य भारी है।
क्षुद्र खग वृन्द में भी शोभा सरसाती है जो,
नंगे पर्वतों में भी दिखाती कान्ति न्यारी है।
सींचती सुधा जो वसुधा में सुख कारी सदा,
तेरी चित्तहारी सुषमा की बलिहारी है॥

कहना न होगा कि यही सरलता द्विवेदी-काल के अन्य महा कवियों—गुप्तजी, उपाध्यायजी को भी काव्य-साधना में है। यही उनकी कविता का भी अजस्र स्रोत है। यही कारण है कि हम तीनों को भक्तकवि के रूप में पाते हैं। गुप्तजी के हृदय का योग मर्यादा पुरुषोत्तम राम से होता है और उपाध्यायजी तथा ठाकुर साहब लोक-रञ्जनकारी लीला पुरुषोत्तम कृष्ण पर रीझते हैं। इनकी काव्य-साधना की पृष्ठभूमि एक होते हुये भी उसमें कुछ अन्तर है। गुप्तजी और उपाध्यायजी की सरलता आदर्शवाद को लेकर चलती है। गुप्तजी की आदर्शवादिता तो उनकी प्रारम्भिक रचना भारत-भारती में स्पष्ट दिखाई देती है पर उपाध्यायजी की प्रिय-प्रवास की आदर्शवादिता कृष्ण चरित्र के साथ लुकती-छिपती चलती है। कुछ भी हो किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि इन दो कवियों की भावना बुद्धि का सहारा लेकर आगे बढ़ती है क्योंकि आदर्शवाद बुद्धिपरक होता है। किन्तु ठाकुर साहब की पहली रचना 'माधवी' सर्वथा भावनामयी है। उन्हें आदर्शवाद की कटुता को अपनी भावना से रंग कर दूर करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

'माधवी' का कवि सर्वथा मानवीय धरातल पर है। वह गृह-सुषमा में ही मस्त रहने वाला है। कभी-कभी वह उसके बाहर निकलता अवश्य है—कभी भारत का अतीत गौरव उसकी आँखों के सामने आ जाता है, कभी वह अछूतों से द्रवीभूत हो जाता है, कभी संसार का अन्धकार उसके सामने छा जाता है। किन्तु उसकी दृष्टि वहाँ जमती सी नहीं दिखाई देती। वस्तुतः वह प्रेम के साम्राज्य में विचरता है। उसे अपनी गृहस्थी में ही सुन्दर वस्तुएँ दिखाई देती हैं, उनके सौन्दर्य को वह समेटना चाहता है, अतः इधर-उधर से आकर उन्हीं पर लपकता है। कभी वह मानवी के मान पर मुग्ध होता है, कभी शिशुकी दुनियाँ में विचरने लगता है, कभी आँख-मिचौनी खेलता है, और कभी मुकुर में "प्यारी सुखकारी तीन लोक से जो न्यारी है" उस शोभा की कल्पना में मस्त होता है। उसकी वृत्तियाँ इतनी कोमल हैं कि वह सुकुमार वस्तुओं को छोड़कर दूसरी ओर दृष्टिपात ही नहीं करता। कठोरता और भीषणता माधवी के कवि के हृदय में आघात पहुँचाती है। वह खड्गपाणि क्षत्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः तलवार को भुलाने में असमर्थ है। पर उसकी स्वतः उद्भुत सरलता के साथ वह मेल नहीं खाती—

क्यों न लोग तुझसे सदैव डरें करवाल,
काल की कराल मूर्ति तू ही है जहान में।
आँखों में लगा के चकाचौंध चंचला समान,
करती विनाश तू सहास एक आन में॥
जान पड़ती है कभी बुझती न तेरी प्यास,
रहती लगी है सदा शोणित के पान में।
कर निज निन्द्य काम तू भी शरमाती कुछ,
क्या तू इसी हेतु छिप जाती शीघ्र म्यान में॥

'माधवी' का सौन्दर्य-उपासक पुजारी गृह-सुषमा को समेटता है—उसी में लीन होता है, पर उससे उसकी तृप्ति होती नहीं दिखाता। अतः वह—

पहले तुझे मैं बस एक ठौर देखता था
देखता हूँ सब ठौर तुझको जुदाई में।

कह कर बाहर निकलता है, जहाँ उसे 'अनन्त छवि' दिखाई देती है। प्रकृति का एक-एक कण उससे सना हुआ सामने आता है। और कवि स्थान-स्थान पर अंशी का आभास पाता है।

कृषकों के छोटे आँगन में,
दीन जनों के भग्न भवन में।
कुम्हलाये उजड़े कानन में,
बिरह रात्रि के सूनेपन में॥
है उसने नव ज्योति जगाई।
है अनन्त छवि क्षिति में छाई॥

इस प्रकार 'माधवी' की सरल सुन्दर भावना 'कादम्बिनी' में वही रहस्योन्मुख होती दिखाई देती है। अथवा कहना चाहें तो कह सकते हैं कि 'माधवी' की साधना सिद्धावस्था की ओर बढ़ती दिखाई पड़ती है। यहाँ वह सच्चे रहस्यवादी कवि की भाँति जिज्ञासु ही नहीं हैं, 'अनन्त', 'वेदना', 'असीम' इत्यादि जो रहस्यवाद के बंधे बधाये (पेटेन्ट) शब्द हैं, अधिक ग्राह्य हो गये हैं। यहाँ सौन्दर्य का आभास पाकर उसकी वृत्ति अधिक संवेदन शील हो जाती है और वह समस्त विश्व को उस सौन्दर्य की प्राप्ति के लिये चंचल पाता है—

उसे देख सागर लहराया,
उछल उछल पैरों तक आया।
पर जब स्पर्श नहीं कर पाया,
लौट गया तब वह शरमाया।
रत्नावलि की भेंट चढ़ाई,
है अनन्त छवि क्षिति में छाई॥

इतना ही नहीं सूर्य, चन्द्र, तारे उसके प्रेम में छक कर उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं और अपना सर्वस्व लुटाते हैं—

उतर सिन्धु में किरण सहारे,
है मयंक अनुपम छविधारे।
अवनी तक दृग ज्योति पसारे,
देख रहे हैं नभ से तारे।
× × ×
रवि ने निज प्रकाश फैलाया,
वसुधा ने वैभव बिखराया।
तरुओं ने प्रसून बरसाया,
फूलों ने मधु कोष लुटाया॥
× × ×
सबने निज निज प्रीति दिखाई।
है अनन्त छवि क्षित में छाई॥

यह सब देखने पर उसके हृदय-नभ में विप्लव मच जाता है और वह चञ्चल हो उठता है जिससे अमर-गान की सृष्टि होती है।

ध्यान देने की बात यह है कि कवि अपनी स्वभाव सिद्ध सरलता यहाँ भी नहीं छोड़ता। न वह प्रतीकवाद का जाल फैलाता है, न कल्पना का अलग लोक बसाता है और न परा विद्या की अपार्थिवता। कबीर का रहस्यवाद और लौकिक प्रेम की तीव्रता की खिचड़ी पकाता है। यह केवल अपनी रहस्यभावना में डूबता और इस प्रकार अपनी काव्यगत सचाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Poetic Sincerity) के बल पर वह अपनी कविता को खेलवाड़ नहीं होने देता। जैसा उसका आडम्बर हीन व्यक्तित्व वैसी ही उसकी कृत्रिमता-शून्य कविता।

'कादम्बिनी' में कवि प्रकृति पुजारी के रूप में दिखाई पड़ता है। यहाँ उसकी कल्पना प्रकृति के नाना क्षेत्रों में बिचरती है, उसके अनेक रूप और व्यापार देखती है, पर उनकी छान बीन करने नहीं जाती। वह उन्हीं रूपों को देखती है जो सनातन हैं और जिन्हें कवि परम्परा सदा से देखती चली आई है। जैसे ऊषा, नक्षत्र, समुद्र, तरङ्ग, प्रभात, सन्ध्या, कमल, बसन्त इत्यादि। जगत के इन्हीं नाना स्वरूपों के देखने से उसमें जिस रहस्य-भावना का उदय होता है वह बहुत ही स्वाभाविक और सच्ची (Natural and true) है। 'चाँदनी' शीर्षक कविता में चन्द्र-ज्योत्स्ना देख कर उसकी कल्पना मुखर हो उठती है। अतः वह अनेक वस्तुओं का आरोप करता चलता है और जगत को चाँदनी में घुला-मिला देखता है—

राशि ने सारे जगती तल पर
निज कीर्ति कौमुदी छिटकाई।
चढ़ किरण जाल के वाहन पर
वह हंस-वाहिनी सी आई॥
वसुधा से आकर लिपट गई
वह बाल-सखी सी मन भाई।
मिलकर उससे पुलकित सी हो
वसुधा मन ही मन मुसकाई॥

यहाँ वसुधा का दो वार प्रयोग शब्द-रङ्कता की ओर संकेत नहीं करता वरन् कवि के हृदय की उस स्थिति को बतलाता है जब वह भावातिरेक के समय स्तब्ध सा हो जाता है और हृदय की परिच्छिता पर वाणी के मौन का अनुभव करता है। निम्न-लिखित पंक्तियाँ उक्त कथन का समर्थन भर ही नहीं करती वरन् उस स्वाभाविक सरल और कोमल रहस्य-भावना का परिचय देती हैं जो केवल सच्चे कवियों में उद्भूत होती है—

निर्जन विपिनों में घुस घुस कर
किस की तलाश यह करती है।
वह देश देश में ग्राम ग्राम में
किसके लिए विचरती है?

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि कवि प्रकृति के नाना क्षेत्रों में बिचरता है और उसके हृदय में विराट भावना (Sublimity) का उदय होता है। इसके बिना तो श्रेष्ठ काव्य की रचना ही नहीं हो सकती पर उस विराट भावना को भी हम कवि की स्वयं उद्भूत सरलता से रङ्गी हुई पाते हैं। यहाँ भी उसकी वत्ति कोमल बनी हुई है। वह असीम संसार, तारावलि मण्डित विस्तृत नभ, वसुधा को आच्छादित करने वाली चन्द्र ज्योत्स्ना, सर्वव्यापी अनन्त उल्लास इत्यादि तो देखता है पर प्रलयकारी जल-प्लावन, भयङ्कर-भूकम्प, लयकारी झंझावात इत्यादि पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ती। यही है कविता पर कवि के व्यक्तित्व का प्रभाव।

कवि प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में उन्मुक्त सुकण्ठ पक्षी की भाँति गाता हुआ विचरता है। वह जगत के नाना स्वरूपों और व्यापारों को देखता है और संदेश भी सुनाता है।

पत्रों का मरमर साभिलाष
कुछ कहता सा है आसमान
× × ×
पीकर सङ्गीत सुधा रसाल,
सोता है सुख से जग विशाल
है स्वप्न लोक में लगा ध्यान।

यहीं कवि की दृष्टि जगत के रूपों में लीन होती हुई भी जीवन पर पड़ती है—सौन्दर्य दृष्टा में बौद्धिक विकास का श्री गणेश होता है। परन्तु उसकी आत्मा में विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अस्तु बीच-बीच में "हैं जग के सङ्घर्ष अनन्त, हैं प्रकर्ष अपकर्ष अनन्त, जीवन के अभिशाप अनन्त, भूल-चूक अनुताप अनन्त, दैन्य दुःख से पीड़ित मन" इत्यादि कह उठता है। पर स्वभाव अथवा संस्कार की प्रबलता होने के कारण जगत के संघर्ष हृदय में घर नहीं करते। कवि "अनन्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौवन" का सङ्गीत गाने में ही मस्त रहता है। उसे सर्वत्र सुख समूह दिखाई देता है—

गिरि कानन में कहाँ जाँय
है कहीं न सूनापन
सुख समूह साधन
है अनन्त यौवन

और वह समस्त प्रकृति को उल्लास से भरी हुई पाता है—

गगन स्थली खोज दृग तारे
वनस्थली अनुपम छवि धारे
निज आंचल मेदिनी पसारे
मंजु मोहिनी पट उघारे
देती है आभास
है अनन्त उल्लास।

इतना सब होते हुए भी जीवन के संघर्ष का प्रभाव कवि पर पड़ता है, पर वह उससे भागने का प्रयत्न नहीं करता, वरन् उसी में प्रवेश करता है—

जीवन चिन्ता सागर की
लहरों में मैं लहराऊँ
दुःख शैलों से टकरा कर
मैं कहीं नहीं घबराऊँ।
पद पद में गति उन्नति में
पल पल में रति दिखलाऊँ
सीमा के भीतर ही मैं
अपनी असीमता पाऊँ।
देखें नक्षत्र चकित हो
मेरा उत्थान पतन में
लय ही मेरा लघु जीवन
जग के विशाल जीवन में

किन्तु यह मानना पड़ेगा कि यह कामना साकार नहीं होती। हाँ, 'कादम्बिनी' में आई हुई जीवन सम्बन्धिनी अनुभूति कुछ तीव्र अवश्य होने लगती है। वह बाह्य जगत को छोड़कर अन्तर्जगत की ओर उन्मुख होती है और कवि जीवन की गहराई में पैठने के लिये व्याकुल सा होने लगता है। उसी समय वह 'ज्योतिष्मती' सृष्टि में 'तुम' और 'मैं' को देखता है। अतः यहाँ वह तुम (परमात्मा) का अनुसन्धान करता है और बहुत कुछ भटकने के अनन्तर इस निष्कर्ष पर आता है—

हो तुम सुख मय स्वप्न
वेदना की जागृति के
हो करुणा मय प्रेम
स्रोत तुम निठुर नियति के।

मैं (आत्मा) के पता में जो वह पाता है वह बहुत ही मार्मिक और विवशतापूर्ण है—

विश्व नाटक का तुम्हारे
एक में हूँ पात्र
पर दिखाता हूँ तुम्हें में
दुःख अभिनय मात्र।

'तुम' और 'मैं' के स्वरूप का पता लग जाने पर वह तुम और मैं के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। तब उसे अपनी क्षुद्रता का ज्ञान होता है और वह सच्चे दीन भक्त की भाँति आर्त होकर विलख उठता है—

चलूँ तुम्हारे साथ नाथ मैं
विश्व मार्ग में कैसे ?
मैं हूँ बन्धन मुक्त मन्द गति
तुम स्वतन्त्र द्रुत गामी।
किस विधि एक हृदय होकर मैं
तुम में ही मिल जाऊँ
मैं हूँ निज उन्नति अभिलाषी
तुम हो जग हित कामी।

अब 'मैं' की यह क्षुद्रता उसे आकाश की ओर ले जाती है। वहाँ उसे प्रकाश के साथ अन्धकार का अनिवार्य सम्बन्ध दिखाई देता है और जगत् सन्निधि वह अनुभूति जिसे हम 'कादम्बिनी' की 'शिखा' शीर्षक कविता में पाते हैं तीव्र हो जाती है। वहाँ कवि ने केवल यह देखा था कि जीवन का सौन्दर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुल से ही निखरता है, पर वह अब यह अनुभव करने लग गया है कि वेदना मय संसार में सुख-दुख का उपसंहार मात्र है—

करती है लालिमा उषा की
क्षण भर नित्य विलास
किन्तु झाँकती है पीछे से
सन्ध्या वहीं उदास।

इससे वेदना का उदय होना स्वाभाविक ही है। पर हमारे ठाकुर साहब के प्रशान्त मानस में इस प्रकार की खलबली नहीं उठती जैसी आज कल के बहुत से वैचित्र्यप्रिय कवियों में उठा करती है। अतः सम्भव है कि बहुत से आलोचक ठाकुर साहब में नवयुवा की भावना का अभाव पावें। पर मेरी समझ मे वैचित्र्य-प्रियता कोई गम्भीर वृत्ति नहीं है। इसलिये वह अप्रतिहत काव्य धारा में रोड़े का काम करती है और काव्य साधना में अन्तराय का। जिस प्रकार उसका आधिक्य कला के पक्ष में वाञ्छनीय नहीं है उसी प्रकार भावना के पक्ष में भी। सच्चे काव्य साधक को जिस प्रकार उपमा उत्प्रेक्षा रूपक इत्यादि की दिमागी कसरत नहीं भाती उसी प्रकार नवीनता के लिए भावना की विचित्रता भी नहीं सुभाती। वे तो अपनी नवीनता उन वस्तुओं के प्रति अपने हृदय के योग में पाते हैं जो सनातन हैं, नित्य नवीन हैं और विराट हैं। कहना न होगा कि ठाकुर साहब की काव्य धारा अप्रतिहत है। वे उसमें क्लिष्ट कल्पना के रोड़े नहीं आने देते। जिस प्रकार उनकी रहस्य भावना उनकी कविता में ढोंग नहीं रचती, उनकी वेदना संसार में विप्लव नहीं मचाती। न वे माता के पय को काल कूट बनाते और न वे परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिए हाला ही चढ़ाते और न उन्हें रोने में तड़पने में और पश्चाताप से जलने में सुख ही मिलता है। उन्हें वेदना क्यों प्रिय है, इसे वे क्यों चाहते हैं, उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

हो न तुम्हारे वास स्थल में
कहीं अन्धेरा।
इसी लिए मैं व्यथा ज्योति
उर में भरता हूँ।

वे व्यथित हृदय होकर अनल गान नहीं गाते। वे मनुष्य हैं, देवता नहीं इसलिए वे देव-लोक की सृष्टि नहीं करते। उन्हें मानवीय धरातल ही प्रिय है—

रहूँ भले ही मैं उदास पर
विश्व कभी न उदास रहे
अन्धकार मेरे उरतल का
बस मेरे ही पास रहे।
तुम पर हो विश्वास मुझे पर
अपना भी विश्वास रहे
पृथ्वी पर ही तेरे पद हों
दूर सदा आकाश रहे।

कविवर, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आपके पद पूर्णतया पृथ्वी पर हैं। आप पूर्णतया भारतीय हैं, आपकी साधना ही ऐसी है। इसीलिये आपकी प्रसन्न काव्यधारा अनेक मुखी जीवन का साक्षात्कार करके बहुमुखी होकर अबाध गति से हिन्दी संसार का अभिसेचन कर रही है।

सुख-दुख मानव जीवन के साथ लगे हुये हैं और दोनों एक हैं भी। दोनों के अतिरेक में मनुष्य सत्य को भूल जाता है। अतः कवि सुख दुख की परवा नहीं करता—

सुख दुख आते ही रहते हैं
उनका क्या रखना है ध्यान।
भय है कहीं न खो बैठूँ मैं,
तुम में मैं विश्वास महान॥
भूल न जाऊँ मैं निजत्व को
बन विपत्ति में मूढ़ अजान।
दुखमय जीवन से क्या डर है
देव तुम्हारा है वरदान॥

विश्व के विधान में परिवर्तन भरने वालों से कवि कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति शान्ति चिल्लाने वाले
ले न शान्ति का नाम।
रुक सकता है कभी न जग में
जीवन का संग्राम॥

पर इसका अर्थ यह नहीं कि कवि की दृष्टि लोक-मंगल की ओर उन्मुख नहीं होती। लोक-मंगल की साधना तो प्रत्येक महा कवि में होती है। महाकवियों की यही तो कसौटी है। पर वह कठोर सत्य की अवहेलना करके नहीं। अस्तु इसी प्रकार ठाकुर साहिब के जीवन का सन्देशा है—

सिंचित हो संगीत सुधा से,
विकसित हो वसुधा उर शतदल।
तेरे मृदु गीतों के स्वर से,
नभस्थली भरले निज अंचल॥
गान मुग्ध हो बहे समीरण
फट जावें जग के दुख बादल।
मृदु रव से गुञ्जित हो जल थल
सुन न पड़े जग का कोलाहल॥
तेरे मधुर कंठ की ध्वनि से
हो वसुधा कम्पित पल-पल।
तुहिन बिन्दु बन गिरे गगन से
करुणामय का अविरल दृग जल॥

आगे कहा जा चुका है कि 'ज्योतिष्मती' में कवि ने 'तू' और 'मैं' को देखा है। इसी 'मैं' के अन्तर्गत नारी भी है। कवि नर के रूप में नारी को लय नहीं करना चाहता। उसका अपना अलग व्यक्तित्व है। कवि के समक्ष उसका महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि वह 'उपेक्षिता' नहीं हुई है और करुणा की मूर्ति है। 'कादम्बिनी' के सौन्दर्योपासक कवि ने अभी तक नारी के बाह्य रूप को देखा था, उसके अन्तर्जगत में क्या छिपा है इस ओर उसकी दृष्टि नहीं गई थी या यों कहिये कि अब तक कवि की अनुभूति इतनी तीव्र और सहानुभूति उतनी सजीव न हो पाई थी जितनी 'मानवी' के रचना काल तक में उसकी साधना के प्रसाद स्वरूप हुई। 'मानवी' में कवि नारी के स्वरूप को नहीं नारी-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को देखता है। पर जैसा कि आगे कहा जा चुका है कि कवि की वृत्ति इतनी सुकुमार है कि वह उग्रता और भीषणता पर नहीं टिकती। इसीलिए नारी जीवन के समस्त पक्ष सामने नहीं लाए गये हैं। दुर्गा, लक्ष्मीबाई इत्यादि की तो बात ही जाने दीजिये कौमार्य जीवन की स्वच्छन्दता भी उसे आकर्षित नहीं कर सकी है क्योंकि उसका नारी जीवन का मान-दण्ड है—

है स्वामिनी जगत के उर की
प्रेम राज्य की रानी।
युग-युग के अगणित क्लेशों की
तू है करुण कहानी॥

यही मानदण्ड गुप्तजी की 'यशोधरा'* में भी दिखाई पड़ता है। पर ध्यान पूर्वक देखने से एक अन्तर भी लक्षित होता है। गुप्तजी की आदर्श भावना नारी के परोपकारी स्वरूप को देखती है और ठाकुर साहब की चिरपोषित सौन्दर्य-भावना को 'प्रेम-राज्य की रानी' का स्वरूप अधिक आकर्षक है। यही कारण है कि हम ठाकुर साहब के 'मानवी-संसार' में प्रधान-तया तो प्रेमिकाएँ पाते हैं अथवा प्रेम-वञ्चिताएँ। प्रेम राग से रञ्जित इस नारी संसार के साथ वह मानव समाज की उस कठोरता (अत्याचार लिखना ठाकुर साहब के साथ अत्याचार होगा) को देखता है जिसके कारण नारी-जीवन का पूर्ण विकास नहीं होने पाता। इसके कारण उसका हृदय सहानुभूति से भर जाता है। और प्रायः उन्हीं-उन्हीं स्थलों में जाता है जो मर्म-स्पर्शी हैं और जहाँ वह नारी जीवन की दुरवस्था देखता है। उसकी दृष्टि में—

साथ ही साथ रहती हैं
अबलाएँ और बलाएँ।

* अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशि की कमनीय कलाएँ
घन की घनघोर घटाए ॥

जो नारी (दुलहिन) जीवन प्रभात की उषा है, जिसमें अपरिमित सुखदायक प्रकाश छिपा रहता है जिसकी ओट में यौवन कमल को खिलाने वाला सुख सूर्य छिपा रहता है उसके तीन पक्ष हैं—

१—या तो वह वहाँ पर रखी जाती है जहाँ न जाने कितनी क्लेश कथाएँ गूँजती हैं, न जाने कितनी बाधाएँ घात लगाए छिपी रहती हैं और ईर्षानल जलाता रहता है—

है गूँज रही परदे में
कितनी ही क्लेश कथाएँ।
महलों के भीतर छिपकर
रहती हैं विविध व्यथाएँ ॥
परदे के भीतर कोई
है कभी न जाने पाता।
तो भी ईर्षानल जाकर
है कोमल हृदय जलाता ॥

और जहाँ पर—

कहता है करुण कहानी
रोकर आँखें बेचारी।
उत्तर उनको मिलता है
लाचारी है लाचारी ॥

२—या उनके बाल-विवाह के कारण उनके प्रेम का आरम्भ और अन्त साथ ही हो जाता है—

जब प्रेम मिलन की चाह हुई
तब चिर वियोग की व्यथा हुई।
ज्यों ही उसका आरम्भ हुआ
त्योंही समाप्त वह कथा हुई ॥

३—अथवा अनमेल विवाह के कारण—

कुसुम कली बानर के कर में
है मलीन म्रिय माण।
मृदु लतिका का प्रेमालिंगन
करता है पाषाण ॥

फल स्वरूप—

नयन नयन से हृदय हृदय से
और प्राण से प्राण।
कहते यही मौन भाषा में
करिये मेरा त्राण ॥

अस्तु कवि कहीं रोता है—

खिलते ही मुरझा गई हाय
तू भोली भाली नई कली।
किस निठुर विपति के हाथों से
तू इस प्रकार है गई छली ॥

कहीं अपने उत्पीड़ित मन को समझाता है—

रजनी में दिन रहता है
दिन में रजनी है काली।
परदे में छिपी हुई है
दुनियाँ ही एक निराली ॥

कभी दुखियों को सान्त्वना देता है—

क्या कभी किसी की रहती
हैं बालपने की बातें
सब काल बदलती रहती
है जीवन की दिन रातें।

इस प्रकार वह जगत् और जीवन के साक्षात्कार से अपने को खो बैठता है। उसका पता 'सुमना' से चलता है जिसमें न तो कवि का स्वभाव सिद्ध उल्लास है, न सौन्दर्य की स्वाभाविक उपासना और न जीवन के प्रति उसका सहज राग। वह भिन्न-भिन्न समस्याओं में खोया सा है। अतः अपनी प्रकृति के विरुद्ध हाला और प्याला की ओर झुक पड़ता है, पर संस्कार वश उसमें लीन नहीं होता। जीवन के प्रफुल्लता लाने के लिए औषधि के रूप में कहीं-कहीं प्रयोग करता है।

मृदु पल्लव की सेज बिछाकर
सींच-सींच रस से निज घर
सुरभित हाला से प्याला भर
जीवन का आनन्द मनालो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करलो कुछ दिन जग में वास
खिलो सुमन आया मधु मास

पर स्थान-स्थान की हाला उसे भुलावे में नहीं डाल पाती। वह अपनी विवशता का अनुभव बराबर करता है—

मेरे जीवन की सीमायें।
कभी न आगे जाने देती
कभी न शीश उठाने देती
कभी न हँसने गाने देती
पद पर सम्मुख आती हैं
भाँति भाँति की बन बाधायें,
मेरे जीवन की सीमायें।
कभी न चिन्ता खोने देती
कभी न सुख से सोने देती
कभी न जी भर रोने देती
विविध रूप से बन जाती है
मेरे मन की ही इच्छायें,
मेरे जीवन की सीमायें।
भीति हृदय में है उपजाती
वारि दृगों से हैं बरसाती
मन मयूर को नित्य नचाती
गरज रही हैं तरज रही हैं
बन कर घन की सघन घटायें;
मेरे जीवन की सीमायें।

इन्हीं परिस्थितियों में वह 'दुखमय गायन' सीखता है। कहीं फूल बनकर शान्ति चाहता है कहीं 'प्रिय पद की धूल' बनकर जीवन सार्थक करना चाहता है, कहीं उसे ढूढ़ने निकलता है जो 'प्रेम के दृग नीर में' 'वेदना के चीर में' 'उर उदधि के तीर में' छिपा रहता है। पर सुख और शान्ति कहीं नहीं मिलती। तब आशा* का सहारा लेता है। फिर क्या है? साधना सफल होती है। कोयल बोल उठती है, मधुमास का आगमन होता है और नया प्रभात होता है—

कोयल बोल उठी मन में
जो पादप थे शुष्क समूल
उनमें खिले मनोरथ फूल
यह मधु मास कहाँ से आया
जीवन के ऊजड़ बन में?
कोयल बोल उठी बन में।
नभ से बही सुधा की धार
प्रमुदित हुआ सकल संसार
नई उमंगें लेकर आई
नई तरंगें जीवन में
कोयल बोल उठी मन में।
होकर अनुरंजित आकाश
करता है व्यंजित उल्लास
नया प्रभात आज लाई है
ऊषा विश्व के आंगन में
कोयल बोल उठी मन में।

यहाँ हम 'कादम्बिनी' से सिंचित 'ज्योतिष्मती' और 'मानवी' से पोषित तथा पल्लवित 'सुमनों' के पुष्पों से लदे हुए उस काव्य तरु को पाते हैं जिसे हमने सन् १९२९ में 'माधवी' की ओट में देखा था। साहित्योद्यान में एक से एक विशाल विचित्र और अनुपम तरु हैं और एक से एक बढ़कर कलाविद माली। पर प्रसाद, पन्त, महादेवी वर्मा इत्यादि की कृति का आनन्द इने-गिने पण्डित शुक्र ही ले सकते हैं—वे सबके काम के नहीं हैं। ऐसा अगर काव्यतरु कोई है जो नवीन और प्राचीन, पंडित और मूर्ख, बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष सबको समान

* जीता हूँ आशा बल से,
जीवन में विश्वास लिये।
आँखों में अभिलाष लिये,
प्राणों में चिर प्यास लिये।
सींच सींच कर मैं अपने को
तेरे ही लोचन जल से
जीता हूँ आशा बल से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रियप्रवास' के वियोग-वर्णन का एक रूप

प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०

प्रियप्रवास के पंचदश सर्ग में विरहिणी बाला का जो वियोग-वर्णन किया गया है, वह बड़ा भाव-मग्न करने वाला है। वह बाला कुसुम-कुल के साथ आकर विलाप करती है, भृंग के साथ बोलती है, वंशी द्वारा भ्रमित बन कर कोकिला से बातचीत करती है, प्रिय के चरण-चिह्न को उन्मना होकर देखती और उसे छाती से लगाने का निष्फल प्रयत्न करती है, अंत में उत्कंठिता-सी होकर यमुना के किनारे आती है और उससे कहती है—

"विधि-वश यदि तेरी धार में आ गिरूं मैं।
मम-तन ब्रज की ही मेदिनी में मिलाना।
उस पर अनुकूला हो बड़ी मंजुता से।
कल-कुसुम अनूठी-श्यामता के उगाना॥"

हे यमुने! यदि भाग्यवश मैं तेरी धार में आकर गिरूं तो मेरे शरीर को ब्रज की मिट्टी में ही मिला देना और उस पर श्याम रंग के सुन्दर पुष्प उगाना मरण के अनन्तर भी प्रिय के साहचर्य की यह भावना अत्यन्त भव्य है। प्रेमियों की अभिलाषाओं में भी कितनी मार्मिकता होती है? जायसी की नायिका भी, देखिये, पवन से क्या कह रही है—

यहि तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग गिरि परै, कंत धरै जेहि पाव॥

अर्थात् इस शरीर को जलाकर भस्म करदूँ और पवन से कहूँ कि इस भस्म को उड़ा ले जा—शायद यह भस्म वहाँ जाकर गिर पड़े जहाँ प्रियतम के चरणों का सुयोग इसे प्राप्त हो जाय? निम्न-लिखित राजस्थानी सोरठे में प्रकारान्तर से यही बात कही गई है—

"जालूँ म्हारो जीव, भसमी ले भेली करूँ।
प्यारा लागै पीव, जूण पलटयां जेठवा॥

अर्थात् मैं अपने शरीर को जलादूँ और उसकी भस्म इकट्ठी कर लूँ। मेरा इस प्रकार जन्मान्तर होने पर इस भस्म को भी प्रिय प्यारे ही लगेंगे।

ऐसी उक्तियों को पढ़-सुनकर केवल विशुद्ध तथ्य पर दृष्टि रखने वाला व्यक्ति कह सकता है कि जब प्रेमिका स्वयं खाक हो जायगी तो खाक को क्या खाक आनन्द मिलेगा? किन्तु इस प्रकार की उक्ति पर सहृदय केवल तरस ही खायगा क्योंकि काव्य में विशुद्ध तार्किक दृष्टि से ही काम नहीं चल सकता। काव्य में जो व्यञ्जना का आनन्द है, उसको दुर्लक्ष्य नहीं किया जा सकता। ऊपर की पंक्तियों में प्रिय के चिरसाहचर्य को जो उत्कट अभिलाषा व्यञ्जित हो रही है, उससे रसज्ञ पाठक मनोमुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

विरहिणी बाला के वियोग वर्णन के सम्बन्ध में उपाध्यायजी ने जिस अन्य पद्धति का अवलम्बन किया है उसके कुछ उदाहरण लीजिये—

रंजनकारी है तो मैथिली बाबू के अनन्तर ठाकुर साहब का ही है और सदा रहेगा।

प्रेम सुधा का पान किये
भाव रत्न की खान लिये
तुझ में सन्तत ध्यान किये
कर अपने को सुरभित तेरे।
पाद पद्म के परिमल से
जीता हूँ आशा बल से।
निज उर का अज्ञान लिये
दुख का ही बरदान लिये
आहसा का अभिमान लिये
तुझे मिलाता हूँ सदैव में
निज जीवन के पल पल से
जीता हूँ आशा बल से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१)

मैं होती हूँ बिकल पर तू बोलता भी नहीं है।
क्या ए तेरी विपुल-रसना कुण्ठिता हो गई है ?
तू क्यों होगा सदय दुख क्यों दूर मेरा करेगा।
तू काँटों से जनित यदि है काठ का जो सगा है॥

(कुसुम के प्रति उक्ति)

(२)

जो होना है सुखित उसको वेदना दूसरों की।
क्या होती है विदित जब लौं भुक्त-भोगी न होवे॥
तू फूली है हरित-दल में बैठ के सोहती है।
क्या जानेगी कुसुम बनते म्लान की वेदनायें॥

(जूही के प्रति)

(३)

हा ! बोली तू न कुछ मुझसे औ न भाखीं स्व-बातें
मेरा जी है कथन करता तू हुई नद्गता है।
मेरे प्यारे कुंवर तुझको चित्त से चाहते थे।
तेरी होगा न फिर दयिते ! आज ऐसी दशा क्यों।

(चमेली के प्रति)

फिर बेला से कहती है कि तू भी अब तक न बोला, तू बड़ा निर्दयी है। मैं भी कैसी विवश हूँ जो व्यर्थ ही तुझसे बोलती हूँ। जब किसी के खोटे दिन आते हैं और भाग्य फूटता है, तब पृथ्वीतल में कोई उसका साथ नहीं देता। इसी प्रकार चम्पा, केतकी, बन्धूक, श्याम-घटा प्रसून, भ्रमर, मुरली, कृष्ण के चरण-चिह्न आदि सभी को संबोधित कर विरहिणी बाला उनकी सहानुभूति को अपनी ओर आकृष्ट करने का निष्फल प्रयत्न करती है। कोकिला को संबोधित करके वह कहती है:—

परन्तु तू तो अबलौं उड़ी नहीं,
प्रिये-पिकी क्या मथुरा न जायगी ?
न जा, वहाँ है न पधारना भला,
उलाहना है सुनना जहाँ मना॥

आज से हजारों वर्ष पहले पुराकाल के उस महाकवि ने अपने 'विक्रमोर्वशीय' नाटक में वियोग-वर्णन की इसी पद्धति का आश्रय लिया था। तुलनात्मक विवेचन के लिए उक्त नाटक के चतुर्थ अङ्क से कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—"(उर्वशी के वियोग में राजा की उक्ति)—अरे मोर ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि घूमते-फिरते तुमने मेरी खोई हुई प्रिया को कहीं देखा हो तो मुझे बतादो..... अरे, यह तो बिना उत्तर दिये ही नाचने लगा। अरे रे रे ! मीठा-मीठा कूकता हुई सुन्दर कोयल, यदि इस नन्दन वन में मन चाहे ढङ्ग से उड़ती फुदकती हुई तुमने कहीं मेरी प्रिया देखी हो तो बतादो।.....अरे, यह क्या ! मेरी बात पूरी होने से पहले ही यह अपने धन्धे में लग गई। दूसरे का दुख कितना भी अधिक हो, पर लोग उसे कम ही समझते हैं। हे जल-पक्षिराज! तुम मानसरोवर पीछे जाना और यह जो संबल के लिए तुमने कमलनालें तोड़ली हैं, इन्हें अभी छोड़ दो, फिर ले लेना। पहले तुम मुझे मेरी प्यारी का समाचार देकर मेरा उद्धार करो, क्योंकि सज्जन लोग अपने मित्रों को सहायता देना अपने स्वार्थ से बढ़ कर समझते हैं। अरे ! यह तो केवल अपनी चोंच ऊपर उठाये टुकुर टुकुर देख रहा है, मानो यह कह रहा है कि मान सरोवर जाने की उतावली में मैंने उसे देखा ही नहीं। चकवा भी जब कोई उत्तर नहीं देता तो पुरुरवा कहता है—"मेरा भाग्य ही ऐसा है कि सब कहीं से मुझे उल्टा ही फल रहा है।" इसी प्रकार राजा भ्रमर, गज, पहाड़, नदी, हरिणी, अशोक आदि से उर्वशी का पता पूछता है। हरिन को सम्बोधित करके पुरुरवा कह रहा है—"क्यों जी हरिणी के स्वामी! क्या तुमने मेरी प्यारी को वन में कहीं देखा है ? मैं तुम्हें उसका रूप-रङ्ग बताए देता हूँ। सुनो, ठीक जैसे तुम्हारी हरिणी अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से सुन्दर चितवन डालती है, वैसे ही वह भी डालती है। क्या वह मेरी बात अनसुनी करके अपनी हरिणी की ओर मुँह करके बैठ गया ? ठीक ही है—जब दिन खोटे आते हैं तो सभी दुरदुराते हैं।"

विरहिणी बाला के प्रसङ्ग को लेकर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य पर गान्धीवाद का प्रभाव

श्री जितेन्द्रनाथ बी० ए० 'आनर्स'

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। साहित्य को समाज से ही प्रेरणा प्राप्त होती है, उसकी नींव पर साहित्य अपना महल तैयार करता है। अतः साहित्य का विषय सदा मानवता ही रहा है। मानव-हृदय और मानव-चरित्र के नाना रूप ही प्रायः साहित्य के संसार में देखने में आते हैं। साहित्य की भित्ती इसी जीवन-तंतुओं पर टिकी है। जीवन की सृष्टि से बाहर होकर साहित्य अपनी सत्ता अपना महत्व खो देता है।

भाव मानव-समाज के चिरन्तन सत्य हैं। इन भावों का भाण्डार सारे विश्व में विस्तृत है। इस पर किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार नहीं हो सकता; ये तो सारे मानव-समाज के हैं। कलाकार इन्हीं भावों को मानव-समाज से ग्रहण कर कला की सृष्टि करता है और फिर उसे समाज को ही सौंप देता है। इन भावों के अतिरिक्त मानव-समाज में कुछ आदर्श होते हैं जो युग की धारा के अनुसार बदलते रहते हैं— उनमें आवश्यकतावश भिन्नता आती रहती है। प्रत्येक युग की आशा-निराशा सुख-दुख, भाव-अभाव एवं आचार-विचार युग की समस्याओं पर स्थित हैं। प्रत्येक युग की विभिन्न समस्याएँ होती हैं, जिनके अनुसार प्रत्येक युग की भावनाएँ एवँ आदर्श परिवर्तित होते हैं। भारतीय इतिहास में एक युग था जब जनता में विवशता एवं हाहाकार फैली हुई थी। साम्राज्यशाही के डर से उनपर एक अजीब आवरण पड़ा था। तिलक आदि मनस्वियों ने इस अवगुंठन को फाड़ डालने का यत्न किया; परन्तु उनकी चेष्टा नाना प्रकार की बाधाओं से प्रताड़ित होकर कुछ ह-

---

उपाध्यायजी ने वियोग-वर्णन की जिस सम्भावनात्मक पद्धति का अवलम्बन लिया है, उस पर निश्चय ही कालिदासीय छाप है। कवि कुलगुरु से न जाने कितने हिन्दी के (हिन्दी के ही क्यों, अन्य भारतीय भाषाओं के भी, अन्य भारतीय भाषाओं के ही क्या, गेटे जैसा कलाकार भी अभिज्ञान शाकुन्तल पर मुग्ध था और उसकी प्रारम्भ शैली को उसने अपनी कृति में ग्रहण भी किया था) कितने कवि प्रभावित हुए हैं। यह तो एक स्वतन्त्र अध्ययन का ही विषय है।

उपाध्यायजी ने अपने प्रिय-प्रवास में तथा कवि कुलगुरु ने 'विक्रमोर्वशीयम' नाटक में वियोग-वर्णन की जिस पद्धति का आश्रय लिया है, वह मार्मिक है, इसमें सन्देह नहीं और इस मार्मिकता का मुख्य हेतु है मानव का मानवेतर सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न। मानव का राग सीमाबद्ध होकर कुण्ठित हो जाता है, प्रसार में ही उसे आनन्द की उपलब्धि होती है। इस तरह का वियोग-वर्णन स्वाभाविक है अथवा अस्वाभाविक, इस तरह का प्रश्न भी कभी-कभी उठाया जाता है। दुःख में मनुष्य सहानुभूति का संग्रह करना चाहता है, यह जीवन का एक निर्विवाद तथ्य है जिसकी ओर हमारा ध्यान गये बिना नहीं रहता। उस सहानुभूति को अभिव्यञ्जना के लिये कविगण किसी भी पद्धति का अवलम्बन करें, उस तथ्य की वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। काव्य में विशाल मानवात्मा ही अपने आपको भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट कर रही है और उन रूपों की कोई गणना नहीं। हृदय समुद्र की लहरियाँ भी अनन्त हैं और उनके रूप भी अनन्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर तक सीमित रह गई। फिर भी उन्होंने जागृति का बीज तो बो ही दिया जो क्रमशः बढ़ता ही गया। ऐसे ही समय में गाँधी-युग का प्रादुर्भाव हुआ। उसका प्रभाव ऐसा अलौकिक निकला कि जागरण का सन्देश सारे भारत में फैल गया। सब व्यक्तियों के हृदय में वश्यता के प्रति विद्रोह की आग भड़क उठी। समस्याएँ एक व्यक्ति की न रह कर सारे देश की हो गईं। व्यष्टि का अस्तित्व समष्टि में सार्वभौमता में व्याप्त हो गया।

गाँधी-युग का सर्व-प्रथम लक्षण स्वातंत्र्य-प्रियता है। इसके प्रारम्भ से ही इसकी लहर जो उठने लगी वह अब तक वर्त्तमान है। हाँ, यह ठीक है कि बीच-बीच में इसमें परिवर्त्तन होते रहे—परन्तु भावना मुख्यतः वही रही।

सत्य और अहिंसा ही गाँधीजी के जीवन के सब कुछ थे। बुद्ध, महावीर ने भी इन्हें ही सिद्धान्त के रूप में रक्खा था; परन्तु उन लोगों की अहिंसा के सिद्धान्त में कोई सक्रिय-भावना नहीं थी। इसलिए उनके सिद्धान्त पर चलनेवालों को उतना लाभ नहीं हुआ जितना गाँधीजी की अहिंसा पर चलने वालों को। कारण, महात्मा गाँधीजी की अहिंसा में राजनीतिक परवशता, सामाजिक रूढ़िवादिता और व्यक्तिगत अन्ध विश्वासों के प्रति सक्रिय-विरोध छिपा था—जो उस समय की सर्वोत्कृष्ट निधि थी। फलस्वरूप, युगों की त्रस्त जनता, गुलामियों की बेड़ियों में जकड़ी जनता में एक बार जागृति का सन्देश फैलने लगा। एक नया जोश पैदा होने लगा। उसे अपनी हीनता पर क्षोभ पैदा हुआ। उसकी आखें खुल गईं और उसने देखा कि हम किस ओर जा रहे हैं। संक्षेप में इस हलचल के युग ने हमारे बीच आत्म-निर्भरता, आत्म-सम्मान और आत्मबल की भावना भर दी। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में इस युग ने लोगों की दृष्टि को संकुचित न रहने दिया। दलितों और अबलाओं के साथ समानाधिकारिता की भावना स्वीकार की गई। सत्य जो दार्शनिकों एवं योगियों के लिए था, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी साधना जाने लगी। दूसरे शब्दों में जागरण ही युग-धर्म गया और जागृति ही जीवन का परम लक्ष्य।

भाषा और साहित्य के इतिहास में गाँधीवाद इस युग को हम 'नई धारा' के 'तृतीय उत्थान' के से पुकारते हैं। जिस प्रकार इस युग ने सामाजिक, नीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में उथल-पुथल मचा उसी प्रकार इस युग ने साहित्य और कला के क्षेत्रों भी युगान्तर उपस्थित कर दिया। प्राक्गाँधी के युग जो साहित्य इतिवृत्तात्मक परिधि से निकलकर भा नात्मक क्षेत्र में उपस्थित किया। साहित्य को व वादिता से निकालकर जनसाधारण की चीज दिया गया।

लोक-कल्याण की भावना की प्रवृत्ति सर्व-प्र इस युग में दिखलाई पड़ती है जिसका आ नैतिकता है। व्यक्तिगत जीवन में भले ही नैति का कुछ मूल्य न हो; परन्तु समाज-कल्याण इसकी आवश्यकता अत्यंत है। दूसरी बात यह है साहित्य और समाज में जो सम्बन्ध है उसको अ रखने के लिए, साहित्य को नैतिकता स्वीकार ही पड़ेगा। अन्यथा यह सम्बन्ध बहुत दिनों तक चल सकता है।

दूसरी बात जो इस युग में दिखाई पड़ती है है यथार्थवादिता की भावना को प्रश्रय देने की जब तक युग में यथार्थ बातों को प्रश्रय देने प्रवृत्ति नहीं आवेगी, तब तक जनता में, उस युग प्रति सहानुभूति नहीं उत्पन्न होगी। क्रमशः कुछ के बाद जनता से उसका सम्बन्ध टूट जायगा।

इसी भावना की पुष्टि हम इस युग के साहित्य पाते हैं। इस युग में परिस्थितियों ने साहित्य प्रभाव डाला है और जीवन और साहित्य में उपस्थित करने का प्रयास भी किया है। इस जीवन की समस्याएँ साहित्य में निम्नलिखित के रूप में आईं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) अभाव के प्रति जागरूकता (२) वश्यता बन्धन के प्रति सक्रिय-विरोध (३) मानव-गौरव और व्यक्तिवाद।

(१) अभाव के प्रति जागरूकता—इस युग में अभाव ही में मनुष्य का जीवन पलता है। उसी में जन्म होता है और मृत्यु भी। यहाँ तो उन्हीं की चर्चा होती है जिनका जीवन अभाव के दीपों पर शलभों की भाँति घुलता है। इसी भावना के विद्रोह के रूप में इस युग की कविता जाग उठी। देखिए:—

करो विचलित मुझको मत, देव!
दिखाकर कुछ देने का चाव,
साधना की वेदी पर बैठ
पूजने दो यह अमर अभाव'
इसी में हो तुम, हूँ मैं, और
इसी में भरा तुम्हारा प्यार।
—द्विज—

वर्तमान कविता में दुःखवाद की मात्रा इसी प्रवृत्ति के अनुसार है। इसी दुःखवाद को भुलाने के लिए दुःख को भुलाने वाली 'हालावाद' अथवा 'हलाहलवाद' चला है, दुःख से निवृत्ति के लिए दुःख को भुलाने वाली 'मस्ती की चाह होती है और कभी-कभी इससे बढ़कर नाश की भी कामना की जाती है और उसके लिए प्रलयङ्कर का भयङ्कर आह्वान भी किया जाता है। अथवा 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' की पुकार लगाई जाती है। कुछ लोग जैसे 'प्रसाद' 'पन्त' आदि अपनी कल्पना के सौन्दर्य में वर्तमान की निराशा को भुला देते हैं। वे अतीत और भविष्य के गीत में शान्ति पाते हैं।

'प्रेमचन्द' के उपन्यासों में आप ऐसे अनेक स्थल पायेंगे, जहाँ अभाव-जनित वेदना अपने नग्न रूप में दिखाई पड़ेगी।

(२) वश्यता एवं बन्धन के प्रति सक्रिय-विरोध—रूढ़िवाद एक अजीब परतन्त्रता है। साहित्य में यही रूढ़िवादी भावना जब तक रहती है। तब तक साहित्य एकदम परतन्त्र रहता है और वह जनता की बातों का ध्यान नहीं रखता। केवल संस्कार (Pattern) ही इसका लक्ष्य हो जाता है। रीति-कालीन साहित्य ने इसी रूढ़िवादिता के दलदल में फँसा रहने के कारण, वश्यता एवं पराधीनता स्वीकार कर भक्ति और शृङ्गार को अपनाया; परन्तु जीवन के साथ उसका सम्बन्ध सन्तुलित नहीं रह सकी गान्धी-वाद के युग में इन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना फैलने लगी थी जिसके फलस्वरूप इस समय के साहित्य में प्राचीन छन्दों एवं विषयों के प्रति विद्रोह हुआ—जो इस युग की सर्वोत्कृष्ट निधि है। विद्रोह की भावना का एक स्पष्ट चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में है—

फेंकता हूँ, लो तोड़-मरोड़
अरी निष्ठुरे! बीन के तार
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख
फूँकता हूँ भैरव हुङ्कार।

पन्तजी ने भी लिखा:—

गा, कोकिल, बरसा पावक कण!
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंश भ्रंश हों जग के बन्धन!
पावक पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानव मन!

छन्दों में जो विद्रोह की भावना उठ खड़ी हुई थी, उसके फलस्वरूप हिन्दी में नए छन्दों का आविर्भाव हुआ। लोग ऐसे छन्द को रबड़, केंचुआ या कँगारू छन्द के नाम से पुकारते हैं। ऐसे छन्द का एक उदाहरण 'निरालाजी' की 'जुही की कली' से दिया जाता है—

"विजन-वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह-स्वप्न मग्न,
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली
दृग बन्द किए शिथिल पत्राङ्क में।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपमाओं में भी परम्परायुक्त या परम्पराभुक्त उपमाओं के अतिरिक्त नये उपमान आये और मूर्त्त वस्तुओं की अमूर्त्त से और अमूर्त वस्तुओं की मूर्त से उपमाएँ अधिक दी जाने लगी। जैसे—

'इच्छाओं सी आसमान बिखरी
अलकें ज्यों तर्क जाल'

'सजग कल्पना सी साकार'

'जीवन की जटिल समस्या है बढ़ी जटासी कैसी'

(३) मानव-गौरव और व्यक्तिवाद—गांधीवाद के पूर्वकाल में भारतीय-साहित्य में केवल महान चरित्र की ऐसी कल्पना होती थी, जो सर्वथा पारलौकिक थी। साधारण मनुष्य उसकी कल्पना नहीं कर सकता है। इसलिए ऐसे दृष्टिकोण को हम कभी भी मानवी दृष्टिकोण नहीं कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में जीवन का वास्तविक रूप साहित्य में नहीं आ सका। फल यह हुआ कि आकाश को देखकर चलनेवाले राही की भाँति आकाश, ग्रह, सूर्य और नक्षत्र का ज्ञान तो हुआ; किन्तु पैरों तले की मिट्टी खिसक गई। इस युग ने भारतीय विचार-धारा में नई स्फूर्ति दी। आदर्शवादिता और यथार्थवादिता का संतुलन हुआ—जिससे एक नवीन साहित्य का सृजन हुआ। यह तो महात्माजी का ही प्रभाव था, क्योंकि वे राजनीतिक क्षेत्र में पूर्णतः यथार्थवादी एवं धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में आदर्शवादी थे। उनका आदर्श इतना दूर नहीं जिसकी प्राप्ति ही नहीं हो सके। फलतः इन दो धाराओं का प्रभाव साहित्य पर पड़ा। यथार्थवादिता की प्रवृत्ति के कारण इस युग के साहित्य में मानव-गौरव बढ़ा और समाज और व्यक्ति के बीच की गहरी खाई को भरने की चेष्टा की जाने लगी। धर्म और राजनीति ने जिस दलित मानवता को दबा रक्खा था, वहाँ अब वह ऊपर उठ गई। केवल राजा-महाराजाओं के ऊपर ही कविता नहीं होने लगी वरन् इष्टदेव के मन्दिर की पुजारी विधवा और पेट पीठ एक किये हुए लकुटिया टेके हुए, मुँहफटी पुरानी झोली को फैलाने वाला भिक्षुक भी काव्य का विषय बन गया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग भगवान् के दर्शन देवालयों में न करके मजदूरों की तपोभूमि में करने लगे। संक्षेप में साहित्य का विषय मानवता ही रहा। 'प्रसादजी' की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं:—

"सब भेद भाव भुलवाकर
दुख सुख को दृश्य बनाता
मानव कहते! 'यह मैं हूँ'
यह विश्व नीड़ बन जाता।"

(पृष्ठ १३६ का शेषांश)

"इन मुर्दों को अङ्क में धारण कर क्या तू पुत्रवती बनना चाहती है? वीर भोग्ये! इन कायर कामियों को तुरन्त रसातल भेज, इसी क्षण नरक में फेंक!..."

देखिए अछूतोद्धार के विषय में वह कैसा स्वप्न देख रहा है—

"अन्तस्तल के स्फटिक मन्दिर में देख रहा हूँ। धोखा! इन घृणित और पददलित अछूतों को परमात्मा कैसे स्नेह से भेंट रहा है। वास्तव में वह पतित पावन है—दुर्बल-बन्धु है। इतने दिनों में आज मेरी आँखें खुलीं!"

अभी हाल ही में "श्रद्धा-कण" में कवि की सजग लेखिनी से गान्धीजी के सिद्धान्त कलामय रूप से प्रस्फुटित हो पड़े हैं। 'गान्धीजी स्वयं दिव्य थे, वियोगीजी को कला के धूमिल प्रकाश में उस भव्य मूर्ति से एक रहस्यमयी आभा प्रस्फुटित होने लगी है।' इन छोटे-छोटे गद्य-गीतों में गान्धीजी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से किया गया है।

अन्त में हम कह सकते हैं कवि में प्रेमभाव का जो पुनीत उत्कर्ष है वह मानवता के उच्च आदर्शों से प्रेरित है। उसकी "भावना" तथा "अन्तर्नाद" में कल्पना का आनन्द, जीवन का दार्शनिक चिन्तन और एक भक्त हृदय की भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति है। इसके साथ-साथ उनमें हृदय की पुनीत भावनाओं से जीवन का सत्य मुखरित हो उठा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दा : एक आलोचनात्मक परिचय

श्री अनलकुमार साहित्य-रत्न

आधुनिक युग में 'उपन्यास' साहित्य का मनोरम है। साहित्य अगर जीवन की व्याख्या करता है, उपन्यास उसी परिभाषा का केवल सरस अंश है। उपन्यास को जीवन का छन्दहीन काव्य भी अनुचित नहीं होगा।

गत ५० वर्षों में ही खड़ी बोली हिन्दी के गद्य का प्रसार हुआ है। भारतेन्दु काल में उसका शिलान्यास हुआ तब से द्विवेदी काल तक उसका प्रयोग काल था। इस प्रयोग काल में साहित्य के अनेक गद्याङ्गों का विकास हुआ। उपन्यास भी इसी काल की वस्तु है। लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। 'चन्दा' भी ऐसा ही प्रयोग-कालीन उपन्यास है। २० वीं शताब्दी की पहली दशाब्दि इसका निर्माणकाल प्रतीत होता है।

राजस्थान की पार्श्वभूमि पर होने के कारण उपन्यास का स्वरूप ऐतिहासिक है। मध्यकाल अथवा राजपूतकाल के चित्तौर निवासी लक्खा राणा के ज्येष्ठ राजकुमार चन्दा इस उपन्यास के चरित्र नायक हैं।

उपन्यास में चन्दा का चरित्र एक सरल रेखा में चित्रित किया गया है। अनेक घटनाओं तथा विपरीत परिस्थितियों के पात्रों के समूह का इसमें अभाव सा है। जोधपुर के राठौर रणमल ने चित्तौड़ में अपनी पुत्री कमलावती के विवाह का नारियल भेजा। लक्खा राणा ने जिसे देख हँसकर डाढ़ी फटकारते हुए कहा—'मेरी डाढ़ी के लिए अवश्य ही नारियल भेजने का निश्चय नहीं किया गया होगा।' चन्दा ने इस बात को सुनकर नारियल अपने लिये अस्वीकार किया। उसने मन ही मन कमलावती को पिता की पुत्री का मूल्य रखते हुए माता मान लिया था। नारियल स्वीकार करते हुए लक्खा राणा का अधूरा वाक्य—'सो नारियल मुझे ही लेना पड़ता है। किन्तु यदि विवाह से मेरे पुत्र सन्तान हो।' ···को चन्दा अपना अपूर्व चरित्र बल दिखाकर भीष्म की सी प्रतिज्ञा करते हुए पूरा करते हैं··· 'तो वही पुत्र राणा की राज गद्दी पर बैठेगा। राणा का वही पुत्र वंश परम्परा से मेवाड़ वासियों का राजा होगा। आकाश से सूर्यदेव साक्षी रहें, उस नरेन्द्र के आगे सिर नवाकर राजकुमार चन्दा जीवन-मरण में उनका हितैषी बना रहेगा।' इसके पश्चात कमलावती से राणा का विवाह हुआ और तीन वर्ष बाद एक पुत्र मुकुल भी। मुकुल को श्रेष्ठ पुरुष बनाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न कर चन्दा अपना कर्तव्य निभाते हैं। राणा शत्रु निपात के लिए प्रस्थान करने के पूर्व राजकुमार को चित्तौर का राणा बनाकर राजतिलक करवाकर जाना चाहते हैं। राणा चन्दा को तिलक कराने की इच्छा है। राजसभा आयोजित करते हैं किन्तु चन्दा अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहकर मुकुल का अधिकार उसे सौंपकर स्वयं मन्त्रीपद ग्रहण करता है। यहाँ चन्दा के जीवन का त्याग पक्ष अच्छा उभरा है। कमलावती की मुँहबोली दासी (सखी) चम्पा कमलावती को मंथरा की तरह चन्दा के विरुद्ध तैयार करती है पर उसकी एक नहीं चल पाती। क्योंकि शासन से सारी प्रजा अत्यन्त सुखी थी और यह सब चंदा के औदार्य-पूर्ण शील बल का प्रताप था। जनता की दृष्टि में चन्दा का मूल्य बढ़ गया था। चन्दा को राज्य-निर्वासन का उपाय चम्पा राजमाता को सुझाती है। पर चन्दा का निर्वासन सरल बात नहीं थी। अतः अनेक तर्कों के पश्चात् चम्पा का निर्णय इन शब्दों में व्यक्त होता है—"नहीं, नहीं। मैं चढ़ाई करने की नहीं कहती हूँ। युवराज योधासिंह कमला के भाई यहाँ आवें। कुछ दिन यहाँ रहकर कौशलपूर्वक कुमार चन्दा को यहाँ से भगावें।" इसी के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्पा एक पत्र, पण्डित लम्बोदर लंठाचार्य द्वारा उस पर अपने रूप यौवन की दमक का प्रभाव डालकर, मारवाड़ नरेश के पास भिजवाती है। किन्तु पत्र गुप्तचरों द्वारा पकड़ा गया और चन्दा के पास पहुँचाया गया। चन्दा महारानी कमलावती के स्वार्थ को समझ गये; अतः उनके मार्ग से हट जाने का निर्णय मन ही मन कर लिया तथा एक प्रिय मित्र समरसिंह से कहते हुए कि···"भाई मुझे आज मेवाड़ छोड़ना पड़ता है। कारण मत पूछो, बालक महाराणा की रक्षा करो, तुम से मेरी एक अन्तिम प्रार्थना है।" वे मेवाड़ की सीमा से दूर कहीं विजन में निकल गये।

उपन्यास में चरित्र के देवोपम अंश का ही रेखांकन हुआ है, इससे वह जीवन के निकट कम लगता है। विपरीत मनोवृत्तियों की टक्कर तथा संघर्ष की परिस्थितियों का एकदम अभाव होने से उपन्यास में कुतूहल की कमी है। रस की मात्रा नहीं के बराबर है। मनोवृत्तियों की गति विधि तो उपन्यास में बहुत आगे की बात है, पर घटनाओं की विविध योजना का भी इसमें अभाव है। संविधान तथा कथावस्तु दोनों में प्रयोग कालीनता का आभास होता है। यही नहीं, भाषा शैली में भी यही बात मिलती है—'सभों ने ही गया यात्रा से पहले अपनी-अपनी सेना प्रयाग में इकट्ठी करने का सिद्धान्त कर लिया है।—सभी ने महाराणा ही को सेनापति स्वीकार किया है।'

पृष्ठ १८

"आक्रमणकारियों का हौसिला पूर्व ओर को अग्रसर होने का हुआ।

पृष्ठ १४

जहाँ कोई बलवान दलबल सहित उनका सामना करने को उद्यत हो जाता था, तहाँ सब दूसरे अलग रहकर उसकी पराजय का आनन्द अनुभव करते थे।

पृष्ठ १३

कितनी दूर पर आश्रय मिलेगा तिसका पता न रहना और तिस पर आती हुई सन्ध्या की राह रोकने वाली अँधेरी का भय—

पृष्ठ ६

यह सब विचारकर चित्त में धीरज लाइये, धीरज धरिये, प्रसन्न हूजिये।

पृष्ठ

इसी प्रकार उपन्यास की प्राचीन शैली; जिसमें उपन्यासकार पाठक से वस्तु के सम्बन्ध में सम्बोधन के प्रत्यक्ष बातचीत करने लगते हैं, जैसे—

'कहिये तो पाठक! चम्पा की उमर कितनी होगी—किन्तु प्रिय पाठक। किसे पसन्द करते हैं।—

पृष्ठ ६०

'क्यों पाठक। अब भी तोष पर कुछ आक्षेप है—

पृष्ठ ६१

'पाठक कदाचित् इन दोनों ब्राह्मणों को पहचान गये होंगे। ये उस दिन के राह भूले पथिक हैं।'—

पृष्ठ ११

शैलीगत प्रयोग कालीनता का आभास भी कुछ स्थानों में स्पष्ट देखा जा सकता है। लेखक कहीं पाठक को समझाते हुए शिक्षक कार्य करने लगता है, तो कहीं वह क्या वर्णन करना चाहता है और क्या नहीं, का कारण बताने लगता है। जैसे—

इन दिनों एक करोड़ मेवारी रुपया आजकल के सरकारी छः करोड़ रुपये से भी कुछ अधिक है।

पृष्ठ ३०

तिलकोत्सव के असाधारण व्ययशाली नियमों को दिखाने का स्थान उपन्यास नहीं है। किन्तु तो भी एक रोमाञ्च करनेवाली चिरस्थायी रीति का उल्लेख बिना किये रहा नहीं जाता है।

पृष्ठ ३०

भाषा में अनुप्रास एवं यमक का भी सर्वत्र प्रयोग हुआ है। विशेषतः अनुप्रास के अतिरेक भाषा अस्वाभाविक तथा अप्रचलित हो गई है।

यमक—राणा के मुख पर कभी 'कोप' का 'प्रकोप' रंग रहा था।

पृ० २१

अनुप्रास—पेड़ पौधे लता पता डाल पत्तों की हरियाली पर सोने की 'प, ल, त, र,' प्यारी माधुरी झलका रही थी।

पृ० ३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही वाक्य में 'प, ल, त और र की अनेक आवृत्तियाँ हुई हैं। और भी—छज्जों पर मेवारी चित्रकारी का चारु चमत्कार चमकता रहा है। पृष्ठ ३४

इसमें 'च' अक्षर की आवृत्ति चार बार हुई है। स्थान-स्थान पर अन्त्यानुप्रास के कारण तुकबन्दी का आभास होने लगता है—

युद्ध ही उनका ध्यान, युद्ध ही उनका ज्ञान, यद्ध ही उनका प्राण है। पृष्ठ ३३

शब्दों में तत्सम के साथ ही देशज, ठेठ, तद्भव एवं उर्दू शब्दों का भी यत्र-तत्र सन्निवेश हुआ है—

देशज—बैठने का स्थान चाहे रूखा खड़ बिड़हा क्यों न हो— पृ० ८

ठेठ—चिन्ता की गर्म बोरसियाँ धह धहा रही थीं— पृष्ठ ८

तद्भव—क्षत्रियों में ऐसा विशाल एका बहुत दिन के पश्चात् दृष्टिगोचर हुआ। पृष्ठ १८

उर्दू—चम्पा मेवार के राजभवन को 'आबाद' कर रही है।

लेखक ने चम्पा के शृङ्गार तथा रूप विन्यास द्वारा रस विशेष का अतिरञ्जित वर्णन किया है। यहां उनकी गद्य काव्यमय हो गई है। सर्वत्र शान्त तथा किंचित वीर रस का भी उपन्यास में समावेश है। आठवें अध्याय का शृङ्गार मानों सारे उपन्यास का केन्द्र बन गया है। नायिका भेद का रूप भी हमें स्पष्टतः इसमें मिलता है जैसे—

मुग्धा—किशोरी के अधखिले मुख-सरोज का नित्य संकोच प्राण में भावों की किशोरी तरङ्ग उछालता है। धरती को अपना भार जानने न देकर, आहिस्ते पग-पग पर रुक-रुक कर आना और मानों सांस तक बिना छोड़े बिस्तर से मिल जाना, हाथ पकड़ते ही किवाड़ में चिपक जाना, घूँघट उठाने से सिकुड़कर इतनी सी होकर मुँदी हुई आँखों को नीचे कर लेना....कलिका किशोरी की यह कोमल लाललीला बड़ी ही मनोहारिणी है। पृष्ठ ६१

उपर्युक्त अंश में किशोरी नायिका की प्रकृति एवं रति का स्वरूप है, तो निम्न अंश में युवती नायिका की प्रकृति एवं रति विलास का चित्रण है—

मुग्धा—उधर षोडशी मदमाती, यौवन की उछाल से उछलती, पदभार से धरती को कँपाती पास आती है।

युवती—दोनों तटों की सीमाओं तक लबालब बरसाती नदी की भाँति भरी पूरी गजगामिनी षोडशी, अंग-अंग में यौवन जलधि जल की ललित लावण्य छटा मलकर रोम-रोम में प्रफुल्लता भर देती है। पृष्ठ ६१

प्रौढ़ा—तीस के उन तने हुए तैयार अंगों पर गहने क्रमशः सुहावने लगे।

शृङ्गार—शरीर में चोली, चोली के नीचे घाघरा, घाघरे पर सेला, सेले के ऊपर चादर सुहाई....उसने कसी हुई चोली की अनोखी शोभा....मोतियों के बेल, मुक्कैश, जरी, बादले, गोटे की विलग-बिलग बलिहारी बहार....। पृष्ठ ६१ और ६२

उपन्यास में जैसे रीतिकाल साकार हो गया है। अमृतलाल चक्रवर्ती के संस्मरणों में बाबू शिवपूजन ने लिखा है कि उन्हें जयदेव के गीतगोविन्द पढ़ने की खूब धुन थी। कई अंश तो उन्हें कंठस्थ थे। जयदेव शृङ्गार शिरोमणि ललित कवि थे। वही छाया, वही प्रकृति चम्पा के परिस्फुटन में आबद्ध हो गई है।

चन्दा के साथ ही कमलावती और चम्पा का चरित्र-चित्रण उपन्यास की कुछ पंक्तियों में स्पष्ट है।

कमलावती मन में जो बात रहे, ऊपर से प्रसन्न बनाकर लोगों को सन्तुष्ट करने की विद्या में बेजोड़ थी। पृष्ठ ५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दा का लोकप्रिय होना, सौत के गर्भ से उत्पन्न होना तथा मेवाड़-राजवंश का ज्येष्ठ राजकुमार होना, कमलावती के चक्षुशूल का कारण है। पृष्ठ ५५

क्योंकि वह जिधर कान फेरती है उधर उसी की प्रशंसा सुनती है। राणा के नखशिख का पता नस-नस में रखने वाली कमलावती, राणा के जी में चन्दा को राणा बनाने की बात सोचकर मुकुल के लिए बिनती करने की भावना से प्रेरित हो उठती है।

पृष्ठ ४७

इस प्रकार कमलावती पूर्ण रूप से एक ईर्षाग्नि में जलने वाली सौतेली माँ है।

चम्पा केवल कमलावती की दासी या सहेली मात्र नहीं, उसकी गुरुआनी भी है। अथवा पद में दासी, काम में सहेली, गुप्त गृह में गुरुआनी है। वह इन तीनों रूपों में कमलावती की सेवा करती है। वह एक बाल विधवा है। वह विवाहित स्त्री न होने पर भी उनसे बढ़कर विवाहित स्त्रियों के नखरे जानती है। सुहाग का सेन्दुर बिना लगाये ही चम्पा पति मनाने की विद्या में सुहागिनों के कान काटती है।

पृष्ठ ४६

चम्पा की इसी चारु चातुरी ने तो कमलावती को सौतों की सरताज बना दिया है। यह चातुरी चम्पा की जन्मगत प्राप्त विद्या है। सामान्य दासी होने पर भी वह कमलावती के लिए केकयी की मन्थरा है। उसने किसी का प्रेम नहीं पाया, न वही किसी को प्रेम करना सीख सकी। उसकी दृष्टि में प्रेम मतलब साधने का चातुरी चक्र है। वह चन्दा के विरुद्ध मुकुल की बात उठाकर कमलावती की मनोभूमि तैयार करती है। और चन्दा के निर्वासन के लिए जोधसिंह को निमन्त्रण भी भेजती है। निमन्त्रण पत्र भिजवाने के प्रयत्न में वह अपने रूप यौवन को सजाकर उसके प्रभाव से एक कायर में मोह तथा लोभ उत्पन्न है। वह कमलावती के लिए सब कर सकती है। का पत्र पाकर अपने आप निर्वासन एक प्रक चम्पा की ही तो जीत है। इस प्रकार चम्पा कूटनीतिक तथा चालबाज स्त्री है।

एक स्थान पर (पृष्ठ १७) सात दिन बाद यात्रा की बात पक्की कर राणा सात वर्ष बेतवा हैं। विवाह के सात साल बाद वे एक चतुर्दश युद्धयात्रा करते हैं। (पृष्ठ ३३) यह एक का कालदोष है। संपादन करते समय इससे बचा सकता था किन्तु ध्यान नहीं दिया गया।

पुस्तक के लेखक श्री अमृतलाल चक्रवर्ती के सोलहवें साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने थे। श्रीमद्भगवद्गीता और गीतगोविन्द उनके प्रिय ग्रन्थ थे, उन पर आपने टीकाएँ भी लिखी अपने उपन्यासों में उन्हें 'सती सुखदेई' अधिक था। 'देश की बात' भी उनकी एक पुस्तक 'विश्वमित्र' में उन्होंने कुछ आत्मसंस्मरण भी थे। लेकिन सम्पादकीय अग्रलेख जो उनके काल में हिन्दुस्तान, हिन्दी बंगवासी और समाचार में उन्होंने लिखे थे, उन्हें अत्यन्त जीवन की दयनीय दरिद्रावस्था में भी उन्होंने की सेवा में अपने को विमुख नहीं किया। प्रलोभन भी उन्हें जीवन की विभीषिका पूर्ण में हिन्दी से पराङ्मुख नहीं करा सके। उन्होंने दिया था कि "हिन्दी के सिवा किसी दूसरी नहीं लिखेंगे क्योंकि जीवन भर यही लिखा आखिरी दम तक यही लिखते रहेंगे।"

—हिमालय

ऐसे निष्ठावान लेखक भाषा के विकास बल पहुँचाते हैं। बंगाली सज्जन होते हुए भी हिन्दी के प्रति निष्ठा आदरणीय एवं पूजनीय है।

परीक्षार्थी प्रबोध

साहित्य-सन्देश के विगत १० वर्षों में विद्यार्थियों के उपयोगी, जिनसे इन्टर, बी० ए० तथा एम० ए० तथा विशारद और साहित्य-रत्न आदि परीक्षाओं में पर्याप्त सहायता मिल सकती है, निबन्धों का संग्रह है। मूल्य ३) है परन्तु साहित्य-सन्देश के के लिए आधी मूल्य में मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता

रिम-झिम—ले०—श्री भरत व्यास। प्रकाशक—राजस्थान कला मन्दिर, घोड़बन्दर रोड, मलाड (बम्बई) पृष्ठ १००, मूल्य १।)

उक्त गीत संग्रह में हिन्दी फिल्म जगत के सुप्रसिद्ध गीतकार श्री व्यास के ६२ गीतों का संग्रह है। संग्रह के प्रारम्भ में ख्यातिनामा फिल्म-गीतकार एवं हिन्दी के कवि श्री नरेन्द्र शर्मा ने लेखक का परिचय दिया है। श्री भरत व्यास के भावों के सम्बन्ध में उनके शब्द हैं—"हमारी सबकी समस्यायें समान हैं। हमारे हास परिहास रुदन-गायन एक ही गौमुखी द्वारा विस्तृत होते हैं।" 'कोई' गीत में कवि की वेदना में उसी समस्या की उलझन है जिसे सुलझाने में आज तक संसार उलझता रहा है।—

दिवस की सारी व्यथाएँ भूलकर,
रात में जब विश्व सारा सो रहा।
शून्य सरिता के किनारे बैठ कर,
दिल-जला कोई अकेला रो रहा॥

इस संग्रह में कवि ने निज कटु-अनुभवों, व्यथा भरे उच्छ्वासों, उपदेश भरी चेतावनी तथा अन्त में उत्साहमय गर्जना को गीतों के रूप में व्यक्त किया है। कवि का दृष्टिकोण निराशावादी के साथ-साथ आशावादी भी है और वह कभी कभी समझदारी की बातें करने से भी नहीं चूकता। जैसे 'मेरे भोले मन उलझ कहीं मत जाना।' उसे जग का अपने प्रति अवहेलना के लिये उलाहना है।—

जग ने केवल कथा सुनी है—
किन्तु कथा के अन्तर में जो—
व्यथा छुपी थी कब पहचानी—
जग ने मेरी पीर न जानी—

उसने निराशा को भी सहन करने का तरीका ढूढ़ निकाला है।

अब प्याले ने साथ दिया तो,
तुम बिन जीना सीख लिया है।

कवि के विचारों की सब से सुन्दर रूप में 'शून्य' गीत में अभिव्यक्ति हुई है। 'कोई', 'यौवनागम', 'मैंने पीना सीख लिया है' तथा 'जीवन भार बन गया' भी उसके श्रेष्ठ गीतों में से हैं। इसके साथ यह भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अधिकतर कविताओं में कवि ने संयम से काम लेने की भरपूर चेष्टा की है। इसी कलम से और भी अच्छे गीत निकलेंगे; ऐसी आशा की जाय तो गलत न होगा। 'रिम-झिम' आदि गीतों में कहीं-कहीं नीरसता अवश्य आगयी है।

बापू के गीत—ले०—श्री कृपाशंकर शर्मा। प्रकाशक—राजेन्द्र प्रकाशन मन्दिर, आगरा। पृष्ठ ४०, मूल्य १।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त पुस्तिका में लेखक के बापूजी के उपदेशों पर आधारित बत्तीस गीतों का संग्रह है। कवि ने संग्रह की प्रस्तावना में लिखा है—"श्री आनन्द हिंगो रानी द्वारा प्रकाशित 'बापू के आशीर्वाद' से आरम्भ के बत्तीस सूत्र लेकर मैंने बापू की अमर वाणी को गेय सरस और सङ्गीतमय बनाने का प्रयत्न किया है।" चोरी, अहिंसा तथा धर्म आदि विषयों पर छः छः पंक्तियों के बत्तीस गीत लिखे गये हैं।

जान पड़ता है कि इन गीतों अथवा पदों के लिखने में कवि महाकवि सूरदास के पदों की रचना-बली से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है।

गीतों में कवि के अपने विचार न होने पर भी गान्धी सूत्रों को कविताबद्ध करते समय वह मूल भावों की रक्षा के साथ साथ उनमें कवित्वमय प्राण देने में किसी सीमा तक सफल रहा है। जैसे तरु की तपस्या के विषय में कवि ने लिखा है—

नंगी धरती की छाती पर
हरित वसन फैलाया।
दिनकर की ज्वाला पी,
शरण गत को दी मधुछाया।

वह झूँठ की भयङ्करता का चित्रण करता है—

क्षीर-कलश में गिरा गरल कण,
क्षीर हुआ विष-पान।
मंगलमय जीवन गीतों में
मत भर नीरस तान।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से अपनापन, श्रद्धा और अहिंसा आदि गीत अधिक सुन्दर बन पड़े हैं।

गान्धीजी के उपदेशों को इस प्रकार गेय बना कर कवि ने जन-साहित्य में एक नई वस्तु को जन्म दिया है।

आजकल सिनेमा के गीतों की लय से मोहित जनता गीतों की निकृष्टता पर ध्यान न देते हुए उन्हें गा रही है। उसके लिये उक्त गीत एक अच्छी देन सिद्ध हो सकते हैं।

—शशिभूषण सिंहल

धर्म

श्री भागवत-दर्शन (भागवती कथा) प्रथम-खण्ड (तृतीय संस्करण)—लेखक-श्री प्रभूदत्त ब्रह्मचारी प्रकाशक—संकीर्तन भवन झूसी (प्रयाग) मूल्य १।)

श्री मद्भागवत के अध्ययन और शास्त्रीय परम्परा के अनुसार उसके तत्वों को समझाने के लिए प्रति-मास एक खण्ड निकालने का उपक्रम किया गया है। यह क्रम पाँच या सात वर्ष तक चलेगा। इसमें श्रीमद्भागवत कथा से सम्बन्धित स्वतन्त्र लेख हैं। ऐसी आशा की जाती है कि इसमें वेदों शास्त्रों और अन्य पुराणों का भी प्रसङ्गानुकूल ज्ञान कराया जायगा। यह ग्रन्थ धार्मिक दृष्टिकोण से लिखा गया है और श्रद्धालु लोगों के लिए विशेष उपयोग है। सहृदय साहित्यिकों को भी सांस्कृतिक दृष्टि से शास्त्रीय परम्पराओं के ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो सकती है। केवल बुद्धवादी लोगों के लिए यह पुस्तक निरर्थक सी हो सिद्ध होगी।

—गुलाबराय

बालोपयोगी

(१) बेटे हों तो ऐसे हों, (२) बेटियाँ हों तो ऐसी हों—लेखक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी। प्रकाशक-श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड पटना। पृष्ठ संख्या क्रमशः ३६ और ३६ प्रति पुस्तक मूल्य ।।।)

इन दोनों पुस्तकों में विदेश के बालक और बालिकाओं के अनुपम साहस की रोमाञ्चकारी कथाएं हैं। साहस हृदय की वस्तु है उसमें अवस्था बाधक नहीं हो सकती। इन बालकों और बालिकाओं से जिन्होंने जान को हथेली पर रख कर दूसरों की जानें बचाई हैं या देश का मान रक्खा है। पृथ्वी के 'धधकते गर्भ से,' मौत को हाथ में लेकर, 'अलबेले साझीदार' 'आँचल में बारुद' आदि कहानियाँ विशेष रूप से पठनीय है। इतनी ही खेद की बात है कि इसमें एक भी उदाहरण स्वदेश से नहीं दिया गया वीर अभिमन्यु, हकीकतराय के पुत्र आदि की कथाएँ हमारे बालकों में आत्म गौरव की भावनाएँ भर सकती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

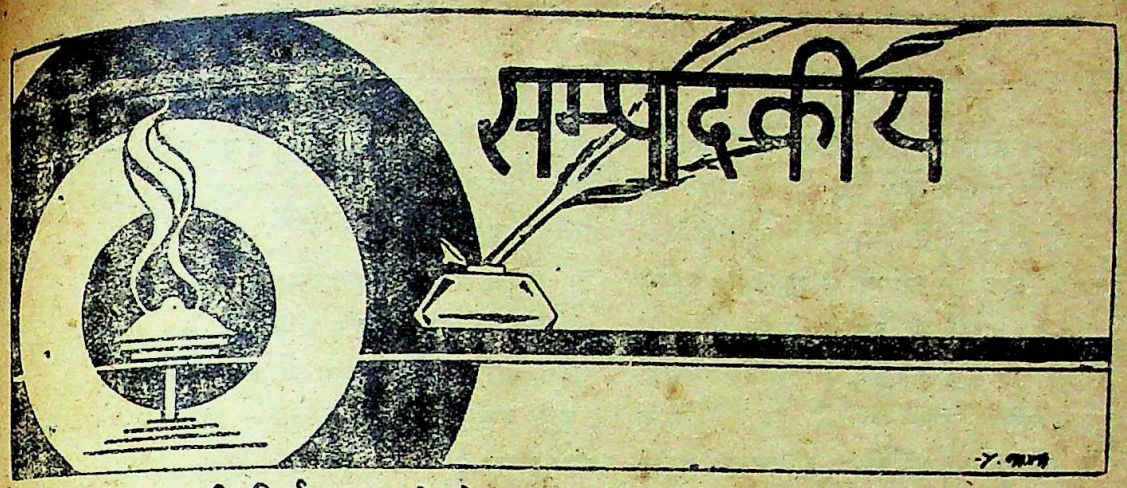

राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी निर्णय—हम पिछले अङ्क में विधान-परिषद के हिन्दी सम्बन्धी निर्णय पर कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि 'विधान-परिषद' के निर्णय ने 'हिन्दी' को राष्ट्र-भाषा 'राज्य-भाषा' निश्चित कर दिया है। पर विधान-परिषद ने भाषा के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव स्वीकार किया है वह यदि सम्पूर्ण रूपेण देखा जाय तो आशा के स्थान पर निराशा ही उत्पन्न होती है। १९३५ का 'इण्डिया ऐक्ट' जब भारत पर लादा गया था तो हमारे नेताओं की सबसे बड़ी एक ही आलोचना थी कि एक हाथ से जो दिया गया है, वह दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। ठीक यही आलोचना हिन्दी सम्बन्धी विधान-परिषद के प्रस्ताव की की जा सकती है।

'३०१ अ' धारा का (१) शाखा में निश्चय-पूर्वक लिखा गया है कि (१) भारतीय संघ की राज्य-भाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी होगी।' किन्तु एक तो 'भाषा कमीशन' का सुझाव विचित्र है; उसके साथ ही राष्ट्रपति को जो अधिकार दिया गया है वह तो चौंभ पूर्ण है—प्रस्ताव में ३०१ व (६) में निर्दिष्ट है कि राष्ट्रपति इस धारा में दी गई बातों के बावजूद इस रिपोर्ट के अनुसार हिदायतें जारी करेगा—विधान परिषद के निर्णय को इस पर पलटने का अधिकार भी इसके अन्तरगत कुछ व्यक्तियों को, अर्थात् भाषा कमीशन के सदस्यों और राष्ट्रपति को, सौंप दिया गया है।

राष्ट्रपति को '३०१ य' के अन्तर्गत यह अधिकार दिया गया है कि "जनता के किसी बड़े वर्ग की मांग पर उसकी भाषा को किसी कार्य विशेष के लिये राज्य में या राज्य के किसी भाग में मान्य कर सकता है।

३०१ स धारा भी देखने योग्य है। १५ वर्ष के सम्बन्ध में कोई बिल या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना राज सभा के दोनों में से किसी भी भवन में प्रस्तुत न किया जायगा, और राष्ट्रपति उसके प्रस्तुत करने की अनुमति न देगा जब तक वह भाषा कमीशन की शिफारिशों और समिति की रिपोर्टों पर विचार न कर लेना। इन धाराओं से यह स्पष्ट विदित होता है कि हिन्दी विरोधियों की काफी जीत हुई है और आगे भी उन्हें प्रतिक्रियात्मक कार्यों से देश के राष्ट्रत्व को छिन्न करने के पूरा-पूरा अवसर देने की स्थिति प्रस्तुत कर दी गयी है।

हिन्दी के विकास सम्बन्धी '३०१ इ' धारा भी भाषा-विज्ञान की शक्तियों की सम्भावना के प्रतिकूल है, और हिन्दी भाषा के लिए खतरे की वस्तु है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इन सब धाराओं से भी कुछ बनने बिगड़ने की बात नहीं, यदि हमारे राष्ट्र का कार्य-विधि स्वस्थ और सुलझी दृष्टि से सञ्चालित होती है। पर इस प्रस्ताव से और जिस ढङ्ग से और जिस वातावरण को उत्पन्न करके यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया है, उससे हिन्दी के मानस मनीषी को पर्याप्त संकेत मिल जाता है। उसे भारत के सम्पूर्ण राष्ट्र को उसकी विविधता को ध्यान में रख कर त्वरित गति से ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत करनी हैं जो हिन्दी की अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल हो और हिन्दी को ऐसा बल दे कि सभी आशङ्काएँ चूर-चूर हो जायँ।

दो जयन्तियाँ—पिछले अंक और इस अङ्क के अवकाश में भारत में दो महान् पुरुषों की जयन्तियाँ मनायी गयी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जयन्ती तो विश्व-कवि रवीन्द्र की जयन्ती है। विश्व-कवि विश्व-साहित्य का सूर्य है। भारत की अमरवाणी को इस कवि ने विश्व के कोने-कोने में गुँजा दिया। विश्व के समस्त संतप्त और पीड़ित राष्ट्र के जन इस वाणी के वरदान से ही भारत की ओर श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे, और मानव-कल्याण की आशा के अंकुर उनके मन में उगे। हमारे साहित्यकार को आज हम विश्व-साहित्यिक पर केवल गर्व ही नहीं होना चाहिए, उसके संदेशों को हृदयङ्गम करके उसके अनुकूल साहित्य-सृष्टि में प्रवृत्त होना चाहिए। यदि साहित्यकार आन्तरिक तत्व को समझेगा तो उसे विदित होगा कि संसार का संघर्ष उतना वर्ग-संघर्ष और आर्थिक विषमता जन्य नहीं है। जितना मूल-भूत तत्वों पर आश्रित त्रिविध है—जड़—पशु—मानव। साहित्यकार का 'मानव' होने के नाते यह धर्म है कि वह 'मानव' को मूर्धाभिषिक्त करे, उसके रूप को उद्भासित करे, और उसमें आस्तिक भाव की प्रतिष्ठा करे, उसके उज्ज्वल भविष्य की संभावना प्रस्तुत करे। 'जड़' और 'पशु' को परास्त करना आज साहित्यकार का अनिवार्य धर्म और कर्म होना चाहिए—रवीन्द्र के 'साहित्य' की यह मूल-वाणी है—उन्होंने कहीं लिखा है :—

"एक समय हम एशिया वासियों ने मनुष्य में विद्यमान इस पशु का मुँह बन्द करने और उसकी क्रूरता को रोकने का भरसक यत्न किया था! किन्तु आज बुद्धि की दानवी सत्ता ने हमारी नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों की श्रद्धा को अभिभूत कर दिया है। पशुओं की क्षमता जड़ नहीं थी। कम से कम जीवन से तो उसका संयोग था, वह प्राणियों की ही सत्ता थी, परन्तु बम गोले, विशैली गैसें, घातक हवाई जहाज आदि विज्ञान जनित भयङ्कर 'अस्त्रों में यह बात नहीं है, वे सर्वथा जड़ हैं।"—

हम नहीं जानते कि हमारे साहित्यकारों ने महाकवि की जयन्ती पर अपने साहित्य-कर्म की कोई ऐसी ही मानव-विजय को संभव बनाने वाली दिशा का संकल्प किया है या नहीं। महाकवि की जयन्ती का साहित्यिक समारोह तो बिना ऐसे संकल्प के निर्जीव ही है।

दूसरी जयन्ती विश्वबन्द्य बापू की हुई है। बापू और रवीन्द्र भारतीय दृष्टि से अभिन्न है। इस महापुरुष का भी मर्म हमारे जीवन में नहीं मिट पाया। आज देश का कलुषित और अनिश्चित व सन्देहपूर्ण वातावरण इसी कारण है। और इसका विशेष दायित्व साहित्यकार' पर ही आता है। वह गाँधी के जीवन सन्देश को ऐसे प्राणों के साथ नहीं रख सका है कि जन-जन उसे आधारतः ग्रहण करने को मनतः विवश हो जाय। वर्ष प्रति वर्ष जयंती मनाते हुए साहित्यकार को यह लेखा-जोखा मिलाने की आवश्यकता है कि पिछले वर्ष इस दिशा में उसने क्या किया और आगे उसीको समृद्ध करने और प्रगति देने के लिए वह क्या विशेष करना चाहता है।

राष्ट्र-गीत—देश में राष्ट्र गीत के सम्बन्ध में बहुत विवाद हुआ है। दो पक्ष 'वन्दे मातरम' और 'जन गण मन अधिनायक' को लेकर हो गये हैं, और यह विवाद अभीतक शान्त नहीं हुआ। भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में इन दोनों गीतों की जो देन रही है हम उसके महत्व को यहाँ प्रकट नहीं करना चाहते। हम तो एक बात कहना चाहते हैं—वह यह है कि स्वतन्त्र देश का राष्ट्र गीत वही होना चाहिए जो स्वतन्त्र-वातावरण में, देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त बना हो। आज हिन्दी राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर ली गयी है। इस राष्ट्रभाषा के महाकवि 'सुमित्रानन्दन पन्त ने भारत के स्वतन्त्र हो जाने के उपरान्त जो, भारत गीत दिया है, हम उसकी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं—उसमें 'वन्देमातरम' और 'जन गण मन' दोनों गीतों की परम्परा का भाव भरा हुआ है, और उसमें वह कुछ भी नहीं है जो इनमें विवाद का प्रश्न बना है। उसमें नयी स्फूर्ति और नयी भावना ने उसे और भी महत्व पूर्ण बना दिया है—वह गीत 'युग पथ' के पृष्ठ ८७ पर मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

प्रधान कार्यालय—स्वदेशी बीमा नगर, आगरा। (स्थापित १६३१)

आँकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १६४६	....	रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १६४७	....	रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १६४८	....	रु० ४२,००,००० से ऊपर।

स्वदेशी बीमा कम्पनी का कार्य सन् १६४६ ई० में भी अब तक गत वर्ष की अपेक्षा प्रति मास डेढ़ गुने से भी अधिक रहा है, जबकि अधिकांश बीमा कम्पनियों का कार्य घट रहा है।

एक मुश्ती घातक दुर्घटना पालिसी तथा फिक्स्ड डिपोजिट की योजना स्वदेशी की एक विशेषता है।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व ऑर्गनाइजरों की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर

❀ अच्छी हिन्दी का नमूना ❀

❀ पं० किशोरीदास वाजपेयी की यह नयी पुस्तक अपने विषय में जोड़ नहीं रखती है।

❀ जो लोग चुस्त और टकसाली हिन्दी लिखने की कामना रखते हैं उन्हें यह पुस्तक तुरन्त मँगाकर पढ़नी चाहिए।

❀ हिन्दी लेखकों के लिए बहुत जरूरी चीज हैं।

❀ छात्रों के साहित्यक जीवन का सुदृढ़ आधार है।

मूल्य २॥)

वाजपेयीजी की ये पुस्तकें भी प्राप्य हैं—

१—ब्रजभाषा का व्याकरण—मूल्य ३)

२—कांग्रेस का सांचित्र इतिहास—(डा० पट्टाभि द्वारा प्रकाशित) मूल्य १)

३—मानव धर्म मीमांसा—(धर्म-विवेचना पर एक क्रान्तिकारी रचना) मूल्य ३॥)

४—ब्राह्मण सावधान—(सामाजिक निबन्ध) मूल्य ॥)

मँगाने का पता—

हिमालय एजेंसी, कनखल, यू० पी०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थी-प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी-प्रबोध हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों को सामयिक सहायता के लिए तय्यार गयी है। प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, सरस्वती, प्रभाकर, इन्टरमीजिएट, बी० ए० तथा एम० ए० परीक्षार्थियों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की सामग्री दी गयी है।

'साहित्य-सन्देश' निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सहायता करता रहा है। विगत ग्यारह वर्षों में जो विद्यार्थियोपयोगी निबन्ध अपने अङ्कों के द्वारा भेंट किये हैं, उनका और महत्व-पूर्ण अंश लेकर तथा आवश्यक नये निबन्ध जोड़कर यह पुस्तक तय्यार की गयी विद्यार्थी और परीक्षार्थी के लिए सदैव साथ रखने योग्य पुस्तक होगी। इसकी पृष्ठ लगभग ३०० होगी। इसका लागत मात्र मूल्य ३) है।

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को आधे मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी। इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायगे जो इस ग्राहक हैं अथवा ३० नवम्बर तक ५॥) भेजकर ग्राहक बन जायँगे। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

मूल्य निम्न प्रकार लिया जायगा।

	ग्राहकों से	अन्य सज्जनों से
पेशगी प्राप्त होने पर रजिस्ट्री से	१॥)	
" " साधारण पोस्टल आर्डर से	१॥)	
वी० पी० से मंगाने वालों से	१॥।=)	

प्रति सुरक्षित करालें

इस पुस्तक की अधिक बिकने की संभावना है अतः जो सज्जन पहले मनीआर्डर भेज उनके लिये पुस्तक सुरक्षित रखली जायगी।

नोट:—यह पुस्तक अभी प्रेस में छप रही है और हम उसे परीक्षाओं से पहले अर्थात् नवम्बर १९४९ को अपने यहाँ से भेज देंगे, जो सज्जन वी० पी० से मंगाना चाहेंगे उन्हें दो तीन दि[illegible]री होना स्वाभाविक है क्योंकि हजारों की संख्या में वी० पी० के लिये पोस्ट आफिस वाले दो तीन दिन अवश्य लगा लेंगे। अस्तु ऐसी दशा में पेशगी मनीआर्डर भेजना ही सुविधा जनक होगा।

जो सज्जन इस पुस्तक के लेखों के विषय की सूची मंगाकर आर्डर देना चाहें तो हम अक्टूबर के लगभग उनका पत्र आने पर, ऐसी सूची भी छपने पर भेज देंगे।

पता:—साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

अथवा

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

रामचरनलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

] आगरा—सितम्बर, १९४९ [अङ्क ३

विषय सूची

—रसानुभूति में अलङ्कार का योग—डा० नगेन्द्र ८९

—पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक समाधान—डा० सत्येन्द्र ९२

—पृथ्वीराज रासो में सैन्य एवं युद्ध के गतिमय चित्र—
श्री कन्हैयालाल बी० ए०, सी० टी० साहित्य-रत्न ९७

—'कामना'—प्रो० नागरमल 'सहल' ऐम० ए०, ऐल-ऐल० बी० .... १०१

—'कला का रहस्य'—श्री देव प्रसाद सिंह बी० ए० .... १०४

—पंचवटी—श्री राधाशरण शास्त्री १०७

—कवि पन्त और प्रकृति—श्री शिवप्रसाद लोहानी 'साहित्य-रत्न' ११२

—दिनकर : तीन लेख—(१) श्री आनन्दप्रकाश मिश्र, (२) प्रो० भुवनेश्वरप्रसाद वर्मा 'कमल' एम०, (३) श्री शिवप्रसाद लोहानी 'साहित्य-रत्न' ११४

—पुस्तक-परिचय— १२२

—सम्पादकीय— १२८

—गुलाबराय एम० ए०

—महेन्द्

प्रकाशक

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य ४)

एक अङ्क का ८)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

हिन्दी कविता का अध्ययन—
प्रो० शिवनन्दनप्रसाद एम० ए० साहित्य-रत्न १॥)
साहित्य और समीक्षा—गुलाबराय एम० ए० १॥)

उपन्यास

नया आदमी—श्री शिवचन्द्र शर्मा ३॥)
जमींदार—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)
निमियाँ—श्री अम्बिकाप्रसाद वर्मा 'दिव्य' एम० ए० ५)
सङ्कल्प—श्री कु० कञ्चनलता सब्बर बाल एम० ए० ३॥)
आशा—श्री रमेशचन्द्र प्रेम २)
तोड़ दो बन्धन—श्री रमेशचन्द्र प्रेम २॥)
विराट—स्टीफन ज्विग १)
दशकन्धर—श्री शान्तिस्वरूप गौड़ ३)

राजनीति

बापू के चरणों में—श्री वृजकृष्ण 'चाँदी वाला' २॥)
राष्ट्र पिता—पं० जवाहरलाल नेहरू २॥)
श्रद्धाकण (गद्यकाव्य)—श्री वियोगी हरि १)
जेल में—श्री वृजलाल वियाणी ३)

कहानियाँ

कच्ची नींद—श्री ओंकार शूद्र १)
हिरन की आँखें—श्री पहाड़ी २॥)

जीवनी

मेरा जीवन प्रवाह—श्री वियोगी हरि ४॥)

स्त्रियोपयोगी

आदर्श पाक विज्ञान—
श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए०, प्रभा वर्मा एम०ए०

बालोपयोगी

बाल कथा—संपादिका—श्री मोहना

धार्मिक

श्री भागवत-दर्शन भगवती कथा—
श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
श्री भागवत-दर्शन भगवती कथा भाग १— „

गान्धी-साहित्य

गान्धी चित्रावली—सम्पादक श्री जीतमय लूणिया

यात्रा

घुमक्कड़ शास्त्र—राहुल सांकृत्यायन

कोष

आधुनिक कोष—केदारनाथ भट्ट
अग्रवाल हिन्दी कोष—
सम्पादक सुखदेव शास्त्री आचार्य शिरोमणि

व्यापार-सम्बन्धी

बीमा का प्रारम्भिक अध्ययन—
श्री बालचन्द श्रीवास्तव एम० कॉम
पत्र व्यवहार संक्षिप्तिकरण तथा बाजार भाव—
श्रीनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, बी० कॉम

❀ वर्ष ६ सन् १९४७-४८ की पूरी फाइलें ❀

पिछले अङ्कों में विज्ञप्ति के अनुसार जुलाई १९४७ से जून १९४८ के ६ वें वर्ष की [illegible] बड़ी कठिनाई से १० फाइलें संग्रह करके बनाई हैं—यह फाइलें मोटे पट्ठे की जिल्द में बनाई [illegible] हैं—मूल्य ५)—कुछ फाइलें ऐसी भी बनी हैं जिनमें सितम्बर-अक्टूबर का अङ्क नहीं है यह फाइल अजिल्द हैं। मूल्य ३॥) पोस्ट फ्री। आज ही मँगा लें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ११] आगरा—सितम्बर, १९४९ [अङ्क ३

रसानुभूति में अलंकार का योग

(डा० नगेन्द्र)

रस मन की वह अवस्था है, जिसमें हमारी मनोवृत्तियाँ अन्वित हो जाती हैं। अतएव रसानुभूति में अलङ्कार का क्या योग है, इसका परीक्षण करने के लिये हमें यह देखना चाहिए कि अलङ्कार किस प्रकार हमारी वृत्तियों को अन्वित करने में सहायक होता है। वैसे तो सभी अलङ्कारों का मूलाधार अतिशय है जो हमारी वृत्तियों को उद्दीप्त करता हुआ बाद में उन्हें पूर्ण अन्विति के लिये तैयार कर देता है। परन्तु जैसा मैंने अन्यत्र कहा है व्यवहार तल पर अलङ्कारों के छः स्पष्ट आधार हैं, जो अतिशय गर्भ होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न और अपने में स्वतन्त्र है, साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार। साधर्म्य मूलक अलङ्कारों द्वारा मुख्यतः हम हमने कथन को स्पष्ट करते हुए श्रोता की मनोवृतियों को अन्वित करते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम किसी सुन्दरी के मुख को चन्द्रमा की उपमा देते हैं तो, वास्तव में, मुख को देखकर हमारे मन में जो विशिष्ट भाव उठता है उसका हम एक प्रसिद्ध उपमान की सहायता लेकर साधारणी-करण करते हैं। चन्द्रमा एक प्रसिद्ध सौन्दर्य प्रतीक है। उसके दर्शन से मन में कैसा भाव उत्पन्न होता है, इसे हमारे अतिरिक्त अन्य सहृदय व्यक्ति भी पूरी तरह जानते हैं, अतएव हम किसी सुन्दर मुख को चन्द्रमा के समान कहकर अपनी उद्दीप्त भावना को श्रोता के हृदय में बैठाते हैं। इस प्रकार हमारी उक्ति के प्रभाव को पूर्णतः ग्रहण कर श्रोता की वृत्तियाँ प्रसन्न होकर अन्विति के लिए तैयार हो जाती हैं। साधर्म्य मूलक अलङ्कार मूलतः इसी तरह रसानुभूति में योग देते हैं। अतिशय मूलक अलङ्कार हमारे मन के ओज की अभिव्यक्ति के माध्यम होते हैं। उनमें स्पष्ट रूप से लोकातिशयता तो होती ही है, परन्तु आत्यन्तिक रूप में संगति भी अनिवार्यतः होती है। (जहाँ लोकतिशयता असङ्गत अथवा अप्राकृतिक होगी वहाँ अलङ्कार सार्थक नहीं होगा।) अतएव वे अतिशयता के द्वारा पहले मन का विस्तार करते हुए हमारी वृत्तियों को ऊर्जवित करते हैं, फिर मूलवर्ती संगति के द्वारा उनमें अन्विति स्थापित करने में सहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक होते हैं। एक उदाहरण लीजिए:—

"राघव की चतुरंग चमूचय को,
गने केशव राज समाजनि।
सूर तुरंग के अरुझैं पग तुंग,
पताकनि की पट साजनि॥

राम की सेना के वैभव का कवि के मन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसके मन का ओज एक साथ वाणी में फूट पड़ा। तुंग पताकाओं में सूर्य तुरङ्गों के पैर उलझ जाते हैं, इस उक्ति में पताकाओं की ऊँचाई की अतिशयता तो स्पष्ट है ही परन्तु उसके ओगे उनकी ऊँचाई और सूर्य की ऊँचाई में मूल-वर्तिनी भावना की सङ्गति भी है। इसलिये जब हम उर्जस्वित वाणी को सुनते हैं तो प्रतिसंवेदन के द्वारा पहिले तो हमारे मन में ओज का सञ्चार हो जाता है, जिससे हमारी वृत्तियाँ विस्तृत हो जाती हैं, फिर मूल-वर्तिनी सङ्गति के सहारे वे अन्विति के लिये तैयार हो जाती हैं। विस्तार के उपरान्त यह अन्विति स्वभावतः ही अधिक गहरी होती है। वैषम्यमूलक अलङ्कारों की रसानुभूति में योग देने की विधि साधर्म्यमूलक अलङ्कारों के बिल्कुल विपरीत है। ये बैषम्य के द्वारा शब्द गत अथवा अर्थ गत निषेध के द्वारा—हमें आश्चर्य-चकित कर, वैषम्य में अनुस्यूत साम्य की, अर्थात् अनेकता में एकता की भावना कराते हुए हमारी वृत्तियों को अन्वित करने में सहायक होते हैं :—

मीठी लगै अँखियन लुनाई

उपर्युक्त उक्ति में लुनाई के मीठे लगने में शब्द-गत वैषम्य अथवा निषेध है। यही वैषम्य पहले तो एक साथ मन में आश्चर्य पैदा कर हमारी वृत्तियों को विशृङ्खल कर देता है। परन्तु वाह्य वैषम्य होते हुए भी दोनों में जो आन्तरिक सङ्गति है वह अन्त में जाकर उद्दीप्त वृत्तियों को अधिक पूर्णता के साथ अन्वित करने में सहायक होती है।

चौथा वर्ग है औचित्य मूलक अलंकारों का। औचित्य मूलक अलंकारों में तो मूलतः ही एक संगति वर्तमान रहती है जो हमारी वृत्तियों को सीधे रूप में ही समन्वित होने में सहायता देती है—

भागीरथी बिगड़ी गति में,
अरु तू बिगड़ी गति की है सुधारक।

यहाँ भक्ति 'बिगड़ी गति' है और भागीरथी बिगड़ी गति की सुधारक है। इन दो तत्वों में संगति स्पष्ट है जो हमारी भावनाओं में सामञ्जस्य स्थापित करने में सहायता देती है। इसी प्रकार कारण माला तथा एकावली भावनाओं को शृङ्खलित कर और काव्यलिंग आदि भावगत औचित्य स्थापित कर उक्त उद्देश्य की सिद्धि में योग देते हैं।

वक्रतामूलक अलंकार यह कार्य जिज्ञासा को उभार कर पूरा करते हैं। गोपन-प्रकाशन से भी सूक्ष्मतर कल्प है। वक्रता पर आश्रित अलंकार हमारी वृत्तियों की गति को थोड़ा रोक कर उन्हें तीव्रतर बना देते हैं और फिर वास्तविक अर्थ की संगति द्वारा उनकी अन्विति में सहयोग देते हैं। उदाहरण के लिये एक प्रसिद्ध पर्यायोक्ति लीजिए—

नस संकुचित पन्थाः येनः वाली हतो गतः

जिस मार्ग से वाली यमपुरी गया था वह मार्ग संकुचित नहीं हुआ है ऐसा कहकर बाल्मीकि यह ध्वनित करना चाहते हैं कि सुग्रीव यदि प्रमाद करता है तो उसको भी वालि-पथ का पन्थी बनना पड़ेगा।

यहाँ वास्तविक अर्थ के गोपन द्वारा हमारी जिज्ञासा उद्दीप्त की गयी है। अब रह जाते हैं चमत्कार-मूलक अलंकार। इनका चूंकि बुद्धि के व्यायाम से संबंध अधिक है और नियोजन भी मुख्यतः मस्तिष्क की क्रियाओं के ही आश्रित है, अतएव रसानुभूति में इनका योग अत्यन्त न्यून और अप्रत्यक्ष होता है। फिर भी बुद्धि और भावना में कोई निश्चित विभाजक रेखा न होने से एक की क्रिया दूसरे को प्रभावित तो करती ही है। इसी प्रक्रिया से ये अलंकार भी हमारे मन में कौतूहल उत्पन्न कर हमारी वृत्तियों को अधिक जागरूक बना देते हैं। और इसी प्रकार अपने ढंग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसानुभूति में योग देते हैं।

सगुन सलोने रूप की जुन चख तृषा बुझाइ
—बिहारी सतसई

यहाँ 'सलोना' पद श्लिष्ट है। उसके दो अर्थ हैं:- लावण्ययुक्त और नमकीन श्लिष्ट प्रयोग का यह द्विअर्थक चमत्कार तो सीधा मन में कौतूहल उत्पन्न कर रस में सहायक हो जाता है। परन्तु प्रायः चमत्कारमूलक अलंकारों में बुद्धि की क्रीड़ा और अधिक होती है। जैसे—

ललन सलोने अरु रहे, अति सनेह सों पागि।
तनक कचाई देत दुख, सूरन लौं मुँह लागि॥
—बिहारी सतसई

इस दोहे में सूरन की उपमा नायक के साथ दी गई है और सलोने, सनेह, कचाई, मुँह लागि आदि श्लिष्ट पदों द्वारा उसका निर्वाह किया गया है। सूरन कच्चा रहने पर मुँह काट लेता है। उसकी किनकिनाहठ दूर करने के लिये नमक लगा कर उसका रस निकाल डालते हैं और उसे खूब तेल देकर भूँनते हैं, फिर भी भूँनने में वह कच्चा रह गया तो मुँह में लग ही जाता है। इस दोहे का सौन्दर्य श्लेष के ही आश्रित है, और वास्तव में अलङ्कारनिर्वाह भी बहुत खूबसूरती से बिना किसी खींचतान के हुआ है, लेकिन फिर भी चूँकि सूरन और नायक में भावना की अन्विति न होकर केवल बुद्धि की ही अन्विति है, इसलिए रस तक पहुँचने में देर लगती है और इसलिए इसका योग दूरारूढ ही मानना पड़ेगा, सारांश यह है कि अलङ्कार अतिशय के चमत्कार द्वारा किसी न किसी प्रकार हमारी वृत्तियों को उद्दीप्त कर उन पर धार रख कर तीव्र बना देते हैं। ये उद्दीप्त वृत्तियाँ अन्वित होती हैं तो स्वभावतः ही उनकी अन्विति में अपेक्षाकृत गहराई आ जाती है, और उसकी सहायता से हमारी रस की अनुभूति में भी तीव्रता एवं गहराई आ जाती है, इसी रूप में अलङ्कार रसानुभूति में योग देते हैं।

(पृष्ठ १०६ का शेषांश)

अपने समक्ष उपस्थित करती है। और वहाँ तक पहुँचने की कोशिश करती है। इक्कीस पराजय से अनाहित तैमूरलङ्ग ने चींटी की बाइस चेष्टा से जीवन की कला सीखी थी। इसलिये जो जश यौवन, जन्म-मरण ह्रास-विकास से रहित है वह कला नहीं, कही जा सकती।

इन पंक्तियों में मैंने कला का रहस्य उद्घाटित करने की कोशिश की है। यदि हमें सफलता नहीं मिली तो भी कोई अफसोस की बात नहीं। क्योंकि रहस्य ज्ञेय है, ज्ञान नहीं; और आदर्श प्रेरणा है, पहुँच नहीं। जिस दिन रहस्य का रिसर्च हो जायगा और आदर्श तक पहुँच, उस दिन न तो वह आदर्श आदर्श रहेगा और न वह रहस्य रहस्य। इसलिये यदि इस रहस्योद्घाटन में कुछ ही या कुछ भी नहीं सफलता मिली है तो हमारे लिए सौभाग्य और सुख की बात है, दुर्भाग्य और दुख की नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक समाधान

(डा० सत्येन्द्र)

हिन्दी में पं० रामचन्द्र शुक्ल का कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में हिन्दी को एक ऊँचा पद दिलाया। आपकी आलोचनाओं से पहले हिन्दी में आलोचनाएँ नहीं थीं, परिचय थे। आनन्द-कादम्बिनी आदि में जो आलोचनाएँ निकली थीं उनमें भी दृष्टि रचना की रूप-रेखा की व्यवस्था तक ही रहती थी। विचार-विमर्श का आधार संकुचित था। कोई भी एक बात खटकी तो उसी की धज्जियाँ उड़ा दी गयीं। समस्त रचना-विधान को एक इकाई मान कर, उसमें विस्तृत समग्र भाव-सम्पत्ति को सामने रख कर, पूर्वापर प्रसङ्ग की अन्विति सिद्ध करते हुए 'आलोचनाएँ' नहीं होती थी। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी में अध्ययन की सुव्यवस्थित प्रणाली पर वैज्ञानिक ढङ्ग की आलोचना का प्रचलन किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास के नाम पर पहले जो ग्रन्थ मिलते थे वे कवियों तथा उनकी रचनाओं के परिचय युक्त संग्रह थे। उनमें युग और साहित्य तथा साहित्यकार को दृष्टि में रखकर मूल प्रवृत्तियों की परम्पराओं का निरूपण नहीं था। इस अभाव की पूर्ति शुक्लजी ने की, और आजकल भी उनका इतिहास अद्वितीय है। उनके ग्रन्थों में गम्भीर अध्ययन, मौलिक विवेचन, वैज्ञानिक व्यवस्था और ऊँचा धरातल मिलता है। द्विवेदी युग की वे एक महान विभूति थे। साधारणतः उनका व्यक्तित्व निर्दोष प्रतीत होता है। किन्तु आलोचक कब किसी को क्षमा कर सका है। उसने शुक्लजी पर कितने ही आरोप किये हैं। हम यहाँ उनके तीन रूपों पर क्रम से आलोचकों के विविध अरोपणों का दिग्दर्शन कराते हुए, उनका समाधान प्रस्तुत करने का किञ्चित उद्योग करेंगे।

समालोचक शुक्ल के आलोचक उन पर सबसे बड़ा आरोप यह करते हैं कि वे निर्धारित रुचि वाले समालोचक थे। उस रुचि से ही वे समस्त साहित्य को तौलते थे। यह 'रुचि' उनसे पक्षपात तक करा लेती थी। आधुनिक रहस्यवादी काव्य को वे कभी विशेष आदर की दृष्टि से नहीं देख सके। निर्गुण-मार्गी तथा कृष्णभक्त कवियों को भी वे समुचित आदर का स्थान नहीं देते थे। चमत्कार तथा अलङ्कारवादी भी उन्हें नहीं सुहाते थे। उनकी इस संकुचित रुचि का मूल कारण 'तुलसी' है। तुलसी ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया है। उन्होंने तुलसी का मार्मिक अध्ययन किया, और उसी से उन्होंने साहित्य के नैतिक आधार को जाँचने का मान-दण्ड प्राप्त किया। तुलसी ने राम को चाहा, शुक्लजी कृष्ण को नहीं चाह सकते, तुलसी 'अलख' के, निर्गुण के विरोधी हैं, शुक्लजी भी हैं—वे, इसीलिए रहस्यवाद के भी विरोधी हैं। तुलसी चमत्कारवादी तथा अलङ्कारवादी नहीं, शुक्लजी फिर क्यों हों! तुलसी ने राम-काव्य द्वारा राम के चरित्र को अभिनन्दनीय प्रतिष्ठा की। केशव उसी राम-चरित्र को अलङ्कार चमत्कार प्रकट करने का माध्यम बनाये, शुक्लजी ऐसे केशव को कवि कब मान सकते हैं? तुलसी ने प्रबन्ध-काव्य में सबसे अधिक कौशल प्रकट किया है। शुक्लजी प्रबन्ध-काव्य को ही श्रेष्ठ स्थान देते हैं, मुक्तक को नहीं। ये तुलसी शुक्लजी के इतने अपने हो रहे हैं कि उनके दूषण भी शुक्लजी को दूषण नहीं लगते, उन्हें वह अपने तर्क से अन्यथा सिद्ध करने की चेष्टा करते हुए मिलते हैं। तुलसी ने कहीं-कहीं 'ते नर खर शूकर स्वान समान' ऐसे अपशब्दों का जब प्रयोग कर दिया है तब शुक्लजी यदि कहीं किसी को 'मूर्खराज' या ऐसी ही किसी और उपाधि से विभूषित करदें तो क्या बुरा है!

यह संक्षेप में समालोचक शुक्लजी पर किये गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक आलोचक-प्रवरों के आरोप हैं। बहुत गम्भीर हैं इसमें सन्देह नहीं। आश्चर्य यह है कि इतनी गम्भीर दुर्बलताएँ होते हुए भी शुक्लजी ने साहित्य में अपने सम्मान और स्थान को सुरक्षित रखा और आज तक कोई दूसरा अभी उनके अभाव की यथार्थ पूर्ति नहीं कर पाया। इसमें कोई रहस्य अवश्य है।

ऊपर के आरोपों पर विचार करते समय जब हमारी दृष्टि उनकी रचनाओं पर जाती है तो हमें विदित होता है कि उन्होंने 'काव्य में रहस्यवाद' नाम के निबन्ध में रहस्यवाद-छायावाद की आमूल चूल छानबीन करने की चेष्टा की है। इन्दौर वाले भाषण में अपने आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है। तुलसी, सूर तथा जायसी पर तीन वृहत व्यवहारिक आलोचनात्मक निबन्ध प्रस्तुत किये हैं। विचार वीथी और चिन्तामणि में जो विविध निबंध बिखरे पड़े हैं उनमें भी यथार्थतः उन्होंने आलोचना की मूल वृत्तियों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने पाश्चात्य तथा प्राच्य दोनों दृष्टियों से 'रहस्यवाद' की परीक्षा की है। "भारतीय दृष्टि के अनुसार अज्ञात और अव्यक्त के प्रति केवल जिज्ञासा हो सकती है, अभिलाषा या लालसा नहीं।....जिज्ञासा केवल जानने की इच्छा है उसका ज्ञेय वस्तु के प्रति राग, द्वेष, प्रेम, घृणा इत्यादि से कोई लगाव नहीं होता। उसका सम्बन्ध शुद्ध ज्ञान के साथ होता है। लालसा या अभिलाषा रतिभाव का एक अङ्ग है। यह अभिलाषा व्यक्त या सगुण के प्रति ही सम्भव है। यही स्वाभाविक है और भारतीय है। अव्यक्त, अभौतिक और अज्ञात की अभिलाष मजहबी रुकावटों के कारण पैगम्बरी मत मानने वाले देशों में की गयी है, अभारतीय है।" किन्तु वे अस्वाभाविक रहस्यवाद के भारतीय न होने के ही कारण विरुद्ध नहीं। वे यह मानते हैं कि कल्पना से दूरारूढ़ रूपयोजना या भावना में वे अगोचर और अव्यक्त सत्ता का साक्षात्कार करते हैं। यही कल्पनात्मक रूप आलम्बन बन जाता है। इसी को लेकर काव्यक्षेत्र में 'रहस्यवाद' खड़ा होता है। ऐसी मात्र कल्पना की अनुभूति को तत्वमय रहस्य के छद्म से ग्रहण करना वे किसी भी साहित्यिक मान के अनुकूल नहीं मानते हैं। कोई भी नहीं मान सकता। वे 'स्वाभाविक रहस्यभावना' के समर्थक हैं। "स्वाभाविक रहस्य भावना बड़ी रमणीय और मधुर भावना है, इसमें संदेह नहीं। रसभूमि में इसका एक विशेष स्थान हम स्वीकार करते हैं। उसे हम अनेक मधुर और रमणीय मनोवृत्तियों में से एक मनोवृत्ति या अन्तर्दशा (Mood) मानते हैं। जिसका अनुभव ऊँचे कवि और और अनुभूतियों के बीच कभी-कभी प्रकरण प्राप्त होने पर किया करते हैं। पर किसी 'वाद' के साथ संबद्ध करके हम उसे काव्य का एक सिद्धान्त मार्ग (creed) स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं।"—इससे भी अधिक बुद्धि सङ्गत न्याय दृष्टि क्या हो सकती है? इस विवेचन में कहीं कोई भी पक्षपात अथवा नियत रुचि का उपयोग नहीं मिलेगा।

आचार्य शुक्ल की स्थिति को स्पष्ट समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि वे वर्णित विषय को दृष्टि में रखकर काव्य को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं: "(१) आनन्द की साधनावस्था वा प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले, (२) आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष को लेकर चलनेवाले।" शुक्लजी ने हिन्दी के काव्यों का इन दोनों दृष्टियों से वर्गीकरण भी कर दिया है। "आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों के उदाहरण हैं—हिन्दी में रामचरितमानस, पद्मावत (उत्तरार्द्ध) हम्मीररासो, पृथ्वीराजरासो, छत्रप्रकाश इत्यादि प्रबन्ध काव्य, भूषण आदि कवियों के वीर-रसात्मक मुक्तक तथा आल्हा आदि प्रचलित वीर गाथात्मक गीत....." । आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों के उदाहरण हैं—"हिन्दी में सूरसागर, कृष्णभक्त कवियों की पदावली, बिहारी सतसई, रीतिकाल के कवियों की फुटकल शृङ्गारी पद्य, रासपञ्चाध्यायी ऐसे वर्णनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य तथा आजकल की अधिकांश छायावादी कविताएँ"। इन दोनों प्रकार के काव्यों का क्या समान मूल्य हो सकता है? यह प्रश्न साहित्य के मूल अभिप्राय से सम्बन्धित है। साहित्य क्यों और किसके लिए? यह निर्विवाद है कि इस मूल-अभिप्राय को निश्चित करने में 'मनुष्य' को दृष्टिपथ से ओझल नहीं किया जा सकता। तभी शुक्लजी ने बताया है कि "काव्य का लक्ष्य है जगत और जीवन के मार्मिक पक्ष को गोचर रूप में लाकर सामने रखना जिससे मनुष्य अपने व्यक्तिगत संकुचित घेरे से अपने हृदय को निकाल कर उसे विश्व-व्यापिनी और त्रिकाल-वर्तिनी अनुभूति में लीन करे।....इसी लक्ष्य के साधन से मनुष्य का हृदय जब विश्व-हृदय, भगवान के लोकरक्षक और लोकरञ्जक हृदय से भी मिलता है तब वह भक्ति में लीन कहा जाता है।"

शुक्लजी के दृष्टिकोण में कहीं कोई पूर्व-धारणा नहीं मिलती। स्वाभाविक मनोविज्ञान के सूत्र को पकड़ कर उन्होंने काव्य के महत्तम ध्येय के लिए साधनावस्था अथवा प्रयत्नावस्था को उपयोगी माना है। उसके लिए 'सगुण'—गोचर जगत और उसकी विशालता तथा विराटता के साथ मानव हृदय का तादात्म्य आवश्यक समझा है। शुक्लजी की युक्तियों के साथ चला जाय तो निस्सन्देह इन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचा जायगा। यही कारण है कि शुक्ल जी अपनी व्यवहारिक आलोचनाओं में विश्लेषण और विवेचन में प्रवृत्त होकर, काव्य की एक एक स्थिति को उघारते हुए, उस स्थान पर ले जाते हैं जहाँ यह मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि 'अव्यक्त की व्यक्त सत्ता की अभिव्यक्ति काव्य है।' इस व्यक्त सत्ता का जहाँ एक रूप प्रकृति है, दूसरा मनुष्य का उत्कृष्ट अवतार रूप राम कृष्ण है, तीसरा साधारण मानव। शुक्लजी उसी काव्य को ऊपर स्थान देंगे जो इन तीनों का सम्पर्क निदर्शन करे, और यह कितना स्वभाविक है। काव्य के रूप-विधान के सम्बन्ध में निर्मल बुद्धि इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि वे सभी प्रयोग जो यथार्थ प्रेषणीयता में बाधक हों काव्य के लिए हितकर नहीं हो सकते। अलङ्कारों के सम्बन्ध में भी यही न्याय स्थिति है। प्राचीन आचार्यों ने भी अलङ्कारों को 'अङ्गदादिवत्' कह कर काव्य-शरीर का उन्हें बाहरी भूषण बताया था। अलङ्कारों को किसी भी स्थिति में अनुचित महत्व देना काव्यसौन्दर्य को विकृत करना ही है। ऐसे विकृत काव्य का पोषण शुक्लजी नहीं कर सकते। उन्होंने 'विचार वीथी' में उसे यों स्पष्ट किया है। "किसी उक्ति की तह में उसके प्रवर्तक के रूप में यदि कोई भाव या मार्मिक अन्तर्वृत्ति छिपी है तो चाहे वैचित्र्य हो या न हो, काव्य की सरसता बराबर पायी जायगी। पर यदि कोई वैचित्र्य या चमत्कार है तो थोड़ी देर के लिए कुछ कुतूहल या मन बहलाव चाहे हो जाय पर काव्य की लीन करने वाली सरसता न पायी जायगी केवल कुतूहल तो बालवृत्ति है। कविता सुनना और तमाशा देखना एक ही बात नहीं है।" शुक्लजी ने जिस रूप से चमत्कार का अथवा वैचित्र्य का विरोध किया है, क्या वह अनुपयुक्त है! यह पूछा जा सकता है कि काव्य का जीवन के मर्म से सम्बन्ध मानने वाला और कौन बुद्धिमान प्राणी शुक्लजी के इस मत को स्वीकार नहीं कर सकता है। शुक्लजी की इस बौद्धिक स्थिति को जानकर यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने तुलसी से काव्य के मान ग्रहण किये हैं। तुलसी उनको इसीलिए विशेष प्रिय हुए हैं कि वे उनको बौद्धिक विवेचन में सब दृष्टियों से सन्तुष्ट करते हैं। इस अपूर्व सन्तोष से ही उनमें तुलसी के प्रति भक्ति-भाव भी उदय होगया है।

हम इस समस्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आचार्य शुक्ल की समालोचना-प्रणाली वैज्ञानिक आधार पर निर्भर है, उनकी धारणायें निश्चित अवश्य हैं, पर वे धारणायें उन्होंने विचार पूर्वक, बिना किसी दुराग्रह के बनायी हैं—वे न्याय्य हैं। फलतः शुक्लजी की आलोचना पद्धति पर जो आक्षेप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज किये जाते हैं वे उनके सङ्गोपाङ्ग अध्ययन के अभाव के कारण हैं, अथवा अलोचक की अपनी रुचि के कारण हैं।

इतिहासकार शुक्लजी पर सबसे बड़ा आरोप यह किया जाता है कि उन्होंने साहित्य का इतिहास लिखा, पर उस साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार नहीं किया, उन्होंने साहित्य को जीवन के अन्य कला-तत्वों से विलग करके ग्रहण किया है। सामाजिक इतिहास तथा अन्य कलाओं ने किस प्रकार साहित्य के विकास में सहयोग दिया है यह शुक्लजी ने नहीं बताया। इस कथन का अभिप्राय यह है कि शुक्लजी का इतिहास प्रायः उसी परम्परा में है, जिसमें मिश्रबन्धुओं का मिश्रबन्धु विनोद। मिश्रबन्धुओं ने केवल कवियों और उनके काव्य का परिचय ही दिया है। शुक्लजी ने उन्हें एक परम्परा में बाँध दिया है और उन्हें युगों में बाँट दिया है। युग-निर्माण में जिन विविधि कारणों ने योग दिया है, उनका निर्देश वे नहीं कर सके हैं। इतिहास का वैज्ञानिक निरूपण नहीं हो सका है। इस मत की समीक्षा करते समय पहले तो यह जान लेना आवश्यक है कि सभी यह नहीं मान सकते कि साहित्य केवल परिस्थितियों का परिणाम है। आज भी विचारक पूरी तरह 'ऐतिहासिक भौतिक वाद' (Historical Materialism) में साहित्य की दृष्टि से विश्वास नहीं कर पाया। स्वयं साहित्य के इतिहास से अनेकों प्रमाण अभी ऐसे मिलते हैं जिनका भौतिकवादी इतिहास से समाधान नहीं हो सकता। फिर भी शुक्लजी ने सामयिक इतिहास की पृष्ठभूमि को बिल्कुल ही भुला दिया हो, ऐसा नहीं है। सभी युग के कवियों का उनकी सामयिक परिस्थितियों से सामञ्जस्य उन्होंने जहाँ-तहाँ प्रस्तुत किया है। फिर भी यह स्वीकार करने में भी शुक्लजी के गौरव की कोई हानि नहीं कि वे आज की ऐतिहासिक दृष्टि से इतिहास नहीं लिखने बैठे थे। उन्होंने तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री को वैज्ञानिक विधि से इतिहास का एक व्यवस्थित रूप दे दिया, और आज भी उनका इतिहास अद्वितीय है। साहित्य की समस्त अन्तर्धाराओं का रूप उनकी कुशल ऐतिहासिक वैज्ञानिक वृत्ति ने कर दिया है। शुक्लजी के युग-विभाजन पर कितने ही विद्वानों ने आपत्ति की, अपनी शक्ति से अन्य प्रकार का विभाजन प्रस्तुत किया पर आज तक वे सभी सुझाव अमान्य रहे हैं। और यह एक सबसे बड़ा प्रमाण है जो सिद्ध करता है कि शुक्लजी का युग-विभाजन ठीक है। विवेचन भी यही बताता है। रीतिकाल को शृङ्गारकाल कहना और उसे विविध उपविभागों में बाँटना पाण्डित्य प्रदर्शन की दृष्टि से बहुत अच्छा है, पर ऐतिहासिक दृष्टि से शुद्ध नहीं। किसी काल का नामकरण उस काल की प्रमुख वृत्ति पर किया जाता है। इसे शृङ्गारकाल कहने का अभिप्राय यह है कि इस युग में भी किसी रस की प्रतिष्ठा हुई, वह शृङ्गार रस ही क्यों न हो? समस्त प्राप्त साहित्य इस काल में किसी भी रस की प्रतिष्ठा की साक्षी नहीं देता। शृङ्गार का वर्णन रस की दृष्टि से कम, चमत्कार की दृष्टि से तथा रीति-परिचालन के हेतु विशेष हुआ है। अपवादों को नियम नहीं कह सकते। फिर यह काल शृङ्गार-काल कैसे कहा जा सकता है? यह आपत्ति कि रीति काल में रीति-मुक्त काव्य भी मिलता है, विशेष अर्थ नहीं रखता। क्योंकि वह रीति-मुक्त काव्य भी बिना रीति को भली प्रकार हृदयङ्गम किये नहीं समझा जा सकता। 'बिहारी' अथवा 'देव' का मर्म समझने के लिए रीति का ज्ञान अनिवार्य है। शुक्लजी ने स्वयं भी यह स्पष्ट कर दिया है। 'रीतिकाल के भीतर रीतिबद्ध रचना की जो परम्परा चली है उसका उपविभाग करने का कोई संगत आधार मुझे नहीं मिला। रचना के स्वरूप आदि में कोई स्पष्ट भेद निरूपण किये बिना विभाग कैसे किया जा सकता है?' शुक्लजी का यह मत यथार्थ है। इस प्रकार इतिहासकार शुक्लजी पर किये गये आक्षेपों में भी कोई विशेष सार नहीं। उन्होंने जिस युग में बैठ कर जिस दृष्टि से इतिहास लिखा उसमें वे अद्वितीय रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य अपने विकास के इतिहास की समस्त सामग्री जब स्वयं अपने अन्दर ही निहित रखता है, तो साहित्य के इतिहासकार का काम यही है कि वह उसका ही उद्घाटन करदे। साहित्य के विकास का आधार भावभूमि ही विशेष है। उसी भावभूमि को खोलकर रख देने के बाद साहित्य के इतिहासकार का विशेष कर्त्तव्य क्या रह जाता है? जो यह मानते है कि साहित्य का इतिहासकार उस भावभूमि के मूल उद्भावक भौतिक कारणों का भी निरूपण करे तो वह साहित्य के इतिहासकार से इतिहास की अपेक्षा इतिहास के तत्व (Metephysics) की अधिक आशा करता है। आज का आलोचक प्रायः शुक्लजी जैसे इतिहासकार से यही चाहता है। शुक्लजी इसे साहित्य के इतिहासकार के क्षेत्र से बाहर की वस्तु समझते हैं। साहित्य के भावों का जहाँ सीधा सम्बन्ध साहित्येतर किसी भाव-प्रणाली से रहा है, वहाँ शुक्लजी ने प्रयत्नपूर्वक उसे स्पष्ट करने का उद्योग किया है। नाथपन्थ, योगमार्ग, बज्रयानीशाखा, भक्ति सम्प्रदाय, निर्गुण-शाखा के मूलाधार, सूफी-सम्प्रदाय आदि का जो विद्वत्ता और अधिकारपूर्ण विवेचन शुक्लजी के इतिहास में मिलता है, वह इसका पूर्ण साक्षी है।

अपने इतिहास के वक्तव्य में शुक्लजी ने यह मत रखा है कि "इतिहास की पुस्तक में किसी की पूरी क्या अधूरी आलोचना भी नहीं आ सकती।" इतिहास, अतः, कवियों की आलोचनाओं का संग्रह नहीं हो सकता, न शुक्लजी का इतिहास ही ऐसा है। इसमें जो आलोचनाएँ आयी है, वे अनिवार्यतः उस युग के विविध सर्जकों के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए ही आयी हैं अतः वे इतिहास की परम्परा की कड़ी हैं, पृथक रूप से वे महत्व नहीं रख सकतीं। जहाँ तक इतिहास में स्थान-स्थान पर अपने साथ घटने वाली किसी घटना विशेष का सम्बन्ध है, व्यक्ति गत स्मृतियों का यह समावेश इतिहास में यदि सदोष माना भी जाय तो शुक्लजी ने इसका बहुत संयम से उपयोग किया है; और वहीं ऐसा किया है जहाँ इतिहास की प्रवृत्ति के स्पष्ट होने में सहायता मिलती है। इससे इतिहास में रोचकता का समावेश होता है, वह एक विशेष बात है। यथार्थ में यह तो उसी का एक रूप है।

निबन्धकार शुक्लजी का ऋण हमें और भी विशेष मानना है। उनके निबन्धों को शुष्क कहना ही उन पर एक आक्षेप है। शुक्लजी ने साहित्य के प्रत्येक रूप को एक विशिष्ट धरातल पर पहुँचाने का पूरा प्रयत्न किया है। उनके व्यक्तित्व के प्रभाव ने ही उनकी रचनाओं के द्वारा, साहित्य-रचनाओं को हिन्दी में एक ऊँचे धरातल पर पहुँचाया। निबन्धों के सम्बन्ध में भी यही बात है। निबन्धों की दो प्रणालियाँ आज से नहीं निबन्धों के जन्म से ही प्रचलित हैं। निबन्धों के मूल प्रवर्तक माण्टेन ने निबन्ध या 'ऐसे' को जो सब्जैक्टिव, रूप का रूप दिया, वही सर्वत्र ग्राह्य नहीं हुआ। बेकन ने प्रायः उसी काल में निबन्धों के गम्भीर संयत रूप के उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिये। गम्भीर और हलकी दोनों शैलियाँ अलग-अलग निरन्तर चलती रहीं। शुक्लजी निबन्ध को गम्भीर प्रयत्न की अभिव्यक्ति मानते हैं, साहित्य में 'विशिष्ट गाम्भीर्य (High Seriousness) के वे वैसे ही पोषक हैं, जैसे मैथ्यू आर्नल्ड। निबन्धों को उन्होंने उसी दृष्टि से सांहित्यिक रूप दिया है। उनके निबन्धों का क्षेत्र मनोजगत के तत्वों का क्षेत्र है। उन मनोजगत के तत्वों को उन्होंने प्रबन्ध (Treatise) या ग्रन्थ का रूप नहीं लेने दिया, यह सभी मानेंगे, तब वे निबन्ध या 'ऐसे' ही हैं, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता? ऐसा क्यों है? कारण स्पष्ट है। उन्होंने इस मनोजगत के तत्वों का निरूपण विज्ञान की शुद्ध वस्तुवादिनी प्रणाली से नहीं किया। 'वस्तु' का निरूपण करते हुए उन्होंने 'भाव' का सम्पर्क इतना घनिष्ठ बनाये रखा है कि 'निबन्ध' व्यक्तित्व से, हृदय के धर्म और मर्म से दूर नहीं हो पाता। यह 'वस्तु' और 'भाव' का संयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कामना'

(प्रो० नागरमल सहल, ऐम० ए० ऐल-ऐल० बी०)

'कामना' प्रसादजी की रूपक प्रधान रचना (Allegory) है। मनुष्य के हृदय में विरोधी शक्तियों का जो नित्य द्वन्द्व चला करता है उसका इसमें सफल वर्णन है। हर मनुष्य में सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण तीनों का जमघट रहता है। सात्विक पुरुष में भी रजोगुण और तमोगुण रहते अवश्य हैं पर दबी हुई अवस्था में। 'धर्म्मेणैव प्रजाः सर्व्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्' इस रूपक का सूत्र-रूप में यह सिद्धान्त-वाक्य (Motto) समझा जा सकता है। मनोभावों की मनोवैज्ञानिक समीक्षा इस रूपक की विशेषता है।

कामना स्वभावतः चंचल हुआ करती है। एक के बाद दूसरी कामना हृदय में जागरित तथा विलीन होती रहती है। स्वयं उसी को संदेह है कि अकर्मण्य संतोष से उसकी पट भी सकेगी क्या क्योंकि नित्य अनुभव की बात है कि सन्तोषी की कामना मृत नहीं तो मृतप्राय अवश्य हो जाती है। पर वैसे पुरुष के हृदय में कामनाओं का वेग बराबर उठता ही रहता है और पुरुष जैसे उनसे रीझता-खीझता रहता है। कामना की सखियों की चुहलबाजी कुछ इसी कोटिक्रम की है। 'उस पार' देखने की इच्छा होते हुए भी सन्तोष की उधर जाने की हिम्मत नहीं होती। सन्तोषी मनुष्य स्वयं अपने से तृप्त रहता है। बिना कामनाओं और लीलाओं के सहवास के ही वह अपना शान्त, सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है। विनोद विनोदशील प्रकृति का युवक है जो लीला के साहचर्य का प्रार्थी है। कामना वाले पुरुषों का हृदय बिना पर्याप्त परितृप्ति के सर्वथा रिक्त और अपूर्ण सा रहता है। समुद्र के उस पार से एक युवक अकस्मात् आता है और अपना स्वर्णपट्ट खोलकर युवती कामना के सिर पर बाँध देता है। उपासना का नेतृत्व कामना ही के हाथ में है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नवागंतुक विलास कामना का वरण करके द्वीप में एक नई बात कर देगा। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन संगी चुनने का इस द्वीप में अधिकार है। कामना की उत्पत्ति का रहस्यगर्भित, सांकेतिक वर्णन अच्छा बन पड़ा है—"जब विलोडित जलराशि स्थिर होने पर यह द्वीप ऊपर आया, उसी समय हम लोग शीतल तारिकाओं की किरणों की डोरी के सहारे नीचे उतारे गये। इस द्वीप में अब तक तारा की ही सन्तानें बसती हैं।" विलासी पुरुष ही किसी जाति के पतन का कारण हुआ करते हैं। विलास के इस भोलेभाले द्वीप में प्रवेश करते ही स्वर्ण और मदिरा के प्रति वहाँ के निवासियों की तृष्णा बढ़ चली है। वही उन्हें पतन और अवनति के गम्भीर अन्धकूप में डालने वाली सिद्ध होगी। एक स्त्री की छाया के रूप में विलास की महत्वाकांक्षा ही सजीव हो जैसे बोल उठी है—'समझ ले कि बिना स्वर्ण और मदिरा का प्रचार किये तू इस पवित्र और भोलीभाली जाति को पतित नहीं बना सकता।'

सन्तोष के साथ लीला के विवाह की कुछ बात तो चलती है पर स्वभाव-वैपरीत्य के कारण उनका एक साथ निभ सकना असम्भव ही तो था। विवाह के पहले ही लीला स्वयं कहती है—'मेरा हृदय व्याकुल है, चञ्चल है, लालायित है; मेरा सब कुछ अपूर्ण है केवल उस चमकीली वस्तु (स्वर्णपट्ट) के लिए' वनलक्ष्मी विवाह के समय वर-वधू को आशीर्वाद देने के लिए आया करती है, पर विनोद के साथ लीला के विवाह के अवसर पर वह लीला को अभिशाप देने आयी है। आज तक इस द्वीप के लोग—'यथा-लाभ-सन्तुष्ट' रहने वाले थे पर जीवन में हठात् विलास के आगमन के कारण क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी विचार-धारा में। द्वीपनिवासी व्यर्थ अभावों की सृष्टि करके अपना जीवन जटिल बना रहे हैं। लीला को वनलक्ष्मी स्वर्ण और मदिरा के फेर में न पड़ने के लिए सावधान करती है। ध्यान न देने पर देश की भावी दुर्दशा को वह टाल न सकेगी इसका भी उग्र सङ्केत वह करती है। कामना को भी पक्षियों के कलरव में देश पर आने वाली भयङ्कर आपदाओं और विभीषिकाओं का सङ्केत मिलता है। लीला ने भी उसे कहा कि वनलक्ष्मी के कथनानुसार तुम्हारे हाथों देश का विनाश होगा पर मदिरा के नशे में वे दोनों झूमने लगती हैं। ये द्वीपवासी सर्वथा पवित्र जीवन व्यतीत किया करते थे—पाप-पुण्य का वे अर्थ ही नहीं समझते थे – पर विलास का आधिपत्य होते ही उनका द्वीप भी पापों का अड्डा बन जाता है और विवेक को सच्चा डर है कि इस द्वीप के 'बालकों के से शुभ्र हृदय छल की मेघमाला से ढँक जाएँगे'। प्रायः गोष्ठियाँ होती रहती हैं जिनमें नर-नारी स्वच्छन्दतापूर्वक पेय का आस्वादन करते हैं और विलास लीला को हार पहनाने का उपक्रम करता है। विनोद और लीला का विवाह हो जाता है, पर विलास कामना से अभी विवाह करने को प्रस्तुत नहीं, यद्यपि उसने कामना को उत्सव की रानी तो बना ही दिया है। विवेक मौके मौके पर आकर मद्यपों को समझाने की चेष्टा करता है, पर विवेक की (अक्ल की बात) सुनता कौन है! कामना विनोद को सेनानी निर्वाचित करती है। सन्तोष को बदलते हुए रङ्ग ढङ्ग से क्षोभ है। वह कहता है—'वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर गर्व से छाती फुलाये घूमते है। कहते हैं, 'हम धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं'। एक पात्र मदिरा के लिए उनके हृदय में व्याकुलता, मस्तिष्क में पाप-कल्पना भरी है। सन्तोष के पूछने पर विवेक रानी का नग्न रूप इन भाव भरे शब्दों में द्योतित करता है—'मदिरा से ढुलकती हुई, वैभव के बोझ से दबी हुई, महत्वाकांक्षा की तृष्णा से प्यासी, अभिमान की मिट्टी की मूर्ति'। विलास कामना के प्रस्तावानुसार परामर्शदाता मन्त्री बनाया जाता है। शान्तिदेव बहुत सा सोना साथ लाता है। फलतः उसकी हत्या होती है।

लालसा को भी रानी बनने की चाह है और विलास उसका प्रार्थी भी है। विलास को अब निश्चय हो गया कि इस द्वीप में भी भाव और भाषा में कृत्रिमता आ गयी है। शान्तिदेव की अपार स्वर्ण-राशि उसकी लालसा के पास पड़ी है। शान्तिदेव की बहिन करुणा को लालसा घर से बाहर निकाल देती है। जीवन के समस्त प्रश्नों के मूल में अर्थ का प्राधान्य हो चला है और धर्मादि गौण हो गये हैं। सन्तोष करुणा को बहिन के रूप में ग्रहण करता है। अन्त में विलास का विवाह कामना के साथ नहीं, लालसा के साथ हो जाता है।

प्रमदाएँ संकेत-गृहों की खोज में रहती हैं और दुर्वृत्त मनुष्यों की प्रवृत्तियों के अनुरूप नव्य भव्य भवन निर्माण में व्यस्त हैं। बड़े-बड़े महलों को देखकर विवेक कुढ़ता है और कहता है—"लौट चलो उस नैसर्गिक जीवन की ओर, क्यों कृत्रिमता के पीछे दौड़ लगा रहे हो।' यही मानो प्रसादजी स्वयं कह रहे हों। विनोद के सेनापतित्व में लाल रक्त गिरा गिरा कर पीला सोना इकट्ठा किया जा रहा है। बात-बात पर युद्ध होते हैं—स्त्रियाँ पकड़ ली जाती हैं। किसी सैनिक की स्त्री को सेनापति पकड़ लेता है तो कोई सैनिक लालसा आदि के पीछे लग जाता है। लालसा सरीखी स्त्रियाँ तो व्यभिचार के खड्ड में बहुत नीचे गिर जाती हैं। किसान खेती भूल कर शराब के फेर में पड़ जाते हैं। गौड़ी और माध्वी ही उनका जीवन-सर्वस्व बन गयी हैं। स्त्रियों को गहनों की रट लगी हुई है। कृषक-बालक पड़ा-पड़ा मदिरा माँगता है। मदिरा के साथ साथ नर-नारी मनुष्यता को भी घोल कर पी गये हैं। सब तरह के पापों का यहाँ पूर्ण प्रचार-प्रसार हो जाता है। सोने से लदी हुई लालसा रानी और मदिरा से उन्मत्त विलास जहाँ राजा है वहाँ प्रजा की कितनी दुर्दशा होगी इसकी सहज ही में कल्पना की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में कामना और संतोष निकट आते हैं। कामना को अपनी भूल का ज्ञान होता है। सब मिल कर विलास और लाल रङ्ग को उनकी समस्त स्वर्णराशि के साथ समुद्र में विसर्जित कर देते हैं। सोने के भार से नाव डगमगाती है और फूलों के देश में शान्ति हो जाती है।

'प्रथम सुराकार' टाल्स्टाय की भी कुछ इसी ढङ्ग की रचना है। नरकाधिपति का दूत किसानों को वहाँ फँसाने की अनेक चेष्टाएँ करता है, पर असफल रहता है। दुःख को भी वे बराबर ईश का अनुग्रह मानते थे पर शराब के ही फेर मे पड़ कर वे भ्रष्ट हो जाते हैं।

शेक्सपीयर के पहले अँगरेजी में इस ढङ्ग के Morality plays की बड़ी धूम थी। हृदय की अमूर्त भावनाएँ ही पात्र रूप में इनमें प्रदर्शित की जाती थी। Vice का तो बड़ा हास्यप्रधान 'पार्ट' रहा करता था।

इस रूपक में प्रसादजी ने सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में अपने खरे विचार प्रदर्शित किये हैं। आज हम अपने आपको अधिक सभ्य और संस्कृत कहते हैं, पर वास्तव में पर्णशालाओं में रह कर कन्द-मूल-फल खानेवाले हमारे पूर्वज हमसे कहीं अधिक सभ्य, संस्कृत, पवित्र और सदाचारी थे। आज तो वैभव की मदिरा में उन्मत्त, घृणित स्वार्थ में अन्धे हो कर हम जीवन की 'धर्मशाला' को पापशाला बना बैठे हैं। आज भाई-भाई से लड़ता है। 'अयं निजःपरो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'—वाली विश्व बन्धुत्व की भावना आज हम लोगों के लिए स्वप्नवत् हो चली है। जरा से क्षुद्र स्वार्थ की रक्षा के लिए हम जनहिंसा करने में नहीं हिचकते। दिव्य और भव्य प्रासादों का आन्तरिक इतिहास कितना दूषित, विगर्हित और अपमानास्पद है। आज की पाशविक सभ्यता की ओट में हम कुत्सित हो चले हैं—मनुष्य का तो जैसे हमसे कोई सम्बन्ध ही नहीं। अर्थ और मदिरा के भक्त बन कर हम अपने स्वत्व को भूल चले हैं। कादम्ब, कामिनी और काञ्चन के अनुप्रास पर मुग्ध हो हम कदर्थित पाशविकता को अपनाने में ही अपना गौरव मान बैठे हैं। करुणा जैसी निरपराध, शुद्ध स्त्रियाँ गली गली की भिखारिन बना दी जाती हैं। चञ्चल कामिनियों के वक्र कटाक्षों के शिकार बन कर हमारी आस्था वासना मात्र में ही रह गयी है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से लड़ कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा हुआ है। मनुष्य में पशु और देवता दोनों निवास करते हैं। पशु की बराबरी करना सरल है पर दैवी गुणों का उत्कर्ष कोई बिरला ही कर सकता है। आसुरी वृत्तियों को ही बराबर पोषण मिलता रहता है। हृदयस्थ सन्तोष और विवेक हमें बराबर समझाते रहते हैं पर हम भली बात सब सुनी अनसुनी कर देते हैं। कादम्ब, कामिनी और काञ्चन की पट्टी न पढ़ सदसद् विवेचक विवेक की ही सीख मान कर चलने में विश्व का सच्चा कल्याण निहित है। आज के युग को जैसे प्रसादजी 'कर का मन का' नहीं 'मन का मन का' फेरने का अर्थ-भरा संदेश दे रहे हैं। इस रूपक का प्रतिपाद्य विषय कृत्रिमता को छोड़ नैसर्गिता को अपनाने का सन्देश है, आत्म-प्रवञ्चना किंवा पर-प्रवञ्चना सबसे ऊपर उठ कर हृदय की परिशुद्धि को पवित्र कर्त्तव्य मानने, बताने का जयघोष है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कला का रहस्य'

(श्री देवप्रसाद सिंह बी० ए०)

'कला का रहस्य' एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो व्याख्या की नहीं, अनुभव की ही चीज है। एक तो कला ही एक अबूझ पहेली है, अज्ञात रहस्य; फिर उस रहस्य के रहस्य का पता लगाना तो पाताल से गङ्गा की धार फोड़ना है। इसमें सन्देह नहीं कि कलाधर चन्द्रमा की कमनीय कान्ति ने अनेकों कलात्मक उक्तियों या कृतियों के लिये कलाकारों में प्रेरणा दी है। कविकुल-शिरोमणि कालिदास ने शकुन्तला का रुप वर्णन करने में कह डाला 'मलिन-मपि हिमांशो लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति'। तुलसीदास ने भी चन्द्रमा को नहीं छोड़ा—'सियमुख समता पाव किमि चन्द्र बापुरो रङ्क' कह कर ही सन्तोष की साँस ली। अँग्रेजी कवि शैले ने चन्द्रमा को 'रात की रानी' की पदवी से विभूषित किया। पर इससे हमारा काम चलने का नहीं है। हमें तो रहस्य की उस संगृहीत शक्ति का उद्घाटन करना है जिससे कलाकार कलात्मक कृतियों के लिए प्रेरणा पाते हैं। हमारी उलझन तब और भी बढ़ जाती है जब हम सोचते हैं कि शशि से अधिक शीतलता प्रदान करने वाले हिमकण को, उससे अधिक प्रखर आभा निःसृत करने वाले सूर्य को या उससे भी अधिक सौन्दर्य की आगार स्वयं प्रकृति को लोग कलाधर क्यों नहीं कहते? आखिर इसका रहस्य क्या है?

कला की विवेचना करते-करते कतिपय आचार्य इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता में सुन्दरता का निरूपण ही कला है। शीत और आतप से बचने के लिये निर्मित कुटिया में सफाई का ध्यान रखना, फूलपत्ती का इन्तजाम करना कला नहीं तो और क्या है? मेरी समझ से आँखें जिसे सौन्दर्य कहकर आकृष्ट होती हैं; साहित्य उसमें ही कला कह कर प्रविष्ट होता है। उपयोगिता मानव दृष्टिकोण से अत्यल्प रहने पर भी सौन्दय की प्रतिमा कला में परिगणित हो सकती है, पर सौन्दर्यवंचिता उपयोगिता कला कहलाने में असमर्थ है। जहर कनइली के पेड़ की रचना अहितकर होते हुए भी अपने पुष्पों, फलों और टहनियों में हरियाली संगृहीत कर कलात्मिका कही जा सकती है और ताड़ बाँस का वृक्ष पुष्प-पल्लव-शाखारहित हो कर उपयोगी होते हुए भी कलाकार की दृष्टि में हेय है। घोंसला बया और कौआ दोनों बनाते हैं। उपयोगिता के विचार से दोनों समान हैं। पर एक में कला का प्राचुर्य है, दूसरे में उसका नितान्त अभाव। तात्पर्य यह कि खाने-पीने, उठने-बैठने सभी क्रियाओं में हम सभी ओर सौन्दर्यावलोकन की इच्छा रखते हैं। और, इसी इच्छा की पूर्त्ति का नाम कला है। अतः बाह्यस्थूल सौन्दर्य के दर्शन मात्र से ही हृदय की सुषुप्त सौन्दर्यमयी भावनाएँ मूर्त्तरूप धारण करती हैं। श्याम घटा को देख कर मयूरों का ललित लास करना, पुष्पों के नवोन्मेष में ही भ्रमर का गुञ्जन करना, राकेश की शोभा से चकोर का तन-मन भूल जाना आदि का कला में शुमार हो सकता है। अपनी सुरूपा पत्नी इउरिडाइस को देख कर औरफियस की नृत्य-कला, काले मेघों को देख कर कालिदास की काव्य-कला, भगवान शङ्कर का उग्र रूप देख कर रावण की नृत्य-कला, अपनी प्रेयसी के विरह में शाहजहाँ की वास्तु कला और न जानें, ऐसी-ऐसी कितनी कलाएँ सौन्दय-पर्यवेक्षण से निखर उठीं हैं।

पर कला को उद्भूत करने वाली सौन्दर्य-शक्ति भी कोई ऐसा-वैसा मिक्सचर नहीं जिसके तत्वों का किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में जा कर हम ठीक अनुसन्धान करलें। कुछ वैयक्तिक अभिरुचि-जन्य सौन्दर्य भी है जिससे कला की स्वाभाविक निःसृति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वीराज-रासो में सैन्य एवं युद्ध के गतिमय चित्र

(श्री कन्हैयालाल बी० ए०, सी० टी०, 'साहित्य-रत्न')

उषा की अरुणिमा के सदृश विश्व के समस्त साहित्य का सूत्रपात वीर-भावना के साथ हुआ। क्या ग्रीक, क्या लैटिन, क्या संस्कृत, क्या अरबी सभी भाषाओं के आदिकाव्यों में वीरता का वर्णन प्रमुख है। हिन्दी के आदिकाल में, इस देश के अस्त-व्यस्त वातावरण में वीर-पक्ष ही प्रधान रहा जिसकी ध्वनि हमें 'पृथ्वीराज के धनुष की टंकार' और 'आल्हा-ऊदल के ढोल के गम्भीर गर्जन' में सुनायी पड़ती है। हिन्दी के सिंहद्वार पर वीर-रस पूर्ण प्रशस्तियाँ गाने वालों में चारण और भाट प्रमुख थे। वे अपनी ओज-स्विनी वाणी एवं वीर-रसपूर्ण कविताओं द्वारा योद्धाओं को प्रोत्साहित कर देश के नाम पर पतङ्गों की तरह मर मिटने का साहस भर देते थे। साथ ही ये लोग तलवार के भी धनी होते थे जो आवश्यकता पड़ने पर रणाङ्गन में उतरकर शत्रुओं से स्वयं लोहा लेते एवं सैनिकों को प्रोत्साहन देते थे। इसलिये रक्त-बिन्दुओं के अक्षरों में लिखे गये इनके सैन्य एवं युद्ध सञ्चालन के वर्णन केवल कोरी कवि-कल्पना न रहकर प्रत्यक्ष अनुभवों पर आश्रित होने के कारण सजीव एवं गतिशील हैं। यही कारण है कि इनके काव्यों को पढ़ते समय हम अल्पकाल के लिये ऐतिहासिक एवं साहित्यिक मत-भेदों से दूर हटकर उनके काव्य-सौष्ठव ही का रसास्वादन करते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में हम 'पृथ्वीराज-रासो' के वर्तमान रूप में प्राप्त सैन्य एवं युद्ध-वर्णन ही पर विचार करेंगे।

'पृथ्वीराज रासो' के निर्माता चन्द पृथ्वीराज के प्रधान आमात्य, राजकवि और प्रमुख सामन्त थे। वे कवि, राजनीतिज्ञ और योद्धा तीनों एक साथ थे। क्या अश्वारोहण में, क्या शब्द-बेधी बाण मारने में, क्या असि-सञ्चालन में, क्या अपने आश्रयदाता एवं उनके सैनिकों को प्रोत्साहन देने में वे अद्वितीय थे। अतः उनके सैन्य एवं युद्ध-सञ्चालन के वर्णन बड़े ही गति शील हैं। 'रासो' में वीर रस प्रधान है और शृङ्गार उसका अङ्ग होकर आया है। क्योंकि वीरता के बहुत से अवसर नायिकाओं के उद्धार और उनके पृथ्वीराज से विवाह होने से सम्बन्धित है। वीर-रस के उद्दीपन रूप में सेनाओं, अस्त्र-शस्त्रों, घोड़ों, हाथियों आदि के विशद वर्णन आये हैं। देखिये वे गौरी की सेना का कैसा चित्र खींचते हैं—

"खुरासान मुलतान खंधार मीरं,
बलक सो बलं तेग अच्चूक तीरं॥
रूहंगी फिरंगी हलंबी समानी,
ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी॥
मँजारी चखी मुक्ख जम्बुक लारी,
हजारी हजारी इक्कै जोध भारी॥
तिन पष्षरं पीठ हय जीन सालं
फिरंगी कती पास सुकलात लालं॥
तहाँ बाघबाघं मरूरी रिछोरी,
घनं सार समूह अरू चौरं झोरी॥

एक अद्भुत प्रयोग है जिसने शुक्लजी के निबन्धों को एक आदर्श पथ-प्रदर्शक बना दिया है। भाव के इस संयोग के कारण ये निबन्ध सरस ही हुए हैं शुष्क नहीं। पर साहित्य की गम्भीरता के लिए पाठक के मन का भी एक संस्कार आवश्यक है। जिनका वह संस्कार नहीं वे शुक्लजी के निबन्ध की वस्तु को नहीं पकड़ पाते। साथ ही भाव को भी नहीं। वे ही कह उठते हैं कि शुक्लजी के निबन्धों में शुष्कता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि कहने के लिए शुक्लजी के युग से आज का युग आगे बढ़ आया है, पर क्या कोई अब भी यह कहना चाहेगा कि उसने शुक्लजी को पछाड़ दिया है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एराकी अरब्बी पटीतेज ताजी,
तुरक्की महा बांन कम्मान बाजी ॥
ऐसे असिव असवार अग्गोल गोलं,
भिरे भूप जेते सुतत्ते समोलं ॥"

गौरी की सेना में खुरासानी, मुल्तानी, कन्धारी मुसलमान हैं। साथ ही अचूक तलवार व तीर प्रहारी बलख की मुसलमानी टुकड़ी है। और रूहंगी, फिरङ्गी, हलम्बी, समानी व ढाल तथा निशानों सहित बिलोची है। इसके साथ ही बिल्ली सी आँख वाले, गीदड़ और लोमड़ी के से मुख वाले, हजारों सैनिकों से एक साथ अकेले ही भिड़ने वाले कई भयङ्कर सैनिक हैं। और घोड़ों पर जीन कसे हुए पष्पर जाति के मुसलमान हैं तथा कलाती सैनिक हैं। कहीं बाघ और रीछ को आकार के तलवारों से युक्त बलशाली वीर हैं। एराकी, अरब्बी सैनिक तेज घोड़ों पर बैठे हैं तथा महाधनुर्धर तुर्क भी घुड़सवार हैं।—ऐसे भयङ्कर सैनिकों के दल से सर्व उपस्थित वीर भूप भिड़े।

यह तो हुआ केवल सेना का परिचय। शुक्लपक्ष की यामिनी में सेना के पड़ाव डालते समय जो दशा होती है वह भी देखिये—

"कटक सबर हिल्लोर,
भार सेसह करि भग्गिय।
चढ़ि सामन्त सकज्ज,
नद सुर अम्बर जग्गिय ॥
गज रोर सोर बधे घटा,
सिलह बीज सिलकवलिय।
पप्पीह चीर सहनाइ सुर,
नदी घग्घर मेलान दिय ॥"

सेना की हल-चल व भार से शेषनाग व दिग्गज अपने स्थानों से भगने लगे। सामन्तों के उत्साहपूर्ण शब्दों से स्वर्ग और आकाश गूँज उठे। शस्त्रों से सुसज्जित हाथी, मोतियों की लड़ियों से शोभायमान थे और उनके गलों में बँधी हुई घण्टियों के साथ वे मस्त एवं भयङ्कर चिंघाड़ कर रहे थे। इस शोर व हलचल के बीच पर्वाह्ने की चीत्कार के साथ सेना ने घग्घर पर पड़ाव डाला।

यही सेना रणाङ्गन में कैसी चित्रित की है, मात्र के लिये वह भी देखिये—

"हुअ सद्द सुसद्दह नद्द भरं,
घन घेरिक कीय सु फौज वरं।
लष लष मिले दल संमिलयं,
नर भद्दव वादल संमिलियं ॥
सु अगें हथनारि अपार सजं,
तिन देखत कायर दूर भजं।
तिन पिट्ठ हजारउ मत्त चलें,
छह रित्त झरन्त करी तिहल्लें ॥
तिन पिट्ठह फौज गहब्बरयं,
थरि गोरिय मुट्ठ करं धरियं।
कमनेत अभूल सु लष्ष लियं,
तिन मध्य ततारह छत्र दियं ॥"

गौरी की सेना में युद्धारम्भार्थ 'अल्लाहो-अक्ब' आदि भयङ्कर शब्द हुए जिससे सारा व्योम-मण्डल व्याप्त हो गया। ऐसा ज्ञात होता था मानो चारों ओर से बादल उमड़ पड़े हों। लाखों मनुष्यों की सेना भादों मास के बादलों सी ज्ञात होती थी। इस सेना के अग्रभाग में हाथियों पर अनेक तोपें थीं जिन्हें देखते ही कायर दूर भग जाते हैं। इनके पीछे हजारों मस्त सैनिक चल रहे थे और हाथियों के शरीर से रक्त चूता एवं व्याप्त होता था। इसके पीछे बड़ी भयङ्कर सेना थी जिसके सेनापति स्वयं गौरी थे। इसके आगे अभूल जाति के एक लाख धनुर्धारी सैनिकों के दल में तातार खाँ ने छत्र धारण कर रक्खा था।

शत्रु की सेना की विशद तैयारियाँ देखकर [illegible] का उत्साह द्विगुणित बढ़ जाता है। चन्द इस [illegible] वैज्ञानिक तथ्य को समझते थे और यही करण है [illegible] उन्होंने गौरी की सेना का ऐसा सजीव चित्र उपस्थित किया है। इसी तैयारी को देखकर तो पृथ्वीराज ने [illegible] अपनी सेना को गरूड़-व्यूह में खड़ा कर दिया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फौज रची सामन्त, गरूड़ व्यूहं रचि गढ्ढिय।
पंष भाग पृथ्वीराज, चञ्च चावंड सुगढ्ढिय॥
गाबरि अत्ताताइ, पाइ गोइन्द सुठढ्ढिय।
पुच्छ कन्ह चौहान, पेट पम्मारह पढ्ढिय॥
सुण्डाल काल अग्गो धरे,
कढे दोइ कलहन्त किय।
चालन्त बाण गौरे प्रबल,
मानहु अन्ध कि मार दिय॥"

दिल्ली पति पृथ्वीराज ने अपने सामन्तों को रणाङ्गन में गरूड़ व्यूहाकार में खड़ा किया। पङ्ख भाग में पृथ्वीराज रहे और चोंच भाग में चामुण्डराय। गर्दन के स्थान पर अत्ताताई और चरण भाग में गोइन्दराय ठहरे। पृथ्वीराज के चचा कन्ह पूँछ की जगह रहे और उदर भाग में पम्मारवंशी वीर जैतराय रहे। इन सबके आगे मदोन्मत हाथियों को रक्खा। और दोनों ओर से सेनायें निकल कर युद्ध करने लगीं। इस समय गौरी की सेना पर ऐसे प्रबल बाण पड़ते थे मानो आँधी के धक्के लग रहे हों—जिसके सामने उल्टे पाँव भगना ही एकमात्र उपाय है।

इस प्रकार के सैन्य-वर्णन कवि की सूक्ष्म दृष्टि एवं बहुमुखी प्रतिभा के द्योतक हैं। 'भूषण' ने भी शिवाजी की सेना का वर्णन किया है और निःसन्देह वे अपने क्षेत्र के सम्राट हैं परन्तु यह कहना पड़ेगा कि सैन्य वर्णन में 'भूषण' से चन्द निश्चय दो कदम आगे हैं। 'भूषण' जहाँ पर—

१—"ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल
गजन की ठेल-पेल-सैल उसलत है"।

अथवा

२—भादों की घटा सी उड़ि गरद गगन गिरे
सेलैं समसेरें फिरैं दामिनी सी दमकै।

संसार की गली-गली में स्थान-स्थान पर शिवाजी के आतङ्कवश खलबली मच गई है। हाथियों की धक्कामुक्की से बड़े-बड़े पर्वत भी उखड़े जा रहे हैं।

अथवा

२—छत्रसाल की सेना भादों की मेघ-घटा के समान उमड़ रही है जिसके कारण उड़ी हुई धूल ने आकाश-मण्डल को घेर लिया है। उनके बर्छी, भाले और तलवारें इस प्रकार घूम रही हैं जैसे बिजली चमक रही हो आदि कहकर ही रह जाते हैं वहाँ चन्द उद्दीपन, विभाव, अनुभाव, संचारी और स्थायी भावों के साथ सम्पूर्ण एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। अगर इसे हम दोनों के क्षेत्रों की भिन्नता समझें तो भी उपर्युक्त कथन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अब क्षणमात्र के लिये युद्ध का जीवित दृश्य देखिये। सामने पृथ्वीराज अपने दो हाथ दो हजार हाथियों की तरह सनासन चला रहे हैं—

"उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मानों वीर नट।
कढ़त तेग मनो वेग, लगत मनों बीज झट्ट घट॥
थकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन मगन भई श्रोनधर।
हृदि हरषि वीर जाग्गे हुलसि, हरेउ रंग नव रत्तवर"॥

पृथ्वीराज ने बाग घुमा कर ऐसी कुशलता से युद्ध आरम्भ किया मानो कोई कुशल नट अपना खेल दिखा रहा हो। उसकी तलवार स्वयं वेग अर्थात् तेजी है और चमक कर बिजली की तरह शरीर से लगती है जिससे सूर्य भी स्थिर गति हो गये और पृथ्वी लाल रंग में डूब गयी। हृदय में हर्षित होकर वीर युद्ध के लिये सोल्लास तैयार हो गये और उनके मुख पर उत्साह की लाली आ गयी। जिसके परिणाम स्वरूप शत्रुओं के—

"कहौं कमध कहौ मथ, कहौं करचरन अन्तरुरि।
कहौं कन्ध बहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर॥
कहौं दन्त मंत हय खुर षुपरि,
कुंभ मुसुण्डह रुंड सब।
हिन्दवान रान भय भान मुख,
गहिय तेग चहुवान जब"॥

जब भयंकर मुखमुद्रा के साथ हिन्दूपति चौहान पृथ्वीराज ने रणस्थल में तलवार उठाई तब शत्रुओं के कहीं सिर और कहीं धड़, कहीं कर, कहीं चरण और कहीं अन्तड़ियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर-उधर बिखरने लगीं। कहीं तो तलवार कन्धे को काटकर पार हो गयी और कहीं सिर से टकराकर भीतर होती हुई वक्षःस्थल को चीर गयी। यही नहीं वरन् पृथ्वीराज रूपी सिंह के भीषण प्रहार के कारण मस्त हाथियों एवं घोड़ों के खुर, खोपड़ियाँ, गण्डःस्थल और सुण्डें रुण्ड मुण्ड होकर इधर-उधर बिखरने लगीं। इस प्रकार युद्ध भयङ्करता की अन्तिम सीमा से वीभत्स-रूप में पहुँच गया।

जरा इसकी हल्दीघाटी में युद्ध करते हुए 'प्रताप-की तलवार' से श्यामनारायण पाण्डेय के शब्दों में तुलना कीजिए—

"कल-कल बहती थी रण-गङ्गा,
अरि दल को डूब नहाने को।
तलवार वीर की नाव बनी,
चट-पट उस पार लगाने को॥
बैरी दल की ललकार गिरी,
वह नागिनि सी फुफकार गिरी।
था शोर मौत से बचो, बचो,
तलवार गिरी तलवार गिरी॥
क्षण इधर गई, क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़ सी उतर गई।
था प्रलय चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया किधर गई॥"

दोनों के भावों में स्थान और समय की दूरी के विपरीत भी कितना साम्य है? हिन्दी के आदि काव्यों में वर्णनों की यह प्रौढ़ता सचमुच हमारे लिये गौरव की वस्तु है।

इस भयङ्कर असि-प्रहार के कारण गौरी की दशा की ओर भी दृष्टिपात कीजिए—

सिर धूनत पतिसाह, धाह सुनि सेना सथ्थिय।
लुथ्थि-लुथ्थि मुँह धार, परे मथ्थन सों बथ्थिय॥
जम सों जम ऊहुरै, सूर जुट्टै दोइ घुट्टै।
नई गंठि तन जोग, सूर मुंडा बलि घुट्टै,
घुरसान जैत अब्बू धनिय,
धार-धार मुँह कट्टिया।
ऐसो न जुद्ध दिष्यौ सुन्यौ,
दारुन मेछ दबट्टिया।

युद्ध में गौरी की सब सेना कट गयी है। 'मारो-काटो-पकड़ो' की सैनिकों की हुँकार सुन बादशाह सिर धुनने लगा। युद्धस्थल में लोथ पर धाराधार होकर गिर पड़ी और रक्त से लथ-पथ के कारण उनके वस्त्र आपस में चिपक गये। ओर से योद्धा ऐसे भिड़े मानो यमराज से भिड़े हों। शूरवीरों के धड़ और सिर इधर-उधर कने लगे। और आबूपति जैतराय ने तलवार से खुरासानी सैनिकों के सिर धड़ से अलग कर ऐसा भयङ्कर युद्ध न तो देखा और न सुना म्लेच्छों की भारी सेना दब गयी हो।

इस प्रकार युद्ध में असिधार से शत्रुओं की के ढेर लगा देने वाले वीरों की तलवारें भूषण की—

प्रति भट कटक कटीले केते काटि-काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देती काल को।

—विपक्षी योद्धाओं की पराक्रमी सेना को काट कालिका देवी के समान किलकारियाँ करती हुई उन मस्तकों का कलेवा काल को प्रदान करने वाल छत्रसाल की तलवार सादृश्य उपस्थित करती है।

इन वर्णनों को पढ़ते समय क्षण-मात्र के लिये हम भूल जाते हैं कि हम किसी पुस्तक से सैन्य एवं युद्ध के वर्णन पढ़ रहे हैं। वरन् हमें ये वर्णन पढ़ते समय सेनाओं की पद-ध्वनि, सैनिकों की खूँख्वार हुँकार आदि स्पष्ट रूप से कानों में सुनायी पड़ती है। रणक्षेत्र के रोमाञ्चकारी दृश्यों का चित्रण हमारी आँखों के सामने खिंच जाता है। युद्ध में सेनाओं की मुठभेड़, वीरों का जयनाद, कायरों की भगदड़, घायलों का करुण-क्रन्दन इन सब के अतिरिक्त असि-प्रहार से रक्त की खल-खल करती हुई सरिता का रोमाञ्चकारी चित्र हमारी आँखों के सामने खिंच जाता है जिसके पश्चात् हम 'पृथ्वीराज-रासो' की प्रमाणिकता एवं निर्माण-काल के मतभेदों को क्षणभर के लिये भूल जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी दुनियाँ की नजरों में कुरुपा थी, पर मजनूँ की नजरें उसे देखते ही मचल उठती थी। समुद्र-मन्थन-समुत हलाहल से विश्व प्रकम्पित हो उठा, पर भगवान शङ्कर की परोपकारिणी शक्ति के अद्भुत प्रदर्शन के लिए वह सौन्दर्य का काम कर रहा था। जेल की कड़ियाँ और सेल के सीखचे अपराधियों के हृदय में कँपकँपी पैदा करने की चीज हैं, पर बापू और उनकी कांग्रेस की जीवन-कला उसी पर कसी जा कर निखर उठी। नागराज और नगराज को असुन्दर ही कहना अधिक उपयुक्त होगा, पर मणि और मुक्ता उन्हीं के सम्पर्क से अपने अमूल्य मूल्य के अधिकारी होते हैं। अतएव जिसे हम स्थूल दृष्टि से अपरूप कहते हैं कला उसमें भी सौन्दर्य का अवलोकन करती है। बल्कि यों कहा जाय कि कुरूपता के सान्निध्य से कला की सुरूपता और भी सुघर हो जाती है।

यह ठीक है कि कृत्रिम सुख साधनों की छीना झपटी में विश्व का प्रत्येक प्राणी इतना मग्न है कि एक ओर न तो भौतिक विभूतियों की उत्तरोत्तर प्राप्ति ही उसके पिपासाकुल हृदय की दाह बुझा रही है और न दूसरी ओर भोगलिप्साओं से दबा उसका प्रातिभ-ज्ञान ही अकृत्रिम सौन्दर्यावलोकन में समर्थ हो रहा है। प्रत्येक कलात्मक कृति में हम कृत्रिमता की झलक देखना चाहते हैं और उसके अभाव में पला-यनवादी मनोवृत्ति कह कर उससे हम विमुख हो जाते हैं। यह तो सर्व-सम्मत सिद्धान्त है ही कि जो कला जीवन की चेष्टाओं को पेश नहीं करती उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। पर जीवन की चेष्टाओं में केवल रोटी-दाल और अन्न-वस्त्र की ही समस्या नहीं है। ये आवश्यकताएँ तो कुछ सीमा तक पशु के लिए भी अपेक्षित हैं। जीवन की हरकतों से समाज का सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक ढाँचा भी सम्बन्धित है। जहाँ भी मैशिनरी बिगड़ी दिखलायी पड़ती है, कला झट उसे ठीक करने में निरत हो जाती है। पर जब कभी कला इन कृत्रिमताओं से ऊपर उठकर अपनी नैसर्गिक मस्ती दिखलाती है तब उसकी ईश्वरीय आभा से सारा विश्व चमत्कृत हो उठता है। ललित कला के सम्बन्ध में ये बातें विशेष रूप से लागू होती हैं। एक काव्य-कला को लीजिये। जीवन से नैकट्य रखने वाली एक दो रचनाओं को देखिये—

'जेठ हो, कि हो पूस हमारे
कृषकों को आराम नहीं है।
छुटे बैल के संग कभी
जीवन में ऐसा याम नहीं है।
मुख में जीभ, शक्ति भुज में,
जीवन में सुख का नाम नहीं है।
वसन कहाँ ? सूखी रोटी भी
मिलती दोनों शाम नहीं है।
'दिनकर'

'शव को दें हम रूप रंग आदर मानव का।
मानव को हम कुत्सित चित्र बनादें शव का।
मानव ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान प्रेत औ छाया से रति।'
—पन्त

और फिर पूर्ण कलात्मक भावनाओं से पूर्ण इन रचनाओं पर जरा गौर कीजिए :—

अभिसारिका मैं मिलने हूँ चली
प्रिय-पन्थ रे कोई बताना जरा।
किस शूली पै मीरा-प्रिया की है सेज
इशारों से कोई बताना जरा।
पथ-कुञ्ज में भूली सी राधिका के हित
श्याम तू बेणु बजाना जरा।
तुझमें प्रिय खोने को तो आरही
पर तू भी गले से लगाना जरा।'—दिनकर

अरी सलिल की लोल हिलोर!
यह कैसा स्वर्गीय हुलास ?
सरिता का चञ्चल दृग कोर।
यह जग को अविदित उल्लास।'—पन्त

'यमुने, तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथिक-प्रिया सी जगा रही है
किस अतीत के नीरव गान।'—निराला

कहाँ तक गिनाऊँ ? हमें तो सचमुच वर्ड्सवर्थ के समान 'True to the kindred points of Heaven and home' न होकर शेले के समान अनन्त में उड़ान भरता हुआ 'Unpremeditated profuse of strains' में हृदय उड़ेल कर अपनी कृति जब कोई कलाविद् सँवारने लगता है तो असीम नैसर्गिक आनन्द का अनुभव होता है। जिस तरह स्वच्छ वायु का सेवन गाँव से बाहर ही सम्भव है, कला भी विशुद्ध प्राकृतिक परिस्थिति में ही अनुभूत होती है। कलाधर की कमनीय कान्ति ऐलेक्ट्रिक बल्बों से चमत्कृत नगर निवासियों के हृदय में कौनसी भावना प्रस्फुटित कर सकती है ? गुलाब की नीरव मुस्कान किसी धनलोलुप के लिये क्या सुषमा बिखेर सकती हैं ! हमारे प्रान्त में एक शिक्षा-सञ्चालक थे। डिप्टी मजिस्ट्रेटी के चुनाव में जो ग्रेजुएट अपना इच्छित विषय संस्कृत तथा फिलासफी बताता उसका वे पूरा मखौल करते। 'The one will lead you to the forest and other to the church' कह कर फब्तियाँ कसते और निश्चय ही अपनी शक्तिभर उसका चुनाव न होने देते। हमें यह जान कर तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। नून, तेल, लकड़ी की बनिअउटी करने वाला व्यक्ति ऐथिक्स के प्रतिपाद्य सिद्धान्तों या कालिदास की पंक्तियों का—

'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानु
वप्रक्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीयं ददर्श'

का क्या महत्व समझ सकता है ? अतः कला पूर्ण एवं सजीव होते हुए भी अपनी ज्ञेयता के लिए परिस्थिति-विशेष की अपेक्षा रखती है।

मैं यह नहीं कहता कि जीवन की इन आवश्यकताओं की कला में उपेक्षा है। जीवन और कला दो रेलवे लाइनों के समान समानान्तर दूरी पर साथ-साथ चलती हैं। एक दूसरे के साथ-साथ और एक दूसरे से भिन्न भी। पर जिस तरह दो में एक पंक्ति के बिना गाड़ी चलना असम्भव उसी तरह जीवन और कला में एक के बिना सृष्टि का क्रमिक विकास।

हाँ, तो चन्द्रमा के कलापूर्ण होने का क्या रहस्य है ? एक तो वह विश्व के सघन कोलाहल से अति दूर रहकर, पार्थिव भोग विभूतियों से ऊपर उठकर विश्व को अपनी शीतलता प्रदान करता है जो प्रत्येक कला का कर्त्तव्य है। और दूसरी खूबी उसमें बहुत विचित्र है जिसके कारण ही शायद चन्द्रमा कलाधर कहलाता है। वह स्वयं तो सूर्य की उन्हीं तीखी रश्मियों को पीता है जिससे विश्व व्याकुल हो उठता है पर विश्व को प्रदान करने के समय उन्हें वह स्नेह-सिक्त एवं शीतल बना देता है। यही कला की सबसे बड़ी खूबी है। वह भगवान शङ्कर की नाईं स्वयं हलाहल पान कर विश्व को अमृत, लक्ष्मी, कमल, गज इत्यादि अनुपम चीजें प्रदान करती है। कला तो कलाविद् की अन्तर्चेतना में निहित है। एक बार एक सुप्रसिद्ध चित्रकार से किसी ने पूछा 'इतने सुन्दर चित्र बनाने के लिये तुम्हें इतनी सुन्दर नारियाँ कहाँ मिलती हैं ?' चित्रकार ने कहा 'आओ मैं तुम्हें दिखलाता हूँ।' एक बहुत बदसूरत औरत के पास उसे ले जाकर उस स्त्री से उसने कहा 'इधर हाथ जोड़ कर आकाश की ओर देखो !' स्त्री ने वैसा ही किया। चित्रकार ने झट पेंसिल लेकर एक सुंदर नारी की तस्वीर खींचली। मित्र यह देख कर दङ्ग रह गया। तो सचमुच कला का सौन्दर्य कलाकार के हृदय में है, बाह्य स्थूल पदार्थ में नहीं।

'हो उठा दीप्त धरती का कोना-कोना
जिसको मैंने छू दिया हुआ वह सोना'

कला का रहस्य सर्वोपरि यही है।

और फिर कला सजीव होने के नाते हास एवं विकास का द्योतक है। कलाकार का हास और विकास भी सर्व विदित है। प्रत्येक कला एक आदर्श

(शेष पृष्ठ ६१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चवटी

(श्री राधाशरण शास्त्री)

राष्ट्रकवि 'गुप्तजी' का 'पञ्चवटी' एक खण्ड-काव्य है। इसका कथानक श्रीवाल्मीकि रामायण व रामचरितमानस से लिया गया है। इसमें स्थान-स्थान पर कवि की नई उद्भावनाएँ भी हैं जो कथानक को सौष्ठव प्रदान करती हैं।

(१) **भाषा की दुरूहता का अभाव**—गुप्तजी की भाषा कभी भी किसी काव्य में कठिन नहीं होती इस कारण भाषा की दृष्टि से तो उनके ग्रन्थ सदा ही महत्वपूर्ण रहते हैं। जैसे—

मैं मनुष्यता को सुरत्व की,
जननी भी कह सकता हूँ।
किन्तु पतित को पशु कहना,
भी कभी नहीं सह सकता हूँ।

उपरोक्त पद्य में कवि का उद्देश्य मनुष्यता को सुरत्व की जननी बतलाने का है। लेखक ने अपने अभिप्राय का वर्णन कितनी सरल भाषा में किया है। आपके काव्यों में भाषा की सरलता किन्हीं विशेष संकलित पद्यों में ही नहीं, अपितु सर्वत्र ही समान है। उपरोक्त विषय की पुष्टि के लिए चाहे जिस कृति से कोई भी यथेष्ट पद्य लिया जा सकता है।

(२) **भावाभिव्यञ्जक शैली**—जब राम लक्ष्मण और सीता ये तीनों प्राणी 'पञ्चवटी' में आकर रहने लग जाते हैं तब लक्ष्मण का भावुक हृदय अपने अतीत को वर्तमान से बहुत कुछ निम्न समझता है। यहाँ तक कि लक्ष्मण अपने भाई की राजगद्दी के बारे में कैकेयी द्वारा स्पर्द्धा करने पर वे अपने शब्दों में इस प्रकार कह डालते हैं—

एक राज का मूढ़ जगत ने
कितना महा मूल्य रक्खा।
हमको तो मानो बन में ही,
है विधानुकूल्य रक्खा॥

इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मण की ममता राज्य के बारे में शून्य के बराबर है और वे बनवास को ही राज्य-लाभ से ज्यादा महत्व देते हैं। इसका कारण यह है कि लक्ष्मण का हृदय प्रकृति के रंग में बिल्कुल ही रँगा हुआ है और उन्हें सांसारिक कृत्रिमताएँ बिल्कुल ही भद्दी मालूम पड़ती हैं। और वे कह डालते हैं—

सांसारिकता में मिलती है
यहाँ निराली निस्पृहता।
अत्रि और अनसूया की-सी
होगी कहाँ पुण्य गृहता?
मानो है यह भुवन भिन्न-ही
कृत्रिमता का काम नहीं।
प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी
कहीं विकृति का नाम नहीं।

उपरोक्त पद्य से यह स्पष्ट है कि लक्ष्मण का अनुराग प्रकृति में है विकृति में नहीं। लक्ष्मण अपने स्वजनों के बारे में बारम्बार विचार करते हैं कि हमारी माताएँ कभी भी हमें दुखी न समझें, यहाँ तक कि वे अपने घर वालों को बुलाकर अपने वर्तमान सुख का उन्हें पूर्ण अनुभव कराने के लिए भी प्रस्तुत हो जाते हैं—

इच्छा होती है स्वजनों को
एक बार बन ले आऊँ।
और यहाँ की अनुपम महिमा
उन्हें घुमाकर दिखलाऊँ॥

उपरोक्त पद्यों में लक्ष्मण की सात्विक भावनाएँ स्पष्ट ही प्रतिबिम्बित है। भावों की अभिव्यञ्जन शैली का दूसरा उदाहरण और प्रस्तुत किया जा रहा है—

जब राक्षसी शूर्पणखा एक कृत्रिम सुन्दर कान्ति को अपनाये हुए अर्ध-रात्रि के समय लक्ष्मण के पास पहुँचती है तब वह अपनी रतीच्छा विषयक भावों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यञ्जन बड़े ही अनूठे ढङ्ग से करती है। उपरोक्त प्रकरण का वर्णन कवि ने बहुत-से छन्दों में किया है पर यहाँ उनका स्पष्टीकरण संक्षेप में ही किया जायगा।

सर्व प्रथम जब शूर्पणखा लक्ष्मण के सामने आती है तब लक्ष्मण उससे यही प्रश्न करते हैं कि 'तुम कौन हो?' यद्यपि उन्हें आगन्तुक अतिथि से यह भी पूछना चाहिए था कि 'तुम क्या चाहती हो?' पर लक्ष्मण अतिथि-सेवी होने पर भी अर्धरात्रि के समय सोलह शृङ्गार किये हुए एक अज्ञात कुलशीला युवती को देख कर भावी अज्ञात आशङ्का होने के भय से 'कौन हो?' यह कह कर ही मौन रह गये। कवि के शब्दों में उन दोनों पात्रों के पारस्परिक सम्भाषण के छन्द भी उद्धृत किए जा रहे हैं—

केवल इतना कि 'तुम कौन हो?'
बोली वह हा निष्ठुर कान्त।
यह भी नहीं 'चाहती हो क्या?'
कैसे हो मेरा मन शान्त?
मुझे जान पड़ता है तुमसे
आज छली जाऊँगी मैं;
किन्तु आगयी हूँ जब तब
क्या सहज चली जाऊँगी मैं?

किसी युवती द्वारा एक अज्ञात युवक के प्रति 'तुमसे आज छली जाऊँगी मैं' तथा 'किन्तु आगयी हूँ जब तब क्या सहज चली जाऊँगी मैं' ऐसे भावपूर्ण वचनों का निर्लज्ज होकर प्रतिपादन करना रतिव्यञ्जना की चरम सीमा नहीं है तो और है क्या?

वैसे अन्य भी कई उक्तियाँ उस युवक के प्रति कह डालती है—

जो धन तुम्हें दिया है विधि ने
देवों को भी नहीं दिया।

और भी—

धन की इच्छा हो तुमको तो
सोने का मेरा भू भाग।
शासक भूप बनो तुम उसके
त्यागो यह अति विषम विराग।

शूर्पणखा के द्वारा इस प्रकार कहने पर भी यति लक्ष्मण तनिक भी उसकी ओर ध्यान नहीं देता है। अन्त में वे कहते हैं कि 'देवि! मुझे किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है और न मेरी तपस्या का उद्देश्य किसी प्रयोजन विशेष को सिद्ध करने में ही है' पर शूर्पणखा तो अपनी मानसिक स्थिति पर जरा-भी अधिकार नहीं कर सकी फिर भी जैसे हिंसक जन्तु अपनी शिकार को मारने के लिए कई प्रकार के बहाने कर सकता है वैसे ही शूर्पणखा भी लक्ष्मण को अपने जीवन में फँसाने के लिए मनोहर बातों का जाल बिछाने लगी। यहाँ तक कि लक्ष्मण के द्वारा निरुद्देश्य तपस्या करने के बारे में कह देने पर भी स्वयं अपने आप को तपस्या का स्वर्गीय फल बतलाने लगती है।

उपरोक्त उद्धरणों से शूर्पणखा की रति-विषय की लालसा चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। वैसे अन्य भी कई स्थल ऐसे हैं जिनमें पात्रों द्वारा प्रस्तुत भावों का अभिव्यञ्जन स्पष्ट ही हुआ है।

(३) पात्रों का वैज्ञानिक चरित्र-चित्रण—इसमें चार ही पात्र हैं। राम, लक्ष्मण, सीता और शूर्पणखा। इसमें चारों पात्रों को कवि ने आधुनिकता के सांचे में ढाला है। 'पञ्चवटी' के चारों पात्र 'वाल्मीकि रामायण' और रामचरित मानस के पात्रों की तरह चित्रित नहीं होने पाये हैं। कवि ने इन सब का काया-पलट ही कर दिया है।

श्रीरामचन्द्रजी—श्रीराम जब उषाकाल में अपनी शैय्या छोड़ते हैं तब एक विचित्र स्त्री को अपनी पर्ण कुटी के द्वार पर खड़ा हुआ पाते हैं, और राम का उसके प्रति क्षेम विषयक प्रश्न उसके अनुकूल ही रहता है। (यह राम के बड़प्पन के भी अनुकूल ही था) और वे उससे 'कौन हो?' के साथ-साथ 'क्या चाहती हो?' यह भी पूछ लेते हैं। शूर्पणखा तो पवनाधीन पताका की तरह जिधर भी अपनी कार्यसिद्धि में क्षमता देखती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उधर ही अपना मुँह फेर लेती है। वह राम के पास उसी कामना को पूर्ण करने के लिए पहुँच जाती है जिसके लिए लक्ष्मण से भी बार-बार कह चुकी है। किन्तु राम उसकी कार्यसिद्धि का एकमात्र सहारा लक्ष्मण को ही बतलाते हैं क्योंकि लक्ष्मण विवाहित होने पर भी इस समय अकेले हैं। (राम ने शूर्पणखा को जो और उत्तर दिया है वह मर्यादा से पूर्ण है और उसमें शूर्पणखा के अस्थिर मन पर तीक्ष्ण व्यङ्ग है। दोनों ओर से वह प्रताड़ित होती है और अपने ही जाल में फँस जाती है। यह भी कवि का कल्पना-कौशल है।)

शूर्पणखा ने अपने नाक और कान कट जाने पर जब अपने घर की राह ली तब ये तीनों प्राणी फिर से अपने दैनिक कार्य्य में प्रवृत्त हुए। सीता और लक्ष्मण ये दोनों शुद्ध जल लाने के लिए किसी निकट स्थल जलाशय के किनारे पहुँचते हैं पीछे से उन दोनों को एक साथ जाते देख कर राम का हृदय अचानक यह कह उठता है—

तनिक देर ठहरो मैं देखूँ
तुम देवर-भाभी की ओर।
शीतल करूँ हृदय यह अपना
पाकर दुर्लभ हर्ष हिलोर।

ऐसी उक्तियाँ यद्यपि राम ने अपने भ्रातृस्नेह व पत्नीस्नेह को पूर्ण रूप से व्यक्त करने के लिए कही हैं फिर भी एक आदर्श व्यक्ति द्वारा अपने छोटे भाई के सामने ऐसे गूढ़ भावों का अभिव्यञ्जन करना अस्वाभाविक ही समझा जाता है।

उपरोक्त विषय को दृष्टिकोण में रखते हुए कवि ने श्रीराम का चरित्र-चित्रण ऐतिहासिक दृष्टि से अवाञ्छनीय ही किया है। हो सकता है आधुनिक समाज में ऐसे चरित्र-चित्रण को महत्त्व दिया जाय। पर काव्य के पात्र यदि ऐतिहासिक हों तो चरित्र-चित्रण तत्कालीन सभ्यता के अनुकूल ही होना चाहिए था। यदि कोई लेखक महाभारतकालीन युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों के प्रदर्शन में आधुनिक वैज्ञानिक अस्त्रों का चित्रण कर दे तो पाठकों को अस्वाभाविक ही मालूम पड़ेगा। (इसके लिए गुप्तजी के पक्ष में केवल इतना ही नहीं कहा जा सकता है कि उनका उद्देश्य यह है कि वन में भी पारिवारिक जीवन का सुख दिखाया जा सके वरन् लक्ष्मण और सीता के पूर्व अभिव्यक्ति भावों और चरित्र की पृष्ठभूमि पर इन पंक्तियों में व्यङ्ग्य राम की भारतीय परम्परानुकूल उदार चरित्र शीलता तथा पवित्र स्नेह की पावन प्रभविष्णुता चित्रित की जा सके। अर्थ की व्यञ्जना ठीक न ग्रहण करने से ही ऐसे भ्रम होते हैं।) —सम्पादक

लक्ष्मण—लक्ष्मण का चरित्र-चित्रण ऐतिहासिक दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं होने पाया है क्योंकि लक्ष्मण की उक्तियों में कहीं भी स्वाभाविकता का परित्याग नहीं किया गया है। वे सब स्थलों पर सीता को अपनी परम पूज्या माता के समान मानते हैं और राम को भी उतना ही आदर्श मानते हैं जितना पौराणिक काव्यों में वर्णित किया गया है। यहाँ तक कि निर्जन वनस्थली में एकान्त स्थान मिलने पर भी वे एकाएक राक्षसी शूर्पणखा के जीवन में नहीं आकृष्ट हुए। अगर लक्ष्मण की जगह और कोई होता या स्वयं लक्ष्मण आधुनिक ढंग के व्यक्ति होते तो ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देते। इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मण 'पञ्चवटी' में बिल्कुल ही पौराणिक पात्रों की तरह आते हैं।

सीता—सीता का चरित्र-चित्रण भी आधुनिक कुल वधुओं के समान ही किया गया है। वह अपने प्रिय देवर के सम्मुख खड़ी हुई उस युवती को देखकर कह उठती है—

"देवर, तुम कैसे निर्दय हो,
घर आये जन का अपमान।
किसके पर नर तुम, उसके जो
चाहे तुमको प्राण-समान॥

और भी—

देने ही आई है तुमको
निज सर्वस्व बिना संकोच।
देने में कार्पण्य तुम्हें हो
तो लेने में है क्या सोच॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि सीता एक पौराणिक पात्र होते हुए भी प्रस्तुत काव्य में आधुनिकता लिये हुए है। सीता के इस प्रकार कहने पर भी लक्ष्मण एक चरित्रशील एवं आदर्श युवक की तरह ही अपनी जीवनचर्य्या को सुचारु रूप से प्रारम्भ रखते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि लक्ष्मण इस काव्य में कहीं भी विकृत नहीं होने पाये हैं।

शूर्पणखा—अगर पञ्चवटी प्रसंग में शूर्पणखा का पदार्पण न होता तो संभव है रामायण का कथानक यहीं समाप्त हो जाता। इसने रामायण को प्रबन्ध-काव्य बनाने में पूर्ण सहयोग दिया है। बस प्रस्तुत काव्य में भी शूर्पणखा वीरासन स्थित लक्ष्मण के पास अर्धरात्रि के समय पहुँचती है। यह लक्ष्मण को अपना बनाने के लिए काफी प्रयत्न करती है पर लक्ष्मण का पाषाण हृदय इसकी तनिक भी परवाह नहीं करता। कवि ने कामार्त युवती की चेष्टाओं का चित्रण बड़े ही अनूठे ढङ्ग से किया है। उपरोक्त विषय का स्पष्टीकरण करने वाले पद्य प्रस्तुत आलोचना में पहले ही 'भावाभिव्यञ्जक शैली' वाले पैरोग्राफ में दिये जा चुके हैं। उदाहरणार्थ वे ही यहाँ भी उपादेय हैं।

काल्पनिक विषयों का तथ्यपूर्ण विवेचन—अब कवि की कल्पनाशक्ति के बारे में विचार करने का आवश्यकता है। यदि किसी अर्वाचीन कृति में काल्पनिक विषयों का समावेश होने पर पौराणिक विषय से वह कृति कुछ विपरीत भी हो जाय तो किसी प्रकार का अनर्थ नहीं होता, यदि वह कल्पना वास्तविक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से की गयी हो। यहाँ कवि ने शूर्पणखा के मानसिक भावों को अभिव्यक्त करने के लिए बहुत ही उपयुक्त समय खोजा है। किसी भी युवक एवं युवती के हृदय को कामार्त बनाने के लिए उत्तेजक साधनों का भी एकत्रीकरण किया है क्योंकि 'रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्यशब्दा न्पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः" के आधार पर किसी व्यक्ति में कामार्तता दिखलाने के लिए चन्द्रमा की मनोहर किरणों का जाल तथा विकसित हरे-हरे वृक्ष एवं लताएँ कुसुमित हो रही हों, रमणीय भूभाग तथा एकान्त मध्य रात्रि का समय जिसमें प्रकृति के सब जीव सुखपूर्वक गहरी निद्रा में सो रहे हों ऐसे साधनों की आवश्यकता पड़ती है। कवि ने यहाँ भी शूर्पणखा के रति-भाव को अभिव्यञ्जित करने के लिए उपरोक्त साधन ही जुटाये हैं। जैसे—

चारु चन्द्र की चञ्चल किरणें.....
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से—
क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह,
क्या ही है निस्तब्ध निशा।
है स्वच्छन्द-सुमन्द गन्धवह,
निरानन्द है कौन दिशा।

ऐसे सुन्दर समय का वर्णन तुलसी ने भी अपने राम-चरित-मानस में नहीं किया है। बिना किसी समय का निदेश किये ही आपने अपने पञ्चवटी प्रसङ्ग में शूर्पणखा को स्थान दे दिया है। जिससे दो युवक हृदयों की पारस्परिक प्रेम पूर्ण बातें अच्छी तरह से नहीं होने पाती है—

शूर्पणखा रावण की बहिनि,
दुष्ट हृदय दारुण जस अहिनि।
पञ्चवटी सो गई एक बारा,
देखि विकल भई जुगल कुमारा।

पर गुप्तजी ने अपने काव्य में समय की बिल्कुल ही अनुकूलता प्रदर्शित की है—(इसके अतिरिक्त गुप्तजी ने शूर्पणखा को पहले लक्ष्मण के प्रति ही आकृष्ट किया है। यह भी स्वाभाविक ही है। कवि की और भी मौलिकताएँ हैं, जैसे नाक-कान काटने से पूर्व शूर्पणखा को भयङ्कर रूप में दिखाना यह नाक-कान काटे जाने वाले दोष को बहुत अंश में क्षम्य बना देता है—सम्पादक)

किसी भी कृति पर तत्कालीन वातावरण की छाप पड़े बिना नहीं रह सकती। आज कल हमारे समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो नारी समस्याएँ एवं हरिजन समस्याएँ भयानक रूप धारण करके विचरण कर रही हैं उनका भी निर्देश आपने अपने पात्रों द्वारा कराया है।

गुह, निषाद, शबरों तक का
मन रखते हैं प्रभु कानन में।
क्या हो सरल बचन रहते हैं
इनके भोले आनन में।
इन्हें समाज नीच कहता है,
पर हैं ये भी तो प्राणी।
इनमें भी मन और भाव हैं,
किन्तु नहीं वैसी वाणी।

यहाँ पर कवि ने आधुनिक स्वप्निल रामराज्य का प्रदर्शन किया है क्योंकि गुहनिषाद आदि सब ही संकीर्ण वर्ण के प्राणी हैं और वर्तमान समय में हरिजनों का उद्धार करना ही राष्ट्र का एक मात्र ध्येय है।

नर कृत शास्त्रों के सब
बन्धन हैं नारी को ही लेकर।
अपने लिए सभी सुविधाएँ,
पहिले ही कर बैठे नर।

उपरोक्त पद्य में स्वार्थी मानवों पर हृदय वेधक तीक्ष्ण व्यङ्ग कसा गया है।

अपना ही कुल-शील प्रेम में,
पड़कर नहीं देखतीं हम;
प्रेम-पात्र का क्या देखेंगी
प्रिय हैं जिसे लेखतीं हम।

आधुनिक शिक्षित स्त्रियाँ जो इस प्रकार अपनी भावी गृहस्थी के बारे में पूर्णरूप से विचार किये बिना अज्ञात पुरुष के जीवन में प्रवृत्त हो जाती हैं, यद्यपि यह नैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से समाज के लिए अहित कर है फिर भी जो पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से अपना इसी में ही हित समझें बैठी हैं उपरोक्त पद्य में उनका ही चित्रण किया गया है।

उपरोक्त विवेचन से इस काव्य में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है, केवल चरित्र चित्रण में कवि ने नैतिक दृष्टि से कुछ छिछोरा पन सा दिखाया है। इसका कारण यह भी हो सकता है "भिन्न रुचिर्हि लोकः के अनुसार आपकी ऐसी अभिलाषाएँ ही होगीं जिससे आपने अपनी रचना में पात्रों का चरित्र चित्रण आधुनिक ढङ्ग पर किया है। यदि यहाँ कवि ने वास्तव में भूल की है तो 'एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणष्विवाङ्कः" के अनुसार भी समाधान किया जा सकता है।

(पृष्ठ ११३ का शेष)

यों तो किसी भी कलाकार को 'वाद' के विवाद में पड़ कर वाद विशेष के प्रचार का माध्यम कला को बनाना कला की मूल भित्ति को ही विनष्ट करने के समान है किन्तु काव्य-कला में तो इसका और भी विनाशकारी प्रभाव होता है। काव्य अत्यन्त सूक्ष्म एवं सौन्दर्यपूर्ण कला है। इसकी सूक्ष्मता और सौन्दर्य वाद के विवाद में पड़कर मैसर्गिकता को विनाष्ट कर देता है। इधर जो नवीन प्रयास पन्तजी ने किया है उसमें स्वाभाविकता के उद्दाम वेग का अभाव है। सम्भवतः इसीलिए कि उसमें 'वाद' विशेष की अभिव्यक्ति की ओर ललक और प्रयत्न है। वाद विशेष के सहित होते हुए भी उसी वाद के भावानुरूप व्यञ्जना स्वेच्छया जो पूर्व की रचनाओं में यदाकदा हुआ है वह बड़ा मर्मस्पर्शी एवं हृदय ग्राही है। फलतः प्रगतिवाद से प्रभावित लोगों के लिए जहाँ ये नूतन रचनाएँ आह्लादसामिनी एवं उपयुक्त हैं वहाँ 'वाद' के विवाद से रहित लोगों के लिए अभिशाप-स्वरूप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि पन्त और प्रकृति

(श्री शिवप्रसाद लोहानी 'साहित्य-रत्न')

अलमोड़े के प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण अञ्चल में पले हुए कवि पन्त के काव्य में प्रकृति का जो हृदय-ग्राही स्वरूप मिलता है वह बड़ा कमनीय है। उसमें अनुभूति का प्राचुर्य एवं भावों का वेग है। प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया-कम्पनों का शब्द चित्र बड़ा मधुर है। प्राकृतिक स्पन्दन की सम्यक अभिव्यञ्जना, वह भी ब्रजभाषा की सी लोचदार एवं मधुरिमा-युक्त भाषा में—प्राणों में पुलक भर देती है।

पन्तजी मुख्यतः प्रकृति के कवि हैं। इधर की रचनाओं में पन्त के विचारक ने साम्यवाद की भावनाओं को काव्य का जामा पहनाने का प्रयास किया है किन्तु उनमें वैसी रमणीयता कहाँ ? भले पन्त की लेखनी से प्रसूत उन साम्यवादपरक कविताओं में इतर तत्तुल्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक माधुरी हो पर प्रकृति से सम्बन्धित रचनाओं की सी माधुरी का उनमें अभाव ही है।

पन्तजी के काव्य में प्रकृति उद्दीपन नहीं रह गयी है वह आलम्बन बन गयी है। प्रकृति के विविध स्वरूपों का सुन्दर निदर्शन इनके काव्य में हुआ है। 'मधुवन' में कवि कहता है—

आज स्वर्णिम मधुप्रात
व्योम के विजन कुञ्ज में प्राण।
खुल रही नवल गुलाब समान
लाज के विनत वृन्त पर ज्यों अभिराम
तुम्हारा मुख अरविन्द सकाम

इनकी अन्तर्भेदिनी दृष्टि प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप पर भी गयी है; प्रकृति रूपी घर के कोने कोने से ये परिचित हैं। प्रकृति मानव से पुरानी है। मानव प्रकृति की ही गोद में पला और उसकी सुन्दर हरिताभ रोमावलियों की शय्या पर लोट पोट कर विकसित हुआ है।

प्रकृति जीवन-रस का अनन्त स्रोत है, ऐसा स्रोत जिसकी निर्मल धारा 'यावत सिन्धु-हिमाचलौ' प्रवहमान हैं। सृष्टि के आदिमानव का ही एकान्त में इसने साथ नहीं दिया आज तक यह उसी अनित्य रूप में विद्यमान है; अभी भी वह मानव की बातें सुनती है, उसके दुःख में दुखी होती है और उसकी शुभ-कामना करती है। उससे विलग होने पर उसकी प्रतीक्षा करती है—

कब से विलोकती तुमको।
उषा आ वातायन से॥

मूक किन्तु स्पष्ट संकेतों द्वारा प्रकृति अनवरत रूप से एकसा अपना गौरव विकीर्ण कर रही है; राका शशि का दुग्धोपम प्रकाश एवं उषा का स्वर्णिम स्वरूप बड़ा रमणीय है—

यह ऊषा का नव विकास है
जो रज को है रजत बनाता।

प्रकृति को पन्तजी सप्राण मानते हैं और उसमें एकाकारता की अनुभूति करते हैं। उसके क्रिया-कम्पन मे वे अपने हृदय का स्पन्दन देखते हैं, कवि की आत्मा उसमें तदाकार सी हो गयी है। उससे कवि ऐसा घुलमिल गया है जैसे दूध में मिश्री। इस रूप में प्रकृति को ग्रहण कर पन्तजी ने हिन्दी-साहित्य में एक सर्वथा नवीन पथ की उद्भावना की है। यों तो कोई भी काल या कवि ऐसा न होगा जिसने प्रकृति का सहारा न लिया हो किन्तु इनकी रचनाओं में प्रकृति का बड़ा मनोमुग्धकर एवं आह्लादकारी स्वरूप मिलता है। वीर, भक्ति एवं रीतिकाल में प्राकृतिक छटा यत्र तत्र मिलता है किन्तु उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है; वह साधारणतया अभीष्ट भाव के बाह्य स्वरूप को बोधगम्य बनाने के ही निमित्त व्यवहृत है। उन कालों की षट-ऋतु, वसन्त, पावस, शरद और राकापति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर जो कविताएँ मिलती है वें ऐसी ज्ञात होती है जैसे कोई उनका वर्णन कर उसके वाह्य स्वरूप की अभिव्यक्ति कर रहा हो; कवि से तदाकारता का भास उसमें नहीं होता। भारतेन्दुकाल में भी वाह्य प्रकृति की अनन्तरूपता के साथ कवि के हृदय का सामञ्जस्य नहीं पाया जाता। पन्त के काव्य में प्रकृति का व्यापक स्वरूप मिलता है। 'परिवर्तन' के पूर्व की रचनाओं में कवि की प्रकृति से तादात्म्यता दृष्टिगत होती है। 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

अरुण अधरों की पल्लव प्रात
मोतियों सा हिलता हिम ह्रास
इन्द्रधनुषी पट से ढक गात
बाल विद्युत का पावस लास

मुक्त प्रकृति के कमनीय स्वरूप की झाँकी जब कवि पाता है और उस मुक्त प्रकृति के बन में इन्द्रधनुषी रङ्गों की सुन्दर तितलियों को सौरभ में स्नान करते देखता है तो कवि को ईर्ष्या होती है। वह चाहता है कि वह भी मुक्त प्रकृति के आनन्ददायक स्वरूप का रस पान करें—

निज इन्द्रधनुष पङ्खों में
जो उड़ते थे तितली में
मैं भी फूलों के बन में
क्या इनके सङ्ग उड़ जाऊँ?

प्रकृति मुक्तहस्त से अपनी निधि लुटाती है; कवि जिधर दृष्टि दौड़ाता है प्रकृति के क्रिया-कलापों को देख भाव-विभोर हो जाता है। भावातिरेक में कवि कह उठता है—

आज शिशु के कवि को अनजान
मिल गया अपना गान
खोल कलियों ने उरके द्वार
दे दिया उसको छवि का वेश
बजा भौरों ने मधु का तार
कह दिये भेद भरे सन्देश

युगान्त की अन्तिम कविता 'बापू' से कवि मानवी समस्याओं की ओर आकृष्ट होता है, यथार्थ से कवि अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। कवि के संयमशील बुद्धिवादी दृष्टिकोण का आभास मिलने लगता है। कवि अवश्य ही व्यष्टि से समष्टि व्यक्ति से समाज की ओर अग्रसर है पर अपनी चिर सङ्गिनी प्रकृति को एकदम विस्मृत कर नहीं देता। कवि समष्टि गत जीवन में पदार्पण कर चुका। इससे प्रकृति के उन्हीं उपादानों एवं क्रिया कलापों की व्यञ्जना है जो कि सर्वसाधारण समझ सके जिसके जीवन रस से समाज के सारे प्राणी लाभान्वित हों। चकोर को अङ्गार खाते और चातक को स्वाति जलपान करते किसने देखा है? इनके सम्बन्ध में परम्परा से आती हुई विचार धारा ही अर्थ बोध कराती है किन्तु नीम के वृक्ष, बड़े छोटे और पतले सभी ने देखे हैं। युगवाणी में कवि कहता है—

सर सर मर मर
रेशम के से स्वर भर
घने नीम दल
लम्बे, पतले, चञ्चल

'युगवाणी' आदि कृतियों की इस परिवर्तित विचार धारा से प्रभावित काव्य में जहाँ प्रकृति का आश्रय ईषत भिन्न दूरारूढ़ भावरहित भी नहीं लिया गया वहाँ का काव्य कवि के हृदय स्रोत से निकला हुआ नहीं ज्ञात होता है। सम्भवतः इसी कारण इन नूतन कविताओं को सुनकर वचन ने कहा था कि उनसे उनके सिर में दर्द हो गया। कविता हृदय की वस्तु है। हृदय को स्पर्श करने वाला काव्य ही सच्चा काव्य है। कविता से सिर में नहीं अपितु हृदय में दर्द होना चाहिये। यदि किसी वाद विशेष के सिद्धान्तों का तात्विक विवेचन कविता में होने लगे तो उससे ऐसा सिर दर्द होगा कि उसकी चिकित्सा उसके विशेषज्ञ भी कर सकेंगे, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

(शेष पृष्ठ १११ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनकर : तीन लेख

'दिनकर' की काव्य-साधना

आधुनिक हिन्दी जगत में 'वादों' (Isms) की बेढ़ लगी है। महादेवी वर्मा का 'रहस्यवाद', 'बच्चन' का 'हालावाद', 'पन्त' का 'छायावाद', 'नवीन' का 'प्रगतिवाद' तो प्रसिद्ध ही हैं। 'दिनकर' भी अपना एक नया 'क्रान्तिवाद' लेकर साहित्य क्षेत्र में उतर आए। क्रान्तिवाद ने वास्तव में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इस क्रान्ति का रूप भी बड़ा ही विकट है। देखिए—

पायल की पहली झमक
सृष्टि में कोलाहल छा जाता है।
पड़ते जिस ओर चरण मेरे,
भूगोल उधर दब जाता है।
लहराती लपट दिशाओं में
खलभल खगोल अकुलाता है।
पर कटे विहँग सा निरवलम्ब,
गिर स्वर्ग नरक जल जाता है।
गिरते दहाड़ कर शैल शृङ्ग
मैं जिधर फेरती हूँ चितवन।
झन झन झन झन झन झनन झनन॥
—विपथगा

'दिनकर' की 'क्रान्ति' क्या है? इसका उत्तर 'विपथगा' स्वयं देती हैं—

मैं तेजों का तेज, युगों के
मूक-मौन की बानी हूँ।
दिल जले शासितों के दिल की
मैं जलती हुई जवानी हूँ।
सदियों की जब्ती तोड़ जगी
मैं उस ज्वाला की रानी हूँ॥
(पृष्ठ ४४ पर देखें) —विपथगा

यही नहीं उसकी श्वासों में लङ्का के 'उनचास पवन' बहने लगते हैं।

इस समस्त 'क्रान्ति' के मूल में वर्तमान कालिक अभाव का क्रूर ताण्डव है। कवि का संवेदनाशील हृदय समाज की विषमता, अधःपतन तथा कुत्सित अवस्था देखता है। एक दरिद्र-गृह का बालक दूध के लिए तड़पता उसकी प्रचण्ड क्रान्तिभावना के लिए 'प्रतीक' बनकर उपस्थित हो जाता है। माँ का दुग्ध रहित झीना अञ्चल और बालक का दूध के लिए क्रन्दनमय हठ कवि से नहीं देखा जाता। आदि कवि की—

"मा निषादप्रतिष्ठात्वमगमः शाश्वती समाः
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥"

की दुखार्त्त सहज वाणी की भाँति इस कवि के मुख से भी निकल जाता है—

"कण-कण में अबुध बालकों
की भूखी हड्डी रोती है।
"दूध-दूध!" की कदम-कदम
पर सारी रात सदा होती है।
"दूध-दूध!" औ वत्स मंदिरों में
बहरे पाषाण यहाँ है।
"दूध-दूध!" तारे बोलो,
इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं??"

जब भगवान् भी नहीं सुनते, देव भी नहीं सुनते और गङ्गा भी सुनी अनसुनी कर देती है तो कवि के धैर्य का बाँध टूट जाता है—वह चीत्कार में कह उठता है—

'जय मामव.....
और हिन्द महासागर की जय बोलकर वह तरुण उठता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हटो व्योम के मेघ पन्थ से,
स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
"दूध-दूध !" ओ वत्स ! तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं।"
—हाहाकार

कितनी कसक, कितनी वेदना तथा कितना विद्रोह है इस हुङ्कार में। जिस देश में दुग्ध-धारायें प्रवाहित होती थीं, वहाँ के बालक दूध के बिना ही जान तोड़ देते हैं। कितना मर्मस्पर्शी है यह बाल-रुदन और कितनी व्यथावह है हमारी परवशता एवम् अकर्मण्यता।

पर, 'दिनकर' में क्रान्ति के अतिरिक्त कुछ और भी है। प्रेम के पाखण्ड पूर्ण विलासी आवरण को छिन्न-भिन्न कर उसने उसकी एक नई परिभाषा की—

सत्य का जिसके हृदय में प्यार हो,
एक पथ बलि के लिए तैयार हो।
फूँक दे सोचे बिना संसार को,
तोड़ दे मँझदार जा पतवार को।
प्रेम की दुनिया बड़ी ऊँची बसी,
चढ़ सका आकाश पर विरला यशी।

यही प्रेम जीवन के नव-निर्माण के मूल में विद्यमान रहता है। जिसे यह प्रेम उत्पन्न हो जाता है वह 'मारजीवा' है, अपने सिर को अपने हाथों काटकर हथेली पर रखे हुए है।

बस यही तो यहाँ सत्य है—और शेष समस्त सौन्दर्य, वैभव, ऐश्वर्य और विलास क्षण-भंगुर और मिथ्या उदासीनता का प्रादुर्भाव होता है। देखिए कवि आन्तरिक उद्दीप्त क्रान्ति के उत्साह से पीड़ित होकर सृष्टि की उद्भ्रान्त प्रकृति के प्रति वैराग्य भाव प्रकट करता है—विरक्ति के साथ यह तिक्तता ही उसे जग से पलायन करने से रोकती है—वह कहता है।

"कञ्चन थाल सजा सौरभ से ओ फूलों की रानी।
अलसायी सी चली कहो करने किसकी अगवानी
वैभव का उन्माद, रूप की यह कैसी नादानी
उसे ! भूल जाना न ओस की करुणामयी कहानी"

"यह संग्रह किसलिए ? हाय,
इस जग में क्या अक्षय है।
अपने क्रूर-करों से छूता,
सब को यहाँ प्रलय है॥"
"हरा-भरा रह सका यहाँ पर,
नहीं किसी का बाग सखी।"
यहाँ सदा जलती रहती है,
सर्वनाश की आग सखी॥
—जीवन-सङ्गीत

'वैभव का उन्माद' और 'रूप की नादानी' ही तो इस संसार में सबसे वीभत्स दुखद कहानी रचा करते हैं। तो फिर मनुष्य क्या करे ? शान्ति की उपासना ? शान्ति अवश्य ही आराधना योग्य है। समस्त उद्योग उसी के लिए तो है, पर कवि को गान्धीवाद की शान्ति समझ में नहीं आती—

"टाँक रही हो सुई चर्म पर,
शान्त रहें हम तनिक न डोलें।
यही शान्ति ? गर्दन कटती हो,
पर हम अपनी जीभ न खोलें॥"
"बोलें कुछ मत, क्षुधित रोटियाँ,
श्वान छीन खायें यदि कर से।
यही शान्ति ? जब वे आवें, हम,
निकल जायँ चुपके निज घर से॥"
"चूस रहे हों दनुज रक्त, पर,
हो मत दलित प्रबुद्ध कुमारी।
हो न कहीं प्रतिकार पाप का,
शान्ति या कि यह युद्ध कुमारी"

इन पंक्तियों में कवि की हृत्तन्त्री से प्रस्फुटित क्रान्ति की झंकृति है। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के प्रति विद्रोह की ज्वाला है और उसके प्रतिकार हेतु शृङ्गार का निर्घोष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'दिनकर' से इतिहास अपनी सम्पूर्ण-वेदनाओं को लेकर बोलता है।"

—बनारसीदास चतुर्वेदी

इसमें किसी को ननुनच करने का अवकाश ही नहीं है। 'दिनकर' की कविता में है विशुद्ध-राष्ट्रीयता का गान और वाणी में है क्रान्ति का आह्वान। देखिए, केवल 'हिमालय' एक ही बार में अतीत की सारी स्मृतियाँ जाग्रत कर देता है। इतिहास के पृष्ठ और हमारे उत्थान पतन के दृश्य साथ ही साथ दृष्टि में आते और चित्रपट की भाँति विलीन होते जाते हैं। हाँ, हृदय में एक कसक, रक्त में उष्णता, रोम-तारों में झनकार और भुजाओं में फड़कन अवश्य छोड़ जाते हैं। विश्वास न हो तो देखने का कष्ट कीजिए—

"कितनी द्रुपदा के बाल खुले,
कितनी कलियों का अन्त हुआ।
कह हृदय खोल चित्तौर यहाँ,
कितने दिन ज्वाल-वसन्त हुआ॥"
"पूछे सिकता कण से हिमपति,
तेरा वह राजस्थान कहाँ।
वन-वन स्वतन्त्रता-दीप लिए,
फिरने वाला बलवान् कहाँ॥"
"तू पूछ अवध से राम कहाँ,
वृन्दा बोलो घनश्याम कहाँ।
ओ मगध कहाँ मेरे अशोक,
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ॥"
"पैरों पर ही है पड़ी हुई,
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी।
तू पूछ कहाँ इसने खोयी,
अपनी अनन्त निधियाँ सारी॥"
"री कपिलवस्तु कह बुद्धदेव,
के वे मङ्गल उपदेश कहाँ।
तिब्बत, इरान, जापान, चीन,
तक गए हुए सन्देश कहाँ॥"
"वैशाली के भग्नावशेष से,
पूछ लिच्छवी-शान कहाँ।
ओरी उदास गण्डकी बता,
विद्यापति कवि के गान कहाँ॥"

आदि-आदि।

इस प्रकार हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि 'दिनकर' केवल 'क्रान्तिवादी ही नहीं, वरन् समाजवादी, साम्यवादी, सुधारवादी आदि सभी कुछ हैं। कहीं क्रान्ति का मन्त्र फूँकते हैं, तो कहीं शान्ति की परिभाषा पूछते हैं; कहीं प्रेम में वियोग की अग्नि जलाते हैं, तो कहीं संसार की नश्वरता से उसके प्रति उदासीनता उपजाते हैं। यही नहीं, वे राजनैतिक, सामाजिक सभी प्रकार का उत्क्रान्तिपूर्ण-सुधार चाहते हैं। यह सब कुछ होते हुए भी 'दिनकर' प्रकृति के प्रति उदासीन नहीं हैं। 'अमा-सन्ध्या' एवम् 'निर्झरिणी' आदि कवितायें उनके प्रकृति-प्रेम की साक्षिणी हैं। वे हिन्दी में क्रान्ति-युग के प्रवर्त्तक हैं।

आपकी 'रेणुका', 'हुङ्कार', 'विद्रोह-शिखा', 'रसवन्ती', 'द्वन्द्वगीत', 'कुरुक्षेत्र' आदि रचनायें प्रकाशित होकर हिन्दी-जगत् में पर्याप्त मान प्राप्त कर चुकी हैं।

—आनन्द प्रकाश मिश्र

आलोचक दिनकर

दिनकरजी मुख्य रूप से कवि हैं। प्रारम्भ से ही उनकी रुचि कविता की ओर रही है। इधर हाल में आकर अवश्य उन्होंने आलोचनात्मक निबन्धों की ओर अपनी लेखनी दौड़ायी है, परन्तु वस्तुतः इससे ही उनका नाम आलोचकों की कोटि में नहीं चला आता।

उनके आलोचनात्मक निबन्धों का एक संग्रह है 'मिट्टी की ओर'। इस संग्रह को प्रस्तुत करने का कुछ प्रयोजन अवश्य होगा, परन्तु वह क्या है, निःसंकोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जा सकता। इस पुस्तक के निबन्धों को
पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये निबन्ध अधि-
रूप से विभिन्न कवि-सम्मेलनों या साहित्य-
नों के सभापति-पद से दिये गये अभिभाषण के
में लिखे गये हैं। फलतः वे विचारधाराओं के
का लिपिबद्ध इतिहास नहीं, वरन् श्रोताओं
पुकार पर प्रस्तुत की गयीं उनके लिए कुछ मन-
ान की सामग्री उपस्थित करने वाली पंक्तियाँ हैं।
तु हमारा विश्वास है कि जिस प्रकार हृदय की
हती भावनाओं को लिपिबद्ध करने वाला व्यक्ति
कहा जाता है, आलोचक भी उसी प्रकार
लोक में तूफान उठाने वाली विचारधाराओं को
पिबद्ध करने वाला व्यक्ति होगा।

कवि में जब कि हृदय-पक्ष प्रधान होता है,
लोचक में बुद्धि पक्ष। कवि जबकि भावुकता की
में खेलने वाला बालक होता है, आलोचक
न्तन की भट्टी में तपने वाला तरुण तपस्वी। आलो-
का मार्ग साधना और स्वाध्याय का मार्ग होता
। दिनकरजी के आलोचनात्मक निबन्धों में तरुण
ती की साधना और स्वध्याय की नहीं, वरन् नवीन
ाओं के गैरुए वस्त्र की झलक भर ही मिलती है।

आलोचक के रूप में दिनकरजी की कमजोरियों
ी मैं क्या दिखलाऊँ ? वे तो स्वयं पुस्तक के 'निवे-
में स्वीकार करते हैं—"वर्तमान कविता की
न्दद्ध आलोचना लिखना मेरा उद्देश्य नहीं था।"
इस पुस्तक के कुछ निबन्ध तो मैंने भाषणादि की
विवशता के कारण लिखे।" अब तो स्पष्ट हो ही गया
कि यदि भाषणादि की विवशता नहीं होती तो
निबन्धों का जन्म नहीं हुआ होता। ऐसी दशा
दिनकरजी को आलोचक की कोटि में ला रखने की
करना तो सरासर उनके साथ बलात्कार करना
ा। निवेदन में वे आगे चलकर लिखते हैं—
खना कुछ कह लेने के बाद भी मैं कुछ डरा-डरा
ा हूँ, क्योंकि इस बात की पूरी आशङ्का है कि यह
पुस्तक आलोचना की कोटि में गिन ली जायगी और
आलोचक बन कर प्रगट होने की न तो मुझे योग्यता
है और न हिम्मत।"

दिनकरजी ने इसी पुस्तक में एक जगह लिखा
है—'कहते हैं प्रत्येक कवि जीवन भर में एक ही
कविता लिखता है; अर्थात् प्रत्येक कवि की सारी
रचनाओं के भीतर कोई एक ही सूत्र व्याप्त रहता है
तथा उसकी सभी कविताओं के पीछे एक ही तरह की
मनोदशा बराबर उपस्थित रहती है।" किसी कवि के
सम्बन्ध में यह कथन कहाँ तक लागू है, यह कहना
आसान नहीं, परन्तु दिनकरजी के निबन्धों के सम्बन्ध
में तो निस्सङ्कोच इन पंक्तियों को दुहराया जा सकता
है कि उन्होंने जीवन भर में एक ही निबन्ध लिखा है;
अर्थात् उनके सारे निबन्धों के भीतर कोई एक ही
सूत्र व्याप्त तथा एक ही तरह की मनोदशा बराबर
उपस्थित है। यदि बात इतनी ही हो तो क्षम्य भी है;
परन्तु लेखों में भावों की आवृति के साथ-साथ वाक्यों
और पंक्तियों की भी आवृति है।

दिनकरजी के आलोच्य विषयों के सम्बन्ध में हमें
यह देख कर निराश ही होना पड़ता है कि उन्होंने
आधुनिक हिन्दी कविता की बहुमुखी धाराओं का
विवेचन बिलकुल ही नहीं किया है। इसमें दिनकरजी
के शब्दों में तो "केवल उन्हीं निबन्धों का संग्रह है
जो छायावाद की कुहेलिका से निकल कर प्रसन्न
आलोक के देश की ओर बढ़ने वाली हिन्दी कविता
को लक्ष्य करके लिखे गये हैं।" दूर जाने की आव-
श्यकता नहीं; उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त सिर्फ दो शब्दों
'छायावाद की कुहेलिका' और 'प्रसन्न आलोक के
देश' पर ध्यान दीजियेगा तो पता लग जायगा कि
दिनकरजी का मस्तिष्क प्रगतिवाद की ओर बिलकुल
झुका हुआ (Prejudiced) है। 'छायावाद
की कुहेलिका' के विपरीत 'प्रसन्न आलोक के देश' से
उनका स्पष्ट तात्पर्य प्रगतिवाद से है, इसमें किसी को
आपत्ति नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यह नहीं कहते कि दिनकरजी ने छायावाद अथवा प्रगतिवाद पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखकर कुछ पाप किया; वरन् हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि छायावाद के प्रति अनास्था दिखलाने के साथ-साथ बारबार उस वर्ग के कवियों और आलोचकों को दुतकारना, उनकी सबलताओं को जबरन् दुर्बलताएँ कह कर उनकी खिल्ली उड़ाना और उनकी रचनाओं को निरुद्देश्य, आदर्शहीन एवं अल्पायु कहकर निर्मम कला की हत्या करना, एक शिष्ट आलोचक को शोभा नहीं देता। जिस प्रगतिवाद की दुहाई देते हुए दिनकर उसके 'मंगलमय आदर्श' को मानवात्मा की एकता का द्योतक तथा मनुष्य की प्रीति का व्यञ्जक' मानते हैं, जिसे वे 'बाधाओं और विफलताओं को देख कर विरागी की तरह तपोवन की राह न लेकर संघर्ष में जूझने वाले कर्मशील गृहस्थ' की संज्ञा देते हैं, उसीके विपरीत प्रगतिवाद को दुर्गतिवाद* की संज्ञा से विभूषित करने वाले लेखकों की भी कमी नहीं है।

वास्तविक बात तो यह है कि साहित्य को किसी वाद-विशेष में बाँधने की कोशिश करना ही सबसे भयङ्कर भूल है, यद्यपि इसके साथ यह भी सत्य है कि beauty is no quality in things themselves, it exists merely in the mind which contemplates them.—(Hume), और ऐसी दशा में आलोचक का मस्तिष्क बेकार बैठा रह नहीं सकता।

'The analysis of a poem' शीर्षक एक लेख में I. A. Richards ने समालोचक की विशेषताओं की समीक्षा करते हुए, जिन तीन आवश्यक तत्वों का होना बतलाया है, उनके अनुसार दिनकर की आलोचनात्मक प्रतिभा पर विचार करने पर हमें फिर भी निराश होना पड़ता है। वे कला की समीक्षा करने तो बैठते हैं, परन्तु उससे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुस्थिति का वे 'गंभीर' और 'निष्पक्ष' अनुभव नहीं करते। प्रगतिवाद का पक्ष लेते हुए वे इस प्रकार भावावेश में बह जाते हैं, मालूम होता है कि किसी ने उनसे कह दिया 'आपका कान कौआ लिए भागा जा रहा है' और वे कान की ओर न देख कर कौआ का पीछा करने में तन्मय हो रहे हैं। अन्य सभी लेखों में प्रगतिवाद की व्याख्या और समर्थन करते हुए जब उनका मन नहीं भरा है, तब अन्त में पाठकों से समक्ष स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हुए कि प्रगतिवाद का मैं अन्ध विश्वासी भक्त हूँ, उन्होंने 'प्रगतिवाद' शीर्षक एक स्वतंत्र लेख भी लिख दिया है।

दूसरी कसौटी के अनुसार भी उनमें सहानुभूति के तुलनात्मक विवेचन का सर्वथा अभाव दीख पड़ता है। इसका प्रधान कारण यह है कि छायावाद अथवा प्रगतिवाद के स्वरूप को उन्होंने भलीभाँति ग्रहण ही नहीं किया है। वह अनुभव करते हैं कि छायावाद खुली वस्तु थी और 'यह अच्छा हुआ कि पुंसत्वहीन और अभिशप्त छायावाद नष्ट हो गयी' परन्तु दूसरे ही क्षण वह पश्चात्ताप करते हुए लिखते हैं कि 'किन्तु, अगर पं० इलाचन्द्र जोशी के द्वारा उद्घोषित समाचार (छायावाद की मृत्यु) सचमुच ही सत्य हो तो मैं इसे अपने साहित्य के लिए दुर्भाग्य समझूँगा।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें अपनी अनुभूतियों पर विश्वास नहीं।

और तब उनके तुलनात्मक विवेचन का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी दशा में उनसे 'शुद्ध न्याय' की आशा करना तो दुराशा-मात्र ही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि दिनकरजी की आलोचना को हम किस वर्ग में रक्खें। समालोचना की प्राचीन पद्धतियों के विपरीत, आधुनिक समालोचना के क्षेत्र में अभिव्यञ्जनावाद (expressionism) और प्रभाववाद (impressionism)

*देखिए इलाचन्द्र जोशी कृत 'साहित्य सर्जना' और गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'हिन्दी के आधुनिक कवि और उनका काव्य'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलवाला रहा है। दोनों के लक्षणों का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर हमें दिनकरजी के आलोचनात्मक निबन्धों को 'प्रभावाभिव्यञ्जक समीक्षा' के अन्तर्गत ही रखना पड़ता है। छायावाद और प्रगतिवाद के जिन सुन्दर और असुन्दर तत्वों का उन्होंने ग्रहण किया है, उसे बड़ी ही सुन्दरता और विशदता के साथ वर्णन किया है। परन्तु, अगर कहा जाय तो इस प्रकार की समीक्षा में लेखक को ज्ञात शब्दों की तड़क-भड़क, उनकी आकर्षक रचना, अपनी उक्ति के चमत्कार आदि में ही उलझा पाता है, जिनके बीच स्वच्छन्द विचारधाराओं के लिए जगह ही नहीं मिलती और यही बात दिनकरजी इस समीक्षात्मक पुस्तक के साथ चरितार्थ हुई है।

—प्रो० भुवनेश्वरप्रसाद वर्मा 'कमल' एम० ए०

दिनकर की राष्ट्रीयता

सदियों की पराधीनता ने भारतीय जीवन को जर्जर बना दिया है। स्वभावतः जागृत-जन को इस स्थिति से निराश होना पड़ता है पर मातृभूमि के मोहपाश में आबद्ध होने के कारण वह अपने देश को अन्य देशों की भाँति उन्नत देखने का अभिलाषी भी है। कुछ व्यक्ति पाश्चात्य प्रणालियों के अन्ध अनुसरण द्वारा ही अपने देश की उन्नति की बात सोचते हैं और कुछ स्वदेश की महान विभूतियों, कथाओं आदि से भी यथासम्भव उत्प्रेरित होना चाहते हैं।

दिनकर के काव्य को देखने से पता चलता है कि कवि पाश्चात्य देशों की प्रणालियों, सिद्धान्तों और महान गुणों को अपनाने के साथ-साथ अपने देश के महापुरुषों, महत्वपूर्ण घटनाओं और ऐतिहासिक तथ्यों से भी समुचित उद्बोधन प्राप्त करने में गौरव अनुभव करता है। उसे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि पाश्चात्य देशों के वीरों की प्रशंसा तो मुक्त कंठ से की जाती है पर अपने देश के महावीरों के नाम लेने में भी सङ्कोच होता है—

जहाँ मास्को के रणवीरों के गुण गाये जाते।
दिल्ली में रुधिराक्त वीर को देख लोग सकुचाते॥

इन्हीं पंक्तियों की व्याख्या स्वरूप कवि ने कहा है 'मास्को का हम आदर करते हैं किन्तु हमारे रक्त का एक-एक बिन्दु दिल्ली के लिये अर्पित करते हैं। पराधीन देश का मनुष्य सबसे पहले अपने देश को होता है। पर जो देश में महान विपत्ति के समय ऐश-आराम में मस्त हैं जो यह जानते हैं कि उस समय उनका कर्तव्य जनता के सुप्रभावों को जगाना है, राष्ट्र के अभिशाप को दूर करना है फिर भी अपनी शक्ति का अपव्यय अन्यत्र कर रहे हैं, उन देशवासियों की भर्त्सना करने में कवि नहीं चूकता—

पर हाथ गीत के खड्ग
धार उनकी भी आज नहीं चलती
जानती जहर का जो उतार
मुझमें वह शिखा नहीं जलती

भारत के शानदार अतीत की चर्चा पाश्चात्य, देशवासी नहीं करते हों ऐसी बात नहीं वे इतने सङ्कीर्ण नहीं, वे जानते हैं कि जिस समय भारत का उत्कर्ष चरम सीमा पर था, अन्य देशवासी अपेक्षाकृत बहुत पीछे थे, उस स्वर्णमय अतीत पर आँसू बहाकर कवि अपने देशवासियों को पुनः वैसी स्थिति को प्राप्त करने के लिये प्रस्तुत करता है। कवि का स्वप्न है कि—

प्रिय दर्शन इतिहास कंठ में।
आज ध्वनित हो काव्य बने॥
वर्तमान की चित्रपटी पर।
भूतकाल सम्भाव्य बने॥

भूतकाल के गौरव को सम्भाव्य बनाने के लिये जिसमें पुनः इस देश में दूध की नदियाँ बहें और लोग सुखी हों, कवि ने 'मिथिला' से कहलाया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं क्षीण प्रभा मैं हत आभा।
सम्प्रति भिखारिणी मतवाली॥
खंडहर में खोज रही अपने।
उजड़े सुहाग की हूँ लाली॥

किन्तु कवि जानता है कि केवल प्राचीन गौरव गान से ही समस्या का समाधान सम्भव नहीं। उसके लिये त्याग और बलिदान अपेक्षित है। भारत के युवकों का इसमें योग देना कर्त्तव्य है। यदि युवक सङ्गठित होकर आगे आवें तो सोने में सुगन्ध। पर पूर्ण सङ्गठन के अभाव से भी युवक चाहें तो बहुत कुछ कर सकते हैं। 'व्यक्ति' शीर्षक कविता में कवि ने कहा है।

तुम एक अनल कण हो केवल
अनुकूल हवा पाकर लेकिन
छप्पर तक जा सकते उड़कर
जीवन की ज्योति जगा सकते
अम्बर में आग लगा सकते
ज्वाला प्रचन्ड फैला सकती
है छोटी सी चिनगारी भी

वही विजय माल के अधिकारी हैं जो अपने प्राणों की बाजी लगाने को सदा उद्यत रहते हैं, जो अत्याचार के दमन के लिये पूरे तत्पर होकर आगे आते है—

धर कर चरण विजित शृङ्गों पर।
झण्डा वही उड़ाते हैं॥
अपनी ही उँगली पर जो।
खञ्जर की जंग छुड़ाते हैं॥

कवि भी मानव है। आशा निराशा के क्षण उसके अन्दर भी आते ही रहते हैं। जब वह निराश हो जाता है, शङ्कर को ताण्डव नृत्य करने का आह्वान करता है—

गिरे विभव का दर्प चूर्ण हो।
लगे आग इस आडम्बर में॥
वैभव के उन्माभिमान में।
अहंकार के उच्च शिखर में॥
नाचो हे, नाचो नटवर।

प्राश्चात्य देशों में जो महान क्रान्तियाँ हुई उन्होंने उन देशों को स्वतन्त्रता दिलायी। राष्ट्र को पराधीनता के पाश से मुक्त होने के लिये यदि क्रान्तियों की भी शरण लेनी पड़े तो कवि को आपत्ति नहीं। इसीलिये 'विपथगा' में कवि ने क्रान्तियों के कारण का भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है—

धन के विलास का बोझ दुखी,
दुर्बल दरिद्र जब ढोता है।
दुनिया को भूखों मार भूप,
जब सुखी महल में सोता है॥
सहती सब कुछ मन मार प्रजा,
कसमस करता मेरा यौवन।
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन

राष्ट्रीयता का पुजारी कवि यह नहीं चाहता कि देश में साम्प्रदायिकता के नाम पर खून-खराबी हो, भाई-भाई का गला काटे और इस भाँति भारत के भाल पर कलंक का टीका लग जाय। देश की नाजुक हालत देखकर कवि कहता है—

खून बहाया जा रहा इन्सान का।
सींग वाले जानवर के प्यार में॥
कौम की तकदीर फोड़ी जा रही।
मस्जिदों की ईंट की दीवार में॥

नोआखाली और बिहार के प्रसिद्ध दंगों के बाद ने जो कविता लिखी उससे प्रकट होता है कि कवि राष्ट्रीयता के ह्रास से कितना विह्वल है—

जलते हैं हिन्दू मुसलमान
भारत की आँखें जलती हैं।
आने वाली आजादी की
लो दोनों आँखें जलती हैं॥

पराधीनता का सबसे बड़ा अभिशाप आर्थिक विषमता है। इस आर्थिक विषमता को दूर करना स्वतन्त्रता का प्रधान उद्देश्य है। कहीं विजली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झंझावात बत्तियों से आलोक विकीर्ण हो रहा है कहीं
दीपक का मलिन प्रकाश भी नहीं मिलता—

बिजली की इस चकाचौंध में।
देख दीप की लौ रोती है॥
अरे हृदय को थाम, महल के लिये,
झोंपड़ी बलि होती है॥

कहना नहीं होगा कि जमींदारों के अत्याचार से किसान मजदूर कितने दुखी हुए हैं। एड़ी चोटी का पसीना एक कर भी किसान मजदूर भर पेट भोजन नहीं कर पाते—

देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे,
हृदय शोणित की धारें।
आर उठी जाती उन पर ही,
वैभव की ऊँची दीवारें॥

भारत कृषि प्रधान देश है, जीविका का मुख्य साधन यहाँ कृषि है। अधिकांश संख्या वैसे लोगों की है जिनके पास बहुत थोड़े खेत हैं। उन्हें या तो मजदूरी करनी पड़ती है या बटाई में मालिकों के खेत जोत कर अपनी जीविका चलाने को बाध्य होना पड़ता है। खेतों में अन्न के लहलहाते बालों को देखकर उनकी छाती फूल उठती है किन्तु खलिहानों में सारी प्रसन्नता हिरण हो जाती है, जब मालिक के गुमाश्ते उस अन्न को ले जाते हैं। कृषक के मुँह से कवि ने इस तथ्य को कितने मार्मिक ढङ्ग से कहलाया है—

रोऊँगी खलिहानों में
खेतों में तो हषाने दो

कृषक-मजदूरों को महाजनों के भी अत्याचार कम नहीं सहने पड़ते हैं। इतने अधिक सूद पर ये रुपये लगाते हैं कि रुपया लेने वाला परेशान रहता है। रक्त ही रात-दिन जान को जान नहीं समझ कर चुकाने वाले ये बेचारे उनके चंगुल से सुगमतया छुटकारा नहीं पा सकते। कवि ने ऋण लेने वाले के मुँह से कहलाया—

ऋण शोधन के लिये दूध घी,
बेच बेच धन जोड़ेंगे।
बूँद बूँद बेचेंगे अपने
लिये नहीं कुछ छोड़ेंगे॥

कवि देश काल के साथ है। देश के प्रत्येक स्पन्दन को काव्य का स्वरूप कवि ने दिया है। देश में कितने शान्तिपूर्ण आन्दोलन हुये पर स्वतन्त्रता नहीं मिली, इधर युद्ध की अग्नि भी धाँय-धाँय कर रही थी। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक था कि देश काल के साथ रहने वाले कवि उधर आकृष्ट हों। 'कुरुक्षेत्र' नामक प्रबन्ध काव्य में कवि ने इन्हीं बातों पर विचार किया है। अहिंसा की असफलता देख कवि हिंसा पर भी उतर आने में हानि नहीं समझता। क्योंकि—

हिंसा का आघात तपस्या ने
कब कहाँ सहा है।
देवों का दल सदा दानवों
से हारता रहा है॥

रोटी के लिये जो लड़ाइयाँ होती है उनमें यदि असंख्य धन जन का नाश हो तो इसका सारा दायित्व इसी पर है जो अप्रत्यक्ष रूप से इस युद्ध को आमन्त्रण देकर बुलाता है—

युद्ध को बुलाता है अनीति
ध्वजा धारी या कि॥
वह जो अनीति भाल पै
दे पाँव चलता॥
वह जो बना के शान्ति
व्यूह सुख लूटता या॥
वह जो अशान्त हो
क्षुधानल से जलता॥

इस भाँति कवि ने अपनी रचनाओं द्वारा देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों में भावात्मक स्फूर्ति लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इनकी कविताओं ने श्रान्त एवं थके हुये लोगों से नव जीवन लाकर उन्हें पुनः कर्तव्य पथ पर आने की प्रेरणा दी है। हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों में 'दिनकर' का अपना खास महत्व है जिसके अभाव से हिन्दी के राष्ट्रीय साहित्य का नभ प्रभाहीन रहता, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं।

—शिवप्रसाद लोहानी, साहित्य-रत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

हिन्दी कविता का अध्ययन—लेखक—प्रो० शिवनन्दनप्रसाद, एम० ए०, साहित्य-रत्न। प्रकाशक—रामसहायलाल बुकसेलर, गया। पृष्ठ संख्या १६६, मूल्य १॥।)

इस पुस्तक में आरम्भ के अध्याय में कविता के तत्वों का संक्षिप्त विवेचन है, दूसरे अध्याय में हिन्दी कविता का इतिहास भाषा की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान युग तक का दिया गया है। फिर एक-एक कवि को लेकर उनकी आलोचनाएँ दी गयी हैं। जो कवि लिये गये हैं वे हैं—विद्यापति, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, घनानन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, बच्चन, कवि द्विज तथा दिनकर। ये आलोचनाएँ तीन-तीन चार-चार पृष्ठों में की गयी हैं। बहुत लघु और अपूर्ण हैं। जैसा 'परिचय' में बताया गया है प्रस्तुत पुस्तक की रचना इस दृष्टि से हुई है कि इससे आई० ए० और बी० ए० के विद्यार्थी भरपूर लाभ उठा सकें। यद्यपि लेखक ने अपने विस्तृत अध्ययन को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में रखने का प्रयास किया है, पर यह उद्योग इतना संक्षिप्त हो गया है कि सम्भवतः इन विद्यार्थियों को भरपूर लाभ नहीं मिल सकता।

—सत्येन्द्र

गद्य-काव्य

श्रद्धा-कण—लेखक—श्री वियोगीहरि, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य १)

वियोगीजी ने अपने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश गद्य-काव्य लिखकर ही किया था। शायद इसी गद्य-काव्य लिखने की साधना स्वरूप वे गद्य काव्यों का सृजन करते रहे। इन छोटे-छोटे गद्य गीतों में गाँधीजी का स्तवन ही नहीं वरन् उनके सिद्धान्तों पर एक कलामय रूप से प्रकाश भी डाला गया है।

गान्धीजी स्वयं दिव्य थे, वियोगीजी की कला के धूमिल प्रकाश में उस भव्य मूर्ति से एक रहस्यमयी आभा प्रस्फुटित होने लगी है किन्तु कलाकार इस रहस्यमय वातवरण में इस पृथ्वी के कर्दम को नहीं भूल सका है और उसने यत्र-तत्र गान्धीजी के अनुयायियों के मलिन हाथों और अन्ध श्रद्धा की ओर भी संकेत कर दिया है, देखिए—

उसकी जीवन-पुस्तक उनके सामने सदा खुली पड़ी है—उसे वे रोज देख लिया करें। पर डर है कि पुस्तक के स्वच्छ पन्नों को कहीं वे अपनी अन्धी भावना का रंग उँडेल कर बिगाड़ न दें।

शासन द्वारा प्रबन्धित गान्धीजी की शव यात्रा के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी-भारी शस्त्रास्त्र-सज्जित रथ,
और आतङ्क कारी सैनिक अभियान।
अहिंसा के प्रति भी शासन के हाथों से
ऐसी ही श्रद्धाञ्जलि दी जा सकती थी।

भय है कि राजशासन द्वारा लिये गये श्रद्धा दान पर मोहित प्रजा कहीं अपनी निज की निष्ठा न खो बैठे और कहीं निष्क्रय न हो जाय। वियोगीजी की यह आशङ्का सत्य से प्रमाणित होते दिखाई देती है।

गांधीजी आर्य शील के अनुयायी थे उसी को वे प्रकाश में लाये, राजनीति को धर्म की चेरी बतलाया और अपनी पूजा की अपेक्षा जीवमात्र की पूजा पर बल दिया—देखिए

'आर्यशील को आचरित करो, यही मेरी अर्थी होगी, जीवमात्र की पूजा करो यही, मेरे प्रति तुम्हारी श्रद्धाञ्जलि होगी। छोटे-छोटे प्रसङ्ग देकर ऐसे ही गांधीजी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

—गुलाबराय

कविता

हिम तरङ्गिनी—लेखक—श्री माखनलाल चतुर्वेदी। प्रकाशक—भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग। मूल्य ४॥)

कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी का यह दूसरा कविता-संग्रह है। इससे पहले कविता-संग्रह का नाम 'हिम किरीटिनी' था। 'हिम किरीटिनी' की कविताओं से 'हिम तरंगिनी' की कविताओं में एक अन्तर है और वह यह कि ये कविताएँ आत्मगत अधिक हैं, जबकि उन कविताओं में राष्ट्र की तरुणाई को पुकार ही विशेष रूप से व्यक्त हुई थी। इसमें सन् १९१० से लेकर आज तक की वे सब कविताएँ हैं, जिनमें कवि का अपना ही व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त हुआ है।

चतुर्वेदीजी की कविता की अपनी एक विशेषता है भाषा के निरालेपन की। 'लूझ', 'सूली' 'घनश्याम' 'मुरली', 'धड़कन' आदि शब्दों के साथ तद्भव शब्दों और उर्दू के शब्दों का प्रयोग करके वे एक विचित्र आकर्षण पैदा कर देते है, जो हिन्दी के और किसी कवि में नहीं मिलता। इसके साथ ही भावों का गाम्भीर्य भी रहता है, जो उनकी अत्यधिक भावुकता का परिचायक है। उनकी कविता को पढ़कर मन ही मन आनन्द का जितना अधिक अनुभव पाठक कर सकता है उतना अन्य किसी कवि की कविता पढ़कर नहीं होता। भाव और भाषा के विचित्र समन्वय से वे अद्भुत चित्र खड़े कर देते हैं। एक कविता में वे कहते हैं—

एक आँख में सावन छाया
दूजी में भादों भर आया
घड़ी झड़ी थी, झड़ी घड़ी थी
गरजन, बरसन, पंकिल, मेह जल
छुपा 'सुवर्ण खटोला'
रो रो खोया चाँद हाय री
यह किसका मन डोला।

कहीं-कहीं उर्दू की गजलों में वे अपनी बात को बड़े अच्छे ढङ्ग से कहते हैं और इसे देखकर लगता है कि आज के गजल लिखने वाले हिन्दी कवियों में भी वे ही अग्रदूत या प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। सन् १९१० की उनकी एक कविता है, जिसमें उन्होंने अपनी बात गजल में ही कही है—

गुनों की पहुँच के परे के कुओं में
मैं डूबा हुआ हूँ जुड़ी बाजुओं में
जरा तैरता हूँ, तो डूबों हुओं में
अरे डूबने दो मुझे आँसुओं में।

'हिम तरङ्गिनी' से 'हिम किरीटिनी' के विद्रोही कवि के कोमल हृदय की झलक मिलती है। साथ ही कवि के काव्य का विकास-क्रम की दृष्टि से अध्ययन करने में भी सुविधा मिलती है। अतः प्रत्येक हिन्दी पाठक को 'हिम तरङ्गिनी' की कविताओं का रसास्वादन करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन रश्मि—लेखक—डा० देवराज। प्रकाशक—वाणी-मन्दिर प्रेस, छपरा। मूल्य ३)

'जीवन-रश्मि' की कविताएँ स्वयं लेखक ने चार खण्डों में विभाजित की हैं। प्रथम खण्ड का नाम है 'रूप-रश्मि' जिसमें २७ कविताएँ हैं; द्वितीय खण्ड का नाम है 'आशीर्वाद' जिसमें १० कविताएँ हैं; तृतीय खण्ड का नाम है 'युग गीत' जिसमें २२ कविताएँ हैं। चतुर्थ खण्ड का नाम है 'आत्म-निवेदन' जिसमें २३ कविताएँ हैं।

'रूपरश्मि' शीर्षक खण्ड की कविताएँ प्रकृति-चित्रण से सम्बन्ध रखती हैं और वे जिन-जिन विषयों पर लिखी गई हैं, उनके पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती हैं। कवि की तीव्र निरीक्षण शक्ति और सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति ने इन कविताओं को कहीं असम्भव, असम्बद्ध तथा असंयत कल्पनाओं से बोझिल नहीं होने दिया है। यह इन कविताओं की बड़ी भारी विशेषता है। 'हरियाली', 'पुरवाई', 'पाइन फारेस्ट', 'खेल रही हैं चिड़ियाँ नाटक', 'वियोगिनी' आदि कविताएँ इस दृष्टि से प्रथम श्रेणी की हैं।

'आशीर्वाद' शीर्षक खण्ड की कविताएँ शिशु के विविध रूपों से सम्बन्ध रखती हैं। हिन्दी में पहली बार एक स्थान पर एक ही कवि की शैशव सम्बन्धी इतनी कविताएँ देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। पन्तजी के बाद उतनी ही जिज्ञासा और कौतूहल से पूर्ण दृष्टि से युक्त शिशु-सम्बन्धी कविताएँ खड़ी बोली में देवराजजी ने ही लिखी हैं। इन कविताओं से कवि का शैशव के प्रति तीव्र अनुराग प्रकट होता है। 'जानती हो माँ कहाँ से यह सुघर शिशु आया', 'नन्हा फूल', 'मेरे शिशु, मेरे सुत शोभन' आदि कविताएँ बेजोड़ हैं।

'युगगीत' शीर्षक तृतीय खण्ड में कवि ने अपने युग की वाणी दी है। इस खण्ड की कविताओं में कवि ने मानव का यशगीत गाने के साथ-साथ वर्तमान संघर्ष पर भी दृष्टिपात किया है। इस खण्ड में 'मानव' तथा 'नारी ओ नारी' कविताएँ जहाँ नर-नारी के जीवन के तत्वों पर प्रकाश डालती हैं, वहाँ 'ओ विद्यमान, ओ वायुयान' तथा 'मत उन्हें युद्ध में भेजो' कविताएँ वैज्ञानिक आविष्कारों के दुरुपयोग तथा युद्धों के विरोध को व्यक्त करती हैं। प्रथम खण्ड की भाँति इस खण्ड की कविताएँ भी प्रौढ़ हैं।

'आत्म-निवेदन' शीर्षक खण्ड की कविताएँ आरम्भिक काल की हैं और उनका साधारण होना स्वाभाविक है। फिर भी कवि ने उन्हें अपने विकास-क्रम के लिए रखना आवश्यक समझा है।

इन कविताओं के सम्बन्ध में सबसे बड़ी बात यह कही जा सकती है कि कविताओं का भावपक्ष और कलापक्ष दोनों सशक्त हैं और कहीं भी अनुभूति अभिव्यक्ति की असमर्थता से अस्पष्टता के कुहरे में धूमिल नहीं होने पाई है। इस कवि की कविताओं का हिन्दी में अवश्य आदर होगा।

तारों के गीत—लेखक—श्री महेन्द्र भटनागर। प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा। पृष्ठ ५०, मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के तारों पर लिखे इक्कीस गीत सङ्कलित हैं। कवि ने इन गीतों के सम्बन्ध में लिखा है—'सघन अन्धकार में घिरी निशा में घण्टों झिलमिलाते तारों का अवलोकन करने से उदित भिन्न-भिन्न भावों और विचारों को मैंने इन गीतों में व्यक्त किया है। इन गीतों के प्रतिपाद्य के लिए इससे अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता। कहीं कवि तारों से जलने का संकेत पाते हैं तो कहीं नश्वरता का; कहीं उन्हें घोर तिमिर का सहचर बताता है तो कहीं हिम बरसाने वाला; कहीं टूटते तारे के सम्बन्ध कुछ कहता है तो कहीं उनके बादलों में छिपने पर अपनी भावना को व्यक्त करता है। सारांश यह कि उसके ये गीत अनेक मौलिक उद्भावनाओं से पूर्ण हैं और हिन्दी में एक ही कवि द्वारा, एक ही विषय पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक ही पुस्तक में सङ्कलित होने से इनका विशेष मूल्य है। आशा है काव्य-रसिक इन कविताओं से आनन्दित होंगे।

राष्ट्र-वाणी—लेखक व प्रकाशक—श्री कपिलदेव त्रिपाठी 'जटिल'। मूल्य १।)

इस कविता-संग्रह में भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् भी कवि की कविताओं का सङ्कलन है। लगभग एक दर्जन हिन्दी के धुरन्धरों ने सम्मतियाँ देकर कवि का उत्साह बढ़ाया और उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की है। सुभाष, जवाहर, जयप्रकाश, महर्षि मालवीय, गांधी राष्ट्रकवि गुप्त ही नहीं बाबा राघवदास तक पर कविताएँ हैं। कविताएँ साधारण हैं परन्तु कवि की प्रतिभा का विकास सम्भव है क्योंकि उसमें देश और समाज के उत्थान के लिए लिखने की लगन है और मानवता के उद्धार के लिए उत्साह की भी कमी नहीं है। जो कवि सरस्वती से ऐसी याचना करता हो—

माँगता तुम से अगर कविता
न जिसमें वेदना हो
किन्तु शोषित मानवों की
मधुर जिसमें व्यञ्जना हो।

उसे अवश्य आगे बढ़ना चाहिए। —कमलेश

उपन्यास

जिमीदार—लेखक—श्री इन्दु विद्यावाचस्पति। प्रकाशक—श्री विजय पुस्तक भण्डार, दिल्ली। पृष्ठ १५१ मूल्य २)

यद्यपि जिमीदारी संस्था विगत युग की वस्तु होने जाती है तथापि अभी वह अपनी लोक-रुचि का विषय बनी हुई है। अब भी जिमीदारों की मनोवृत्तियाँ पूरी तौर से बदली नहीं हैं। रस्सी जल गई है पर तब भी ऐंठ बाकी है। इसलिए जिमीदार लोग आज भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन के विषय हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में पं० रूपचन्द जिमीदार, उनके दरबारी लोगों एवं उनकी प्रतिद्वन्द्विनी रानी दयावती की मनोवृत्ति का अच्छा अध्ययन उपस्थित किया गया है। जिमीदारी अत्याचार और हृदयहीनता का बड़ा हृदय द्रावक वर्णन है। धार्मिक आडम्बर के पीछे कपटाचार करने वाले भगत रामसिंह जैसे बगुला भगतों की आज भी संसार में कमी नहीं। ऐसे ही लोग धर्म को बदनाम करते हैं। गरीब तुलसी किसान की भूक, कष्ट सहिष्णुता और पीछे से प्रबल बदले की भावना जिसने रूपचन्द का अन्त कर दिया, हमारे ग्रामीणों के चरित्र की परिचायक है। ग्रामीण चाहे दब जाय, किन्तु दाव पड़ने पर वह चूकता भी नहीं। जहाँ न्याय नहीं होता वहाँ ग्रामीण लोग न्याय अपने हाथ में लिए बिना नहीं रहते।

लेखक की सहानुभूति रानी दयावती के पक्ष से कुछ अधिक है क्योंकि उसका न्याय का पक्ष था किन्तु इस संसार में न्याय की इतनी विजय होती नहीं है जितनी दिखाई गई है। यद्यपि जब किसी व्यक्ति का प्रबल आतङ्क जब दूसरे को आविभूत कर लेता है, तब वह निष्क्रय हो जाता है फिर रानी दयावती का रूप चन्द के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित नौकरों के सामने, उसको तड़ातड़ कोड़ों की मार लगा सकना कुछ असम्भव सा जान पड़ता है। प्रेमचन्दजी ग्रामीण चित्रों के अङ्कन में सिद्ध हस्त थे। उनकी ही भाषा और शैली का इसमें सफल अनुकरण है।

विराट—मूल लेखक—स्टीफन ज्विग, अनुवादक यशपाल जैन। प्रकाशक—नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर। पृष्ठ ९६, मूल्य १)

प्रसिद्ध योरुपीय लेखक श्री ज्विग स्टीफन ने भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित उक्त उपन्यास को जन्म दिया है। उसका अनुवाद श्री यशपाल जैन तथा अनुवाद की भूमिका और ज्विग—परिचय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है।

इस उपन्यास में लेखक ने मानव-जीवन के वास्तविक लक्ष्य की गहरी खोज की है वह जीवन की पाँच दशाओं को चित्रित कर उनमें जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सत्य को टटोलता है और अन्त में निष्काम सेवा मात्र में उसे उसके दर्शन होते हैं। ·····सत्यनिष्ठ विराट पहिले स्वदेश की रक्षार्थ शस्त्र धारण कर पशु-प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता है फिर मानवता की पहली सीढ़ी 'मस्तिष्क-विकास' उसे आकर्षित कर उसे न्यायधीश बनाती है। परन्तु उसे वहाँ अपनी सत्य की साधना में सहृदयता की कमी खटकती है अतः वह स्वेच्छा से कारावास में रह कर अनुभव करता है कि "कोई भी किसी के बारे में निर्णय देने का अधिकारी नहीं है—फैसला देने की अपेक्षा बीच बचाव करा देना कहीं अच्छा है, जो अबोध है उसी को पूर्ण शान्ति है।" घरबार का स्वामित्व भी उसकी साधना में अड़चन डालता है। वह घर-बार छोड़ कर एकान्तवासी सन्यासी बन जाता है। परन्तु उसे फिर ज्ञान होता है कि—"वह अब तक एक चक्र में भटक रहा था। जो निष्क्रिय है वह पाप से नहीं बच पाता। कार्य में जुटे रहना मानव धर्म है; कार्य का आदि, अन्त, कार्य और कारण परमात्मा जाने। पूर्णतया सेवा करना ही बुद्धिमानी है। परमात्मा की दृष्टि में सब सेवायें समान हैं।" अतः वह सेवा, कुत्तों की भी, गौरव की वस्तु समझता है :—

'विराट' में गीता का दृष्टिकोण स्पष्ट किया गया है कि पाप-मुक्त होने के लिये मनुष्य फल से अनासक्त हो केवल काम करे। उपन्यास में लेखक के जीवन की सच्ची अनुभूति है। इसमें भारतीय वातावरण उत्पन्न करने में वह कहीं-कहीं चूक गया है, जैसे विराट का कृतज्ञता प्रकाशन के रूप में सिंहासन चुम्बन दिखाना (यह प्रथा अधिकतर यूरुप में ही प्रचिलित है) आदि।

अन्तिम आधी पुस्तक में अच्छा अनुवाद हुआ है। उक्त पुस्तक का अनुवाद हिन्दी-साहित्य में एक अच्छी देन है, यद्यपि उसमें मूल लेखक की शैली की झलक कम दीख पड़ती है। पुस्तक का गेट-अप सुन्दर है।

—शशिभूषण सिंहल

जीवन-साहित्य

राष्ट्र-पिता—लेखक—पंडित जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ १६५। मूल्य अजिल्द २॥), सजिल्द ३॥)।

पं० जवाहरलाल नेहरू की लेखनी के जादू को सभी जानते हैं। वे प्राणहीन में प्राण फूँक सकते हैं। किन्तु 'बापू' के विषय में तो उनसे अधिक कौन लिख सकता है। क्योंकि नेहरूजी के ही शब्दों में गान्धीजी हिन्दुस्तान के और उनके जुज हो गये थे—उनमें समा गये थे। पर यह पुस्तक उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी पर नियमित रूप से बैठकर सङ्कल्प के साथ नहीं लिखी, किन्तु जैसा प्रकाशक ने बताया है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू की सम्मति से उनके उन लेखों और भाषणों को प्रकाशित किया गया है जिनमें उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के प्रति केवल श्रद्धाञ्जलि ही अर्पित नहीं की है, अपितु उनके व्यक्तित्व और उनकी विविध प्रवृत्तियों पर अपनी भावनाएँ एवं मानसिक प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त की हैं। तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक में एक कर्णधार द्वारा दूसरे उससे भी महान् कर्णधार की एक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। पुस्तक संग्रह होते हुए भी इतिहास-क्रम से परिश्रम पूर्वक एक सुसम्बद्ध जीवनी बनादी गयी है। इसमें महात्मा गान्धीजी के जीवन-वृत्त का वह रूप भली प्रकार उभर कर आता है जो उनके राजनैतिक और सामाजिक नेतृत्व, रचनात्मक कार्य और मानवीय देन से सम्बन्धित है। अतः भारत का राजनैतिक इतिहास और स्वतन्त्रता के संघर्ष का वृत्त भी स्पष्ट हो जाता है। यह पुस्तक प्रत्येक भारतीय द्वारा अवश्य ही पठन और मनन करने योग्य है। इसमें देश और विश्व की कितनी महत्वपूर्ण समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है। राजनीति की उलझनों की स्पष्टता होती है। सामाजिक विकारों को सुधारों का बल और ज्ञान मिलता है। मानवता का रूप निखरता है और उसकी प्रतिष्ठा की आवश्यकता प्रतीत होती है। ऐसी पुस्तकें भावी राष्ट्रनिर्माताओं को प्रेरणा का काम देती हैं।—सत्येन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति

गान्धी चित्रावली—सम्पादक तथा प्रकाशक—जीतमल लूणिया। संचालक—हिन्द साहित्य मन्दिर, पृष्ठ १४४, मूल्य १)

बालकों और कुपढ़ों को ही नहीं वरन् सुपढ़ों के लिए लिखित शाब्दिक वर्णन की अपेक्षा चित्रमय वर्णन अधिक सुबोध और हृदयङ्गम करने योग्य होता है। इस पुस्तक में पूज्य बापू की जीवन यात्रा की प्रमुख घटनाएँ एक क्रमबद्ध रूप में सामने आ जाती हैं। और आगे चलकर उनका संक्षिप्त विवर्ण्न भी मिल जाता है। पुस्तक में केवल घटनाओं का ही वर्णन नहीं है वरन् गान्धीजी के सिद्धान्तों का भी स्पष्टीकरण है। अन्त में गान्धीजी की दिव्य वाणी शीर्षक में गान्धीजी के ही लेखों से छोटे-छोटे उद्धरण देकर उनके मूल सिद्धान्तों का दिग्दर्शन करा दिया गया है, इतने थोड़े मूल्य में इतने सुन्दर चित्र और इतनी उपयोगी सामग्री देने के लिए सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं।

—गुलाबराय

यात्रा

घुमक्कड़ शास्त्र—लेखक—श्री राहुल सांकृत्यायन प्रकाशक—राजकमल-प्रकाशन पृष्ठ १६० मूल्य ३।)

आजकल के घुमक्कड़ों में राहुलजी घुमक्कड़ राज कहे जा सकते हैं और उनको घुमक्कड़ी पर हम सब को गर्व है। उनकी लेखनी से घुमक्कड़ धर्म का विवेचन सर्वथा युक्ति-युक्त ही है क्योंकि वे इस धर्म के कल द्रष्टा ऋषि है। ऋषियों की प्रणाली में ही इस पुस्तक का श्रीगणेश अथातो धर्म जिज्ञासा की अनुकूलता अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा से हुआ है। शायद घुमक्कड़ी जिज्ञासा या घुमक्कड़ धर्म जिज्ञासा अधिक उपयुक्त होता। मेरे लिए व्याकरण की बात कहना अनधिकार चेष्टा होगी। घुमक्कड़ धर्म नाम से जैसी हल्की पुस्तक लगती है वैसी नहीं है। घुमक्कड़ी एक कला है उसके लिए विशेष उपकरण चाहिए। उन भौतिक और मानसिक उपकरणों का इस पुस्तक में भली प्रकार विवेचन किया गया है। साथ ही देश ज्ञान, भूविज्ञान के तत्व जो इस धर्म को चरितार्थ करने के लिए आवश्यक है उनका भी यथा स्थान उल्लेख हुआ है। पिछड़ी हुई जातियों में काम करने वालों के लिए जो मनोवैज्ञानिक उपदेश दिये गये हैं वे प्रत्येक साहसी घुमक्कड़ के लिए स्मृतियों के बिधि-निषेध का सा काम देंगी।

अपने देश के घुमक्कड़ सिरकीवालों का यूरोप के जिप्सियों से सम्बन्ध जो भाषा शास्त्र के आधार पर स्थापित किया गया है वह विशेष रुचिकर है।

राहुलजी ने जो घुमक्कड़-शास्त्र का धर्म से सम्बन्ध स्थापित किया है उसमें एक पक्ष समर्थक की सी युक्तियाँ जो पूर्ण तर्क की कोटि तक नहीं पहुँचती हैं। बौद्ध और ईसाई धर्म में घुमक्कड़ी रही है और सनातन धर्म भी उसका अभाव रहा है। आधुनिक होने के कारण राहुलजी ने नारदजी का जहाँ तक मुझे स्मरण है, उदाहरण नहीं दिया वे तो घुमक्कड़ सम्राट क्या चक्रवर्ती थे। किन्तु इस सर्वश्रेष्ठ सनातन धर्म का गार्हस्थ धर्म से समन्वय नहीं किया जाय। यदि सभी घुमक्कड़ हो जाँय तो आधुनिक मशीन सभ्यता का जिसके राहुलजी शायद साम्यवादी होने के नाते पक्षपाती होंगे दिवाला हो निकल जाय और सिरकीवालों के लिए बन में सिरकियाँ भी न मिलें। सामाजिक और विशेषकर वैवाहिक बन्धनों में जो घुमक्कड़ धर्म में प्रत्यूह है शिथिलता लाने के भी राहुलजी पक्षपाती हैं। हमारे लिए तो घुमक्कड़ धर्म के लिए संन्यास-आश्रम सुरक्षित कर दिया गया था।

यद्यपि राहुलजी ने घुमक्कड़ शास्त्र लिखा है लेकिन इसकी शैली शास्त्र की सी दुरूह और दाँत तोड़ नहीं। इसमें एक विशेष प्रसाद हैं जो स्थान-स्थान पर साहित्यिक व्यङ्ग द्वारा खिल उठा है। उदाहरण स्वरूप गोस्वामीजी की चौपाई की एक पैरोडी उपस्थित की जाती है। 'पुत्रवती युवती जग सोई, जासु पुत्र घुमक्कड़ होई।' जो विद्यार्थी घुमक्कड़ता से बचता है उसकी शिक्षा को धिक् तांम तंच भर्तृहरि के शब्दों में इमांच मांच नहीं कहा।

—गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

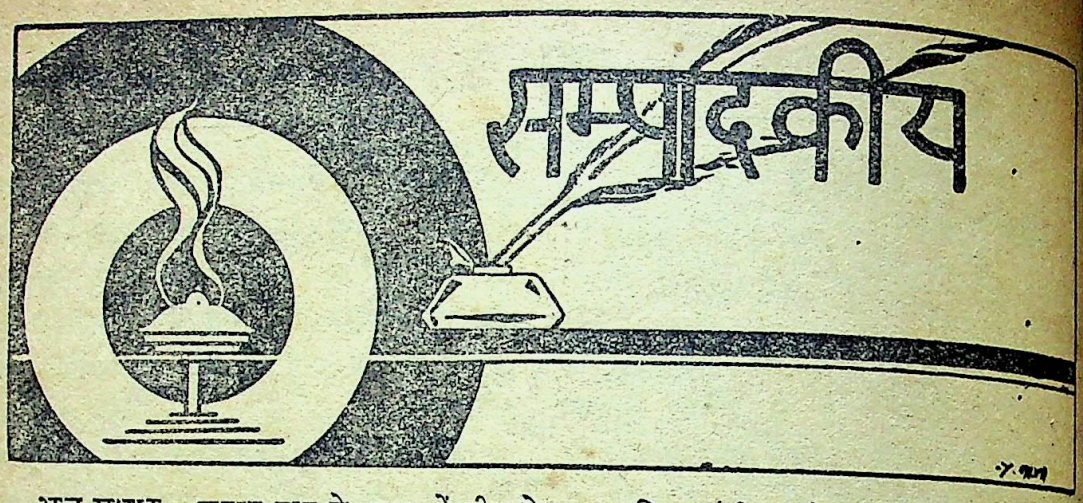

भूल-सुधार—अगस्त मास के अङ्क में मीरा के संदिग्ध सम्बन्धी नाम का लेख छपा है। लेखक का नाम भूल से श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी छप गया है। इस लेख की लेखिका हैं श्रीमती 'शमा'। श्री नर्मदेश्वरजी लेख के प्रेषक हैं।

हिन्दी की स्वीकृति पर बधाई—बहुत वाद-विवाद के पश्चात् हिन्दी और नागरी लिपि के सम्बन्ध में आयङ्गर-मुन्शी सूत्र स्वीकार कर लिया गया। यद्यपि इसको हम आगामी तिथि की चैक (Post dated cheque) ही कहेंगे तथापि इसके कारण हिन्दी के उन्नति क्रम में अवश्य कुछ गति आ जायगी और प्रान्तीय सरकार अपनी-अपनी सुविधा और आवश्यकताओं के अनुसार राजकीय कार्यों में इसके व्यवहार को अग्रसर कर सकता है। अङ्कों की बात खटकने वाली अवश्य है किन्तु देश के मतैक्य के लिए थोड़ी सिद्धान्त की हानि सही जा सकती है। विपक्षियों को यह ध्यान देना चाहिए था कि जहाँ देवनागरी के बावन अक्षर स्वीकार कर लिये गये, वहाँ ६ अङ्क भी स्वीकृत कर लेना चाहिए क्योंकि श्रद्धेय टंडनजी के शब्दों में वे हिन्दी लिपि के अङ्ग हैं। हाथी बिकजाने पर अंकुश पर विवाद न करना चाहिए था। 'विक्रीते करिणि किं मांकुशे विवादः'। खैर हम लोगों को हिन्दी को ऐसा सम्पन्न बनाना चाहिए कि पाँच वर्ष के भीतर ही वह अपनी न्यूनताओं को पूर्ण कर ले और यह चैक—पन्द्रह वर्ष से पूर्व ही भुनाई जा सके। हम विधान-परिषद् को उसके निर्णय पर हृदय से बधाई देते हैं।

लेखकों से निवेदन—लेखक गण हमारे ऊपर सदा से कृपा करते रहे हैं। लेखों के चुनाव में यद्यपि लेखकों की रुचि सर्वोपरि है क्योंकि लेखक-गण जिस विषय में रुचि रखते हैं उसी पर भली प्रकार लिख सकते हैं फिर भी हम अपनी आवश्यकताओं को बतला देना चाहते हैं। हमारे पास गद्य लेखकों के सम्बन्ध में सामग्री करीब-करीब नहीं के बराबर आ रही है। आलोचना की नई-नई शैलियों पर कुछ नहीं लिखा जा रहा है और न गद्य लेखकों की शैली के सौष्ठव के सम्बन्ध में ही लिखा गया है। उपन्यासकारों और कहानीकारों की शैली और विधान के सम्बन्ध में भी हमारे कृपालु लेखक मौन हो रहे हैं। गीत काव्य के उपकरणों के सम्बन्ध में बहुत कम सामग्री आ रही है। हमारे विद्यार्थी प्राचीन और आजकल के गीति-काव्य में अन्तर जानना चाहते हैं। प्राचीन लेखकों में कबीर, सेनापति, घनानन्द, देव, मतिराम, हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में बहुत कम लेख आये हैं। सैद्धान्तिक लेखों में औचित्य-सिद्धान्त, वक्रोक्ति के रूप, अभिव्यञ्जनावाद, साहित्य के भौतक और आध्यात्मिक मूल्य, आलोचना के नये मान, काव्य के नये प्रयोग आदि विषयों पर भी हमको लेख चाहिए। हम साहित्य-सन्देश को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाना चाहते हैं, आशा है हमारे कृपालु लेखक हमारे इस उद्योग में सहयोग देंगे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ अच्छी हिन्दी का नमूना ❀

❀ पं० किशोरीदास वाजपेयी की यह नयी पुस्तक अपने विषय में जोड़ नहीं रखती है।

❀ जो लोग चुस्त और टकसाली हिन्दी लिखने की कामना रखते हैं उन्हें यह पुस्तक तुरन्त मँगाकर पढ़नी चाहिए।

❀ हिन्दी लेखकों के लिए बहुत जरूरी चीज है।

❀ छात्रों के साहित्यक जीवन का सुदृढ़ आधार है।

मूल्य २॥)

वाजपेयीजी की ये पुस्तकें भी प्राप्य हैं—

१—ब्रजभाषा का व्याकरण—मूल्य ३)

२—कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास—(डा० पट्टाभि द्वारा प्रकाशित) मूल्य १)

३—मानव धर्म मीमांसा—(धर्म-विवेचना पर एक क्रान्तिकारी रचना) मूल्य ३॥)

४—ब्राह्मण सावधान—(सामाजिक निबन्ध) मूल्य ॥)

मँगाने का पता—

हिमालय एजेंसी, कनखल, यू० पी०।

लोक-संस्कृति के तीन अनूठे ग्रन्थ

लोक-साहित्य का अभूतपूर्व अध्ययन

❀ ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन ❀

लेखक—हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् और लोक-साहित्य वेत्ता

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०।

परिचय लेखक—डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय।

ब्रज के लोक-गीत, लोक संस्कार, लोक-कहानियाँ, पहेलियाँ आदि सभी अङ्गों पर वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन है। ऐसी अनूठी और रोचक पुस्तक हिन्दी क्या अन्य भाषाओं में भी नहीं। मू० ६)

❀ ब्रज की लोक-कहानियाँ ❀

ले०—डा० सत्येन्द्र, एम० ए० पी-एच० डी०।

ब्रज में प्रचलित कहानियाँ, ब्रज में प्रचलित बोली में संग्रह करके प्रस्तुत की गयी है। लोक-कहानियाँ बड़ी रोचक होती हैं, ये संसार भर में व्याप्त हैं। कहानी प्रेमियों के लिए यह पुस्तक अनूठी है। लोक-साहित्य में हिन्दी में इसकी तुलना की दूसरी कहानी पुस्तक नहीं क्योंकि कहानियाँ वास्तविक बोल-चाल की भाषा में हैं। विद्वान लेखक की भूमिका से स्वर्ण में सुगन्ध आ गई है। मू० ३।)

❀ ब्रज-लोक-संस्कृति ❀

सम्पादक—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०।

ब्रज भारत की संस्कृति का मूल केन्द्र है। उसकी लोक-संस्कृति का रूप जानने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। इसमें डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, देवेन्द्र सत्यार्थी, डा० सत्येन्द्र, श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव, पं० श्रीराम शर्मा, श्री मदनमोहन नागर, श्री कृष्णदत्त वाजपेयी आदि मर्मज्ञों के विविध विषयों पर अध्ययनपूर्ण निबन्ध है। पुस्तक सचित्र है। कला, साहित्य और संस्कृति का इसमें परिचय दिया गया है। मूल्य ४)

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

प्रधान कार्यालय—स्वदेशी बीमा नगर, आगरा। (स्थापित १९३१)

आँकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १९४६ .... रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४७ .... रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४८ .... रु० ४२,००,००० से ऊपर।

स्वदेशी बीमा कम्पनी का कार्य सन् १९४९ ई० में भी अब तक गत वर्ष की अपेक्षा प्रति मास डेढ़ गुने से भी अधिक रहा है, जबकि अधिकांश बीमा कम्पनियों का कार्य घट रहा है।

एक मुश्ती घातक दुर्घटना पालिसी तथा फिक्स्ड डिपोजिट की योजना स्वदेशी की एक विशेषता है।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व ऑर्गनाइजरों की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर

विद्यार्थियों के उपयोग की

चाक बत्ती एवं पेस्टिल

स्निग्ध, मजबूत, टिकाऊ एवं चटकीले रंग

भाव निम्न हैं— F. O. R. आगरा

चाक बत्ती :	Chalk Sticks	सफेद	100×100	दर	२८)
	,,	रंगीन	,,	,,	५६)
	,,	सफेद	144×100	,,	४२)
	,,	रंगीन	,,	,,	८४)
पेस्टील :	Ashok Pastel १२ रंग लाल डिब्बी			,,	३०) प्रति ग्रोस
	,, १२ रंग सादा डिब्बी			,,	२७) ,,
	,, ९ ,,			,,	२१) ,,
	,, ६ ,,			,,	१८) ,,
	Tiger Brand १२ रंग स्लाइडिंग डिब्बी			,,	३६) ,,

अपनी आवश्यकताएँ निम्न पते पर लिखें—

बो० एम० सिंघल एण्ड कं०, जमुना रोड, आगरा।

रामचरनलाल ने साहित्य प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश

आगरा—अगस्त, १९४९ [अङ्क २

विषय सूची

ध्वनि-मीमांसा—श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी एम० ए० शास्त्राचार्य ४९
ज्ञानाश्रयी कवि श्री महात्मा अक्षर अनन्य—श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव ५३
यशोधरा और वदेही बनवास में विरह—कुमारी प्रेमा अग्रवाल ५९
छायावाद का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण—श्री रामानुज 'सौमित्र' ६२
प्रसादजी की दो कहानियाँ—श्री शिव बालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० 'आनर्स' ६५
क्या रामगुप्त और चन्द्रगुप्त परस्पर अनुरक्त थे ?—प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए० ६९
हिन्दी काव्य में नारी—कुमारी विजय लक्ष्मी अग्रवाल 'साहित्यरत्न' ७२
मीरां के संदिग्ध सम्बन्धी—श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ७६
पुस्तक-परिचय— ८१
सम्पादकीय— ८८

गुलाबराय एम० ए०
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य ४)
एक अङ्क का ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्र
हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

प्रेमचन्द : एक विवेचन—डा० इन्द्रनाथ मदान ३।)

कविता

एक ला चलो रे—श्री उदयशंकर भट्ट १)
बापू चालीसा—बेनीराम त्रिपाठी 'श्रीमणि' ।)
जीवन रश्मि—डा० देवराज ३)
चेतना—श्री बाबूराम पालीवाल १॥)
सरावगी सुषमा—श्रीयुत कामताप्रसाद सरावगी १॥)

उपन्यास

ओ०टी०आर अमर हो—श्री विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त ।॥)

कहानियां

पलायन तथा उत्पाड़न—श्री रामनन्दन मिश्र ।)
करुणाचित्र—श्री चन्द्रदेव नारायण १)
खोज—पं० द्विजेन्द्रनाथ मिश्र ३)
लाल तारा—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी २)
कल्लोल—श्री विशम्भरनाथ 'कौशिक' ३)
क्रान्ति और बलिदान—श्री कामताप्रसाद सरावगी २॥)

नाटक

झाँसी की रानी—श्री मधुसूदन चतुर्वेदी
वरगद—किशनलाल छेराणी

बालोपयोगी

प्यारे राजा बेटा—श्री रिषभदास रांका

स्त्रियोपयोगी

स्त्री विनोदनी—श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर

विविध

जयहिन्द का आध्यात्मिक इतिहास—
पं० बचन प्रसाद त्रिपाठी
बापू के साथ—श्री समंगल प्रकाश
वस्त्र कला—श्री आर० बी० एल० जौहरी

विज्ञान

स्वप्नदोष विज्ञान—पं० गणेशदत्त इन्द्र विद्यावाचस्प

धार्मिक

रामचरित्रमानस—
टीकाकार पं० देवनारायण द्विवेदी
जो सन्तों ने कहा था—श्री जमनालाल जैन

हिन्दी-साहित्य का एक अमूल्य रत्न

ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन

मूल्य ६) मात्र

हिन्दी के ख्यातनामा गम्भीर आलोचक तथा विद्वान लेखक

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

की नई कृति

यह पुस्तक लोक-साहित्य के सभी अंगों पर विशद वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करती
हिन्दी में यह सर्वथा नया उद्योग है जिसकी विद्वानों ने प्रशंसा की है।

प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

ग्राहक संख्या अवश्य लिखिए

नोट—हमारे अनेक कृपालु ग्राहक हम से पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या
लिखते जिससे बड़ी असुविधा होती है और उनकी शिकायत दूर करना हमारे लिए असम्भव
जाता है। यदि ग्राहक नम्बर याद न रहे तो ग्राहकगण रुपया भेजने की तारीख लिखें
भविष्य में हम उत्तर देने में असमर्थ होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ११] आगरा—अगस्त, १९४९ [अङ्क २

ध्वनि-मीमांसा

(श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी एम० ए०, शास्त्राचार्य)

काव्य के समीक्षकों ने काव्य के तीन भेद माने हैं—उत्तम, मध्यम तथा अधम। जिस काव्य में व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता रहती है उसे उत्तम, जहाँ व्यङ्ग्यार्थ गौण हो जाता है वह मध्यम और वाच्यार्थ प्रधान-काव्य को अधम कहा है। इस विचार से मत-साम्य नहीं रखने वाले कहते हैं कि वाच्यातिशायी व्यङ्ग्य रहने पर उत्तम काव्य, वाच्यार्थ प्रधान रहने पर मध्यम काव्य और शब्दालङ्कार की प्रधानता रखने वाले काव्य को अधम काव्य कहा जायगा। इन तीन भेदों के अतिरिक्त पण्डितराज जगन्नाथ ने एक उत्तमोत्तम काव्य का प्रकार मान कर काव्य को चार भेदों में विभाजित किया है। लेकिन अधिक सम्मति तीन ही प्रकार के काव्य के भेद मानने के पक्ष में है। काव्य के इस प्रकार के भेद का निर्धारण बहुत ही मनोवैज्ञानिक है। व्यङ्ग्य-प्रधान काव्य के श्रवण एवं पठन-मात्र से सहृदय आनन्द मग्न हो जाते हैं, उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती। इसकी अपेक्षा वाच्यार्थ प्रधान काव्य से कुछ कम आनन्द की प्राप्ति होती है और तीसरे प्रकार के काव्य से तो बहुत कम। इसीलिये विद्वान् आचार्यों ने उत्तम काव्य के प्रणयन में विशेष मनोयोग दिया। व्यङ्ग्यप्रधान काव्य को ही ध्वनि-संप्रदायवादियों ने ध्वनि-काव्य कहा है। इसके स्पष्टीकरण के लिये महाकवि बिहारी का एक अनूठा दोहा लीजिये—

'पलनि प्रगटि बरूनीन बढ़ि नहिं कपोल ठहराँय।
अँसुवा परि छतियाँ छनक छन-छनाय छपि जाँय॥'

पं० पद्मसिंह शर्मा से इसका विवेचन यों किया है—इस दोहे में संतापाधिक्य की प्रबलता का वर्णन किया है। आँसू गिर नहीं सकते, छनछना कर वहीं छिप जाते हैं। आँसुओं की उत्पत्ति और पतन के प्रकार में कुछ विलक्षणता है। 'बरुनीन बढ़ि' से बरौनियाँ सघन हैं यह प्रतीत होता है और साथ ही साथ वियोग चिन्ता में अर्धनिमीलन दशा की भी प्रतीति होती है। यदि आँखें खुली रहतीं तो पलकों के ऊपर उठे रहने से, और आँखों को बिलकुल बन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने से पलकों को नीचे की ओर होने से इकट्ठे होकर आँसुओं का गिरना कठिन हो जाता। 'नहिं कपोल ठहरायँ' कह कर कवि यह बताता है कि कपोलों में श्लक्ष्णता-स्निग्धता है। कपोल इस प्रकार स्निग्ध हैं कि उन पर पानी की बूँदें टिक नहीं सकतीं। 'पर छतियाँ छनक छन-छनाय छपि जायँ' वाक्य में 'छनक' पद से आँसुओं का आधिक्य तथा निरन्तर पतन ध्वनित होता है। 'छनछनाय छपि जायँ से यह ध्वनित होता है कि वियोग-जन्य सन्ताप अधिक है। इस प्रकार इस दोहे के हरेक पद से भिन्न-भिन्न अर्थ की व्यञ्जना होने से व्यङ्ग्यार्थों के वाच्यातिशायी होने के कारण यह ध्वनि-काव्य का उदाहरण हुआ जो उत्तम काव्य की कोटि में आता है।

इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने तपस्या में रत पार्वती का वर्णन किया है—

'स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः,
पयोधरोत्सेधनिपात चूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे,
चिरेण नाभिं प्रथमोद बिन्दवः॥'

इस पद की व्याख्या करते समय मल्लिनाथ ने लिखा है कि इसके प्रत्येक पद को साभिप्राय होने के कारण यहाँ 'परिकर' अलंकार है। यहाँ भी वाच्यातिशायी व्यङ्ग्य के होने के कारण यह भी ध्वनि—उत्तम-काव्य का उदाहरण है।

ध्वनि के अनेक मार्ग हैं। कहीं पर विधि को वाच्य रहने पर प्रतिषेध की ध्वनि होती है। जैसे:—

'भ्रम धार्मिक ! विस्त्रब्धः,
स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदा नदी कच्छ कुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन॥'

'हे धार्मिक ! विश्वस्त होकर भ्रमण करो, क्योंकि गोदावरी नदी के तट के कुञ्ज में रहने वाले दृप्तसिंह के द्वारा वह कुत्ता आज मार दिया गया।' यहाँ भय उत्पन्न करने वाले कुत्ते का विनाश हो गया, इसलिये भ्रमण का विधान वाच्य है। किन्तु कुत्ता भीरु है और सिंह की उपलब्धि बतायी गयी है इसलिये भ्रमण का निषेध किया जाता है जो व्यङ्ग्य है। सिंह से डरने के कारण कुत्ता में भीरुता सिद्ध होती है और सिंह के रहने के कारण भ्रमण करना अर्थात् है, इसलिये 'भ्रमण मत करो' यह अर्थ ध्वन्यमान हुआ। यहाँ चमत्कारिता इस व्यङ्ग्यार्थ में ही है, इसलिये भ्रमण निषेध रूप वस्तु को व्यङ्ग्य होने के कारण यह वस्तु ध्वनि हुई। यह उक्ति सहेट स्थल पर मिलने जाने वाली किसी स्त्री को सखी की है। वह समझती है कि यदि धार्मिक व्यक्ति का कहीं संचार हुआ तो उसके सञ्चार से तथा पल्लव पुष्पों के तोड़ लेने से कुञ्ज के अँधेरेपन के नष्ट हो जाने के कारण उन लोगों के छिपे रहने में विघ्न उपस्थित हो जायगा। इसलिये धार्मिक के संचार को रोकने के उद्देश्य से वह उपर्युक्त बात कहती है। यहाँ अप्राप्ति की प्राप्ति रूप विधि के अभाव में भी ऐसे स्थान में धार्मिक का भ्रमण स्वतः सिद्ध है, लेकिन कुत्ते के भय से उस धार्मिक को भी भ्रमण छोड़ना पड़ा। अब, जबकि सिंह के द्वारा वह भयानक कुत्ता मार दिया गया तब प्रतिबन्धक के न रहने के कारण उसका भ्रमण प्राप्त होता है, लेकिन तुरन्त ही उसका निषेध भी हो जाता है क्योंकि; कुत्ते के डर से गाँव का भी भ्रमण धार्मिक ने छोड़ दिया था और वहाँ तो एक खूँखार सिंह ही निवास करता है। इसलिये 'तुम भ्रमण मत करो' यही उस स्त्री की सखी के कहने का अभिप्राय है।

इसी प्रकार कहीं प्रतिषेध वाच्य रहता है और विधि का बोध व्यञ्जनया होता है, इसलिए विधिरूप व्यङ्ग्य प्रतिषेध रूप वाच्य से भिन्न हो जाता है।

'श्वस्त्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय।
मा पथिक ! राज्यन्धक ! शय्यायामावयोर्भाङ्क्षीः॥'

अर्थात् सास यहाँ सोती है और मैं यहाँ (दूसरे स्थान पर) सोती हूँ इसलिए रात में कम देखने वाले पथिक देख भाल कर चलना कहीं गिर मत पड़ना। इसमें यह व्यञ्जित है कि उसकी सास वृद्ध है खूब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाढ़ी नींद सोती है उसके जगने की शङ्का नहीं। यह एक स्वयं दूतिकर नायिका की एक पथिक के प्रति उक्ति है। यहाँ पर निषेध द्वारा विधि का उदाहरण उपस्थित हो जाता है।

इसी प्रकार कहीं पर विधि के वाच्य रहने पर विधि निषेध से विलक्षण ही तटस्थ व्यङ्ग्य रहता है।

'व्रज ममैवैकस्या भवन्तु निश्वास रोदित व्यानि।
मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत ॥'

'तुम जाओ, केवल मैं ही लम्बी साँस लूँ और रोदन करूँ कहीं उसके बिना तुम्हारे भी श्वांस और रोदन न हों।' यहाँ पर 'जाओ' (व्रज) यह विधि है। दूसरी नायिका के पास जाना प्रमाद से नहीं है अपितु गाढ़ानुराग से ही। केवल पहले के दाक्षिण्य से ही तुम यहाँ ठहरे हो, इसलिये शठ हो। इस प्रकार गाढ़मन्यु रूप खण्डिता नायिका का अभिप्राय प्रतीत होता है जो न विधि है न निषेध—इन दोनों से विलक्षण है। इसी प्रकार कितने स्थल ऐसे भी मिलते हैं जहाँ प्रतिषेध तो वाच्य है लेकिन व्यङ्ग्य तटस्थ ही रहता है। अर्थात् विधि या निषेध कुछ भी व्यङ्ग्य नहीं रहता। जैसे:—

'प्रार्थये तावत् प्रसीद निवर्तस्व मुख शशि
व्योत्स्ना विलुप्त तमो निवहे।
अभिसारिकानां विघ्नं करोष्यथासामपि हताशे।'

'हे अपने मुख-चन्द्र-प्रकाश से अन्धकार समूह का विलुप्त करने वाली! मैं प्रार्थना करता हूँ, प्रसन्न हो, लौटो। हे हताश! तुम और अभिसारिकाओं के भी कार्य में संकेत (संकेत स्थान पर जाने में) विघ्न करती हो।' नायक के घर आती हुई नायिका से नहीं पहचानने के व्याज से नायक का उक्ति है, अथवा अभिसारिका सामान्य के प्रति तटस्थ का यह कथन है। नायक यह कहता है कि तुम्हारे जाने से मेरे कार्य में बाधा पड़ती है और तुम्हारे मुखचन्द्र की चन्द्रिका से अन्धकार के नष्ट हो जाने के कारण सर्वत्र प्रकाशमय हो जाने से और अभिसारिकाओं के भी कार्य में विघ्न उपस्थित होता है यहाँ प्रवृत्ति का प्रतिषेध रूप निवृत्ति वाच्य है और विधि-निषेध से उदासीन—तटस्थ दयिता को अनुनय व्यङ्ग्य है। इसलिए वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ बिलकुल भिन्न हुआ।

इन सब के अतिरिक्त कहीं पर वाच्यार्थ दूसरे व्यक्ति को ग्रहण करता है और उसका व्यङ्ग्यार्थ उससे भिन्न को।

इसी प्रकार रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भाव-शान्ति, भावसन्धि और भावसबलता का ध्वनिरूप व्यङ्ग्य भी वाच्यार्थ के सामर्थ्य से आक्षिप्त होकर अर्थनिष्ठ व्यञ्जना से बोधित होता है। वह अभिधा शक्ति का विषय नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि रसादि को वाच्य माना जाय तो क्या अभिधा शक्ति की सहायता पाकर रस अथवा शृङ्गारादि शब्दों से उनका प्रतिपादन होगा या तात्पर्य शक्ति के बल पर विभावादि वाचक शब्दों के सहयोग से अभिधा द्वारा विभावादि तथा रसादि का बोध होगा? यदि रस या शृङ्गारादि शब्दों के द्वारा रसादि का आस्वाद हो तब तो रसादि शब्दों से रहित स्थल में इनकी प्रतीति कैसे होगी? जैसे—

'कर्णकल्पित रसाल मञ्जरी
पिञ्जरीकृत कपोलमण्डलः।
निस्तन्नयन वारिधारया
राधया मधुरिपुर्निरीक्ष्यते ॥

'कानों में लगायी गयी आम्र की मञ्जरी से पिञ्जर-वर्ण के कपोल मण्डल वाले कृष्ण भगवान् नेत्रों से आँसू बहाती हुई राधा से देखे जा रहे हैं।'

'अनेक आकार प्रकार रङ्ग के,
सुधा समोये फलमंजुसे सदा।
विराजता अन्य रसाल तुल्य थ.,
समोदकारी अमरूदरोदसी ॥"

इन स्थलों में शृङ्गार रस की प्रतीति कैसे होगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह कहा जाय कि इन उदाहरणों में 'रसाल' शब्द के रहने के कारण रस की प्रतीति होने में कोई बाधा नहीं तो यह कहना युक्ति सङ्गत नहीं। क्योंकि पूरा 'रसाल' शब्द ही आम्र रूप अर्थ को बताता है और इसका एक देश रस शब्द अनर्थक है। वैयाकरण भी इससे सहमत हैं 'समुदायोह्यथवान् तस्यैकदेशोऽनर्थकः,' 'अर्थ बोध कराने की शक्ति समुदाय ही में है, उसका एक देश अनर्थक है।' इसी प्रकार—

'अवतंसित मञ्जु-मञ्जरे,
तरुनी नेत्र चकोर पञ्जरे।
नव कुङ्कम पुञ्ज पिञ्जरे,
मतिरास्तां मम गोप कुञ्जरे॥

'सुन्दर मञ्जरी को भूषण बनाये हुए, तरुणी स्त्रियों के नेत्र रूपी चकोर के लिये पिंजड़ा और नये कुंकुम समूह से पिंजर वर्ण के कृष्ण भगवान् में मेरी मति हो।'

'हौं बलि जाउँ छबीले लाल की।
धूसर धूरि घुटुरुवन रेंगनि,
बोलन वचन रसालकी।
छिटिक रहीं चहुँदिसि जु,
लटुरियाँ लटकन लटकति भालकी॥
मोतिन सहित नासिका न चुनी,
कंठ कमल-दल-माल की।
कछु कै हाथ कछू मुख माखन,
चितवनि नैन विसाल की॥
'सूर' सु प्रभु के प्रेम मगन भई,
ढ़िग न तजनि ब्रज बाल की॥'

इत्यादि स्थलों में कृष्ण विषयक भाव की प्रतीति कैसे होगी?

(देवादि विषयक सब प्रकार की रति, कान्तादि विषयक अपुष्ट रति, रस भाव को अप्राप्त हास आदि और विभावादिक से व्यञ्जित व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं। इसलिये अंगभूत अनुभाव आदि से अपुष्ट रति को भाव ही कहते हैं रस नहीं।) जहाँ कहीं भी इनके न रहने पर रस तथा भाव आदि की प्रतीति होती है वहाँ सभी जगह, विभाव, अनुभाव आदि की उपस्थिति द्वारा ही, अन्यथा नहीं। शृङ्गार आदि शब्दों के रहने पर और विभाव आदि के न रहने पर कहीं भी रसवत्ता की प्रतीति नहीं देखी जाती। सारांश यह कि वाचक शब्दों के बिना केवल विभाव आदि के रहने पर रसादि का बोध होता है और केवल वाचक शब्दों से विभाव आदि के अभाव में रस की प्रतीति नहीं होती है। इस अन्वय व्यतिरेक से यह सिद्ध हुआ कि वाच्यार्थ के सामर्थ्य से रसादि का आक्षेप होता है, ये वाच्य तो कभी होते नहीं। इसलिये रसादि भी वाच्य से भिन्न हुए।

इस विषय में पठनीय सामिग्री :—

१—रस मंजरी—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
२—काव्य के रूप—श्री गुलाबराय एम० ए०
३—काव्य-प्रकाश—श्री हरिमंगल मिश्र
४—साहित्यालोचन—बाबू श्यामसुन्दरदास
५—रस गंगाधर—पं० रामदहिन मिश्र
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
६—सिद्धान्त और अध्ययन - श्री गुलाबराय एम० ए०
७—विचार और अनुभूति—डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानाश्रयी कवि श्री महात्मा अक्षर अनन्य

(श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव)

ज्ञानाश्रयी परम्परा में कबीर, दादू, धर्मदास, सुन्दरदास आदि की वाणी सुनाई जा चुकने के पश्चात् श्री महात्मा अक्षर अनन्य ने अपना सन्देश जनता के सामने रखा। शुद्ध ज्ञानमार्ग में प्रेमतत्व के सामञ्जस्य से तत्कालीन आडम्बरों का प्रत्यक्ष विरोध कर कबीर ने एक नया मार्ग चलाया, किन्तु अक्षर अनन्य ने उस ब्रह्मतत्व के निरूपण का उद्देश्य ही अपने सामने रखा। यद्यपि इन महात्मा की वाणी में भी कबीर जैसी निर्भीकता प्राप्त होती है, तथापि कहीं-कहीं यह कबीर से भी आगे मिलते हैं। कबीर ने अपना एक नया मार्ग चलाया और उस निर्गुण ब्रह्म की व्यापकता बनाये रख कर उसे घट के भीतर देखा; सूफी सन्तों ने प्रेमतत्व के आधार पर एकेश्वरवाद का निरूपण किया; सूर, तुलसी ने सगुण का आश्रय लिया; परन्तु अक्षर अनन्य ने सगुण, निर्गुण, द्वैत, अद्वैत आदि सभी वादों का सुन्दर सामञ्जस्य करके दिखा दिया —

वे तो शिव शक्ति, सर्वशक्ति, सर्वगतिनाथ,
जैसे ही को तैसे आप जैसे ही के तैसे हैं।

श्री शुक्लजी ने अक्षर अनन्य को प्रथीसिंह (रस-निधि कवि) का दीवान कहा है, किन्तु यह बात निर्मूल सिद्ध है। वेदान्त उपदेश के लिये ही प्रथीसिंह ने अक्षर अनन्य को गुरु समान अपने पास में रखा था। अनन्य की रचनाओं में भी यही बात स्पष्ट है। किसी स्थल पर वह नरेश को शिष्य की भाँति सम्बोधित करते हैं तथा किसी स्थल पर उन्हें आशिष भी देते हैं। आपकी कविता का मध्यकाल प्रथीसिंह को उपदेश देने में ही बीता। उपदेशात्मक समस्त रचनायें 'अक्षर अनन्य के चिट्ठा' अथवा 'अनन्य प्रकाश' के नाम से उपलब्ध हैं। इन चिट्ठाओं से पश्चात् की सभी रचनाओं में उस चिच्छक्ति का सुन्दर निरूपण किया गया है। ब्रह्मतत्व की जैसी सुन्दर अभिव्यञ्जना अक्षर अनन्य की रचनाओं में प्राप्त होती है, वैसी कदाचित हो किसी अन्य कवि के ग्रन्थों में उपलब्ध हो सके। अन्य सभी सन्तों ने अपने मार्ग की कट्टरता दिखाते हुये अन्य साधनों की अवहेलना की है। एकात्मवाद के निरूपक कबीर ने तो जोरों से निन्दा की है। किन्तु अक्षर अनन्य किसी धर्म की निन्दा से सदैव दूर ही रहे। कबीर की निर्गुणवादिता, सूफी सन्तों की एकेश्वरवादिता, भक्तिकाल की सगुणवादिता, मध्व की द्वैतवादिता सभी का एक रूप अनन्य की कविता में मिलता है। ब्रह्म की जैसी स्पष्ट व्याख्या निम्न पंक्तियों में की गई है वैसा कबीर क्या कोई भी कवि न कर सका होगा—

नहिं निरगुन नहिं सरगुन जानों,
निरगुन सरगुन मांझ लुपानों;
नहिं करता न अकरता मानो,
कारण करण वहै पहिचानो,
नहिं माया नहिं ब्रह्म विचारो;
माया ब्रह्म वहै निरधारो;
ब्रह्म विष्णु अरु रुद्र न होई,
ब्रह्म विष्णु रुद्रहि मन्द सोई।

कबीर के ऊपर अद्वैत मन्त्रों की 'सोहं' तथा 'तत्त्वमसि' की अमिट छाप पड़ी थी। उनका ब्रह्म सदैव घट के भीतर ही रहा। कबीर का ध्यान 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' जैसे व्यापक सिद्धान्तों की ओर कम गया। यद्यपि उन्होंने 'जित देखों तित तूँ' को समझा था, किन्तु मन्दिरों और मसजिदों में वह फिर भी ब्रह्म को न देख सके। इस प्रकार सगुण तथा द्वैतवाद को निरा निरर्थक ठहराया गया है। इसके अतिरिक्त उनका ब्रह्म सदैव 'नेति' ही रहा। वह वर्णनातीत है। कबीर के शब्दों में वह 'कहन सुनन तें न्यारा है।' वह तो स्पष्ट ही कह देते हैं —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोउ ध्यावै निराकार को कोउ ध्यावै साकारा;
वह तो इन दोउन ते न्यारा जाने जाननहारा।'

इस प्रकार कबीर उस अव्यक्त सत्ता की अभिव्यञ्जना करने को आगे आये नहीं। जहाँ कहीं उसका वर्णन भी किया वहाँ 'वह कहन सुनन ते न्यारा है' कह कर उसे अस्पष्ट ही रखा। किन्तु अनन्य ने—

'नहिं निरगुन नहिं सरगुन जानौ,
निरगुन सरगुन माँझ लुपानौ।'

कह कर अपनी एक विशेष प्रतिभा का परिचय दिया।

कबीर के समान अनन्य ने भी ज्ञान को प्रधानता दी है। किन्तु अनन्य के सिद्धान्तों में जो उदारता और महाशयता हमें प्राप्त होती है वह कबीर में नहीं। कबीर अपनी उद्दण्डता में 'साधु भया तो क्या भया, जो नहिं बोल विचार' अपना ही सिद्धान्त भूल जाते हैं और अन्य धर्मों की अशिष्टता के साथ निन्दा कर बैठते हैं। उनके ग्रन्थों का बहुत सा भाग निन्दा तथा उलटबाँसियों से भरा पड़ा है। उनके द्वारा समाज को विशेष लाभ तो नहीं, हाँ एक चमत्कारिक आनन्द अवश्य प्राप्त हो जाता है। जहाँ पर उस परमात्म-तत्व की अभिव्यक्ति की गई वही भाग विशेष सुन्दर कहा जा सकता है। सुन्दरदासजी ने भी कबीर की भाँति कुछ उलट बाँसियों का प्रणयन किया किन्तु अनन्य ने अपनी दृष्टि उस मुख्य तत्व के विवेचन को छोड़ कर किसी अन्य विषय की ओर नहीं दौड़ाई। कबीर ने एक दो स्थलों पर अवतारवाद का भी समर्थन किया। हठयोग की निन्दा करते हुए योग क्रियाओं को ब्रह्म प्राप्ति का साधन भी समझा। 'आँख कान मुख बन्द कराओ' को पाखण्ड मान कर भी उनका किसी-किसी स्थल पर समर्थन किया। इस प्रकार शुद्ध ज्ञान-मार्ग से वह कभी कभी हटते हुए से प्रतीत होते हैं। अनन्य ने कभी भी शुद्ध ज्ञान-मार्ग का विस्मरण नहीं किया।

वह ब्रह्म सर्व व्यापक है। वेदान्त ग्रन्थों में 'खंब्रह्म' कह कर उसकी सर्व व्यापकता को ही भली-भाँति सिद्ध किया गया है। कोई भी धर्म, कोई भी सम्प्रदाय, तथा कोई भी आचार्य उसकी सर्वव्यापकता पर सन्देह नहीं कर सकता। वह सर्वशक्तिमान भी है। ज्ञानी पुरुष उसे अपने घट के भीतर ही देखते हैं। किन्तु वह हृदय की सत्यता का पारखी, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का पुजारी, मन्दिर की सौम्य मूर्तियों के आराधकों तथा मसजिद में पुकारने वाले मुल्ला को यदि मिल जाता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। मन्दिरों और मसजिदों से उस ब्रह्म को पूर्णतया निकाल कर कबीर ने उसके सर्वव्यापक, अविच्छिन्न तथा सर्वशक्तिमान होने में सन्देह ही उत्पन्न किया है।

कबीर ने प्रेम की प्रशंसा भी की है। उनके अनुसार जो भी प्रेम को समझ लेता है वही पण्डित हैं। किन्तु उनके निराकार तथा निर्गुण ब्रह्म से प्रेम किया ही कैसे जा सकता है। उस अव्यक्त सत्ता से प्रेम करने की प्रणाली तो सगुणमार्गीय कवि महात्माओं के लिये ही उपयुक्त समझी जा सकती है। अद्वैत वेदान्त दर्शन में उस निर्गुण-निराकार तत्व को केवल समझने का ही आदेश है। ज्ञानकाण्ड के किसी भी प्रकरण में उसको समझने का उपदेश दिया गया है प्रेम करने का नहीं। जहाँ पर प्रेम का विचार होता है वहाँ श्रेय की ओर से हट कर प्रेय की ओर चलना पड़ता है। उपनिषद सिद्धान्तों के अनुसार 'आत्मानं विद्धि', 'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति आहि, मंत्रों में उस अव्यक्त सत्ता को समझना ही श्रेय है। वहीं पर ज्ञान की सीमा तथा सफलता है। भक्तिकाल के महात्माओं में घट के भीतर ब्रह्म को समझने वालों में कबीर ही सबसे श्रेष्ठ कहे जाँयगे, किन्तु उसको सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान बनाये रखने में अनन्य ने कभी भूल नहीं की। अक्षर अनन्य के सिद्धान्त अत्यन्त उदार हैं। 'ठौर सदाशिव सोई खुदा है' कह कर उन्होंने भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ताओं को तो एक माना ही है साथ ही विभिन्न साधनामार्गों को भी उन्होंने बुरा नहीं कहा। कबीर के अनुसार मसजिद में पुकारने वाला मुल्ला मूर्ख है; तिलक, माला, जप, तप उनके विचार से व्यर्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया—

'पूजा जप तप नैम व्रत गुड़ियन का सा खेल'

किन्तु अक्षर अनन्य अपनी उदारता सदैव बनाये रहे। उन्होंने सत्य ज्ञान की ओर ही विशेष ध्यान आकृष्ट किया। सभी मार्ग उसको समझने के साधन हैं। अनन्य के एकादश चिट्ठा में ब्रह्मज्ञान के अर्थ सात सीढ़ियों का उल्लेख किया गया है। गुरु उपदेश में विश्वास ही प्रथम सीढ़ी है। द्वितीय सीढ़ी पर उग्र दोषों से बच कर धर्म-नियमों के परिपालन का विधान है। तृतीय सीढ़ी पर साधक को संयम-नियम के द्वारा अपने मन की चञ्चलता का विनाश करना होता है। चतुर्थ सीढ़ी पर श्रद्धा तथा प्रेम पूर्ण भक्ति के साथ उस ब्रह्म का ध्यान करना होता है। इसी प्रकार सप्तम सीढ़ी पर पहुँच कर व्यक्ति को ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

उपनिषद प्रतिपादित विद्या और अविद्या का भी उल्लेख अनन्य ने उसी प्रकार किया है। उपनिषदों ने अविद्या के अन्धकार से बचाकर पराविद्या का ही उपदेश किया है। औपनिषद पुरुष का साक्षात्कार कराने वाली विद्या ही केवल विद्या है, शेष समस्त ज्ञान अविद्या के अन्तर्गत माना गया है। 'अथ-परा यया तदक्षरमधिगम्यते' (मुण्डकोपनिषद १.५) को अक्षर अनन्य ने भी भली भाँति समझा था—

'सारासार बूझे तत्व सूझे सोई विद्या जान,
और सब विद्या हैं अविद्या ही के वाइदो।'

कबीर स्वयं कुछ भी पढ़े लिखे न थे। उनका स्वाध्याय कुछ भी नहीं था साधु सन्तों की सङ्गति से ही उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ होगा। 'रामानन्द चेताये' के अनुसार अद्वैत आत्मतत्व की शिक्षा कबीर को रामानन्द से मिली होगी। पश्चात् उनका आत्म ज्ञान इतना अधिक बढ़ा कि उन्हें आत्मतत्व और ब्रह्म के विषय में अभिमान के साथ कहने का अवसर मिला। कबीर के पदों और साखियों में यह बात स्पष्ट परिलक्षित है। अक्षर अनन्य ने भी कबीर की भाँति 'अक्षर अनन्य यह जान के जनायौ है' कहा है, किन्तु इनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है कि इनका अध्ययन बहुत बढ़ा चढ़ा था। संस्कृत, वैदिक तथा पौराणिक ग्रन्थों का इन्हें अच्छा ज्ञान प्राप्त था। सप्तशती का हिन्दी अनुवाद सर्व प्रथम अक्षर अनन्य ने ही किया। 'महिमा समुद्र' की रचना भी शिव तथा शक्ति पुराण से अनुवाद कर के ही की गई है। अन्य पुराणों का अध्ययन भी आपका कम न था। इन समस्त ग्रन्थों को आपने खूब अच्छी तरह से छाना था। तथा उन सबको उपनिषदों के अनुसार अविद्या के ही अन्तर्गत माना है—

'विष्णु के पुराण में कहत विष्णु आदि देव,
विष्णु ते विरञ्चि ताते रुद्र पुन मानिये।
रुद्र के पुराण में कहत शिव आदि नाथ,
शिवजू ते विष्णु तातें ब्रह्म कृत ठानिये।
ब्रह्म के पुराण में कहत ब्रह्म आदि देव,
ब्राह्म ही ते विष्णु तातें शङ्कर बखानिये।
'अक्षर अनन्य' भिन्न भाँति ये पुराण भेद,
कल्प के पलेट उलट फेर जानिये।

अनन्य को पुराणों की अविद्या का तथा उससे भिन्न, पराविद्या का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त था। उनकी चेतना, उनकी बुद्धि पुराणों की समस्या में उलझी न रह गयी। उन्होंने बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँच कर औपनिषद पुरुष—ब्रह्म तत्व को पूर्ण रूपेण समझा था। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन तीनों के सत्य स्वरूप को पहिचानने में अक्षर अनन्य ने भूल नहीं की। वही अपना दृष्टिकोण उन्होंने जनता के सम्मुख रखा—

ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीनों रूप ये त्रिगुण भेद,
त्रिगुण को रूप एक निर्गुण निदान है।
एक ही ते तीन तीन मिल ही के एक होत,
तीन चार नाहीं एक कारण प्रमाण है।
जैसे एक सूत को जनेऊ तीन तार जान,
तीन हू को सूत एक जाहिर जहान है।
'अक्षर अनन्य' ज्ञानवन्त गति एक लहै,
भिन्न भिन्न मानत ते मानस अजान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर के अनुसार माया केवल माया है। ब्रह्म का उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। 'सन्तो आवे जाय सो माया' कह कर अवतारों को भी माया मान कर ब्रह्म को उनसे बहुत अलग रखा गया है। प्रकृति पुरुष का व्यापक रूप है; माया ब्रह्म का ही व्यापक स्वरूप है, कबीर इस सिद्धान्त से सहमत प्रतीत नहीं होते। 'माया महा ठगिनि हम जानी' के द्वारा कबीर ने माया को विश्व-प्रपञ्च तक ही माना है। विश्व-माया में वह ब्रह्म की व्यापकता को न परख सके थे। यहाँ पर उन्हें हम 'जित देखों बित तूँ' के सिद्धान्त से दूर ही पाते हैं। अक्षर अनन्य कबीर से कुछ आगे जाते हैं। संक्षेप में वह कह देते हैं—

दुविधा न मानों सब जानों एक करकें।
× × × ×
सब ही में ब्रह्म लहै यहै सरवज्ञता।
× × × ×
ज्ञानी तो वहै है सर्व जाने एक करके।

किन्तु इतना कहकर ही उन्हें सन्तोष नहीं होता। वह माया में भी ब्रह्म का व्यापक स्वरूप देखते हैं—

ज्वाला कहें जुवती सी लगै,
वैशान्हर में पुरुषारथ आया।
देह कहै नर नाम लगै,
अरु नारि लगै जबही कहो काया।
नाम को भेद 'अनन्य' भनै,
हठ मूढ़नि बादहि बाद बढ़ाया।
एक ही तत्व स्वयं परिपूरण,
ताही सो ब्रह्म कहौ भल माया।

मिथ्या वेष और आडम्बर अनन्य को तनिक भी प्रिय नहीं था। कबीर के समान उन्होंने भी पाखण्डियों को बुरी तरह से फटकारा है। उनके विचार से ब्रह्म-ज्ञान के लिये किसी प्रकार का वेष बनाने की आवश्यकता नहीं। वह मन की एकाग्रता तथा ज्ञान पर ही विशेष जोर देते हैं—

का होत मुड़ाये मूँड़ बार,
का होत रखाये जटा भार।

इतना ही नहीं वह इससे भी आगे और—

का होत भामिनी तजै भोग

भी कह बैठते हैं। 'जौलों न सधै थिर चित्त योग' यह समस्त आडम्बर, समस्त क्रियायें व्यर्थ हैं। पाखण्डियों को उन्होंने बड़े ही चुभते हुये शब्दों में फटकारा है—

भये हैं वैरागी छूटे मन के न राग दोष,
रागी दोषी धन त्याग काहे को चले हते।
× × × ×
काहे वर बावरे मुँड़ाये मूँड़ भाँड़ भये,
खाते जो कमाते ताते घर ही भले हते।

ज्ञानयोग क साधना अन्य साधनों की अपेक्षा-पूर्ण स्वतन्त्र है। ब्रह्म का ज्ञान जटा रखाने, मूँड़ मुड़ाने अथवा स्त्री परित्याग से नहीं होता। वैदिक काल के ऋषि भी सपत्नीक मिलते हैं। याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी के साथ रहते थे। जनक ने ब्रह्मज्ञान के लिये संसार का परित्याग नहीं किया था। फिर भी इनका सांसारिक जीवन इनके ब्रह्मज्ञान में बाधामय न था। अक्षर अनन्य ने भी सुन्दर शब्दों में कहा है—

जिनसे घर माँझ कछू न बनौं,
उनसे वन माँझ कहा बनि हैगो।

अनन्य के भाव-पक्ष के विषय में इतना ही कह कर उनके कला पक्ष के विषय में भी कुछ कहने की आवश्यकता रह जाती है। कबीर के कला-पक्ष के विषय में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं, हाँ ज्ञानाश्रयी अन्य कवियों में अवश्य ही कला के दर्शन होते हैं। रैदास के पद तो कबीर के ही समान हैं। दादू, नानक धर्मदास की रचनाओं में कुछ सरसता तथा काव्यकला का समावेश हुआ है। सुन्दरदासजी की रचना तो कलापक्ष में इन सबसे आगे ठहरती है। आपकी कविता में अनुप्रास और यमक की छटा कहीं कहीं बहुत ही सुन्दर देखने को मिलती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौरत नाहीं नावरी, पुकारि के सुनावरी,
सुन्दर कोउ नावरी डूबत राखे नावरी।

छन्द तथा अलङ्कार शास्त्र के अनुसार सुन्दरदासजी का 'सुन्दरविलास' कबीर, रैदास, धर्मदास आदि समस्त कवियों की रचनाओं से सुन्दर कहा जायगा। सुन्दरदासजी महात्मा होने के साथ-साथ कवि भी थे। उनका 'सुन्दरविलास' काव्यकला के लक्षणों से भली भांति सम्पन्न है। अक्षर अनन्य भी पूर्ण महात्मा होते हुए सफल कवि भी थे। उनकी प्रत्येक रचना काव्यकला की कसौटी पर खरी उतरती है। किसी भी रचना का कोई भी छन्द शास्त्रीय पद्धति के प्रतिकूल नहीं मिलेगा। इसके साथ ही उस काल तक प्रयुक्त प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग आपने किया है। 'निरधार शतक' में सौ सुन्दर दोहों का सङ्कलन किया गया है। 'अष्टपदी' का निर्माण ललित पदों में किया गया है। अन्य रचनाओं में कवित्तों और सवैयों की छटा प्राप्त होती है। 'महिमा समुद्र' में तो केशव की रामचन्द्रिका की भाँति छन्दों की भरमार है। प्रत्येक छन्द काव्य के किसी प्रकार के दोष से सर्वथा मुक्त है। शब्दालङ्कार की ओर आपका ध्यान बहुत कम रहा है। अर्थालङ्कारों में उपमा और रूपक ही आपके विशेष सुन्दर रहे हैं। भवसागर का पूर्णरूप आपने बहुत ही सुन्दर लिखा—

कर्मन की नदी जामें, भर्मन के भौंर परें,
लहरें मनोरथ की कोटि निकरत हैं।
काम से कमठ महा मोह से मगर जामें,
क्रोध से जहर जासे देव से जरत हैं।
लोभ जल पूरण अनन्त सु 'अनन्य' भने,
नदा वारपार देख धीरज टरत हैं।
तहाँ शिव शक्ति ध्यान ज्ञान सो जहाज साज,
ऐसे भव सागर को विरले तरत हैं।

शृङ्गार-योग का प्रणयन पूर्ण रूपक के साथ किया गया है। साधक और साधना को पतिव्रता स्त्री तथा पतिव्रत के साथ सुन्दरता से जोड़ा गया है। स्त्री के इस रूपक के साथ रचना-निर्माण का उद्देश्य भी सुन्दर रहा है—

सगुण प्रीति संसार नर निगुन न समझत मूढ़।
ताते मिस शृङ्गार के कहों ज्ञान गति गूढ़॥

इसके पश्चात् आप बहुत ही सुन्दरता से आगे बढ़े हैं। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री सब ओर से अपना मन हटा कर पति में ही स्थिर करती है उसी प्रकार साधक को ब्रह्म का ध्यान रखना अनिवार्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रियतम ब्रह्म के साथ सदैव रहता है किन्तु जिस प्रकार प्रियतम के साथ में सोती हुई नायिका सुषुप्ति अवस्था में प्रियतम का स्मरण भूल जाती है, स्वप्नावस्था में प्रियतम से अलग होकर विकल हो उठती है, उसी प्रकार व्यक्ति भी मिथ्या भ्रम में पड़ कर अपने प्रियतम ब्रह्म को भूल जाता है। जागृत अवस्था में ही दोनों को प्रियतम का ज्ञान होता है। अनन्य ने यही विचार कितने सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—

सोवति संग परी पिय के,
सपने बिछुरी चित भर्म बढ़े अति।
चौंक परी न टरी उरते,
थिर चित्त भई गर लाय लई पति।
यों महि मोह महा भ्रम नींद
लहै सपनो जग सोच थकी रति।
जागृत योग 'अनन्य' भनै
बुधि बोध वियोग न ज्ञान यहै गति।

यहाँ परम गूढ़ तत्व को आपने स्त्री के साथ जोड़ दिया है। सुषुम्ना नाड़ी के लिये आपने लिखा—

'अन्तर राज सरोजन की
सुख सेज विराजत सुन्दरी श्यामा।'

आपने अपने सिद्धान्तों को काव्यप्रणाली के आधार पर तो व्यक्त किया ही है; और समस्त रचनाओं में उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, किन्तु कुछ रचनायें ऐसी भी हैं जिनका प्रणयन शुद्ध काव्य की दृष्टि से किया गया है। बहुधा रचनाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि में मङ्गलाचरण भी लिखा गया है। उनकी समाप्ति भी सुन्दर ढङ्ग से की गयी है।

सुन्दरदासजी के सुन्दर विलास में अनुप्रास की छटा अच्छी मिलती है किन्तु काव्य की सरसता तथा लालित्य जो अनन्य की कविता में है वह उनमें भी देखने को नहीं मिलता। 'अन्तर राज सरोजन की, मुख सेज विराजत सुन्दरी श्यामा' में कितना माधुर्य है! प्रवाह किसी स्थल पर भङ्ग नहीं होता। प्रत्येक स्थान पर शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। माधुर्य और प्रसाद गुण का तो आपकी कविता में अभाव नहीं। यह कहा जा सकता है कि ज्ञानाश्रयी काल के अन्य कवियों के समय में भाषा का रूप उतना प्राञ्जल नहीं हुआ था, जितना अक्षर अनन्य को मिला। काव्य कला का तथा भाषा का पन्द्रहवीं शताब्दी में पूर्ण-रूपेण विकास नहीं हुआ था। इसीलिए अन्य कवियों की वाणी कुछ अटपटी सी रही। किन्तु प्रत्येक दशा में यह स्वीकार करना होगा कि अनन्य ज्ञानाश्रयी सन्त कवियों की अपेक्षा सफल कवि थे। मिश्रबन्धुओं ने भी आपकी परिष्कृत भाषा की प्रशंसा ही की है।

किसी एकान्त सुदूर शून्य कोने में पड़े रहने के कारण अनन्य की रचनायें प्रकाश में न आ सकीं। 'उत्तम चरित्र' का प्रकाशन बनारस और बम्बई से हुआ है। 'प्रेमदीपिका' लखनऊ से प्रकाशित है। श्रीसूर्यकुमारजी वर्मा द्वारा सम्पादित 'अनन्य ग्रन्थावली' का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। किन्तु खेद है कि इस ग्रन्थावली में एक भी ग्रन्थ पूर्ण न आसका। केवल चिट्ठाओं में से चार चिट्ठाओं का सङ्कलन किया गया है। शेष बारह-तेरह रचनायें, जो सर्वाङ्ग सुन्दर हैं अब तक अप्रकाशित ही रहीं।

(पृष्ठ ६८ का शेषांश)

नारी-हृदय की दुर्बलता भी उसमें है इसीलिए तो वह गत्यात्मक पात्र है। प्रसादजी ने कामायनी में स्वयं कहा है—

जब कभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।
भुज लता फँसाकर नर-तरु से
झूले सी झोंके खाती हूँ॥

आगे देखिये अरुण के इस प्रश्न पर "सचमुच मुझे प्यार करती हो?" को सुनकर लजावती मधूलिका न हाँ ही कह सकी और न तो न ही। कुमारसम्भव में भी शंकर के वास्तविक स्वरूप के आगे कालिदास की—

शैलाभिराजतनया न भयौ न तस्थौ।

एक बार पुनः हम मधूलिका को प्रणय की वेदी पर सर्वस्व न्योछावर करते देखते हैं तथा अपने प्रेमी को—पति को नहीं—पूर्ण सहयोग देते देखते हैं। यह उसके चरित्र की उज्ज्वलता का दूसरा पक्ष है।

अरुण आदर्श-प्रेमी, वीर, साहसी और कर्तव्यनिष्ठ है। रण-कला से भी वह अपरिचित नहीं। महाराज भी आदर्श कृपाल हैं और उपकार का बदला उपकार से चुकाना चाहते हैं। 'सिंहमित्र की कन्या मैं जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है सिंहमित्र के प्रति कृतज्ञता का स्पष्टीकरण है यह प्रसाद की वाग्विदग्धता और वचन-वक्रता है।

कहानी का उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्य का निरूपण है और साथ ही भारत की गौरव-गरिमा का चित्रण भी। कहानी की समाप्ति जिस कलात्मक ढंग से की गई है इसे किसी भी संवेदनशील पाठक के हृदय को चीर कर देखा जा सकता है। अरुण और मधूलिका साथ-साथ प्राणदण्ड पाने के हेतु खड़े हुये मिलेंगे।

कौतूहल कहानी की जान है अतः पाठक आगे क्या हुआ, इसी समस्या में (जो सुलझी होते हुये भी उलझी ही है) में पड़ा रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोधरा और वैदेही बनवास में विरह

(कुमारी प्रेमा अग्रवाल)

साहित्य-शास्त्र में शृङ्गार को रस राजत्व का पद प्रदान किया गया है। इसका कारण यही है कि उसमें चित्त की अत्यधिक वृत्तियों का समावेश देखने को मिलता है। उसके दो पक्ष हैं संयोग शृङ्गार तथा विप्रलम्भ शृङ्गार। संयोग की अपेक्षा हमारे काव्य में विप्रलम्भ को अधिक महत्व दिया गया है। इसका कारण यही है कि प्रिय के दूर हने के कारण चित्त की जो अनेकानेक अवस्थायें होती हैं उन सबकी अभिव्यक्ति के लिये उसमें स्थान मिलता है। संयोग का पक्ष एकान्तिक है परन्तु विरह एकान्त में तथा सब मनुष्यों के सामने भी हो सकता है।

'वैदेही वनवास' और 'यशोधरा' दोनों काव्य विरह प्रधान हैं। यशोधरा का तो आरम्भ ही विरह से होता है परन्तु 'वैदेही बनवास' में कुछ काल के संयोग के उपरान्त ही यह अवस्था आती है। दोनों के विरह की उत्पत्ति बुद्ध तथा राम के द्वारा किये गये लोक-कल्याण के कारण है परन्तु फिर भी दोनों की दशाओं में बहुत अन्तर है। राम सीता को बनवास का कारण बतलाते हैं तथा उसकी स्वीकृति के पश्चात् ही वियोग का समय आता है परन्तु यशोधरा में ऐसा नहीं है। भगवान् बुद्ध अपनी दुर्बलता के कारण यशोधरा से बिना कुछ कहे सुने ही घर त्याग कर चले जाते हैं। इससे अपनी शक्ति पर विश्वास रखने वाली यशोधरा का हृदय क्षोभ से भर जाता है। वह अपनी सखी से इसकी चर्चा भी करती हुई देखी जाती है—

"सखी वे मुझसे कहकर जाते
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र धर्म के नाते।"

परन्तु सीता के चित्त में वियोग के कारण को लेकर कोई हलचल नहीं। अपितु इसमें तो वह स्वाभिमान के ही चिन्ह पाती है कि उसके बनवास का कारण लोक कल्याण की भावना है। अपने प्रिय से अलग होने के कारण वह दुखी अवश्य है, परन्तु लोक सेवा के लिये वह अपना बलिदान कर सकती हैं। यशोधरा भी इस कारण से परिचित है परन्तु उसकी सूचना पति के द्वारा न दिये जाने के कारण वह इच्छापूर्वक उसका वर्णन नहीं करती। इसी कारण को लेकर वह मान भी करती है—

"विदा न लेकर स्वागत से भी
वंचित यहाँ किया है"

वह स्वागत करने के लिये भी प्रस्तुत नहीं क्योंकि जाने के समय विदा लेकर भी तो वे नहीं गये हैं। अस्तु दुख के साथ ही साथ असन्तोष से भी उसका हृदय भर उठा है। यद्यपि परिस्थितियाँ दोनों की एक ही हैं परन्तु प्रकारान्तर के कारण दोनों की चित्तवृत्ति भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। वियोग की अवधि दोनों की अनिश्चित है परन्तु सीता को, राम के राजभवन में रहने के कारण उनकी कुशल क्षेम का पूरा भरोसा है। यशोधरा इस विषय में भी अनिश्चित है। उसके पति कहाँ और किस दशा में होंगे इसकी कल्पना वह नहीं कर सकती। वह जीवित है इसलिये वे भी अवश्य ही जीवित होंगे इतना ही वह सोच सकती है।

उन्हें अपने प्रिय का स्मरण रह-रह कर हो आता है। बीते समय की स्मृतियाँ आ-आकर उनकी विरहाग्नि को तीव्र कर जाती हैं। परन्तु ऐसी अवस्था में भी सीता अपने कर्तव्य ज्ञान को नहीं भूलतीं। वे राम की स्मृति में व्याकुल भी होती जाती हैं और कर्तव्य पथ पर अग्रसर भी। राम के अनुसार ही वे भी अपने को सेवा के पथ पर बिखेर देती हैं। परन्तु यशोधरा अपने प्रिय के वियोग में अन्तरमुखी हो उठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। बाहर से वह निश्चेष्ट है परन्तु हृदय में विचारों का तूफान चलता है। मनमानस में अनुराग की बड़ी-बड़ी तरंगें उठती हैं जो स्वयं उसको भी आत्मसात् कर लेने के लिये प्रस्तुत सी जान पड़ती हैं। सीता को देखकर तो प्रसादजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

आँसू से भीगे आँचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुम को अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।

उसकी आँखों में आँसू हैं परन्तु कर्तव्य हँसने के लिये विवश करता है। विरहावस्था में उनकी यही मूर्ति हमारी आँखों के सामने नाचती है। अपने दुख में वह शेष जगत को भुला नहीं देती। उसके साथ उनका सम्बन्ध पूववत् चलता रहता है। इसके विपरीत यशोधरा अपने आप में सिमिट कर रह गई है। लोक से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है। अपनी दुख-दर्द की चिन्ता के अतिरिक्त और कुछ सोचने के लिये उसके पास है ही नहीं।

त्याग की भावना दोनों में देखने को मिलती है। यशोधरा का त्याग अपने पति के लिये है परन्तु सीता का पति और समाज दोनों के लिये। पति से उसे त्याग और सेवा की भावना मिली है। अतः वह भी उनका प्रसार करने में तत्पर है। ये भावनायें मिली यशोधरा को भी हैं परन्तु उसमें उनका विकास दृष्टिगत नहीं होता। उसका जीवन केवल दुख और करुणा का केन्द्र है।

यशोधरा का जीवन घर के ही कुछ प्राणियों के बीच तक सीमित रहता है। स्थानान्तर उसके जीवन में नहीं आता। वे ही प्राणी, वे ही वस्तुयें और वे ही स्थल उसके दुख के समय में भी वर्तमान हैं जो उसके संयोग काल में उपस्थित थीं। सभी व्यक्ति बुद्ध के वियोग में दुखी हैं। सभी वस्तुओं और स्थलों में उसके प्रिय की स्मृति वर्तमान है। उन सब का दर्शन उसके विरह को उकसा देता है। वातावरण में एक विचित्र उदासी घुल-मिल गई है जो उसे और अधिक खिन्न मना बना देती है। वहाँ का तो वातावरण ही विषाद मय हो गया है अस्तु यशोधरा का अन्तरमुखी जाना निश्चित हो जाता है।

सीता के साथ ऐसा नहीं होता। वह स्थानान्तर करके महर्षि वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में प्रवेश करती है। वहाँ सभी परोपकार में रत हैं अतः उसके जीवन पर भी उन लोगों का प्रभाव पड़ना अनिवार्य हो जाता है। वहाँ का वातावरण स्वच्छ और प्रभावशाली है। यशोधरा के राजमहल का सा दम घोंटने वाला नहीं। वहाँ व्यक्तित्व के विकास का अवसर है और सीता में वह होता भी है। उनका वातावरण उनकी भावनाओं के अत्यन्त अनुकूल पड़ता है।

यशोधरा के चारों ओर भोग का संजाम एकत्र है अस्तु कभी-कभी उन वस्तुओं को देख कर उसे संयोग काल की स्मृति आकर घेर लेती है। वह उसके हृदय में छिपे हुये लालसा के परमाणुओं को विकसा कर उत्तेजित कर देती है। वातावरण भी इस प्रकार के भावों में पूरा योग है।

सीता अपनी भोग काल की वस्तुओं को पीछे छोड़ आई है। अधिकांश समय पर-सेवा में व्यतीत होता है। यद्यपि प्रियतम की मूर्ति नेत्रों के सामने झूला करती है। साहचर्य भी ऋषि मुनियों का ही है अतएव उसके विरह में वासना के बीज अंकुरित नहीं होते। इस प्रकार की भावनाओं में स्थान का प्रभाव विशेष रूप से कार्य कर रहा है। त्याग की भावना दोनों में मिलती है। यशोधरा का त्यागप्रियतम के लिये अपने को मिटा देने में ही है परन्तु सीता समाज के बीच चलती है। उसी के बीच उनका त्याग लक्षित होता है।

यशोधरा में कुल वधू के सब लक्षण मिलते हैं। उसी की भाँति वह मान भी करती है, दुखी भी होती है, कामना भी करती है और विरह ताप में जलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सीता समाज के बीच रहने वाली हैं। व्यक्ति से समाज को अधिक महत्व प्रदान करती हैं। सुख-दुख में गलते हुए भी उसे उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना ही पड़ेगा। भावना से कर्तव्य कहीं अधिक ऊँचा आसन मिला है। सीता समाज के बीच रहती हैं अतएव अपने कर्तव्यों का पालन भी सम्यक रीति से करती हैं। यशोधरा का विरह एकान्तिक है, परन्तु सीता तो सभी कुछ समाज के बीच ही करती हैं। हँसना, रोना, गाना सभी कुछ लोगों के क्षेत्र में होते हैं।

यशोधरा और सीता दोनों की गूदड़ी में "राहुल" और 'लव कुश' जैसे लाल हैं। माताओं का बहुत कुछ दुख तो ये बालक ही अपनी तुतली बोली सुनाकर हर लेते हैं। उनकी क्रीड़ायें उनके आनन्द की वस्तु हैं। उनके बीच में रह कर कुछ समय के लिये वे अपने दुखों को भूल जाती हैं। यशोधरा कहती है:—

"किलक अरे मैं नेक निहारू
इन दाँतों पर मोती वारूँ"

तथा :—"तू मेरी उँगली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ" आत्म विभोर होकर वे उन्हें गले से लगा लेती हैं। दुखों की छाया उन पर से विलीन हो जाती है।

वे पति को थाती हैं। उनकी स्मृति स्वरूप ही वे उनके पास हैं अतएव उनको देखकर वे हर्ष से फूल उठती हैं। पति और पुत्र दोनों की मूर्तियाँ एक साथ ही उनकी आँखों के सामने झूला करती हैं। सीता के सम्बन्ध में उनकी एक सखी कहती हैं :—

"नयनों में थे युगल कुमार समा गये
हृदयों में श्यामली मूर्ति थी बस गई"

यशोधरा स्वयं उनके अपने लिये कहती है :—

तुमको दूध पिलाकर लूँगी
नयन नीर ही उनको दूँगी
पर क्या पत्त पातिनी हूँगी
मैंने अपने सब रस त्यागे

राहुल को भी हम उसके लिये कहते हुये सुनते हैं :—

गाती मेरे काज तू रोती उनके अर्थ
हम दोनों के बीच तू पागल सी असमर्थ

पति और पुत्र दोनों के बीच ही यशोधरा भटक रही है। सीता के बीच में तीसरी वस्तु समाज भी प्रवेश कर गई है इसलिये उसका विरह उतना गम्भीर न हो सका जितना यशोधरा का। विरह की बहुत सी दशाओं के चित्रण दोनों में हैं। यशोधरा में वे कुछ अधिक हैं। वास्तव में देखा जाय तो सीता पर "हरिऔधजी" ने अपने आदर्शों का भार लाद दिया है जिसमें उसका व्यक्तित्व छिप सा गया है। आदर्श रूप में ही वह सर्वत्र हमारे सामने आती है। व्यक्तिगत रूप में उसके दर्शन नहीं होते। खुलकर रो लेने तथा अपने भावों की अभिव्यञ्जना करने का अवसर वे उसे नहीं देते। सर्वत्र आदर्शों का अंकुश उसका गला दबाये रहता है।

पठनीय साहित्य

१—गुप्तजी की कला—डा० सत्येन्द्र
२—गुप्तजी की काव्य-धारा—श्री गिरीश
३—गुप्तजी के काव्य की कारुण्य धारा—धर्मेन्द्र
४—मैथिलीशरण : एक अध्ययन—रामरतन भटनागर
५—महाकवि हरिऔध—गिरीश
६—महाकवि हरिऔध का प्रिय-प्रवास—धर्मेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावाद का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण

(श्री रामानुज 'सौमित्र')

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक एवं वस्तुगत कविता के विरुद्ध छायावाद की भावात्मक एवं आत्मगत कविता का जन्म हुआ। स्थूल के प्रति सूक्ष्म का यह विद्रोह व्यक्त सत्ता में प्रच्छन्न चेतना की आत्मानुभूति की अभिव्यञ्जना के साथ ही साथ अतीन्द्रिय सौन्दर्य की मनोगत शृङ्गार भावना की अभिव्यक्ति के रूप में हुआ जिसमें प्रकृति पर नारी व्यक्तित्व का आरोप कर उसकी मूर्त्त माँसल रूप में सृष्टि की गयी! महादेवी के शब्दों में "छायावाद .....में प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतनता का आरोप भी!"

(आधुनिक कविः १ पृ० १०)

जैसे— कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात;
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार?

और— उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही माँ
वह अपनी वय बाली में?

प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास अथवा अनुभूति रहस्यवाद की मूल चेतना है और उसके व्यक्तिगत सौन्दर्य में चेतना की प्रतीति छायावाद की। यदि प्रकृति छायावाद के लिए दार्शनिक आकर्षण की वस्तु है तो रहस्यवाद के लिए चिन्तन की प्रेरणा।

यहाँ मैं प्रकृति के प्रति छायावादी दृष्टिकोण का ही विचार करूँगा!

प्रकृति की व्यष्टिगत सत्ता में एक समष्टिगत चेतना की अनुभूति कवि के सहज मौग्ध्य भाव की सन्तति है! प्रकृति की यही समष्टिगत चेतना जो उसकी खण्ड रूपता के बीच अखण्ड सम्बन्ध-सूत्र सी ज्ञात होती है छायावादी कवि के लिये एक जिज्ञासा की वस्तु है :—

मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन मुग्ध किसके बल —पन्त

तथा प्रकृति का नियमित विधान उसके सम्बन्ध चिन्तना का बंध खोल देता है। उसकी जिज्ञासा शान्त न होकर दार्शनिक भाषा में बदल जाती है।

महानील इस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
करते से किसका सन्धान?

—प्रसाद

यह जिज्ञासा जब अपने चरम रागात्मक आकर्षण में बढ़ जाती है तब कवि प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य में अन्तर्भुक्त समष्टिगत चेतना का आभास पाता है जिसमें कवि को व्यक्त सत्ता से अव्यक्त शक्ति का आमन्त्रण सा मिलता है।

न जाने नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन —पन्त

सिन्धु जिसपर गर्व करता
और जिसकी अर्चना को
स्वर्ग झुकता, क्यों न उसके
प्रति करे कवि अर्घ्य अर्पण
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमन्त्रण!

सापेक्ष्य सृष्टि से परे किसी निरपेक्ष सत्ता से निर्मित अपने अन्तः सौन्दर्य से 'मौन मुग्ध' प्रकृति के प्रति यह प्रकृत दृष्टिकोण है जिसमें मानवीय हृदय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज अनुभूतियों का भावात्मक व्यक्तिकरण है और जहाँ तक मैं समझता हूँ छायावाद की यह प्रवृत्ति 'संस्कृत' परम्परा को प्रशस्त करने वाली कही जा सकती है। क्योंकि प्रकृति के प्रति इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप छायावादी कविता में कहीं-कहीं संस्कृत काव्यों का सा संश्लिष्ट प्रकृति-वर्णन हुआ है :—

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल
अपलक, अनन्त, नीरव भूतल
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल
तन्वगी गङ्गा ग्रीष्म विरल, आदि
—पन्त

आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे
केशर के केश कली के छुटे
स्वर्ण-शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया।
—निराला

(इसका सौन्दर्य देखने के लिये पढ़िये 'मेरे गीत और कला'—निराला : प्रबन्ध प्रतिभा पृ० २८३)

किन्तु छायावाद की प्रधान प्रवृत्ति प्रकृति पर मानव व्यक्तित्व का आरोप करना है जिसके मूल में कवियों की अतृप्त काम-वासना है जिसकी परिणति प्रकृति के मानवीकरण (Personification) में हुई है। नगेन्द्रजी ने प्रकृति पर मानवी व्यक्तित्व के बारे में इसी फ्रायडीय दृष्टि कोण से कहा है "यह कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं है, यह मन की कुण्ठित वासना ही है जो अपचेतन में पहुँच कर सूक्ष्म रूप धारणकर प्राकृतिक प्रतीकों द्वारा अपने को व्यक्त करती है। (विचार और अनुभूति)। फ्रायड ने इन्हीं काम-वासनाओं के सम्बन्ध में जो कि इस प्रकार से 'सांस्कृतिक-सृजन' में व्यस्त हो जाती हैं, उनके महत्व को प्रगट करते हुए लिखा है—

"The sexual are amongst the most important of the insltinctive forces thus utilised, they are in this way sublimated, that is to say, their energy is turned aside from its sexual goal and diverted to-wards other ends" (A General introduction To Psycho-Analysis)

प्रकृतिक प्रतीकों की ओर प्रवृत्त होने वाली इस प्रवृत्ति का किस प्रकार व्यक्तिकरण हुआ है यह यहाँ दिखाने की आवश्यकता नहीं! तो यह दृष्टिकोण क्रमशः किस प्रकार विकसित होता गया उसी का उल्लेख यहाँ किया जायगा।

'तार सप्तक' में अज्ञेय ने अपने वक्तव्य में लिखा है 'आज का मानव मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ दमित और कुण्ठित हैं! उनकी सौन्दर्य-चेतना भी इससे आक्रान्त है"। यह एक कवि की जीवन सम्बन्धी फ्रायडीय मान्यता है। व्यक्ता-व्यक्त अभिव्यक्ति छायावादी काव्य में उत्तरोत्तर होती रही! इस प्रवृत्ति के विकास का क्रम इस प्रकार का है।

अनन्त की अभ्यर्थना में पन्त ने एक स्थान पर बसन्त (प्रेमी) के स्पर्श से पुलकित वसुधा (प्रेमिका) का चित्र उपस्थित किया है। जिसमें यद्यपि प्रतीक प्राकृतिक ही हैं किन्तु उनके पारस्परिक व्यापारों को जिस मेहनत के साथ कवि ने रति-क्रीड़ा के रूप में आरोपित किया है वह द्रष्टव्य है।

नव बसन्त के सरस स्पर्श से
पुलकित बसुधा बारम्बार
सिहर उठी स्मित शस्यावलि में
विकसित चिर यौवन के भार

और भी कुछ पंक्तियाँ देखिये—

बजा दीर्घ स्वासों की भेरी
सटा सटे कुच काशाकार
× × ×
बाल युवतियाँ तान कान तक
चल चितवन के बन्दन बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ वसन्तागम की उन्मादना से पीड़ित 'बाल-युवतियों' की तस्वीर उपस्थित की गयी है ! इनकी प्रतीक्षा में तो नहीं किन्तु इनकी अपने 'देव' का स्वागत करने की तैयारी में जो भाव दर्शित हैं, वह शुद्ध रीतिकालीन शृङ्गार का स्मरण दिलाते हैं।

अब निराला की जूही की कली से ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ लीजिये यों पूरी कविता बिना किसी गुप्त (Latent) भाव के प्रेमी-प्रेमिका के रति-विलास का चित्र उपस्थित करती हैं—

निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की,
कि झोकों की झड़ियों से सुन्दर सुकुमार
देह सारी झकझोर डाली
मँसल दिये गोरे कपोल गोल

शेफाली में कवि कितनी माँसलता उड़ेले देता है !

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यङ्क पर सोती शेफालि के।

इस प्रकार छायावाद की इन प्रवृत्तियों में जहाँ एक ओर भाव स्पष्ट करने के लिए अभिव्यक्तिगत सौंदर्य लाने का प्रयत्न भी है वहाँ रति-चित्रों को भी पाठकों के सामने उपस्थित कर देने का खुला मन्तव्य प्रगट होता है। लेकिन प्राकृतिक प्रतीकों के द्वार से वहिर्गत होने वाली कुण्ठित वासना कभी-कभी सीधे से भी प्रगट हुई है। यह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

नयनों के डोरे लाल गुलाल
भरे खेली होली
जागी रात सेज प्रिय पति-संग
रति सनेह-रँग घोली।
× × ×
प्रिय कर-कठिन-उरोज-परस
कस कसक मसक गयी चोली !
× × ×
उठी सँभाल बाल, मुख लट, दीप बुझा
हँस बोली !
रहो यह एक ठठोली !

(गीतिका पृ० ४६)

इस प्रवृत्ति का विकास प्रत्यक्षतः आगे भी हुआ है किन्तु यह विकास भावात्मक न हो कर गुणात्मक होता गया है। सामाजिक विधान की यौन-वर्जनाओं के प्रति यह प्रच्छन्न प्रतिक्रिया नारी को अपने पास पाकर तथा सामाजिक सेन्सर के त्रस्त होने के कारण अपने प्रकृत रूप में हुई है। नन्ददुलारे वाजपेई के शब्दों में यह प्रतिक्रिया "अशरीरी सौन्दर्य के प्रति माँसल सौन्दर्य !" की प्रतिक्रिया है। इस प्रतिक्रिया में स्वस्थ शृङ्गार की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि उन्मद वासना का व्यक्तिकरण है। अशरीरी सौन्दर्य से माँसल सौन्दर्य की ओर प्रवृत्त विकास ही भावात्मकता से गुणात्मकता की ओर प्रगति है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्दों में कहना चाहिये। प्रकृति पर प्रथमतः केवल मानव व्यक्तित्व का आरोपण किया गया, जिसके प्रशंसनीय उदाहरण निराला की संध्या-सुन्दरी ! प्रसादजी की 'बीती विभावरी जागरी' पन्त की 'सन्ध्या' और महादेवी की धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनी' हैं ! यह भावात्मक अभिव्यक्ति प्रकृति में मानवी-व्यापार गुणों का आरोप कर क्रमशः गुणात्मक होती गई है। (उदाहरण ऊपर दे चुका हूँ)। अज्ञेय की एक कविता में यह अपने पूर्ण परिणत रुप में प्रगट होती है।

घिर गया नभ-उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका सा
विशद श्वासायत, चिरातुर
छा गया इन्द्रका नील वक्ष ..

इसमें सावनीय वातावरण से कवि ने प्राकृतिक प्रतीक चुन कर अपनी स्वीकारोक्त कुण्ठा का निर्गमन किया है।

इस प्रकार छायावाद का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण जहाँ आकर्षण की सहज अनुभूति में आरम्भ होता है वहाँ उसका विकास उसमें प्राण-चेतना की भावना कर कवियों की यौनीक (Sekual) भावनाओं के व्यक्तिकरण में हुआ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादजी की दो कहानियाँ

(श्री शिवबालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० (आनर्स)

आकाशदीप—

महाकवि प्रसाद की उद्दीयमान प्रखर प्रतिभा की अनन्त कान्ति से हिन्दी साहित्य का कोना-कोना आलोकित है। उर्वर मस्तिष्क, कुशाग्र बुद्धि, अनुभूतिपूर्ण नेत्र और कल्पना प्रवण हृदय पाकर कविता, नाटक, निबन्ध, उपन्यास और कहानी जो कुछ उन्होंने लिखा वह साहित्य की स्थायी वस्तु हो गई। प्रसादजी ने अपनी कोमल कल्पनाओं और उदात्त भावनाओं के द्वारा यद्यपि साहित्य के प्रत्येक अङ्ग का स्पर्श किया है किन्तु कहानी में उनकी भावुकता का विशिष्ट स्थान है। और भावुकता-प्रधान कहानियों के लिए जैसी भाषा और जैसे वातावरण की अनिवार्य आवश्यकता होती है वह सब साधन सँजोने और सामग्री जुटाने में प्रसादजी अपनी प्रज्ञा का यथेष्ट प्रयोग करते हैं। अन्य कहानियों की भाँति 'आकाशदीप' की भावुक 'प्रसाद' के उद्भावना-प्रवण मस्तिष्क की अनूठी उद्भूति है।

कथानक के विषय में यदि अत्युक्ति न हो तो कहा जा सकता है कि भावुकता के आगे बेचारी कथावस्तु को कोई स्थान ही नहीं मिलता। जहाँ प्रेमचन्दजी की कहानियों में चारित्रिक विशेषताओं के स्पष्टीकरण के लिए घटनाओं की सृष्टि दीखती है वहाँ प्रसादजी मानव हृदय के विशिष्ट तत्व की निदर्शना कर मानवीय जीवन की आरोह और अवरोह के ऋजु-कुटिल मार्ग पर चलाते हुये हृदय का अन्तर्द्वन्द्व निरूपित करते हैं। अतः वहाँ कथावस्तु का स्थान ही नहीं रह जाता। किन्तु अन्तर्द्वन्द्व चरित्र के विकास के निर्देशन में यथेष्ट साहाय्य सम्प्रदान करता है। अतएव इसके प्रस्फुटीकरण के हेतु वातावरण की सुष्ठु पीठिका प्रस्तुत करने में उनकी कलम-कूर्चिका गहरे और हलके रँगों का प्रयोग करती है। 'आकाशदीप' का आकस्मिक् उपक्रम 'वंदी' किसके हृदय को वन्दी नहीं कर लेता। कथोपकथन शैली के इस प्रारम्भ से कहानी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। प्रसिद्ध अँग्रेज आलोचक स्ट्रांग (Strong) के ये शब्द सार्थक होते हैं—

A story should only start once. having started it should go straight ahead and contain nothing that does not lead diractly or indirectly to its climax.

नौका पर दो व्यक्तियों का मिलन जिनमें एक बन्धनों से मुक्त होने की अपेक्षाकृत निद्रा को प्रियतर समझता है कितना सुन्दर है! उनमें एक स्त्री भी है और इन शब्दों में 'यह क्या तुम स्त्री हो!' जिस प्रकार से वन्दी बुद्धगुप्त को कौतूहल हुआ था उसी प्रकार अध्येता के अन्तर में आन्दोलन हो उठेगा। यह कहानी की विशेषता ही मानी जायगी।

करोति रागम् हृदि कौतुकाधिकम्

—वाणभट्ट कृत कादम्बरी से

वातावरण-चित्रण के सम्बन्ध में वे हृदय के चक्षुओं से काम लेते हैं। अम्बुधि में उठने वाले अन्धवायु का-तूफान का-इतना सुन्दर वर्णन समुद्रतट पर स्थित द्वीप के निवासी अथवा नाविक ही कर सकते हैं। किन्तु जगन्नाथजी की यात्रा करने वाला प्रसाद का कहानीकार इसमें भी सफल ही हुआ है।

प्रेम की प्रदीप्ति के हेतु प्रकृति को उद्दीपन विभाव के रूप में अङ्कित करने में प्रसादजी जिस तूलिका से काम लेते हैं वह हिन्दी के बहुत कम आधुनिक लेखकों को प्राप्त हो सकी है। उदाहरणार्थ—

"सामने शैलमाला की चोटी पर हरियाली में, विस्तृत जल में नील पिङ्गल सन्ध्या, प्रकृति की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी।"

"उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण जाल का कुहुक स्फुट हो उठा जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष रिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी।"

अन्तर्द्वन्द्व पात्रों की वह आन्तरिक हिलोर है जिससे चरित्र रूपी जल का उत्थान-पतन प्रकट होता है। बुद्धगुप्त को जिसे चम्पा अपना पितृहन्ता समझती है (वास्तव में जो पितृहन्ता नहीं था) अन्तर की अनन्त अनुराग-राशि प्रदान करने पर भी चम्पा के हृदय में फिर प्रतिहिंसा की भावना जाग्रत करके प्रसादजी ने स्वाभाविक चित्र समक्ष रखा है। और यह चित्र और भी स्वाभाविक तब प्रतीत होता है जब चम्पा के मुख से हम सुनते हैं, "मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।" जलदस्यु शब्द की व्यञ्जना सामान्य पाठक को बोधगम्य नहीं हो सकती। कारण यह है कि वाक्य की छोटी सी मंजूषा में इतना बहुमूल्य शब्द-रत्न कैसे आ सकता है। 'जलदस्यु' कहने में उसने निष्ठुर बुद्धगुप्त की चारित्रिक विशेषता बतलाई है। और फिर जब वह तलवार को जलमग्न कर चुकी और बुद्धगुप्त ने यह विश्वास किया कि वह क्षमा कर दिया गया। वह विश्वास शब्द पर चौंक पड़ती है। नारी हृदय के प्रत्येक स्पष्ट, अस्पष्ट भाव का रूपाङ्कन इस वाक्य में मिलेगा, "जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी उसी ने धोखा दिया तब कैसे कहूँ?" इन शब्दों से चम्पा उन्हीं की श्रद्धा—अथवा किसी भी नारी के—समीप पहुँच जाती है जो कह चुकी है—

हाँ आज समझ तो पाई हूँ मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सारी कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ।

अब कहानी की भाषा शैली पर आइये। भावुक प्रसाद भाषा-भामिनी को इस प्रकार नपे तुले शब्दालङ्कारों में सँजो देते हैं कि मानवीय अन्तर का कोना-कोना स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है। बुद्धगुप्त के शब्द लीजिये, "मेरा पत्थर सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि की तरह द्रवित हुआ ×××× चम्पा मैं ईश्वर को नहीं मानता—मैं पाप को नहीं मानता—मैं दया को नहीं समझ सकता ××× पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है।" हालावादी बच्चन के शब्द यहाँ चरितार्थ होते हैं—

प्रेम हाय मानव स्वभावकी सबसे भारी दुर्बलता है

अलङ्करण और प्रतीक पद्धति के आश्रयण से काव्यमयी भाषा भी द्रष्टव्य है, 'निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकराकर लहरें बिखर जाती हैं।" ××× "पच्छिम में पथिक थक गया था उसका मुख पीला पड़ गया था।"

पच्छिम के पथिक के मुख को पीला बता देने में प्रसादजी ने गद्य में भी रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार का बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनके शब्दों में वह शक्ति है जो बरबस ही हृदय की रागात्मिक वृत्ति को अपने में तल्लीन कर लेती है।

'इतना जल! इतनी शीतलता! हाय हृदय की प्यास न बुझी' शब्दों को पढ़कर प्रसिद्ध अँगरेज कवि कॉलरिज के Ancient Mariner में प्रयुक्त ये शब्द स्मरण हो आते हैं—

Water water every where not a drop to drink

हिन्दी और अँगरेजी की यह कातरतापूर्ण विवशता सहृदय हृदय की सम्वेदनशीलता का संस्पर्श करती है।

'आकाशदीप' कहानी में न सनातन सत्य स्खलित दीखता है और न प्रसादजी के अन्तर की चिरन्तन भावना ही खर्वित होती ज्ञात होती है। 'शङ्कर' का आराधक 'जयशङ्कर' साहित्य में 'शिव' के स्वरूप की प्रतिष्ठा करना चाहता है। और जिस प्रकार शिवत्व की यह भावना उनके काव्य और नाटकों में विद्यमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसी प्रकार इस कहानी में भी अन्तर्लीन है। बात यह है कि शङ्कर ने विष का प्याला पीकर आदर्श प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया था। बस नीलकण्ठ के पदचिह्नों पर चलने वाला प्रसाद का कहानीकार आकाशदीप में वासना को ठोकर दे उसका गला घोंटकर आदर्श का अनुरागी बन जाता है।

कहना न होगा कि बुद्धगुप्त और चम्पा ऐसे अनेक पात्र प्रसादजी की अन्य साहित्यिक कृतियों में भी हैं। (उदाहरण के लिए देवसेना, स्कन्द और मधूलिका तथा अरुण विचारणीय हैं।) और यदि बहुत गहराई तक पहुँचा जाय तो आँसूकार 'प्रसाद' और सुमन नोचकर मनमानी करनेवाले प्रिय में यही भावना अन्तर्हित है। तथा इस भाव में प्रसादजी के जीवन का प्रतिविम्ब ही दृगगोचर होता है, यदि श्री विनोदशङ्कर व्यास के शब्दों पर विश्वास किया जाय *। अतएव कहानी का अन्त आकशदीप जलाने तथा मानवीय सेवा करने की भावना में सुन्दर ही बन पड़ा है। शीर्ष स्थान पर पहुँचने वाला यह आदर्श सर्वथा श्लाघ्य है।

चरित्र की महत्ता बौद्ध दर्शन के 'कारुण्यमातन्वते' और 'परोपकाराय सताम् विभूतयः' प्रभृति आदर्शों पर चलनेवाले प्रसाद ने चम्पा के इन शब्दों में दिखादी है है—"प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" बेचारा पाठक क्या सोचता है और परिणाम का वैचित्र्य उसे कौतूहल के उस स्थान पर पहुँचा देता है जहाँ पहुँचने की सम्भवतः उसे आशा न थी। किन्तु फिर भी वह स्थल काव्य की मधुमती भूमिका का सा आनन्द देता है और वह लेखक का निर्दिष्ट स्थान है 'जिसके आगे राह नहीं' हैं।

* देखिये प्रसाद और उनका साहित्य—लेखक विनोदशङ्कर व्यास।

पुरस्कार—

दूसरी आलोच्य कहानी 'पुरस्कार' है, ऐतिहासिक तथ्यों का, जो काल की धूमिलपटी में विलीन होते जा रहे थे अथवा जिनका चित्र खींचते समय इतिहासकार अपनी मोटी झोंटी लेखनी का प्रयोग कर उसे विकृत कर रहे थे, प्रसादजी ने अपने कुशलकरों से निरूपण कर भारती-भण्डार को भरा है।

प्रसाद-हिन्दू इतिहास का प्रेमी प्रसाद—विश्वजननी सार्वकालिक मानवीय अन्तर-भावनाओं का विश्लेषण तथा विशदीकरण करते हुये इस कहानी में दृगगोचर होते हैं। अतएव इस कहानी के लिए इतना कहना न्याय सङ्गत होगा कि उनकी अन्य कहानियों की भाँति यह भी भावुकता से ओत-प्रोत है। हृदय के सूक्ष्म-भावों का चित्रण मानव-मन के सङ्कल्प विकल्पों का अन्तर्द्वन्द्व, किंकर्त्तव्यविमूढ़ता निराशा और आशा, एवं हर्ष तथा विषाद सभी कुछ अतीव कुशलता के साथ, इसमें समाविष्ट हुए हैं। माना कि कहानी का सम्बन्ध समय विशेष से है पर कहानी फिर भी देशप्रेम और अनुराग की विश्वव्यापी भावना के कारण सहृदय पाठक के मन में एक गुदगुदी पैदा हो जाती है।

कथानक की दृष्टि से कहानी चरित्र प्रधान है किन्तु घटना की यमुना चरित्र की गंगा में मिल गई है; यही नहीं, अपितु भावुकता भी अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति यहाँ विद्यमान है। ऐतिहासिक तथ्य पर कल्पना की कलई करने से रंग निखर आया है इसीलिये किसी आलोचक के ये शब्द सार्थक होते हैं—"इतिहास में सब कुछ यथार्थ होते हुये भी वह असत्य है और कथा-साहित्य में सब कुछ काल्पनिक होते हुये भी वह सत्य है।"

कथोपकथन कहानी के सौन्दर्य में चार चाँद लगा देता है। प्रसादजी ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है। हम स्वाभाविक कथोपकथन का आनन्द मधूलिका और अरुण एवं महाराज और मधूलिका के वार्तालाप में पा सकते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधूलिका—राजकुमार ! मैं कृषक बालिका हूँ।

'कृषक' शब्द के प्रयोग के द्वारा मधूलिका ने अपनी दयनीय दशा का रूपान्तर किया है।

"तो फिर निराश लौट जाऊँ ?"

"सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ ? तुम्हारी यह प्रार्थना !"

महाराज के हृदय में उठने वाले संकल्प विकल्पों के साथ 'सिंहमित्र की कन्या' के भावचित्र के द्वारा उपकृत व्यक्ति का कोना-कोना स्पष्ट हो जाता है।

प्रसादजी इतिहास के जिज्ञासु विद्यार्थी थे, हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के अनन्य आराधक थे और थे साहित्य की नाड़ी के सुपारखी। ऐतिहासिक वातावरण से वे पूर्णतः परिचित थे। तत्कालीन राज्यों के पारस्परिक विरोधों से पूर्ण अवगत होने के कारण रण विषयक नीति और कूटनीति का परिचय इस कहानी में सहज मिलता है। इतना होते हुये भी कहानी देश काल दोष (anachronism) से सर्वथा मुक्त। यद्यपि अँगरेजी का लब्धप्रतिष्ठ नाटककार शेक्सपियर भी इस दोष से मुक्त न था।

कहानीकार प्रसाद के हृदय में उनका कवि सदा पैठा रहता है और वह कवि जिसने नारी हृदय पाया है। अतएव गल्पों में भी भाषा की सुकुमार मनोमोहक छटा देखने में आती है। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्राचुर्य उनकी भाषा की विशेषता है यथा स्वस्त्ययन, वित्तुम, अभियान। किन्तु संस्कृत के इन तत्सम शब्दों के प्रयोग से भी भाषा में अस्वाभाविकता नहीं और न हृदयेशजी की कहानियों की भाषा जैसी बनावट ही। पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग के साथ ही साथ कहानी में 'गोठ' सदृश, देशज शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। सैद्धान्तिक वाक्यों द्वारा लेखक की दार्शनिकता मुखरित हो उठी है जैसे—

अरुण—"मधूलिका बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है।"

चरित्र-चित्रण कहानी की प्रमुख विशेषता है। मधूलिका अरुण और महाराज के चरित्र खरे काञ्चन की भाँति शुभ्र एवं चमत्कृत हैं। मनस्विनी मधूलिका आत्मगौरव की उत्कृष्ट आदर्श, प्रेम की सजीव प्रतिमा, पैतृक सम्पत्ति की उपासिका, जातीय-गरिमान्विता और कुलाभिमानिनी है। साथ ही राष्ट्रानुराग से उसका अन्तर सदैव उच्छ्वसित रहता है। परिस्थिति उसके चरित्र को मोड़ देती है। उसके इन शब्दों से जहाँ एक ओर उसकी कातरता और मनुहार टपकती है वहीं उसका स्वाभिमान स्फुटित हो जाता है। देखिये—

"यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियम से यदि मानव-हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर खिंचकर एक कृषक बालिका का अपमान न करने आता।"

मानव-हृदय के इस विश्वव्यापी व्यापार के कारण ही तो शान्तुन को धीवर कन्या और लार्ड टेनीसन किंग काफेटुवा (King caphatia) को भिखारिणी बालिका से प्रेम-पाश ही में नहीं विवाह-सूत्र में बँधना पड़ा था। 'मधूलिका का भोला सौन्दर्य और सरल चितवन' ही तो अरुण को वशीभूत कर लेती है और तब टेनीसन के शब्दों को उद्धृत करना पड़ता है—

So sweet a face, such angel grace
in all that land had never been.

उसके हृदय-गगन पर भवभूति की मालती की भाँति कर्त्तव्याकर्तव्य के सघन घन मँड़राते हैं किन्तु विचार-विवेक की वायु उन्हें दूर भगा देती है। उसके वक्षस्थल पर कर्तव्य और अनुराग का भीषण संग्राम छिड़ा हुआ है। एक ओर प्रणय दूसरी ओर राष्ट्रानुराग उसकी हृदय-तुला पर तुल रहे हैं। देश-प्रेम का पलड़ा नीचे जा रहा है। बस यही उसके चरित्र का परिवर्तन विन्दु है।

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या रामगुप्त और चन्द्रगुप्त परस्पर अनुरक्त थे ?

प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०

'जर्नल एशियाटिक' (अक्टूबर-दिसम्बर के अङ्क, ई० सन् १९२३) में डाक्टर सिलवाँ लेनी ने 'नाट्य-दर्पण' की हस्तलिखित प्रति में से विशाखदत्त रचित 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक नाटक के कुछ उद्धरण प्रकाशित करवाये थे जो यहाँ हिन्दी अनुवाद सहित उद्धृत किये जाते हैं—

भिन्नस्य प्रस्तुतादन्यस्य त्रिगतमनेकार्थगतम् त्रिशब्दस्य अनेकार्थत्वात् तेनद्व्यर्थमपि। यथा देवीचन्द्रगुप्ते द्वितीयेऽङ्के प्रकृतीनामाश्वासनाय शकस्य ध्रुवदेवीसंप्रदानेऽभ्युपगते राज्ञा रामगुप्तेन आत्मवधनार्थं यियासुः प्रतिपन्नध्रुवदेवी नेपथ्यः कुमारचन्द्रगुप्तो विज्ञपयन्नुच्यते। यथा

राजा - उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। न खल्वहं त्वां परित्यक्तुमुत्सहे।

प्रत्यग्रयौवनविभूषितमङ्गमेतद्
रूपश्रियं च तव यौवनयोग्यरूपाम्।
भक्तिं च मय्यनुपमामनुरुध्यमानो
देवीं त्यजामि बलवांस्त्वयि मेऽनुरागः॥

यह उद्धरण 'देव चन्द्रगुप्तम्' के द्वितीय अङ्क से लिया गया है। सेना अथवा प्रजा की घबराहट को दूर करने के लिए राजा रामगुप्त ने अपनी रानी ध्रुवदेवी को शकराज को देने की शर्त मञ्जूर कर ली है। रामगुप्त का छोटा भाई चन्द्रगुप्त इस बात को पसन्द नहीं करता, इसलिए वह स्वयं स्त्री-वेश बना कर शकराज के यहाँ जाने के लिए तैयार हो गया है। रानी ध्रुवदेवी भी वहाँ आ पहुँची है। राजा को स्त्रीवेशधारी चन्द्रगुप्त के साथ देख कर वह शङ्का में पड़ जाती है और छिप कर दोनों की बातचीत सुनती है। चन्द्रगुप्त रामगुप्त के पैरों पड़ कर कहता है कि रानी ध्रुवदेवी को शकराज के यहाँ न भेज कर मुझे ही भेज दीजिये जिस पर रामगुप्त उत्तर देता है— "उठो, उठो; तुम्हारा त्याग करने में मैं असमर्थ हूँ। नव यौवन से विभूषित तुम्हारा यह अंग, यौवन के अनुरूप तुम्हारा मोहक सौन्दर्य और मुझमें तुम्हारी अनुपम भक्ति—इन सबको देखते हुए मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता, ध्रुवदेवी को त्याग देता हूँ। तुम पर तो मेरा प्रबल अनुराग है, गाढ़ी प्रीति है।

ध्रुवदेवी— (अन्यस्त्री शङ्कया) जइ भक्तिं अवेक्खसि तदो मं मन्दभाइणिं ण परिच्चइस्ससि॥ यदि भक्तिमवेक्षसे ततो मां मन्दभागिनीं न परित्यक्ष्यसि।

ध्रुवदेवी (अन्य स्त्री की शङ्का से)—यदि आप भक्ति की ओर देखें तो मुझ मंदभागिनी का कभी त्याग नहीं करेंगे।

राजा—अपि च त्यजामि देवीं तृणवत् त्वदन्तरे

तुम्हारे लिए मैं देवी को तृण तुल्य छोड़ सकता हूँ।

ध्रुवदेवी—अहं वि जीविदं परिच्चअन्ती अज्जउत्तं पढमदरं जेव्व परिच्चइस्सं। अहमपि जीवितं परित्यजन्ती आर्यपुत्रं प्रथमतरमेव परित्यक्ष्यामि।

(ध्रुवदेवी अलग)—उसके पहले तो मैं ही प्राण-त्याग करके स्वामी को छोड़ दूँगी।

राजा—त्वया विना राज्यमिदं हि निष्फलम्।

राजा—तुम्हारे बिना यह राज्य निष्फल है।

ध्रुवदेवी—ममं वि संपदं णिप्फलो जीवलोओ सुपरिच्चअणीओ भविस्सदि। ममापि साम्प्रतं निष्फलो जीवलोकः सुपरित्यजनीयो भविष्यति।

मेरे लिये भी अब यह मर्त्यलोक निष्फल होने के कारण आसानी से छोड़ा जा सकेगा।

राजा—दृढेति देवीं प्रति मे दयालुता।

राजा—देवी के प्रति मेरी दयालुता अब भी दृढ़ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवदेवी—इअं अज्जउत्तस्स दयालुदा जं अणवरद्धो जणो अणुगदो एव्वं परिच्चईअदि ।

इयमार्यपुत्रस्य दयालुता तदनपराद्धो जनोऽनुगत एवं परित्यज्यते ।

(ध्रुवदेवी अलग)—जिसने कोई अपराध नहीं किया और जो आर्य पुत्र की अनुगामिनी है उसका इस प्रकार परित्याग किया जा रहा है और फिर भी इसे 'दयालुता' के नाम से अभिहित किया जा रहा है ! क्या खूब !

राजा—परं त्वयि स्थितं स्नेहनिबन्धनं मतः ।

राजा—किन्तु तुम पर मेरा अनन्य स्नेह है ।

ध्रुवदेवी—अदो जेव्व मन्दभाआ परिच्चइआ । अतएव मन्द भागा परित्यज्ये ।

ध्रुवदेवी—इसीलिए तो मुझ मन्दभागिनी का परित्याग किया जा रहा है ।

राजा—त्वय्युपारोपितप्रेम्णा त्वदर्थं यशसा सह । परित्यक्ता मया देवी जनोऽयं जन एव मे ॥

राजा—तुम्हारे प्रेम के कारण अपनी कीर्ति के साथ-साथ मैंने महादेवी को छोड़ दिया ।

ध्रुवदेवी (सूत्रधारिणीं प्रति) हज्जे, ईदसी अज्ज-उत्तस्स करुणाहीणदा । हज्जे, ईदसी आर्यपुत्रस्य करुणाहीनता ।

ध्रुवदेवी—अरी, इस हद तक आर्यपुत्र निष्ठुर हो गये हैं ।

सूत्रधारिणी—देवि, पडन्ति चन्दमण्डलादो चडुलाओ । किं, एत्थ कहिज्जदि । देवि, पतन्ति चन्द्र-मण्डलाद् विद्युतः । किमत्र कथ्यते ।

सूत्र—हे देवि ! चन्द्रमण्डल से बिजलियाँ गिरती हैं । क्या कहा जाय !

राजा—देविवियोगदुःखार्तां त्वमस्मान् रमयिष्यसि ।

राजा—देवी के वियोग के दुःख से हम दुखी होंगे किन्तु तुम्हारे पास रहने से हम उस दुःख को भूल जायँगे ।

ध्रुवदेवी—विजोअदुक्खं वि दे अकरुणस्स अत्थि । वियोगदुःखमपि तेऽकरुणस्यास्ति ।

ध्रुवदेवी—तुझ जैसे निर्दय को क्या मेरे वियोग का दुःख भी होगा ?

राजा—त्वद्दुःखमपनेतुं सा शतांशेनापि न क्षमा । इत्येतत् स्त्रीवेषधारिचन्द्रगुप्तबोधनार्थमभिहितमपि विशेषणसाम्येन स्त्रीविषयं प्रतिपन्नमिति भिन्नार्थं योजकम् ।

राजा—तुम्हारे वियोग का जो दुःख मुझे होगा, उसका शतांश भी ध्रुवदेवी दूर नहीं कर सकेगी ।

ऊपर जो उद्धरण दिये गये हैं उनको पढ़ कर प्रश्न उपस्थित होता है कि रामगुप्त और चन्द्रगुप्त क्या परस्पर एक दूसरे को चाहते थे ? क्या उनमें मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे ? उद्धरणों से तो ऐसा जान पड़ता है जैसे रामगुप्त का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रगाढ़ अनुराग हो। किन्तु प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी', राखाल बाबू की 'ध्रुवा' और मुन्शीजी की 'ध्रुवस्वामिनी देवी'—इन तीनों कृतियों को पढ़ लेने पर कहीं भी इस बात का आभास नहीं होता कि रामगुप्त और चन्द्रगुप्त में परस्पर अच्छे सम्बन्ध थे । ऊपर के अवतरणों पर विचार करते हुए श्री अल्टेकर कहते हैं कि हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि यहाँ श्लेष का प्रयोग किया गया है, इसलिए केवल इस अवतरण के आधार पर ही इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि रामगुप्त और चन्द्रगुप्त परस्पर अनुरक्त थे, उन चुने हुए श्लिष्ट विशेषणों के नाटकीय प्रयोजन से अपनी अज्ञता प्रकट करना होगा। इन दोनों भाइयों में पहले चाहे जैसा सम्बन्ध रहा हो, शकराज की मृत्यु के बाद तो अवश्य ही परस्पर कटुता पैदा हो गई होगी । कटुता पैदा होने के दो कारण हो सकते हैं—(१) या तो रामगुप्त समझने लगा होगा कि चन्द्रगुप्त का असाधारण सामर्थ्य मेरे लिये खतरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क है अथवा (२) चन्द्रगुप्त के हृदय में राज्य-
सिंहासन के लिए स्वभावतः ही महत्त्वाकांक्षा जगी
होगी। जनता के मन में यह भी रहा हो कि संभवतः
शकों से प्रतिशोध लेने के लिए शक जाति फिर आक्रमण
करेगी और उस हालत में किसी योग्य शासक के
बिना काम नहीं चलेगा। इसलिए जनता ने सब
कुछ से चन्द्रगुप्त का ही समर्थन किया होगा; रामगुप्त
जैसे निर्बल शासक को पाकर मन्त्रि-वर्ग के भी आत्म-
सम्मान को ठेस पहुँचती होगी, इसलिए संभव है
मन्त्रियों ने भी चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठाने के
लिए पूरे प्रयत्न किये हों। कारण चाहे कुछ भी रहे
हों किन्तु यह निश्चित है कि दोनों भाई शीघ्र ही एक
दूसरे के शत्रु बन बैठे थे। चन्द्रगुप्त को तो रामगुप्त
से अपने प्राणों का भय हो गया था, इसलिए अपनी
रक्षा के लिए अथवा रामगुप्त का वध करने के लिए
उसने पागलपन का बहाना कर लिया था। इस
सन्दर्भ में 'देवी चन्द्रगुप्तम्' का निम्नलिखित अंश
पढ़िये -

"तथा हि देवीचन्द्रगुप्ते पञ्चमेऽङ्के एसो सियकर-
सत्थपणासिअ-असेसवेरितिमिरोहो । णिअविहवएण
चन्दो गअणं गहलङ्घिओ विसइ ॥

इयं (ध्रुवा)—स्वापायशंकिनः कृतकोन्मत्तस्य
कुमारचन्द्रगुप्तस्य चन्द्रोदयवर्णनेन प्रवेशप्रतिपादिका।

यह उद्धरण 'देवीचन्द्रगुप्तम्' के पंचम अंक से
लिया गया है। चौथे और पाँचवे अङ्क के अन्तराल में
चन्द्रगुप्त ने शकराज का बध कर दिया है। रंगभूमि
पर दिखलाई पड़ते हुए चन्द्रगुप्त का चतुराई से यहाँ
उल्लेख हुआ है। चन्द्र की अन्योक्ति को लेकर ध्रुवा
के द्वारा इस प्रवेश का प्रतिपादन नाट्यकार ने कर-
वाया है। ऊपर जिस गाथा छन्द का प्रयोग हुआ है
उसके दो अर्थ हैं (१) चन्द्रमा से संम्बन्ध रखने वाला
और (२) चन्द्रगुप्त से संबन्ध रखने वाला। संस्कृत
छाया सहित दोनों अर्थ यहाँ दिये जाते हैं—

(संस्कृत)—एष सितकरसार्थप्रणाशिताशेष-
वैरितिमिरौघः। निज विभवेन चन्द्रो गगनं लंघितग्रहो
विशति ॥

(चन्द्र-पक्ष)—अपनी श्वेत किरणों के समूह से
जिसने शत्रु रूप संपूर्ण अन्धकार के समूह को नष्ट
कर दिया है, ग्रहों का उल्लंघन करके ऐसा चन्द्रमा
अपने ऐश्वर्य के साथ आसमान में प्रवेश करता है।
(चन्द्रगुप्त-पक्ष)—एष शितकरशस्त्रप्रणाशिताऽशेष-
वैरितिमिरोघः। निज विभवेन चन्द्रो गगनं ग्रहलङ्घितो
विशति ॥

अपने हाथ के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा जिसने महामत्स्य
जैसे शत्रु का अवरोध नष्ट कर दिया है और जिसमें
ग्रहकृत उन्माद व्याप्त है। ऐसा चन्द्रगुप्त अपने प्रभाव
से आकाश में प्रकट होता है।

ऊपर के उद्धरण "स्वापायशंकिनः कृतकोन्मत्तस्य"
से स्पष्ट है कि अपने अनिष्ट की आशङ्का से चन्द्रगुप्त
ने पागलपन का बहाना किया था। श्री के० एम०
मुन्शी ने अपने नाटक 'ध्रुवस्वामिनी देवी' में चन्द्रगुप्त
के छद्मोन्माद का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है
किन्तु प्रसादजी ने अपने नाटक में इस प्रसंग का
समावेश नहीं किया है।

'देवीचन्द्रगुप्तम्' के उद्धरणों से ऐसा लगता है कि
रामगुप्त और चन्द्रगुप्त में पहले पहल तो भ्रातृसुलभ
अनुराग रहा होगा, बाद में वह कटुता और घोर
शत्रुता में परिणत हो गया जिसके परिणाम स्वरूप
रामगुप्त की हत्या हुई और चन्द्रगुप्त को राज्य सिंहासन
तथा ध्रुवदेवी प्राप्त हुई।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी काव्य में नारी

कुमारी विजयलक्ष्मी अग्रवाल 'साहित्य-रत्न

'नारी' इस छोटे से दो अक्षरों के शब्द में कितनी करुणा, कितना स्नेह, कितना वात्सल्य भरा हुआ है। इस प्रवञ्चनामय संसार में उसका स्नेह बिखर हुआ है। उसकी भावनाएँ उसके हृदय के स्नेह से तरल हैं, उसका संसार त्याग का संसार है, उसकी अनुभूतियाँ उसके एकान्त मधुमय मानस में करुणा के द्वारा अनुप्राणित हुआ करती हैं। सत्येन्द्रजी के शब्दों में "नारी वात्सल्य, त्याग और करुणा की तो त्रिपथगा है।" उसके दो रूप हैं १—जाया, २—जननी। दोनों ही रूपों में वह त्याग की प्रतीक है, ममता की पर्याय है।

त्याग, स्नेह और करुणा यह तो नारी-हृदय की शाश्वत भावनाएँ हैं। आदि नारी के मानससागर के तट से भी इन्हीं तीन भावनाओं की लोल लहरें टकराया करतीं थी और आज भी उन तरंगों के उत्थान में कोई अवरोध उपस्थित नहीं हो सका है। हाँ! यह सत्य है कि कोई अपनी संकुचित विचारधारा के कारण उसे समझने में भूल करें।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में नारी-हृदय का सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण हुआ है। समराङ्गण में युद्ध के निमित्त प्रयाण करते हुए वीरों को उनकी स्त्रियाँ उपदेश देती हैं—

पाछा फिर मत झाँकज्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेत में, पर मत आज्यो हार॥

कितनी ओजस्विनी वाणी है, कितना वीरतापूर्ण उपदेश है। यह उपदेश नारी-हृदय के अनुकूल ही है, नारी के आदर्श को प्रतिष्ठित करने वाला है।

वह नारियाँ समर-क्षेत्र में अपने पति का मारा जाना सुनकर विलाप करने नहीं बैठ जाती हैं किन्तु कहती हैं—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

—हेमचन्द्र

वीरगाथा काल में कवियों ने नारी-हृदय की भावनाओं को अच्छी तरह से ही व्यक्त किया है। उसकी भावनाएँ भ्रमवश विकृत न हो सकी हैं।

इस युग के साहित्यकार के लिए नारी मानव के कर्त्तव्य की प्रेरणा है, वह युद्ध व्यवसायी मानव की दुर्बलता है स्वयं उसे जानती है, और उस दुर्बलता को आड़ लाकर वह प्रेम-कातर यौवनाद्धत योद्धा को सचेत कर उसे शौर्य प्रदर्शन और धर्म पालन में प्रवृत्त करती हैं। वह वीरों के लिये आकर्षण और उत्साह का उत्स है, उसे विमूढ़ करने वाली नहीं उसे धर्म पर आरूढ़ कराने वाली है, पथ भ्रष्ट करने वाली नहीं। इसी रूप में पुरुष ने भी उसे ग्रहण किया है।

वीर-गाथा-काल के उपरान्त भक्ति-काल आता है। युग बदला उसके साथ धारणायें बदलीं, जीवन की व्याख्या और मूल्य करके वीर-गाथा काल का पौरुष पारस्परिक युद्धों में क्षुद्र युद्धों का विजय में सामन्तशाही विलास में शामिल हो चला। और विदेशी आक्रमणकारियों से पराजित होकर क्षुब्ध हो गया। पुरुषार्थ और जीवन में पराजित का भाव मानस से नहीं पा सकता। वह जीवन में हारकर दूसरे पर निर्भर होने लगता है। यही हुआ, निर्गुणाश्रया शाखा में साहित्यकार सन्त आदि थे जो वीतराग हो गये थे, संसार को त्याग चुके थे। नारी के विषय में उनकी धारणा सर्वथा भ्रान्त थी। जो नारी पुरुष को चेतन करती थी पुरुष को बल और प्रेरणा थी वही उन्हें भयभीत करने लगी। उनके विचार प्रायः इस प्रकार की पंक्तियों में मुखरित हुए हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नारी नागिन एक सुभाऊ"

और इसके लिए उन्हें दोष भी नहीं दिया जा सकता है। कनक और कामिनी की निन्दा करना तो उनका काम ही था। संसार से विरक्त व्यक्ति नारी की उपेक्षा तो करेगा ही।

सगुणोपासकों में तुलसी ने तो नारी चरित्र के आदर्श ही खड़े कर दिए हैं। सीता, कौशिल्या, उर्मिला आदि सभी आदर्श नारियाँ हैं। कैकेयी भी वास्तविक नारी है। वह आदर्शवाद पर खरी नहीं उतरी है किन्तु वह मानवी है—देवी या दानवी न होकर मानवी है जिसमें नारी हृदय की दुर्बलताएँ भी विद्यमान हैं और कालक्रम में वह उन दुर्बलताओं पर विजय भी प्राप्त करती है।

अनेक व्यक्ति 'रामचरितमानस' की यह पंक्ति उद्धृत करके—

"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी,
यह सब ताड़न के अधिकारी।"

तुलसी की नारी के प्रति हीन-भावना को स्पष्ट करना चाहते हैं। वह कदाचित् यह भूल जाते हैं कि यह पंक्ति समुद्र के द्वारा जो कि कथावस्तु का मुख्य पात्र नहीं है, वहाँ पर कही गई है जहाँ पर वह राम के समक्ष अपनी तुच्छता प्रकट करता है। तुलसी की नारी भावना तो सीता और कौशिल्या के रूप में साकार हो उठी है फिर तुच्छ समुद्र की तुच्छता पर क्यों ध्यान दिया जाए। यदि यही बात राम या और कोई मुख्य पात्र कहता तो अवश्य इसे कुछ महत्व दिया जा सकता था।

सूर की नारी भावना भी गोपियों के रूप में पर्याप्त स्पष्ट हुई है। उन्होंने केवल वात्सल्य और शृङ्गार रस को अपनाया है। दोनों में ही नारी का भाग महत्वपूर्ण है। वात्सल्य रस में यशोदा मातृ-हृदय का वात्सल्य लेकर उपस्थित होती हैं और शृङ्गार रस में गोपिकाएँ अपने प्रणय को लेकर आती हैं।

जननी के रूप में नारी अपने पुत्र को पालने में झुलाती हुई हमारे समक्ष आती है—

"जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै
मेरे लाल की आउ निदरिया, काहे न आनि सुवावै॥

अथवा वह बहका कर कृष्ण को दूध पिलाती हैं—

"कजरी को पय पियहु लला; तेरी चोटी बढ़ै"

इस प्रकार पालने में पुत्र को झुलाकर निद्रा का आह्वान करना और पुत्र को फुसलाकर दूध पिलाना मातृ हृदय के सर्वथा अनुकूल है। इसमें कितनी स्वाभाविकता है।

गोपियों की भावनाओं का स्पष्टीकरण भी उचित ही हुआ है। संयोग शृङ्गार में उनका मुरली के प्रति यह उपालम्भ—

"मुरली तऊ गोपालहिं भावति,
सुन री सखी जदपि नन्दनन्दहि।
नाना भाँति नचावति॥"

और वियोग में "निशि दिन अपने नयन बरसाना" तथा उपदेश देने के निमित्त आए उद्धव के प्रति कभी विनय करना, कभी उपहास करना, कभी अपनी दुःखगाथा सुनाना और कभी झुँझला कर कहना—

"आयो घोष बड़ो व्यापारी
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी"

आदि प्रणयोन्मत्त नारी हृदय का यथार्थ चित्रण ही है। इसमें कृत्रिमता नहीं है। नारी हृदय के चित्रण में सूर पूर्णरूपेण सफल हुए हैं।

भक्तिकाल के नारी-चित्रण में हमें स्पष्ट ही एक विकास दिखाई पड़ता है। पहले विराग है जो 'सन्त कवियों' की वाणी में प्रकट है। नारी से भयातुर उसे दूर रखने और दूर हटाने की भावना इस साहित्य में व्याप्त है। दूसरी अवस्था में नारी प्रबल भाँति से पुरुष की ओर प्रभावित हुई है। नारी में भक्त की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा अवतरित हुई है, पर उसमें जो प्रेरणा थी वीरगाथा काल में वह पुरुष में प्रवेश कर गयी है और वह पुरुष की कोप अथवा उपेक्षा की वस्तु बनी है—पर वह सजीव और भावात्मक है। कवि फिर सँभला है और उसने नारी को पुरुष की अनुगामिनी मानते हुए भी प्रेम दिखाया है।

रीतिकाल में काव्य-क्षेत्र में नारी का प्रवेश आवश्यकता से अधिक हुआ है। नारी के नख-शिख वर्णन आदि से रीतिकालीन काव्य भरा पड़ा है। सेनापति को ही लीजिए। उनके अधिकाँश कवित्त नायिका की प्रशंसा में ही रचे गए हैं। किसी में नायिका मदन की फुलवारी है, किसी में मोहर है, किसी में नवग्रहों की माला है और किसी में शमादान ही बन गई है—

"सोहति बहुत भाँति चीर सौं लपेटी सदा।
जाकी मध्यदसा सो तौ मैन कौ निधान है।
× × ×
पूरी निधि नेह की उज्यारी दिपै देह की सु
प्यारी तू तौ गेह की निदान समादान है।"

बिहारी को भी नायिका के सौन्दर्य्य का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करने से कम अवकाश मिला है। उनके दोहे अधिकतर इस प्रकार के हैं—

"पाँय महावरि देन को नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मींड़त जाय॥"

केशवप्रणीत 'नखशिख' काव्य तो नारी को लेकर ही रचित है किन्तु उसमें भी उसकी भावनाओं का यथातथ्य चित्रण करने के स्थान पर सौन्दर्य का वर्णन है।

आधुनिककाल में जब काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति हुई तो कवियों के नारी के प्रति रीतिकालीन दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। जब एक कवि की विचारधारा में इतना परिवर्तन हुआ कि वह एक बार यह कहकर—

"मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को।
थाम ले हृदय अब इस आह्वान को॥"

बाद में हुँकार उठता है—

"मुक्त करो नारी को मानव,
चिर वन्दिनी नारी को।
युग-युग की बर्बर कारा से,
जननि सखी प्यारी को॥"

—"पन्त जी

तो अन्य कवि भी नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण को लेकर क्यों न उपस्थित होते।

गुप्तजी ने "यशोधरा" की इन दो पंक्तियों में अबला जीवन की युग युग की कहानी भर दी है—

"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥"

वास्तव में नारी वात्सल्य और करुणा को लेकर ही संसार में आती है। जननी रूप में वह वात्सल्य की प्रतीक है और जाया रूप में त्याग एवम् करुणा की।

गुप्तजी की यशोधरा वास्तविक नारी है। पति के वियोग से दुःखिनी उसकी इच्छा है—

"बस सिन्दूर बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल"

और उसे इस बात की सान्त्वना है कि—

"मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल सा लाल"

नारी पति और पुत्र को लेकर ही जीवन भर व्यस्त रहती है। यदि पति के वियोग में वह प्राण त्याग भी करना चाहती है तो पुत्र के कारण ऐसा नहीं कर पाती है। नारी केवल जायारूप में ही सीमित नहीं है, वह जननी भी है और जननी पद का निर्वाह करना उसके लिए आवश्यक है—

"बनी जननी भी जाया री"

यशोधरा स्वयम् ही जननी पद के उत्तरदायित्व का अनुभव करती है तभी तो वह कहती है—

"स्वामी मुझको मरने का भी,
तो दे न गए अधिकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ गए मुझ पर अपने,
उस राहुल का सब भार ॥"

अन्त में बुद्ध के वचनों में कवि के स्वयम् के विचार ही स्पष्ट होते हैं—

"हीन न हो गोपे, हीन नहीं नारी कभी
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से"

'यशोधरा' के समान ही 'साकेत की उर्मिला' का चित्रण भी सुन्दर हुआ है।

'पञ्चवटी' में भी उन्होंने नारी की दुर्दशा पर दुःख प्रकट कर लिया है—

"नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन,
हैं नारी ही को लेकर।
अपने लिए सभी सुविधाएँ,
पहले ही कर बैठे नर ॥"

गुप्तजी ने नारी हृदय का ठीक ही चित्रण किया है।

प्रसादजी ने 'कामायनी' में नारी के महत्व की ओर संकेत किया है। श्रद्धा आदि देवनारी है। वह शाश्वत नारी हृदय की भावनाओं की प्रतीक है। आरम्भ में ही जब वह मनु से मिलती है तो अपने को समर्पित कर देती है।—

"समर्पण लो सेवा का सार।
सजल संसृति का यह पतवार ॥
आज से यह जीवन उत्सर्ग।
इसी पदतल में विगत विकार ॥"

श्रद्धा के इस समर्पण में सम्पूर्ण स्त्री जाति का समर्पण है। नारी का जीवन त्यागमय है। वह अपने त्याग का प्रतिदान नहीं चाहती है। उसके हृदय का स्नेह बखेरने के लिए ही बना है, पत्नी रूप में नारी का त्याग ही अधिक महत्वपूर्ण है।

श्रद्धा का जननी रूप भी उचित ही है। उसके हृदय में अपने भावी शिशु के लिए अगाध वात्सल्य भरा हुआ है। उसके इन शब्दों से माँ बनने की आकुल साध लक्षित होती है—

"उनके घर में कोलाहल है,
मेरा सूना है गुफा द्वार ॥"

यह तो हुआ नारी हृदय का चित्रण। प्रसाद का अपना दृष्टिकोण भी विचारणीय है। उनके विचारानुसार पुरुष की नारी के बिना उन्नति दुःसाध्य ही नहीं असाध्य है। मनु श्रद्धा की उपेक्षा करता है और इड़ा का पक्ष लेता है। वह राज्य-संचालन सम्यक् रीति से करता है किन्तु इड़ा के साथ व्यभिचार करने पर उसकी बहुत हानि होती है। उस समय श्रद्धा उसके समक्ष आती है और वह उसके वास्तविक रूप को पहचानती है—

"तुम अजस्र वर्षा सुहाग की,
और स्नेह की मधु रजनी।
चिर अतृप्त जीवन यदि था,
तो तुम सन्तोष बनी थी ॥"

अथवा :—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पद तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के समतल हृदतल में ॥"

बाद में नारी ही पुरुष का मार्ग प्रदर्शन करती है।

"श्रद्धा आगे मनु पीछे थे।
साहस उत्साही से बढ़ते ॥"

'प्रिय-प्रवास' में हरिऔधजी का नारी हृदय का चित्रण भी सुन्दर है। यशोदा का मातृ-हृदय पुत्र के स्नेह से विह्वल होकर नन्द से कहता है—

"विमल जल मँगाना देख प्यासा पिलाना।
कुछ क्षुधित हुए ही व्यञ्जनों को खिलाना ॥"

राधा का चरित्र भी स्वाभाविक ही है। कृष्ण-वियोग से वह भी अतिखिन्ना हैं।

(शेष पृष्ठ ७६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीराँ के संदिग्ध सम्बन्धी

श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

अपने पदों में मीरां ने अपने कतिपय सम्बन्धियों की चर्चा की है। ऐसे पदों के आधार पर मीरां के जीवन की कुछ घटनाओं पर धुंधला प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक कलाकार अपनी कृति में उन्हीं घटनाओं या व्यक्तियों का चित्र उतारता है जिनका उसके जीवन या मानस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। फिर, मीरां के पद तो जीवन की अभिव्यक्ति है। जीवन से ओत-प्रोत वे काव्य-कलामय बन गये हैं अवश्य, तथापि, वे मात्र कवि-कल्पना नहीं अपितु वास्तविक अनुभूति हैं। अतएव उन पदों से व्यक्त भावनाएँ और सम्बन्ध विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

प्रसिद्ध है, मीरां को सात वर्ष की छोटी वयस में ही मातृ-वियोग का दुःख झेलना पड़ा था। माता के निधन के बाद से ही, वे अपने दादा राव दूदाजी के पास रहीं। राव दूदाजी प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त थे, और वहीं से मीरां को कृष्ण-प्रेम की प्रेरणा मिली। परन्तु मीरां के पदों से उनकी माता का वर्त्तमान रहना ही सिद्ध होता है। कथोपकथन की शैली में लिखे गये पदों में दो पद ऐसे हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि माँ ने मीरां की कुछ बातों से वर्जित ही नहीं किया उसका विरोध भी किया। सभी संग्रहकर्ताओं ने इन दोनों पदों को प्रमाणिक मानते हुए अपने संग्रह में स्थान दिया है। इनके रहते भी मीरां की माँ के निधन की घटना से सभी विद्वान सहमत हैं। ये दोनों पद निम्नाङ्कित हैं—

(१)

मांई म्हांने सुपणे में परण गया जगदीस।
सोती को सुपणा आविया जी,
सुपणा बिस्वाबीस।

माँ: गैली दीखे मीरा बाबली,
सुपणा आल जञ्जाल।

मीरां : मांई म्हाने सुपणे में,
परण गया गोपाल।
अङ्ग-अङ्ग हल्दी में करी जी,
सुधे भीज्यौ गात।

(पृष्ठ ७५ का शेषांश)

इस प्रकार काव्य में तो नारी हृदय का स्पष्टीकरण उचित रूप में ही हुआ है। उपन्यासों और नाटकों में भी इसका समावेश है।

'सिन्दूर की होली' में श्री लक्ष्मीनारायणजी मिश्र ने स्त्री जाति की समस्या पर प्रकाश डाला है। चन्द्रकला में प्रतिशोध की भावना है। उसका स्त्रीत्व पुकार उठता है—

"रोटी और कपड़े के प्रश्न को लेकर स्त्रीत्व की मर्यादा बिगड़ गई। हमारा—स्त्रियों का निर्माण भी उन्हीं उपकरणों से हुआ है जिनसे पुरुषों का हुआ है लेकिन तब भी हम पुरुषों की गुलामी में सदैव से चली आ रही हैं। हमारे भीतर कभी सन्देह नहीं पैदा हुआ। ऐसा क्यों है?"

बीसवीं शताब्दी में नारी हृदय की यह भावना होना स्वाभाविक ही है। "प्रसादकृत ध्रुवस्वामिनी" में भी ध्रुवस्वामिनी कहती है—

'मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है।"

अन्त में निष्कर्ष यही निकलता है कि रीतिकाल के अतिरिक्त प्रत्येक काल में हिन्दी-साहित्य में नारी-हृदय का यथार्थ चित्रण हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांई म्हांने सुपणे में,
परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोटि जहाँ जान पधारे,
दुलहा श्री भगवान।
सुपणे में तोरण बाँधियों जी,
सुपणे में आई जान।
मीरां को गिरधर मिलिया जी,
पूरब जनम के भाग।
सुपणे में म्हांने परण गया जी,
हो गया अचल सुहाग।
मीरां तू मत बरजै माइड़ी,
साधाँ दरसन जाती।
राम नाम हिरदै बसै,
माहि ले मदमाती।

(२)

माः माई कहै सुन धीहड़ी,
काहे गुण फूली।
लोक सोवै सुख नींदड़ी,
थे क्यूँ रैणज भूली।
मीराः गेली दुनियाँ बावली,
ज्यां कूँ राम न भावै।
ज्यांरे हिरदै हरि बसै,
त्याँकूँ नींद न आवै।
चौबस्यां की बावड़ी,
ज्यां कूं नीर न पीजै।
हरि नारे अमृत झरै,
ज्यां की आस करीजै।
रूप सुरङ्गा राम जी,
मुख निरखत जी जै।
मीरां व्याकुल बिरहणी,
अपनी कर लीजै।

× × ×

उपर्युक्त दोनों पदों में क्रियाएँ सभी वर्तमान काल की हैं। सभी अभिव्यक्तियों से कार्य और विरोध दोनों का साथ ही साथ होना व्यक्त होता है।

बाल-सुलभ चपलता से मण्डित किसी गम्भीर भाव की अभिव्यक्ति ही इन पदों से सुस्पष्ट हो उठती है। 'सुपणे में परण गया जगदीस' जैसी उक्ति किसी सप्त वर्षीया बालिका की नहीं हो सकती। 'लोक सोवै सुख नींदड़ी, थे क्यूँ रैणज भूली', जैसा प्रश्न भी कोई माँ अपनी सप्त वर्षीया कन्या से नहीं कर सकती। दोनों पदों की अभिव्यक्तियों से मीरां की यौवनावस्था झलक उठती है। यहाँ शङ्का होती है कि यह मां नाम्नी स्त्री कौन है? यह सम्भव है कि माँ के रिक्त स्थान की पूर्त्ति करने वाली किसी अन्य स्त्री को ही मीरां ने मां समझ लिया हो। तथापि, बाल्यावस्था के इस भ्रम का यौवनावस्था में मिट जाना ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है, यह हो सकता है कि सत्य को जानते हुए भी अपनी महानता के कारण मीरां ने पालन करने वाली उस अन्य स्त्री को सदा ही मातृ पदोचित सम्मान व स्नेह दिया हो, अतएव उसे सदा माँ नाम से ही सम्बोधित किया हो। तब भी, मातृ पद के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली किसी भी अन्य स्त्री का महत्व इतना अधिक नहीं हो सकता जैसा मीरां के पदों से व्यक्त होता है। इस माँ द्वारा किये गये हलके से विरोध को भी अपने पदों में सुरक्षित कर मीरां ने अपनी 'माँ' को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कारण स्पष्ट है। मीरां के पदों में कुछ प्रमुख सम्बन्धियों की ही चर्चा है। ऐसे पदों में भी अधिकांश वे पद हैं जिनमें किसी राणा के प्रति कटुता का भाव मिलता है, और कुछ ही पद ऐसे हैं जिनमें सास, ननद और माँ की चर्चा हुई है। इतर सम्बधियों की चर्चा करते हुए मीरां ने कहीं भी किसी सम्बन्ध विशेष की संज्ञा स्पष्ट नहीं की वरन् 'भाई बन्धु', 'स्वजन', 'कुटुम्बी', 'सनेही' आदि साधारण सम्बोधनों से ही काम निकाल लिया है। मीरां की यह प्रवृत्ति देखते हुए, इस मां नाम्नी स्त्री का महत्व बहुत बढ़ जाता है। तब यह माँ कौन है? क्या मीरां की अपनी मां ही जीवित है या मां के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली अन्य कोई स्त्री है? या ये दोनों पद ही प्रक्षिप्त है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और भी शङ्का होती है। मां के निधन के कारण बचपन से ही मीरां अपने दादा, परम वैष्णव भक्त राव दूदाजी के पास रहीं। वहीं उनका लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा भी हुई। अपने दादा से मीरां को प्रेरणा भी मिली और वे भी शीघ्र ही कृष्ण-प्रेम में रँग उठीं, यही ऐतिहासिकों का मत है। तथापि, मीरां ने इस विषय पर एकदम चुप्पी ही साध ली है। चूँकि उन्होंने अपने प्रति किये कटु व्यवहारों की चर्चा बराबर की है, विरोध करने वाली सास, ननद, मां, या मां के रिक्त स्थान की पूर्त्ति करने वाली किसी अन्य 'माँ' की चर्चा की है। राणा के प्रति कटुता, पारस्परिक वैमनस्य, व कहीं-कहीं हीन-भावना की भी अभिव्यक्ति की है। लक्ष्य तक पहुँचने में अपने सहायक गुरु सन्त रैदास की भी चर्चा की है। फिर भी, माँ के निधन के बाद अपने एकमात्र आश्रय और पालनकर्त्ता, संस्कृति दाता अपने परम वैष्णव भक्त राव दादूजी की भूल कर भी चर्चा नहीं की। यह स्वाभाविक नहीं मालूम पड़ता। जब कि मीरां ने अपने संघर्ष जनित कटु अनुभवों का बराबर वर्णन किया है, तब उस संघर्ष के कारण, कृष्ण प्रेम की प्रेरणा देने वाले अपने दादा राव दूदाजी के प्रति वह ऐसी चुप्पी साध ही कैसे सकती है? साहित्य परम्परानुकुल अन्य वैष्णव व भक्तों का वर्णन करते हुए भी मीरां को अपने पालनकर्त्ता प्रसिद्ध कृष्ण भक्त, परम वैष्णव, अपने दादा राव दूदाजी की याद नहीं आती। यह सब कुछ अत्यन्त अस्वाभाविक व रहस्यमय मालूम पड़ता है। वस्तुस्थिति के ज्ञान के लिये गहरी छानबीन की आवश्यकता है।

मीरां का अपनी ननद का नाम ऊदांबाई बताना भी संदेहोत्पादक है। इतिहास विशेषज्ञों का कहना है मीरां भोजराज की पत्नी थीं। इतिहासज्ञों के मतानुसार ही भोजराज की चार बहिनें, कुंवर बाई, गङ्गा बाई, पद्मा बाई और राज बाई थीं। भोजराज की बहनों में ऊँदा बाई का नाम कहीं नहीं मिलता, तथापि मीरां ने अपनी ननद का नाम ऊदाबाई ही बताया है। ऊदाबाई से हुई मीरां की बातचीत विषयक पद मिलते हैं। प्रायः सभी प्रामाणित माने जाने वाले पदों के संग्रहों में इनको स्थान मिला है। यदि इन पदों को प्रामाणित मान लिया जाता है तो प्रश्न उठता है कि ऊदाबाई के भाई, जिनको मीरां ब्याहीं थीं कौन थे? मीरां के वे पति जिनकी बहन ऊदाबाई, ईडरगढ़ ब्याहीं थीं कौन थे? बहन ऊदां को भाभी के प्रति शिकायत है ईडरगढ़ तें आया ओलमा, (मीरां-माधुरी)। ऊदां के यह भाई भोजराज तो कदापि नहीं है, तब अन्य कौन भाई है? यदि इन पदों को प्रामाणित मान लिया जाता है तो मीरां का भोजराज की पत्नी होने का अनुमान गलत सिद्ध हो जाता है। अतः मीरां का निर्धारित काल भी गलत ही सिद्ध हो जाता है। यदि मीरां भोजराज की ही पत्नी सिद्ध हो जाती है तो ऊदाबाई के साथ कथोपकथन के पदों को निस्सन्देह प्रक्षिप्त मान लेना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में मीरां के समय विचार और पदों के नूतन संग्रह की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव होती है।

मीरां के राणा कौन थे, यह भी बड़ा विवादस्पद विषय है। यदि भोजराज को ही मीरां का पति मान लेते हैं, तो अवश्य ही उनको यातना देने वाले राणा उनके श्वसुर या देवर होने चाहिये। जेठ तो हो ही नहीं सकते क्योंकि भोजराज ही सबके अग्रज थे। साधारण मत यही है कि ये राणा मीरां के देवर थे। मीरां के पदों से ऐसी कोई भावना व्यक्त नहीं होती, न वैधव्य की ही कोई भावना व्यक्त होती है। इतिहास-विशेषज्ञों के अनुसार भोजराज की मृत्यु पिता की जीवितावस्था में ही हुई थी। श्वसुर की मृत्यु के बाद देवर ने ही मीरां को कष्ट दिया हो यह सम्भव है। जिस मीरां ने अपनी यातनाओं की बारबार चर्चा की है वहीं मीरां अपने जीवन को बदल डालने वाली तथा उसमें और कटुता का गहरा बीज डाल देने वाली, उस प्रमुख घटना की यों सर्वथा अवहेलना क्योंकर कर सकती थीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणा के प्रति, मीरां के पदों में जो भाव व्यक्त हैं उनसे भी इनका सधवा होना ही आभासित होता है। मीरां सास से कहती है—

"नहीं मैं पीहर सासरे,नहीं पिया जी री साथ।"

निश्चय ही मीरां का संघर्ष पति की जीवितावस्था में ही प्रारम्भ हो गया था।

"थें तो राणा जी म्हांने इसड़ा लागो,
ज्यूं बृच्छन में केर।
× × ×
थे जावो राणा घर आपणै,
तेरी मेरी नहीं सरी।"

'तेरी मेरी नहीं सरी' जैसी अभिव्यक्ति भी क्या ससुर या देवर के प्रति सम्भव है? 'सरै' या 'सरी' मारवाड़ी शब्दों अर्थ है 'निभना', या 'निभी' 'तेरी मेरी नहीं सरी' 'तेरी मेरी नहीं निभी' जैसी उक्ति देवर या ससुर के लिये सम्भव नहीं। अपने लेख 'मीरां सधवा या विधवा' में मैंने मीरां के सधवा होने के और भी प्रमाण दिये हैं। इतिहासानुसार भोजराज का देहान्त विवाह के कुछ समय बाद ही अल्पावस्था में ही हो गया था। फिर ये राणा कौन हैं, जिनके प्रति की गई अभिव्यक्तियों के आधार पर मीरां सधवा प्रतीत होती है और जिनकी बहन ऊदाबाई हैं? भोजराज की बहनों में ऊदाबाई का नाम नहीं मिलता। वह कौन भाई है जिनको मीरां ब्याही थी और जिनकी बहन ऊदाबाई हैं?

मीरां के पदों में 'माइतणो मोसाल' की भी अभिव्यक्ति मिलती है। यह 'माइतणो मोसाल' क्या है? शायद ननिहाल या मौसी के घर का ही पर्याय-वाची हो। शायद दो विभिन्न शब्द हों। अधिक सम्भव है, दो विभिन्न शब्द ही हों, क्योंकि मारवाड़ी में 'मायत' एक शब्द है। 'मायत' शब्द का अर्थ है मां बाप की तरह स्नेहमय अधिकार रखने वाले, पथ प्रदर्शक बुजुर्ग। प्रचलित प्रथानुसार यह शब्द सभी निकट बुजुर्ग सम्बन्धियों के लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द का रूढ़ि वाचक अर्थ मात्र बुजुर्ग ही रह गया है। मीरां को समझाते हुए सास कहतीं हैं :—

"लाजै पीहर सासरो, लाजै माइतणो मोसाल।
सब ही लाजैमेड़तिया जी, थांसू बुरा कहैं संसार॥"

स्पष्ट ही इस 'माहतणो मोसाल' का महत्व 'पीहर' या 'सासरो' के समकक्ष का ही है। हिन्दू स्त्री के जीवन में दो घर विशेष महत्वपूर्ण होते हैं, एक पीहर, दूसरा ससुराल। प्रायः समान महत्व प्राप्त इन दो घरों में भी ससुराल ही अधिक महत्वपूर्ण होती है। मारवाड़ी में एक कहावत प्रसिद्ध है "बाम्हन बेटी बराबर।" ब्राह्मण और कन्या समकक्ष होते हैं। इस कहावत से सामाजिक स्थिति सुस्पष्ट हो जाती है। पिता के घर में आदरणीय स्थान पाते हुए भी लड़की अतिथि भर होती है। जैसे प्रत्येक सद्गृहस्थ के लिये ब्राह्मण पूजनीय है, आदरणीय है, ब्राह्मण के प्रति सद्-व्यवहार ही गृहस्थ का अनन्य धर्म है, ठीक वैसे ही लड़की प्रत्येक घर में आदरणीय और पूजनीय है, सद्-व्यवहार की अधिकारिणी है, तथापि घर की मेहमान भर है। इसके विपरीत ससुराल में स्त्री की अपनी एक इकाई है। पति पत्नि की दो विभिन्न इकाइयाँ एक हो जाती है। पुरुष अपने ही घर में एक इकाई होता है अतएव पत्नी की एक स्वतंत्र इकाई बन जाती है। ससुराल में उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, अधिकार होता है। स्त्री के जीवन का बड़ा भाग उसका दुःख सुख, उसके संघर्ष या सफलता, सब कुछ ससुराल में ही बीतता है, अतएव विरोध करते हुए सास का यह कहना कि 'लाजै पीहर सासरो' अत्यन्त स्वाभाविक ही है। आगे, सास कहती है 'सब ही लाजै मेड़तियाँ जी।' यह भी मारवाड़ में प्रचलित प्रथा को देखते हुए अत्यन्त स्वाभाविक है। मारवाड़ी कई विभिन्न शाखा प्रशाखाओं में बाँटे हुए हैं। जैसे गोयनका, मुरारका, जालान, पिती, खेमका आदि। किसी भी शाखा की लड़की को उसी शाखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अन्य व्यक्ति अपनी ही बेटी या बहन मानेगा। आज भी विवाह के अवसर पर, ननसारा देते समय लड़की के पीहर की शाखा के जितने व्यक्ति मौजूद होंगे वे सभी उस लड़की से तिलक करायेंगे। प्रत्येक तिलक करने वाले को अपनी स्थिति अनुसार कुछ न कुछ लड़की को देना ही होता है। इस समय का तिलक महत्वपूर्ण होता है। अपने वंशगत सम्बन्धी (Blood relatives) या वे जिनके साथ सहोदर का गहरा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वे ही इस अवसर पर तिलक करवा सकते हैं, दूसरों के कराने पर आपत्ति की जाती है। एक शाखा की कन्या जिस अन्य घर में ब्याही हो उसका पानी तक पीने से उसी शाखा के अन्य भाई परहेज करते हैं। आज जबकि और सभी प्रचलित छोटी मोटी रूढ़ियों में भी शिथिलता आती जा रही है, यह ननसारे के मौके पर तिलक करवाने की प्रथा ज्यों की त्यों बनी है। इस अवसर पर अपनी ही शाखा के किसी भी भाई को तिलक करने से मना करने का अर्थ होता है सम्पूर्ण समाज से शत्रुता मोल लेना। इस प्रथा को देखते "सब ही लाजै मेड़तियाँजी" अत्यधिक स्वाभाविक मालूम होता है। फिर भी "लाजै माहतणौ मोसाल" कहना तो कुछ आश्चर्यजनक ही मालूम होता है। नाना और मौसी के घर से स्त्री का सम्बन्ध बहुत ही गौण होता है। मां के मृत्यु के बाद तो ननिहाल से और ननिहाल के स्वजनों के साथ सम्बन्ध और भी कम हो जाता है। साधारणतः लड़के, लड़की का सम्बन्ध तब तक हुए भी ननिहाल के लोगों से राग ली जाती, फिर मौसी का घर तो और भी पड़ जाता है। यदि 'माइतणौ मोसाल' को एक शब्द मान लिया जाय तो भी इससे 'आभासित अर्थ मौसी के घर का ही लक्ष्य करता है। 'माइतणौ मोसाल' अर्थात् वयोवृद्ध मौसी, यदि इसको दो विभिन्न शब्द मान लिया जाय तो अर्थ और भी स्पष्ट उठता है। 'पीहर', 'सासरो' 'सब ही मेड़तिया' लजाते ही हैं साथ ही साथ वयोवृद्ध वर्ग और मौसी घर भी लजाता है। दोनों में से किसी अर्थ को मान लें पर भी मौसी के घर की महत्ता अक्षुण्ण रहती है। ऐसा क्यों? क्या माँ के रिक्त स्थान की पूर्ति मौसी ने की क्या मीरां का बचपन 'मोसाल' में बीता? तब यह 'मौसाल' कहां था? इस घर की शिक्षा दीक्षा, रहन सहन, और संस्कृति कैसी थी? आदि उल्लिखित बातों का पता लगने पर ही मीरां के जीवन की बहुत सी गुत्थियां सुलझ सकेंगी।

पठनीय पुस्तकें

१ मीराँ की प्रेम साधना—
श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' एम० ए०

२ मीराँ जीवनी और काव्य—
श्री महावीरसिंह गहलोत

३ मीराँ-माधुरी—
श्री व्रजरत्नदास

४ मीराँ बाई की पदावली—
श्री परशुराम चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०

नोट—मीरां के सम्बन्ध में जो सज्जन अपने भाव प्रकाशित करना चाहें वह अपने लेख भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता

प्रथम किरण—लेखक—श्री रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण' । प्रकाशक—विद्याभास्कर बुकडिपो ज्ञानवापी, बनारस । पृष्ठ ८४, मूल्य २॥)

प्रस्तुत संग्रह में लेखक की ४२ रचनाओं का संग्रह है। आरम्भ में ही हिन्दी के तरुणों की प्रेरक-शक्ति श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा आशीर्वाद दिया गया है। उनके शब्द हैं—'उनके (प्रथम किरण के कवि के) काव्य में मुझे सरलता सुषुमा और आस्तिकता के मधुकण दिखाई देते हैं।' इन शब्दों में 'प्रथम किरण' की कविताओं की जो आलोचना आगई है, वह अक्षरशः सत्य है। स्वयं हमने इस पुस्तक की कविताओं को पढ़कर यह अनुभव किया है कि खण्डेलवालजी में एक विशिष्ट प्रतिभा है।

इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें अपने अभावों का रोना कवि ने नहीं के बराबर रोया है। सर्वत्र उसने तटस्थ होकर जीवन और जगत को देखा है और तटस्थता किसी कलाकार का सबसे बड़ा गुण है। हमें प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं को देखकर लगा कि वस्तुतः कवि का प्रकृति के साथ सीधा लगाव है। 'गंगा तट का स्वप्न', 'सावन', 'मरु का चन्द्रोदय', 'हरी घास', 'प्रकृति की गोद', 'गाँव की साँझ' आदि कविताएँ ऐसी हैं, जो हिन्दी का गौरव हो सकती हैं। इस कवि की दूसरी विशेषता यह है कि उसका साधना शील व्यक्तित्व कविता में व्यक्त होकर एक सजीव प्रेरणा देता है। एक स्थान पर वह कहता है—

साधना का देश है यह,
है यहाँ अनिवार्य जलना।
कण्टकों के मार्ग पर पड़ता,
यहाँ अविराम चलना ॥
दर्द का उपचार कोई भी,
नहीं प्यारे, यहाँ पर ।
'अनवरत बढ़ना' नियम,
यह है न टलता, है न टलना ॥
चूर्ण होकर भी सखे तू,
पूर्ण कर अपना महाव्रत ।
दीर्घ है पथ साधना का,
नाम ले विश्राम का मत ॥

यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि इस कवि की प्रतिभा और कल्पना अद्भुत है तथापि पन्त के आशावादी दृष्टिकोण और संयत शैली का उस पर पर्याप्त प्रभाव है।

प्रातः किरण—लेखक—श्री महादेव झा 'सुदेव' बी० ए०, प्रकाशक—साहित्य-सदन, सूर्यगढ़ (मुंगेर) पृष्ठ ४६, मूल्य ।॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठारह कविताओं के इस संग्रह में सबसे पहले तो यह 'निवेदन' छपा है कि कविताएँ जल्दी में छपाई गई हैं। उसके बाद एक शुद्धिपत्र जोड़ा गया है जो 'निवेदन' का समर्थन करता है। उसके अतिरिक्त कई स्थानों पर स्याही से भी शुद्धि-संस्कार किया गया है। यह देखकर लगता है कि कवि वास्तव में लापरवाह है। लेकिन यह अच्छी बात नहीं। इससे कविताओं के सौन्दर्य को बड़ा धक्का लगा है। यदि कवि सन्तोष के साथ इस संग्रह का प्रकाशन करता तो पाठकों को अधिक लाभ होता। कारण, कवि की कविताओं में प्राण तत्व की कमी नहीं है। इस संग्रह की कई कविताओं में पहाड़ से फूटे निर्झर की रवनी है और वे अपने भीतर मन को लीन करने की क्षमता रखती हैं। 'रानी से' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

यौवन क्या जो गले न जगती
की ज्वाला के बीच सखी।
प्रेम, कहो क्या, सके न जो कुछ
इस जगती को सींच सखी॥
वह सम्पति जल जाय
विश्वहित जिसको सकूँ उलीच नहीं।
हृदय भला क्या रहा, विपति भी
पाई जिसको खींच नहीं॥
जलता है संसार बैठ कर
मोद मनाऊँ मैं कैसे?
मचता है संहार, स्नेह का
दीप जलाऊँ मैं कैसे॥

'धवल-धाम', 'दीवाली', 'खजूर का पेड़' आदि कविताएँ इस संग्रह की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। कहीं-कहीं कवि को भावुकता में यही खयाल नहीं रहा है कि अमुक शब्द स्थान विशेष के लिए उपयुक्त है या नहीं। जैसे—

देश की पुकार पै
चल पड़े कुमार हैं।
खुदकुशी के ख्याल में
आँख में खुमार है॥

'खुदकुशी' आत्म-हत्या को कहते हैं पर कवि उसका अर्थ कदाचित 'बलिदान' समझता है। हमारी राय में कवि को इस प्रकार के असंयम से बचना चाहिए।

युग क्रान्ति—लेखक और प्रकाशक-शिवदयाल जाङ्गिड़ बी० ए०, प्राप्ति स्थान—श्रमजीवी आश्रम सिहोदरी, लक्ष्मणगढ़ (जयपुर)। मूल्य १)

'युगक्रान्ति' में जो आठ कविताएँ हैं वे सब किसान मजदूरों के जीवन की दुर्दशा और शोषकों की क्रूरता का दिग्दर्शन कराती है और उन्हें पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में लेखक ने जिस चीज का चित्रण किया है उसके प्रति उसकी सच्ची सहानुभूति है। यों तो सभी कविताएँ गति और प्रेरणा देती हैं परन्तु हमें 'भूख-भवानी' विशेष प्रिय लगी। इसमें मानो कवि का अपना सब कुछ आगया है। कवि कहता है—

ओ मजदूरो और किसानो
खेत कारखानों के मालिक
आज भयानक भूख लगी है
आग लगेगी धन-कुबेर के
धरती नीची होगी निश्चय।

एक बात बड़ी खटकने वाली है और वह है भाषा और छन्द-विधान की। कई स्थानों पर गति-भङ्ग दोष होने से प्रवाह में बाधा पड़ जाती है। साथ ही 'नैश' के स्थान पर 'नैश्य', शीतमय झंझा-झोंक (झंझा के झोंके) 'तड़पड़ाती क्षीण विधुत' आदि अशुद्ध शब्दों का प्रयोग चिन्तनीय है। आशा है अगले संस्करण में कवि इस दोष का परिहार कर लेगा।

छत्रपति—रचयिता—श्री परमानन्द शर्मा एम० ए०। प्रकाशक—राष्ट्रभाषा मन्दिर, जालन्धर शहर। पृष्ठ १७६, मूल्य ४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वीर रस प्रधान महाकाव्य है, जो छत्रपति महाराज शिवाजी के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। शिवाजी के जीवन की कोई ऐसी प्रमुख घटना नहीं है, जो इसमें न आई हो।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय की हल्दी घाटी की हल्दी पर लिखा गया यह काव्य जहाँ शिवाजी के शौर्य की झलक देता है वहाँ देशभक्ति की प्रेरणा भी। कारण, इसका उद्देश्य शिवाजी को हिन्दू-संस्कृति के उद्धारक के रूप में प्रस्तुत करने का है।

भाषा में उर्दू का पर्याप्त पुट है और शब्दों का अशुद्ध प्रयोग अनेक स्थलों पर है। फुटकर कविताओं के संग्रहों में तो हम मान भी सकते हैं कि शीघ्रता में ध्यान न हो सका हो पर जहाँ पौने दो सौ पृष्ठ की एक शृङ्खलाबद्ध कहानी हो वहाँ ऐसी असावधानी होना नित्य है। एक स्थान पर 'असि व्याली' को 'असि ब्याल' कर दिया है। यह किस नियम से किया है, यह समझ में नहीं आता। लेखक महोदय को यह न भूलना चाहिए कि कविता के लिए व्याकरण की शुद्धता उतनी ही आवश्यक है जितनी गति और यति की।

आह्वान-विसर्जन—ले—श्री० महेशशरण जौहरी ललित। प्रकाशक—धनीराम श्रीवास्तव, कमल प्रकाशन मन्दिर, ७५ ए० कौशलपुरी, कानपुर। मूल्य १॥)

यह लेखक के ५५ गीतों का संग्रह है। ये सभी गीत प्रणय-निवेदन से भरे हैं। कवि के जीवन की अतृप्ति और जलन का ऐसा स्वाभाविक प्रकाशन इन गीतों में हुआ है कि हृदय प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। सीधी-सादी सरल भाषा और स्वाभाविक अनुभूति दोनों ने इन गीतों को मर्म स्पर्शिता देदी है। ललितजी के ये गीत काव्य प्रेमियों के कण्ठहार होंगे, ऐसी आशा है।

—कमलेश

अतीत (गुरू गोविन्दसिंह) रचयिता—ले०—श्री निर्भय। प्रकाशक—अतीत महल, हाथरस। पृष्ठ ६८, मूल्य ६) वार्षिक।

"अतीत" अतीत-महल हाथरस से पुस्तिकाकार प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका है जिसका उद्देश्य प्राचीन काल के वीरों की वीरगाथाओं को काव्यरूप में प्रस्तुत करना है। यह अङ्क प्रथम वर्ष का पाँचवाँ अङ्क है। इसमें गुरू गोविन्दसिंह की जीवन-गाथा लिखी गई है। पुस्तक में गुरू की युद्ध वीरता के सुन्दर वर्णन के साथ साथ देशोत्थान सम्बन्धी उपदेश भी बहुत रखे गये हैं। छुआछूत, विद्या प्रचार, नशा-निवारण आदि के सुन्दर उपदेश दिये गये हैं। पुस्तक कवित्वपूर्ण न होते हुए भी जन-साधारण में प्रचारित होने योग्य है।

—सरोज

चेतना—रचयिता—श्री बाबूराम पालीवाल। प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ ६४, मूल्य १॥)

यह संग्रह श्री बाबूरामजी पालीवाल की कविताओं का तृतीय संग्रह है। इसको श्री बालकृष्ण शर्मा नवीनजी के आशीर्वाद पर स्वागत का गौरव प्राप्त हुआ है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ प्रणय गीतों के रूप में आई हैं। इन प्रणय गीतों की पृष्ठभूमि में चाहे वासना हो किन्तु वर्तमान रूप में ये ऐन्द्रिकता की धरातल से ऊँचे उठे हुए हैं। इन गीतों की जो 'प्रेयसि' आलम्बन है वह एक स्फूर्ति प्रदायिनी अधिष्ठातृ देवी का रूप धारण कर लेती है जिससे कवि को प्रेरणा मिलती है—

हे कल्याणी कवि की वाणी में
नित्य नई कविता लाओ,
कवि के प्राणों में करो बास
कवि के नयनों में छा जाओ।

कवि के हृदय में प्रणय और कर्तव्य का संघर्ष प्रतीत होता है जिसमें कर्तव्य ने प्रणय पर विजय प्राप्त करली है किन्तु फिर भी प्रणय की भावना अन्तस्तल से अपना मधुमय आकर्षण बनाये हुए है। देखिए—

चलते रहने का क्रम सहसा
रुक ही गया एक पल को तो,
गर्वोन्नत कर्तव्य भाल मम
झुक ही गया एक पल को तो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भावना हुई बिजयिनी
हार गया कर्तव्य विचारा।

कवि निराशावादी नहीं है—'मेरे दुख के अन्धकार में सुख की ज्योति छिपी रहती है।' संसार का चिरन्तन सत्य यही है कि 'मानव का हिंसक चिरन्तन नहीं है किन्तु सत्य तो है मानव की ममता, मानव का स्नेह।' कवि की भावुकता उसको ऊँचा उठा कर दार्शनिकता की भाव-भूमि में ला खड़ा कर देती है—

बस गया जो विश्व में
उस तात को तो अङ्क भर लूँ
छोड़ सीमा, आज भर
निःसीम का अनुराग रे कवि
मोह माया त्याग रे कवि।

इस संग्रह में प्रणय गीतों के अतिरिक्त जेठ की दुपहरी जैसे मानवता प्रेरित जेठ की विषम गर्मी के वर्णन हैं और दो एक कविताओं में भाई-बहन का स्नेह भी है। कविताओं में अनुभूति और कल्पना है और उनकी सरस अभिव्यक्ति भी है। दार्शनिक चिन्तन और जीवन-मीमांसा की अपेक्षा भावुकता का पुट अधिक है।

—गुलाबराय

नाटक

झाँसी की रानी—ले०—श्री० मधुसूदन चतुर्वेदी एम० ए०, चेतना प्रकाशन ८३१ बेगमबाजार हैदराबाद (दक्षिण)। पृष्ठ १३२, मूल्य २॥)

उक्त ऐतिहासिक नाटक में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के विवाह, वैधव्य, नत्थे खाँ और अँग्रेजों से युद्ध तथा मृत्यु का चित्रण किया गया है। मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण नाटकीय नियमों के बोझ से दब कर रह गये हैं। लक्ष्मीबाई के चित्रण द्वारा पाठकों के हृदय में टीस एवं ओज उत्पन्न नहीं किया जा सका है। गंगास्नान, विदूषक संवाद तथा नागरिक चर्चा आदि बहुत से अनावश्यक दृश्यों को नाटक में स्थान मिल गया है परन्तु 'रानी के अंग्रेजों से युद्ध' जैसे मुख्य विषय को तनिक छुआ भर गया है (पुराने चाल के नाटकों में युद्ध का विस्तार दिखाने की अधिक गुञ्जाइस भी नहीं है। —सम्पादक)।

नाटक की रचना पुराने ढङ्ग पर हुई है अतः इसमें मङ्गलाचरण, सूत्रधार, नटी तथा विदूषक आदि का समावेश मिलता है। भाषा विशुद्ध हिन्दी है। अधिकाँश कवितायें ब्रज-भाषा में हैं। संवाद अधिकतर नीरस, लम्बे तथा अस्वभाविक बन पड़े हैं। उनमें पद्यों का प्रयोग भी हुआ है।

नाटक रङ्गमञ्च पर खेला जा सकता है। परन्तु इसके शिथिल संवाद तथा साधारण दृश्य अभिनय को जीवन प्रदान कर सकेंगे, इसमें हमें कुछ संशय है।

—शशिभूषण सिंहल

कहानी

कसक—ले०—श्री साधुशरण, प्रकाशक—किशोरी ग्रन्थ-भण्डार, छपरा। पृष्ठ १५६, मूल्य २॥)

इस पुस्तक में लेखक की १० कहानियों का संग्रह है, जिसमें से अधिकांश देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं के वर्णन मात्र हैं। इनमें नाम आदि का किंचित परिवर्त्तन कर देने के अतिरिक्त लेखक की प्रतिभा का कोई कौशल प्रगट नहीं होता। कहानी के कथोपकथन निम्न स्तर के हैं और उनमें अन्तर्द्वन्द का सर्वथा अभाव है, जो आज की कहानी का एक आवश्यक अंग है। कहीं-कहीं कहानी बिलकुल अस्वाभाविक हो गयी हैं। उदाहरण के लिये 'कुल-कलंक' कहानी में जन्म के कट्टर राजभक्त राजा साहब साधूप्रसाद का बिना किसी पृष्ठभूमि के यकायक महात्मा गान्धी का केवल एक लेख पढ़कर ही कट्टर काँग्रेसी बन जाना और अपने पुत्र सुरेन्द्र को पिता की आज्ञा से बाध्य करके काँग्रेस में शामिल कराना एक ऐसी ही घटना है। सुरेन्द्र के जेल से माफी माँग कर छूट आने पर राजा साहब महीनों उसका मुख नहीं देखते और इसी व्यथा में खाट पर पड़कर मर जाते हैं—यह भी एक अव्यवहारिक घटना है।

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य कहानियों की अपेक्षा 'अनाथ' कहानी अधिक कलात्मक है। फिर भी कहानी राष्ट्रीय आन्दोलन की कुछ झाँकी उपस्थित करती हैं और इसलिये पठनीय हैं। लेखक को भविष्य में कहानी लिखते समय मनोविज्ञान पर भी दृष्टि रखनी चाहिये।

—रामनारायण अग्रवाल

करुण चित्र—लेखक–श्री चन्द्रदेव नारायण। प्राप्ति स्थान–शिवालय मोतिहारी (बिहार)। पृष्ठ ६४, मूल्य १)

उक्त पुस्तिका में ग्यारह कहानियों का संग्रह है। यह छोटी कहानियाँ समय-समय पर पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रत्येक कहानी के प्लाट में कहानी संग्रह के नामानुसार करुणा की झलक है। निर्धनों पर धनिकों द्वारा प्रतिदिन होने वाले अत्याचारों को भावुकता का पुट दे कर कहानियों के रूपमें रखा गया है।

'स्वागत' लिखते हुए कन्हीं 'शिवचन्द्र' महोदय ने यह लिखकर कि 'चन्द्रदेवनारायण जी ने अपने इस संग्रह की कहानियों का धरातल ठोस धरती के बाशिन्दे 'आदमी' को बनाया है' इस संग्रह की व्याज स्तुति की है। 'आदमी' से अभिप्राय यदि साधारण मानव से है तो वह बहुत पढ़ लिख कर चोरी करना स्वीकार नहीं करेगा और न स्त्री पर हाथ चला देना। न रिक्शावाला भी पहले चोरी करना पसन्द करेगा तब आत्मघात की ओर बढ़ सकेगा। यह स्पष्ट है कि करुण-चित्र प्रस्तुत करने के लिए लेखक को अस्वाभाविक संघटनाओं की शरण लेनी पड़ी है। 'रिक्शावाला' 'गङ्गा की गोद में', 'हेडक्लार्क', 'दिवाली का दिन' तथा 'गरीब का अभिशाप' आदि कहानियों में करुणा का विषाद छाया हुआ है।

इन कहानियों में शैली आवेग पूर्ण एवं भाषा व्यग्रता लिये हुए हैं। टेकनीक की दृष्टि से कहानियों के निर्माण में बहुत सी कमियाँ खटकती हैं। 'हृदय परिवर्तन' तथा 'जादूगर' आदि कहानियाँ इस कथन की प्रमाण हैं। सब कहानियों में एक प्रकार की अभिव्यक्ति देख कर पाठक ऊब उठे, तो आश्चर्य नहीं। प्रूफ रीडिङ्ग में बहुत सी त्रुटियाँ रह गयी हैं।

—शशिभूषण सिंहल

राजनीतिक

गाँधी हत्या-काण्ड—सम्पादक–श्री विहङ्गम। प्रकाशक–ज्ञान-मण्डल पुस्तक भण्डार, बनारस। पृष्ठ संख्या ४३२, मूल्य ५)

गाँधी हत्याकाण्ड का विचार का महत्व केवल इसी लिए नहीं है कि यह एक युग पुरुष की हत्या से सम्बन्धित है वरन् इसमें अभियोग प्रमाणित करने वाले पक्ष की लम्बी गवाहियों के साथ-साथ न्याय विधान की बारीकियाँ और पुलिस विभाग की तत्परता का भी पता चलता है। अभियुक्तों की मनोवृत्ति जिसका उद्घाटन उनके वक्तव्यों में हुआ है एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय उपस्थित करती है और गाँधीजी के बलिदान को महत्व प्रदान करती हैं। यद्यपि इस पुस्तक की अधिकांश सामग्री अखबारों में निकल चुकी है तथापि अखबार अस्थायी महत्व की वस्तुएँ होती हैं और ऐसे महत्व पूर्ण मुकद्दमे को पुस्तक रूपमें आजाना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ बातें ऐसी भी हैं जो अखबारों में कम आई हैं। उदाहरणतः बचाव की तैयारी के सम्बन्ध में जो है वह कुछ नया सा है।

गान्धी हत्या काण्ड के पूर्व बम फटने पर जो गान्धीजी का भाषण है वह चिर स्मरणीय रहेगा। यद्यपि हम यह नहीं जान सके कि गोली लगने के पश्चात् गान्धीजी के क्या विचार थे तथापि बम फटने के बाद के भाषण से उनके शान्ति पूर्ण और क्षमामय विचारों का पता चलता है। पुस्तक में इस मुकद्दमे की पूरी दैनिकी है जो भविष्य के विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से रुचिकर होगी।

—गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीनता की चुनौती—ले०—प्रो० शाँतिप्रसाद वर्मा। प्रकाशक—नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर। पृष्ठ ३७४, मूल्य ७)

दीर्घकाल के संघर्षोपरान्त इस देश को स्वतन्त्रता मिली। इसका एक परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोग राजनीति में रुचि लेने लगे। उनमें से कुछ विशिष्ठ योग्य व्यक्ति आज हमारे देश का शासन संचालन कर रहे हैं। देश की परिस्थितियाँ उन्हें एक क्षण के लिए भी मुक्त नहीं रखतीं। उन्हें इतना भी अवकाश नहीं कि अपने राजनीति के अनुभवों को लिख सकें। इसीलिए हमारे हिन्दी साहित्य में राजनीति विषय पर अच्छी पुस्तकों का अभाव है। प्रो० वर्मा ने देश की राजनीति का एक चिन्तनशील विद्यार्थी की तरह से अध्ययन किया है। वे राजनीतिज्ञों से समय-समय पर परामर्श भी करते रहे हैं। उन्होंने 'हमारी राजनैतिक समस्याएँ' के बाद राजनीति क्षेत्र में अपनी यह अमूल्य देन इस पुस्तक के रूप में दी है।

दुर्भाग्य यह है कि इस देश में ऐसे महत्वाकांक्षी युवक अधिक हैं जो बिना राजनीति का अध्ययन किए ही इसमें प्रवेश कर उठते हैं। उनकी राजनैतिक सचेतना और भी परिपक्व तब हो जब वे पुस्तकों का अध्ययन करें।

'स्वाधीनता की चुनौती' पुस्तक का शीर्षक देखते ही यह लगता है कि कहीं यह किसी पुस्तक का अनुवाद तो नहीं है क्योंकि लूईफिशर की भी एक पुस्तक 'एक महान चुनौती' है। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। वर्माजी की यह मौलिक पुस्तक है। उन्होंने देश की वर्त्तमान परिस्थितियों में पुनर्निर्माण की रचना में प्रगति करने के लिए अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किए हैं। हो सकता है कि अनेक स्थानों पर पाठक का लेखक से मतभेद हो किन्तु हम फिर भी उन विचारों का स्वागत करते हैं। 'भारतवर्ष और समाजवाद' शीर्षक के एक परिच्छेद में लेखक की स्पष्ट राय यह है कि 'यदि जनतन्त्र को जीवित रहना है तो पूँजीवाद को खत्म होना पड़ेगा।'

लेखक का मत है कि हमारे देश में राजनैतिक अथवा जीवन-सम्बन्धी किसी भी मौलिक, स्वस्थ और सुस्पष्ट चिन्तन का बहुत बड़ा अभाव रहा है। इस देश को गान्धी के रूप में विश्व का एक महान चिन्तक मिला। यह पुस्तक इस अभाव को किसी हद तक पूरा कराने में सहायता देगी, ऐसा हमारा विश्वास है। लेखक ने एक नए फासिज्म का रूप भारत में देखा है और उसके ऐतिहासिक विकारों की विवेचना की है। संघ के नेताओं तथा मुख पत्रों के उद्धरण देकर यह सिद्ध किया गया है कि संघ की विचारधारा का फासिज्म से गहरा सम्बन्ध है। वह एक नेता और एक पन्थ में विश्वास करता है। वर्माजी भी भारतीय संस्कृति की महानता मानते हैं। उसे संसार में सर्वश्रेष्ठ बताते हुए आपने कहा है कि इसने अपनी खिड़कियों को बाहर की ताजी हवा के लिए कभी बन्द नहीं किया।

अन्तर्राष्ट्रीय, राजनीति की पृष्ठभूमि में भारतीय राष्ट्रीयता का क्या रूप होना चाहिए, इस विषय को लेखक ने अधिक स्पष्ट तो नहीं किया है पर फिर भी सप्रमाण व्याख्या की गयी है और इतिहास का भी उल्लेख है। पुस्तक के पढ़ने से हमें एशिया के विभिन्न देशों जैसे चीन, हिन्देशिया, मलाया के स्वातन्त्र्य-आन्दोलनों का ज्ञान होता है। लेखक ने आशा प्रकट की है कि यदि हम सामाजिक समानता और जनतन्त्रीय समाजवाद के उद्देश्य से चले तो एक दिन पाकिस्तान पुनः भारत का एक अविभाज्य अंग बन जाने के लिए लालायित हो उठेगा। तभी भारत अपने एशिया के नेतृत्व के उत्तरदायित्व को पूर्ण कर सकेगा।

भारत की विदेशी नीति और उससे सम्बन्धित समस्याओं पर भी लेखक ने एक दृष्टिपात किया है। यहाँ पाकिस्तान को एक चेतावनी दी गयी है कि यदि उसने अपनी धार्मिक कट्टरता के मार्ग को अपनाया तो वह समूचे विश्व की सहानुभूति खो बैठेगा। किन्तु व्यवहार बता रहा है कि ऐसा नहीं हुआ। यह संकेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ठीक है कि उसे भारत के सक्रिय विरोध का सामना करना पड़ेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान भारतीय राजनीति से परिचित कराने तथा स्वस्थ राजनैतिक ज्ञान प्रदान करने में इस पुस्तक को बहुत श्रेय मिलेगा, यदि हमारे नवयुवकों ने इससे लाभ उठाया। प्रत्येक ऐसे युवक के लिए जो भारतीय राजनीति में प्रवेश करने का इच्छुक है, इस पुस्तक का अध्ययन केवल आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। यह इस विषय पर अकेली ही पुस्तक है। क्या हम आशा करें कि पाठकगण इस पुस्तक को पढ़कर लेखक को इस विषय पर अन्य पुस्तकें लिखने का उत्साह प्रदान करेंगे। —रमेशचन्द्र खंडेलवाल एम० ए०

स्फुट

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के बारह वर्ष—पृष्ठ सं० मूल ६४, परिशिष्ट १०६, मूल्य १।)

सन् १९१८ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में उसके सभापति महात्मा गाँधी जी के सुझाव पर 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना हुई। इसका क्षेत्र मद्रास तक ही रहा है। तब १९३६ में नागपुर अधिवेशन में समस्त अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में हिन्दी प्रचार के लिए 'हिन्दी-प्रचार-समिति' का निर्माण हुआ। इस समिति को कार्य करते बारह-वर्ष बीत चुके हैं। इस बीच में इसने आसाम, बङ्गाल, उत्कल, महाराष्ट्र, गुजरात, बम्बई और सिन्ध में प्रचार कार्य किया। इन क्षेत्रों में हिन्दी प्रचार की कहानी का एक रोचक वृत्त बन गया है। उसके प्रचारकों का मिशनरी उत्साह भी अभिनन्दनीय रहा है। इन सबका विवरण इसमें हमें मिलता है। हम उन व्यक्तियों का परिचय इसमें पा लेते हैं जिन्होंने राष्ट्र के भाषा-हित पर अपने को समर्पित कर दिया है। कठिनाइयों और अड़चनों का यह इतिहास अब समाप्त ही हुआ समझना चाहिए। जैसा महन्त आनन्द कौसल्यायनजी ने लिखा है "हिन्दी के लिए अब उपयुक्त अवसर उपस्थित हुआ है। सभा इस अवसर के उपयुक्त योजनाएँ एवं कार्य-क्रम बना रही है। आशा है भविष्य में पर्याप्त कार्य होगा।"—हम इस आशा को सफल हुआ ही समझते हैं, क्योंकि अबतक का इसका कार्य जब इतना विशेष और उत्साह जनक है तो अब समय बदल जाने से परिस्थितियाँ बहुत अनुकूल हो गयी हैं। विविध कार्यकर्त्ताओं के चित्रों से यह विवरण और भी आकर्षक हो गया है। —सत्येन्द्र

वस्त्र-कला (प्रथम भाग)—लेखक—आर० बी० ऐल० जौहरी, हैडमास्टर, कला-भवन, हापुड़। प्रकाशक—कृष्णा स्काउट स्टोर्स, रघुवीरगंज, हापुड़ के लिए साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा। पृष्ठ संख्या ८६, चित्र-पृष्ठ २६, मूल्य २)

इस पुस्तक में लेखक ने बहुत ही सरल भाषा में वस्त्र-कला का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। पहले लेखक ने वस्त्र-कला के सिद्धान्तों को समझाया है। मशीन का परिचय देकर सिलाई के प्रकार समझाये हैं। मनुष्य की आकृति का वस्त्रों की दृष्टि से वर्णन किया गया है। कपड़े को श्रिंक करने की विधियाँ भी बतायी हैं। काट-छाँट में लेखक ने अपने ढङ्ग से चित्र देकर उनकी व्याख्या की है। विविध पायजामे, बनियान, गान्धी टोपी, कूलनैक व कोटकालर कमीज, अन्य कमीजें, विविध कुरते, नेकर, पैंण्ट विविध बास्कट तथा जाकट, फ्राक, बाबासूट, झबला, जाँघिया जम्फर, वाडीस, ब्लाऊज, पेटीकोट की काट-छाँट दी गयी है। परिशिष्ट में विविध नापों का हिसाब दिया गया है। पुस्तक के सभी चित्र बिल्कुल सही पैमाने से बनाये गये हैं और उनकी नाप के लिए पैमाना भी पुस्तक में पृथक रख दिया गया है। पुस्तक, ऐसा प्रतीत होता है, हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी है, पर वस्त्र-कला में रुचि रखने वाले सभी को उपादेय सिद्ध होगी। — सत्येन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

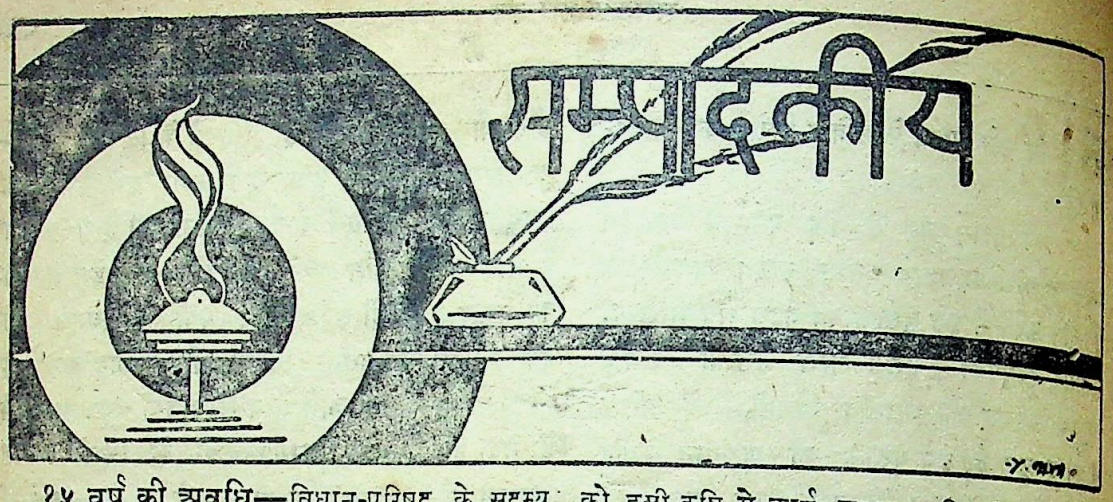

१५ वर्ष की अवधि—विधान-परिषद के सदस्य इस बात में सहमत से होते हुए प्रतीत होते हैं कि अँग्रेजी की जीवन अवधि १५ वर्ष तक और बढ़ाई जाय। हम विधान-कार्य और उच्च शिक्षा कार्य की कठिनाई को स्वीकार करते हुए भी पन्द्रह वर्ष की अवधि को मानसिक शैथिल्य और अकर्मण्यता का परिचायक समझते हैं। अवधि जितनी लम्बी होती है उतनी ही लोगों को ढील मिलती है और प्रयत्न में शिथिलता आजाती है। हिन्दी जो राष्ट्रभाषा के रूपमें अभिषिक्त होने वाली थी उसके लिए पन्द्रह वर्ष की अवधि राम-वनोवास से कम हृदयद्रावक न होगी। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी को चौदह वर्ष का ही वनवास मिला था यदि यह बात अन्तिम रूप से स्वीकृत हो गई तो तुलसीदासजी के शब्दों में यही कहना पड़ेगा कि 'लिखत सुधाकर लिखगा राहू'।

पहले तो शिक्षा मन्त्रीजी पाँच वर्ष की बात कहते थे, वही लोगों को अखरती थी। अब पाँच की पन्द्रह होगई। जो विद्वानों की समिति बुलाई गई थी उसकी भी शिफारिश केवल १० वर्ष की ही थी। हमारी समझ में तो पाँच वर्ष की ही अवधि रक्खी जाती और हिन्दी की कमी की पूर्त्ति करने के लिए जोर से प्रयत्न चलता। फिर भी यदि कमी पूरी न होती तो पाँच वर्ष की अवधि और बढ़ा दी जाती। पन्द्रह वर्ष की माँग अपनी शक्तियों और राष्ट्र भाषा की सम्भावनाओं पर अविश्वास का प्रस्ताव पास करना है। राज्य की सहायता मिलने पर कठिन कार्य भी सहज हो सकता है। विधान-परिषद् चाहे जो कुछ कहे हिन्दी हितैषियों को इसी दृष्टि से कार्य करना चाहिए कि अवधि केवल पाँच वर्ष की ही है।

सम्पादक और सम्पादकीय कार्य—हिन्दी में आज कितने ही पत्र हैं, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, वार्षिक सभी प्रकार के स्थानीय भी और सार्वजनिक भी। जब पत्र हैं तो उनके सम्पादक भी हैं। जन-तन्त्र युग में सम्पादक का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। पर हिन्दी के अधिकाँश सम्पादक स्वयँ-भू हैं। भारत में संपादन-कला को शिक्षा का प्रयत्न ही अब तक बहुत कम हुआ है, हिन्दी में उससे भी कम। अँग्रेजी में जर्नलिज्य (पत्रकार-कला) की शिक्षा का प्रबन्ध अब कई विश्वविद्यालयों में होगया है, पर हिन्दी में सम्पादन कला की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाया। इधर ध्यान जाना आवश्यक है। पर इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि वर्तमान सम्पादकों की कला पर दृष्टि रखी जाय। उनकी सम्पादन-शैली और सम्पादकीय योजना तथा टिप्पणियों की चर्चा हो। उसके लिखे हुए वक्तव्यों की सच-झूठ की परीक्षा हो, और औचित्य की व्यवस्था हो। यह हम पत्रकार-सङ्घ का कर्तव्य समझते हैं। पत्रकार-सङ्घ पत्रकार-कला में दक्ष सहृदय विद्वानों को इसके लिए नियुक्त करे। ये विविध पत्रों और सम्पादकों पर समय-समय पर अपने विचार प्रकाशित करें, उचित परामर्श दें। जब तक भारतीय पत्रकारिता का धरातल बहुत ऊँचा नहीं होता भारतीय जन-तंत्र की वास्तविक प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी०जी० फ्रूट प्रिजर्विंग फैक्टरी

गर्मी और जाड़े

हर मौसम में

जी० जी० ब्रान्ड

वस्तुएँ

व्यवहार में लाइये

गुण, लाभ, स्वाद में कोई कमी नहीं होती

फल पेय	फल शर्बत
नारङ्गी	सन्तरा, नीबू
लेमन	स्ट्रोबेरी
लेमन वार्ली	फाल्सा
आम	मिक्स्ड फ्रूट
लाइमजूस कार्डियल	जाम, केला, बादाम

स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, सेब, अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेह (Orange Marmalade) तथा चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके फल सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं

जी० जी०

चाकलेट फैक्टरी

जी०जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।

इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं ॥

गिरधरगोपाल टिन फैक्टरा में

चार गैलन के टिन के अतिरिक्त

बाल्टियाँ, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की डिबियाँ व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं

हवा यंत्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है

जिससे

कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टौय फैक्टरी

फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के अतिरिक्त

आपके बच्चों की

शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये

सामग्री प्रस्तुत करती है।

खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मज़बूत

जी० जी० इन डस्ट्रीज

आगरा

जी० जी० सेल्स डिपोः—

आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

(स्थापित १९३१)

प्रधान कार्यालय—स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

आंकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १९४६	...	...रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४७	...	...रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४८	...	...रु० ४२,००,००० से ऊपर।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व ऑर्गनाइजरों की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर

विद्यार्थियों के उपयोग की

चाक बत्ती एवं पेस्टिल

स्निग्ध, मजबूत, टिकाऊ एवं चटकीले रंग

भाव निम्न हैं— F. O. R. आगरा

चाक बत्ती :	Chalk Sticks	सफेद	100×100	दर	२८)
	,,	रंगीन	,,	,,	५६)
	,,	सफेद	144×100	,,	४२)
	,,	रंगीन	,,	,,	८४)
पेस्टील :	Ashok Pastel १२ रंग लाल डिब्बी			,,	३०) प्रति ग्रोस
	,, १२ रंग सादा डिब्बी			,,	२७) ,,
	,, ९ ,,			,,	२१) ,,
	,, ६ ,,			,,	१८) ,,
	Tiger Brand १२ रंग स्लाइडिंग डिब्बी			,,	३६) ,,

अपनी आवश्यकताएँ निम्न पते पर लिखें—

बो० एम० सिंघल एण्ड कं०, जमुना रोड, आगरा।

रामचरनलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०] आगरा—मई, १९४९ [अङ्क ११

विषय-सूची

१—मान क्या—संघर्ष, कि समन्वय—श्री जैनेन्द्र कुमार ३९३
२—हिन्दी के दो महाकाव्य : साकेत सन्त और कृष्णायन—प्रोफेसर मुंशीराम शर्मा, एम० ए० ३९६
३—कला के दो रूप—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, ... ४००
४—बच्चन का जीवन-दर्शन—विश्वम्भर 'मानव' एम० ए० .... ४०३
५—महादेवी का रहस्यवाद—श्री शिवप्रसाद लोहानी 'साहित्यरत्न' ४०७
६—प्रेमचन्दजी के बालक—श्री ताराचरन श्रीवास्तव ४११
७—नाटक क्या है—डा० उदयभानुसिंह एम० ए०, पी-एच० डी० .... ४१४
८—मीरा सगुणोपासिनी—लेखक—एक विदुषी ४१८
९—उपेक्षिता कौन ? शत्रुघ्न—श्री तपेश्वरी तिवारी ४२२
१०—रूपक-रचना रहस्य—श्री अवध बिहारी पाण्डेय: व्याकरणाचार्य, हिन्दी विशारद ४२४
११—साहित्य-परिचय ४२६
१२—संपादकीय— ४३०

—गुलाबराय एम० ए०
—महेन्द्र

प्रकाशक

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य रुपया ४)
इस अंक का ...)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना

आलोचना के पथ पर—कन्हैयालाल सहल एम० ए० ४)
अच्छी हिन्दी का नमूना—किशोरीदास वाजपेई २॥)
काव्यालोचन के सिद्धान्त—शिवनन्दनप्रसाद २॥)

कविता

जीवन रश्मि—डा० देवराज ३)

उपन्यास

पकौड़ीसाह जिन्दाबाद—विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त १)

राजनीति

राष्ट्रपिता—पं० जवाहरलाल नेहरू
हमारे स्वराष्ट्र निर्माता—रामनाथ सुमन
पूँजीवाद की पोल—प्रो० रंजन एम० ए०

शिक्षा सम्बन्धी

पूर्वी बुनियादी तालीम—श्रीशान्ता नारूलकर

विज्ञान

साइन्स की कहानियाँ—उमाशंकर

❀ हिन्दी के कुछ कोश ❀

हिन्दी शब्दसागर

ना० प्र० सभा काशी द्वारा प्रकाशित
इस कोश के ८ भाग में से केवल ५ भाग
इस समय उपलब्ध है। मूल्य ५४)

आदर्श हिन्दी कोश—
विद्यार्थी शब्द कोश—
सुलभ हिन्दी शब्द कोश—
हिन्दी मुहावरा कोश—

मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

विद्यार्थियों के उपयोग की
चाक बत्ती एवं पेस्टिल
स्निग्ध, मजबूत, टिकाऊ एवं चटकीले रंग

भाव निम्न हैं— F. O. R. आगरा

चाक बत्ती : Chalk Sticks सफेद 100×100 दर २८)
" रंगीन " " ५६)
" सफेद 144×100 " ४२)
" रंगीन " " ८४)

पेस्टील : Ashok Pastel १२ रंग लाल डिब्बी " ३०) प्रति ग्रोस
" १२ रंग सादा डिब्बी " २७) "
" ६ " " २१) "
" ६ " " १८) "
Tiger Brand १२ रंग स्लाइडिंग डिब्बी " ३६) "

अपनी आवश्यकताएँ निम्न पते पर लिखें—

बी० एम० सिंघल एण्ड कं०, जमुना रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १०] आगरा—मई, १९४९ [अङ्क ११

मान क्या—संघर्ष, कि समन्वय ?

(श्री जैनेन्द्र कुमार)

कुछ दिन हुए साहित्य-सन्देश में लिखते हुए मैंने आलोचना के मान की बात उठाई थी। मेरी समझ से वही मान साहित्य के भी होंगे। साहित्य एक और आलोचना दूसरी वस्तु है, क्या ऐसा मानना होगा ? अन्तर तो है, पर शायद प्रकृतिगत वह नहीं है। साहित्य में स्फूर्ति विशेष चाहिए, तो आलोचना में किञ्चित कम से भी काम चल जाता हो। वह कदाचित् गति की अपेक्षा स्थिति के अधिक निकट हो। वहाँ बुद्धि को और बुद्धि के हिसाब को अधिक अवकाश हो, और विहरनशील चेतना की उतनी माँग न हो। फिर भी आलोचना अजन-शील न होगी ऐसा तो नहीं ठहराया जा सकता।

छोड़िए, ये बातें कभी मेरे लिये अपनी थीं, और मैं उनका था। आज तो लगता है मैं उस सबसे बाहर आ पड़ा हूँ। साहित्य में, आवारा की तरह घुमा किया हूँ, यह मुझे याद है, पर और भी अच्छी तरह याद है कि वहाँ मुझे बसेरा नहीं मिला था। पैर टेक कर साँस ले पाऊँ ऐसी वहाँ कोई धरती मिली है, यह मुझे पता नहीं चला। मतवादों की ऐसी भीड़ रही है और इतना कोलाहल कि उनमें से किसी स्वर या किसी वाद में मन लगाने की सुविधा नहीं हो पाई !

साहित्य से बाहर हो भटका उसके बाद का भी अपना हिसाब मेरे पास नहीं। अगर पाता कि पाँव के नीचे धरती आगई है, तो आपके खत पर झट लिख डालता कि 'साहित्य-सन्देश' में कुछ भी लिखने से अब मेरा छुटकारा है, पीठ की तरफ मुझे नहीं देखना है। हम्सलें (आलडस) महाशय जाने कहाँ लिख गये हैं "Life is lived forward and the right backward"। यह वाक्य पढ़ने के साथ ऐसा मन में बैठ गया है जैसे हम्सले से कम वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा अपना न हो। चाहता रहा हूँ कि पीछे न सोचूं, आगे का होकर बस जोता चलूं। पर जीवन की भी गति तीर की सी है ही नहीं। समस्त जीवन, सरसग है। सिकुड़ कर बढ़ना होता है, और बढ़ कर और बढ़ने के लिये फिर कुछ सिकुड़ना चाहिए। यानी आगे जाना पीछे सोचने के बिना न होगा। इस तरह देखता हूँ कि आपके 'साहित्य-सन्देश' के लिये पीछे हट कर, स्फुट विचारों के रूप में ही सही, मैं कुछ फिर लिखने को तैयार बना हूँ।

आलोचना के मान की बात उठाई तो जान पड़ा था कि वह बहुतों की बात है। उस बारे में कई और लेख लिखे गये थे, और वह विषय कुछ काल चर्चा का और ध्यान का बना रहा था। मेरे लिए वह विषय व्यवहारिक आवश्यकता का था। निरा मानसिक न था। चर्चा हो और उद्वेलन हो, इतने भर से क्यों इति मान ली गई? प्रश्न काम का होने से चर्चा को आगे बढ़ाये जाना और उसमें से परिणाम निकालना था। काम न सधे तब तक आप उस प्रश्न को बराबर पीटते ही जावें, यह मैं चाहूँगा। इसलिए 'साहित्य-सन्देश' के कालमों में फिर उस प्रश्न को खोलने की सुविधा के बतौर यह पंक्तियाँ भेंट कर रहा हूँ।

प्रश्न की अनिवार्यता पहले से बढ़ गई है। उस बाद से हम आप परिचित हैं जो प्रगति के नाम पर चला था। सहारा जिस शब्द का लें, 'वाद अन्त में आग्रह होता है। कट्टरता में उपजता, और कट्टरता उपजाता है। सहज नहीं, कर्म दलबद्ध उसे इष्ट होता है। वह सम्प्रदायिकता मजबूत करता है उससे तू-तू मैं मैं शुरू होती है, जो कलह में और युद्ध में निष्पन्न होती है। एक युद्ध और दूसरे युद्ध के बीज बो जाता है। ऐसे वह दुष्ट-चक्र तीव्र और दृढ़ होता है, जो हमको परस्पर के द्वेष में जकड़े रखता है।

प्रश्न है कि साहित्य के लिये, फलतः उसकी आलोचना के लिये, मान के तौर पर, सङ्घर्ष जरूर होगा कि समन्वय? जिस मूल श्रद्धा को लेकर साहित्य को चलना है, वह युद्ध है, कि शान्ति? साहित्य में हम ललकार चाहेंगे कि स्वागत? यह बहुत बड़ा प्रश्न है और हर एक को अपने आने लिये इससे निपट लेना होगा। शायद यह प्रश्न साहित्य का ही नहीं, राजनीति का भी है; बल्कि साहित्य बनाम राजनीति का है।

राजनीति कर्म की और राज की नीति होने की वजह से समग्र को पक्षों में, अखंड को खंडों में, बँटा हुए देखे, और समाधान को परस्पर की हार-जीत की भाषा से सोचे तो समझ में आ सकता है। कारण, उसका तल वह है। उसको काम काज के और संख्यागत अनेकता के बीच रहना होगा। उसका वही जिम्मा है। यद्यपि राजनीति में भी उससे ऊँची कल्पना न होगी, तो वह विद्यायत न हो सकेगी।

लेकिन स्वयं नीति का ही विचार उस तल पर रहकर नहीं चल सकता। यदि पक्ष ही है। और यदि एक कीमत पर दूसरे को चुन लेना ही उपाय है, तो ऐसे समग्रता नहीं साधी जा सकती। समग्र जीवन को यदि साधना हैं तो मूल मान द्वैत नहीं ऐक्य ही हो सकता है। कम से कम साहित्य जिसे कोई पक्ष रखना नहीं है, और किसी अमुक को गिराना नहीं है, इसके सिवा किसी दूसरे मूल्य को नहीं अपना सकता।

इस स्थापना में से हमें सहज ही कुछ सूत्र हाथ लग जाते हैं यथा:—

१—साहित्य रचना में मताग्रह को स्थान न होगा। आग्रह जितना है, या जितना तीव्र है उतनी रचना निकृष्ट है। एकमत के आग्रह में दूसरे मत का अनादर है। यह एक विकृत वृत्ति है। यह असांस्कृतिक है। फलतः साहित्य से विपरीत है।

२—विरोध और विग्रह के सहारे प्रभाव उत्पन्न करना साहित्य के लिये अनिष्टकर है। यह प्रयत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ जितना उभरा हो वहाँ उतना ही हल्कापन है !

३—घृणा प्रति-स्पर्धा और विद्वेष की शक्ति, क्योंकि अन्त में वह चेतन्य को खाती है, जिस रचना से उद्भुत हो वहाँ रचना में उतना ही विकार मानना चाहिए।

४—जगत्-कर्म सब चैतन्य से सिद्ध और संपन्न होते हैं। कर्म-सिद्धि में साहित्य सीधा आसक्त नहीं हो सकता। ऐसे कर्म जड़ता फलित होगी। साहित्य मूल चेतना के अवरोधों और विकारों को हटाता और प्रवाह को मुक्त करता है। इस तरह वह चेतना का परिष्कार करता, उसे जागृत और विकसित करता है। इस विधि उसका सब प्रकार की कर्म-सिद्धियों में अनायास योग होता है। जो सीधा कर्म सिद्धि की ओर जाता है, चाहे फिर वह देश का स्वराज्य ही क्यों न हो, उसका अत्यन्त सामयिक मूल्य है। शायद वह साहित्य ही नहीं है।

५—कर्म-जगत के व्यक्तियों को ऊँचे चढ़ाने या नीचे गिराने की चेष्टा जहाँ है वहाँ समदर्शिता या उसकी श्रद्धा, नहीं है। साहित्य समदर्शी होगा। अर्थात् कुछ व्यक्तियों पर, किन्ही दूसरे व्यक्तियों का आतंक चढ़ाना साहित्यिक रचनाकार को इष्ट नहीं हो सकता अन्तर-व्यथा में सब एक से निरीह हैं। इसलिए साहित्य में बड़ा वह दीखेगा जो खुशी के साथ छोटा है।

सूत्रों की संख्या और बढ़ाई जा सकती है, पर उससे लाभ नहीं। रियलिज्म के नाम पर एक रोमानटिक वृत्ति चल पड़ी है। नाना व्यक्तियों और कर्मों के बीच वह वैज्ञानिक समकक्षता देखने से डरती है और भावुक भेद-भाव में रस लेती है। कोई कैसे मानें कि स्टालिन सिर्फ नाम की वजह से आदमी से कुछ और है, या डालमियाँ सिर्फ मिल-मालिक कहलाने की वजह से इन्सान से कुछ अन्य हैं। उनके भेद को पकड़ने के लिये एक को देव और दूसरे को दानव बनाकर जो दृष्टि चलना चाहती है, उसे अवैज्ञानिक और अयथार्थ न कहें तो क्या कहा जावेगा। अवश्य ही उसमें अधैर्य और उतावलापन है।

राजनीति के क्षेत्र में आवेशों से खूब काम लिया जाता है। उसमें हराना-गिराना जो लक्ष्य रहता है। जय पराजय ही लक्ष्य हो तब आयुध कोई ओछा नहीं रह जाता। ऐसे आदमी, उलटे गर्व-भाव में, पशुता पर उतर आता है और इसी धरती पर नरक रच उठता है। यह तो आये दिन की बात है। साहित्य में वह आवेश हटात् पहुँच कर उछल कूद मचाआवें इसमें तो अचरज नहीं है। संगठित दलबद्ध अहन्ताओं पर मर्यादा कोई डाले तो कैसे ? लेकिन उस उत्पात को प्रतिष्ठा प्राप्त हो, गंभीर स्वीकृति उसे मिलने लगे, फिर तो सब कुछ गया ही मान लेना होगा।*

— —

[* श्री जैनेन्द्र ने पहले भी आलोचना के मान के ऊपर साहित्य-चर्चा आरम्भ की थी। अब उन्होंने पुराने विषय को नवीनता के साथ उठाया है। हम इस विषय पर विचार-विनमय का स्वागत करेंगे। —सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के दो महाकाव्य : साकेत सन्त और कृष्णायन

(प्रोफेसर मुंशीराम शर्मा, एम० ए०)

महापुरुष इतिहास के निर्माता होते हैं। उनकी जीवन कहानी इतिहास के एक युग की कहानी बन जाती है। आर्य जाति में अनेक महापुरुष हुए हैं; पर जो स्थान उनमें राम और कृष्ण का है वह अन्य किसी का नहीं। रामायण युग और महाभारत युग इन्हीं दोनों की जीवनगाथा से अनुप्राणित हैं। पुण्य-श्लोक राम की जीवनगाथा आदि कवि वाल्मीकि के कण्ठ से निस्सृत होकर जिस प्रकार अनेक कवियों के काव्य का विषय बनी, उसी प्रकार महाप्राण योगीराज कृष्ण का चरित्र भी महामुनि व्यास की लेखनी से चित्रित होकर अनेक गायकों के गले का मणिरत्नहार बनता रहा। प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी में भी इन महापुरुषों की चरितावली को लेकर अनेक काव्यों की रचना हुई। तुलसी और सूर इन्हीं का चरित गाकर अमर हो गये। इस युग में भी पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' काव्य के द्वारा भगवान कृष्ण के उस पुनीत प्राचीन चरित्र को पुनः हमारे सामने प्रस्तुत किया है और पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने रामकथा के आधार स्तम्भ, साकेत के सन्त, निर्मल चरित्र भरत की यशोगाथा 'साकेतसन्त' में हमें फिर से सुनाई है।

कृष्णायन के लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपने चरितनायक के जीवन का अध्ययन करके कुछ उचित परिवर्तन किये हैं। इनसे पौराणिकता का परिहार होता है तथा आधुनिक युग के अनुकूल बुद्धिवाद की सन्तुष्टि। परम्परा के अनुसार, जयद्रथवध के प्रसङ्ग में भगवान कृष्ण ने अपनी वैष्णवी शक्ति द्वारा असमय में ही सूर्यास्त का दृश्य प्रगट किया था और जब जयद्रथ सूर्यास्त के भ्रम में पड़कर अर्जुन की चिता के निकट पहुँचा तो अकस्मात् आकाश में सूर्य-बिम्ब के दर्शन होने लगे। परिणामतः अर्जुन के धनुष से बाण छूटा और जयद्रथ शर-विद्ध होकर धराशायी हो गया। इस प्रकार छल के द्वारा किस प्रकार अर्जुन के प्राण बचाये जा सके और जयद्रथ बध सम्पन्न हो सका। कृष्णायनकार ने छल के इस प्रसङ्ग को अनुचित समझकर योद्धाओं के रण कौशल की अपूर्व अवतारणा द्वारा जयद्रथ वध भी सम्पन्न कराया है और अर्जुन के गौरव की रक्षा भी इसी प्रकार के कुछ परिवर्तन काव्य के अन्य स्थलों में भी किये गये हैं।

कृष्णायन महापुरुष के चरित्र को पूर्ण उत्कर्ष से दिखाने के साथ ही साथ काव्य के सुन्दर स्थलों को भी प्रस्तुत करता है। ऊँचे से ऊँचे कवियों ने रसानुभूति जाग्रत करने में जिन शैलियों को अपनाया है, उन सबको इस कवि ने अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा से निखार कर हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। अनेक रस और भाव पारस्परिक सामञ्जस्य के साथ हमारे हृदय में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पन्दन उत्पन्न कर प्रगट होते और विलीन होते रहते हैं। किस रस का किस रस के साथ विरोध है तथा किस रस की किस रस के साथ मैत्री है, इसका इस सुकवि ने सदैव ध्यान रखा है। उग्र रसों की अवतारणा करने के पश्चात् कवि हमारे हृदय के क्षोभ को कुछ कोमल भावों की अभिव्यक्ति द्वारा दूर करता है। युद्ध के भयानक दृश्यों के पश्चात् कवि ने आकर्षक प्राकृतिक दृश्य अथवा कुछ करुण एवं शान्त भाव के दृश्य सदैव उपस्थित किये हैं जिनसे हमारे विक्षुब्ध हृदय को विश्राम प्राप्त होता है। बीभत्स और भयानक दृश्यों के पश्चात् भी कवि ने इसी परिपाटी से हमें सान्त्वना दी है। जयद्रथ-वध के पश्चात् रात्रि में जो थोड़ा सा विराम मिला उसमें नवोदित चन्द्रोदय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कवि कहता है:—

तजि प्राची दिशि कन्दरा,
केसर किरण पसारि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगटेउ इन्दु मृगेन्द्र जनु,
वारण तिमिर विदारि ॥
दर्शित प्रथम व्योम अरुणाई।
जनु बधु रोहिणि अधर ललाई ॥
उदित पाण्डु द्युति पुनि मनहारी।
कुल कामिनि कपोल अनुहारी ॥
क्रमशः प्रकटित सित कर रूपा।
विशद नवल वधु हास स्वरूपा ॥
शोभित स्रवत सुधा निष्पन्दा।
सिहरी निखिल प्रकृति सानन्दा ॥

कथागत पात्रों के हृदय की अनुभूति उनकी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा पाठकों को होती रहती है। कवि ने इन चेष्टाओं, इन अनुभावों को सजीव रूप में काव्य में उपस्थित करके अपने चरित्रों को साकारता तथा काव्य की अनुभूति को गम्भीरता प्रदान की है।

अलङ्कारों में कवि ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है। कई स्थलों पर ऐसी सूक्तियाँ लिखी हैं जो रामचरितमानस का स्मरण दिला देती हैं। जैसे—

शूद्र अनार्य ललाट न जामा।
आर्य भाल नहिं विधु अभिरामा ॥
प्रिय न काहि पूजा सन्माना।
को न मुग्ध सुनि निज गुण गाना ॥
प्रिय स्वतन्त्रता क्लेश जेहि,
तेहि पै वारहुँ प्राण।
प्रिय दासत्व विभूति जेहि,
सुतहु सो गरल समान ॥

कृष्णायन के लिये कवि के सम्मुख रामचरित्र-मानस का आदर्श था 'मानस' के समान ही कृष्णायन में सातकाण्ड हैं; दोहे, चौपाई और सोरठा नाम के छन्द हैं; ब्रज अवधी मिश्रित भाषा है; लम्बे लम्बे रूपक हैं; वनस्थली और पार्वत्य प्रदेश के मनोहारी चित्र हैं और कथानक के क्रम विन्यास में भक्तिभाव का अपूर्व केन्द्र विन्दु है।

कवि ने समय की आवश्यकता को सदा अपने सामने रखा है। वह वर्ण व्यवस्था की प्राचीनता को मानते हुए भी उसकी उस जड़ता को घृणा की दृष्टि से देखता है जिसके कारण सारे देश पर विपत्ति पड़ने पर भी जातियाँ एकत्व का अनुभव नहीं कर पातीं। कवि का तो सिद्धान्त यह है:—

परहि विपति जब देश पै,
सकल भेद बिसराय।
चारि वर्ण, योगी यतिहु,
आयुध लेंहि उठाय ॥

कवि मानता है कि सच्चा धर्म वह है जो लोक कल्याण करे। जिस धर्म के द्वारा लोक का कल्याण नहीं होता वह अधर्म है। वह कहता है:—

सिरजे जन तन राज्य हित,
विधि आयुध, धनु, वाण।
मनो राज्य हित हम लहे,
श्रुति साहित्य पुराण ॥

कवि के हृदय में भारत की अखण्डता तथा स्वतन्त्रता अटल रूप से विराज रही है। देश का स्वरूप कितनी भावनापूर्ण पंक्तियों में कवि उपस्थित करता है:—

मुकट मनोहर हिम-गिरि शोभत।
आनन सप्त सिन्धु मन मोहत ॥
मध्य देश जनु हृदय विशाला।
कटि तट मनहुँ विंध्य गिरि माला ॥

काँग्रेस का भक्त होने के साथ ही लेखक अपनी संस्कृति का भी अटल पुजारी है, अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान में उसकी अगाध श्रद्धा है। उसका विश्वास है कि यदि इस ज्ञान को नवीन रूप में विश्व के समक्ष उपस्थित किया जाय तो वह उसकी वर्तमान गुत्थियों को सुलझाने में सर्वथा समर्थ होगा। पाश्चात्य मनीषियों ने इन गुत्थियों को अपने ढंग पर सुलझाने का यत्न किया है, पर वे सुलझने के स्थान पर और भी अधिक उलझती चली जाती हैं। "उदधि पार के नित नव वादा' प्रविदिन नवीन पीड़ा लेकर उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित होते हैं और वसुधा के अंचल को लहू लुहान करके एक अभिनव घातक विपत्तिवाद को उपस्थित कर जाते हैं। इस सम्बन्ध में कवि भारतीय ऋषियों के ज्ञान को आहूत करता हुआ कहता है:—

करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना।
भयेउ न आजहुँ सो निष्प्राणा॥
बीज रूप सब निज उर धारी।
माँगति कर्मभूमि नब वारी॥

आर्य संस्कृति की विशेषता कवि ने इन पंक्तियों में प्रगट की है:—

बुद्धि भावना सन्तुलन,
आर्य धर्म आधार।
नष्ट भावना आज प्रभु,
शेष बुद्धि व्यभिचार॥
करुणा आर्य धर्म आधारा।
मानव सम पशु सँग व्यवहारा॥

× × ×

अब हम दूसरे महाकाव्य पर आते हैं। यह है साकेत सन्त। कविवर पं० बलदेवप्रसाद मिश्र एम० ए० डी० लिट० ने महाकाव्य के प्राचीन आदर्शों के अनुकूल इस ग्रन्थ की रचना की है। इसका नायक धीरोदात्त है, राजकुल से सम्बन्ध रखनेवाला है और प्रजा के लिए आदर्श है। काव्य चतुर्दश सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक सर्ग नवीन छन्द से प्रारम्भ होता है। बीच-बीच में पर्वत, सरिता, ऋतु कानन आदि का मनोरम चित्रण हुआ है। १४ वें सर्ग में अष्टयामों की चर्या गीतों में वर्णित हुई है।

'साकेत सन्त' सेवाग्राम के सन्त स्वर्गीय महात्मा गांधी को समर्पित किया गया है। महात्माजी भाषा के जिस रूप को राष्ट्र में प्रचलित करना चाहते थे, उसी का समर्थन, कुछ सीमाओं के अन्तर्गत, इस ग्रन्थ में हुआ। अरबी और फारसी के अनेक शब्दों को तत्सम रूप में ही ग्रहण करने में कवि ने संकोच नहीं किया है। उर्दू के ढंग पर छन्दों और तुकों का भी प्रयोग किया गया है। साकेत सन्त काव्य को साधारण जन समुदाय के समझने योग्य बनाने का पर्याप्त प्रयत्न किया गया है। साकेत सन्त की भाषा का अनुमान इन पंक्तियों से हो जायगा:—

इस एक शब्द में हज़ारों रस रीतियाँ हैं।
मैंने दो वर ले लिये भूप से खासे।
किस मुख से मांगूँ क्षमा, सफाई क्या दूँ?

भाषा ही नहीं, महात्माजी के मानव जीवन सम्बन्धी आदर्श को भी कवि इन शब्दों में घोषित करता है:—

करुणा का बल अतुलित है,
क्षत्रियता जिस पर वारी।

अथवा

सहो काँटे कि यह उर फूल होवे।
सहो यह दुख कि विधि अनुकूल होवे॥

'साकेत सन्त' के कथानक में दो स्थानों पर नवीनता है। प्रायः सब कवि चित्रकूट में भरत के ससैन्य आगमन पर लक्ष्मण के क्रोध का वर्णन करते हैं। यह क्रोध तभी शान्त होता है जब भरत आकर राम के चरणों में लोटने लगते हैं। 'साकेत सन्त' में भरत का डेरा रात्रि आ जाने पर चित्रकूट के समीप ही लग जाता है। प्रातः वेला में भरत अपने डेरे से और भक्त के हृदय की बात जानने वाले राम अपनी कुटी से एक दूसरे की ओर चल पड़ते हैं और बीच ही में दोनों का मिलाप हो जाता है। इस प्रकार 'साकेतसन्त' का रचयिता लक्ष्मण के क्रोध-प्रदर्शन को एकदम बचा जाता है। दूसरी नवीनता चित्रकूट सभा के आयोजन में है। अन्य कवियों ने भरत और राम का संवाद इसी सभा में कराया है; पर 'साकेत सन्त' में राम और भरत प्रकृतिक दृश्यों की गोद में भ्रमण करने चले जाते हैं। वहीं राम भरत को अपना यह उद्देश्य बताते हैं कि दक्षिणा-पथ को अनार्य प्रभाव से बचाकर आर्य संस्कृति की ओर लाने के लिये मैं वन में आया हूँ। भरत भी राम के इस आदर्श को आदेश मान कर शिरोधार्य करते हैं।

'साकेत-सन्त' के कवि को सच्चा हृदय प्राप्त हुआ है। अपनी अनुभूति पर कल्पना का पुट चढ़ाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने साकेत सन्त को मनोहारी महाकाव्य का रूप दे दिया है। आधुनिक युग के जटिल प्रश्नों की ध्वनि भी इस ग्रन्थ में यत्र तत्र सुनाई पड़ती है। यथा—

क्षुद्रों की बलिवेदी पर
पनपी है सदा महत्ता।
निर्धन कुटियों को ढा कर
विकसी महलों की सत्ता॥

तथा

शासक है सच्चा तापस,
जग रक्षा तप का फल है।
वह शक्ति शक्ति ही कैसी,
दुर्बल बलि जिसका बल है॥

साम्यवाद को रामराज्य से मिलाते हुए कवि ने घोषणा की है:—

अभय हों सभी, शक्त हों सभी,
न कोई कहीं दुखी हों लोग।
राज्य से खुले रहें सब ओर,
अशक्तों की रक्षा के योग॥
योग्यता भर सब ही श्रम करें
और आवश्यकता भर प्राप्ति।
राज्य का हो यह ही आदर्श,
राज्य ही की हो पूर्ण समाप्ति॥

साकेत सन्त में गम्भीर से गम्भीर भाव व्यञ्जना सरल से सरल भाषा में अंकित हुई है, सम्पूर्ण साकेत अपने सन्त के साथ चित्रकूट जा रहा है। उस समय का कैसा सजीव चित्र कवि ने अंकित किया है:—

ऊषा चली सूर्य कुल गौरव की चाह भरी,
निशा चली मानों रामचन्द्र के मनाने को।
सेन ओज सानी नेह देह सी चली थी आज,
देह सी चली थी आज प्राण फेर लाने को॥

कवि में हृदय को स्पर्श करने की ही नहीं, उसे झकझोर देने की भी अद्भुत शक्ति है। भरत के भावों को स्थान स्थान पर अनुभव करके हृदय गद्गद् हो उठता है। केकय देश से लौटने पर, राम वनगमन का समाचार सुनते ही, भरत के हृदय की जो दशा हुई, उसका मर्मस्पर्शी चित्र खींचता हुआ कवि कहता है—

झंझा से काँपे, धधक उठे दावा से।
क्षणभर में रुक कर अचल हुए ग्रीवा से॥
मस्तक पर सौ सौ गिरीं बिजलियाँ आकर।
गिर पड़े भूमि पर भरत सुचेत गँवाकर॥

कैकेयी का चरित्र 'साकेत' में द्रवित होकर जब से पवित्र बना है, तब से हिन्दी कवियों का मानस उस हृदय-द्रव से सिक्त होता आया है। साकेत सन्त में भी कवि ने कैकेयी के इस पवित्र स्वरूप की इस प्रकार अभिव्यंजना की है:—

अपनी ऊष्मा में आप जली जाती थी।
स्थिर थी, पर फिर भी बही चली जाती थी॥

हिन्दी काव्य में उदित हुई यह दिशा हमारे लिये आशा की अभिनव सन्देश-वाहिका है जिसको प्राप्त कर भारतमाता कैकेयी के स्वर में कह सकती है:—

"मैं जो कुछ हूँ खो चुकी, पुनः वह पाऊँ"।

साकेत सन्त का रचयिता परिस्थितियों के अनुकूल भाव और चेष्टाओं के चित्रण करने में कुशल है। हमारी मानसिक कर्दम को मिटा कर हृदय को प्रोज्वल रस-धार से अभिसिंचित करने वाला 'साकेत-सन्त' सभी दृष्टियों से हिन्दी का एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। इन दोनों महाकाव्यों को देखकर हम पूर्ण आशा और विश्वास के साथ कह सकते हैं कि हिन्दी बड़ी तीव्रगति से उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है। ब्रज की उपेक्षा होने पर भी प्राचीन परिपाटी के महाकाव्य आजतक लिखे जाते हैं।

इन दोनों ग्रन्थों में भारत के दो आदर्श महापुरुषों के चरित्र अंकित किये गये हैं। भारत अपने राम, भरत और कृष्ण को भूल नहीं सकता। नवीन आदर्श यदि इन महापुरुषों के साथ सम्बद्ध होकर आवेंगे तो उनकी प्रतिष्ठा के लिये लोगों के हृदय में समुचित स्थान होगा। इन दोनों सत्कवियों ने यही चेष्टा की है तथा वे अपनी चेष्टा और उद्देश्य में सफल हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला के दो रूप

(श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त,)

वर्ग समाज में कला के दो रूप हो जाते हैं। एक कला तो शासक वर्ग की कला होती है, परिष्कृत और प्रौढ़, क्योंकि इस वर्ग के पास संस्कृति और शिक्षा के सभी साधन होते हैं और प्राचीन परम्परा का उत्तराधिकार होता है। असंख्य शासित जनता शिक्षा, संस्कृति आदि से अलग रहते हैं, इसलिए उनकी कला में अभिजात वर्ग की बारीकियाँ और नफासत नहीं आ सकतीं, किन्तु उनकी संस्कृति की अपनी धारा अवश्य ही धरती के नीचे-नीचे बहा करती है। इस धारा को लोक-संस्कृति हम कहते हैं, और इसमें अपने अनन्य गुण होते हैं। सभी देशों और जातियों में जनता की अपनी कला होती है, उनके गीत, नृत्य, चित्रकला, नाट्य-कला आदि, जिनके पीछे भी एक लम्बी परम्परा और कहानी है। यह कला जनता के भावों को, उसके दुःख सुख को, उसके सौन्दर्य-प्रेम को व्यक्त करती है। इस कला के रूप से भी अभिजात वर्ग के कलाकार बहुत कुछ सीख सकते हैं। इस कला में अभिव्यक्ति की सरलता और अनुभूति की एक सचाई रहती है, जो ह्रासकालीन उच्च वर्गों की कला के लिए दुर्लभ और दुष्प्राप्य है।

अपने देश में हम जनता की कला का बहुत विकासित रूप सन्त कवियों की रचनाओं में देखते हैं; लगभग उसी युग में दर्बारों में पली अभिजात वर्ग की कला का रीतिकालीन रूप भी हम देखते हैं। सन्त कवियों की कला के पीछे मूल रूप से अभिशप्त और त्रस्त जनता के उत्पीड़न की कथा और इस जीवन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया है। यही इस कला की महानता का रहस्य है।

हम देखेंगे कि कला का कोई शाश्वत, चिर-अपरिवर्त्तित रूप नहीं होता। अनेक युगों, जातियों और वर्गों में इसके अनेक रूप होते हैं, जो सतत परिवर्तनशील हैं। आदिम काल में मनुष्य अपने सौन्दर्य-बोध से अपनी गुफा की दीवार सजाता था, जिन जानवरों का वह शिकार खेलता था, उनके चित्र बनाता था, प्रकृति के देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गीत गाता था, नृत्य में अपनी जीवन की अनुभूति प्रगट करता था, अनेक रंग बिरंगी धागों से जीवन का निरूपण करता था। इस आदिम समाज में वर्ग-भेद न थे और इस कला में भी अविच्छिन्न एकता थी। पूरा समाज इस कला में भाग लेता था।

आदिम समाज के अन्त होने पर वर्ग-समाज का उत्थान होता है, जब कला और संस्कृति मूलतः शासक वर्ग की सम्पत्ति बन जाती है'। इस कला का अभूतपूर्व विकास शासक वर्ग करता है, लेकिन इस कला में शासक वर्ग की भावनाएँ और अनुभूति ही अधिकतर रहती है। वर्ग-कला को इतिहास के कई काल-खण्डों में हम बाँट सकते हैं कृषि युग की कला, सामन्ती युग की कला और पूँजीवादी युग की कला। वर्ग-कला के चिर-स्मारक पिरामिड, यूनान की मूर्ति-कला, भारत का काव्य और नाट्य, साहित्य, प्राचीन मन्दिर और गिरजे, ताजमहल, शेक्सपियर, टॉल्सटॉय- आदि हैं। समाजवादी कला एक बार फिर पूरे समाज की कला होती है, जबकि वर्ग-संस्कृति गङ्गा शोणितों की भूगर्भ में दबी सरस्वती जैसी समाज कला से मिलती है।

वर्ग-कला का विकास सदा ही एक समान नहीं होता। इसमें उत्थान और पतन, प्रगति और ह्रास के क्षण होते हैं। जब पुराने युग का अस्त और नए का उदय होता है, तो कला भी इन दो रूपों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। कला का एक रूप प्राचीन के साथ जुड़ा होता है और उसमें ह्रास के सब लक्षण प्रगट होते हैं; दूसरा रूप नवीन के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है और प्रगति का पथ अपनाता है।

हिन्दी साहित्य के हर युग में प्राचीन और नवीन का यह संघर्ष हम देखते हैं। वीर-काव्य और भक्ति-काव्य में, भक्ति-काव्य और दर्बारी काव्य में, और अन्त में दर्बारी काव्य और खड़ी बोली के साहित्य में। खड़ी बोली का साहित्य पूँजीवादी युग का साहित्य है। अपने उत्थान काल में इस साहित्य को रीतिकालीन परम्पराओं के विरुद्ध भीषण संघर्ष करना पड़ा। नए साहित्य को पुराने आचार्यों के कोप का भाजन बनना पड़ा। अन्त में पन्त ने "वीणा" की भूमिका लिख कर इस वाग्युद्ध को समाप्त किया। आज जब पूँजीवादी समाज के गर्भ में नवीन जन्म लेने के लिए छटपटा रहा है, हम उसी विरोध की पुनरावृत्ति देखते हैं। विरोधी बदल गए हैं। कल के विद्रोही कवि आज प्रतिगामी होकर नए साहित्य को राजनीति और प्रचार कहकर उसका तिरस्कार करते हैं। लेकिन प्रगति के पथ का पथिक तरुण दल आगे बढ़ता ही जाता है।

इस सम्बन्ध में स्टालिन के शब्द स्मरणीय हैं। आप द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद की विवेचना करते हुए लिखते हैं:—

"कई तरह के सामाजिक विचार और सिद्धान्त होते हैं। एक ओर पुराने विचार और सिद्धान्त होते हैं जिनके दिन बीत चुके हैं और जो समाज की रूढ़िबद्ध शक्तियों के हितों की सेवा करते हैं। उनकी अहमियत यही है कि वे समाज के विकास को, उसकी प्रगति को रोकते हैं। दूसरी ओर नए और आगे बढ़े हुए विचार और सिद्धान्त होते हैं, जो समाज की प्रगतिशील शक्तियों के हितों की सेवा करते हैं। उनकी अहमियत यह है कि वे समाज के विकास, उसकी प्रगति में सहायक होते हैं; और उनका महत्व उतना ही ज्यादा होता है, जितनी सचाई से वे समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को प्रतिबिम्बित करते हैं।"

"नए सामाजिक विचार और सिद्धान्त तभी उठते हैं, जब समाज के भौतिक जीवन का विकास समाज के सामने नए कर्त्तव्य रखता है। लेकिन एक बार उठने के बाद वे एक बड़ी भारी शक्ति बन जाते हैं, जो समाज के भौतिक जीवन के विकास द्वारा प्रस्तुत किए नए कर्तव्यों को पूरा करने में मदद करते हैं, ऐसी शक्ति जो समाज की प्रगति में सहायक होती है।"

आज कल और संस्कृति में प्राचीन और नवीन का यही संघर्ष हम देख रहे हैं, मृत विचारों और सिद्धान्तों का जीवन-भार से आकुल नवीन विचारों और सिद्धान्तों से संघर्ष। आज कला और संस्कृति दो दलों में बँट गई है। अपने देश में और विदेशों में भी इन दो दलों को हम साफ देखते हैं।

एक ओर तो शासक वर्ग की व्यवसायी और विलासी कला है, जो जनता के लिए अफीम के समान है। यह कला निराशा और पराजय की भावनाओं को आश्रय देती है; यह व्यक्तिवाद और अहंवाद को पराकाष्ठा तक पहुँचा देती है, जहाँ कला दुर्बोध और अज्ञेय हो जाती है। रहस्यवाद, प्रतीकवाद, प्रयोगवाद, अस्तित्ववाद आदि नाना रूप वह धारण करती है। साम्प्रदायिकता, राष्ट्रवाद आदि संकीर्ण मनोवृत्तियों को वह बढ़ावा देती है। हॉलीवुड के फिल्म, जासूसी कहानियाँ, अश्लील यौन-कला आदि संस्कृति के कुछ रूप हैं। यह अभिजात वर्ग की कला में संकट के लक्षण हैं। अपने मृत्यु-काल के समीप पहुँच कर आज का शासक-वर्ग जीवन को सारहीन और निरर्थक पाता है। साथ ही क्रान्ति की उभरती शक्तियों को वह दबा कर रखने की कोशिश भी करता है। इसीलिए पश्चिम के देशों में चार्ली, चैपलिन, पाबलो, नेरूदा और हावर्ड फास्ट दमन के शिकार होते हैं, और भारत में यशपाल, अली सरदार जाफरी, कृष्णचन्द्र और नागार्जुन। इन प्रगतिशील कलाकारों की कला समाज की नई क्रान्तिकारी शक्ति की परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चायक है, इसीलिए पुराने शासक इसके विरुद्ध दमन का चक्र चलाते हैं।

हिन्दी साहित्य में भी हम यह प्रतिगामी धाराएँ बढ़े-चढ़े रूप में देखते हैं। वर्ग-संघर्ष जब तीव्रतम होता है, तो बीच में खड़े रहना दूभर हो जाता है। शासक वर्ग अपनी पूरी शक्ति दुलमुल बुद्धिजीवी वर्ग को अपने पीछे घसीटने में लगा देता है। आर्थिक कठिनाइयों के शिकार अनेक लेखक अपनी कलम बेचने पर मजबूर होते हैं, लेकिन यहीं उनकी कला का अन्त भी होता है। इसके विपरीत अनेक कलाकार समाज की प्रगतिशील ताकतों से भी सम्बन्ध जोड़ते हैं, और यह उनकी कला में नए प्राण-बल की सूचना होती है।

आज के कुछ प्रमुख पत्र पानी पी-पी कर प्रगतिशील कला को कोसते हैं, किन्तु इतिहास ने इनके लिए जारशाही और चियाँगशाही के साथ स्थान सुरक्षित रख छोड़ा है। राजनीति और प्रचार से परहेज करने वाले इस साहित्य को किसान और मजदूर की राजनीति और कला से परहेज है, शोषक वर्ग के प्रचार और राजनीति से नहीं।

एक जमाने में जार्ज पंचम् की जय बोलना राजनीति नहीं समझा जाता था, महात्मा गान्धी की जय बोलना राजनीति था। शोषक वर्ग की राजनीति कला होती है, शोषित वर्ग की कला राजनीति होती है। आप किसी नेता की प्रशस्ति लिखिए, अभिनन्दन ग्रन्थ का संकलन कीजिए, अपने काव्य में साम्प्रदायिकता का प्रचार कीजिए, सत्ताधारियों के गुण गाइए, व्यवसाय के लिए चलताऊ चीज गान्धीजी के नाम पर लिखिए, तो यह राजनीति और प्रचार नहीं है, किन्तु सर्वहारा की जय का नारा बुलन्द करने वाली कला राजनीति और प्रचार है?

कला के दोनों रूपों की आवृत्ति हम हिन्दी साहित्य में देख रहे हैं। एक ओर अभिजात वर्ग की कला है, जो रहस्यवाद, निराशावाद, व्यक्तिवाद और नाशवाद का प्रचार करती है, जो शासक वर्ग की क्रीत दासी है और सर्वहारा के विरुद्ध हथियार बन गई है, किन्तु जो ह्रास के गढ़े में गिर चुकी है और कोई बनाव-सिंगार जिसके प्राण का सम्बल नहीं बन सकता।

दूसरी ओर जनता की कला है, जो दो धाराओं का संगम है, लोक-कला की भूगर्भ में दबी धारा का उच्च वर्गीय कला से फूटी प्रगतिशील धारा का संगम। जनता की कला का एक पक्ष है किसान-मजदूर कवियों के लोक-गीत और उनके लोक-नृत्य आदि जिन्हें प्रकाश में लाने का श्रेय जन-आन्दोलनों को और प्रगतिशील सांस्कृतिक संस्थाओं को है। जनता के साथ बुद्धिजीवियों का भी एक बड़ा जत्था अपने वर्ग से टूट कर आता है। इन्हें अभिजात वर्ग की संस्कृति के ह्रास की सूचना मिल चुकी है, और वे समाज की प्रगतिशील शक्तियों के साथ अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ते हैं।

प्राचीन संस्कृति फासिज्म की ओर जा रही है, उसका सन्देश मरण है। नवीन संस्कृति जनवाद और विश्व-शान्ति की ओर उन्मुख है, और उसका सन्देश जीवन और प्रगति है। पुरानी संस्कृति आज बहुसंख्यक जनता के सुख और समृद्धि की परिचायक नहीं है; वह उत्पीड़न और शोषण का पर्याय बन गई है। नई संस्कृति ही आज असंख्य जनता के असीम विकास का द्वार खोल सकती है, अतएव यह अनिवार्य है कि कला की प्रगतिशील धारा बढ़े और बलवती हो। पुरातन की थाली में जो कुछ संचय करने योग्य है, उसे लेकर वह आगे बढ़ेगी। एक बार फिर वर्ग हीन समाज के प्रौढ़तम कला और जनता का मिलन होगा; तब कला प्रागैतिहासिक युग समाप्त होगा और ऐतिहासिक युग शुरू होगा। वर्ग-हीन समाज की उस विराट संस्कृति की आज कुछ कल्पना ही हम कर सकते हैं, उसकी रूपरेखा तो आगे चल कर ही स्पष्ट हो सकेगी। फिर वह रूपरेखा होगी, इसका आभास हम सोवियत-संघ संस्कृति में पाते हैं, जहाँ सम्पूर्ण जनता कला और संस्कृति के निर्माण में भाग लेती है, और उसका उपभोग करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चन का जीवन-दर्शन

(विश्वम्भर 'मानव' एम० ए०)

'बच्चन' यौवन, सौंदर्य और प्रेम के कवि हैं। यौवन आता है। यौवन अपने साथ सौंदर्य और मस्ती लाता है। सौंदर्य और मस्ती आकर्षित करते हैं। प्रेम उत्पन्न होता है। इस प्रेम के गीत कवि गाता है। प्रेम के जीवन में आघात लगता है। सारा दृश्य ही बदल जाता है। प्रतीक्षा, निराशा, सूनेपन, एकाकीपन के दिन आते हैं। कवि उनका भी सम्मान करता है। पर फिर एक दिन रात की कालिमा को चीर कर उषा मुस्कराती है। बच्चन के जीवन में फिर एक बार सुख, श्री, स्वर्ण की वर्षा होती है। यह है अब तक उनके सारे जीवन का लेखा। जीवन में कवि ने मुस्कानें भी देखी हैं और आँसू भी। संक्षेप में बच्चन हर्ष-विषाद, आँसुओं और मुस्कानों के कवि हैं।

'बच्चन' के प्रेम के जीवन में भीतर से जितना सामंजस्य प्रतीत होता है, बाहर से उतना नहीं। छोटे-छोटे आकर्षणों की बात छोड़ दें तो 'बच्चन' ने अपनी कृतियों में तीन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से तीन बार स्पष्टतः प्रेम स्वीकार किया है (१) प्रारम्भिक रचनाओं में (२) निशा निमन्त्रण में (३) सतरंजिनी में। प्रारम्भिक रचनाओं में कवि ने नाम नहीं खोला। 'निशा-निमन्त्रण' और 'सतरंगिनी' में खोल दिया है। प्रारम्भिक रचनाओं में कवि ने प्रेम-प्रसंगों में 'सुषमा' शब्द का अधिक प्रयोग किया है। अतः उस अपरिचिता को हम 'सुषमा' का काल्पनिक नाम दिए देते हैं। प्रश्न यह है कि सुषमा, श्यामा और सुश्री तेजी में से कवि ने सच्चा प्रेम किसे किया है? क्या सभी को किया है? और यदि किया है तो क्या यह सम्भव है कि कवि एक के उपरान्त दूसरे और दूसरे के उपरांत तीसरे को पकड़े? क्या मन की ऐसी अस्थिर स्थिति प्रेम की संज्ञा की अधिकारिणी है?

अपने प्रारंभिक दिनों में कवि सुषमा के पीछे पागल रहा है। यह बात प्रारम्भिक रचनाओं से सिद्ध है। उसके चरणों पर वह सब कुछ न्यौछावर करने को प्रस्तुत है और उसने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया है। कवि प्रेम को ईश्वर से भी बड़ा बतलाता है और सुषमा से कहता है कि वही उसका 'धर्म' है वही 'कर्म' वही 'जीवन' और भगवान। आगे चलकर जब सुषमा एक दिन पूछती है। सबसे अधिक प्रेम तुम किसे करते हो? तो कवि उत्तर देता है 'तुम्हें।' बात बढ़ती है और एक दिन इस प्रेम की चर्चा चारों ओर फैल जाती है। इससे कवि को बहुत दुःख होता है और अन्त में 'कलङ्क' शीर्षक रचना में वह अपनी प्रेमिका को यहाँ तक समझाता है—

इससे आओ कर विषपान—
आपस में भुजहार पिन्हाएँ
फिर चिर चुम्बन में मिल जाएँ
कर दें जीवन-द्वैत-दीपों का साथ-साथ निर्वाण।

प्रेम के उद्गारों की अभिव्यक्ति की दूसरी स्थिति 'निशा-निमंत्रण' में आती है। 'निशा-निमंत्रण' निस्संदेह 'बच्चन' की सर्वश्रेष्ठ रचना है। भाव और भावाभिव्यक्ति दोनों ही यहाँ ऐसे समान तल पर मिले हैं कि उनकी मैत्री बेजोड़ सिद्ध हुई है। सुषमा को खोने और श्यामा को खोने के बीच की कवि-जीवन की कहानी का पता उसकी रचनाओं से नहीं लगता। इस बीच किस मानसिक संघर्ष का सामना उसने किया इसका कोई चिह्न प्राप्त नहीं। इतना ही पता चलता है कि श्यामा की मृत्यु ने एक बार उसके जीवन के तन्तुओं को झकझोर दिया। 'निशा-निमन्त्रण' में क्षोभ और कातरता से उसने कहा—

आज मुझसे दूर दुनिया!
भावनाओं से विनिर्मित
कल्पनाओं से सुसज्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर चुकी मेरे हृदय का स्वप्न चकनाचूर दुनिया!
"बात पिछली भूल जाओ
दूसरी नगरी बसाओ"
प्रेमियों के प्रति रही है, हाय, कितनी क्रूर दुनिया!
वह समझ मुझको न पाती
और मेरा दिल जलाती
है चिता की राख कर में, माँगती सिंदूर दुनिया!
आज मुझसे दूर दुनिया!

प्रणय का तीसरा तूफान 'सतरंगिनी' में आया। इस अनुरागिनी की चर्चा 'बच्चन' ने अत्यन्त चकित भाव से की है। जीवन में प्रवेश करते ही उसने घोर अंधकार को चीर कर आलोक विकीर्ण किया, दुःख की पुरानी कहानी की स्मृति मिटा दी, और नवीन जीवन-दान दिया। इस प्राणी की सुन्दरता, मधुरता और सहृदयता का उल्लेख कवि ने बड़े मनोयोग से किया है। सबसे बड़ी बात जो उसने उसमें देखी है वह है उसकी दुर्निवार शक्ति—

ले प्रलय की नींद सोया
जिन दृगों में था अँधेरा
आज उनमें ज्योति बन कर
ला रही हो तुम सवेरा
सृष्टि की पहली उषा की
यदि नहीं मुसिकान तुम हो।
कौन तुम हो?
तुम किसी बुझती चिता की
जो लुकाठी खींच लाती
हो, उसी से व्याह मंडप
के तले दीपक जलातीं
मृत्यु पर फिर फिर विजय की
यदि नहीं दृढ़ आन तुम हो,
कौन तुम हो?
यह इशारे हैं कि जिन पर
काल ने भी चाल छोड़ी
लौट में आया अगर तो
कौन सी सौगन्ध तोड़ी
सुन जिसे रुकना असंभव
यदि नहीं आह्वान तुम हो।
कौन तुम हो?

'कौन सी सौगन्ध तोड़ी' पंक्ति पढ़ कर कुछ [illegible] को मन करता है—पर रहने दीजिए। अपनी [illegible] में 'बच्चन' ने अपने व्यवहार के समर्थन में तर्क [illegible] ऊपर तर्क दिए हैं। सुनने वाले पर वे अपना [illegible] फेंकते हैं; पर गम्भीरता से विचार करने पर वे [illegible] दुर्बल प्रतीत होते हैं। स्पष्ट है कि प्रेम में वे [illegible] की स्मृति को लेकर जीवित नहीं रह सकते। 'सतरंगिनी' में उन्होंने स्पष्ट कहा है—

जो मादकता के मारे हैं
वह मधु लूटा ही करते हैं,
वह कच्चा पीने वाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर।

अर्थात् व्यक्ति का कोई मूल्य बच्चन की दृष्टि में नहीं, सुख का है।

बच्चन का जीवन दर्शन—बच्चन का समस्त जीवन-दर्शन भौतिकवाद पर आधारित है। बचपन से ही इस व्यक्ति में नास्तिकता के परमाणु रहे हैं। 'प्रारंभिक रचनाओं' में ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में कहीं तो वह सन्देह की स्थिति में रहा है और कहीं स्पष्ट शब्दों में उसने उसकी सत्ता में अविश्वास प्रगट किया है। इस अविश्वास का कारण है व्यक्तिगत जीवन और सांसारिक जीवन का उसके मनोनुकूल न होना। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उसने कहा, यह स्वतः उत्पन्न है; इसका कोई स्वामी नहीं है। अतः वह हुआ प्रकृतिवादी, उसका दर्शन हुआ भोगवादी, जीवन का आदर्श हुआ—आज की चिंता, आज का सुखपूर्वक भोग।

नास्तिकता और भोगवाद की भावनाओं के बीजों के अंकुरित होने पर कवि की दृष्टि 'उमर खय्याम' पर पड़ी और उसमें उसने अपनी मान्यताओं की पुष्टि देखी। बड़ी तत्परता से उसने रुबाइयात का अनुवाद किया और उसके उपरान्त मधु सम्बन्धी कई रचनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

। इन रचनाओं में उसने संदेश दिया मस्ती का, ...न्त रहा जीवन का आनंद, कारण रही सृष्टि के ...प्रसार में क्षणभंगुरता की वृत्ति। जब सब कुछ ...शवान है तब जो क्षण मिलें उनका भोग न करना ...त है। अपनी भावना की उमंग में उसने यहाँ ...क कहा—

मैं देख चुका जा मस्जिद में
झुक झुक मोमिन पढ़ते नमाज़
पर अपनी इस मधुशाला में
पीता दीवानों का समाज
वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म
कह भी दूँ तो दूँ क्या सबूत
कब कञ्चन मस्जिद पर बरसा
कब मदिरालय पर गिरी गाज
यह चिर अनादि से प्रश्न उठा
मैं आज करूँगा क्या निर्णय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन मेरा परिचय।

—मधुबाला

और इस प्रकार उसने सत्—असत्, पाप-पुण्य, पूजा-पाठ और मदिरापान के अन्तर को मिटा दिया!

इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उसका विरोध हुआ। इस विरोध का उत्तर बच्चन ने 'मधु-कलश' की रचनाओं में दिया। बच्चन के चिंतन में जो विश्वास का स्वर है, उसमें अविश्वास का स्वर बराबर प्रतिध्वनित है। अपनी बात का समर्थन बच्चनजी बड़े आवेश और आत्मविश्वास के साथ करते पाये जाते हैं, पर उनमें हीनता की भावना बराबर पाई जाती है। वे ईश्वर भावना को भ्रम बताते, हुए नियति से घबराते हैं, संसार को ललकारते साथ ही साथ उससे डरते भी जाते हैं। आक्षेप होते ही बच्चन जी कोई ऐसी आड़ लेते हैं जिसमें किसी प्रकार की असाधारणता का पुट हो। बच्चन की रचनाओं पर जब वासनात्मक होने का आक्षेप किया गया तो उन्होंने 'कवि की वासना' शीर्षक रचना में उत्तर दिया "कि ऐ जगत तू यह जान ले कि मैं देह धर्मों से बँधा हुआ नहीं हूँ।" इसकी पुष्टि में उन्होंने अपना सम्बन्ध उषा, संध्या, निशा, वायु, वसुंधरा, बिजली और न जाने किस किस से बतलाया, लेकिन झुंझलाहट में अन्तर की दुर्बलता व्यक्त हो ही गई—

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक?
वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी?

उस रचना की ये सबसे दुर्बल पंक्तियाँ हैं। इतनी देर से जिस बात की स्थापना कवि करता आ रहा था उसे उसने स्वयं ही मिटा दिया।

'हलाहल' में जिस सत्य के दर्शन कवि ने किए हैं उसमें कोई नवीनता नहीं है। प्रारम्भिक रचनाओं से लेकर हलाहल तक समस्याओं की चर्चा तो बच्चन के काव्य में है, लेकिन उनका समाधान क्या है, इस पर गहन चिंतन कवि, नहीं कर पाया। जीवन निराशाओं से परिपूर्ण है, दुःख में कोई अपना साथ नहीं देता, सब कुछ परिवर्तनशील है। काल के क्रूर करों से कुछ नहीं बचता, ये ऐसे चिरन्तन सत्य हैं जिन पर सभी की दृष्टि पड़ती है। इन्हें दुहराने से क्या लाभ है? बच्चन की विकलता या तो वह पुराने संस्कारों को मिटाने में व्यस्त रही है या पुरुष की प्रशंसा करने में। परन्तु यह जिज्ञासाओं और प्रश्नों का उत्तर नहीं—

(१) प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर।
(२) यह महान दृश्य है।
चल रहा मनुष्य है॥

अश्रु—खेद रक्त से लथपथ, लथपथ, लथपथ।
अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ॥

कला—कला की दृष्टि से 'बच्चन' की प्रारम्भिक रचनाओं में बड़ा प्रयत्न पाया जाता है। इस प्रयत्न का बहुत ही सुन्दर विकास बच्चन के काव्य में आगे चलकर हुआ। गीति-काव्य के लेखकों में जो सरलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुबोधता उनकी रचनाओं में पाई जाती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'सतरंगिनी' की 'नागिन' रचना में प्रतीकों का विधान भी उनकी रचनाओं में एक दम निर्दोष तो नहीं, पर हिन्दी के बहुत से कवियों की अपेक्षा वह अधिक सरस सरल और सफल है। अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग 'बच्चन' ने खुल कर किया है। हिन्दी के छन्दों के अतिरिक्त उर्दू के बहुत से छन्दों को अपनाकर बच्चन ने सुन्दर लयों की सृष्टि की है। उनके गीतों में ध्वनि का सौन्दर्य तो नहीं पर एक प्रकार की गूँज की मार्दवता है जो हृदय में देर तक मँडराती है। इस गूँज की सृष्टि वे अनुरणन और अनुप्रास द्वारा तथा कुछ वाक्यांशों या वाक्यों को दुहरा करते हैं। यही उनकी कला का रहस्य है एकाध उदाहरण लीजिए—

(१) सुन! कलकल छलछल मधुघट से
गिरती प्यालों में हाला,
सुन! रुनझुन रुनझुन चल वितरण
करती मधु साकी बाला!
—मधुशाला

(३) प्रलय की रात में सोचे
प्रलय की बात क्या कोई,
मगर पड़ प्रेम बन्धन में
समझ किसने नहीं खोई।
किसी के पंथ में पलकें
बिछाए कौन बैठा है,
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
—सतरंगिनी

(४) हुई गुलाल मेघमाल अस्त जब
विहंग वृक्ष में छिपे समस्त जब,
हुआ अशब्द और स्तब्ध जब गगन,
मुखर चरण ध्वनित हुए झनन, झनन।
—मिलन-यामिनी

मूल्याङ्कन—

इस युग के कवियों में 'बच्चन' का स्थान कहाँ है यह अभी नहीं कहा जा सकता। उनके काव्य का क्षितिज अभी बहुत सीमित सा है। व्यक्तिगत प्रेम की अभिव्यक्ति मात्र है वह। उनके प्रेम का रूप किस सीमा तक ग्राह्य है, इस सम्बन्ध में भी चुप रहना ही ठीक है। वास्तव में व्यक्तिगत जीवन के उस पक्ष को इस सीमा तक उन्हें काव्य में घसीटना नहीं था। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है उसे प्रकाशित देखने का बहुत भारी मोह भी उनके हृदय में है। उनके लगभग पाँच सौ से ऊपर गीतों में से एक भी गीत प्राकृतिक सौन्दर्य को लेकर नहीं है। इस प्रकार व्यापक जीवन तो दूर, प्रकृति भी स्वतन्त्र रूप से अभी तक उनके काव्य से बहिष्कृत रही है।

'बच्चन' अभी उपाध्यायजी या मैथिलीशरणजी के समान बाह्य जगत के सुख दुःख के साथ अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाये। निराला की ओज शक्ति, 'प्रसाद' जैसी प्रौढ़ता, महादेवी जैसी गम्भीरता और पन्त जैसी कल्पना की कोमलता ने भी उन्हें अभी स्पर्श नहीं किया। उदाहरण के लिए जीवन की जिस क्षणभंगुरता, काल की जिस क्रूरता और सृष्टि के जिस परिवर्तन—चक्र की भावना ने 'बच्चन' की भावना को विचलित किया उसका कितना सुन्दर विश्लेषण और समाधान कामायनी में है। पर वैसे विवेचन के लिए वैसी प्रतिभा भी चाहिए। इन्हीं विषयों पर अपने आत्म-विश्वास के बल पर महादेवीजी ने जो पावन अध्यात्मिक शान्ति-धारा प्रवाहित की उससे भी यह व्यक्ति वञ्चित है। इन सभी दृष्टियों से 'बच्चन' की गणना अभी द्वितीत श्रेणी के कलाकारों में होगी। 'बच्चन' अभी तक घोर व्यक्तिवादी, अविश्वासी और भौतिकवादी रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी का रहस्यवाद

(श्री शिवप्रसाद लोहानी 'साहित्यरत्न')

अद्वैतवाद चिन्तन का विषय है रहस्यवाद भावना का। जिस प्रकार ज्ञानी जिज्ञासु को अपने विचार पर लाना चाहता है उसी प्रकार भावुक अपनी भावना पर। अद्वैतवादी भी परोक्ष सत्ता की अनुभूति करता है रहस्यवादी भी। दोनों का साध्य एक है साधन भिन्न। एक मस्तिष्क का विषय है दूसरा हृदय का। निश्चय ही दोनों जल, थल, आकाश आदि में सर्वत्र एक ही सत्ता का विस्तार देखता है किन्तु रहस्यवादी उस अनन्त शक्ति का वर्णन ऐसी सरस और हृदयग्राहिणी भाषा में करता है कि उसकी अनन्तता और व्यापकता सहज ही अनुभव गम्य हो जाती है।

रहस्यवादी भावना अमर भावना है देश-काल से परे। सृष्टि के आदि से लेकर आजतक इस भावना के सम्यक् व्यक्तीकरण का प्रयास किया जा रहा है और सम्भवतः किया जाता रहेगा भी। संसार की सभी उन्नत भाषाओं में इस भावना के प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा की जाती रही है। हिन्दी इससे वञ्चित नहीं। हिन्दी का जन्म ही ऐसे आध्यात्म-प्रवण देश में हुआ है कि वह इस पावन भावना की व्यञ्जना से अछूती नहीं रह सकती। यों तो कबीर के पहले भी यदा कदा रहस्यमयी भावनाएँ मिलती हैं किन्तु कबीर की रचनाओं में इसका स्पष्ट स्वरूप मिलता है। कबीर ने शुष्क अद्वैतवाद को सरस रहस्यवाद में वर्णन करने का सफल प्रयास किया। प्रतीकात्मक शैली में रहस्यमयी भावनाओं का वर्णन अच्छा है—

काहे रे नलिनी तू कुम्हलानी
तेरे ही नाल सरोवर पानी
जल में उत्पति जल में वास
फिर नलिनी तू काहे उदास

जायसी के काव्य में रहस्यमयी भावनाएँ अधिक हृदयस्पर्शी हैं। 'पद्मावत' में अनेक ऐसे स्थल हैं जो अन्तस्पर्शी एवं रमणीय हैं और जिनसे पद्मावत (आराध्य) की सार्वभौमता परिलक्षित होती है—

वेनी घोर भार जौं बारा
सरग पताल होइ अँधियारा

प्रेम दीवानी मीरा, के काव्य में रहस्यवाद का सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है। मीरा के उद्गार हृदय के अन्तरतम प्रदेश से निकले हैं जिनमें कृत्रिमता का लेश भी नहीं है। पर भावनाएँ छलकती-सी ज्ञात होती हैं। भाषा के ऊपर पूर्ण अधिकार नहीं रहने के कारण भाषारूपी प्याली से भाव-जल इधर उधर बहते-से लगते हैं, आकुल वेदना को शब्दों में समुचित रूप से नहीं बांध पाये हैं।

अन्य भक्त कवियों के काव्य में रहस्यवाद का पुष्ट स्वरूप नहीं मिलता है, यदि कहीं मिलता भी है तो उनकी संख्या इतनी थोड़ी है कि उन्हीं के बल पर उन्हें रहस्यवादियों की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता तलसी के काव्य में अपेक्षाकृत रहस्यवाद का कुछ पुष्ट स्वरूप मिलता है, 'केशव कहि न जाय का कहिये' आदि पदों में।

इसके पास हिन्दी-साहित्य में इसकी धारा क्षीण दिखाई पड़ती है। रीतिकालीन कवियों में कुछ ने रहस्यात्मक अनुभूति की वर्णना करने की चेष्टा की है किन्त वे महत्त्वहीन हैं, उनके कोई मूल्य नहीं। इधर प्रसाद, महादेवी, पन्त, निराला प्रभृति कवियों के काव्य में रहस्यात्मक अनुभूतियाँ देखने को मिलती हैं। इन सबों में महादेवी का स्थान रहस्यवादी कवियों में सर्व प्रथम है क्योंकि इनके काव्य में रहस्यवाद क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रांजल और पुष्ट स्वरूप मिलता है। इनके काव्य में नारी-हृदय की सारी कोमलता, अनुभूति का विस्तृत साम्राज्य, प्रकृति-तादात्म्यता, भाव-गांभीर्य, पर्यवेक्षण का विराट कोष मिलन की उदात्त अभिलाषा परिव्याप्त है। इन्हीं कारणों से इनकी रहस्यमयी आध्यात्मिक भावनाएँ अपेक्षाकृत अधिक सप्राण और नैसर्गिक हैं। अनन्त और व्यापक शक्ति की खोज में ये पागल हैं। एक इच्छा एक भावना और एक निष्ठा, वह केवल मिलने को लय होने की। क्योंकि—

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक प्रकाश
गला कर मृत पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण

अतएव—

सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान।

श्री रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद की उद्देश्य-प्राप्ति में तीन परिस्थितियों की कल्पना की है। महादेवीजी के काव्य में इन तीनों स्थितियों का प्रस्फुटन हुआ है। प्रथम परिस्थिति वह है जब कवि उस अनन्त शक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़ने को अग्रसर होता है। ईश्वर की अनन्त शक्ति पर उसे आश्चर्य होता है। उसके विभिन्न स्वरूपों को वह जानना चाहता है कि इसका सूत्रधार कौन है—

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात।
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार?

उसकी जिज्ञासा इतनी वेगवती एवं तीव्र हो जाती है कि उसके रहस्य को जानने के लिए वह आकुल हो जाता है—

शून्य काल के पुलिनों पर,
आकर चुपके से मौन।
इसे बहा जाता लहरों में,
वह रहस्यमय कौन?

प्रकृति के प्रत्येक अवयव को वह जानने [illegible] जिज्ञासा करता है। भावनाएँ इतनी सजग हो [illegible] हैं कि बिना जाने चैन नहीं।

तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज से,
ज्योत्सना के रजत पारावार में।
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींदके उच्छ्वास-सा, वह कौन है?

इस पहिली परिस्थिति की पूर्णावस्था में [illegible] मिटने लगती हैं। और अनन्त-शक्ति से वह प्रभावित दीख पड़ता है—

सजनि कौन तम में परिचित-सा,
सुधि सा, छाया सा, आता?
सूने में सस्मित चितवन से,
जीवन-दीप जला जाता!

द्वितीय अवस्था में आत्मा परमात्मा से प्रेम करने [illegible] जाती है, ससीम असीम के निकट पहुँच जाता है। आश्चर्य चकित होने की स्थिति समाप्त हो जाती है और वह चुपचाप अपने आराध्य को प्यार करने [illegible] जाता है। भावना में उन्माद और मादकता आ जाती है। वह कौन? यह स्थिति समाप्त हो जाती है। [illegible] कवि उसके अभाव में सारे संसार को सारहीन समझने लगता है—

तुझ बिन हो जाता जीवन का
सारा काव्य असार
उस बिन मेरा दुःख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी

इतना ही नहीं वह असीम में मिल जाने [illegible] अभिलाषी हो जाता है; वह समझने लगता है कि सर्वत्र ही उसका साम्राज्य है। महादेवी कहती हैं—

तू जीवन में छिपा वेणु में,
ज्यों ज्वाला में वास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ में मिल जाना ही है,
जीवन का चरम विकास।

इस आशा से मैं उसमें,
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल।
कभी तुम्हारे सस्मित अधरों
को छूते वे होंगे अनमोल॥

तदा एक चाह, आराध्य से मिलने की अभिलाषा। मिलन-अभाव की पीड़ा से संत्रस्त और सान्निध्य की उत्कट चाह से मत्त—

एक करुण अभाव में,
चिर तृप्तिका संसार सञ्चित।
एक लघु क्षण दे रहा,
निर्वाण के वरदान शत-शत॥

तृतीय स्थिति रहस्यवाद की चरम सीमा है। इस परिस्थिति में साधक और साध्य की भिन्नता नहीं रह जाती, दोनों में एकीकरण हो जाता है। आत्मा अपने में ही परमात्मा के गुणों का आरोपन कर लेती है। 'स्व' पूर्णतया विनष्ट हो जाता है। महादेवी के कवि ने इस अवस्था की झाँकी भी ली है। कई स्थल पर इसका आभास मिलता है। उस परम सत्य की तदाकारता में आसीन होकर कवि अपने आराध्य की उपासनामयी समता का अधिकारी बन जाता है एवं प्रियतम के सभी गुण उसमें उद्भासित हो उठते हैं—

फैलते हैं सान्ध्य नभ में,
भाव मेरे ही रँगीले
तिमिर की दीपावली है
रोम मेरे पुलक गीले।

सभी वस्तुओं में एक परमसत्ता का ही आभास होता है। निजत्व समाप्त हो जाती है—

मधुर मुझको हो गये प्रिय
मधुर प्रिय की भावना ले
हो गई आराध्यमय मैं
विरह की आराधना ले

जो अपने को उर्मि और आराध्य को सागर कहता है वही यह कहने लगता है—

वीणा भी हूँ मैं तुम्हारी
रागिनी भी हूँ।

किन्तु ऐसे पद विरल हैं। आत्म-विस्मृति में विभोर हो निजत्व को लय करने की स्थिति में आते ही कवि का 'स्व' अपनी ओर घसीटने लगता है। क्योंकि यदि—

मिलन मन्दिर में उठा दूँ
जो मुझसे सजल गुंठन

तो—

मैं मिटूँ प्रिय में मिटा क्यों
तप्त सिकता में सलिल कण

और भी—

सजनि मधुर निजत्व दे,
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं

कविवर रत्नाकर ने कहा भी है—

बनि है बिगरि है न वारिधिता वारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद विवश बिचारी की।

जहाँ महादेवीजी का निजत्व महादेवी के साधक को लय होने से रोक कर महादेवीजी का अहित कर रहा है वहाँ साहित्य जगत इससे अत्यधिक लाभान्वित भी है, क्योंकि महादेवी का विरह-काव्य अत्युत्कृष्ट है, यदि महादेवी के काव्य से विरह का अंश हटा दिया जाय तो उनके काव्याकाश का शशि ही डूब जाय। विरह-वर्णन महादेवीजी के काव्य का महत्वपूर्ण अंश है।

रहस्यवादी भावना अत्यन्त सूक्ष्म एवं अलौकिक है। कबीर ने तो इसे गूँगे का गुड़ कहा है, फिर भी इस अगोचर तथा इन्द्रियातीत भावना को बोधगम्य बनाने के हेतु रहस्यवादी कवियों ने विविध पद्धतियों का आश्रय लिया है। महादेवीजी ने जो शैली अप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायी है वह अपने ढङ्ग का अनूठी है, उसकी सौम्यता और मनोज्ञता मर्मभेदिनी है। उन्होंने प्रतीक-शैली और प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से अपनी भावनाओं को मूर्त रूप देने का सफल प्रयास किया है। 'मैं और तू' शीर्षक कविता में आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का चित्रण प्रकृति के उपकरणों द्वारा बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है—

तुम अनन्त जलराशि उर्म्मि मैं,
चञ्चल सी अवदात।

लौकिक जगत में प्रकृति की विशालता अनुपमेय है। उस विशाल प्रकृति का भी संचालन वही अनन्त शक्ति करती है। उसी की इच्छा से प्रकृति के विभिन्न कार्य संचालित होते हैं—

तेरी महिमा की छाया-छवि
छू होता वारीश अपार
नील गगन पा लेता घन-सा
तम-सा अन्त हीन विस्तार

इतना ही नहीं उसकी प्रसन्नता का एक क्षण भी असंख्य सुमन-वनों का जनक है। उसका भ्रकुटि। सञ्चालन ही भयङ्कर आँधी तूफान उत्पन्न करता है—

सुषमा का कण एक खिलाता
राशि-राशि फूलों के वन
शत शत झंझावात प्रलय
बनता पल में भ्रू-संचालन

सूक्ष्म भावनाओं को प्रतीक-शैली द्वारा प्रत्यक्षीकरण कराने की पद्धति अति प्राचीन है। उपनिषदों तक में इस पद्धति को अपनाया गया है। रहस्यवाद के प्रमुख कवि कबीर ने तो इस प्रतीक शैली द्वारा रूपकों में बड़े बड़े सूक्ष्म विचार रखे हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'कामिहि नारि पियारि जिमि' प्रभृति पदों में इसका अवलम्ब लेकर इस पद्धति की श्रीवृद्धि की है। महादेवीजी ने इस प्रतीक-शैली के रूपकों में प्रकृति के विविध उपकरणों की सहायता से जो सूक्ष्म भावनाओं को मूर्त्त स्वरूप देने का उपक्रम किया है वह बड़ा चित्ताकर्षक है। एक स्थान में अनन्त शक्ति-परमात्मा या ब्रह्म को इन्होंने नर्तकी के रूप में उपस्थित किया है—

रूपसि तेरा नर्तन सुन्दर
आलोक तिमिर सित-असित चीर
सागर गर्जन रुनझुन मंजीर
उड़ता झंझा में अलक-जाल
मेघों में मुखरित किंकिणि-स्वर
रवि-शशि तेरे अवतंस
सीमंत जटित तारक
चपला विभ्रम स्मित इन्द्र
हिमकण बन झरते स्वेद
रूपसी तेरा नर्तन सुन्दर

सम्प्रति महादेवी जी हिन्दी साहित्य के रह[illegible] का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। पूर्व के रहस्यवादी [illegible] की भाँति भले ही वाह्य विरक्ति से ये रहित हों किन्तु [illegible] गुण के अभाव के कारण रहस्यवाद के प्रसिद्ध [illegible] कबीर की रचनाएँ सुष्ट नहीं और भाषा तथा [illegible] की प्रणाली में अक्खड़पन ज्ञात होता है वह [illegible] में नहीं। जायसी के रहस्यवाद में यदि हृदय[illegible] भावनाएँ विद्यमान हैं तो वर्ण्य विषय में [illegible] विचारधारा तथा इतिवृत्तात्मकता का प्राचुर्य [illegible] वाला है। मीरा के काव्य अवश्य ही रमणीय [illegible] मर्मस्पर्शी है; मादकता और तन्मयता भी [illegible] किन्तु मीरा के आराध्य के स्वरूप में कुछ एकदे[illegible] और संकीर्णता परिलक्षित होती है। यद्यपि [illegible] काव्यात्मा बड़ी दिव्य है। महादेवी के काव्य [illegible] सब कुछ नहीं, इनका आराध्य महान है जिसकी [illegible] में विशाल प्रकृति भी उसी भाँति व्यस्त है जिस [illegible] महादेवी। हाँ, अभी तक ये 'मधुर निजत्व' [illegible] त्यागना नहीं, चाहतीं। विरह, जो वस्तुतः [illegible] साध्य नहीं, माध्यम है आराध्य नहीं, की गोद [illegible] आनन्दानुभूति करती हैं किन्तु एकरूपता प्राप्त [illegible] की जो तन्मयता इनमें है उससे भास होता है [illegible] इनका 'मधुर निजत्व' भी एक दिन साधना की [illegible] में बह जायगा बिन्दु सागर में विलीन हो जायगा [illegible] 'चिर-मिलन का प्रात' अवश्य ही उदित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्दजी के बालक

(श्री ताराचरन श्रीवास्तव)

लेखन के आरम्भ काल से ही प्रेमचन्दजी की बालकों की ओर रही है उनकी आरम्भिक जीवन कहानियों में भी बालक आये हैं। घर और शासन समस्याओं के अतिरिक्त उनकी कहानियों में बालकों मनोवृत्ति, परीक्षा अध्ययन, उनके खेलने की और अस्थिर मति आदि का प्रसङ्गवशात् उल्लेख है। उससे उस बातावरण का जो उनके चारों ओर बना हुआ है पता चलता है और उसका जो बालकों पर पड़ता है वह प्रत्यक्ष हो जाता है 'पञ्च परमेश्वर' में पञ्चायत की तैयारियाँ होगई हैं, जब आरम्भ होने को है उस समय वहाँ के वातावरण का दृश्य उपस्थित करते हुए कहा है:—

"लड़के इधर उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में हँसी मज़ाक करते और कोई रोते थे।"

इन दो वाक्यों ने बालकों के सम्बन्ध में बहुत कह दिया है। ये बालक खेलने के लिये व्याकुल अवस्था में हैं। किसी प्रकार का भी विशेष समारोह इनके लिये विशेष आकर्षण का विषय होता है ये भी अपने आस पास के बातावरण की हलचल से गति और उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है वे अपने भीतर छिपी जीवनी शक्ति को कैसे रोकें, इस लिये उनकी भाग दौड़ शुरू हो जाती है और यह क्रियाओं में स्वाभाविक ही है, साथ ही रोना। बालक वातावरण भूमिका के चित्रण करने की विविध विधियों में से एक रेखा है, विविध रङ्गों में से एक रङ्ग की भाँति आये और ओझल होगये हैं। ये रेखा और रङ्ग यहाँ आवश्यक थे। लेखक को कुशलता ने आकर्षित किया और ये दो पंक्तियाँ उनकी लेखनी से चू पड़ीं। बालकों की सामूहिक और विशेष समारोहिक प्रवृत्ति का ही उल्लेख यहाँ हुआ है।

दूसरी अवस्था की कहानियों में प्रेमचन्द बालक को भी कहानी का पात्र बनाने लगे।' विमाता में मुन्नू के द्वारा विमाता के प्रेम का परिचय दिया गया है। बालक की स्नेह संवेदनशीलता, उसकी सहज निष्कर्ष बुद्धि और स्थिति को समझने की प्रवृत्ति का हमें परिचय मिलता है।" माँ मुझे प्यार करती थी वह मुझे छोड़कर स्वर्ग चली गई यह माँ मुझे पहिली माँ से भी अधिक प्रेम करती हैं, कहीं ये भी न छोड़ जायँ"।

उसमें माता का स्नेह और उसकी मृत्यु की भावी आशङ्का अश्रु बन कर उसकी संवेदन शील प्रकृति का परिचय देती है। पर वह औरों के सामने अपने निष्कर्ष को कैसे कहे, यह आँसू अपने वश की बात नहीं, अतः उसे बात बनानी पड़ी "रोता नहीं हूँ, आँखों में धुआँ लग गया है" यहाँ मुन्नू लेखक की टेकनीक का अङ्ग बन कर आया है। मुन्नू का यहाँ परिचय अभिप्राय दूसरा रखता है कहानी का अभिप्राय मुन्नू के बाल सुलभ तर्क कौशल, उसकी संवेदन शीलता, उसकी चतुरता का चित्रण करने के अतिरिक्त 'विमाता' का उज्ज्वल रूप रखने की उसकी लालसा रही है। इसके लिये मुन्नू केवल एक कसौटी है। मुन्नू का इसीलिये यह रूप हमारे समक्ष उपस्थित हुआ जो विमाता के सच्चे प्रेम को समझने के पहिले भ्रम उपस्थित करता है और फिर उस भ्रम का निवारण करता है जिससे प्रेम की उद्दीप्ति हो उठती है।

"बूढ़ी काकी" में बालिका मुन्नू की अपेक्षा कुछ विशेष उभर कर आई है। इस बालिका लाडिली के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने से पूर्व बूढ़ी काकी के प्रति बालकों की क्रूरता की झलक उन्होंने दिखादी है। "लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है, और फिर जब माता का यह रङ्ग देखते तो बूढ़ी काकी को और भी सताया करते। कोई चुटकी काट कर भागता, कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता" अब आती है बालिका लाड़ली। उसे अपने भाइयों का भय लगता है, बूढ़ी काकी के पास स्थान निरापद है अतः अपने हिस्से की मिठाई चबेना वह बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती उसे बूढ़ी काकी से प्रेम होगया था। माता पिता ने काकी के साथ दुर्व्यवहार किया वह उसे व्यथित कर रहा था। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ नहीं खाईं और रात को चोरी चोरी सबके सो जाने पर वह काकी को खिलाने गई। बालिका में हमें यहाँ पवित्र संकल्प और प्रेम के दर्शन होते हैं उसमें सहानुभूति है। इस छोटे से चित्र द्वारा बालिका के बाहर भीतर का और निजी तथा संस्कारगत रूप लेखक ने उपस्थित कर दिया है।

दूसरी कोटि में 'दो भाई' तथा' दुर्गा का मन्दिर नामक कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें बालक का उल्लेख उत्तर चरित्र से अन्तर करने के लिये दिया गया है, या पिता के मानसिक क्षोभ के कारण के रूप में दिया है....."कलावती दोनों बेटों को जाँघों पर बिठा दूध और रोटी खिलाती थी....दोनों मुँह में कौर लिये, कई पग उछल कूद कर फिर जाँघों पर आ बैठते और अपनी तोतली बोली में.....दोनों में बड़ा स्नेह था"

दूसरी कहानी में "बाबू बज्रनाथ कानून पढ़ने में मग्न थे और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करने में। श्यामा चिल्लाती थी कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता मुन्नू रोता था कि श्यामा ने मेरी मिठाई खाली" पंच परमेश्वर में घर से बाहर कुदान मचाते बालकों के समूह देखे थे, बूढ़ी काकी में घर के बालकों में बालिकाही विशेष उभरी है। इन दोनों में घर के अन्दर क्रीड़ा किलोल करते बालक दिखाई पड़ते इन कहानियों में बालक कहानी के आवश्यक नहीं हैं पर वे उसके अलङ्कारिक तत्व हैं।

"मुन्नू" कहानी में मुन्नू कसौटी की आवश्यक था। शङ्खनाद में बालक प्रेरणा का मन्त्र बन कर आया है महातीर्थ में वह मुख्य और कहानी के अभिप्राय और उसके अन्तर्गत को प्रोज्वल करने के लिये वह यज्ञाग्नि है; सचाई का उपहार कहानी केवल बालकों के सम्बन्ध रखती है। उसमें सभी पात्र बालक केवल प्रसङ्गवशात् उन बालकों के चित्र को विकसित करने के लिये सहायक यहि की लाये गये हैं। 'शंखनाद' में घर और बाल सम्बन्ध को प्रेमचन्दजी ने स्पष्ट किया और बालकों का मिठाई प्रेम भी दिखा दिया है।

इसमें बालक का 'हठ' भी चित्रित है। प्रसिद्ध है मिठाई का लोभ तो बड़ी चीज है, उत्तेजना मिलती है चिढ़ाने और ललचाने बालकों के हृदय जगत में इन दोनों तत्वों का मूल्य है और ये शस्त्र कितने तीखे हैं। चिढ़ बालकों को कितना आनन्द आता है। इस चिढ़ उत्तेजित होकर बालक को अपनी स्थिति का नहीं रहता समझाना फुसलाना कुछ काम नहीं साधारण रोना जब काम नहीं देता तो उन्हें अस्त्र को उग्ररूप देना पड़ता है—और यह पृथ्वी पर लोट लोट कर चीखना। यह उनके पराकाष्ठा है इसके बाद या तो विजय या क्रोधोन्माद।

उधर महातीर्थ में बालक मुख्य अंग तो वह दूसरों को तपाने के लिये है वह जैसे अपना खड़ा कर देने के लिये नहीं। बालक दाई को करता है दाई घर से निकाल दी जाती है, उसके लिये रोता है। वह शिशु है, लड़खड़ा चलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये भी छोटे बालक की मनोवस्था के चित्र हैं। और 'सचाई का उपहार' है बालकों का पाठशाला जाने का चित्र। इस कहानी में बालकों की कई मनोवृत्तियाँ स्पष्ट झलकती हैं। किसी भी काम को करने में सभी बालकों को रुचि नहीं होती। उनके घरेलू संस्कार और वर्ग का गर्व भी सहयोग करता है कई कहानियों में बालक साधारण भाग लेता है। 'नेडर' में बालक हैं और वे ही उसे काकी के मरने का सन्देश देते हैं। 'लड़कों ने दौड़कर, उछल कूद-कर, उसकी लकड़ी उसके हाथ से छीनकर, उसका स्वागत किया" गाँव के बालकों की बहुत दिन के बिछुड़े नेडर के प्रति यह असीम आत्मीयता कितनी स्वाभाविक और उष्म है। पर कितनी भावुक कि काकी की मृत्यु की सूचना देने पर जब वह निस्पन्द हो गया और फिर घर की ओर बढ़ा तो—"बालक वृन्द भी उसके पीछे दौड़े, मगर उनकी शरारत और चंचलता भाग गयी थी"

इसके साथ चित्र आता है उस बालिका का जो "दो बैलों की कथा" में सताये हुये बैलों के साथ सहानुभूति रखती है और चुपचाप उन दोनों बैलों को एक एक रोटी खिला जाती है। इस बालिका से यहाँ कथा का कोय चलता है उसकी सहानुभूति से लेखक ने कहानी की कथा को आगे बढ़ाने का कार्य किया है। इस कहानी में 'नेडर' कहानी जैसे भी बालक है, वे समूह के समूह बैलों का स्वागत करने के लिए इकट्ठे हो गये हैं और ताली बजा बजा कर स्वागत कर रहे हैं।

इस प्रकार कहानी की गति के साथ साथ कहानी के मनोवैज्ञानिक तत्व को स्पष्ट करने में और उसे आगे बढ़ाने में भी बालक सहायक पताकास्थानक की भाँति आये हैं। "लांछन" में शारदा का यही कार्य है। शारदा के आधार पर खेल कर ही महतर पति-पत्नी में खाई को बढ़ाता है शारदा को खिलोने देना, उसकी मातम पुर्सी करने आना, केवल कहानी के घटना प्रवाह में ही सहायक नहीं, उसके लिये मनोवैज्ञानिक भूमिका करने में, मनोवैज्ञानिक प्रगति देने में भी सहायक होती है। मनोवैज्ञानिक धरातल ही नहीं, एक भावमय क्षेत्र उत्पन्न करने और कहानी में हृदय स्पर्शिता लाने के लिये भी बालकों ने अपना स्थान बनाया है जैसे 'मृतक भोज' में। यहाँ पर बालकों का सहारा पाकर ही विविध पंचों की आन्तरिक मनोवस्था और क्रूरता की यर्थाथता का रूप सामने आता है। कहीं-कहीं बालक भूमिका के रूप में आकर कहानी की प्रस्तावना तैयार करते हैं जैसे 'सौभाग्य के कीड़े में"।

इन कहानियों के साथ साथ एक कहानी है 'प्रेरणा' एक उत्पात नटखट और उद्दण्ड बालक है अध्यापक के लिये एक समस्या। वही बालक अपने छोटे ममेरे भाई का अभिभावक बना। बालक से उसे प्रेम हो गया उसने अपना आदर्श जीवन बनाना आरम्भ किया और उन्नति कर गया। शासन से नहीं, आदर्श बनकर आदर्श उपस्थित करने की प्रेरणा से उसने अपना और उस बालक का उपकार किया। प्रेरणा मिलने पर मन में एक लगन पैदा हो जाने पर चरित्र को आदर्श बनाया जा सकता है शासन से नहीं। यही दिखाना इसका उद्देश्य है।

और तीन कहानियाँ हैं "राम लीला" "कजाकी" और "ईदगाह" इनका सम्बन्ध स्कूल से नहीं है इनका सम्बन्ध है घर तथा परिस्थिति से।

बालकों की इन कहानियों से हम यह बात पाते हैं कि लेखक ने विविध मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश किया है और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि बालकों का भी चरित्र होता है उनका भी व्यक्तित्व होता है, उनमें भी निजीपन होता है। उनके विचारों और कार्यों का सरल और स्वाभाविक धरातल केवल इस अर्थ में होता है कि जीवन के लिये अमहत्वपूर्ण बातों को वे गहरी नींव नहीं दे सकते।

प्रेमचन्द्र जी की कहानियों से बाल-मनोविज्ञान और बाल जीवन सम्बन्धी जो तथ्य निकलते हैं उनसे बालकों के चरित्र आदर्श बनाने में, उनके लिये महत्व-पूर्ण वातावरण तैयार करने में सहायक हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक क्या है ?

(डा० उदयभानुसिंह एम० ए०, पी-एच० डी०)

यवन-मनीषी अरस्तू के कला-विषयक अनुकरण-सिद्धान्त और भारतीय नाट्यशास्त्र पण्डित धनञ्जय, धनिक आदि के 'अनुकृति', 'अनुकार' आदि शब्दों को लेकर हिन्दी-संसार में गड्डालिका-प्रवाह चल पड़ा—"किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाटक कहते हैं।"

नाटक किस की अवस्था का अनुकरण है ? यदि नाटक में योजित सभी प्राणी अनुकार्य हैं तो गधे का अनुकरण किस प्रकार किया जायगा ? यदि कुछ को ही अनुकार्य माना जाय तो शेष के बहिष्कार की कसौटी क्या होगी ? क्या अवस्था का तात्पर्य सम्पन्नावस्था, विपन्नावस्था, युवावस्था, बाल्यावस्था, रुग्णावस्था आदि से है ? नाटक नट के कार्य का द्योतक है अथवा रचना का ? नाटक अनुकरण क्यों है ? वह पूर्ण अनुकरण है या अपूर्ण ? इन शङ्काओं का समाधान कहाँ है ?

अनुकरणवादियों के अनुसार मूल पात्र (चन्द्रगुप्त अजातशत्रु देवसेना आदि) अनुकार्य हैं और अभिनेता (या अभिनेत्री) अनुकारक। लोक व्यवहार में और भी अनुकारक हैं। न्यायालय में वादपत्र आदि की प्रतिलिपि तैयार करने वाला भी अनुकारक कहा जाता है। परीक्षा भवन में रवीन्द्र की पुस्तक में लिखित उत्तर का अनुकरण करने वाले दिनेश को अनुकारक कहते हैं। कृत्रिम मोती वास्तविक का अनुकरण और उसका कर्ता अनुकारक कहलाता है। धीरनाग ने अपने 'कुन्दमाला' नाटक में भवभूति के 'उत्तररामचरित' का अनुकरण किया है। 'सिद्धार्थ' की काव्यशैली 'प्रियप्रवास' की काव्यशैली का अनुकरण कहलाती है। 'साकेत' में मैथिलीशरण ने अयोध्या में ही राम की कथा का वर्णन करा दिया है। उसी के अनुकरण पर हरिऔध ने वैदेही-वनवास में ही रामचरित की कथा कहलाई है। इस प्रकार धीरनाग, अनूप-शर्मा और हरिऔध अनुकारक हो जायँगे। मौलवी साहब ने गजराज से कहा—"कहो अलिफ।" उसने अविकल दुहरा दिया—"कहो अलिफ।" यह गजराज भी मौलवी साहब का अनुकारक कहा जाता है। बानर ने मनुष्य को दाढ़ी बनाते देखा उसके चले जाने पर आया और दर्पण के सामने हुये से दाढ़ी बनाने लगा। वह बानर भी अनुकारक है। कोकिल की बोली का अनुकरण करने वाला मनुष्य भी अनुकारक ही कहलाता है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों में नकल नवीस अनुकारक नहीं प्रतिलिपिकार है। धरिनाग, अनूपशर्मा और हरिऔध का कर्म अनुकरण नहीं अनुसरण है। गजराज भी अनुकारक नहीं। उसका कर्म भ्रान्त पुनरावृत्ति मात्र है। शूद्रक के 'असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता' के अनुसार "कुपुरुष-सेवा-ज्यों भई संतन मिथ्या दृष्टि" लिखने वाले, केशव अनुकारक नहीं, चोर कहे जायँगे। नाटक में अनुकरण के कुछ तत्व अवश्य हैं—इस सत्य को कोई भी विचारशील अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु नाटक को अनुकरण नाम देना न्याय-विरुद्ध है।

अनुकरण में अनुकारक का अनुकार्य से भिन्न होना अनिवार्य है। मनुष्य, बानर, दिनेश, आदि क्रमशः कोकिल, मनुष्य, रवीन्द्र आदि से भिन्न हैं। अन्यथा अनुकरण असम्भव हो जाता। कहा जा सकता है कि अभिनेता अमरनाथ भी तो पात्र चन्द्रगुप्त शिवाजी, दुष्यन्त आदि से भिन्न है। ठीक है। यदि किसी नाटक के पात्र अमरनाथ स्वयं ही अपनी भूमिका ग्रहण करें तो फिर वे किसका अनुकरण करेंगे !

अनुकारक अनुकार्य का पूर्ण ज्ञानी होता है। अभिनेता अमरनाथ को चन्द्रगुप्त का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। देशकाल की दूरी अनतिक्रम्य है। [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संसार में कोई पूर्णज्ञानी भी हो सकता है ? क्या अभिनेता को अध्ययन अथवा निर्देशक द्वारा पात्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता ? समस्त पदार्थों का ज्ञानी कोई नहीं हो सकता किन्तु लोकदृष्टि में किसी सीमित विषय का हो सकता है। अनुकरण का सम्बन्ध केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से है अतएव अभिनेता नाटक के उन्हीं पात्रों का अनुकरण कर सकता है जिनके कार्य का ज्ञान उसने प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा प्राप्त किया है। ऐतिहासक नाटक में तो यह सर्वथा असम्भव है।

अनुकरण-काल में अनुकारक को अनुकार्य का सम्यक् ज्ञान बना रहता है। नाटक में अभिनेता अमरनाथ को पात्र चन्द्रगुप्त का अखण्ड ज्ञान नहीं रहता। चन्द्रगुप्त उसके सामने नहीं है। यदि कल्पना द्वारा वह उसे अपने मानसिक लोचनों के सामने उपस्थित रखने की चेष्टा करेंगे तो फिर भावाभिव्यक्ति के लिए उन्हें अवकाश ही नहीं मिलेगा। उनका सीमित मन दो कार्य एक साथ नहीं कर सकता। तो क्या वे चन्द्रगुप्त के ज्ञान के बिना ही अभिनय करते हैं ? नहीं। वास्तविक चन्द्रगुप्त उनके चेतन मस्तिष्क में न होकर अर्धचेतन मस्तिष्क की भूमिका में रहता है। अनुकरण में अनुकार्य चेतन मस्तिष्क का विषय है। अभिनेता अमरनाथ यह कभी नहीं सोचते कि मैं चन्द्रगुप्त बना हूँ या चन्द्रगुप्त का अनुकरण कर रहा हूँ। दूसरी ओर अनुकारक को यह ध्यान सदैव बना रहता है। अभिनेता अपनी अवास्तविकता को भूलता नहीं अन्यथा यथार्थ आचरण करने लग जाता। इसी प्रकार की विस्मृति के कारण एक बार अभिमन्यु भूमिकाग्राही अभिनेता ने जयद्रथ-भूमिकाग्राही पर तलवार चला दी थी।

अनुकरण केवल बाह्य या शारीरिक ही हो सकता है। अवस्था (स्थायी भाव) का अनुकरण असम्भव है। अनुकारक अनुकार्य की आत्मा में प्रवेश नहीं कर पाता। वानर या स्वानुकारक मनुष्य में दाढ़ी बनाने वाले व्यक्ति या कोकिल की आत्मा का कोई प्रतिविम्ब नहीं है। नाटक में ऐसा नहीं होता। यदि अभिनेता अमरनाथ चन्द्रगुप्त की आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकेंगे तो फिर उनका अभिनय साधारणीकरण उपस्थित करने में असमर्थ रहेगा।

अनुकरण केवल भूत या वर्तमान और वास्तविक का ही हो सकता है, भविष्यत् या अवास्तविक का नहीं। जो कर्म सम्पन्न हो चुका है या हो रहा है वही अनुकरण-साध्य है। श्मश्रुमुंडन, कोकिल-ध्वनि आदि का अस्तित्व था, अतः उनका अनुकरण हो सका। जो दृष्टिगोचर ही नहीं हुआ—जिसका करण ही नहीं हुआ—उसका अनुकरण कैसा ? जो अपने छप्पन योजन के वक्षःस्थल पर सहस्त्रों मानवों का आघात सहकर निर्विकार सो रहा हो—ऐसे कल्पित दानव का अनुकरण नहीं किया जा सकता। यह मनुष्य की शक्ति के परे है।

अनुकरण मूल-कार्य की पुनरावृत्ति है। यदि मूल पात्र ने सरिता-संतरण किया है, किसी के शाप से पक्षी के रूप में परिवर्तित या भस्म हो गया है, आत्म-हत्या या दूसरे का बध किया है तो अनुकरण के नाते अनुकारक को भी वही कर्म करना आवश्यक है। नाटक में ऐसा नहीं होता। और यदि कहीं चूक से अभिनेता वास्तविक का अनुकरण कर बैठता है (किसी पर वस्तुतः तलवार चला देता है) तो संसार उसके अभिनय को कला न कहकर मूर्खता या पागलपन कहने लगता है। क्या अभिनेता अमरनाथ दर्शक को चन्द्रगुप्त का अनुकरण करते हुए प्रतीत नहीं होते ? कदापि नहीं। वे उसे चन्द्रगुप्त ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण दर्शक की भ्रान्ति है (जो सुखदायक है)।

नाटक-जन्य भ्रांति और अनुकरण-जन्य भ्रांति में स्पष्ट अन्तर है। जब यवनिका के भीतर बैठे हुए अमरनाथ पं० नेहरू की ध्वनि का अनुकरण करते हैं तब हमें भ्रांति हो जाती है कि पं० नेहरू बोल रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यवनिका हट जाने पर अमरनाथ को पहचान कर हम विस्मय-पूर्वक कह उठते हैं—अरे, यह तो अमरनाथ हैं, पं० नेहरू नहीं हैं। विद्यालय के वार्षिकोत्सव के दिन एक कोढ़ी ने मेरे मित्र को छू दिया। उन्हें दुबारा स्नान करना पड़ा। पारितोषिक वितरण के समय कोढ़ी का सफल अनुकरण करने के उपलक्ष में अमरनाथ को प्रथम पुरस्कार मिला। हम सब चकित थे—अरे, वह अमरनाथ थे हमने उन्हें कोढ़ी समझ लिया था! उपर्युक्त उदाहरणों में अमरनाथ अनुकारक और पं० नेहरू तथा कोढ़ी अनुकार्य हैं। अनुकरण सफल एवं सुन्दर है। हम भ्रांतिवश अमरनाथ को ही पं० नेहरू या कोढ़ी मान बैठते हैं। किन्तु अन्त में वास्तविक ज्ञान हो जाने पर हमारी इस भ्रांति का निराकरण हो जाता है।

नाटक को लीजिए। 'चन्द्रगुप्त' नाटक खेला जाने वाला है। अभिनेताओं का नाम प्रकाशित कर दिया गया है। हम जानते हैं कि अमरनाथ ही चन्द्रगुप्त के भूमिका-ग्राही है। सफल अभिनय के समय हम अमरनाथ को सर्वथा भूल जाते हैं और भ्रांतिवश उन्हें ही चन्द्रगुप्त मान बैठते हैं। यदि हम उन्हें चन्द्रगुप्त न मानकर अमरनाथ ही मानने का दुराग्रह करें तो फिर हम न तो नाटक को समझ ही सकेंगे और न उसका रसास्वाद ही कर सकेंगे। क्योंकि नाटक की रसानुभूति चन्द्रगुप्त के साथ तादात्म्य स्थापित करने से ही हो सकती है। अभिनेता अमरनाथ को चन्द्रगुप्त मान लेने की हमारी भ्रांति अन्त तक बनी रही। नाटक समाप्त हो गया। अमरनाथ ने नेपथ्य उतार दिया। नेपथ्यशाला में हम भी उपस्थित थे। वह स्थल कभी नहीं आया—जहाँ हम अनुकरण-विषयक-विस्मय के साथ यह कह दें कि—अरे यह तो अमरनाथ हैं, चन्द्रगुप्त नहीं।

इस प्रकार नाटक-जन्य भ्रांति अनुकरण-जन्य भ्रांति से कई बातों में भिन्न हुई। अनुकरण में भ्रांति के पूर्व हमें अनुकारक का कोई ज्ञान नहीं रहता किन्तु नाटक में हमें अभिनेता का ज्ञान रहता है। ऐतिहासिक, पौराणिक या भावनाटकों में तो हम निश्चय ही यह जानते हैं कि अभिनेता मूल पात्र नहीं है। पात्र का स्वयं अभिनेता बनना अपवाद के अन्तर्गत आएगा। नाटक में अनुकरण की भाँति भ्रांति के निराकरण-सदृश कोई वस्तु नहीं। अनुकरण की भ्रांति पूर्ण किन्तु नाटक की भ्रांति अपूर्ण है। पूर्ण भ्रांति होने पर दर्शक में प्रतिक्रिया अनिवार्य हो जाएगी जिस प्रकार कोढ़ी के छूने पर मेरे मित्र में हुई थी। वह भिखारी की भूमिका में अभिनेता को पैसे देने लगेगा या रावण की भूमिका में गाली। एक बार एक पूर्णतः भ्रान्त दर्शक ने अभिनेता पर जूता भी चला दिया था।

अतएव नाटक अनुकरण नहीं है। उसके कुछ तत्व नाटक में भी विद्यमान हैं। अनुकरण की भाँति नाटक में भी कार्यों का पुनःकरण होता है। इसी साम्य के कारण भ्रम हो जाता है कि नाटक अनुकरण है। वस्तुतः अनुकरण केवल कार्यों का पुनःकरण है और नाटक भावों का। उसमें कार्यों की पुनरावृत्ति अप्रधान एवं भावों की सफल व्यञ्जना के लिए सहायक रूप में की जाती है। वानर, दादुर आदि के भी कुछ तत्व मानव में विद्यमान हैं किन्तु मनुष्य वानर या दादुर नहीं है।

नाटक स्थायी-भावों का पुनःसर्जन है। यह भाव नाटक में सन्निविष्ट सभी पात्रों—मनुष्य, वानर, पशु, पक्षी आदि—का नहीं हो सकता। इसका सम्बन्ध रचना के प्रधान पात्र या एक ही नायक अथवा नायिका के अभाव में प्रधान पात्रों से है। अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, दुष्यन्त आदि के हृदय में उत्साह रति आदि की सृष्टि हुई थी। विशिष्ट परिस्थिति में उनका उदय और उद्दीपन हुआ था। अपने हृदय में उन भावों के वस्तुतः उदय या उद्दीपन न होने पर भी अभिनेता उन्हें वैसा प्रदर्शित करता है और वे अवास्तविक भाव सामाजिक को वास्तविक प्रतीत होते हैं।

व्यभिचारी भावों का पुनःसर्जन नाटक नहीं है। केवल व्यभिचारी भाव में इतनी शक्ति ही नहीं कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यानन्द की सम्यक् अनुभूति करा सके। नाटक में संचारी भावों की प्रतिष्ठा स्थायी की सहायतामात्र के लिए है। केवल संचारी भाव का पुनःसर्जन साधारण प्रलाप की कोटि से ऊपर नहीं उठ सकेगा; उदाहरणार्थ 'पोथा और फोयला' या 'सागर और मेघ'।

नाटक कार्यों का पुनःसर्जन नहीं है। अंगरेजी ड्रामा का मूल ग्रीक शब्द 'सम्पन्न कार्य' का समानार्थी है। धनिक का 'नट अवस्पन्दने' भी इसी व्यापार का द्योतक है किन्तु "अवस्थानु-कृतिर्नाट्यम्" के द्वारा ही उसका समाधान हो जाता है। वध आदि कार्यों का पुनःकरण असम्भव तथा चुम्बन, आलिंगन आदि का प्रदर्शन अतिशय क्षोभकारी होने के कारण अनुचित है। नाटक में कार्य साधन है, साध्य है रसादि। भावों का ही पूर्ण अनुव्यवसाय सम्भव है। स्थायी भाव का ही विकसित रूप रस है। इस कारण भी नाटक को स्थायी का पुनःसर्जन माना गया है।

स्थायी भाव का सम्यक् पुनःसर्जन अभिनय द्वारा ही हो सकता है। 'रामचरितमानस' में पात्रों की भाव-निबन्धना अत्यन्त सुन्दर हुई है किन्तु उसे हम नाटक नहीं कह सकते। इसका कारण अभिनय का अभाव है। भाव के पूर्ण पोषण के लिए चारों प्रकार के अभिनय अपेक्षित हैं। आंगिक, वाचिक, सात्विक या आहार्य, किसी एक, के अभाव में भी भाव-निर्वाह बाधित हो जायगा। नाटक वह काव्य है जिसमें अभिनय के द्वारा स्थायी भाव का पुनःकरण हो।

सुन्दर की अनुसर्जना द्वारा रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाली अभिव्यंजन-शैली होने के नाते नाटक एक कला है। उसका शरीर शब्दमय है। अतएव वह काव्य है। अपनी अभिनेयता के कारण वह अन्य काव्यरूपों—कविता, कहानी, उपन्यास आदि—से भिन्न है। नाटक पाठ्य भी हो सकता है। किन्तु यदि वह केवल पाठ्य है, नाट्य नहीं है, तो वह नाटक नाम के सर्वथा अनुपयुक्त है। आजकल रेडियो द्वारा प्रसारित नाटक श्रव्य की कोटि में भी आ गया है। उपर्युक्त दोनों प्रकार के नाटकों में पाठक या श्रोता अपनी कल्पना द्वारा ही वास्तविक अभिनय की अभावपूर्ति कर लिया करता है।

नाटक में काव्य के सभी तत्वों और ललित कलाओं के प्रायः सभी प्रकारों का समन्वय है। इसीलिए वह कला और काव्य की श्रेणी में सुन्दरतम है। उसके प्रस्थापन में गीत और वाद्य की कर्ण-प्रियता, अभिनय में नृत्य की भाव-व्यञ्जना, दृश्य-नेपथ्य-रचना में चित्र की नयनरञ्जनता, रंगमंडप-विधान में शिल्प आदि का लालित्य है।

नाटक से सभी प्रश्नों का उत्तर माँगना उचित नहीं। वेद, शास्त्र, इतिहास-पुराण, भूगोल, विज्ञान, अर्थ आदि विषयों का क्षेत्र भिन्न है। जीवन-सम्बन्धी इन विषयों का यथायोग्य यत्किंचित् समावेश ही नाटक में हो सकता है और होता है। उसका रूप कान्तासम्मित है; प्रभु, अध्यापक या सुहृत् की वाणी का नहीं। उनकी यथेष्ट जानकारी के लिए वहीं जाना होगा। अशन और वसन के उपाय का जिज्ञासु तत्सम्बन्धी संस्थाओं में जाए। रोटी, ब्रह्म या जगत् की समस्या सुलझाने में प्रयत्नशील मानव जब जीवन की नग्न वास्तविकताओं के विकट थपेड़ों से व्याकुल होकर थक जाता है तब उसे मानसिक शान्ति और चित्तरञ्जन के लिए कलाकार के रमणीयता-प्रतिपादक कल्पित जगत की आवश्यकता होती है। यहीं नाटक की प्रधान उपयोगिता है और इसीलिए वह नाटक है—रञ्जनानुप्रवेशेन सामाजिकानां हृदयानि नाट्यतीति नाटकम्। किन्तु यह नाटक-रचना के प्रयोजन का आदि है, अन्त नहीं। उसकी कला की परिणति दर्शक को साधारण भूमि से उठाकर उच्चतर स्तर पर प्रतिष्ठित कर देने में है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरा सगुणोपासनी ?

लेखक—एक विदुषी

मीरा की भक्ति सगुणोपासनी धारा के अन्तर्गत मानी जाती है। मीरा के पदों को सरसरी नजर से पढ़ने से भी ऐसा ही लगता है। प्रेमावेश में अपने गिरधर नागर की मूर्ति के सम्मुख 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' गा-गा कर नाच उठने वाली मीराँ परम वैष्णव के सिवाय और हो भी क्या सकती है। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित हरिकीर्तन और सुमिरण के मार्ग को मीराँ ने अपनाया। वृन्दावन जाकर चैतन्य महाप्रभु के अनन्य शिष्य श्री जीव गोस्वामी से अत्यधिक आग्रह के साथ मिलीं व कुछ दिन उन्हीं के आश्रय में रहीं, किम्वदन्ती है कि वे द्वारिका में रणछोड़जी की प्रतिमा में समा गईं। तथापि मीराँ अपने सम्पूर्ण शृङ्गार और सुहाग चिन्हों को त्याग कर अपने साहिब के अनुकूल 'जोगण वेष' धारण कर लेने को आकुल हैं। वे स्पष्ट ही कहती हैं 'जोई भेख म्हाँरो साहिब रीझै, सोई भेख धारणा'। अपने इस साहिब के लिये वे जोगण भी बनेंगीं 'तेरे खातर जोगण हूँगी, बाला खप्पर लेऊँ हाथ'।

किसी जोगी सतगुरु के विरह में विरहाकुल मीराँ जिस भेख को अपनाना चाहती हैं वह तत्कालीन नाथ-पन्थी धारा के अनुकूल पड़ता है। हिन्दी के प्रख्यात विद्वान श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी अपनी पुस्तक 'कबीर' की भूमिका में लिखते हैं 'यही लोग गोरख-पन्थी कनफटे योगी कान में छिद्र करके वह कुण्डल धारण करते हैं, जिसे मुद्रा या दर्शन कहते हैं। यही दो तीन अंगुल की काली सींग की छोटी-सी सीटी गले में धारण करते हैं जिसे नाद, शृङ्गीनाद कहते हैं और जो सेली नामक काले ऊनी धागों से गुथा होता है। इनके हाथ में नारियल का एक खप्पर होता है। ये लोग गेरुआ वस्त्र और जटा धारण करते हैं, शरीर पर भभूत और ललाट पर त्रिपुण्ड धारण करते हैं।

मीराँ भी इन सब चिन्हों को अपनाने के लिये त्याड़ हैं। ऐसा क्यों? कृष्ण योगीराज है, गुड़ाकेश है, जन परन्तु उनका उपदेश भी हठयोग से परे है और जोग भी राजसी है। शायद ही कहीं कृष्ण को योगी के रू रूप में देखा गया हो। कृष्ण के मधुर रूप का वर्णन और उसी मधुर भाव की भक्ति ही कृष्णमा शाखा की विशेषता है। तब कृष्ण मूर्ति के व्याज परब्रह्म की भक्ति करने वाली मीराँ तत्कालीन नाथप जोगी वेश को सर्वथा अपना लेने के लिये इत अधीर क्योंकर?

१—छापा तिलक बनाइयाँ, तज्याँ सबशृङ्गार।
२—माणिक मोती हम सब छोड्याँ,
गल में पहनी सेली।
३—तेरे खातर जोगणा हूँगीं,
करवत लूंगी कासी।
४—तेरे कारण बन बन डोलूँ,
कर जोगणा की भेस।
५—चीर को फारूं, कंथा पहिरूँ,
लेलूँगी उपदेश।
६—मुद्रा माला भेख लूँ रे, खप्पर लेऊँ हाथ।
७—माला मुंदरा मेखलां रे,
बाला खप्पर लूँगी हाथ।

उदाहरण ६ और ७ करीब-करीब एक ही है। अन्तर है सिर्फ क्रिया पदों में। उदाहरण ६ के क्रिया पद वर्तमान काल के द्योतक हैं, जब कि उदाहरण सात के क्रियापद भविष्यत् काल के द्योतक हैं।

८—या तन उपरि भसम रमाऊँ,
खोर करूँ सिर केस।
भगवां भेख धरूँ तुम कारण,
ढूँढल च्यारूँ देश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—तेरे कारण जोग लियो है,
घर घर अलख जगाई।
१०-सतगुरु सबद लखाया अंसरी,
ध्यान लगाया धुन में।
११-ह्वाला, मैं वैरागण हूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिये,
ताको ध्यान धरूँगी।
१२-उठतो चले अवधूत, मठी मां कोई ना विराजे,
उठ चले अवधूत।
पंथी हतो ते पंथी लाग्यो,
आसन पड़ रही विभूत।

श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रतिपादित धारा के अन्तर्गत हरि कीर्तन और सुमिरण को ही विशेष महत्व प्राप्त है, वहाँ गुरु को वह महत्ता प्राप्त नहीं जो पुष्टि मार्ग अनुयायियों में प्रचलित है तथापि किसी गुरु के प्रति आराधना और विरह भाव की अभिव्यक्ति मीरा में बार-बार मिलती है। यह सत् गुरु कौन है? शायद वही जिनके वियोग में मीराँ जोगण वेश अपनाने को अधीर हो उठी हैं। मीराँ के आराध्य ही तो मीराँ के सतगुरु हैं। सगुणोपासिनी मीराँ के आराध्य की प्रतिमूर्ति कृष्ण की प्रस्तर मूर्ति तो उन्हीं के पास है ही तब इतनी गहरी विरह वेदना अन्य किस आराध्य के लिये? पदों के 'ओलगिया' ही तो मीराँ के सतगुरु नहीं। पदों की व्यक्त अनुभूति इस सन्देह को पुष्टि करती है।

१—सतगुरु जी सूँ बातज करताँ,
दुरजन लोगा ने दीठि।
२-मीराँ ने सतगुरु जी मिलियाँ,
चरण कमल बलिहारी।
३-गुरु के ज्ञान रगूँ तन कपड़ा,
मन मुद्रा पैरुँगी।
प्रेम प्रीत सूँ हरि गुण गाऊँ,
चरणन लिपट रहूँगी।
४-गुरु प्रताप साधुरी संगति,
सहज ही तिर जास्याँ।
५—सत् गुरु म्हाँरी प्रीति निभाज्यो जी।
थे छो म्हाराँ गुणरा सागर,
औगुण म्हाराँ मति जाज्यो जी।
६—अब नहिं बिसरूँ म्हाँरे हृदय
लिख्यो हरिनाम।
म्हाँरे सतगुरु दियो बताय,
जब नहीं बिसरूँ रे॥
७—जनम जनम का सोध मनुवाँ,
सतगुरु सब्द सुन जागा।
८—मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछुड़ी मीराँ,
घर में लीन्हाँ आय॥
९—दाँ तो अमृत मेख, दया को बोलना।
उबटन गुरु ज्ञान को, ध्यान को धारणा।
१०-गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे,
धुर से कलम भिड़ी।
११-नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछानी हो।
१२-पटिया पारूँ गुरु ज्ञान की,
बुद्धि मांग सवारूँ हो।
पिया तेरे कारणे धन जोबन गारूँ हो॥
१३-सतगुरु मिल्याँ सुज पिछाणी,
ऐसा ब्रह्म में पाती।
१४-मिल्ताँ जाज्यो हो गुरु ज्ञानी,
थाँरी सूरत देखि लुभानी।
१५ जिन मारग म्हाँरा साध पधारे,
उन मारग म्हैं जास्याँ।
१६-रैदास संत मिलै मोहि सतगुरु,
दीन्हा सुरत सहदानी।
मैं मिलि जाय पाय पिय आपणा,
तब मेरी पीर बुझानी॥
१७-गुरु मिल्या रैदासजी, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।
.. ..
परम गुराँ के सरन में रहस्याँ,
परनाम कराँ लुटकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८–सतगुरु मित्याँ संसा भाग्याँ,
सैन बताई साँची।

१९—सतगुरु सबद लगाया अंसरा,
ध्यान लगाया धुन में।

२०–म्हाँरा सतगुरु बेगा आज्यो जी।
म्हांरी सुखरी सीर बुआव ज्यो जी।
तुम बिछुड़िया दुःख पाऊँ जी।
मन ही मन मुरझाऊँ जी।
मैं कोयल ज्यूँ कुरलाऊँ जी।
कछु बाहिर कह न जनाऊँ जी।
मां है बाघण विरह सतावै जी।
कोई कहा पार न पावै जी।
.....
.....
.....
अरज करै मीराँ दासी जी,
गुरु पद रज की प्यासी जी।

२१–सतगुरु दस्त धरयौ सिर ऊपर,
आँकुस दे समझाती।

२२–सतगुरु भेद बताइयाँ,
खोली मरम किवाड़ियाँ।

उपर्युक्त अभिव्यक्तियों में स्पष्ट है कि मीराँ के सतगुरु ही मीराँ के आराध्य हैं, पिव हैं, जोगी और साहिब भी हैं। तब क्या मीराँ के सतगुरु नाथपन्थी योगी हैं। नाथपन्थ के सिद्धान्तानुसार भी सतगुरु की महिमा बहुत है। श्री हजारीप्रसादजी 'कबीर' की भूमिका में 'नाथपन्थी सिद्धान्त और कबीर का मत' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं गोरखनाथ के योगी-मार्ग में गुरु की बड़ी महिमा गाई गयी है। गुरु ही समस्त श्रेयों का मूल है और एकमात्र अवधूत ही गुरु पद का अधिकारी हो सकता है। आगे लिखते हैं नाथपन्थ के आदि प्रवर्तक आदिनाथ अर्थात् स्वयं शिव माने जाते हैं। मीराँ के औलगिया सतगुरु भी शिव आराधना में रत जोगी हैं।

१—जोगिया ने कह ज्यो जी आदेस।
जोगियों चतुर सुजान, ध्यावै संकर सेस।

इसका पाठान्तर भी इसी भाव का समर्थन करता है।

२—कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।
आसण मांडि अडिग होय बैठ्या,
याही भजन की रीति।

३ - तेरो भरम नहीं पायो जोगी।
आसण मांडि गुफा मांहि बैठ्यो,
ध्यान हरि को लगायो।
गल बीच सैली हाथ हाजरियौ,
अंग भभूति रमायो।

४—म्हारे घर रमतो ही आयो रे तू जोगिया।
कानां बीच कुंडला गले बीच सेली,
अंग भभूत रमाई रे।

५—जोगिया से प्रीति किया दुःख दोई।

६—जोगियारी प्रीति ही है दुःखड़ारो मूल।

७—जावा दे, जावा दे, जोगी किस का मीत।
सदा उदासी रहै मोरी सजनी
निपट अटपटी रीति।

८—धूतारा जोगी एकरसूँ हंसि बोल।
जगत बदीत करो मनमोहन,
कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृगछाला,
तू जनि गुढ़िया खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा,
उभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो,
अंजु मुनी मुख खोल।
चढ़ती बैस नैण अनिय लै,
तू धरि धरि मत डोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
बैरी भई बिन मोल।

९—जोगिया जी छाई रह्या परदेस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०–जोगिया री सूरत मन में बसी।
११–जोगिया, कब रे मिलोगे आई।
तेरे कारण जोग लियो है
घर घर अलख जगाई।

मीराँ के सतगुरु शिव आराधक जोगी हैं, अपने साहिब के अनुकूल मीराँ भी जोगण बनने को अति आकुल हैं, तथापि साधना की इस हठयोगी प्रणाली के विरुद्ध आवाज उठाती हैं। कबीर की तरह वे भी सहज साधना को ही श्रेयस्कर मानती हैं।

१–कहा भयो है भगवा पहरया,
घर तज भए सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहीं जानी,
उलटि जनम फिर आसी।
२–यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हियेतै धूरी,
हियो तिलक सिर धाय।
....
दासी मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग्य।
३–तेरो मरम नहिं पायो जोगी।
आसण मांडि गुफा में बैठी,
ध्यान हरि को लगायो।
गल बीच सेली हाथ हाजरियो,
अंग भभूति रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
भाग लिख्यो सो ही पायो।

'भाग लिख्यो सो ही पायो' स्पष्ट है कि 'जोगी' की हठयोगी साधना पर झुँझला उठी है और उसका विरोध कर रही है।

४–कहा भयो है भगवां पहरयां,
घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी,
उलटि जनम फिर आसी।

गिरधर गोपाल की उपासिका मीराँ किसी जोगी के विरह में आकुल है, अपने साहिब के अनुकूल भेख धारण के लिये छटपटा उठी है और तब भी हठयोगी साधना के प्रति अरुचि प्रदर्शित करती हुई सहज साधना की दुहाई देती है। यह सब अत्यन्त सन्देहजनक है। शायद मीराँ ने गिरधर गोपाल को उनकी प्रति मूर्ति प्रस्तर प्रतिमा की रूप में नहीं, अपितु मानव मूर्ति के रूप में ही भेजा है। प्रेम अपनी चरम सीमा को पहुँच कर सहज ज्ञान हो जाता है। विकृत अहन्ता को समाप्त कर प्रेमी बना मानव सहज ही त्रिकुटी महल के झरोखे से पिय दर्शन कर लेता है।

प्रेम जन्य ज्ञानमय आल्हाद में मीराँ कबीर के सुर में सुर मिला कर गा उठती है—

१–त्रिकुटी महल में बना है झरोखा,
तहाँ से झांकी लगाऊँ, री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ
सुख की सेज बिछाऊँ, री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
बार बार बलि जाऊँ, री।
२–मेरा पिया मेरे हिरदे बसत है,
ना कहुँ आती जाती।
चन्दा जायगा, सूरज जायगा,
जायगा धरणि अकासी।
पवन पानी दोनों ही जायेंगे,
अटल रहै अविनासी।
सुरत निरत का दिवला संजोले,
मनसा की कर ले बाती।
प्रेम हरी का तेल मंगाले,
जगे रह्या दिन तें राती।
सतगुर मिल्याँ संसा भाग्या,
सैन बनाई आँची।
ना घर मेरा, ना घर तेरा,
गावे मीराँ दासी जी।

मीराँ के कठोर संघर्षमय जीवन तथा उनके पदों में व्यक्त भावनाओं के आधार पर मीराँ मूर्ति उपासिका मात्र साबित नहीं होती। किसी विकसित आत्मा में ही मीराँ ने असीम के सौन्दर्य की झाँकी देखी है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपेक्षिता कौन ? शत्रुघ्न

(श्री तपेश्वरी तिवारी)

काशी नरेश के समक्ष 'भारतेन्दुजी' ने 'बंदन पाठकजी' से एक प्रश्न किया था। प्रश्न था—'तुलसी के शत्रुघ्न सारी रामायण में किसी से एक शब्द भी नहीं बोले, क्यों? मुझे मालूम नहीं 'पाठकजी' ने इसका क्या उत्तर दिया किन्तु मेरे विचार से शत्रुघ्न की मूकता उनकी सतत कार्य तल्लीनता की ही द्योतक है। कार्य शील मनुष्य अपने हृद्गत भावों को सिर्फ शब्दों का ही रूप नहीं देते बल्कि उन्हें कर्म का ठोस रूप देकर, संसार के सामने उपस्थित करते हैं। मितभाषी में कार्यदक्षता की प्रचुरता और अमितभाषी में कार्य हीनता की प्रचुरता प्रायः देखी जाती है—

"कहता तो बहुते मिले, गहता मिले न कोय"।

हम जहाँ भी इन्हें देखते हैं, मानव प्रवृत्तियों—क्रोध, करुणा तत्परता आदि—के अनुसार कार्य में जुटे पाते हैं। वे कभी भी अपने भाइयों से अलग नहीं होते। बचपन में एक ही साथ खेलते हैं, खाते हैं। जनकपुर में एक ही साथ शादी भी होती है। इसी बीच हम उनके शान्त स्वभाव का भी संकेत पाते हैं। वे अपने भाई लक्ष्मण के उग्र स्वभाव के कारण साथ नहीं देते बल्कि भरत का साथ देते हैं। इनमें भी उग्रता थी किन्तु भरत की शान्ति-प्रियता के साथ चल सकने वाली उग्रता। मेरे विचार से चारों भाइयों का, शान्ति-प्रियता तथा गम्भीरता, के लिहाज से यह क्रम होना चाहिए—भरत, राम, शत्रुघ्न, लक्ष्मण। भरत को हम कहीं भी क्रोध करते नहीं पाते। हाँ, क्रोध से लिपटी कारुण्य- धारा कहीं कहीं फूट पड़ी है। पिता-मरण और राम-वन गमन सुन कर वे माता को डाँटते, फटकारते तथा कोसते हैं, फिर भी "हाय" शब्द लगाते जाते हैं। तुलसी ने उनके लिए कहीं भी 'क्रोध' जैसे शब्द का व्यवहार नहीं किया है। भरत ने वीरता भी दिखलाई है। हनुमान को राक्षस समझ शान्त भाव से ही बाण मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया है। किन्तु हमारे तुलसी के भरत गुप्तजी के भरत ऐसा कह बैठते कि—

अनुज मुझे रिपु-रक्त चाहिए, डूब मरूँ मैं

× × ×

रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लङ्का

मैं लक्ष्मण पथ-पथी उर्मिला से कह देना

लौटूँगा तो साथ उन्हीं के और नहीं तो

नहीं, नहीं वे मुझे मिलेंगे भला कहीं तो

हमारे तुलसी के भरत रो पड़ते हैं—

"अहह दैव कत जग जायउ,
प्रभु के एकहु काज न आयउ"।

शत्रुघ्न को भरत के साथ ही हम पाते हैं। वे भरत के ऐसे रोते नहीं, बल्कि—

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई,
जरहि गात रिस कछु न बसाई।

× × ×

हुमगि लात तकि कूबर मारा,

× × ×

लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।

वे भरत के साथ ही कौशल्या से मिलते हैं, विलाप करते हैं किन्तु किसी से कुछ कहते नहीं—"विलपहिं विकल भरत दोउ भाई"। शत्रुघ्न भी राम लखन को लङ्का में दुखी पा, चञ्चल हो उठते हैं। उनका क्रोध प्रज्वलित हो उठता है फिर भी वे बोलते नहीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर नत शत्रुघ्न भरत निर्देश धरे थे।
र "जो आज्ञा" कह न सके आवेश भरे थे।
ट पड़ा रणधीर, एक ने अश्व सँभाला।
रव ही सब हुआ, न कोई बोलाचाला।

गुप्तजी की पंक्तियाँ तुलसी के शत्रुघ्न के पक्ष में हैं, किन्तु गुप्तजी आगे लिख बैठते हैं—

द्विषद्दस्यु अब जले हमारे द्वेषानल से

× × ×

तो हम उनको तोड़ शिलाओं पर पटकेंगे

× × ×

जीवन में ही नहीं मरण में भी निज जय है।

तुलसी के राम को हम अनेक बार क्रोध करते पाते हैं। जनकपुर में तथा समुद्र पार करते समय क्रोध करना पड़ा है—

कतहु सुधाइहु ते बड़ दोषू।
टेढ़ जानि वंदइ सब काहू,
वक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू।

× × ×

लछिमन बाण सरासन आनू।
सोखउ वारिध बिसिख कृसानू।

लङ्का की लड़ाई में तो राम को अनेक बार क्रोधित होना पड़ा है किन्तु गम्भीरता के साथ ही। उग्रता नाम मात्र को भी नहीं आने पायी है। भरत को मैंने राम से अधिक गम्भीर तथा शान्तिप्रिय कहा है फिर भी एक बात हो सकती है कि भरत को राम के समान भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरना नहीं पड़ा है, तो भी तुलसी के द्वारा चित्रित भरत मेरे ही विचार के अनुकूल हैं।

तुलसी ने शत्रुघ्न को बोलने का कहीं मौका ही नहीं दिया है और दिया भी है तो अपने कला-कौशल से उनके भावों को प्रदर्शित करा दिया है, पर बोलने नहीं दिया है। इस तरह शत्रुघ्न से प्रमुख पात्र को नहीं बोलाना, उनकी श्रेष्ठता को सिद्ध करने का ही प्रयास है। मैं तो समझता हूँ कि तुलसी ने जितना शत्रुघ्न को कर्मशील सिद्ध करने की कोशिश की है उतनी किसी दूसरे पात्र को नहीं। शत्रुघ्न हमारे केवल समझने के विषय हैं।

रामायण में हम दो मर्मस्पर्शी स्थल पाते हैं—एक में समुद्र से घिरी लङ्का में राक्षसों के बीच राम को अपनी गोदी में मूर्छित भाई को ले, रोते हुए और दूसरे में शोक-सागर में डूबते हुए अयोध्या वासियों, रोती हुई विधवा माँओं, बिलखती हुई रानियों तथा उदासीन तपस्वी भरत के बीच शत्रुघ्न का दौड़-धूप तथा कार्य-दक्षता। हम दोनों क्षेत्रों में दोनों भाइयों—लक्ष्मण और शत्रुघ्न— को कार्य मग्न पाते हैं। एक को कार्य करते करते अपने प्राण को भी न्यौछावर करते पाते हैं तो दूसरे को हँसते खेलते तथा हँसाते खिलाते अयोध्या की डूबती नैया को सफलता पूर्वक किनारे लगाते पाते हैं।

राम भरत को भी हम अपनी अपनी जगह शान्त बैठे पाते हैं। राम की स्थिरता डोल उठती है, वे कह उठते हैं—"जो जनतेउ बन बन्धु बिछोऊ, पिता बचन नहिं मनतेउ ओऊ"। भले ही तुलसी ने इस पंक्ति को लिखकर उनकी मानव-लीला की सत्यता सिद्ध करने की कोशिश की हो, किन्तु साधारण तौर से देखा जाय तो विदित होता है कि वे पिता की भी आज्ञा उठा सकते थे। अतः हम उन्हें एक पक्ष पर अटल नहीं पाते किन्तु हमारे भरत अटल हैं। उनने पिता की आज्ञा नहीं मानी, नहीं मानी। अयोध्या ऐसे राज्य को भी ठुकरा दिया और अपनी भ्रातृ-भक्ति की रक्षा अन्त तक की।

लक्ष्मण ने अयोध्या की तनिक भी चिन्ता नहीं की। उसे श्मशान कहा। वे राम के साथ चले गए और उस समय चले गए जिस समय अयोध्या में भरत, शत्रुघ्न भी नहीं थे। वे राम के अन्ध अनुगामी थे।

(शेष पृष्ठ ४२५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार विमर्श

रूपक-रचना रहस्य

(श्री अवध विहारी पाण्डेय: व्याकरणाचार्य, हिन्दी विशारद)

प्रस्तुत लेख में उपमा और रूपक ये दोनों भिन्न अलङ्कार हैं या एक दूसरे का क्रमिक विकास मात्र, इस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

किसी सज्जन के मत से यह माना गया है कि सर्व प्रथम मनुष्य हृदय में सन्तुलन का भाव उत्पन्न हुआ और उससे उपमा की सृष्टि हुई। शेष अलङ्कार रूपकादि उसके विकास मात्र हैं। मेरी राय में यह मत ठीक नहीं जँचता। सर्ग के प्रथमावस्था में लोग संकेत द्वारा काम चलाते होंगे, द्वितीयावस्था में उन्हें वस्तुओं से परिचय करना पड़ा होगा। रूप परिचय के साथ ही तत्तत् पदार्थों के नामकरण हुए होंगे। इस प्रकार भाषा निर्माण में भी रूपक रहस्य छिपा मालूम पड़ता है। तृतीयावस्था में एक पदार्थ देखने के बाद दूसर वस्तु में समान धर्म वाला रूप देखने को मिल जाता होगा, रूपक की सृष्टि हो जाती होगी। इसके बाद सन्तुलन भाव का श्री गणेश होता है। लोक में भी हम देखते हैं कि जो लोग पढ़े लिखे नहीं हैं, निपट ग्रामीण और अनाड़ी हैं, रूपक की सृष्टि आसानी से कर लेते हैं। उदाहरण में— यदि किसी ने लम्बा मनुष्य देखा, झट से बोल उठता है—"ऊँट आया"। वह यह कदापि नहीं कहता कि यह ऊँट की तरह लम्बा है। इसी प्रकार कोई किसी मोटे आदमी को देखकर हाथी और मूर्ख को गधा कह डालते हैं। उपमा इससे आगे की वस्तु है।

प्रौढ़ावस्था में जब मानव जगत् ने मानव से परे (नियति कृत नियम रहिताम्) एक दूसरे की सृष्टि को और कल्पना के वायुयान पर आरू साहित्य के विस्तृत विहायस में चक्कर काटने विभिन्न काव्यों और अलङ्कारों की सृष्टि हुई। समय भी रूपक को उच्चासन मिला। यहाँ तक दृश्यकाव्यों का नाम ही रूपक पड़ गया।

किन्हीं के मत से रूपक अलङ्कार और रूपक परिभाषापेक्ष है। अलङ्कार एक साधर्म्य वस्तु दूसरे साधर्म्य वस्तु में आरोप को कहते हैं (रू रूपिता रोपात् वस्तुनोः धर्म साम्ययोः)। रूपक में नरादि काव्य स्थित पात्रों का रूप धारण कर मञ्च पर उतरता है। अतएव उस काव्य का रूपक है (रूपकं कामतीति रूपकः)। नट में का का आरोप नहीं होता बल्कि उसको देखकर हृदय में वासना (भावना) जाग उठती है और समय वह अपने को पात्र से अभिन्न समझता रसानुभूति करता है। यहाँ पर सहृदय की भा हृदय का और आरोप बुद्धि का विषय गया है।

पूर्व-कथित मतानुसार यह स्वीकृत है कि वासना (भावना) के द्वारा नट में साधर्म्य का आरोप होने पर ही रसानुभूति होती है। किसी भी अवस्था में साधर्म्य कल्पना के बिना रसानुभूति असम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मञ्च से भिन्न स्थान पर नट का कुछ भी मूल्य नहीं। वहाँ कवि की कल्पना ही सब कुछ है। कवि कल्पित पात्र का रूप धारण कर जब कोई नट रङ्ग मञ्च पर आता है, सहृदय सर्व प्रथम उसके साधर्म्य सारूप्य पात्र के आरोप द्वारा विभाव का अनुभव करते हैं। उसकी चेष्टाओं से अनुभावित होकर सञ्चारीभाव में प्रवेश करता है। तब वह आनन्द में विभोर हो लोकोत्तर चमत्कार भरे स्थायीभाव रस का आस्वादन करते हैं।

यदि रङ्ग मञ्च पर आये हुए नट में साधर्म्यारोप के द्वारा पात्र गत धर्म और गुण से सम्पन्न नट को नहीं बल्कि नट में रहने वाले प्राकृत गुण एवं चरित्रों का मनन करें तो ऐसी अवस्था सहृदय के मन में उस नट के प्रति श्रद्धा हो सकती है? कदापि नहीं। क्या नट को देखने की सहृदय हृदय की भावना अचेतन बना देती है? यदि ऐसा हो तो विभावानुभाव सञ्चारीभाव की कोई आवश्यकता नहीं रहती। आरोप को बुद्धि का विषय मानने पर भी विभावानुभाव की उत्पत्ति पर्यन्त उसकी स्थिति अक्षुण्ण रह जाती है। भले ही रसानुभूति काल में बुद्धि की स्थिति न रहती हो और दर्शक अपने को अपनी भावना के द्वारा पात्र से अभिन्न समझ कर रसास्वादन करता हो। आश्चर्य है नट में साधर्म्यारोप [illegible] सहृदय की भावना जागृत ही कैसे हो सकती है? यदि वे उस पात्र से भिन्न एवं तुच्छ मानें तो उनके हृदय में श्रद्धा ही नहीं उत्पन्न होगी और श्रद्धा के बिना भावना का जगना असम्भव होगा।

अब रह गयी बुद्धि और भावना की बात। बुद्धि और भावना में अन्तर अवश्य है। बुद्धि का विषय समाप्त होने पर ही भावना का विषय आता है। सर्व प्रथम बुद्धि के द्वारा किसी वस्तु का परिचय होता है तब भावना का सृजन होता है। उससे आरोप विषयक बातें सत्य प्रतीत होती हैं। भावनोत्पत्ति के बाद बुद्धि लुप्त नहीं होती अपितु यह कह सकते हैं कि भगवच्चित्रादिवत् बुद्धीन्द्रियगृहीतारोपित साधर्म्यता के द्वारा हमारी भावना जागृत होती है और वह बुद्धि के ऊपर तक हल्का पर्दा डाल, रसाभिव्यक्ति करा देती है।

(पृष्ठ ४२३ का शेष)

हमारे शत्रुघ्न भरत के अनुगामी थे किन्तु अन्ध अनुगामी नहीं। भरत ने तपस्वी का रूप बनाया किन्तु शत्रुघ्न ने? शत्रुघ्न ने माताओं, बहुओं नगर निवासियों तथा अन्य जनता की, आँसू पोंछने, उनकी रक्षा करने तथा हँसने हँसाने का ही कार्य-भार अपने नाजुक कंधे पर सहर्ष लिया। ये ही अयोध्या रूपी उजड़ी फुलवारी के एक कोमल कली थे। रोती-माताओं के लिऐ आशा-किरण थे और थे उदासीन चेहरों पर कभी कभी अजाने वाली हँसी की रेखा। देहातों में लोग कह बैठते हैं "उन्हें तो आजकल बोलने क्या, साँस लेने तक की फुर्सत नहीं"। शत्रुघ्न के साथ भी यही बात थी।

अयोध्या शोक-सागर में डूब उतर रही थी। राजा परलोक चले गये थे। राम, लखन और सीता बन को चले गये थे। भरत ने तपस्वी वेष धारण कर अलग धूनी रमाली थी। उर्मिला सूख कर काँटा हो रही थी। हर घर में दुःख का श्रोत बहता नजर आता था। माएँ विधवा वेष में पछाड़ पर पछाड़ खा रही थीं। ऐसी परिस्थिति में घर का इन्तजाम करने वाला, राज्य का इन्तजाम करने वाला बस बच गया था एक बेचारा शत्रुघ्न। ऐसी हालत में उसे बोलने, बातचीत करने का समय कहाँ था? उसे तो हम घोड़े की पीठ पर पाते हैं, किसानों की खबर लेते हुए पाते हैं और पाते हैं रोतों को हँसाते।

गुप्तजी की मांडवी के शब्दों में—

कोई तापस, कोई त्यागी कोई आज विरागी है।
घर संभालने वाले मेरे देवर ही बड़भागी हैं॥

फिर भी, "उपेक्षिता कौन"? ही क्यों? "उपेक्षित कौन"? भी क्यों नहीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य परिचय

कविता

वीर-सतसई—(अपूर्ण) ले०—वीररसावतार महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण कृत। सम्पादक—प्रो० कन्हैयालाल सहल, एम० ए०, प्रो० पतराम गौड़ 'विशद' एम० ए०, साहित्य रत्न, ठाकुर ईश्वरदत्त आशिया, प्रकाशक—बंगाल-हिन्दी-मण्डल कलकत्ता। पृष्ठ संख्या ६४१ मूल्य ५)

राजस्थान वीर-प्रसू भूमि है। यहाँ के वीर रस प्रधान वातावरण में ही यह सतसई रची गई थी और इसका सम्पादन भी उपर्युक्त सम्पादक त्रय के कुशल करों द्वारा हुआ है। डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसका प्राक्कथन लिख कर इसको और भी महत्ता प्रदान की है। यह सतसई उत्तरकालीन डिंगल भाषा में जो वीर रस के लिए विशेष उपयुक्त है लिखी गई है। इसके दोहे वीर-भावना से, जिसमें मरने और मारने दोनों को समान महत्व मिला है, ओत-प्रोत है। यहाँ पर दो दोहे उदाहरण स्वरूप दिये जाते हैं—

बाँबी अन्दर पौठियौ, कालौ दबकै काय।
पूँगी ऊपर पाधरौ, आवे भाग उठाय॥

बाँबी के अन्दर सोया हुआ काला नाग पूँगी की आवाज सुनकर भी क्या दुबका हुआ रह सकता है? वह तो फन उठा कर सीधा उस पर आता है, ठीक उसी तरह रणभेरी की मोहक ध्वनि सुन कर वीर पुरुष उमंग से सिर ऊँचा किये निद्रा त्याग अपने घर से युद्ध भूमि की ओर लपक पड़ता है। मरण के उल्लास के सम्बन्ध में कवि लिखता है—

आज घरे सासू रहै, हरख अचानक काय।
बहू बलेबा हूलसै, पूत मरेवा जाय॥

घर पर सास को अकस्मात हर्ष हो उठता है। बहू उसका कारण पूछती है तो मालूम पड़ता है कि पुत्र मरने के लिए रणक्षेत्र में जा रहा है और बहू अपनी मान मर्यादा की रक्षा तथा वीर पति के प्रेम में सती होने जा रही है।

कुछ दोहों में तथा भूमिका में उद्धृत पद्यों से सन् ५७ में राजपूतों की उदासीनता और अङ्गरेजों की सहायता करने पर कवि की सात्विक खीज भी प्रकट होती है। कवि सच्चे देशभक्त थे और उनकी वाणी में ओज आना स्वाभाविक ही था।

सम्पादक महोदयों ने लेखक की प्रामाणिक जीवनी के साथ उनके काव्य का भी विवेचन किया है जिसमें भाषा तथा अलङ्कारों और राजस्थानी काव्य-परम्पराओं का उल्लेख है। दोहों की टीका राजस्थानी काव्य में प्रवेश कराने में सहायक होगी।

—गुलाबराय

विद्रोही—रचयिता श्री श्रीहरि। प्रकाशक—भारत भारती, जयपुर। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ।।)

प्रस्तुत संग्रह में कवि की १६ देशभक्तिप्रधान कविताएँ हैं, जिनमें मुख्यतया बापू, नेताजी जयप्रकाश-नारायण आदि देश के गण्यमान्य नेताओं के प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ हैं। ये कविताएँ लोक-प्रिय एवं भावपूर्ण भाषा में लिखी हुई हैं। नेताजी के सम्बन्ध में कवि कहता है—

फिर प्राची में उदय हुआ रवि,
आया प्रात लिए स्वर्णिम छवि,
बजी दुन्दुभी, रण की भेरी—
थी न प्रलय मचने में देरी,
धरा हिल गई, व्योम हिल गया,
उठा इस तरह धुआँधार था—
भू से नभ का छोर मिल गया;
फिर जग ने देखा तो पाया—
नया जमाना,
नया फिसाना,
नया तराना।

—गुलाबराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी—(संस्कृत मे) ले० व प्रकाशक—पं० भगवानदत्त शास्त्री 'राकेश', गोयनका हाउस १४५ लक्ष्मीनारायण बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

श्री बा० जयशंकर 'प्रसाद' कृत कामायनी हिन्दी का, विशेषकर वर्तमान पद्य-साहित्य का अभूतपूर्व प्रबन्ध काव्य है। ग्रन्थ विद्वानों के बीच इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ है कि एक ओर अंग्रेजी साहित्य के विद्वान उसका अनुवाद करने की कल्पना करते हैं (आलोचना तो अंग्रेजी में कई निकली हैं) तो दूसरी ओर संस्कृतज्ञ भी इसकी ओर आकर्षित हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी तरह का एक प्रयास है।

किन्तु आज के युग में हिन्दी की श्रेष्ठ पुस्तकों के संस्कृत अनुवाद का क्या प्रयोजन? दूसरे, अनुवादक महोदय अनुवाद करने के समय वैदिक शब्दावली के प्रति शुद्ध नहीं रह सके, जब कि मूल लेखक ने हिन्दी में भी वैदिक कथानक के साथ-साथ शब्दावली का भी अद्भुत ध्यान रक्खा है। हाँ, पुराने संस्कृत के विद्वानों में इस पुस्तक द्वारा हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न हो सका तो लेखक का प्रयत्न सफल रहेगा।

—कृष्णाचार्य

नाटक

बहन का बदला—लेखक—श्री भैरूलाल व्यास, साहित्य विशारद। प्रकाशक—शिवाजीराव, आबाजीराव सावंत, बेलगाँव।

यह एक सामाजिक नाटक है जो हिन्दुस्तानी भाषा और काका कालेलकर की प्रस्तावित देवनागरी लिपि में लिखा हुआ है। भाषा हिन्दुस्तानी है किन्तु बहुत ज्यादह उर्दू का मिश्रण नहीं है। इसमें तीन स्त्रियों और तीन पुरुषों की प्रणय कथा है। सब पात्र आधुनिक शिक्षा और संस्कारों में दीक्षित हैं और कुछ-कुछ स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें नवीना कबीर के कहने पर अपनी बहन रेखा के हत्यारे श्याम को क्षमादान देकर उससे बहन का गान्धीवादी बदला लेती है और नाटक के नाम को सार्थक करती है। नाटक सुखान्त हो जाता है और इसी खुशी में आजादपुरी की स्थापना हो जाती है। —गुलाबराय

जीवन की झाँकियाँ (द्वितीय-खण्ड तृतीय खण्ड—ले०—श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पति। प्रकाशक—विजय पुस्तक भण्डार दिल्ली पृष्ठ ३२, ७४ मूल्य ॥) व १)

श्री इन्द्रजी की जीवन झाँकी के प्रथम भाग की चर्चा पहले हो चुकी है। इस समय द्वितीय और तृतीय भाग सामने हैं। द्वितीय भाग का नाम है 'मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला'। इन्द्रजी दो वर्ष की बाल अवस्था से ही बीमार रहने के अभ्यासी हैं और वह इस असाध्य रोग तक से मुक्ति पा चुके हैं, जिसे डाक्टरों ने टी० बी० न होने पर भी टी० बी० कह दिया था। इस पुस्तक में इन्द्रजी ने चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव लिखे हैं और अपनी बीमारी की अवस्था का सुन्दर चित्र खींचा है। साथ ही, ऐलोपैथी, आयुर्वेद और होमियोपैथी चिकित्सा प्रणाली की आलोचन भी है। पुस्तक रोगी समाज के लिये उपयोगी है।

तीसरे भाग में नौकरशाही जेल के अनुभवों का वर्णन है। जो सज्जन बिना ही जेल गये जेल जीवन का आनन्द लेना चाहें उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। जेल जीवन के लिये ४२० और जेल की ही भाषा में कहीं जाने वाली 'बदमाशी' की शिक्षा प्राप्त करना कितना आवश्यक है यह पुस्तक के आरम्भ में ही ज्ञात हो जाता है। पुस्तक बड़ी रोचक है और उसमें कहानी जैसा आनन्द मिलता है, परन्तु प्रूफ की भद्दी भूलें खटकती हैं। सिबिलसर्जन और बधाकाराम जेलर के परस्पर विरोधी चरित्र बड़े आकर्षक हैं। —रामनरायण अग्रवाल

शिक्षाविज्ञान

पाश्चात्य शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास—लेखक—श्री सरयूप्रसाद चौबे एम० ए०। प्रकाशक—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा। पृष्ठ संख्या २५६ मूल्य ८)

जहाँ हम हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बना रहे हैं वहाँ हमको पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में भी सचेत रहना आवश्यक है। हिन्दी में शिक्षा विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर दो एक इनी गिनी पुस्तकें थीं किन्तु पाश्चात्य देशों में शिक्षा विज्ञान के सिद्धान्तों के क्रम विकास के सम्बन्ध में पुस्तकों का अभाव ही सा है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक एक खटकते हुए अभाव की पूर्ति करती है। इससे यूनानी दार्शनिक सुकरात प्लेटो और अरस्तु से लगाकर रोमन आचार्यों के शिक्षा सिद्धान्त और उनसे प्रभावित इसाई मध्य युग के सिद्धान्तों का तथा विकास के विभिन्न युगों की सैर कराते हुए लेखक महोदय हमे मेडम मौन्तिसेरी तक ले आये हैं। लेखक की प्रतिपादन शैली सुगम और सुबोध है किन्तु इसमें कहीं कहीं परिभाषिक शब्दों के अनुवाद चिन्तनीय हैं। जैसे प्रेम मेटिज्म का फलकवाद। इस नाम से उस सिद्धान्त का कोई बोध नहीं होता वरन् यह भौतिक विज्ञान का शब्द लगता जिसका सम्बन्ध फलक (प्रिज्म के पक्ष या चाकू के फल) से मालूम पड़ता है। इसके लिए अर्थक्रियाकारित्व या व्यावहारिकतावाद ऐसा कोई शक प्रयुक्त होता। पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न बड़ा जटिल है उसमें विद्वानों के सहयोग की आवश्यकता है। इससे यह न समझा जाय कि सभी शब्द एसे है। लेखक ने सिद्धान्तों का विवेचन कर विद्यार्थियों की सुविधा के लिए उनका संक्षिप्त सार भी देदिया है और सहायक पुस्तकों की सूची भी देदी है। पाश्चात्य शिक्षा सिद्धान्तों के क्रम वद्ध इतिहास उपस्थित करने का यह सुन्दर प्रयत्न है। लेखक से हम आशा करते है कि वह शिक्षा सन्बन्धी और भी पुस्तकें हमको देंगे।

—गुलाबराय

राजनीति

राजनैतिक क्षेत्र में मारवाड़ी समाज की आहुतियाँ—लेखक—श्री राधाकृष्ण नेवटिया प्रकाशक—अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन, १५२ बी, हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ ४०७, मूल्य ५)

इस पुस्तक में लेखक ने स्वतन्त्रता के संग्राम में भाग लेने वाले ४८३ मारवाड़ी सज्जनों का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया है। आरम्भ में एक अध्याय में काँग्रेस का संक्षिप्त इतिहास है। इस इतिहास में जो चित्र दिये गये हैं (यदि वह न दिये जाते तो ही अच्छा था।

जिन सज्जनों के विवरण पुस्तक में संग्रहीत है इनके चित्र भी देने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक को केवल मारवाड़ी समाज तक ही सीमित रखा गया है इसलिये वह सर्व साधारण के प्रेम की वस्तु कम रह गयी है। देश के स्वतंत्रता युद्ध में सम्पूर्ण देश ने ही भाग लिया था। बहुत सी माताओं ने अपनी गोदी खाली करदीं और माँगों के सिंदूर धो डाले और न जाने कितने युवक हँसते हँसते फाँसी पर झूल गये परन्तु उनके विवरण इस ग्रन्थ में नहीं आ सके क्योंकि लेखक महोदय मारवाड़ी पता के बन्धन से बँधे थे। स्वतन्त्रता के उस पावन पूत संग्राम के इतिहास में से किसी एक वर्ग या जाति को पृथक करके देखना हम उचित नहीं समझते, हमें तो यह एक प्रकार की साम्प्रदायिकता ही प्रतीत होती है जिसे राजनैतिक क्षेत्र में आश्रय नहीं दिया जाना चाहिये, फिर भी यदि यह पुस्तक मारवाड़ी समाज को देश के प्रति उनके कर्त्तव्य का सामयिक ज्ञान कराने में सहायक हुई तो लेखक का प्रयास सफल कहा जा सकेगा। —रामनारायण अग्रवाल

धर्म

जैन धर्म—लेखक—श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री। प्राक्कथन लेखक माननीय श्री सम्पूर्णानन्दजी शिक्षा-मन्त्री। प्रकाशक—मन्त्री साहित्य विभाग, भा० दि० जैन संघ मथुरा। पृष्ठ संख्या ३७२, मूल्य ४)

धार्मिक सहिष्णुता राष्ट्रीयता का एक प्रमुख अङ्ग है और धार्मिक सहिष्णुता के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न धर्मों का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त करें। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का विशेष महत्व है। इस में जैन धर्म के ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक, दार्शनिक और चारित्रिक आदि सभी पक्षों पर संक्षिप्त परन्तु एक सुसंस्कृत व्यक्ति के लिए पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। जैन-धर्म भारत की ही उपज है और दोनों की संस्कृतियाँ एक सी हैं इसीलिए उपदेशों की समानता के कारण यह भ्रम हो जाता है। जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान ऋषभदेव जी के सम्बन्ध में कि ये उपदेश जैन धर्म के ही हैं या हिन्दू धर्म के भी हैं। ऐसा ही मालूम होता है कि भगवान ऋषभदेव की वैराग्यमयी प्रवृत्तियाँ विशिष्ट होकर जैन-धर्म के रूप में आ गई। लेखक ने सम्राट अशोक को भी जैन कहा है। अहिंसा के सम्बन्ध में दोनों धर्मों की शिक्षा-दीक्षा एक सी है। किन्तु 'देवानां प्रिय' जैन राजाओं के लिए ही विशिष्ट उपाधि थी यह युक्ति यदि इतिहास से प्रमाणित होती है तो लेखक की धारणा पुष्ट होती है। इसके लिए ऐतिहासिक खोज की आवश्यकता है। लेखक महोदय इस धारणा का पोषण करते हुए प्रतीत होते हैं कि सम्राट अशोक पहले जैन थे और पीछे बौद्ध हुए। यद्यपि यह बात जैन धर्म के गौरव को बढ़ाने वाली नहीं है कि अशोक ने जैन धर्म को छोड़ा फिर भी यदि यह ऐतिहासिक सत्य है तो इसको स्वीकार करना चाहिए। सत्य साम्प्रदायिकता से ऊँची वस्तु है।

लेखक महोदय ने एक अध्याय जैन धर्म का भारत के अन्य धर्मों से सम्बन्ध पर भी दिया है। इसमें लेखक ने पाश्चात्य विद्वानों की इस धारणा को आर्य लोग बाहर से आये वेद-वाक्य की भाँति सत्य मान लिया है किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी है उसकी ओर लेखक महोदय ने ध्यान देने का कष्ट नहीं किया है। सम्भव है कि अंग्रेजी विद्वानों की ही बात ठीक हो किन्तु सत्य के अन्वेषक के लिए विपक्ष का भी उतना ही ध्यान रखना चाहिए जितना कि पक्ष का। इसी प्रकार प्रोफैसर राधाकृष्णन् के इस मत का कि जैन धर्म उपनिषदों से प्रभावित है का खण्डन करते हुए विदेशी विद्वानों द्वारा निर्धारित उपनिषदों की निर्माण तिथि को सत्य मान लिया है। यदि वह तिथि सत्य मान ली जाय तो उपनिषद अवश्य पीछे के ठहरते हैं। उपनिषद चाहे पीछे के भी रचे गये हों किन्तु उनके सिद्धान्त अलिखित रूप में बहुत काल पहिले से जब से ऋषि लोग तपोवनों में सामगान करते हुए रचते आ रहे हैं। वास्तव बात यह है कि जैन धर्म और प्राचीन वैदिक धर्म की एक ही संस्कृति है और यह सिद्ध करना कि किस से किस ने लिया बहुत कठिन है। उपनिषदों के सिद्धान्त यदि अच्छे हैं तो हम को उन्हें भी अपना समझ कर गर्व करना चाहिए। इसी प्रकार हम को जैन धर्म के उच्च सिद्धान्तों पर गर्व करना चाहिए। अनेकान्तवाद में चाहे बाल की खाल हो किन्तु उसका मूल सिद्धान्त हम को सत्य के सभी पहलुओं पर दृष्टिपात करने के लिए बाध्य करता है। जैन धर्म के पंच-महाव्रत और अणुव्रत तथा योग के यम नियम और बौद्धों के शील एक ही संस्कृति के फल हैं। उन पर हम सभी को गर्व है। जैन-धर्म का संक्षेप में प्रामाणिक ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक उपादेय है। —गुलाबराय

नीम के उपयोग—ले०—केदारनाथ पाठक, प्रकाशक—श्यामसुन्दर रसायनशाला, काशी। पृष्ठ ११२ मूल्य १)

स्वास्थ्य

पुस्तक में नीम के प्रयोग, उसके विविध गुण, रासायनिक तत्व और उसमें पाये जाने वाले विटामिनों के वर्णन के साथ ही नीम पर देशी और विदेशी विद्वानों की सम्मति भी संगृहीत हैं। पुस्तक में नीम के विभिन्न भागों (जड़ पत्तों आदि के) विविध उपयोग और विवरण भी दिये गये हैं। नीम से निर्मित होने वाली औषधियों की विधि भी देदी है।

इस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात हो सकता है कि केवल एक नीम के वृक्ष में ही प्रकृति ने कितने उपयोगी तत्वों का एकत्रीकरण कर दिया है। यदि अन्य वृक्षों के भी अनुसंधान करके इस प्रकार की पुस्तकें लिखी जावें तो इससे मानव समाज के ज्ञानवर्द्धन के साथ ही उसके अनेक रोगों का उपचार तथा विविध आवश्यकताओं की पूर्ति सहज ही हो सकती है। वह दुर्भाग्य की बात है कि धीरे-धीरे मानव कृत्रिमता का पुतला बनकर प्रकृति से दूर हटता जा रहा है। यदि वह पुस्तक पाठकों को प्रकृति की ओर आकर्षित कर सकी तो इसके लिखने का श्रम फल होगा।

—रामनारायण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

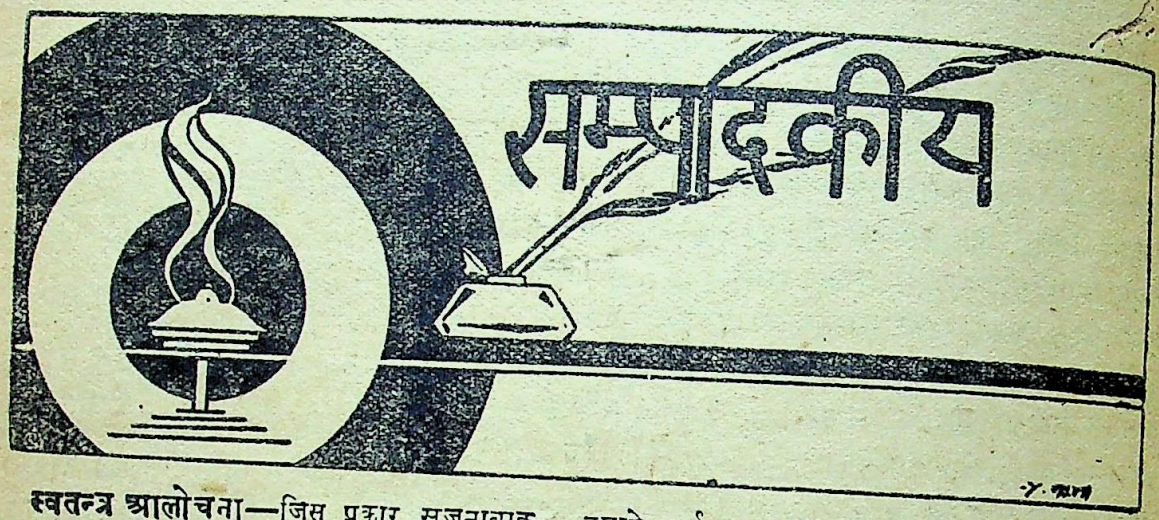

स्वतन्त्र आलोचना—जिस प्रकार सृजनात्मक साहित्य वादों में बटा हुआ है उसी प्रकार और कुछ उसी के अनुकूल आलोचनात्मक साहित्य भी वादों से प्रभावित है। यह साम्प्रदायिकता प्रगतिवादी आलोचकों तथा अन्य आलोचकों में भी पाई जाती है। आलोचक व्यक्तियों से तो कम आकर्षित होते हैं किन्तु वे वर्गों, वादों और सम्प्रदायों से अवश्य प्रभावित होते हैं। यह आलोचना की एकाङ्गिता है। सृजनात्मक साहित्य के वादों और उनसे प्रभावित आलोचकों के सम्प्रदायों के विषय में विद्वद्वर पं० नन्ददुलारे वाजपेई के विचारों को हम वीणा (अप्रैल १९४९) से यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। यद्यपि समालोचक नितान्त पक्ष-हीन नहीं हो सकता है तथापि उसको अपने वाद के बाहर की कृतियों को भी उतनी ही सहृदयता से देखना चाहिए जितनी कि वह अपने वाद की रचना को देखता है :—

शुक्लजी के पश्चात् हिन्दी समीक्षा कई दिशाओं में आगे बढ़ी है। कितने ही नए समीक्षक क्षेत्र में आए हैं और कार्य कर रहे हैं। नवीन साहित्य के मूल्यांकन में नवीन समीक्षकों ने हाथ बटाया है, और आज हिन्दी के प्रमुख कवियों, नाटककारों और औपन्यासिकों आदि पर विचारपूर्ण निबन्ध और पुस्तकें उपलब्ध हैं। प्राचीन साहित्य का अनुशीलन तथा शोध-सम्बन्धी कार्य भी अग्रसर हुआ है। यह भी हमारे वर्तमान समीक्षा-साहित्य का एक अंग है। स्वर्गीय डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और श्री हजारी-प्रसाद द्विवेदी इस क्षेत्र के समीक्षक थे और हैं। नए साहित्य के समीक्षकों की भी अनेक शैलियाँ हैं और उनकी समीक्षा-दृष्टियों में भी पर्याप्त भेद है। कुछ समीक्षक अधिक भावुक और कल्पना-प्रवण हैं। वे अपनी समीक्षा में भी काव्यात्मक शैली का प्रयोग करते हैं और अपनी मानसिक प्रतिक्रिया को सुन्दर कल्पनाओं और रूपकों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। ऐसे समीक्षकों की समीक्षा में विषय के स्वरूप और उसके भेद-उपभेदों को ग्रहण करने में सहायता भले ही न मिलती हो, पर समीक्षकों की व्यक्तिगत प्रतिक्रिया का मनोरञ्जक अध्ययन अवश्य हो जाता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की समीक्षाएँ इसी श्रेणी की कही जा सकती हैं। डा० रामकुमार वर्मा की समीक्षाओं में भी काव्यात्मकता का सौन्दर्य है, यद्यपि उन्होंने वास्तविक विश्लेषण की ओर भी प्रयत्न किया है। कुछ अन्य समीक्षकों ने ऐतिहासिक विकासक्रम को ध्यान में रखते हुए कवियों की विशेषताओं का विवरण दिया है। उन्होंने रचनाओं तथा रचनाकारों के मानसिक तथा उनके काव्यात्मक सौन्दर्य को भी परखने की चेष्टा की है। कवियों के मानसिक विकास के साथ उनके रचना सौन्दर्य की प्रगति का उन्होंने धारावाहिक आकलन किया है। उदाहरण के लिये 'हिन्दी साहित्य में बीसवीं-शताब्दी' नामक पुस्तक उपस्थित की जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें कवियों की मनोवैज्ञानिक और
त्मक विशेषताओं को परखने की चेष्टा की गई है।
इधर कुछ समय से वादों या विशेष मतों की ओर
ति बढ़ रही है, जिसके कारण हिन्दी समीक्षा कई
शाखाओं में विभक्त होती जा रही है। एक ओर
डा० रामविलास शर्मा और श्री शिवदानसिंह जैसे
तिक हैं, जो मार्क्सवादी विचार-पद्धति को अपना-
समीक्षाएँ लिख रहे हैं। डॉ० रामविलास आरम्भ
ऐतिहासिक विकास और साहित्यिक सौन्दर्य का
ान रखकर समीक्षाएँ लिखा करते थे, परन्तु हाल
उनकी समीक्षाओं में अधिक कट्टरता आ गई है।
वे समस्त काव्य को पूँजीवादी और क्रान्तिवादी
ल्य की दो श्रेणियों में विभक्त करने के पक्षपाती हो
हैं। इस प्रकार की समीक्षा-दृष्टि हमारे काव्य के
सविक विकास को परखने में कहाँ तक समर्थ हो
गी, यह संदेहास्पद है। समस्त काव्य को दो कठघरों
बंद करने की चेष्टा मेरे विचार से कृत्रिम और
हित्यिक आकलन के लिये अनुपयोगी है।

साहित्य-समीक्षा की इस एकाङ्गी प्रवृत्ति के प्रति-
ा स्वरूप समीक्षकों का एक अन्य वर्ग साहित्य के
सामाजिक पक्ष को नितान्त अवहेलना कर उसे रचना-
ार की अंतर्वृत्ति और अंतश्चेतना की स्वप्राभिव्यक्ति
ने का पक्षपाती है। स्वप्नवादी समीक्षक-साहित्य के
लिये एक असाधारण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का निर्देश
ने लगे हैं। श्री इलाचन्द्र जोशी तथा श्री नगेन्द्र
ी प्रकार का समीक्षात्मक अनुशीलन करने लगे हैं।
नगेन्द्र मानसिक कुण्ठा को काव्य की प्रेरक बताते
लिखते हैं कि यह कुण्ठा जितनी ही विवशता-
यानी व्यक्तिगत परिस्थिति के प्रतिकूल होगी
नी ही अधिक मन में घुमड़न पैदा करेगी और फिर
घुमड़न उतने ही अधिक दिवा स्वप्नों की सृष्टि
गी। नगेन्द्रजी की इस उत्पत्ति को यदि सत्य मान
लिया जाय और साहित्य को दिवा-स्वप्न ही समझा
जाय तो हमें साहित्य को सार्वजनिक और सांस्कृतिक
वस्तु मानने के अपने भ्रम को दूर कर देना पड़ेगा।

हम कह सकते हैं कि हमारे साहित्य-निर्माण में जिस प्रकार की प्रवृत्तियाँ दृष्टि-गोचर हो रही हैं, हमारी साहित्य समीक्षा पर भी उनका प्रभाव पड़ रहा है। परन्तु समीक्षा की सार्थकता बदलते हुए साहित्यिक प्रयोगों और प्रणालियों के पीछे-पीछे चलने में ही नहीं है। हमें साहित्य का नेतृत्व और नियंत्रण भी करना होगा। स्वस्थ विचार-पद्धति, स्वस्थ-मनोविज्ञान, स्वस्थ सामाजिकता तथा सुव्यवस्थित कलात्मक अभि-रुचि ही हमारी साहित्य समीक्षा के आवश्यक गुण हो सकते हैं।

संतोष की बात है कि हमारी वर्तमान समीक्षा में ऊपर कही हुई अतिवादी प्रवृत्तियों के होते हुए भी ऐसे समीक्षकों की कमी नहीं है जो किसी वाद के वशवर्ती न होकर स्वतंत्र साहित्यिक समीक्षा में प्रवृत्त हैं और हमारे काव्य-साहित्य के विविध अङ्गों और प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन करा रहे हैं। श्री प्रभाकर माचवे एक ऐसे ही समीक्षक हैं। ऐसे समीक्षकों की स्वस्थ उद्भावना हमारे साहित्य के विकास में सहायक हुई है और भविष्य में भी होगी।

साहित्य के विविध अङ्गों में से किसी एक या दो को अपनाकर विशेषता समन्वित समीक्षाएँ प्रस्तुत करनेवाले समीक्षक भी हिन्दी में हैं। अध्यापक श्री शिलीमुख हिन्दी के उपन्यास और कहानी साहित्य के विशेषज्ञ समीक्षक हैं। संगीत काव्य, नाटक तथा अन्य साहित्यांगों पर भी विश्लेषण-प्रधान पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। उदाहरणार्थ डा० जगन्नाथ प्रसाद की 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' नामक पुस्तकें हिन्दी के एक प्रमुख नाटककार के नाटकों पर प्रकाश डालती है। कुछ समीक्षक शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण कर समीक्षाएँ लिखते हैं और सैद्धान्तिक चर्चाएँ करते है। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री गुलाबराय तथा श्री कन्हैयालाल पोद्दार, आदि इसी प्रकार के शास्त्रज्ञ समीक्षक और लेखक हैं। काशी विश्व विद्यालय के संस्कृत अध्यापक श्री बल्देव उपाध्याय की ऐसी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पुस्तक 'भारतीय साहित्य शास्त्र' अभी अभी प्रकाशित हुई है।

हमारी समीक्षा का भविष्य उन प्रतिभा-सम्पन्न और अध्ययन शील तरुण लेखकों पर अवलम्बित है जो समय और समाज की विकासोन्मुख प्रवृत्तियों को पहचानते हैं, साथ ही जो साहित्य की अपनी परम्परा और विशेषता का ज्ञान रखते हैं। सामाजिक जीवन-विकास के साथ साथ काव्य-पद्धति और काव्य-स्वरूप की अंतरङ्ग और प्रशस्त अभिज्ञता रखनेवाले दृष्टि-संपन्न लेखकों के हाथों में ही हमारा समीक्षा-साहित्य सुरक्षित रह सकता है। सन्तोष और प्रसन्नता का विषय है कि ऐसे उदीयमान और प्रौढ़ समीक्षकों की एक अच्छी टोली हिन्दी में आज भी उपस्थित है, जो अपना उत्तरदायित्व समझती है और जो साहित्यिक साधना में संलग्न है। ये नये लेखक हिन्दी के दूरवर्ती क्षेत्रों में बिखरे हुए हैं। संयुक्त प्रान्त में श्री शिवनाथ, श्री विजयशंकर, बचनसिंह, गंगाप्रसाद पांडेय' सत्येन्द्र, अमृतराय, और नरोत्तम नागर मध्यप्रांत में श्री कमलाकान्त पाठक और श्री विनयमोहन शर्मा, बिहार में श्री जानकीबल्लभ शास्त्री, डा० देवराज, श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, श्री नलिन विलोचन शर्मा, राजस्थान में श्री कन्हैयालाल सहल, श्री देवराज उपाध्याय, देहली और पञ्जाब में श्री बलराज साहनी, बंगाल में मोहनसिंह सेंगर, आदि तरुण और वयस्क समीक्षकों के रहते हुए हिन्दी समीक्षा भविष्य के प्रति पूर्णतः आश्वस्त हो सकती है।

अवकाश और अध्ययन

विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षाओं के पश्चात् ग्रीष्मावकाश आरम्भ हो रहा है। ग्रीष्मावकाश जिस प्रकार भौतिक शक्तियों की पूर्ति के लिए आवश्यक है वैसे ही मानसिक क्षितिज के विकास के लिए भी वाञ्छनीय है। जब तक विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के सत्र चलते रहते हैं तब तक अध्ययन एक बँधी और कुछ-कुछ संकुचित प्रणाली में चलता रहता है किन्तु जीवन पाठ्यक्रम की सीमाओं से अधिक विस्तृत है। पाठ्य-क्रम की पूर्ति के लिए विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता रहती है और जीवन की तैयारी के लिए तो अध्ययन के बिस्तार की सीमा नहीं। विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वे आगामी वर्ष के लिए अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकों का पूर्वास्वाद लेकर उनके लिए ग्राहकता उपार्जन करलें। कक्षा के अध्ययन के लिए विषय का पूर्व परिचय अपेक्षित है। हर एक विषय के परिचय के लिए पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ साधारण पुस्तकें भी होती हैं। विद्यार्थीगण ऐसी पुस्तकों की खोज कर उनसे लाभ उठावें। साहित्य संदेश की पिछली फाइलें भी इस कार्य में सहायक होंगी।

हिन्दी में आलोचना साहित्य पर नीचे लिखी पुस्तकें पिछले दिनों निकली हैं—इनसे भी लाभ उठाया जा सकता है—

१—अध्ययन—भागीरथ मिश्र ३)
२—आलोचना के पथ पर—कन्हैयालाल सहल ४)
३—प्रगति और परम्परा—डा० रामविलास शर्मा २॥)
४—विचारधारा—अमरनाथ झा ३॥)
५—संस्कृति और साहित्य—डा० रामविलास शर्मा ३॥)
६—विचारदर्शन—डा० रामकुमार वर्मा ।-)
७—साहित्यका—हंसकुमार तिवारी १॥)
८—कामायनी सौन्दर्य—श्री फतेहसिंह एम० ए० २)
९—भारतीय साहित्यशास्त्र—बलदेव उपाध्याय ८)
१०—रामचन्द्रिका—पुरुषोत्तमदास भार्गव २॥)
११—तुलसीदास—चन्द्रवली पाँडे ४॥)
१२—कबीर— " " २॥)
१३—भारतेन्दु की विचारधारा—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय २)
१४—राष्ट्र-भाषा हिन्दी—क्षेमचन्द सुमन ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी० जी० फ्रूट प्रिजर्विंग फैक्टरी

गर्मी और जाड़े
हर मौसम में
जी० जी० ब्रान्ड
वस्तुएँ
व्यवहार में लाइये
लाभ, स्वाद में कोई कमी नहीं होती

फल पेय — फल शर्बत
नारङ्गी — सन्तरा, नीबू
लेमन — स्ट्रोबेरी
लेमन वार्ली — फान्सा
आम — मिक्स्ड फ्रूट

लाइमजूस कार्डियल जाम, केला, बादाम स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, सेव, अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेड (Orange Marmalade) तथा चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके फल सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

जी० जी० चाकलेट फैक्टरी

जी०जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।

इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं॥

गोवर्धरगोपाल टिन फैक्टरी में

१ गैलन के टिन के अतिरिक्त

१, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की शीशियों व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं यन्त्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है जिससे कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टौय फैक्टरी

फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के अतिरिक्त आपके बच्चों की

शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये

सामग्री प्रस्तुत करती है।

खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मजबूत

जी. जी. इन्डस्ट्रीज आगरा

जी० जी० सेन्स डिपो:—
आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृंगराज तेल

मस्तिष्क की पीड़ा, अल्पावस्था में बाल का पकना, नेत्र सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं और साथ ही दिमाग ठंडा रहता है आंखो की ज्यो बढ़ती है।

सर्व श्रेष्ठ सुवासों से मिश्रित तथा शास्त्रोक्त ढंग से निर्माण किया तेल विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त गुणकारी है।

हमारी अन्य उपयोगी औषधियाँ

१ कुमारी आसव—बुखार, शूल, कफ, खांसी के लिये।
२ सौराष्ट्रीय बिन्दु—आँख में डालने की दवा साफ रखने वाली।
३ दंत मंजन—दांत को चमकीले बनाने वाली।
४ द्राक्षासव—ताजगी और स्फूर्ति-दायक स्वादिष्ट पेय।

जामनगर शार्ङ्गधर लेबोरेटरी लि०, जामनगर (सौराष्ट्र)

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

स्थापित १९३१

प्रधान कार्यालय आगरा।

आँकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १९४६	...	...रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४७	...	...रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४८	...	...रु० ४२,००,००० से ऊपर।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व ऑर्गनाइजरों की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

—गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी जनरल मैनेजर

रामचरनलाल से साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरा— अप्रैल १९४९ [भाग १०

विषय-सूची

१—साहित्य में ध्वनि—श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी, एम० ए०, शास्त्राचार्य ३५३

२—साहित्य का प्रयोजन रस-सृष्टि—डा० देवराज ३५६

३—साकेत की विरहिणी उर्मिला—शिव बालक शुक्ल एम० ए० बी० ए० आनर्स ३६०

४—कामायनी पर एक दृष्टिकोण—श्री रामावतार प्रसाद अग्रवाल ३६७

५—प्रसादजी के नाटकों का सांस्कृतिक उद्देश्य—श्री मती विमला कुमारी हुम्कू एम० ए० .... ३७२

६—गरुड़ध्वज के नायक की समस्या—चन्द्रमा प्रसाद खरे ३७६

७—पंतजी के काव्य में लोक-मंगल की भावना—श्री ब्रज बिहारी निगम ३७९

८—ध्रुव स्वामिनी में अतिप्राकृत तत्व—प्रो० कन्हैया लाल सहल एम० ए० .... ३८२

९—साहित्य परिचय—विविध ३८५

१०—संपादकीय— ३९०

राय एम० ए०
ल

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य रुपया
इस अङ्क का ।=

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची दी जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकाँश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

आलोचना और साहित्य

अध्ययन—भागीरथ मिश्र ३)
विचारधारा—अमरनाथ झा ३॥)
प्रगति और परंपरा—डा० राम विलास शर्मा २॥)
संस्कृति और साहित्य— " " ३॥)
कामायनी सौन्दर्य—फतेहसिंह एम० २)
साहित्यिका—हंस कुमार तिवारी १॥)

कविता

पृथ्वीराज रासो का पद्मावती समयो—पं० विश्वनाथ गौड़ १)
वीर काव्य—उदय नारायण तिवारी ६)
वंदीयुग—बैजनाथसिंह २॥)
पद्माधाय—मुन्शीलाल ।-)॥
विद्रोही—श्रीहरि १॥)

उपन्यास

राजाधिराज—के० एम० मुनशी ६)
जय वासुदेव—रामरतन भटना ३)
अरुन्धिता—देवीप्रसाद धवन 'विकल' २॥)
का बदला—भैरू लाल व्यास १)

नाटक

सिंहगढ़ विजय—बैजनाथ १॥)

कहानी

कटघरे से पुकारती वाणी—रामनाथ सुमन १)
वेला फूले आधीरात—देवेन्द्र सत्यार्थी १०)

राजनीति

सेवा ग्राम की विभूतियाँ—ललितप्रसाद श्रीवास्तव १॥=)
भारतीय राजनीति में फासिस्ट प्रवृत्तियाँ—प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा २)
भारतीय मजदूर—प्रो० शंकरसहाय सक्सेना ३॥)
स्वाधीनता की चुनौती—शान्तिप्रसाद वर्मा ७)
स्वर्ग में आँधी—देवदत्त अटल १)
गाँधीजी जैसे मैंने देखा—रंगनाथ दिवाकर १॥)
काँग्रेस का सरल इतिहास—राजबहादुरसिंह ३)
हिन्दू-मुसलमान—महात्मा गान्धी १)
हरिजन— " १॥)
स्वराज्य की समस्यायें—धीरेन्द्र मजूमदार १=)
सोवियत मध्य एशिया—राहुल ५)

इतिहास और पुरातत्व

भारत की प्राचीन संस्कृति—डा० रामजी उपाध्याय ७॥)

स्फुट

सफाई-विज्ञान—धीरेन्द्र मजूमदार ॥=)
शेर की जिन्दगी—गिरजाशङ्कर द्विवेदी ।=)

धर्म और दर्शन

कर्म व्यवस्था—पूर्णचन्द्रजी आर्य ४)

❀ हिन्दी के कुछ कोश ❀

हिन्दी शब्दसागर—
ना० प्र० सभा काशी द्वारा प्रकाशित ५८॥)
इस कोश के ८ भाग में से केवल ६ भाग इस समय उपलब्ध है।
आदर्श हिन्दी कोश— १२)
हिन्दी रत्न कोश— ४॥)
विद्यार्थी शब्द कोश— ३)
सुलभ हिन्दी शब्द कोश— ५)
हिन्दी मुहावरा कोश— ३)
भार्गव डिक्शनरी—(हिन्दी से अँग्रेजी) ६)
भार्गव डिक्शनरी—(अँग्रेजी से हिन्दी) ८)

मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १०] आगरा—अप्रैल, १९४९ [अङ्क १०

साहित्य में ध्वनि

(ले०—श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी एम० ए०, शास्त्राचार्य)

साहित्य में वर्णित ध्वनि सिद्धान्त के अनुयायियों को यह विचार करना है कि इस ध्वनि-मार्ग का दर्शक पहले कौन हुआ ? इस सम्बन्ध में सबसे पहला नाम आता है आनन्दवर्धन का। काश्मीर के अवन्ति वर्मा (८५५–८८३ ई०) के राज्य काल में इनकी पर्याप्त ख्याति हो गयी थी। राजशेखर (८८०–९२० ई०) ने भी अपनी पुस्तक में इनके तथा इनके विचार का उल्लेख किया है। इनके पद्यों को भी अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। न्यायमञ्जरीकार जयन्त ने भी ध्वनि का निर्देश किया है जिसकी उद्भावना आनन्दवर्धन ने की थी। जयन्त ने इनके नाम निर्देश के समय इनको पण्डितम्मन्य कहकर विपरीत आलोचना की है। आप लिखते हैं—'यमन्यः पण्डितम्मन्यः प्रपेदे व्यञ्जनं ध्वनिम्' इत्यादि। जयन्त का समय है नवीं शताब्दी का मध्य, और आनन्दवर्धन का स्थितिकाल इनसे पूर्व मानना ही पड़ेगा। यद्यपि इन्होंने ही इस सम्प्रदाय को जाग्रत किया यह कहा जाता है लेकिन इनके पहले भी ध्वनि की स्थिति थी। इसका परिचय इन्हीं के 'समाम्नात् पूर्वैः' पद से मिलता है। सारांश यह निकला कि आनन्दवर्धन ने ध्वनि नाम की कोई नई वस्तु नहीं निकाली, बल्कि पहले से चले आते हुए पदार्थ को विशद एवं वैज्ञानिक रूप में साहित्य-जगत को दिया। इनके समकालीन एक आलोचक विद्वान् थे मनोरथ कवि, जिन्होंने इसकी चर्चा की है। ये कवि आनन्दवर्धन के कुछ पहले थे। 'ध्वन्यालोक' की तथा चान्येन कृत 'एषात्र श्लोकः' पंक्ति के 'अन्येन' पद की व्याख्या लोचनकार करते हैं 'ग्रन्थकृत् समान काल भाविना मनोरथ नाम्ना कविना'। इनके श्लोक के 'व्युत्पन्नैः रचितं' पदों को देखकर यही परिणाम निकालना पड़ता है कि इनके पहले भी इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त पर विचार हुआ करता था। इनके पहले कौन हुए इसे स्पष्ट करने के लिये टीकाकार अभिनव-गुप्त उद्भट और वामन के नाम लेते हैं—'दरयिता—भट्टोद्भव वामनादिना।'

काव्य में जो चारुता लाने के लिये ध्वनि-सम्प्रदायवादी ध्वनि शब्द का नाम लेते हैं उसी कार्य की सिद्धि के लिये वामन वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग करते हैं। इनका सूत्र है 'सादृश्यात्लक्षणा वक्रोक्तिः' अर्थात् सादृश्यमूलक लक्षणा ही वक्रोक्ति है। वक्रोक्ति का तात्पर्य है किसी बात को सीधे न कहकर टेढ़े रूप में कहना, लेकिन सम्बन्ध सादृश्य ही रहना चाहिये। इनके विषय को स्पष्ट करने के लिये हम उदाहरण देते हैं 'उन्मिमील कमलं सरसीनां कैरवं च निमिमील मुहूर्तात्'। 'सरोवर के कमल खुल गये और कैरव बन्द हो गये।' उन्मीलन और निमीलन के अर्थ हैं आँखों का खुलना और बन्द होना। ये दोनों अर्थ इन दोनों फूलों में बाधित हैं। लेकिन कमल, कैरव और आँखों में सादृश्य है, इसलिये लक्षणा के द्वारा इनका अर्थ करना पड़ेगा 'खिलना' और 'बन्द होना' जो इन फूलों में प्राप्त हैं। जब इनके सूत्र का इस प्रकार विश्लेषण किया जाता है तो तात्पर्य यही निकलता है कि इन्होंने ध्वनि-सिद्धान्त का स्पर्श अवश्य किया है, क्योंकि जिस अर्थ की अभिव्यक्ति जिस प्रकार वक्रोक्ति से होती है उसी अर्थ की उसी प्रकार से ध्वनि से भी होती है।

अर्थ में वैचित्र्य तथा चारुता के लिये भिन्न-भिन्न आलङ्कारिक भिन्न-भिन्न साधनों का उपयोग करते हैं। जो अर्थ वक्रोक्ति आदि के द्वारा प्रकाशित होता है उसी के लिये वैयाकरण स्फोट सिद्धान्त का उद्भावन करते हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने यह स्पष्ट लिखा है 'बुधैर्वैयाकरणैः प्रधान स्फोटरूप व्यङ्ग्य-व्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः। ततस्तन्मतानुसारि-भिरन्यैरपि न्यग्भावित वाच्य व्यङ्ग्य व्यञ्जक क्षमस्य शब्दार्थ युगलस्य।' अर्थात् मुख्यतम स्फोट रूप व्यंग्यार्थ के व्यञ्जन करने में समर्थ शब्द को ध्वनि नाम से व्यवहार वैयाकरणों ने किया है। इन्हीं के मत का अनुसरण करने वाले आलंकारिकों ने भी वाच्यार्थ का तिरस्कार करने वाले व्यंग्यार्थ के व्यञ्जन में समर्थ शब्द और अर्थ दोनों को ध्वनि कहा है। 'स्फोट' का अर्थ होता है 'जो अर्थ का प्रकाश करे', स्फोटयति—प्रकाशयति—अर्थमिति स्फोटः'। 'ध्वनि' का अर्थ टीकाकार करते हैं 'ध्वनति—स्फोटं व्यनक्ति इति ध्वनिः'। अर्थात् जो स्फोट को व्यक्त करे वह 'ध्वनि' है। इस प्रकार इसमें व्यंग्य व्यंजक भाव सम्बन्ध स्थिर होता है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि स्फोट और ध्वनि में कोई भेद नहीं है, दोनों एक हैं। इसे स्पष्ट करने के लिये इस प्रकार इसका विवेचन किया जा सकता है। किसी ने 'गौः' शब्द का प्रयोग किया। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इसमें कौनसी ऐसी शक्ति है जिसके कारण श्रोता ने इस शब्द से किसी जानवर विशेष का बोध किया? इस शब्द में 'ग्', 'औ' और ':' (विसर्ग) ये तीन अक्षर हैं। क्या 'ग्' से या 'औ' से या ':' (विसर्ग) से इस अर्थ का बोध होता है या तीनों के समुदाय से? यदि प्रत्येक से मानें तब तो ('औ' के स्थितिकाल में 'ग्' का विनाश हो गया और विसर्ग के स्थितिकाल में 'औ' लुप्त हो गया—एक काल में तीनों का रहना असम्भव है) अर्थ-बोध के लिये एक ही पर्याप्त है औरों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि समुदाय से मानें तब भी निस्तार नहीं है क्योंकि 'शब्द-बुद्धि-कर्मणां द्वित्रक्षणावस्थापित्वम्' सिद्धान्त के अनुसार हरएक शब्द की स्थिति दो ही क्षण तक हो सकती है। : (विसर्ग) के अनुभव क्षण में 'ग्' की स्थिति रहेगी ही नहीं। इस प्रकार समुदाय से भी उस अर्थ का बोध नहीं हो सकता। इसलिये शब्दों में रहने वाला एक धर्म विशेष या गुण विशेष 'स्फोट' वैयाकरणों ने माना है। इसका स्थान शब्दों में वही है जो शरीर में आत्मा का है। आत्मा ही के कारण शरीर के गुण आदि का प्रकाश होता है उसी प्रकार स्फोट से ही कोई शब्द किसी अर्थ को प्रकट करता है। इसकी अभिव्यक्ति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग यह है 'पूर्वपूर्व वर्णानुभवाहित संस्कार सचिवेन अन्त्यवर्णानुभवेन अभिव्यज्यते स्फोटः'। अर्थात् पूर्व के सब वर्णों के अनुभव से पैदा हुए संस्कार के सहयोग वाले अन्त्यवर्ण के अनुभव से स्फोट अभिव्यक्त होता है।

'ध्वनि' क्या है? शब्द या अर्थ? इसे स्पष्ट करने के लिये महाभाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं 'अर्थशब्दानुशासनम् ..... अर्थ गौरित्यत्र कः शब्दः? किं यत्तास्ना लांगूल ककुदखुर विषाण्यर्थरूपं स शब्दः? नेत्याह। द्रव्यं नाम तत्। कस्तर्हिशब्दः येनोच्चारितेन सास्ना लांगूल ककुदखुरविषाणानां संप्रत्ययो भवति स शब्दः? अथवा प्रतीतपदार्थ को 'लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते? तद्यथा शब्दं कुरु, माशब्दं कार्षीः शब्दकार्यं माणवकः इति ध्वनिं कुर्वन्नेवमुच्यते। तस्माद् ध्वनिः शब्दः'। इस प्रकार विवेचन कर उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि ध्वनि शब्द ही है। यही अर्थ इसके प्रकृति-प्रत्यय से भी निकलता है। 'ध्वनशब्दे' धातु से 'ध्वनतीति ध्वनिः, ध्वननं ध्वनिः, ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः' ये एकाधिक विग्रह हो सकते हैं। ध्वनि या स्फोट वर्णन के उपसंहार के पहले यह बता देना आवश्यक है कि अर्थ के विशद बोध के लिये स्फोटवादियों ने शब्दस्फोट वाक्यस्फोट आदि भेद से आठ प्रकार के स्फोट माने हैं। इनमें 'वाक्य स्फोटोऽति मुख्यः' कह कर यह सिद्ध किया है कि किसी भी सम्पूर्ण भाव का प्रकटीकरण शब्द से न होकर वाक्य से ही होता है। शब्दस्फोट तो अधूरे भाव का ही ज्ञान कराकर शान्त हो जाता है। इस प्रकार इसका निष्कर्ष यह निकला कि 'स्फोट' शब्दों की आवाज से बिलकुल भिन्न है और भावपूर्ण अर्थों के परिचय का प्रधान हेतु है। यह शब्दों के पूर्व-पूर्व अक्षरों के अनुभव से मिलित अन्तिम अक्षर के अर्थानुभव से व्यक्त होकर सहृदयों को आनन्द देता है। इन अक्षरों की जो आवाज है, जो स्फोट को अभिव्यक्त करती है उसे ही ध्वनि कहते हैं। ध्वनिसिद्धान्तवादियों ने शब्द या स्फोट की स्वीकृति व्यञ्जनावृत्ति की स्थापना के लिये की है और इसी के कारण रस की अनुभूति मनोवैज्ञानिक हो जाती है।

किसी पदार्थ की सिद्धि के लिये मानवी मनोवृत्ति का अध्ययन तथा सूक्ष्म विश्लेषण कर लेना आवश्यक है। कविता की ओर रुचि और झुकाव उन्हीं मनुष्यों में पाया जाता है जिनका प्रेम आस्वाद में है और यह प्रेम भी उसके व्यंग्यार्थ ही पर जागरूक रहता है। उपर्युक्त ध्वनि मार्ग के विवेचन का सारांश यह निकला कि वाच्यार्थ से परे व्यंग्यार्थ को बताने वाली कविता ही उत्तम मानी जाती है। इसे और स्पष्ट करने के लिये यह पद्य लिया जाय—

गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः।
ममापि जन्म तत्रैव भूयात् यत्र गतो भवान्॥

विदेश जाने की इच्छुक लम्बी यात्रा करने को तैयार अपने पति से उसकी प्रियतमा की यह उक्ति है। वह कहती है 'हे स्वामिन्! जाते हो तो जाओ, तुम्हारे मार्ग कल्याणकारक हों। मेरा भी जन्म वहीं हो जहाँ आप जा रहे हो'। लेकिन जहाँ उसका पति जा रहा है वहीं जन्म की उसकी कामना इस बात को व्यक्त करती है कि पति की अनुपस्थिति में उसका जीना असम्भव है, इसलिए वह अवश्य परलोक सिधार जायगी। 'कान्त' पद से उसका सम्बोधन नायिका के हृदय में पति के लिये सच्चा प्रेम तथा सद्भाव को स्पष्ट व्यक्त करता है। इन बातों के साथ-साथ वह नायिका पतिपरायणा है, विनीत है और है सच्चे प्रेम की पुजारिन। इसलिये यात्रा के मंगल अवसर पर ऐसा कभी नहीं कह सकती है 'मेरे प्रिय! मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ अतः तुम मत जाओ। यदि तुम जाओगे तो मैं अवश्य प्राण दे दूँगी, क्योंकि तुम्हारे विरह में मेरा जीवित रहना कठिन है।' यदि इस प्रकार वह कहे तो यह उसमें ग्राम्यत्व को ही लावेगा। लेकिन साफ साफ शब्दों में न कह कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य का प्रयोजन—रस सृष्टि

(ले०—डा० देवराज)

सभ्यता के आदि काल से, जहाँ तक इतिहास की पहुँच है तब से मनुष्य कविता, कहानी आदि साहित्य की सृष्टि करता आया है और जब मनुष्य में आलोचना-बुद्धि का उदय हुआ तो उसने दूसरे प्रश्नों के साथ यह प्रश्न भी उठाया कि—साहित्य किस लिये है ? साहित्य का प्रयोजन क्या है ? अन्य प्रश्नों की भाँति यह प्रश्न भी सभ्यता के हर युग में पूछा गया है और प्रत्येक युग के विचारकों ने इस प्रश्न का स्वतन्त्र समाधान या उत्तर देने की कोशिश की है। हमारे देश के पुराने विचारकों ने भी साहित्य और उसके प्रयोजन के सम्बन्ध में बड़ी गम्भीरता से विचार किया और उन्होंने उक्त प्रश्न के जो उत्तर दिये उनका महत्व आज भी कम नहीं हुआ है।

प्रसिद्ध अलङ्कार ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में आचार्य मम्मट ने काव्य या साहित्य के दो मुख्य प्रयोजन बतलाये हैं, एक आनन्द और दूसरा कान्तासम्मित उपदेश। कान्तासम्मित उपदेश से मतलब उस उपदेश या शिक्षा से है जो केवल प्रेम के बल पर अथवा आन्तरिक आकर्षण की शक्ति से पत्नी या प्रेयसी की मीठी बातों की तरह अनजाने मन में घर कर लेती है। धर्म-शिक्षक या धर्मशास्त्र के उपदेश हम सुनते हैं, पर वे हमारे हृदय तक नहीं पहुँचते, वे हमारी चेतना को सिर्फ बाहर से छूकर रह जाते हैं; इसके विपरीत कवि की वाणी हमारे मन की सबसे भीतरी तहों में घुस कर उसका सुन्दर, असुन्दर, शुभ, अशुभ आदि की धारणाओं को प्रभावित करती और बदल देती है। इस प्रकार किसी देश के बड़े कलाकार वहाँ के निवासियों की भावनाओं और चरित्र का निर्माण करते हैं। आज के भारतवासी किसी खास अवसर पर जिस ढंग से अच्छाई, बुराई, सौन्दर्य, असौन्दर्य आदि के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया करते हैं उस पर देश के महाकवियों अर्थात् वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी आदि का स्पष्ट प्रभाव है। हमारी मातायें अपने बच्चों में बालक कृष्ण का आरोप करती हैं और हमारी युवतियाँ पतियों में गोपियों के प्रेमी श्याम का; हमारे गाँवों के लोग बात-बात में रामायण की दुहाई देते हैं।

तो साहित्य का एक प्रयोजन है कान्ता-सम्मित उपदेश; लेकिन मम्मट के व्याख्याताओं का मत है कि आचार्य के अनुसार काव्य का सर्व प्रमुख प्रयोजन आनन्द है। आनन्द का ही दूसरा नाम रस है। साहित्य का प्रधान उद्देश्य पाठकों के हृदय में रस का उद्रेक या रस-सृष्टि है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि रस क्या वस्तु है ? सहज बुद्धि (या कामन सैन्स) की यह धारणा है कि रस का सम्बन्ध हमारे हृदय या अन्तःकरण से है। रस-सृष्टि अन्दर की चीज है, आन्तरिक क्रिया है। वास्तविकता यह है कि साहित्य पढ़ने से हमारे अपने

प्रकारान्तर से अपने भाव को व्यक्त करती है। इसी कारण इस पद्य को सच्ची कविता की श्रेणी में ला सकते हैं जिसमें आन्तरिक आनन्द उत्पन्न करने की शक्ति है। इस पद्य से दो प्रकार के भाव व्यक्त होते हैं—एक तो वस्तुव्यंग्य होता है जो प्रार्थना के रूप में याचा के निषेध रूप में है और दूसरा रस भावि विप्रलम्भ रूप व्यक्त होता है। इसी प्रकार के व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति के कारण यह ध्वनि काव्य कहा जाता है जो काव्य में उत्तमता का विधान करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही भीतर के राग-विराग जग जाते हैं। सुन्दर स्त्री का वर्णन पुरुष की काम-वासना को जाग्रत करता है और बालक का वर्णन वात्सल्य का उद्रेक करता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि वह हमारा शेष सृष्टि से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार टाल्स्टाय का भी ऐसा ही मत है। वे कहते हैं कि साहित्य उस लेख या रचना को कहते हैं जो हमारे अन्दर आवेग या (Emotion) जगा सके, अथवा लेखक या पात्र-विशेष के आवेग को हममें संक्रान्त कर सके।

यहाँ एक प्रश्न उठता है। साहित्य को पढ़ने से एक विशेष तृप्ति या आनन्द होता है जिसे हम रसास्वादन भी कहते हैं। लेकिन आवेगों का जो अनुभव वास्तविक जीवन में होता है वहाँ सदैव आनन्द की अनुभूति नहीं होती। उदाहरण के लिये वास्तविक जीवन में क्रोध का आवेग दुःख रूप होता है, नकि आनन्द-रूप। फिर साहित्य में क्रोधादि विकारों की अभिव्यक्ति और अनुभूति कैसे आनन्द का हेतु बन जाती है?

इस प्रश्न पर विचार करने से पहले हम आपके सामने संक्षेप में रस का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करेंगे। रस शब्द का सबसे पहला पारिभाषिक प्रयोग भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है। आचार्य भरत के अनुसार विभावों, अनुभावों और सञ्चारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। मम्मट आदि ने इस व्याख्या को स्पष्ट करने की कोशिश की है। हम सभी के भीतर पहले से रति, हास, शोक, क्रोध उत्साह आदि की वासनायें मौजूद हैं; इन वासनाओं को ही स्थायीभाव कहते हैं। यह स्थायीभाव साधारण-तया अव्यक्ति या अप्रकट रहते हैं। विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भावों द्वारा उनकी अभिव्यक्ति होती है और तब उनकी रस संज्ञा हो जाती है। हमारी छिपी हुई वासनायें ही उपयुक्त निमित्त के सम्पर्क में आकर रस-रूप बन जाती हैं। इस प्रकार रसानुभूति का अर्थ अपनी आन्तरिक वासनाओं का उपभोग है।

एक उदाहरण लीजिये। उद्यान के मनोरम वातावरण में दुष्यन्त सुन्दरी शकुन्तला को देखकर मोहित हो जाता है। यहाँ दुष्यन्त की आन्तरिक रचना में रति नाम का स्थायीभाव है, शकुन्तला उसका आलम्बन है। आलम्बन एक प्रकार का विभाव है, उद्यान का वातावरण उद्दीपन का काम करता है। दुष्यन्त के शरीर और मन में जो विकार पैदा होते हैं उन्हें अनुभाव और सञ्चारी भाव कहते हैं। इस प्रकार आलम्बन और उद्दीपन विभावों तथा अनुभावों के द्वारा दुष्यन्त की रति-वासना शृङ्गार रस में परिणत हो जाती है।

अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्वर्गीय डा० मैक्डूगाल ने अनजाने रस-शास्त्र के पुराने आचार्यों का समर्थन किया है। उनकी मान्यता है कि प्राणियों के भीतर कुछ भौतिक मानसिक प्रवृत्तियाँ होती हैं जिन्हें हम मूल प्रवृत्तियाँ (Instinets) कह सकते हैं। इन प्रवृत्तियों के कारण जीवधारी विशेष-विशेष पदार्थों में अभिरुचि लेता है, जैसे खाद्य पदार्थों में, बच्चों में, विपरीत लिंग के सदस्य में। जब कोई मूल प्रवृत्ति अपने विषय की उपस्थिति में क्रियाशील (Active) होती है तब हम विशिष्ट आवेग (Emotion) का अनुभव करते हैं। जैसे बालकों की उपस्थिति में, जब (Parental Instinet) या जनकत्व प्रवृत्ति जगती है तो हम वात्सल्य का अनुभव करते हैं।

निष्कर्ष यह है कि साहित्य का काम ऐसे पदार्थों को चेतना के सामने लाना है जो हमारी मूल प्रवृत्तियों या स्थायी भावों को जगाकर उनके उपभोग द्वारा हमें आनन्द दे सकें। साहित्य का उद्देश्य हमारी अन्तर्वृत्तियों को रमाना और हमें उस रमने के रस में लीन करना है। रस के आचार्यों ने इस सिद्धान्त को वेदान्त दर्शन का आधार देने की कोशिश की है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे वह काफी जटिल बन गया है। उस सब का यहाँ विस्तार से उल्लेख नहीं हो सकता और न वह जरूरी ही है। क्योंकि कुछ विशिष्ट स्थायीभाव हमारे भीतर पाये जाते हैं, इसका उत्तर रसवादी नहीं दे सकते, वेदान्त भी नहीं दे सकता। क्योंकि स्थायी-भावों के व्यायाम या उपभोग से आनन्द मिलता है इसके उत्तर में कहा गया है कि क्योंकि आत्मा या चेतनाशक्ति आनन्दमय है। यह उत्तर भी सन्तोषजनक नहीं, क्योंकि तब प्रश्न उठेगा कि आत्मा का आनन्द दूसरी मनोदशाओं में अभिव्यक्त क्यों नहीं होता?

दार्शनिक प्रश्नों को अलग रखते हुये भी कुछ सवाल उठते हैं। शकुन्तला तो दुष्यन्त के सामने है फिर नाटक के दर्शक या पाठक को क्यों आनन्द होता है? उत्तर में कहा गया है कि साहित्य में विभावों का साधारणीकरण होता है, वहाँ शकुन्तला, दुष्यन्त आदि देश-काल की सीमाओं से परे सामान्य नारी और पुरुष के रूप में अनुभव का विषय बन जाते हैं। दर्शक या पाठक का सामान्य पुरुषत्व या नारीत्व क्रमशः दुष्यन्त और शकुन्तला से तादात्म्य स्थापित करके रतिनामक वासना का उपभोग करता है। इसी प्रकार सूरदासजी कृत बालक कृष्ण का वर्णन पढ़कर समस्त पुरुष और स्त्रियाँ सामान्य बालक के चिन्तन में लीन होकर वात्सल्य का अनुभव करने लगते हैं।

दूसरा प्रश्न यह उठाया गया है कि करुण रस या शोक के प्रसंग में हमें आनन्द क्यों मिलता है? कहा गया है कि रामायण का अयोध्याकाण्ड जहाँ राम के वन जाने का वर्णन है उस काव्य का सर्वश्रेष्ठ अंश है। वहाँ पाठक को विशेष रस का अनुभव होता है। महाकवि भवभूति ने भी उत्तर रामचरित में करुण रस को प्रधान या एक मात्र रस कहा है। आधुनिक काल में महादेवीजी ने मुख्यतः विरह के गीत लिखे हैं। ये चीजें रसज्ञ पाठकों को क्यों प्रिय लगती हैं? इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। एक उत्तर है सहृदय पाठकों का हृदय ही इस सचाई का प्रमाण है कि शोक प्रसंग में भी आनन्द मिलता है। लेकिन यह वास्तव में सवाल का जवाब नहीं हुआ—तथ्य का संकेत हुआ, उसकी व्याख्या नहीं। दूसरा उत्तर यह दिया गया है कि काव्य-साहित्य में जो विभावों की अवगति या बोध होता है वह अलौकिक व्यापार है और विभाव भी अलौकिक हेतु बन कर भाव जगाते हैं। यह समाधान भी ठीक नहीं जान पड़ता। विभागों को अलौकिक कहना पहेली-बुझौवल-सा मालूम होता है जिसकी अनुभव द्वारा परीक्षा नहीं हो सकती।

हमारी सम्मति में रसोद्रेक का अर्थ विशेष विषय की उपस्थिति में आवेग का अनुभव करना ही है। काव्य-साहित्य में जो विषय (Object) हमारे सामने है उसका हमारे भौतिक जीवन से सम्बन्ध नहीं होता, अतः उस समय हम जिस आवेग का अनुभव करते हैं वह व्यक्तिगत न होकर मानवीय होता है। उस समय हम अपने अहम् से मुक्त होकर सामान्य मनुष्यता की भूमिका में विषय का साक्षात्कार करते हैं। हमारे अन्दर कुछ मूल प्रवृत्तियाँ, वासनायें या स्थायी भाव हैं इसका एक मतलब यह भी है कि हम संसार की कुछ चीजों या छवियों में रुचि लेने को विवश या बाध्य हैं। उदाहरण के लिये पुरुष को नारी और नारी को पुरुष बरबस आकृष्ट करते हैं। इसी प्रकार बालक भी हमें खींचते हैं; प्रकाश, रंग, लहरें आदि भी हमें आकृष्ट करते हैं। मतलब यह कि अपनी वासनाओं के कारण ही सही हमें जगत की कुछ छवियाँ सार्थक (Significant) मालूम पड़ती हैं और उनकी अवगति या अनुचिन्तन में आनन्द मिलता है। चूँकि यह चिन्तन व्यक्तिगत हानि-लाभ से परे होता है इसलिये हम परिस्थिति की सार्थकता (Significance) या (Meaningful net) को ही देखते हैं। इसलिये शोक के प्रसंग में भी हमें आनन्द मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि इन भीतरी वासनाओं या प्रवृत्तियों के अभाव में हमें यह संसार बिल्कुल रोचक नहीं लगेगा। इसका मतलब यह हुआ कि मूल वासनाओं द्वारा ही हम जगत से आवेगात्मक सम्बन्ध जोड़ते हैं। वासनायें न हों तो विश्व में कहीं हम अपनापन या परायापन, राग या द्वेष महसूस न करें। इस सत्य का दूसरा पहलू यह है कि यदि बाहरी विश्व न हो तो वासनायें व्यर्थ हो जाँय। वासनाओं की सार्थकता इसमें है कि उनके द्वारा बाह्य विश्व को अपने जीवन से सम्बन्धित कर लिया जाय। साहित्य यह करने में सहायता देता है। साहित्य द्वारा हमारा जीवन सारे विश्व में प्रसारित हो जाता है। सूर्य, चन्द्रमा और तारे, श्यामल मेघ और विद्युत, पशु-पक्षी और असंख्य नर-नारी सब हमें अपने जीवन से सम्बद्ध, जीवन का अंग मालूम पड़ने लगते हैं।

संक्षेप में साहित्य का प्रयोजन यही है, हमारे अस्तित्व को विश्व में प्रसारित कर देना। साहित्य जीवन का, अस्तित्व का प्रसार करता है, अतः साहित्य आनन्दप्रद है। जीवन और विश्व का यह सम्बन्ध स्थापन व्यर्थ नहीं है, वस्तुतः इस सम्बन्ध का नाम ही जीवन है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि साहित्यकार कभी अपने चारों ओर की दुनिया के प्रति उदासीन नहीं हो सकता। वासनाओं का उपभोग या व्यायाम अपने में साध्य नहीं है, उसका असली उद्देश्य, वास्तविक प्रयोजन, विश्व से रसात्मक या रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना है। इस दृष्टि से देखने पर साहित्य जीवन का महत्वपूर्ण उपकरण बन जाता है।

मनुष्य की बुद्धि भी उसका बाह्य विश्व से सम्बन्ध स्थापित करती है जिसका फल विज्ञान और उसके आविष्कारक हैं।* साहित्य में मनुष्य जगत को अपनी मौलिक वासनाओं का विषय बनाता है जिससे उसका अन्तःकरण समृद्ध और जीवन व्यापक बनता है। मनुष्य की बुद्धि और वासनायें दोनों अस्तित्व की जरूरतों को भूल कर अनन्त क्षेत्र में क्रीड़ा करना चाहती हैं, फलतः उसके ज्ञान-विज्ञान और कला के विस्तार का अन्त नहीं है। पता नहीं मानव-प्रवृत्तियों की इस अनन्त भूख के मूल में क्या रहस्य अन्तर्निहित है।

सूर-स्मारक के लिये प्रान्तीय सरकार सचेष्ट

आदरणीय सम्पादक जी,

आपने सूरदासजी के स्मारक के सम्बन्ध में पिछले एक अङ्क में चर्चा करने की कृपा की थी। उस सम्बन्ध में कुछ सज्जनों के भी सुझाव आये थे, जिसमें उन्होंने अपनी रुचियों के अनुसार इस सम्बन्ध में परामर्श भी भेजे थे। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि युक्तप्रान्त के शिक्षामन्त्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्दजी सूर-स्मारक स्थापित करने का मामला प्रान्तीय धारासभा में शीघ्र उपस्थित करने जा रहे हैं और उन्होंने पत्र द्वारा इसकी सूचना ब्रज-साहित्य-मण्डल के केन्द्रीय कार्यालय को भेज दी है। इस प्रकार इस आवश्यक साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्य के शीघ्र पूर्ण हो जाने की सम्भावना है।

—रामनारायण अग्रवाल, प्रबन्ध मन्त्री, अ० भा० ब्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा।

---

* बाह्य वास्तविकताओं से निरपेक्ष बुद्धि का व्यायाम निरर्थक होता है जैसाकि योरुप के मध्य युग का चिन्तन था। इसी प्रकार स्थायी भावों या आवेगों का वह उपभोग जो पारिपार्श्विक जगत से सम्बन्ध नहीं जोड़ता कम महत्वशाली है। अन्ततः विज्ञान की भाँति साहित्य भी जीवन के लिये है और शायद यथार्थ से अधिक जीवन के लिये। श्रेष्ठ साहित्य वर्तमान की उपेक्षा न करते हुए रस का अतिक्रमण करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साकेत' की विरहिणी उर्मिला

(ले०—शिवबालक शुक्ल एम० ए०, बी० ए० आनर्स)

रामायण के कवियों ने पतिप्राणा जानकी को वियोगाग्नि में जलते हुये देखा और उसकी लपटों के तेज में उनकी आँखें चकाचौंध हो गईं, इसीलिये उन्होंने मुड़कर न देखा कि साकेत में उर्मिला की क्या दशा होगी। स्वर्गीय विश्व-कवि रवीन्द्र का आकुल अन्तर नवागत बाला की मूक-वेदना से द्रवित हो कह उठा हाय चुपचाप वेदना सहने वाली देवी उर्मिला! तुम प्रभात काल से शुक्र तारा के समान महाकाव्य-सुमेरु के शिखर पर एक ही बार दिखलाई पड़ीं, उसके बाद अरुण के प्रकाश में तुम्हारा दर्शन फिर नहीं हुआ। लोग यह पूछना भी भूल गये कि तुम्हारे उदय और अस्त का स्थान कहाँ है। 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक एक लेख आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने भी लिखा था। इन्हीं दो महानुभावों की सत्प्रेरणा हमारे गुप्तजी को मिली और उर्मिला की दीन हीन दशा पर दो आँसू बहाना समीचीन समझ कर उन्होंने 'साकेत' का सृजन किया।* यद्यपि इसके पूर्व वे पुस्तक को 'उर्मिला-उत्ताप' नाम देकर सीमित कर देना चाहते थे।

प्रणय का पावन प्रसाद पाकर लक्ष्मण और उर्मिला प्रसन्न थे। दम्पति का जीवन-स्रोत स्नेह की स्निग्ध एवं शीतल छाया में अबाध गति से प्रवाहित हो रहा था और प्रेमालाप में—

हार जाते पति कभी पत्नी कभी।
किन्तु वे होते अधिक हर्षित तभी॥

परन्तु यह स्रोत अधिक दूर न बह पाया था कि मार्ग में उसे एक पर्वत ने रोक ही दिया कारण कि—

दिन देख नहीं सकते सविशेष,
किसी जन का सुख भोग कभी।

उस दिन ही तो उर्मिला ने अपने प्राणधन के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था। प्रासाद उसके पादलाक्षा रस से पूर्णतः रञ्जित न हो सका था। पगनूपुरों की झङ्कार से सौध के कोने-कोने झंकृत न हो सके थे कि राम और सीता के साथ जीवन-बल्लभ वन जा रहे हैं जहाँ कि सीता के लिये—

स्वर्ग बनेगा अब बन में।

साथ फूले हुये दो फूलों के भाग्य एक-दूसरे से कितने भिन्न हैं! मैथ्यू अर्नाल्ड के शब्द स्मरण हो आते हैं—

For we are all,
like swimmers in the sea,
Pois'd on the top
of a huge wave of fate,
Which hangs uncertain
to which side to fall,
× × ×
Only the event will
teach us in its hour,

परिस्थिति ने उर्मिला को विवशता सखी का आज्ञा-पालन सिखाया और—

लक्ष्मण हुये वियोगी जयी।
और उर्मिला प्रेममयी॥

---

* साकेत की रचना तो मुख्यतः इस उद्देश्य से हुई कि उर्मिला काव्य की उपेक्षिता न रह जाय।
—हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री की गति पति ही तक है। हिन्दू परिवार की साध्वी नारी अपने जीवन को अपना जीवन ही नहीं समझती, वह अपने पति के सुख के हेतु सब कुछ कर सकती है इसीलिये तो प्रवस्यत्भर्तृ का उर्मिला ने कहा—

हे मन, तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।

बनवासिनी सीता सुखभोगिनी ही रही किन्तु उर्मिला ने यति वेश धारण किया। पति अग्रज के साथ बन गये। रघुकुल की असहाय वधू उर्मिला इसी बात में प्रसन्न है कि वह सधवा है। विधवाओं को इस बात से सन्तोष रहता है कि उनके पति कदापि न मिल सकेंगे। उनकी प्रेम-पिपासा तो समय पर प्राप्य प्रणय-पय न प्राप्त हो सकने के कारण स्वयं बुझ जाती है—स्नेहहीन दीप बुझ जाता है। अतः उनकी तपस्या उर्मिला के सदृश कठोर नहीं जिसे प्रिय मिलेंगे, किन्तु कब? चौदह वर्ष के उपरान्त जबकि एक क्षण एक कल्प के समान विरह में व्यतीत होता है।

विरहानल के हेतु आशा कभी-कभी जल का काम देती है। प्रभु और बहन के साथ दुःखदहन लौटेंगे। किन्तु उसे इस बात का क्षोभ है कि वह लक्ष्मण से यह न कह सकी कि वे भाई का साथ दें। वह नहीं चाहती कि प्रिय उसके लिये दुखी हों और इस प्रकार व्रत में विघ्न पड़े। अब उसके हृदयोदधि पर सन्तोष की ऊर्मियाँ आलोड़ित विलोड़ित हो रही हैं जो उसके उर्मिला नाम को सार्थक करती हैं। दीनता का यह दृश्य द्रष्टव्य है—

आराध्य युग्म के सोने पर—
निस्तब्ध निशा के होने पर।
जब याद करोगे मुझे कभी—
तो बस फिर मैं पा चुकी सभी॥

भाभी सीता ने देवर उर के भाव समझ उसे चित्रकूट में सम्पुटक लेने कुटिया में भेज दिया। पति और पत्नी का क्षणिक मिलन आ। उर्मिला की क्षीण काया देख लक्ष्मण विस्मय विभोर हो गये किन्तु उर्मिला बोल उठी—

मेरे उपवन के हरिण आज बनचारी।
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी॥

स्वामिनी ने जिस हरिण को सहर्ष भेजा है उसे अब वह क्यों बाँधने लगी। वह तो मन से स्पष्ट कह चुकी है—

'तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।'

लक्ष्मण अपने को उर्मिला से तुच्छ समझते हैं। वस्तुतः नैतिक विचार विन्दु से है भी यह बात सही। लक्ष्मण ने तो आराध्य युग्म के लिये अपने ही को अर्पित किया किन्तु उर्मिला ने अपने प्रियतम को दे दिया। लक्ष्मण उर्मिला को उपभोग्य न समझ अब तपःपूत होना चाहते हैं पर उर्मिला स्नेहमयी उर्मिला—वैभव नहीं चाहती, वह चाहती है प्रेम-निवास। हृदय इसी से उसका अन्तर्नाद कर उठा—

पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो,
मुझे उसी में है सन्तोष।

अब उर्मिला प्रोषितपतिका है, प्राणनाथ से उसका १४ वर्ष का दीर्घ वियोग है। उसके हृदय पर अवधि शिला का गुरु भार था जिसे वह—

तिल तिल काट रही थी दृगजल-धार।

यदि दृगजलधार न होती तो उपचार हो ही क्या सकता था? कारण कि—

मिलाप था दूर अभी धनी का।
विलाप ही था बस का बनी का॥*

प्रायः विरह-वर्णन में कविगण ताप का ऊहात्मक रूप दिखाते हैं। षट्ऋतु का चित्र चित्रित करते हैं तथा विरह-कथा का वेदनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक व्यक्तीकरण भी करते हैं। साकेत में विरह का वर्णन ऊहा का आश्रय लेकर मनोवैज्ञानिक चित्रणों द्वारा किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वियोगिनी उर्मिला खाना पीना तो चाहती है कारण कि पतिदेव के मिलन तक उसे जीना है। परन्तु विश्राम उसे कैसे कर मिलेगा। पति वियोग में भोजन अच्छा नहीं लगता। वह स्वयं भोजन बनाती भी नहीं। भोजन न बनाने के हेतु वह सफाई देती है—

खिलाऊँ किसे मैं अलोना सलोना ?

कितनी तीव्र दीनता है !

साध्वी स्त्रियाँ प्रायः पतियों के भोजनोपरान्त उनका उच्छिष्ट भोजन करती हैं परन्तु उर्मिला ऐसा करने में विवश है। राजकुल-ललना को वियोगावस्था में भी प्रमुख दिनचर्यानुसार सखी द्वारा आनीत खीर खीझकर इन शब्दों के साथ खानी पड़ती है—

अरी ! कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरू।

अन्यथा पति-वियोग में आँखों से स्रवित खारी जल नहीं, अमृत धार क्या उसकी भूख प्यास न दूर कर देती। ठीक है देव की विरहिणी नायिका के शरीर से संघटित चार तत्व विभिन्न प्रकार से निकल गये थे और रह गई थी केवल शून्यता (आकाश)—

देव जियै मिलिबे ही की आस कि,
आस हू पास अकाश रह्यो भरि।

मिलनोत्कण्ठा सचमुच ऐसी ही वस्तु है।

ताप बढ़ता ही जा रहा है। अतीत की स्मृति आते ही माँ के सहानुभूति सने शब्द स्मरण हो आये—

मिला न बन ही न भवन ही तुझको।

समदुखी व्यक्ति एक दूसरे के आत्मीय बन जाते हैं कारण कि—

हमजिंस को हमजिंस से होती है मुहब्बत।

अतः विरह-विदग्धा उर्मिला का प्रोषितपतिकाओं को निमन्त्रण देना स्वाभाविक ही है किन्तु साकेत-नगरी में कोई प्रोषितप्रेयसी नहीं है अतः उर्मिला का दुःख बढ़ता जा रहा है। वह समय काटने के लिये सूर की गोपियों की भाँति चित्रकला की ओर झुकती है।

उर्मिला सब को स्वतन्त्र देखना चाहती है। उसकी उदार वृत्ति शुक को पिंजड़े में बन्द नहीं देख सकती। किन्तु शुक उड़ना भूल गया अतः वह उड़ाया भी न जायगा। शुक के गुरु लक्ष्मण कहाँ गये ? मृगया में ? इस उत्तर पर वह कह उठा—

सचमुच मृगया में तो अहेरी नये वे।
यह हत हरिणी क्यों छोड़ यों ही गये वे॥

इन शब्दों में अमाप्य दैन्य भरा है।

महाकवि बाइरन की 'प्रिजनर आवँ शिलाँ' पुस्तक में बन्दी बोनीवाई के लिये कारागार में मकड़ी और चूहे सुपरिचित सुहृदों का काम करते थे उसी प्रकार विरह-बन्दिनी उर्मिला शशक, कपोत, चकोरी, लाल, तोता, मधुमक्खी, मकड़ी आदि पशु, पक्षियों एवं कीड़ों को अपना मित्र समझती है। मकड़ी के के लिये उसके शब्द कितने सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी हैं—

सखि न हटा मकड़ी को,
आई है वह सहानुभूतिवशा।

उर्मिला, जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उदार वृत्ति वाली रमणी है। पर हित-चिन्तन भी उसके उदार हृदय की विशालता का पूर्ण परिचायक है; उसे वियोग आत्मार्थी नहीं परमार्थी बना रहा है किन्तु श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के शब्दों में- 'परार्थ चिन्तन ही सबसे बड़ा स्वार्थ-चिन्तन है' देखिये अपने शरीर को सुरभित होने से बचाने के लिये उसने कहा—

अरी सुरभि ! जा लौट जा, अपने आगर सहेज।
तू है फूलों में पली, यह काँटों की सेज॥

* मिलाइये—

रखियाँ हैं मेरी मोहि अँखियाँ न सींचती तौ,
याही रतियाँ में जातीं छतियाँ है टूक है।
—देव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रेम के पूत प्रभाव से उर्मिला के उर की उदारता और भी विस्तृत हो गई है। सृष्टि को सम्बोधित कर वह कहती है—

रह चिर दिन तू हरी भरी।
बढ़ सुख से बढ़ सृष्टि सुन्दरी॥
× × ×
तरसूँ मुझ सी मैं ही, सरसे—
हरसे हँसे प्रकृति प्यारी॥

गोल्डस्मिथ के 'हर्मिट' की विरहिणी अञ्जलैना प्रकृति को देखकर कहती है—

The dew on the lotus the blossom on the trees,
With charms inconstant shine,
Their charms of his but woe is me.

किन्तु सूर की गोपियाँ कृष्ण-विरह में कह उठीं—

सुनन तुम कत रहत हरे।
बिरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे॥

निन्द्रा चिन्ता के लिये रबड़ का काम करती है। चिन्ता की रेखायें निद्रा कुछ क्षण के लिये मिटा देती है। दूसरे शब्दों में निद्रा का कर-स्पर्श चिन्ता लाजवन्ती को क्षण भर के हेतु मूर्च्छित कर देता है। उर्मिला इसीलिये नींद को बुला रही है। एक तो चिन्ता-भार दूर होगा, दूसरे पति के विराट् स्वप्न देखने को मिल जायँगे। किन्तु स्वप्नों की आधार निद्रा भी निकट नहीं आती। रात में तो तारे गिनती थी, दिन में कोई साधन नहीं जिससे समय कटे। हाय री विधि ! री विडम्बना !

सखी उर्मिला को भू-गर्भ शयनागार में ले जाना चाहती है किन्तु वहाँ शीतलता नहीं है कारण कि चन्द्रजीवन जो यहाँ नहीं है। वह कहती है—

ठेल मुझे न अकेली × × ×
आज कहाँ है उसमें
हिमांशु-मुख की अपूर्व उजियाली।

प्रकृति के उपकरणों को देख कर कभी हर्ष, कभी शोक, कभी चिन्ता और कभी विस्मय तथा धैर्य उसके पास आते हैं। 'गृहवापी' को देख उसे सन्तोष हो जाता है और वह कहती है—

सुख भोगे हैं मैंने दुःख भला क्यों न भोगूँगी।

आगे गुप्तजी ने उर्मिला की अन्तःप्रकृति का व्यापक विश्लेषण किया है। उर्मिला जानती है कि कभी-कभी पति को भी वियोग सताता होगा। अतएव वह कहती है—

मेरी चिन्ता छोड़ो,
मग्न रहो नाथ आत्मचिन्तन में।
बैठी हूँ मैं फिर भी,
अपने इस नृप-निकेतन में॥

वह फिर भी 'नृप-निकेतन' में बैठी। विवशता-पूर्ण सन्तोष है। वह क्या जाने पति की क्या दशा होगी? लक्ष्मण ही का कथन सुनिये—

बेचारी उर्मिला हमारे लिये
व्यर्थ रोती होगी।
वह क्या जाने हम सब बन में
होंगे इतने सुख भोगी॥
—पंचवटी से

उर्मिला का सहानुभूति सम्मिश्रित-स्नेह निकटवर्ती जीवों पर स्वभावतः बिखर रहा है। वह देखती है कि शफरी सर में निमग्न होते हुये भी तड़प रही है, भ्रमरी के पंकज बन्धन में पड़ने का उसे डर है, कोकिल को सन्तोष देती हुई वह कहती है कि वह भी तो उसी के समान है।

उर्मिला एक ओर तो राज्य को धिक्कारती है और दूसरी ओर धूरे के समान ही अपने को समझती है। 'राज्य तुझे धिक्कार' में उसके हृदय का क्षोभ निकल पड़ा है।

उर्मिला के बाह्य-पक्ष का वर्णन तो हो चुका, अब उसकी आन्तरिक दशाओं पर भी दृष्टि डाल ली जाय। पति-वियोग नारी-हृदय नाना प्रकार के संकल्प-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकलों से अध्युषित रहता है। आचार्यों ने ऐसी दश दशायें मानी हैं जिनमें अभिलाषा, उत्कण्ठा, इष्ट, अनिष्ट, स्मरण और गुण कथन प्रभृति बातें सम्मिलित हैं और इन दशाओं के फलस्वरूप प्रेमिका को उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि तथा कभी-कभी मूर्च्छा और मरण तक का सामना करना पड़ता है। प्रिय-मिलन की अभिलाषा श्लाघ्य है। देखिये—

यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम-धन जाकर मैं भी रहूँ उसी बन में।
× × ×
बीच बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,
और,
जब वे निकल जायँ तब लेटूँ उसी धूल में लोट।

उसका उपर्युक्त कथन जायसी की नागमती की अभिलाषा का स्मरण दिलाता है—

रात दिवस बस यहु जिउ मोरे।
लगौं निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारौं छार कै कहौं कि पौन उड़ाव।
मकु तेहि मारग गिरि परै, कंत धरै जिहि पाँव॥

इसी प्रकार नंददास के उद्धव भी गोपियों के कृष्ण-प्रेम को देखकर कह उठे—

अब रहिहौं ब्रजभूमि की, ह्वै पग-मारग धूरि,
विचरत पद मो पर परैं, सब सुख जीवन मूरि।

आवेगमयी उत्कंठा देखते ही बनती है।

आप अवधि बन सकूँ कहीं,
तो क्या कुछ देर लगाऊँ।
मैं अपने को आप मिटाकर,
जाकर उनको लाऊँ॥

प्रिय मिलन की आकांक्षा उसे आतुर कर रही है अपने प्राणनाथ का उसे स्मरण भी हो आता है। रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं प्रकृति आनंद-निमग्ना थी वह नूपुरों का अनुकरण कर रही थी कि—

चौंक देखा मैंने चुप कोने में खड़े थे प्रिय भाई।
मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी॥

इसी प्रकार 'सेनापति' की वियोगिनी भी पति कथित शब्दों की याद कर विह्वल हुई सी दीखती है—

आई सुधि वर की हिये में आनि खरकी
'तू मेरी प्रान-प्यारी वह प्रीतम की बतियाँ

कैसी प्यारी हैं ये स्मृतियाँ? किन्तु उर्मिला के लिये—

विधि के प्रमाद से विनोद भी विषाद हैं।

वियोगिनी उर्मिला समग्र संसार को अपना ही समझ रही है। निस्सदेह उसको अवधि का शाप लगा है। प्रकृति सहेली की कल्याण कामना से प्रेरित होकर मलयानिल को समझा रही है—

जा मलयानिल, लौटजा, यहाँ अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं, तू अपने को आप।

उर्मिला के उत्तप्त शरीर के संस्पर्श से मलयानिल गर्म हो जायगा। ताप की इस उग्रता को देख बिहारी की उस नायिका का स्मरण हो आता है जिस पर गुलाब जल उड़ेलते समय वह बीच में ही सूख गया था—

औंधाई सीसी सुलखि, विरह बरति बिललात,
बीचहि सूखि गुलाब गो, छींटो छुयो न गात।

उर्मिला के कैशोर्य-उपवन में यौवन बसन्त आ ही गया था, देह-लता विभिन्न प्रकार के सुमनों से कुसुमित थी, और कुसुमायुध इन्हीं कुसुमों से 'गुलबाजी' कर रहा था। तरुणी स्त्री अपने यौवन को अपने प्रियतम के हेतु न्योच्छावर कर देने में ही अपना जीवन सार्थक समझती है। यौवन के उन्माद में वे काम की ओर अग्रसर होती हैं। उर्मिला को काम सता रहा है। वह दीना पहले उससे प्रार्थना करती है—

मुझे फूल मत मारो
मैं अबला बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो*

* यहाँ बाला संज्ञा के अबला और वियोगिनी विशेषणों के मध्य में प्रयुक्त होने के कारण मिल्टनिक-इन वर्णन है।

बाला के पूर्व साभिप्राय सार्थक विशेषण अबला आया है, अतः परिकर अलङ्कार है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वियोगिनी बाला अबला नहीं तो और क्या है? काम फूल चलाता ही जा रहा है, तब उसका अन्तिम अस्त्र-आत्मविश्वास उग्र रूप ग्रहण कर लेता है वह जानती है कि—

पेश आनी है वही जो कुछ कि पेशानी में है।

अतः काम को एक ललकार देती है।

नहीं भोगिनी यह मैं कोई जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिंदूर बिन्दु यह—यह हर नेत्र निहारो।

वामा वामदेव न बनती तो करती ही क्या? मैथिल कोकिल विद्यापति की वामाओं को वामदेव समझ काम उनको पीड़ित करने लगा। तब भ्रामक वस्तुओं के हेतु उन्होंने कहा—

चाँदनक बिन्दु मोरा नहिं इन्दु छोटा,
ललाट पावक नहिं सिंदुरक फोटा।×

गुप्तजी की उर्मिला वीर क्षत्राणी है इसी से तो उसका सिंदूर-बिन्दु प्रलयंकर का नेत्र बन गया। स्वाभिमान-सूर्य के समुदित होने पर साहस-सरोज खिला इसी से उर्मिला कह उठी—

रूपन्दर्प कंदर्प, तुम्हें तो मेरे पति पर वारों,
लो, यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर वारो

अब मूर्छित होने का भी समय निकट आ रहा रहा है, क्योंकि—

सब सह सकता है परोक्ष ही,
नहीं सहन कर सकता प्रेम।
—पञ्चवटी से

आदर्श एवं कामना दो प्रतियोगिनी वस्तुयें हैं। आदर्श सोते हुये भी 'जाओ' कहता है और कामना जगकर आने के लिये प्रार्थना करती है। यह उर्मिला की अर्ध-विस्मृत दशा है—वह

भूल अवध सुध प्रिय से कहती,
जगती हुई कभी आओ।
किन्तु कभी सोती तो उठती,
वह चौंक बोलकर जाओ॥

एक बार फिर स्मृति नई पड़ जाती है। जब वाटिका में उसका समय संलाप में व्यतीत हुआ करता था। किन्तु मर्यादा का ध्यान उसे तब भी था! वह जलना ही कर रही है। भाग्य को कोसती हुई बेचारी कह उठी—

हरे! हाय! क्या से यहाँ क्या हुआ।
उड़ा ही दिया मन्थरा ने सुआ॥

कभी कभी भावावेश में उसे ऐसा भी जान पड़ता है कि—

अवधि पूर्ण हुई प्रिय आ गये।
तदपि मैं मिलते सकुचा रही,
वह वही पर आज नये नये।

किन्तु उन्मादावस्था में जब लक्ष्मण उसे मिलते दिखाई दिये तो उसने कहा,

प्रिय प्रविष्ट हो द्वार मुक्त है।

और फिर,

अब नहीं रही दीन मैं कभी।
तुम मुझे मिले तो मिला सभी॥

किन्तु आगे जब उसे आराध्य युग्म राम और सीता का ध्यान आया जिनके लिये उसका परित्याग हुआ था तो वह पति को कर्तव्यच्युत देखकर एक खीझ के साथ बोली—

वह नहीं फिरे! क्या तुम्हीं फिरे!
हम गिरे अहो तो गिरे गिरे।
× × ×
दयित, क्या मुझे आर्त जान के × × ×
घर दिया तुम्हें भेज आप ही × × ×
प्रिय फिरो फिरो हा फिरो फिरो!

× सूरदास की गोपियों का ऐसा ही हाल है वे भी काम के सामने सफाई देती हैं। मिलाइये।

भाल-तिलक उडुपति न होय यह,
कबरि ग्रन्थि अहिपति न सहसफन
नहिं विभूति द्युधि सुत न भाल जड़,
यह मृगमद चन्दन चर्चित तन—ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्त्तव्य-विमुख लक्ष्मण उसे ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे दुर्योधन की सभा में श्रीकृष्णजी ने अपने अनेकानेक रूप दिग्दर्शित किये थे। (मेरा तात्पर्य केवल उपमा से है अन्यथा कृष्णावतार तो द्वापर में हुआ था।) वह अपने निर्लज्ज पति को धिक्कारती है।

तुम मिलो मुझे धर्म छोड़के।
फिर मरूँ न क्यों मुण्ड फोड़ के॥

उसकी सखी चेतना प्रदान करती है। जब उसे अपने उन्माद और भ्रम का ज्ञान होता है तब उसका अन्तर क्षोभ और ग्लानि से अवरुद्ध हो जाता है, और वह खीझ उठती है। यहाँ उसकी भावना को गहरा आघात पहुँचता है।

अधम उर्मिले हाय निर्दया।
पतित नाथ है तू सदाशया॥
× × ×
मुँह दिखायगी क्या उन्हें अरी।
मर ससंशया क्यों न तू मरी॥

आगे और भी उन्माद बढ़ा और लक्ष्मण बोलते से प्रतीत हुए।

प्रियतमे तपोभ्रष्ट मैं भला!
मत छुओ मुझे, लौट मैं चला॥

उन्माद-उदधि में तूफान उठा और उर्मिला कह उठी।

विवश तक नहीं उर्मिला हहा!

पति का नाम उसने नहीं लिया। यहाँ उच्चादर्श-निदर्शित है। हरिऔधजी की राधा एवं गुप्तजी की उर्मिला में बहुत कुछ साम्य है। राधा कहती है—

प्यारे जीवें जनहित करें गेह चाहें न आवें।
मेरे जी में अनुपम यहाँ विश्व का प्रेम जागा॥
—प्रिय प्रवास

और उर्मिला कहती है—

भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे। भू पर स्वर्ग-भाव सरसे॥

यौवन स्त्री की अपनी वस्तु नहीं, वह उसके प्राण-धन की रूपनिधि है इसीलिये तो उर्मिला यौवन को सम्बोधित कर कहती है—

मन पुजारी और तन इस दुखिनी का थाल,
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही बाल।

परन्तु शोक है कि पति के आगमन पर—

प्रिय जीवन की आज कहाँ वह चढ़ती बेला।

प्रिय की स्मृति बड़ी प्यारी होती है। वह सरयू से कह रही है*—

प्रिय आप न जो उबार लें।
हमको मातृ-वियोग मार लें॥

और फिर—

तटिनी यह ज्ञात है तुझे।
प्रिय ने दुःख भुला दिया मुझे॥

किन्तु 'जो जस करै सो तस फल चाखा' के अनुसार ही—

विष सा यह जो वियोग है।
अपना ही सब कर्म भोग है॥

बस इसी में व्याकुल हृदय को सन्तोष मिल जाता है। उसकी दशा अब विचित्र होती जा रही थी—

स्वप्न में हँसती थी हा! सखी थी देख रो रही।

आज शत्रुघ्न लंका पर चढ़ाई करने जा रहे हैं। उर्मिला देवर के मस्तक पर रोली, कुमकुम लगा रही है। उसका आत्मविश्वास और भी दृढ़ हो गया, वह कहती है—

जीते हैं वे वहाँ, यहाँ जब मैं जीती हूँ।

और उसे राक्षस कुल की बधुओं का, नहीं-नहीं अनाथ वधुओं का, सीता से भी अधिक सोच है। ऐसे स्थल पर नारी हृदय की कोमलता दर्शनीय है। जब उसके जीवनधन वन से लौट आये तो सखी शृङ्गार करना चाहती है तो उर्मिला को विश्वास है कि—

* यशोधरा भी इसी प्रकार 'सिद्धार्थ' में रोहिणी नदी से बात करती है किन्तु अनूपजी को यह प्रेरणा गुप्तजी द्वारा मिली जान पड़ती है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी पर एक दृष्टि-कोण

रामावतार प्रसाद 'अग्रवाल'

द्विवेदी युग से हिन्दी निखरने लगी थी। इसे अग्र- होने में जितनी अग्नि परीक्षाओं से गुजरना पड़ा इसे सभी जानते हैं। 'राज्याश्रय' तो इस बेचारी को कभी नसीब ही नहीं हुआ। जिस भाषा को 'राज्या- श्रय' का मिलना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव रहा, उस भाषा की क्या गति हो सकती है, इसका अनुमान सहज ही है। परन्तु येन केन प्रकारेण यह अपने महान् रत्नों द्वारा अग्रसर होती रही और आज 'राष्ट्र-भाषा' होने की अपनी उचित मांग कर रही है। जब हमारे साहित्याकाश में कोई देदीप्यमान सितारा दृष्टिगत नहीं हो रहा था, उस समय 'प्रसादजी' ने इसे कमी की पूर्ति की थी। आपके सामने 'भारतेन्दुजी' के आदर्श थे। अभी तक हिन्दी-जगत में उत्कृष्ट काव्य की कमी सी थी। जिसकी पूर्ति 'प्रसादजी' ने कामायनी द्वारा की।

'प्रसादजी' सर्वदा पुरातन के पक्षपाती रहे। उन्होंने कभी भी अपने को 'वादों' के झंझटों की ओर नहीं बढ़ाया। वे अपनी पुरानी परम्परा में ही नवीनता का

अरी हृदय की प्रीति हृदय पर ही होती है।

क्योंकि उर्मिला का हृदय तो लक्ष्मण के पास था। और मन से उसने डाटकर कह ही दिया था 'तू प्रिय पथ का विघ्न न बन'।

जिसके हृदय सदा समीप है वही दूर जाता है। प्रसाद की सखी शृङ्गार के लिये अनुरोध करती है तो वह बोल उठी क्या वस्त्रालङ्कार आदि से वे मोहेंगे। कारण कि प्राणनाथ का न्यास, नव यौवन उसने विरह में व्यय कर डाला। कातरता देखिये—

पर यौवन उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं।
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मैं॥

इसी प्रकार अखण्ड तपस्या करके अपने पति शङ्कर को प्राप्त करने वाली—

तथा समक्षं दहता मनोभवं,
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती,
प्रियेषु सौभाग्यफलाहि चारुता॥

—कुमारसम्भव

'प्रियेषु सौभाग्यफलाहि चारुता' और 'पर यौवन उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं' में उतना ही अन्तर है, जितना कि अपर्णा उमा को अखण्ड तपस्या करके शङ्कर को पाने और उर्मिला को अपने अचल सुहाग को तपस्या बना देने में है। कितनी प्यारी हैं ये परि- स्थितियाँ।

उस दीना के पास आज रह ही क्या गया है। शेफालिका-सुमन बनमाली के हेतु कितनी सुन्दर भेंट है। किन्तु सुमन तो प्रिय पहले ही प्राप्त कर चुका है; अतः समागत स्वागत में उसके जल भरे विकल नेत्र कह उठे—

विरह रुदन में गया, मिलन में भी मैं रोऊँ।
मुझे और कुछ नहीं चाहिये पद-रज धोऊँ॥

स्यात् प्रौढ़ाओं को इससे अधिक प्रसन्नता और किसी कार्य में न होती हो जितनी केवल पतिसेवा में। कारण कि ऊपरी प्रदर्शनीय वस्तु 'यौवन' तो रह ही नहीं गया।

दीर्घ वियोग के उपरान्त आगतपतिका, पति से मिल रही है ऐसा प्रतीत होता है—

लेकर मानों विश्व-विरह उस अन्तःपुर में।
समा रहे थे एक दूसरे के वे उर में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन करते थे। उनके द्वारा निर्मित महल में, विदेशियों द्वारा निर्मित 'वादों' का गुञ्जाइश नहीं। उन्होंने पुरानी परम्परा में ही नवीनता दिखाकर संसार को दर्शाया कि जिन वस्तुओं को अपनाने के लिए आज का संसार व्यग्र सा हो रहा है, वही वस्तुएँ कभी हमारे देश में वर्तमान थीं। उनके द्वारा निर्मित महल की एक-एक ईंटों में वैज्ञानिकता और दार्शनिकता कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने प्राचीनता और नवीनता का पूर्ण रूपेण अध्ययन किया था।

'कामायनी' एक पौराणिक काव्य है। जिसकी कथा महाप्रलय के बाद से प्रारम्भ होती है। महा-प्रलय के बाद केवल 'मनु' बच रहते हैं। हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर की एक शिला पर बैठे मनु भूत की चिन्ता में लीन हैं और भविष्य की सुन्दर-सुन्दर कल्पनाएँ उनके मानस-पटल पर तिरोहित होती रहती हैं। लहरों के घात प्रतिघातों से टकराती हुई एक नाव किनारे हिल-डुल रही है। धीरे धीरे उनके मस्तिष्क में भविष्य की कल्पना साकार सी हो उठती है और यज्ञ में से अवशिष्ट अन्न को बचा-बचाकर भविष्य में आने वाले अतिथि के निमित्त संग्रह करने लगते हैं।

मनु को एकाकीपन अखरता सा रहता है। इसी बीच कामगोत्र की पुत्री कामायनी (श्रद्धा) से मनु की मुलाकात होती है। मनु का हृदय प्रसन्न हो उठता है। धीरे-धीरे मनु श्रद्धा की ओर आकृष्ट होने लगते हैं। श्रद्धा, विशुद्ध श्रद्धा होते हुए भी मानवीय संस्कारों में लिप्त रहने के कारण, उसे भी सम्भोग करना पड़ता है।

परन्तु, इतना होते हुए भी 'प्रसादजी' की नारी केवल नारी नहीं, वह केवल मनुष्यों की वासना का गुलाम ही नहीं वरन् वह मनुष्य के जीवन में चेतना है, शक्ति है, उसके जीवन के साथ-साथ वह सलिला सी बहने वाली है। 'प्रसादजी' की नारी का त्याग आदर्श त्याग हैं, आदर्श समर्पण है। इस त्याग का, इस समर्पण का नारी प्रतिकार नहीं चाहती। वह केवल देना जानती है, परन्तु लेना नहीं। उसकी देन ही मनुष्य जाति के जीवन की शक्ति है। यहाँ हम नारी के ही शब्दों में नारी का चरम उत्कर्ष देख रहे हैं, उसका आदर्श त्याग देख रहे हैं—

इस अर्पण में कुछ और नहीं,
केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं देदूँ और न फिर कुछ लूँ,
इतना ही सरल झलकता है॥

और आगे चल कर—

आँसू के भीगे अंचल पर,
मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से,
यह सन्धि-पत्र लिखना होगा॥

इन पंक्तियों को देखते ही अनायास राष्ट्र कवि 'गुप्तजी' की ये पंक्तियाँ चित्रित सी हो उठती हैं—

अबला जीवन! हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

कितना सुन्दर समन्वय हुआ है। नारी केवल नेत्र से ही सरस नहीं वरन् हृदय से भी सरस है। हृदय की बहती हुई धारा से उसका कोमल संसार परिपुष्ट होता है और नेत्रों से बहती हुई जलधारा में उसका रहस्य छिपा हुआ है। सचमुच नारी की करुणा से भरी आँखें और दूध का भरा आँचल ही उसकी अमूल्य निधियाँ हैं। वास्तव में नारी का रहस्य उसकी मधुर मुस्कान में नहीं बल्कि उसके सजल नेत्रों में है। 'प्रसादजी' की नारी केवल अपने सुख में ही रहने वाली नहीं। वह अपने साथ संसार में सुखी देखना चाहती है। वह नहीं चाहती कि अपने क्षण भंगुर जीवन के विभिन्न और प्राणियों को कष्ट दिया जाए। श्रद्धा की इस वाणी में अहिंसा की पूरा-पूरी छाप लगी हुई है:—

"और किसी को फिर बलि होगी,
किसी देव के नाते।
कितना धोखा! उससे तो हम,
अपना ही सुख पाते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी में 'प्रसादजी' की दृष्टि से नारी केवल अबला नहीं, वह केवल मनुष्य समाज की वासनाओं की दासी नहीं वरन उसके जीवन की शक्ति और स्रोत है। परन्तु आज का मनुष्य समाज उसे सूखी और उपेक्षिता के रूप में रख, उस पर नाना प्रकार के जुल्मों को ढा रहा है। वह उसे रीतिकालीन कवियों के सदृश 'नख-सिख' की सामग्री ही समझ बैठा है। उसके उसी जुल्मों ने नारी के रुदन को जन्म दिया है और आज नारी का वह रुदन स्वतः फूट पड़ा है। उसका रुदन, केवल रुदन ही नहीं वरन् आज के बुद्धि-जीवी समाज के निमित्त धधकता हुआ सन्देशा है। वही रुदन इन शब्दों में पुरुष के प्रति-व्यक्त हो रहा है:—

"तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी,
अधिकार और अधिकारी की।
जो क्षण बीते सुख साधन में,
उनको ही वास्तव लिया मान।
वासना तृप्ति ही स्वर्ग बनी,
यह उल्टी मति का व्यर्थ ज्ञान।"
'पर तुमने तो पाया सदैव,
उसकी सुन्दर जड़ देह मात्र।
सौन्दर्य जलधि से भर लाए,
केवल तुम अपना गरल पात्र।"

आखिर स्वार्थी मनु श्रद्धा को अकेली छोड़ कहीं चला जाता है। जब श्रद्धा का प्रेम बँट जाता है और मनु श्रद्धा के प्रेम को केन्द्रीभूत न पाकर उससे दूर भागना चाहता है। और अन्त में इन शब्दों को कह वह कहीं दूर चला जाता है:—

"तुम फूल उठोगी लतिका सी।
कंपित का सुख सौरभ तरंग॥
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा।
बन बन बन कस्तूरी कुरंग॥

इस व्यंग्य भरी चोट से मनु असहाय श्रद्धा को अकेली छोड़ दूर, कहीं दूर चला जाता है। यह है नारी के प्रेम का अतिकार, उसके दान का प्रतिदान। इसी मनुष्य समाज के स्वार्थ ने नारियों पर कितने जुल्म ढाए हैं। स्वार्थी मनु मानव की सृष्टि करना चाहते थे। परन्तु क्या इसी केन्द्रीभूत प्रेम के बल पर मानव की सृष्टि हो सकती थी? कभी नहीं। कामायनी के शब्दों में ही हम देख रहे हैं कि उसका प्रेम केन्द्रीभूत नहीं है। वह मनु की मानवता को संकीर्ण पा रही है। तभी तो—

"औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत करलो,
सब को सुखी बनाओ॥"

परन्तु इतने पर भी श्रद्धा का हृदय निर्मल और स्वच्छ ही है। पुरुष की कामनाओं पर अपने को बिछा देने वाली, उसके निमित्त अपना सर्वस्व निछावर कर देने वाली भावनाएँ अभी भी उसके विशुद्ध हृदय में लहरें ले रही हैं। मनु की याद उसे सताती अवश्य है, परन्तु फिर भी उसके प्रेम में जलने ही में अपना आनन्द देखती है—

दग्ध श्वास से आह न निकले,
सजल कुहू में आज यहाँ।
कितना स्नेह जलाकर जलता,
ऐसा है लघु दीप कहाँ?

मनु की याद आते ही भूत की कल्पनाएँ साकार सी हो उठती हैं। परन्तु वह उन पिछली बातों को बराबर भूलने का प्रयत्न करती रहती है। अपने मन की निष्ठुर विजय को वह विजय अवश्य मानती है, परन्तु अपनी हार नहीं—

सब अतीत में लीन हो चलीं,
आशा मधु अभिलाषाएँ।
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई,
पर यह तो मेरी हार नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हार कैसी ! 'प्रसादजी' की नारी कामायनी ने पूर्ण रूपेण मनु के लिए त्याग किया था और अभी भी उन्हीं के प्रेम में अपने को जला रही है—एक पतिंगे सी। फिर हार कैसी? श्रद्धा अपने प्रेम को केन्द्रीभूत न कर सकी, जिसके परिणाम में मनु उससे दूर हुए। उन्हीं बातों का स्मरण कर वह उस निष्ठुर विजय से कुछ भयभीत सी हो जाती है। तभी तो—

चंचल तू, बनचर मृग बनकर,
भरता है चौकड़ी कहीं।
मैं डरती तू रूठ न जाए,
करतो कैसे तुझे मना॥

उधर मनु सारस्वत प्रदेश पहुँचते हैं। वहाँ उनकी इड़ा से भेंट होती है। इड़ा मनु को पाकर एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना करती है और मनु उसके शासक होते हैं। मनु के सहयोग से राज्य की खूब उन्नति होती है। कुछ दिनों के बाद मनु के हृदय में पुनः पाशविक प्रवृत्तियाँ लहरें लेने लगती हैं और वे इड़ा पर आसक्त हो जाते हैं। पर इड़ा श्रद्धा नहीं, वह मनु को विधानों के अन्दर देखना चाहती है। वह मूक पशु की भाँति मनुष्य की इच्छाओं पर अपने को समर्पण करना नहीं जानती। वह देने के पूर्व लेना जानती है। मनु की यहाँ पर हार होती है। मनु की पाशविक प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर जागरित होती जाती हैं और वे इड़ा के साथ सम्भोग करने की कुत्सित चेष्टा करते हैं। वासना बढ़ती जा रही है, वह इड़ा के साथ जबर्दस्ती चाहते हैं। इस पर देव क्रुद्ध होते हैं—प्रकृति काँप उठती है। वे इस पाशविकता का सहन नहीं कर सकते। प्रकृति के झकझोरों से तंग आकर जनता राज्याश्रय की आशा में राज-द्वार तक जाती है। परन्तु वहाँ उन्हें राज्याश्रय मिल नहीं पाता। इड़ा उन्हें पुनः समझाती है, परन्तु वे नहीं मानते। और वे इड़ा पर आक्रमण कर उठते हैं। इस पर व्याकुल प्रजा विद्रोह कर उठती है। जिस प्रजातन्त्र की दुहाई आज का युग दे रहा है उस प्रजातन्त्र की पूरी-पूरी छाप हम कामायनी में पाते हैं। हम देख रहे हैं कि उस समय में भी प्रजा अपनी उचित माँग के सामने विद्रोह कर उठती थी—

सिंह द्वार अर्राया जनता भीतर आयी।
'मेरी रानी' उसने जो चीत्कार मचायी॥

अपनी बन्दिनी रानी को देखकर—

आज बन्दिनी मेरी रानी इड़ा यहाँ है।
ओ मायावर! अब तेरा विस्तार कहाँ है?

आगे चल कर हम देखते हैं कि विद्रोही जनता मनु पर प्रहार तक कर देती है—

और गिरी मनु पर, मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर।
रक्त नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर॥

इधर मनु मूर्च्छित होते हैं और उधर श्रद्धा स्वप्न देख पगली सी हो जाती है। वह अपने बच्चे को साथ लिए मनु की खोज में चल पड़ती है। यहाँ भी हम नारी का आदर्श हृदय देख रहे हैं। हम देख रहे हैं कि नारी के कोमल हृदय में घृणा नहीं, उपेक्षा नहीं; वहाँ तो स्वच्छ और निर्मल गंगा की पवित्र धारा बह रही है। जिस मनु ने उपेक्षा भरे हृदय से श्रद्धा का त्याग किया था, एक आदर्श नारी के विशुद्ध प्रेम पर ठोकर लगाई थी। परन्तु नारी नारी ही है, उसके पास हृदय है। श्रद्धा की अवस्था से ही हम देख रहे हैं कि आखिर नारी हृदय क्या है:—

"अरे बतादो मुझे दयाकर,
कहाँ प्रवासी है मेरा?
उसी बावले से मिलने को
डाल रही हूँ मैं फेरा।"

पगली श्रद्धा के इन शब्दों में कितनी वेदना है, उसके अतल हृदय-सागर में पीड़ा की कितनी लहरें उठ रही हैं। इसी प्रकार भटकती हुई श्रद्धा इड़ा के पास पहुँचती है। अपने मूर्च्छित मनु को देख वह पागल सी नहीं हो उठती वरन उनकी सेवा शुश्रूषा कर उन्हें होश में लाती है। मनु का मन सारस्वत प्रदेश की प्रजा से ऊब चुका था और फिर कौनसा मुँह ले श्रद्धा को दिखाते। यह सोच, वे सारस्वत प्रदेश छोड़ भाग जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इड़ा अपनी गलतियों को समझती है, और श्रद्धा ओर आकृष्ट होने लगती है। वह उसके लड़के को र करने लगती है। परन्तु श्रद्धा का हृदय और कहीं , उसके हृदय में एक मात्र मनु की छाप पड़ी हुई परन्तु इड़ा उसका पीछा नहीं छोड़ती। अन्त में यह कहती हुई अपनी अमूल्य निधि इड़ा को देती है:—

तू क्षमा न कर कुछ चाह रही,
जलती छाती की दाह रही।
तो ले ले जो निधि पास रही,
मुझको बस अपनी राह रही।

यहाँ भी हम नारी का आदर्श त्याग देख रहे हैं। जिसके लिए श्रद्धा ने मनु का त्याग किया था, उसी को वह इड़ा को समर्पण कर देती है। यहाँ भी हम कामायनी के प्रेम को केन्द्रीभूत नहीं पाते। उसने कुमार का त्याग संसार की दृष्टि से ही क्या है। कामायनी के शब्दों में ही उसके आदर्श त्याग की छाप दीख रही है:—

"तुम दोनों देखो राष्ट्र नीति,
शासक बन फैलाओ न भीति,

फिर आगे चलकर:—

"सबकी समरसता का प्रचार,
मेरे सुत सुन! माँ की पुकार।"

इस प्रकार कुमार का त्याग कर मनु को खोजने के निमित्त आगे बढ़ती है। अन्त में फिर श्रद्धा की भेंट मनु से होती है। और मनु नारी की इस निष्काम श्रद्धा के सामने मन ही मन श्रद्धावनत हो जाते हैं। मनु का हृदय आत्म-ग्लानि से भर जाता है और स्वतः इन शब्दों में नारी का चरम उत्कर्ष निखर उठता है:—

"नारी! तुम केवल श्रद्धा हो।
विश्वास रजत नग पग तल में॥
पीयूष स्रोत सी बहा करो।
जीवन के सुन्दर समतल में।"

कामायनी शक्ति-रूप में वहाँ प्रगट हो उठती है, जहाँ मनु आगे बढ़ने से घबड़ाते हैं और श्रद्धा उन्हें कैलाश और मानसरोवर के निकट खींचे लिए चली जा रही है:—

कहाँ ले चली हो अब मुझको।
श्रद्धे! मैं थक चला अधिक हूँ॥

परन्तु शक्ति रूपानारी:—

दे अवलम्ब विकल साथी को।
कामायनी मधुर स्वर बोली॥
"हम बढ़ दूर निकल आए अब।
करने का अवसर न ठिठोली॥

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि 'प्रसादजी' ने एक ओर नारी से प्रताड़ित मनु की अवस्था प्रगट कर, नारी के व्यक्तित्व का परिचय दिया है और दूसरी ओर श्रद्धामयी, विश्वासमयी, करुणामयी नारी का रूप व्यक्त कर वर्त्तमान बुद्धिजीवी संसार पर एक अमिट छाप उन्होंने लगादी है।

दूसरे रूप में हम यहीं देख रहे हैं कि मन (मनु) स्वतन्त्र रहना चाहता है, वह अपने ऊपर किसी का प्रतिबन्ध पसन्द नहीं करता। परन्तु आगे चलकर मन (मनु) पर बुद्धि (इड़ा) की अंकुश लगती है और मन (मनु) विचलित सा हो उठता है। वह बुद्धि (इड़ा) पर अधिकार करने का दुष्प्रयत्न करने लगता है। परन्तु श्रद्धाविहीन मन (मनु) बुद्धि (इड़ा) पर अधिकार नहीं कर सकता। अतः प्रजा अर्थात् दसों इन्द्रियाँ विद्रोह कर उठती हैं। फिर मन (मनु) श्रद्धा की ओर झुकता है। परन्तु वह स्थायी नहीं होता। आखिर मन (मनु) श्रद्धा और बुद्धि (इड़ा) से विमुख होकर लज्जा और ग्लानि से भाग उठता है। बुद्धि (इड़ा) मन (मनु) पर विजय अवश्य करती है, परन्तु वह उसे विजय नहीं मानती, उल्टे पश्चाताप ही करती है। अन्त में मन (मनु) बुद्धि (इड़ा) से तो अलग हो जाता है परन्तु वह श्रद्धाविहीन नहीं रह पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादजी के नाटकों का सांस्कृतिक उद्देश्य

(विमला कुमारी हुक्कू, एम० ए०, साहित्यरत्न)

प्रसादजी का सांस्कृतिक चिन्तन बहुत गहरा था, उनकी आत्मा पूर्णरूपेण उसमें रँग चुकी थी, वह उनकी आत्मा की जिज्ञासा बन चुकी थी, वही जिज्ञासा उनके काव्य तथा नाटकों में बह पड़ी है। प्रो० नगेन्द्र प्रसादजी के नाटकों का विवेचन करते हुए लिखते हैं "शान्त गम्भीर सागर जो अपनी आकुल तरङ्गों को दबा कर धूप में मुस्करा उठा है या फिर गहन आकाश जो झंझा और विद्युत को हृदय में समाकर चाँदनी की हँसी हँस रहा है—ऐसा ही कुछ प्रसादजी का व्यक्तित्व था।" कलाकार प्रसाद की इन 'आकुल तरङ्गों' तथा 'चाँदनी की हँसी' ही समझने के पश्चात् उनके सांस्कृतिक उद्देश्य की व्याख्या पूर्णरूप से की जा सकती है, जो प्रतिभा 'सजन' से आरम्भ होकर 'ध्रुवस्वामिनी' के गौरव की सीमा तक पहुँच सकी है। मध्यकालीन कृतियों का सूक्ष्म निरीक्षण, जो हमारे इतिहास का एक स्वर्ण युग रहा, जिसकी प्रत्येक वस्तु पर हम गर्व कर सकते हैं, जहाँ हमारा सम्पूर्ण दर्शन एक साथ सन्निहित है। प्रसादजी ने बौद्ध दर्शन तथा इतिहास का विस्तृत अध्ययन किया था, देश की उस परिस्थिति ने जब भगवान् बुद्ध को जन्म दिया, जिसके द्वारा करुणा का सागर उद्वेलित हो उठा, अपने मूल में मानव की एक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया थी—संसार जानता है कि भगवान् बुद्ध की करुणा रोगी, वृद्ध और मृतक को देख सजग हो उठी थी। यह एक प्रत्यक्ष सत्य है, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। संसार के प्राणीमात्र सुख चाहते हैं, अमर होना चाहते हैं, अपने मनोवांछित फल की प्राप्ति करना चाहते हैं, उसी भावना की पूर्ति के लिए अपनी कल्पना को उड़ान में उड़ा करते हैं—स्वर्ग की कल्पना तथा अनेक सामाजिक और राजनैतिक बन्धन उसी का एकमात्र प्रमाण है। परन्तु मानव ने एक दृष्टि अपने पीछे डाली, वह कहाँ तक पहुँच गया है, उस स्थान पर उसे अपने चारों ओर छल, प्रवंचना, कपट और घृणा दिखाई दिए। अपने पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन यहाँ तक अपने राजनैतिक जीवन में उसे वही रूप दिखाई दिया, जिसके परिणाम स्वरूप उसके चारों ओर एक विषाद, एक उदासीनता, एक ग्लानि छा गई। मानव की यह भावनाएँ जो उसे अपनी जीवन, समाज और राज्य में दिखाई पड़ी थीं, भगवान् बुद्ध की करुणा के रूप में प्रस्फुटित हो उठी। प्रसाद जिस काल में अवतरित हुए उसकी विभीषिकाओं को उन्होंने सहा था, पारिवारिक परिस्थितियों के कारण वह उनके प्राणों की जिज्ञासा बन बैठा, उनकी आत्मा को रह-रह कर विलोड़ित करने लगा। उनके दार्शनिक और कवि दोनों चिन्तक बन उठे। इसी मूल आधार का दिग्दर्शन भगवान् बुद्ध की करुणा के साथ उनके नाटकों में एक धारा के रूप में बह उठा।

प्रसादजी की दूसरी धारा शैव धर्म के शिवत्व की है, वे मूल रूप में कवि थे—आनन्द उनका इष्ट था। वे शिव के उपासक थे। शिव का शिवत्व इसी में है कि देवताओं के विष को वे पचा सके। नन्ददुलारे वाजपेयी ने एक स्थान पर प्रसादजी की जीवन झाँकी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रेमचन्दजी के मृत्यु के अवसर पर वे प्रसादजी के 'बनारसी रङ्ग' को बहुत समय पश्चात् समझ सके। यह बनारसी रंग उसी सानन्द नद की देन है जो उन्हें पुरातन की ओर, कल्पना की ओर ले जा सका और रोमाण्टिक बना सका है। यह चेतना उनके नाटकों में सदैव सजग रही किन्तु उसी के कारण उनकी करुणा अवसाद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणति नहीं हो सकी। उनके पात्रों को जीवन से निराश नहीं कर सकी। प्रो० शिलीमुख के शब्दों में 'प्रसाद की सुखान्त भावना प्रायः नैराश्यपूर्ण शान्ति होती है' वहाँ सुख दुख एक साथ बुना हुआ प्रतीत होता है। उनके नाटक प्रायः सुखान्त हैं। किन्तु उनके पढ़ने के पश्चात् क्या शान्ति अनुभव होती है? इसका मूल कारण उसमें छिपी हुई करुणा की प्रेरणा है, जो रह-रह कर उनके पात्रों में एक जिज्ञासा उत्पन्न कर देती है। सुख आता है, शृङ्गार के मधुवेष्ठित चित्र भी सजग हो उठते हैं किन्तु फिर, फिर वही करुणा पात्रों को घेर लेती है। ऐसा प्रतीत होता है मानों सुख-दुख एक दूसरे को छोड़ना ही नहीं चाहते, यह भावना बौद्ध और वैदिक दर्शन के मनन का परिणाम है। स्कन्दगुप्त में धातुसेन कहता है 'अहंकार मूलक आत्मवाद का खण्डन करके गोतम ने निशात्मवाद को नष्ट नहीं किया। यदि वैसा करते तो इतनी करुणा की क्या आवश्यकता थी? उपनिषदों के नेति-नेति से ही गौतम का आनन्दवाद पूर्ण है' यह समन्वय नाटकों का मुख्य सन्देश रहा, काव्य में सदैव सजग रहा और कामायनी में मानव इतिहास का एक पौराणिक आख्यान लेकर अपनी सीमा को पहुँच गया।

प्रसादजी हमारी भारतीय संस्कृति के सबसे बड़े दृष्टा थे, उस पर उनकी बहुत आस्था थी, उनका मनन भी बहुत विस्तृत था उसका आधार पुरातत्व ज्ञान, पाणिनी-व्याकरण, पतञ्जलि योग, कौटिल्य का अर्थ शास्त्र, राजतरङ्गिणी, पुराण, प्राचीन काव्य-ग्रन्थ तथा प्राचीन शिला लेख थे। इन आधारों पर ही वे हमारे इतिहास में 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि पात्रों में महत्त्वपूर्ण खोज उपस्थित कर सके। इन इतिहास के पृष्ठों के साथ-साथ उनका दर्शन भी चलता गया, प्रत्येक काल का नाटक अपने साथ अपनी दार्शनिक भावनाएँ लाता है। प्रसादजी की नाटकीय प्रतिभा 'सज्जन' से आरम्भ हो उठी—'सज्जन,' 'कल्याणी-परिणय,' 'करुणालय' तथा 'प्रायश्चित्त' उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ हैं, 'राज्यश्री' के 'पश्चात् 'ध्रुवस्वामिनी' तक की उनकी कृतियों में उनके उद्देश्य पूर्ण रूप से स्फुटित हो उठे हैं। जिन आधारों पर भगवान बुद्ध की करुणा उदित हुई है उसी को लेकर 'अजातशत्रु' में 'बाजिरा' कहती है "प्रकृति से विद्रोह करके नए साधनों के लिए कितना प्रयास होता है। अन्धी जनता अँधेरे में दौड़ रही है। इतनी छीना झपटी, इतना स्वार्थ साधन कि सहज प्राप्य अन्तरात्मा के सुख शान्ति को भी खो बैठते हैं। भाई भाई से लड़ रहा है। पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है। स्त्रियाँ पतियों पर प्रेम नहीं किन्तु शासन करना चाहती हैं। मनुष्य-मनुष्य के प्राण लेने के लिए शस्त्र-कला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओं को लेकर कवि कविता करते हैं। बर्बरे रक्त में और भी उष्णता, उत्पन्न करते हैं" बाजिरा के इन शब्दों पर ही प्रायः उनके समस्त नाटकों का द्वन्द्व चलता है। स्कंदगुप्त कह उठता है "इस साम्राज्य का बोझ किसके लिए, हृदय में सुशान्ति, राज्य में अशान्ति परिवार में अशान्ति" मानव जीवन का यही द्वन्द्व प्रसादजी के पात्रों को नियति तथा प्रकृति की ओर प्रेरित करता है। प्रकृति पर ही उसके समस्त कार्य निहित हैं मानव उसका अनुकरण करता है और विश्वास करने लगता है उसने विजय प्राप्त करली। परन्तु कितनी भूल है उसकी? तनिक सा प्रकृति का विद्रोह करते ही—जीवन में विद्रोह उत्पन्न हो उठता है। इसी के साथ-साथ चलती है 'नियति' मानव आज तक उसे छोड़ नहीं पाया है। भले ही वह किसी शक्ति के आस्तित्व को न माने फिर भी भविष्य की डोरी में तो वह बंधा ही रहता है। उस बन्धन को न तो वह तोड़ सकता है और न त्याग ही सका है। अध्ययन तथा मनन के पश्चात् प्रसाद जी जिस आधार पर पहुँचे हैं वह प्रश्न करता है: 'मनुष्य क्या है'? उत्तर में केवल एक वाक्य मिलता है उनके पात्रों में 'प्रकृति का अनुचर और नियति का दास' यह सिद्धान्त अपने भूल में भले ही कोई पुराना बता सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है किन्तु प्रसादजी यहाँ तक हमारे समस्त दर्शनों के अध्ययन के पश्चात् पहुँचे हैं, जो शाश्वत सत्य है। मानव आज के युग तक उससे अपना सम्बन्ध नहीं दूर कर सका है, इस वैज्ञानिक युग में भी वह यद्यपि प्रकृति का अनुचर हो सकता है। किन्तु उसका विरोध क्या सम्बन्ध है! और नियति उसका तो एक ऐसा बन्धन है जिससे बंधा हुआ मानव आज तक भूलता रहा है। प्रसाद के नाटकों के समस्त पात्र प्रायः इसी आधार पर सत्य का अनुसरण करते हैं, चाहे वे वीर हों, नीतिज्ञ हों या कर्मठ ही क्यों न हो? चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त जैसे वीर कर्मठ नेत्र बार बार 'प्रकृति और नियति' का स्मरण कर उठते हैं। कवि की आत्मा में स्वयं यह चेतना भर गई थी, वही यदाकदा उनके पात्रों में प्रस्फुटित हो उठी है। स्कन्दगुप्त जैसा पात्र कह उठता है "चेतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है उसी—खिलवाड़ी वटुपयशायी बालक के हाथों का खिलौना है" मानव क्या नियति के हाथों का कन्दुक नहीं! जिधर फेंकी गई क्या वह उस ओर नहीं उछल जाती? समस्त पात्रों के प्राणों में हम उसी स्पंदन को सुनते हैं। 'चन्दगुप्त' नाटक में चाणक्य, सिंहरण तथा 'चन्द्रगुप्त' स्वयं जैसे 'नियति' शब्द को नहीं भूल सके हैं। चाणक्य भी कह सका है 'नियति सुन्दरी की भौंहों में बल पड़ने लगा है" ध्रुवस्वामिनी का 'चन्द्रगुप्त' भी कहता है 'विधान की स्याही का एक बिन्दु गिरकर भाग्यलिपि पर कालिमा चढ़ा देता है।"

अस्तु 'प्रकृति तथा नियति' को लेकर प्रसादजी की बौद्धकालीन करुणा जाग्रत हो उठी, नाटकों में अनेक सृष्टियाँ इस आधार पर बन पड़ी। जीवन एक खेल था, खेल खेलना ही मानव का उद्देश्य था। चाहे वह रोकर खेले चाहे हँसकर मानव हंसकर खेलना भूल गया, हाहाकार उठ खड़ा हुआ, संसार आतङ्कित हो उठा। उसी पाशवी वृति को शान्त करने के लिए, मानवता के लिए ही मानो राज्य तथा समाज की अवतारणा हुई किन्तु उसका प्रयत्न सफल न हो सका, अनेक नवीन अपराध सृष्टि में होने लगे। 'कामना' नाटक प्रसाद के उसी रूपक को लेकर उपस्थित किया गया है जीवन की यही दयनीयता करुणा को स्फुट करने की प्रेरणा दे सकी है। परन्तु इसके साथ साथ प्रसादजी का चलता है आनन्दवाद, सृष्टि के निर्माण का रहस्य, उसकी मूल प्रेरणा। 'जनमेजय के नागयज्ञ' में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"सत्ता कभी लुप्त भले ही हो जाय, किन्तु उसका नाश नहीं होता। गृह का रूप न रहेगा तो ईंट रहेगी, जिनके मिलने पर गृह बने थे। वह रूप भी परिवर्तित हुआ, तो मिट्टी हुई, राख हुई, परमाणु हुए। उस चेतना के आस्तित्व की सत्ता कही नहीं जाती।" आज के वैज्ञानिक युग की धारणा, उसका आस्तित्व भी इन शब्दों के अन्तर्गत आ सका है परमाणुओं से ही सृष्टि का विकास है, वस्तुओं का नाश नहीं, भले ही उसका रूप परिवर्तित हो जावे। गीता के इस शाश्वत सत्य पर 'चन्द्रगुप्त' में सम्भवतः दण्डयमान भावावेश में आकर कह उठे हैं 'देखते हो कोई किसी की सुनता है। मैं कहता हूँ—सिन्धु के एक बिन्दु-धारा में न बह कर मेरी बात सुनने के लिए ठहर जा। वह सुनता है। ठहरता है" कदापि नहीं। संसार का प्रत्येक व्यापार एक अदृश्य शक्ति से प्रेरित होता रहता है। उस व्यापार में आनन्द की समष्टि है, मानव उसका विरोध कर सुखी नहीं रह सकता, उसी को प्राप्त करना, उसी आनन्द गति में बहना प्रसादजी के पात्रों का शाश्वत सत्य है। 'सिंहरण' के शब्दों में 'अतीत सुखों के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा, फिर चिन्ता किस बात की?" समस्त पात्र इसी के अनुकूल चलना अपना लक्ष्य रखते हैं, अपने पथ से डिग जाना उन्होंने सीखा ही नहीं, कैसी भी परिस्थितियाँ हों, कितने भी संघर्ष उपस्थित रहें, अपने पथ से विमुख होना उनके साथ नहीं चलता। प्रत्येक पात्र को विश्वास है अपनी भुजाओं का। नियति को वे अवश्य मानते हैं उसी के वशीभूत होकर कभी-कभी उनके पात्र कह उठते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे सम्राट न होकर किसी लतिका के वृन्त का पुष्प होते, जहाँ संसार की दृष्टि उन पर न पड़ने पाती, सौरभ बिखेरने के पश्चात् अपने थाले में चू पड़ते। उनका संसार में आस्तित्व क्या? एक मात्र उनको लेकर चलने वाले द्वन्द से वे व्यथित हो उठते हैं, परन्तु अपने कर्तव्यों से च्युत नहीं हो सकते। प्रसादजी नारी पात्रों की अधिक सुन्दर सृष्टि कर सके हैं, वे प्रत्येक स्तर पर पुरुष वर्ग को उत्तेजित कर सकी हैं। चन्द्रगुप्त में 'मलका' एक शक्ति के रूप में अवतरित हुई है। स्कन्दगुप्त में कमला कह सकी है "कौन कहता है तुम अकेले हो। समग्र संसार तुम्हारे साथ है। स्वानुभूति को जाग्रत करो। यदि भविष्यत से डरते हो कि तुम्हारा पतन ही समीप है तो तुम उस अनिवार्य स्रोत से लड़ जाओ। तुम्हारे प्रचण्ड और विश्वास पूर्ण पदाघात से विन्ध्य के समान कोई शैल उठ खड़ा होगा, जो उस विघ्न स्रोत को लौटा देगा। राम और कृष्ण के समान क्या तुम अवतार नहीं हो सकते। समझ लो, जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझ कर करता है, वही ईश्वर का अवतार है। उठो स्कन्द! आसुरी वृत्तियों का नाश करो, सोने वालों को जगाओ, और रोने वालों को हँसाओ" यही सौजन्य तथा शान्ति का साम्राज्य 'अजातशत्रु नाटक' के अन्तरङ्ग संघर्ष और कटु आक्षेपों को सह कर भी 'वासवी' तथा 'मल्लिका' विखेर सकी है; पुरुष पात्रों को उस ओर लगा सकी हैं।

कर्तव्य परायणता का एक प्रमुख कारण है, लेखक का इष्ट आनन्द है, संसार का हाहाकार, पाशविक वृत्तियाँ उसे विचलित नहीं कर सकतीं, उसे शान्त करना, उसका नाश करना ही सृष्टि का रहस्य है, और उसी को प्राप्त करना उनके पात्रों के जीवन का सत्य है। स्कन्दगुप्त के शब्दों में 'ऐसा जीवन ही विडम्बना है, जिसके लिए रात दिन लड़ना पड़े। आकाश में जब शीतल शुभ्र शरद-शशि का विकास हो तब भी दाँत पर दाँत रखे, मुट्ठियों को बाँधे हुए, लाल आखों से एक दूसरे को घूरा करें। बसन्त के मनोहर प्रभात में निभृत कगारों में चुपचाप बहने वाली सरिताओं का स्रोत गरम रक्त बहाकर लाल कर दिया जाय। नहीं, नहीं चक्र। मेरी समझ में मानव जीवन का यही उद्देश्य नही है। संसार मे दिखाई देती वर्वरता के पीछे एक निगूढ़ रहस्य है, उसी को खोज निकालना उस स्तर तक पहुँच जाना ही मानव जीवन का सत्य है। इसी पृथ्वीतल को स्वर्ग में परिणित करना होगा "इस संसार का कोई उद्देश्य है। इस पृथ्वी को स्वर्ग होना है, इसी पर देवताओं का निवास होगा। विश्व नियन्ता का ऐसा ही उद्देश्य मुझे विदित होता है" स्कन्दगुप्त के इन शब्दों में प्रसादजी के पात्रों का सार छिपा हुआ है। जीवन के संघर्ष वे हँस हँसकर झेल सकते हैं, क्योंकि जहाँ उनको जाना है वह आनन्दमय है, स्वर्ग है, उसको प्राप्त करना जीवन को साहस से भर सका है। 'अजातशत्रु' में भगवान बुद्ध की शीतल वाणी यहाँ उत्तेजना देती है "विश्व के कल्याण में अग्रसर हो असंख्य दुखी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है, इस दुख समुद्र में कूद पड़ो। यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुमने हँसा दिया तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होंगे—विश्व मैत्री हो जायगी, विश्व भर अपना कुटुम्ब दिखाई पड़ेगा।

भगवान बुद्ध की शीतल वाणी ही प्रसादजी की उस जिज्ञासा को सजग कर सकी, जो उनकी करुणा में रँग कर संसार के शाश्वत सत्व को प्राप्त करने का अधिकारी है। उनके पात्र अपने चारों ओर संघर्षों को देखते हैं, करुणा जाग्रत होती है, उसकी पूर्ति, उसका निष्कर्ष निकलता है 'आनंद'। नियति की डोरी में झूलते हुए उनके पात्र सहसा संसार-सागर में कूद पड़ते हैं, एक दृढ़ विश्वास अपनी आत्मा में रखते हैं और उसी के सहारे आनन्द की खोज निकालने में सफल हो सकते हैं। प्रसादजी के नाटकों का उद्देश्य सांस्कृतिक आधार पर अवलम्बित शांश्वत सत्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गरुड़ध्वज' के नायक की समस्या

[चन्द्रमाप्रसाद खरे, डी० ए० वी० कालेज, उरई]

"प्रसादजी" के पश्चात् पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र में हमें 'एक तीव्र बलवती विचारधारा, एक वेदना मिश्रित तिलमिलाहट, समाज और परिस्थितियों के प्रति एक मार्मिक किन्तु गम्भीर व्यंग मिलता है।' मिश्रजी के नाटकों में तत्कालीन परिस्थितियों एवं 'पात्रों का चित्रण जितना सरल है उतना कठिन भी है। इनके पात्रों का चित्रण समझने के लिए परिष्कृत एवं निष्पक्ष मस्तिष्क की आवश्यकता है। नाटक देखते ही किसी विशेष पात्र से प्रभावित होकर एक दम नायक कह देना कभी उचित नहीं। इसके लिए हृदय का निष्कपट और सब के लिए सहानुभूति एवं समवेदना पूर्ण होना आवश्यक है। बिना विषय पर अधिक विचार किए हुए ही सेनापति विक्रममित्र को नाटक का नायक मान लेना कभी भी उचित नहीं। इस पर हम संक्षेप में विवेकपूर्ण दृष्टि से विचार करेंगे।

यह नहीं कहा जा सकता कि नाटक का कुछ उद्देश्य ही नहीं है। उसका उद्देश्य अवश्य है परन्तु इस दिशा में विद्वानों के विचार भिन्न हैं। यद्यपि नाटक की सम्पूर्ण घटनाओं को सरसरी दृष्टि से देखने से प्रतीत होता है कि उसका उद्देश्य कुमार विषमशील का राज्याभिषेक है परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि नाटक के नायक कुमार विषमशील हैं। 'हिन्दू संस्कृति के संस्थापक महाराज विक्रमादित्य और उनके अमर कवि कालिदास के सम्बन्ध की अनेक घटनाओं पर नवीन दृष्टिकोण से प्रकाश डालना ही मिश्रजी के इस नाटक का उद्देश्य प्रतीत होता है।' मिश्रजी ने स्वयं न चाहते हुए भी नाटक के उद्देश्य की कुछ झलक भूमिका में दे ही दी है। आपने महाकवि कालिदास का सम्बन्ध शुंग सेनापति विक्रममित्र और शकारि विक्रममित्र और शकारि विक्रमादित्य दोनों से माना है। "मेरी कल्पना का यह आग्रह सम्भव है किसी दिन इतिहास के विद्वानों को भी स्वीकार हो''' हमारी संस्कृति से यदि कालिदास और विक्रमादित्य निकाल दिए जाँय तो वह निस्संदेह श्री और शक्ति हीन हो जायगी''''' इसके अतिरिक्त "इस नाटक का मूल प्रेरणा वही श्री और शक्ति है' मिश्रजी के इत्यादि वाक्य नाटक के उद्देश्य के द्योतक हैं। अतः विक्रममित्र नहीं वरन् उनके सारे सद्गुणों की प्रतिमा, कुमार विषमशील नहीं; वरन् वह महापुरुष जिसके सम्पर्क से वे समशील हो जाते हैं, इस नाटक का सर्वस्व है और वे हैं हमारे अमर कवि कालिदास।

कवि महान है। कोई भी आपसे बिना प्रभावित रह ही नहीं सकता। सेनापति विक्रममित्र को आपकी दर्शन-मात्र से हो जाता है—जैसा कि वे हलोदर से कहते हैं—

"मुझे तो विश्वास हो गया कि यह कोई भावी महापुरुष '' बाल्मीकि या पतञ्जलि का उत्तराधिकारी'''' उसके ललाट पर गम्भीर चिंतन की आभा खेल रही थी। मन्त्र-मुग्ध की भाँति मैं उसके निकट खिंच गया।" वे उसके भीतर वह दैवी अंश बतलाते हैं जिसने उसे कालिदास बना दिया। फिर जिसके काव्य में इतनी शक्ति है कि "विक्रममित्र की आँखें जिसको सुनकर कभी चमक जाती हैं, कभी मुँद जाती हैं''''" उनका "शरीर रोमाञ्च से गद्गद् हो उठता है''''" और जो मान्धाता से कहला देता है कि "मनुष्य-योनि में जन्म लेने का यही पुण्य है—शास्त्र हीन पुरुष भी क्या पुरुष है?" उसकी महानता पर किसको संदेह हो सकता है। सेनापति विक्रममित्र से, "इस व्यापक प्रकृति में जो कुछ प्रेय है सब मेरुरुद्र में है, नहीं तो क्या यह भी सम्भव होता कि आज प्रातःकाल जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क बनते वे कल ही पाँच योजन तक फैल जाते....''
अतिरिक्त एक कवि और नाटककार कुछ भी
कहला सकता। वासंती तो उन्हें "अक्षय कीर्ति
और प्रेम" का उपासक मानती है। कुमार
शील तो सदैव उनके ओज से प्रकाशित रहते हैं।
र्ष कालिदास से कहते हैं—"तुम्हारे काव्य के
तुम्हारी वाणी के ओज के लिए मैं छत्रपों का
त करूँगा....'' आपही के कारण विषमशील में
विषम न होकर सम हो जाता है।

विपक्षी भी आपसे बिना प्रभावित हुए नहीं रह
ते। आदेश मिलने पर आप तुरन्त ही वासुदेव के
काशी पर आक्रमण करने को चल पड़ते हैं और
नकों को एक योजन पीछे छोड़कर केवल एक
क पुष्कर के साथ निर्भय काशिराज के भवन में
जाते हैं। 'देश के गौरव और उसकी रक्षा का
चित्र उन्होंने वहाँ खींच दिया कि बड़े बड़े मन्त्री
बौद्ध तार्किक उनका मुँह देखते रह गए''
कहकर सेनापति विक्रममित्र हलोदर से कहते हैं
"आत्म-बल कभी-कभी सेनाओं पर क्या हिंस्र जीवों
भी विजय पा जाता है—अपनी पुत्री के प्रेम में
काशिराज उनके साथ आ रहे हैं। देवभूति भी उस
भाव से न बच सके वह भी उनके साथ हैं और
कन्या कौमुदी भी...।'' काशिराज का मन उनकी
इस प्रकार झुक जाता है कि उनके "मन की
दशा किसी भी दूसरे विचार को आने नहीं
....'' वे सेनापति विक्रममित्र से भी कहते हैं—
जिस दिन वे मेरे भवन में गए थे घोर उत्तेजना की
मेरे परिषद् और संवस्थिवर कर रहे थे....किंतु
मात्र भी उत्तेजना उनके भीतर न आई....तर्क
विवाद से जो इस प्रकार बच जाय....'' इसी
बल पर प्रसन्न होकर वे अपनी कन्या वासंती को
कर देते हैं। सेनापति विक्रममित्र, कुमार
शील, हलोदर, काशिराज, देवभूति आदि पर
नहीं, वरन् कर कालकाचार्य पर भी आपका
बिना पड़े न रहा। इसी कारण वह स्वयं आपसे
कहता है—"युद्ध के समय तुम्हारी आकृति से जो
विश्वास, जो निष्ठा निकल रही थी उसमें मेरी सारी
कालिमा जल कर स्वाहा हो गई....।'' ऐसा व्यापक
प्रभाव नाटक के अन्य किसी पात्र का नहीं है। कुमार
विषमशील का प्रभाव विषम ही प्रतीत होता है।
सेनापति विक्रममित्र का आतंक का शासन है।
उनके सामने कुछ भी कह देना अत्यन्त कठिन है!
वे दण्ड पर विश्वास करते हैं इसी कारण प्रहरी के
उच्चारण मात्र की अशुद्धि से दण्ड देने को प्रस्तुत हो
जाते हैं। वासंती भी आपसे भय खाती है और मल-
यवती के बुलाने पर कहने लगती है—"हे ईश्वर!
मुझ पर अभी कुछ और कृपा करेंगे क्या?'' वे जबर-
दस्ती कह कह कर महादेवी से कालक का तथा
देवभूति का विषमशील से न्याय करवाते हैं इससे न
तो उनका नाटक के पात्रों पर इतना प्रभाव रह जाता
है और न हम पर, जितना कालिदास का पड़ता है।

शील में भी महाकवि कालिदास नाटक के सब
पात्रों से ऊपर उठ जाते हैं। जब वासंती उन्हें "अक्षय
कीर्ति सिद्धि और प्रेम का उपासक" ही नहीं देवता
मानती है तो वे कहने लगते हैं—'देवत्व का अहं-
कार सबके लिए शुभ भी नहीं है मैं तो अब देवता
को मनुष्य बना रहा हूँ, मनुष्य से बढ़कर देवता होता
भी नहीं....।'' जिस समय वासंती अपने पिता काशि-
राज को सकुशल बिना रक्तपात के लाने का उपकार
जीवन भर न भूलने को कहती है तो वे शील युक्त शब्दों
में उत्तर देते हैं—"उपकार नहीं सेवा....सेवक उपकार
के दम्भ में....भला क्या....'' जब विषमशील कहते
हैं कि अवन्ती का गौरव कवि की वाणी से निकले तो
आप "मेरी यह कामना है कि मैं उसी गौरव में
उसी तरह लीन हो जाऊँ कि मेरा कुछ न रहे" यह
कह कर शीलस्वरूप सेनापति विक्रमादित्य से भी बढ़
जाते हैं। विक्रममित्रजी सोचते हैं कि 'देश के गौरव
सुख और शान्ति की रक्षा' उनका 'धर्म' है। उन्हें
'इसी में निर्वाण मिल जायगा' पर महाकवि स्वयं
कुछ नहीं चाहते और उसी में लीन होना चाहते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, यही है उनकी महानता।

वे 'धरती का राज्य' न चाहकर हंसवाहिनी सरस्वती की वीणा का स्वर सुनना चाहते हैं। कवि के कवि होने का इससे अधिक क्या प्रमाण? परन्तु हम आपको केवल भावनाओं में डूब मरने वाला कवि नहीं पाते वरन् आप समय आ पड़ने पर युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। यही है एक आदर्श कवि।

यद्यपि भीष्म के समान पूर्ण ब्रह्मचारी विक्रममित्र का चरित्र भी कुछ कम ऊँचा नहीं, परन्तु वह हमें इतना प्रभावित नहीं करता जितना कि महाकवि कालिदास का। कोई भी कुमारी जब उनके सामने आती है तो वे उससे उसी तरह भय खाते हैं जैसे वह स्वयं पार्वती हो। वे वासन्ती की पवित्रता में शंका नहीं करते और अपने में वासन्ती की अपेक्षा हीनता का अनुभव करते हैं। कामिनी से जो कुछ भी मिल सकता है उससे बहुत अधिक उन्हें अपने काव्य में मिल जाता है, यही वे कुमार विषमशील से कहते हैं—"उस बेचारी के लिए इस मन में कहाँ जगह मिलेगी जिसमें पार्वती आ चुकी है। मैंने उस अभाव को पूरा कर लिया है। मैंने उस अभाव को पूरा कर लिया है शंकर पार्वती के प्रेम में···" कुमारी वासन्ती के निकट रहने का उन्हें केवल उस समय मन होता था जब आचार्य उन्हें उनके पास किसी न किसी प्रयोजन से भेजा करते थे। उसका मन तो उस समय पंख लगा स्वर्ग पर चढ़ कर कहीं का कहीं चला जाता था। किन्तु अब यह जानकर कि वासन्ती उनकी पत्नी होगी वे काँपने लगते हैं। यही है सात्विकता का उत्कृष्ट प्रमाण। परन्तु अन्त में कवि पुष्प बन्धन में बँध जाता है और अमर कर जाता है अपनी मधुर स्मृति।

नाटक के प्रारम्भ से ही विक्रममित्रजी पूर्ण देवता के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनका त्याग, न्याय, कठोरता और दृढ़ता सब गुण उनको कट्टरता प्रदर्शित करते हैं। अतः आरम्भ से ही हमें उनका आतङ्कपूर्ण दर्शन होता है। इसी कारण वे अक्षम्य हैं। उनकी थोड़ी सी भी गलती को हम क्षमा नहीं कर सकते। हलोदर और आपकी बातों से कुछ अधिक महत्वपूर्ण ग्रहण नहीं किया जा सकता। उसमें भी हम अनेकों विरोधी भावों का सम्मिश्रण पाते हैं। वे हलोधर से कहते हैं कि "पुत्र की शक्ति कैसी होती है, उसका आकर्षण कितना प्रबल होता है···इसका अनुभव मुझे तो हुआ भी नहीं···" इसी के साथ-साथ वे यह भी कहते हैं कि "किन्तु प्रकृति का यह अभाव ऐसा नहीं जो सरलता से छूट जाय···इस देश का कोई भी बालक उन दिनों मुझे पुत्र की तरह अपनी ओर खींचता था····।" और भी दूसरे अंक के प्रारम्भ में ही एक राजदूत के प्रवेश के साथ ही वे कह उठते हैं, "राजदूत की मर्यादा के भाव से मैंने उस संकेत पर तुम्हें यहाँ आने दिया। नहीं तो सर्प की फूत्कार भी मुझे आकर्षित नहीं करती···" इसी के पश्चात् मलयवती के प्रवेश करने पर आप कहने लगते हैं—"क्या हो गया तुम्हारे आ जाने में? मैं कहीं भी कुछ नहीं छिपाता। मेरे साथ जो कुछ लगा है, संसार के लिए खुला है···।" इसी प्रकार स्वयं उपदेश दे दे कर कालक का न्याय महादेवी से और देवभूति का न्याय कुमार विषमशील से करवाते हैं। ये सब बातें हमको खटकने वाली हैं। परन्तु कालिदास कभी भी देवत्व का अहंकार करना ठीक नहीं समझते। वे एक साधारण मनुष्य की भाँति हमारे सम्मुख आते हैं, (देवता मनुष्य से बढ़कर होता भी नहीं) साधारण मनुष्यों के समान गलतियाँ भी करते हैं, पर हम उनको अपना ही समझ कर क्षमा कर देते हैं और उनकी कोमलता तथा मधुरता के साथ स्वयं भी मधुरता का अनुभव करने लगते हैं। अपने चरित्र की विकसनशीलता के कारण वे हमारे हृदयों में अमर हो जाते हैं।

हमारे नायक कवि कालिदास के चरित्र में सजीवता है। उनमें जीवन, यौवन, छटपटाहट है तथा विचारधारा बड़ी तीव्रता से दौड़ती है। इसी कारण वे शीघ्र ही हमारे हो जाते हैं किन्तु विक्रममित्रजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंतजी के काव्य में लोक-मंगल की भावना

कवि पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। विशेष उर की परिस्थितियों में मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति भावों को साथ ले, शब्दों में निकल पड़ती है। तत्व में परिस्थितियों का मानव मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कुर्माचल प्रदेश में प्रकृति का निरीक्षण करते-करते अनेक वर्ष बीते, उसी ने कवि को प्रकृति का अनन्य पुजारी बना दिया। इनके ही शब्दों में 'कविता करने की प्रेरणा सबसे पहले प्रकृति के निरीक्षण से मिली है।' इस प्राकृतिक सौन्दर्य के पुजारी ने कई काव्यग्रन्थ सौन्दर्य की प्रशंसा में दिये हैं। वीणा, ग्रन्थि, गुञ्जन, पल्लव, युगधारा, ग्राम्या, स्वर्णधूलि इत्यादि इसके नमूने हैं। वीणा, गुञ्जन और पल्लव में प्रकृति निरीक्षण विशेष रूप से पाया जाता है। प्रकृति में भी जीवन देखा। लहरें भी अपने ही सुख से चिर चंचल' हो 'खिल खिल पड़ती प्रतिपल।' प्रकृति के नित्य व्यापार में भी जीवन और जीवन का उद्देश्य निहित है। इस प्रकार छाया-वादी कवि प्रकृति का अनन्य भक्त हुआ, उससे नाता तोड़ना भी कठिन मालूम होता है। मोह छूटना भी कठिन है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से की माया।
बाले! तेरे बाल-जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन?

प्रकृति का यह अनन्य प्रेम वीणा, गुञ्जन, पल्लव इत्यादि की कविताओं में छलक पड़ा। 'ज्योत्स्ना' 'नौका विहार' 'बादल' 'उच्छ्वास' 'पर्वत प्रदेश में पावस इत्यादि उसके उदाहरण हैं। यहाँ तक कि साधारण सी मानव-सुलभ प्रकृति के वर्णन के लिए भी कवि 'भावी पत्नी के प्रति' में प्रकृति का ही सहारा ले अपने विचार को प्रकट करता है—

इस जीवन की चंचल सरिता में
फेंकी मैंने मन की जाली,
उसमें फँस गई मनोहर भावों की,
मछलियाँ, सुघर भोली भाली।

इसे हम मुग्धता का भी वर्णन कह सकते हैं या भावनाओं का आदान-प्रदान भी। परन्तु प्रकृति से सम्बन्ध अवश्य निभाया गया है। इस प्रकार प्रकृति के प्रति अन्यान्य प्रेम इनकी कई कविताओं में बना रहा।

अथवा अन्य किसी पात्र में यह विशेषता नहीं है। विक्रममित्रजी प्रारम्भ से आदर्श-आदर्श चिल्लाते हैं और अन्त तक उसी में विलीन हो जाते हैं और उनके आदर्श रूप रह जाते हैं सायं की अरुणिमा स्वरूप महाकवि कालिदास, जिनकी मधुरता का रसास्वादन कर हम फिर उन्हें हृदय से निकालना नहीं चाहते। हमारे सामने वीरता का, सरसता का, आत्मबल का, शीलता का तथा उच्च चरित्र का आदर्श रखते हैं और विक्रमजी से कहीं सुन्दर रूप में।

विक्रममित्र का विक्रमत्व कालिदास में ही है। प्रभातकालीन अरुणिमा उतनी सुन्दर प्रतीत नहीं होती जितना सुन्दर उसका प्रतिबिम्ब जल में प्रतीत होता है, इसी प्रकार महाकवि कालिदास विक्रममित्रजी के सारे सद्गुणों के प्रतिबिम्ब ही हैं। कठोर तप और नियन्त्रण के प्रखर आतप से उत्तप्त विक्रममित्र का देवत्व कालिदास में प्रेम और माधुर्य की शीतल चन्द्रिका से विलसित मनुष्यत्व के रूप में प्रतिफलित हुआ है। विक्रम के विक्रमत्व से तथा कालिदास के ओज से ही विषमशील विक्रमादित्य हो जाते हैं। अतः इस प्रकार विषम को भी सम करने वाले कालिदास नाटक के आदित्य ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु यह तो उनकी अन्तर्मुखी प्रतिभा के कारण है, इसमें केवल आत्मतत्व (Subjectivity) ही है। इसमें सत्य है, आनन्द की भी भावना है, परन्तु शिव की भावना की कमी है। कविता को त्रिगुणात्मक प्रवृत्ति से पूर्ण होना चाहिये। उसमें सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की भावना का निरूपण अवश्यमेव होना चाहिये। नहीं तो कविता या तो व्यक्तिगत (Subjective) हो जायगी या सामयिक होकर उसमें जीवन-दान की शक्ति न रहेगी। कविता का लोकरञ्जनकारी एवं लोकमंगलकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। यह निश्चित है कि कवि दृश्य जगत का निरीक्षण कर, अन्तर्दर्शन एवं आत्मपरीक्षण कर, कल्पना का पुट दे। कवि भावनाओं को शब्दों का शरीर प्रदान कर देता है। परन्तु दृश्यजगत् में जितना प्रकृति का स्थान है, उतना ही समाज और सामाजिक समस्याओं का भी है। केवल प्रकृति का ही वर्णन करते जाने और प्रतिक्षण परिवर्तनशील जीवन की अवहेलना कर देने से तो काव्य केवल उन्हीं लोगों के लिये हो जायगा जो आराम से अपना समय बिता रहे हैं। जन साधारण की वस्तु न रहेगा, क्योंकि टटोलने पर भी जनसाधारण की समस्याओं का उसमें निरूपण न होगा।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। सामाजिक व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति होना मानव स्वभाव है। समाज के सुख दुःखों में कवि का हाथ बँटाना परम आवश्यक हो जाता है। कवि अपने आप ही अपने काव्य में इस ओर बह जाता है। इसके लिये उसे कहना नहीं पड़ता, क्योंकि वह अधिक समय तक अपनी परिस्थितियों से आँखें नहीं मूँद सकता। और फिर मनुष्य और मानवीय समस्याएँ भी सभी समस्याओं के ऊपर हैं। जिस प्रकार कि महाभारत का वाक्य है "न मानुषात् श्रेष्ठतरंहि किंचिन्' या जैसा कि चण्डीदास का कथन है—

"शबार ऊपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाइ"

समाज में प्रत्येक को एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति अवश्य होती है और वही सामाजिकता का चिन्ह है। समाज में रहते कई समस्याएँ भी पैदा हो जाती हैं। कठिन समस्याओं को सुलझा कर मानव हित की ओर बढ़ना मानवता का चिह्न है। इसीलिये—

आओ, लोक समस्याओं पर,
मिलकर करें विवेचन।

आखिर कवि प्रकृति की एकान्त साधना से विरक्त कर न चाहते हुए भी—

तज कर तरल तरंगों को,
इन्द्रधनुष के रंगों को।

अपने समाज, ग्राम, ग्रामवासी, उनके सुख-दुख, सामाजिक उत्थान व शोषण इत्यादि की ओर मुड़ा और अब तो धूल से भरे किसान और मजदूर की कुरूपता में भी सौन्दर्य दर्शन होने लगे—

आज असुन्दर लगते सुन्दर,
प्रिय पीड़ित शोषित जन।
जीवन के दैन्यों से जर्जर,
मानव-मुख हरता मन।

प्रकृति ने रागात्मिका प्रवृत्ति को भावना विभोर किया, परन्तु वह आत्मीय तत्व (Subjective) था। जिससे समाज का उत्थान नहीं निहित था। समाज सुख और ऐश्वर्य में उन कविताओं का आनन्द ले सकता था। परन्तु अब जर्जर मानव भी भावना का केन्द्र हुआ। शोषित जनता की दुख की पुकार कवि के कानों तक पहुँची और कवि उन्हीं के गीत गाने लगा। कवि ने उसे भी अपनी वाणी प्रदान की। परन्तु इस ओर वह जननायक और जनप्रतिनिधि बना, वह जन-गायक हुआ। आखिर समाज का उत्थान भी तो इन्हीं सरस्वती के लाड़लों पर निर्भर है। पहले तो कवि यह चाहता था कि जीवन में सुख दुख यदि समानता से बँट जावें तो कोई भी दुखी न रहेगा, क्योंकि दुख के बाद सुख हमेशा आनन्ददायक रहता है, परन्तु निरन्तर दैन्यता में रहने से तो जीवन ही भार हो जायगा, और निरन्तर सुख से आदमी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीर्ण तो होगा ही, परन्तु वह पशुता में आकर शैतान भी बन सकता है। इसीलिये इन्हें इष्ट था—

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख है उत्पीड़न।
दुख सुख की निशा दिवा में,
सोता जगता जग-जीवन॥

कवि चाहता अवश्य है कि मनुष्य इस प्रकार सुखी होकर रहे। परन्तु हममें ही से कुछ लोग शोषक का रूप धर कर शोषितों के निरन्तर दुख का कारण बन जाते हैं। इसलिये—

आओ सोचें द्विपद-जीव,
कैसे बन सकता मानव।
शक्तिमत्त होकर भूदेव न,
बन जाये भू दानव॥

स्वार्थ लिप्सा बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ जाती है कि अपनेपन का भी ध्यान नहीं रहता। परन्तु समाज में भूदेव ही स्वार्थलिप्सा के कारण भू-दानव बन गये, और समाज की रचना ही इस प्रकार की बन चली, जिसमें दो वर्ग हो गये—एक शोषक और दूसरे शोषित। ऐसी अवस्था में क्या तो मनुष्यता और क्या मनुष्यों के निवासस्थान, मकान, गाँव, शहर सभी नरक के समान दिखाई देने लगे—

यह तो मानव लोक नहीं रे,
यह है नरक अपरिचित।

इस स्वार्थमय और द्विवर्गीय (शोषक और शोषित) संसार में मानवीय गुण भी पाप होगये। यदि हम सभ्यता के भरोसे और मानवता पर विश्वास रख कर शान्ति रखे रहें तब तो जीवन में दुख ही दुख बना रहता है, आज तो 'दिनकर' के वाक्य में—

"स्वत्व मिलें न माँगने पर,
और संघात पाप हो जावें।"

हमारे मानवोचित अधिकार भी हमें नहीं मिलते। जीवन दूभर हो जाता है। इसलिये इस छलमय संसार में मानवोचित गुणों की कवि अवहेलना करना चाहता है, और चाहता है संघर्ष, जिसके बिना उद्धार नहीं हो सकता। विनम्रता, सौजन्य, आदर्शवादी जीवन, उदारता दया, इत्यादि मानव गुण हैं, जिनका प्रत्येक व्यक्ति में होना वांछनीय है। परन्तु कवि कहता है कि मनुष्य के इन्हीं गुणों ने धोखा देकर, उसे दुख में डाल दिया है।

तुम विनम्र बन, भीरु हो गये, कायर,
जीवन प्रांगण में।
× × ×
यह, सौजन्य नहीं रे दुर्बल,
आत्मवञ्चना, यह मन का छल।
× × ×
तुम उदार बन, व्यथ लुट गये, पामर,
स्वार्थ के रण में।
× × ×
तुम दयार्द्र बन, हुए कलंकित सुन्दर,
पर दुख अञ्जन में।

इसलिए इन मानवोचित गुणों में विश्वास तज, हमें विद्रोह की तय्यारी कर लेना चाहिये, क्योंकि ये सब गुण गुलामी या शोषितावस्था के निशान हैं, जिस प्रकार कि रूस के भाग्य विधाता कहा करते थे। "Charity is the heritage of slavery" हमें संघर्ष की तय्यारी करना चाहिए। परन्तु साथ में हमारी स्वार्थ बुद्धि का अवश्य त्याग कर देना चाहिए,

"विद्रोही बन, करो कलुष से संगर,"
निर्लिप्त स्वमन में।

यह विद्रोह राजनीतिक और आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिये होना चाहिये। शस्य श्यामला कहलाने वाली भारत भूमि पर कठिन परिश्रम करने वाला,

"अन्न वस्त्र पीड़ित, असभ्य,
निर्बुद्धि, पंक में पालित"

ग्रामवासी के लिए और क्या सहना बाकी रहा? इसीलिये 'ताज' को देखकर कवि से न रहा गया, और उसने कह ही दिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ध्रुवस्वामिनी' में अतिप्राकृत तत्त्व

(प्रो० कन्हैयालाल सहल, एम० ए०)

युग-युग का जन-मानस इस बात को स्वीकार करता आया है कि अदृश्य नियति की क्रूर लीला मनुष्य के भाग्य को परिचालित करती है। उस क्रूर नियति का संकेत करने के लिए नाटक में अति प्राकृत की योजना की जाती है। शेक्सपियर के नाटकों में यह अति प्राकृत दो विभिन्न रूपों में प्रदर्शित हुआ है। अनेक समय बाह्य प्रकृति की विक्षोभ-परिकल्पनार्थ अति प्राकृत का चित्रण हुआ है। नायक-नायिका के व्यक्तिगत जीवन से इसका सम्बन्ध नहीं रहता क्योंकि यह मानव-कल्पना के आधीन है। शेक्सपियर के 'जूलियस सीजर' नाटक में आकाश से अग्नि-वृष्टि, कब्र के अन्दर से मृतकों का पुनरुत्थान आदि वियोगान्त नाटक के वातावरण की सृष्टि करने में सहायक होते हैं। मैकबेथ के प्रथम दृश्यों में डाकिनियों की इङ्गितपूर्ण कथावार्ता तथा तरुलताहीन विस्तीर्ण मृत्यु-मय प्रान्तर-परिकल्पना में भी इसी रहस्य का प्रस्फुटन हुआ है। नाट्यकार इसके द्वारा वियोगान्त नाटक के सकरुण घनान्धकार को और भी तीव्रतर कर देता है।

अनागत घटना के पूर्वाभास के रूप में भी अति-प्राकृत का प्रयोग शेक्सपियर के नाटकों में हुआ है। जूलियस सीजर में calpurnea के स्वप्न द्वारा भावी घटना का पूर्वाभास स्पष्ट देखा जा सकता है।

नाटकों में अति प्राकृत तत्त्व के समावेश का प्रधान उद्देश्य नाटकीय कथा-वस्तु की व्याख्या तथा सूचना है। प्रसादजी के 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में धूमकेतु के प्रसङ्ग को लेकर अति प्राकृत तत्त्व का समावेश हुआ है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित संवाद को लीजिये—

"मिहिरदेव—(ऊब कर आकाश की ओर देखता हुआ) तू नहीं मानती? यह देख, नील लोहित रंग का धूमकेतु अविचल भाव से दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है?"

× × ×

'मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या, जीवन के प्रति?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ छाया से रति!"

वास्तव में हम दृश्य मानव के प्रति उदासीन हो रहे हैं, और अदृश्य ईश्वर के लिये निर्जीव पाषाण को मनुष्य से भी अधिक सुख सुविधा पहुँचाना चाहते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि जब हम हमारे भाई के प्रति जिसे हम देखते हैं, सद्व्यवहार नहीं कर सकते, तो ईश्वर जिसे हम देख नहीं सकते, के प्रति क्या सद्व्यवहार करेंगे? इस प्रकार हम इहलोक और परलोक भी संवारने के बजाय बिगाड़ते जा रहे हैं। इसीलिये कवि सामन्तयुगीन संस्कृति और उसके सुगुणों (Virtues) के खिलाफ़ बगावत करना चाहता है। और इसी प्रकार मनुष्य को मानवोचित अधिकार भी मिल सकते हैं, और मनुष्य सुखी हो सकता है।

कवि इसके लिए ही ऐतिहासिक भौतिकवाद का समर्थक बना, क्योंकि उसी में समानता भी आसकती है। "यन्त्रयुग के साथ साथ मानव सभ्यता में स्वर्ण-युग पदार्पण कर सकेगा"। समाज में आमूल परिवर्तन होगा। कवि भी इसका इच्छुक है।

"विकसित हो, बदले जब जब,
जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले,
करगत सभ्यता समापन।
सामाजिक सम्बन्ध बने नव,
अर्थ भीत्ति पर नूतन।
नव विचार, नव रीति नीति,
नव नियम, भाय, नव दर्शन।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोमा—धूमकेतु को दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारे दुर्ग में रहने से अमंगल होगा।

शकराज—(भयभीत होकर उसे देखता हुआ) यह भयावनी पूँछ वाला धूमकेतु! आकाश का पुच्छल पर्यटक! नक्षत्र लोक का अभिशाप! कोमा! आचार्य को बुलाओ। वे जैसा आदेश देंगे वैसा ही मैं करूँगा? इस अमंगल की शान्ति होनी चाहिये। (धूमकेतु को बार-बार देखता हुआ) भयानक! कोमा, मुझे बचाओ!"

धूमकेतु के सम्बन्ध में अनेक विश्वास लोगों में प्रचलित हैं। पिछले दिनों जब पुच्छल तारा दिखाई पड़ा तो उस पर अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं में लिखे गये। रामचरितमानस की निम्नलिखित अर्द्धाली से भी ज्ञात पड़ता है कि धूमकेतु चिरकाल से लोगों के भय का कारण रहा है—

"कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू।
लूक न असनि केतु नहिं राहू॥"

यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक जान पड़ता है। फलित ज्योतिष में धूमकेतु के उदय का जो शुभाशुभ फल बतलाया गया है उसको हम चाहे मानें या न मानें पर जब कोई नाट्यकार अनागत घटनाओं के पूर्वाभास के रूप में नाटकीय कौशल का आश्रय ले धूमकेतु का दृश्य दिखलाता है तब दर्शक या पाठक को अनागत घटना का पूर्वाभास अवश्य मिल जाता है। उक्त प्रसंग में शकराज की मृत्यु धूमकेतु के अनिष्टकारी प्रभाव के कारण हुई हो या न हुई हो, पर पाठक यह अवश्य पहले ही जान लेते हैं कि शकराज का अनिष्ट होने वाला है।

यहाँ पर इसका उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि नाटककार जब अलौकिक तत्त्व का समावेश करता है तो इससे यह निष्कर्ष निकालना कि यह उसका व्यक्तिगत मत या सिद्धान्त है उचित न होगा। शेक्सपियर ने 'हैमलेट' में भूत का दृश्य दिखलाया है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि शेक्सपियर भूतों में विश्वास करता था। किसी नाट्यकार का अलौकिक तत्त्व में विश्वास चाहे हो भी, पर केवल नाटकीय कौशल के रूप में प्रयुक्त अलौकिक तत्त्व से वैसा कोई अनिवार्य निष्कर्ष हम नहीं निकाल सकते। तत्कालीन लोक-मानस का परिचय देने के लिए भी नाटककार अपने नाटकों में अलौकिक तत्त्व की अवतारणा करते रहे हैं। नियतिवाद जिस नाट्यकार के स्वभाव का अङ्ग-सा जान पड़ता है, बहुत संभव है इस प्रकार के अति प्राकृत विधान में प्रसाद का विश्वास भी रहा हो किन्तु यहाँ कहना केवल यही है कि अति प्राकृत की अवतारणा से ही किसी को अति प्राकृतवादी समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि नाटकीय कौशल के रूप में अति प्राकृत का प्रयोग जहाँ चित्त को चमत्कृत करता है, वहाँ वह नाटक के करुण रस को भी तीव्रतर बना देता है।

आगे चल कर स्त्रीवेश में चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी जब शकराज के पास पहुँचते हैं, उस समय नाट्यकार ने अतिप्राकृत तत्त्व का बड़ा कुशल प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित संवाद को लीजिये—

"चन्द्रगुप्त—जी नहीं, यह नहीं हो सकता। ध्रुवस्वामिनी कौन है? पहले इसका निर्णय होना चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी—(क्रोध से) चन्द्रे! मेरे भाग्य के आकाश में, 'धूमकेतु सी' अपनी गति बन्द करो।

शकराज—(धूमकेतु की ओर देख कर भयभीत-सा) ओह, भयानक! (व्यग्रभाव से टहलने लगता है)"

पाठक जानते हैं कि चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी को धूमकेतु के प्रसंग का कोई ज्ञान नहीं है। अनजान में ही ध्रुवस्वामिनी के मुख से निकल पड़ता है "मेरे भाग्य के आकाश में, धूमकेतु सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी गति बन्द करो।" किन्तु ध्रुवस्वामिनी के मुख से निकले हुए 'धूमकेतु' शब्द द्वारा शकराज भयतीत हो उठता है और आगे चल कर तो यहाँ तक कहने लगता है—"आचार्य ने ठीक कहा है आज शुभ मुहूर्त नहीं। मैं कल विश्वसनीय व्यक्ति को बुलाकर इसका निश्चय कर लूँगा। आज तुम लोग विश्राम करो।"

ध्रुवस्वामिनी के मुख से 'धूमकेतु' शब्द का प्रयोग नाटकीय व्यंग्य (Dramatic irony) का अच्छा उदाहरण उपस्थित करता है; और नाटकीय व्यंग्य एक प्रकार का नाटकीय कौशल ही तो है। शकराज-वध की पृष्ठभूमिका के रूप में 'धूमकेतु' शब्द के प्रयोग द्वारा शकराज के मन को भयभीत और विक्षुब्ध बना देना नाटक में एक बहुत ही उपयुक्त वातावरण की सृष्टि कर रहा है। 'ध्रुव-स्वामिनी में नाटकीय कौशल के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' के अलौकिक तत्त्व के सम्बन्ध में एक बात और कही जायगी। कोमा के निश्छल प्रेम को ठुकराने वाले शकराज के वध द्वारा काव्य-न्याय का निर्वाह हो जाता है, यह हम स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु रह रह कर यह प्रश्न अवश्य उठता है कि कोमा और मिहिरदेव का निर्मम वध कौनसे न्याय द्वारा हुआ? जो मिहिरदेव शकराज को धूम-केतु दिखला कर उसके लिए आशङ्का, भय और अनिष्ट की मूर्ति खड़ी कर रहे थे, न वे मिहिरदेव ही रहे और न उनकी पालिता कोमा ही! ये दोनों निरीह प्राणी भी नियति के क्रूर चक्र द्वारा पीस दिये गये। क्या सचमुच कोई ऐसी अदृश्य शक्ति है जिसके अंगुलि-निर्देश* से संसार का कार्य संचालित होता है?

नाट्यकार द्वारा कोमा और मिहिरदेव को संसार से विदा कर देना उचित हुआ या अनुचित, इस प्रश्न पर यहाँ जानबूझ कर ही विचार नहीं किया गया है; यहाँ तो 'ध्रुवस्वामिनी' का अति प्राकृत तत्त्व ही लेखक का विवेच्य विषय रहा है।

*"There is a finger that directs our ends Rongh how them have we will." (Shakespeare–Hamlet)

हमारा नवीन प्रकाशन

प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी

(लेखक—श्री कृष्णकुमार सिन्हा)

इस पुस्तक में प्रसादजी के अन्तिम नाटक ध्रुवस्वामिनी का विविध दृष्टिकोणों से अध्ययन और विवेचन हुआ है ध्रुवस्वामिनी के ऐतिहासिक आधार, उसके नारी पात्र, सङ्गीत सौष्ठव, चरित्र-चित्रण, भाषा शैली व हास्य-योजना आदि पर गम्भीर विवेचन हुआ है। विद्यार्थियों के लिये ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। मूल्य १॥) मात्र

प्रकाशक—

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४ महात्मा गांधी रोड, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक

गीले हाथ—लेखक–श्री वृन्दावनलाल वर्मा। प्रकाशक–मयूर प्रकाशन, झाँसी। पृष्ठ ३३, मूल्य ।।।)

यह एक सामाजिक नाटक है। इसमें यह दिखलाया गया है कि विवाह-शादी के सम्बन्ध में सुधारवादी लोगों में भी वहा प्राचीन पन्थी आडम्बर और अवखड़पन है जिसकी वे निन्दा किया करते हैं। इसमें लड़की के पिता बंशीलाल तो दोषी हैं ही जो गयाप्रसादजी के सुधारवाद का अनुचित लाभ उठाते हैं किन्तु खुद कोई सुधार की बात नहीं करते, किन्तु उनसे ज्यादा दोषी सोहनलालजी हैं जो अपने व्यङ्ग बाणों से बनी बात को भी बिगाड़ देते हैं। बराती प्रायः ऐसे ही होते हैं किन्तु ऐसे लड़ाकू लोगों के होते हुए भी लेखक ने बड़ी कुशलता से दुष्परिणाम को बचा दिया है। बीच-बीच में आये हुए व्यङ्ग्य ही सुधार के लिए पर्याप्त समझे गये हैं और नाटक सुखान्त हो जाता है।

—गुलाबराय

कविता

तीन आहुतियाँ—लेखक–श्री शिशुपालसिंह, 'शिशु'। प्रकाशक–मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, हैदराबाद। पृष्ठ संख्या २१८। मूल्य २॥)

भारतीय इतिहास में राजपूतों की वीरगाथाएँ भरी पड़ी हैं। किसी कवि की जब वीर रस पर कुछ लिखने की प्रवृत्ति होती है तब उसे भारतीय इतिहास के इन पृष्ठों को पलटने पर सरलता से ही ऐसे कथानक प्राप्त हो जाते हैं जिनका वर्णन करके वह सूखी नसों में रक्त का संचार कर सकता है। हाँ, यह आवश्यक है कि उन शक्तिशाली कथानकों के समान ही कवि की लेखनी भी शक्तिशालिनी हो। सौभाग्य से 'शिशु'जी ने ओजपूर्ण भाषा शैली में राजपूती-युग के तीन कथानकों को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। उस काल की लड़ाई के विषय में कवि ने उचित ही कहा है—

हा! आपस के मन-मुटाव से
बल को बुरा प्रयोग मिला।
जिससे निर्बलता को घर में
घुसने का संयोग मिला॥

किन्तु—

कुछ भी हो सब जाग्रत भारत
मरने का अभ्यासी था।
मर्त्यलोक में रह करके भी
अमरपुरी का वासी था॥

हमारे राजपूत वीरों ने—

रण में केवल रिपुओं के ही
प्राण न लेना जाना था।
अवसर आने पर अपने को
बलि कर देना जाना था॥

और इसी प्रकार अपने को बलि कर देने वाले तीन वीरों की कथाएँ इसमें दी गई हैं। पहली कथा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वीराज चौहान के सेनानी संजयराय, दूसरी में राणा प्रताप के सेनानी झाला राजा मानसिंह और तीसरी में झाड़ीरानी तथा चूड़ावत का वर्णन किया गया है।

इन कथाओं को लिखकर भारतीय युवकों को वीरता भरा सन्देश दिया गया है। कवि के शब्दों में नव-युवकों को अपनी भारतमाता के लिये—

"अपने को खाद बनाकर अब
उसमें नव जीवन लाना।

है, जिससे—

लद जाय सुनहले सुमनों से
पौधे-पौधे की डाल-डाल॥"

—सरोज

इतिहास और पुरातत्त्व

भारतीय सिक्के—लेखक—श्री वासुदेव उपाध्याय एम० ए०। प्रकाशक—भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। पृष्ठ २६०, मूल्य ५)

भारतीय सिक्कों के वर्णनात्मक इतिहास पर हिन्दी में एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी! क्या ही अच्छा होता कि इस पुराने अभाव की पूर्ति उपाध्याय जी की पुस्तक से हो जाती। परन्तु यह पुस्तक लेखक की अनधिकार चेष्टा है। विषय को न जानते हुए ऊट पटाँग अनुवाद के सहारे विषय का भ्रष्ट प्रतिपादन किया गया है। अशुद्धियों का एक नमूना लीजिए—'उपाली नामक स्त्री अपने पुत्र को सराफ का पेशा सिखलाना नहीं चाहती थी। जिसका अर्थ यह है कि सराफों द्वारा सिक्के अवश्य तैयार किए जाते थे।' (पृ० १४) उपाली (१) कोई स्त्री नहीं थी, उपालि बुद्ध के एक शिष्य का नाम था। यदि उपालि नाम की माता अपने पुत्र को सराफ का पेशा नहीं सिखलाना चाहती थी तो उसका यह अर्थ कैसे हो गया कि सराफों द्वारा सिक्के अवश्य तैयार कराए जाते थे? बात दर असल यह थी कि उपालि की माता 'रूप' अर्थात् सिक्कों का काम उसे नहीं सिखाना चाहती थी क्योंकि उससे लड़के की आँखों पर जोर पड़ने का भय था। 'चाणक्य ने पण नामक एक नए सिक्के का नाम लिखा है जो प्राचीन कार्षापण के सदृश था।' (पृ० १५) पण कोई नया सिक्का न था। कार्षापण का ही नाम पण था। पुस्तक की भाषा इतनी भ्रष्ट है कि उसे यदि हिन्दी मान लिया जाय तो लेखक, प्रकाशक और आलोचक तीनों पर किसी सार्वजनिक न्यायालय में अभियोग चलाया जा सकता है। 'गुप्तकाल में कुषाण लोगों से अधिक चाँदी की कमी थी।' (पृ० ३५)। वास्तव में लेखक कहना चाहता था की गुप्तकाल में कुषाणकाल की अपेक्षा चाँदी की कमी अधिक थी। 'उस समय भारत में चाँदी की कमी थी, सोना आसानी से मिल जाता था, अतएव भारत में चाँदी तथा सोने के सिक्कों का अनुपात १०:१ स्थिर किया जो शक क्षत्रप नहपान को नासिक प्रशस्ति के आधार पर स्थिर किया गया था। कनिंघम ने इस अनुपात को कम करके ८:१ के स्थान पर पहुँचा दिया था' (पृ० ३५)। भाषा और विषय दोनों की शोचनीय गड़बड़ी का यह एक नमूना है। चाँदी की कमी के कारण यदि चाँदी-सोने का पुराना अनुपात १०:१ का था तो लेखक के वाक्यों से ऐसा जान पड़ता है कि इसके लिए नासिक प्रशस्ति या कनिंघम उत्तर-दायी हैं। 'मुबारक ने गोलाकार के ढंग को छोड़कर वर्गाकार सिक्के भी चलाया था'। (पृ० २२७) सीधा वाक्य यह था — मुबारक ने गोल सिक्कों के अतिरिक्त चौकोर सिक्के भी चलाए थे। प्रत्येक पृष्ठ भाषा और व्याकरण की अशुद्धियों से भरा हुआ है। पुस्तक का प्रूफ किसी ने देखा हो ऐसा मानना कठिन है। एक ही पृष्ठ में (पृ० ८७) 'शुँग' के स्थान पर "शूंग" तथा कार्षापण के लिए 'कर्षायण' (पृ० १४) छपना इसका प्रमाण है। पुस्तक में जो सिक्कों के चित्र हैं वे भी लीपापोती मात्र हैं एवं वैज्ञानिक पुस्तक के लिए सर्वथा अनुपयोगी हैं। चित्रों का पुस्तक में कोई हवाला भी नहीं दिया गया, पाठक को उन्हें अपने मन से अर्थाना पड़ेगा। मुझे क्लेश है कि यह पुस्तक आलोचना के लिए मेरे पास आई और सार्वजनिक रूप से अपनी सम्मति देने के लिये मुझे बाध्य होना पड़ा।

—वासुदेव शरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की प्राचीन संस्कृति का इतिहास—लेखक—डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, (भू० पू० प्रधान मंत्री, प० बंगाल), अनुवादक—श्री धूर्जटी प्रसाद बागची, एम० ए०; प्रकाशक—शिव प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ ११६, मूल्य २)

डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष उन इने-गिने अपवादों में से हैं जो अनेक राजनैतिक उलझनों में व्यस्त रहते हुए भी साहित्य-सेवा को नहीं छोड़ सकते। प्रस्तुत पुस्तक उनके अध्ययनपूर्ण दो निबन्धों का हिन्दी अनुवाद है। पहला निबन्ध (पृ० १–८६) राजपरम्परा तथा राष्ट्र-व्यवस्था पर है और दूसरा दर्शन पर (पृ० ८७–११६)। पहले निबन्ध के आरम्भ में उन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन किया गया है जो भारतीय संस्कृति के मूल में निहित हैं। लेखक ने पाश्चात्यों के उस भ्रान्त मत का खण्डन किया है जिसके अनुसार प्राचीन भारत में स्वैराचार-तंत्र था। ऐतरेय ब्राह्मण, अर्थशास्त्र, शुक्र नीतिसार आदि ग्रन्थों से प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। लेखक का यह कथन बिलकुल ठीक है कि 'प्राचीन भारतवर्ष में शिक्षा पर राष्ट्रशक्ति का प्रभाव बहुत ही परोक्ष होने के कारण जाति की चिन्ता-धारा राजशक्ति के द्वारा नियन्त्रित नहीं होती थी अपितु जाति की स्वाधीन रूप से विकसित चिन्ताधारा ही राजशक्ति की परिचालना करती थी' (पृ० ११)। हिन्दू भारत के पतन का वास्तविक कारण क्या था? यह डा० घोष के विचार से अभी तक अज्ञात है। और इस सम्बन्ध में अभी बड़ी खोज की आवश्यकता है। पृ० १६ से लेकर ८६ तक प्राचीन भारत के राजनैतिक इतिहास का (ई० पू० छठी शती से लेकर मुसलमानों की विजय तक का) संक्षिप्त रूप से विहंगावलोकन कराया गया है। दूसरे निबन्ध में भारतीय षड्दर्शन सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

पुस्तक के आरम्भ में किसी प्रकार की भूमिका का न होना खटकता है। पुस्तक का 'भारत की प्राचीन संस्कृति का इतिहास' नामकरण भी युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। वास्तव में प्राचीन भारत की धार्मिक, सामाजिक, कलात्मक तथा शिक्षा-सम्बन्धी प्रवृत्तियों का भी यथोचित समावेश पुस्तक में होना चाहिए था। डा० घोष ने इनके सम्बन्ध में भी कुछ निबन्ध लिखे हैं, जिनका उपयोग यहाँ किया जा सकता था। पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण की तथा अन्य अनेक चिन्तनीय भूलें रह गई हैं। उदाहरणार्थ पुष्यमित्र के स्थान पर पुष्यमित्र (पृ० १०, ३५), पुष्यगुप्त के लिये पुष्पगुप्त (पृ० १२), भोजपुर के स्थान पर भोलपुर (पृ० १३), विपाशा को वियाशा (पृ० २२), हिरात को हिराट (पृ० २६), काशगर को खासगर (पृ० ३६), वाकाटक को वकटक (पृ० ४०), क्षपणक को क्षषणक (पृ० ४३), मिहिरकुल को मिटिरकुल (पृ० ४८), भटार्क को भट्टारक (पृ० ४६), मैत्रक को मैत्रिक (पृ० ४६), मौखरी के मौरवरी (पृ० ४६), रंगामाटी को राङा माटी (पृ० ५०), देवगुप्त को देशगुप्त (पृ० ५०), कृष्णराज को कृशाराज (पृ० ६३), अमोघवर्ष को अपोधवर्ष (पृ० ६७), अणहिलवारा को अनूटेलबारा (पृ० ७६), कान्यकुब्ज को कम्पकुथ (पृ० ७६), धोयी को धोथी (पृ० ७७), उड़ीसा को उड़िष्या (पृ० ७८), बंग को बङ्ग (पृ० ७८), राजराज को राजाराज (पृ० ७६), विक्रमशिला को विक्रमशीला (पृ० ८३) भास को भारत (पृ० ६३) तथा तक्षशिला को तक्षशाला लिखा गया है। इनमें से अनेक मुद्रण की भूलें कही जा सकती हैं। चीनी यात्री का नाम 'ह्वेन्सांग' या 'ह्वान च्वांग' के रूप में प्रचलित है। यद्यपि शुद्ध चीनी उच्चारण के अनुसार उसका नाम 'श्यूआन् चुआङ्' लिखा जाना चाहिए। आलोच्य पुस्तक में उसका नाम 'युआन् च्वां' छपा है। पृ० ३५ के चौथे पैरे में पुष्यमित्र का सिंहासनारोहण १३५ ई० पू० लिखा है, जो ठीक नहीं। वास्तव में वे १८५ ई० पू० में सिंहासन पर बैठे। उसी प्रकार गुप्तवंशी शासक चन्द्रगुप्त प्रथम का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम राज्यवर्ष ३२० ई० था जो भूल से ७२० छपा है (पृ० ४१)। पृ० ७६ पर लिखा है कि "जब्बलपुर के समीपस्थ कालचुरी के राजा कर्णदेव ने…"। वास्तव में कलचुरि या कलचुरी वंश का नाम था न कि स्थान का। इस वंश की राजधानी त्रिपुरी थी। पुस्तक में अनेक स्थल स्पष्ट नहीं हो सके हैं; उदाहरणार्थ पृ० ६३ की अन्तिम ३ पंक्तियाँ—"बौद्ध और जैन विद्वानों के दिङ्नाग विशेषतः सुपण्डित बौद्ध नैयायिक के विचारों और आलोचनाओं नव्यन्याय की प्रतिष्ठा में बड़ी सहायता पहुँचाई" अस्पष्ट-सी हैं।

आशा है कि अगले संस्करण में उपर्युक्त दोषों को यथासम्भव दूर कर पुस्तक को उपादेय बनाया जा सकेगा।

—कृष्णदत्त वाजपेयी

प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति—ले०—प्रो० अनंत सदाशिव अलतेकर। प्रकाशक—भारती भंडार, प्रयाग। पृष्ठ २७५। मूल्य ५)

श्री अलतेकर का नाम विद्वत्समाज में विख्यात है। अनेक वर्षों से आप प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के परिज्ञान, शोध एवं अनुसन्धान के महत्कार्य को पुस्तकाकार करते रहे हैं। अब तक आपके ग्रन्थों की रचना मुख्यतः अंग्रेजी भाषा में हुई है। हर्ष का विषय है कि मराठी मातृ-भाषा होते हुए भी आपकी प्रस्तुत पुस्तक की रचना सर्वप्रथम हिन्दी हो में ही हुई है। अतएव आपको बधाई !!

प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति का अध्ययन यों तो सदैव से ही रोचक रहा है, पर आज इस प्रकार के अध्ययन का विशेष महत्व है और वह भारतीय विधान परिषद में हो-रहे प्रयोगों का पथ प्रशस्त करेगा। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ सामयिक है और भारतीय संविधान की रूप-रेखा निर्माण करते समय एक स्वस्थ आदर्श का काम देगा।

श्री अलतेकर ने इस ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों का वर्गीकरण बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया है। उन्होंने भूमिका स्वरूप राजशास्त्र के आधार-ग्रन्थों का उल्लेख किया है। 'अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र' आदि के ग्रन्थ जो शासन-पद्धति का विशेष रूप से विवेचन करते हैं केवल उन्ही के आधार पर यह ग्रन्थ नहीं लिखा गया है।' इसमें लेखक ने वैदिक, बौद्ध, जैन वाङ्मयराजतरंगिणी, विदेशी इतिहासकार तथा यात्रियों के वृत्तान्त, प्राचीन शिलालेखों दानपत्रों आदि साधनों से उपलब्ध सामग्री का सहारा लेकर अपने विषय का सांगोपांग निरूपण किया है।

विद्वान लेखक का मत है कि हिन्दू और बौद्धों की यह धारणा थी कि समाज की उत्पत्ति राज्य से पूर्व होती है और यह ठीक भी है क्योंकि भाषा का जन्म पहले होता है व्याकरण का बादको।' पुस्तक के दूसरे और तीसरे अध्यायों में राज्य के स्वरूप, राज्य का ध्येय और राज्य के कार्यों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। प्रायः प्रत्येक अध्याय से पाठक को अनेक नवीन तथ्य हस्तगत होते हैं। यथा, प्राचीन राज्य में सभी नागरिकों को कानून की दृष्टि में समान नहीं समझा जाता था। राजा की उत्पत्ति समाज के पितृ-प्रधान कुटुम्ब-पद्धति से हुई है। हिन्दू ग्रन्थकारों ने राजपद को दैवी बताया है न कि किसी राजव्यक्ति को। प्रजा को विद्रोह का अधिकार था, विकेन्द्रीकरण का क्या रूप था गणतंत्र में प्रजा-राज्य का क्या स्थान था इत्यादि सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों की तथ्यपूर्ण विवेचना की गई है। गणतंत्र राज्यों का अलग-अलग वर्णन किया गया है। केन्द्रीय सरकार, मंत्रीमंडल, मंत्रियों के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य आदि कोई भी विषय अछूता नहीं छोड़ा गया है।

पुस्तक के अन्तिम अध्याय में विभिन्न युगों की शासन-व्यवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है और अन्त में सामयिक समस्याओं पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से प्राचीन भारत के राजनीतिक चिंतन और शासन-व्ययस्था की साधारण समीक्षा की गई है। इस अध्याय में लेखक के अपने व्यक्तित्व का सुन्दर परिचय मिलता है। उसके विचार से भारतीय गणतंत्र या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकतन्त्र पद्धति छोटे राज्यों में ही सफलता पूर्वक चल सकती थी। इन गणतंत्रों का विनाश कई कारणों से हुआ यथा राज्य-भक्ति की अत्यधिक भावना और पारस्परिक विद्वेष। इन कारणों पर विचार करने से हमें अपने विधान के सम्बन्ध में बहुत उपयोगी सामग्री प्राप्त हो सकती है।

पुस्तक की भाषा में स्थल-स्थल पर मराठीपन साफ झलकता है। आशा है द्वितीय संस्करण में भाषा-परिष्कार पर ध्यान दिया जा सकेगा।

नीचे पाद-टिप्पणियाँ इस ग्रन्थ का मूल्य बढ़ा देती हैं। अन्त में विशिष्टार्थक शब्द-सूची (Technical Terms) राज्य-शास्त्र के लेखकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—विद्याभूषण अग्रवाल एम० ए०

वीर-विहार मीमांसा— लेखक जैनाचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि। प्राप्तिस्थान—यशोधर्म मन्दिर, २ डी० लाइन, दिल्ली क्लाथ मिल्स, दिल्ली। प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २६, मूल्य ॥)

इस पुस्तक में आचार्यजी ने श्री महावीर स्वामी द्वारा विविध स्थलों में विहार के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया है। जिन-जिन स्थानों में स्वामीजी गये उनकी वास्तविक पहचान आदि के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक मत थे। लेखक ने संस्कृत, अपभ्रंश साहित्य तथा प्राचीन शिलालेखों आदि के आवश्यक प्रमाण इस ग्रन्थ में दिये हैं, जिनसे उनका पक्ष पुष्ट होता है। अन्त में विभिन्न भौगोलिक स्थलों की तालिका तथा उनका संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है। इस ग्रन्थ से लेखक का इतिहास तथा पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषणों के प्रति प्रेम प्रकट होता है। आशा है कि जैनधर्म तथा इतिहास की गुत्थियों को सुलझाने में आचार्यजी इसी प्रकार संलग्न रहेंगे।

—कृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०

राजनीति

'अगस्त ४२'—लेखक—श्री सीताराम गोस्वामी, प्रकाशक—मयूर प्रकाशन, झाँसी। पृष्ठ ३८८ मूल्य ५)।

अगस्त' ४२ के आन्दोलन के सम्बन्ध में अब तक हिन्दी में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं जिसमें भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से सन्' ४२ की जन-क्रान्ति का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में गोस्वामीजी ने अगस्त' ४२ के आन्दोलन के कारणों पर विचार करते हुए काँग्रेस के भारत छोड़ो प्रस्ताव का उल्लेख किया है। विविध प्रान्तों में इस आन्दोलन ने जो रूप धारण किया उसका भी वर्णन किया गया है। यह आन्दोलन इतना महान् और देश व्यापी था कि किसी एक पुस्तक में उसका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता

ऐसी दशा में अगर कुछ घटनायें किसी पुस्तक में छूट जावें तो आश्चर्य नहीं लेकिन जिन घटनाओं का वर्णन हो वह सही होना आवश्यक है। इस दृष्टि से इस पुस्तक में आगरे का जो वर्णन है वह अधूरा ही नहीं गलत भी है। 'यहाँ पालीवालजी के गिरफ्तार होने पर ७०—८० हजार जनसमूह निकल पड़ा यह वर्णन सर्वथा मिथ्या है। पालीवालजी तो आन्दोलन से कई मास पूर्व गिरफ्तार कर लिए गये थे। वह तो आन्दोलन में कुछ कर ही न सके। फिर भी इस पुस्तक के पढ़ने से आन्दोलन का बहुत कुछ हाल मालूम हो जाता है। पुस्तक में जो चित्र दिये गये हैं वे इतने भद्दे हैं कि वह न दिये जाते तो ज्यादा अच्छा था। —महेन्द्र

समाजवादी विप्लव आज ही क्यों नहीं ?— लेखक—श्री नारायण गुप्त। प्रकाशक—नीरेन लाहिडी, प्रगति प्रकाशन भवन, गौहाटी, आसाम। मूल्य आठ आना। पृष्ठ संख्या ६५।

भारत की स्वतन्त्रता को एक वर्ष हो गया है और कल के देश सेवी आज शासक बन गए हैं लेकिन देश की भुखमरी और कंगाली वैसी ही बनी है। आजादी मिलने पर देश को स्वर्ग बनाने का जो वचन आज के शासक देते थे वह किन्हीं कारणों से सही, पूरा नहीं हो पाया है। यह क्यों हुआ, क्यों देश उन साम्राज्यवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्की में पिस रहा है, क्यों कांग्रेस देश की स्थिति सँभालने में असमर्थ हैं, आदि प्रश्नों का उत्तर देते हुए लेखक ने बताया है कि एक मात्र समाजवादी विप्लव ही वर्तमान गतिरोध को दूर कर सकता है। पुस्तक विचार से युक्त है। —कमलेश।

सेवाग्राम की विभूतियाँ—लेखक—श्री ललित-प्रसाद श्रीवास्तव। प्रकाशक—राष्ट्रीय प्रकाशन मण्डल, मछुआ टोली, पटना। पृष्ठ १३८, मूल्य १॥=)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री ललितप्रसाद श्रीवास्तव सेवाग्राम में चरखा-सरंजाम कार्यालय में धनुष-तकली के प्रयोक्ता की हैसियत से कार्य कर चुके हैं और उसके माध्यम से सेवाग्राम और उसके प्राण बापू तथा अन्य साधकों के निकट सम्पर्क में आ चुके हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक में उन्होंने जिन व्यक्तियों का चित्र प्रस्तुत किया है उनके जीवन की अनेक ऐसी बातों पर प्रकाश डाला है, जो पहली बार हिन्दी पाठकों को मिलेंगी। आरम्भ में वर्धा और उसकी प्रमुख संस्थाओं का वर्णन करके सेवाग्राम के जन्म और उसकी संस्थाओं का परिचय देकर लेखक ने उसकी विभूतियों के जीवन की पृष्ठभूमि तैयार की है। उसके पश्चात् बापू और बा, स्व० जमनालाल बजाज, स्व० महादेव हरिभाई देसाई, आचार्य विनोबा भावे, कुमारप्पा बन्धु, स्व० परचुरे शास्त्री, श्री केशव भाई, श्री कृष्णदास जाजू, काका कालेलकर, मीरा बहन, राजकुमारी अमृतकौर, शान्ता बहन रानी बाला आदि के जीवन की सरस झाँकी प्रस्तुत की गई है। कहना न होगा कि इन व्यक्तियों के जीवन गान्धीजी के रचनात्मक कार्य-क्रम की विभिन्न दिशाओं में व्यस्त थे और हैं। यदि स्व० बजाज का सम्बन्ध गो सेवा संघ से रहा तो काका कालेलकर का हिन्दुस्तानी से; श्रीकृष्णदास जाजू का चर्खा-सङ्घ ही लक्ष्य है तो शान्ताबहन रानीबाला महिलाश्रम की सेविका हैं। मीरा बहन आदर्श ग्राम सेविका हैं तो कुमारप्पा बन्धु ग्रामोद्योग के विशेषज्ञ। श्री विनोबा तो बापू के प्रतिरूप हैं ही। इस प्रकार ये व्यक्ति गांधीजी के कार्यक्रम के प्रतीक हैं और उनके स्वप्न को प्रत्यक्ष करने के लिए अपना जीवन देने वाले हैं। गान्धीजी में अपने को लीन कर देने वाले इन व्यक्तियों के जीवन प्रेरणा और निष्ठा के अजस्र स्रोत हैं और प्रत्येक भारतीय को उनसे बल प्राप्त करना चाहिए। अब तक हिन्दी में जो पुस्तकें निकली हैं, उनमें 'सेवाग्राम की विभूतियाँ' अपना विशेष स्थान रखती है क्योंकि इसमें लेखक की श्रद्धा और समर्पणशीलता व्यक्तित्व के चित्रण में रस बनकर उतर आई है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक हिन्दी भाषी इस पुस्तक को पढ़े।

धर्म और दर्शन

कर्म-व्यवस्था अर्थात् पुरुषार्थ और प्रारब्ध का समन्वय—लेखक—श्री पूर्णचन्द्रजी एडवोकेट। प्रकाशक—डाक्टर रामपालसिंह पुस्तक प्रकाशन माला के लिए श्रीराम मेहरा एण्ड को० पृष्ठ संख्या ३२२, मूल्य ४)

इस ग्रन्थ में पुरुषार्थ और प्रारब्ध की समस्या पर विचार करते हुए विद्वान लेखक ने बतलाया है कि आर्य-विद्वानों के अनुकूल इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। प्रारम्भ की समस्या पाश्चात्य देशों के लिए जो कर्म सिद्धान्त में नहीं मानते वास्तविक समस्या है किन्तु कर्म सिद्धान्त के मानने वालों के लिए यह समस्या इतनी कठिन नहीं रहती है। जहाँ तक दुख या सुख का भोग है वहाँ तक तकदीर है किन्तु यह तकदीर किसी स्वेच्छाचारी ईश्वर की बनाई हुई तकदीर नहीं है। यह मनुष्य के कर्मों द्वारा निर्मित तकदीर है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। भोग के सम्बन्ध में मनुष्य परतन्त्र है किन्तु पूर्व जन्म कृत कर्मों द्वारा हमारी वर्तमान परिस्थितियाँ बनती हैं। सत्पुरुषार्थ द्वारा हम उन परिस्थितियों को बदल सकते हैं। कर्मवाद में निराशावाद के लिए कोई स्थान नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक में दार्शनिक चिन्तन है किन्तु कुछ बातों में आर्यसमाज की साम्प्रदायिकता की गन्ध आ जाती है। यदि मुर्दे के साथ वेदपाठ करते जाना वैध और शिष्ट है तो राम नाम सत्य है या गोपाल नाम सत्य है उतना ही सभ्य और शिष्ट हो सकता है। वह भी मृत्यु के समय जो वैराग्य और धार्मिकता की द्योतक है। सत्य वही है अभिव्यक्ति का अन्तर है।

लेखक कर्म को वैयक्तिक ही मानते हैं। यह बात बहुत अंश में ठीक है किन्तु ऐसा नहीं है कि हमारे कर्मों का फल हमी तक सीमत रहता हो। यदि आत्मा का मरणोत्तर अस्तित्व है तो चाहे ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन जैसा का तैसा मृतात्मा को न मिले (सो तो मनीआर्डर के भी वे ही रुपये नहीं मिलते हैं) किन्तु पुत्र तथा अन्य परिवार के लोगों की एक निश्चित तिथि पर दिवङ्गत आत्मा की स्मृति में किये हुए सत्कार्य जिनमें दान पुण्य और सात्विक वृत्ति वाले ब्राह्मणों का भोजन भी शामिल है, उसको अवश्य प्रसन्नता देंगे। मेरे इस तरह के विचार में भी संस्कार भेद हो सकता है किन्तु हमको अपने देश की प्रथाओं के प्रति उदारता पूर्ण दृष्टिकोण रखने की आवश्यकता है।

—गुलाबराय

जीवनियाँ

राष्ट्र-निर्माता—लेखक श्री राजेश्वर चतुर्वेदी, एम० ए०, साहित्य-रत्न, प्रकाशक शिव प्रकाशन आगरा पृष्ठ १०७। मूल्य १।)

प्रस्तुत पुस्तक में सात राष्ट्रीय नेताओं की (गांधी, नेहरू, राजाजी, कस्तूरबा, पटेल, राजेन्द्रप्रसाद और सरोजनी नायडू) संक्षिप्त जीवनियाँ हैं। इन जीवनियों के लिखने में उन्हीं घटनाओं को लिया गया है जिनका जीवनी के विषय के व्यक्तित्व से गहरा सम्बन्ध है। चरित्र का उद्घाटन इन जीवनियों की विशेषता है। राजाजी और नेहरूजी के तुलना करते हुए चतुर्वेदीजी बड़े मार्मिक शब्दों में लिखते हैं:—

'जवाहरलाल में पश्चिम से पूर्व प्रभावित है, परन्तु राजाजी ठेठ भारतीय हैं, उनके सिर की शिखा भारतीय संस्कृति की विजय-पताका के रूप में स्थित है, राजाजी ब्राह्मण की क्षमता की साकार मूर्ति हैं। वह भावना को नहीं जानते, उनकी अपील विवेक से होती है। जवाहरलाल भी विवेक को उभाड़ने की कोशिश करते हैं किन्तु बोलते-बोलते उनकी भावना फूट ही पड़ती है।'

इस सुन्दर तुलना के लिए लेखक को बधाई है।

—गुलाबराय

जीवन की झाँकियाँ (प्रथम खण्ड):—ले० श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति, प्रकाशक—विजय पुस्तक भंडार श्रध्दानन्द बाजार दिल्ली। पृष्ठ ३३, मूल्य ॥)

इस पुस्तिका में लेखक ने दिल्ली में राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भिक २० दिनों का इतिहास लिखा है। ३० मार्च से १६ अप्रैल तक स्वामी श्रद्धानन्दजी के नेतृत्व में पहलीबार दिल्ली ने दासता के विरुद्ध विद्रोह की जो अंगड़ायी ली और बलिदान किये उसी का मर्मस्पर्शी इतिहास ६ लघु परिच्छेदों में दिया है, जिनमें से प्रत्येक लेख लेखक के उसके शब्दों में 'अपने आप में छोटे केमरे से लिया स्नेपशौट है।' इनको इन्द्रजी ने अपबीती न कहकर जगबीती कहा है। अतः इस ऐतिहासिक विवरण को जीवन झाँकियों के अन्तर्गत रखना हमें कुछ अधिक उचित नहीं लगा। इन्द्रजी ने इसमें अपनी आँखों देखा यथातथ्य वर्णन बड़ी भावुकता से लिखा है। क्योंकि लेखक का स्वयं घटनाओं से निकट सम्बन्ध था अतः उनकी यर्थाथता और पूर्णता असंदिग्ध है। इस दृष्टि से पुस्तक उपयोगी है। लेखक ने मल्लिनाथ की 'नामूकं लिख्यते किंचित्, नानपेक्षित मुच्यते' की उक्ति को पुस्तिका में पूर्णरूप से चरितार्थ किया है।

—रामनारायण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

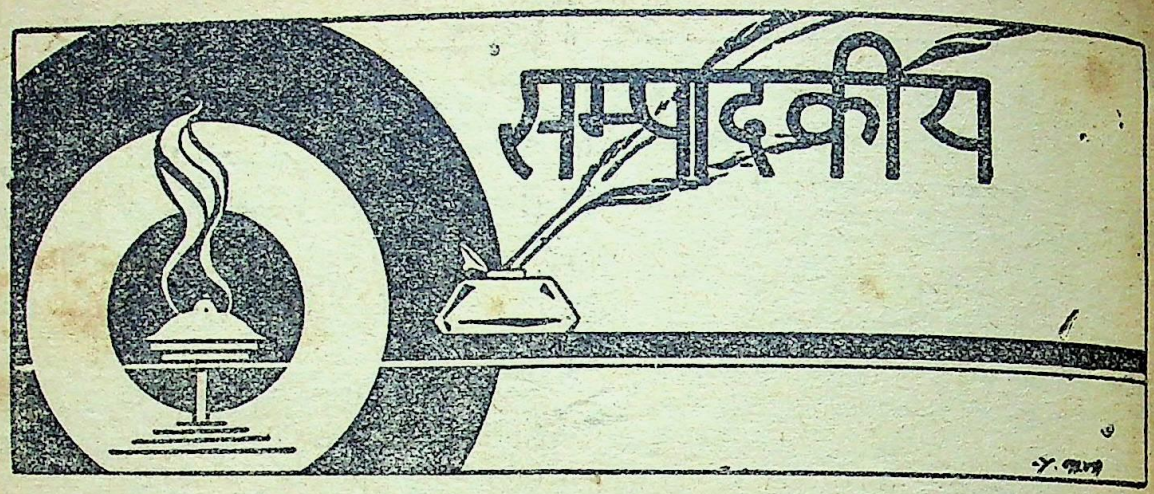

सूर जयन्ती—हिन्दी-साहित्य गगन के सूर रसिक-वर महात्मा सूरदास की जन्म-तिथि बैसाख शुक्ला ५ इस वर्ष ३ मई को बैठती है। यह रसिकदासजी के नीचे के पद पर जो ब्रज साहित्य मण्डल की खोज में प्राप्त हुआ है, आधारित है। इस पद को हम श्री प्रभूदयाल मीतल के अष्टछाप-परिचय से उद्धृत कर रहे हैं।

प्रगटे भक्त शिरोमणि राय।
माधव शुक्ला पंचमि ऊपर छट्ट अधिक सुखदाय॥
संवत् पंद्रह तैंतिस वर्षे कृष्ण सखा प्रगटाय।
करिहैं लीला फेरि अधिक सुख मन मनोरथ पाय॥
श्री बल्लभ, श्री विट्ठल, श्री जी रूप एक दरसाय।
'रसिकदास' मन आस पूरण है, सूरदास भुव आय॥

यह तिथि दूसरे आधारों से भी (जैसे सूरदासजी महाप्रभू बल्लभाचार्य से १० दिन छोटे थे। महाप्रभू बल्लभाचार्य की जन्म तिथि बैशाख कृष्णा ११ है) पुष्ट होती है। सूरदासजी के गुरु-कुल बल्लभ सम्प्रदाय के मुख्य-मुख्य स्थानों में भी यही तिथि मनाई जाती है।

सूरदासजी बल्लभ सम्प्रदाय के तो विशेष रूप से थे ही, किन्तु उन पर सारे हिन्दी जगत को गर्व है और प्रत्येक हिन्दी भाषा भाषी को उनकी जन्म तिथि मनाना पुण्य कर्तव्य है। यह कार्य साहित्यिक-संस्थाओं द्वारा सुचारु रूप से किया जा सकता है। इसके कार्य-क्रम में अन्य बातों के साथ निम्नोल्लिखित बातें भी सुविधा के साथ की जा सकती हैं—(१) सूरदासजी के पदों का गायन (२) भ्रमरगीत अथवा भगवान-कृष्ण की बाल लीलाओं का अभिनय (३) सूरदासजी की हस्तलिखित पोथियों का प्रदर्शन (४) व्याख्यान कविताएँ आदि। इस अवसर पर हम जनता का एक बात की ओर अवश्य ध्यान दिलायेंगे कि सूर के स्मारक की बात अभी अधूरी ही पड़ी है। उसके निर्माण की आयोजना पर विचार कर सभी ब्रज साहित्य मण्डल के साथ इस कार्य में सहयोग दें और यू० पी० सरकार से प्रस्ताव द्वारा अनुरोध करें कि सरकार आर्थिक सहायता द्वारा उस शुभ संकल्प को कार्य रूप में परिणत करा दे। दूसरा कार्य जो साहित्यिक संस्थाएँ कर सकती हैं वह है सूर साहित्य का सम्पादन और प्रकाशन। सूरदास के सागर के छोटे-छोटे प्रसङ्गों की टीकाएँ निकलवाने का यत्न किया जा सकता है जिससे कि जनता का सूर से अधिक सम्पर्क बढ़े।

गत वर्ष भी यह जयन्ती बड़ी धूम-धाम से मनाई गई थी। ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा तथा अन्य स्थानों में बड़ी धूम-धाम रही थी। ब्रज साहित्य मण्डल के प्रोग्राम को आल इण्डिया रेडियो दिल्ली ने रिले किया था और अपने यहाँ से प्रोग्राम परिप्रेषित किया था। बम्बई ने भी अपने यहाँ प्रोग्राम किया था। आशा है कि इस वर्ष दिल्ली के अतिरिक्त लखनऊ और प्रयाग के भी रेडियो स्टेशन इस साहित्यिक और राष्ट्रीय पर्व में योग देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी० जी० फ्रूट प्रिजर्विंग फैक्टरी

गर्मी और जाड़े
हर मौसम में
जी० जी० ब्रान्ड
वस्तुएँ
व्यवहार में लाइये
लाभ, स्वाद में कोई कमी नहीं होती

फल पेय — फल शर्बत
नारङ्गी — सन्तरा, नीबू
लेमन — स्ट्रोबेरी
लेमन वाली — फान्सा
आम — मिक्स्ड फ्रूट
लाइमजूस कार्डियल — जाम, केला, बादाम
स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, सेब, अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेड (Orange Marmalade) तथा
चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके फल सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

जी० जी० चाकलेट फैक्टरी

जी०जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।
इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं॥

गोवर्धनगोपाल टिन फैक्टरी में
५ गैलन के टिन के अतिरिक्त
१, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की
डिब्बियाँ व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं
यन्त्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है
जिससे
कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टौय फैक्टरी
फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के अतिरिक्त
आपके बच्चों की
शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये
सामग्री प्रस्तुत करती है।
खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मज़बूत

जी. जी. इन्डस्ट्रीज आगरा

जी० जी० सेन्स डिपो:—
आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृंगराज तेल

मस्तिष्क की पीड़ा, अल्पावस्था में बाल का पकना, नेत्र सम्बन्धी सभी रोग नष्ट होते हैं और साथ ही दिमाग ठंडा रहता है आंखो की ज्योति बढ़ती है।

सर्व श्रेष्ठ सुवासों से मिश्रित तथा शास्त्रोक्त ढंग से निर्माण किया यह तेल विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त गुणकारी है।

हमारी अन्य उपयोगी औषधियाँ

१ कुमारी आसव—बुखार, शूल, कफ, खांसी के लिये।
२ सौराष्ट्रीय बिन्दु—आँख में डालने की दवा साफ रखने वाली।
३ दंत मंजन—दांत को चमकीले बनाने वाली।
४ द्राक्षासव—ताजगी और स्फूर्ति-दायक स्वादिष्ट पेय।

जामनगर शार्ङ्गधर लेबोरेटरी लि०, जामनगर (सौराष्ट्र)

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

स्थापित १९३१

प्रधान कार्यालय आगरा।

आँकड़े ही उन्नति के द्योतक हैं

पूरे किये गये काम में क्रमागत वृद्धि

सन् १९४६	...	...रु० २६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४७	...	...रु० ३६,००,००० से ऊपर।
सन् १९४८	...	...रु० ४१,००,००० से ऊपर।

हमें कमीशन पर काम करने के लिये कुछ एजेन्टों व ओर्गनाइजरों की आवश्यकता है कृपया लिखें या मिलें।

—गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी जनरल मैनेजर

रामचरनलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरा—फरवरी, १९४९ [अङ्क ८

विषय-सूची

१—धर्म और हिन्दी का जातीय साहित्य—ले० श्री वी० बी० योहन, बी० ए०, आनर्स २७३
२—जनजीवन तथा भारतीय साहित्य की परम्परा—श्री अरविन्द, एम० ए० .... २७७
३—घनानन्द का काव्य-सौष्ठव—श्री शिव बालक शुक्ल, एम० ए० .... २८२
४—प्रगतिवाद की चेतना—श्री मोहनलाल, एम० ए०, साहित्य-रत्न २९१
५—'एक घूँट'—श्री नागरमल सहल, एम० ए० .... २९५
६—आज के उपन्यास—श्री मङ्गलविहारीशरण सिन्हा, बी० ए० .... २९८
७—प्रसादजी के नाटकों का सांस्कृतिक उद्देश्य—ले० विमलाकुमारी हुक्कू, एम० ए० ३०१
८—साहित्य-परिचय—विविध ३०५
९—सम्पादकीय— ३१२

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य रुपया ४)
इस अङ्क का ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश से लाभ उठाइये

'साहित्य-सन्देश' हिन्दी का आलोचना प्रधान एकमात्र पत्र है, जिसकी माँग हिन्दी विद्वानों और साहित्य की उच्च कोटि की परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों में अधिक रही है, परन्तु अब तक कागज की कमी व अन्य कारणों से उसके ग्राहक बनाने की ओ ध्यान नहीं दिया जा सका था, किन्तु अब उक्त व्यवस्था ठीक हो गयी है। जो भी महानुभाव के ग्राहक बनना चाहें उन्हें अपना वार्षिक शुल्क ४) मनीआर्डर द्वारा भेज देना चाहिये। 'साहित्य-सन्देश' के पाठकों से भी निवेदन करते हैं कि वह पत्र के अधिक से अधिक ग्राहक बनाकर हमें सहयोग दें जिससे 'साहित्य-सन्देश' और भी अधिक उपयोगी सामग्री सुसज्जित रूप उपस्थित कर सके।

प्रकाशकों से निवेदन

हिन्दी के समस्त प्रकाशित साहित्य का मासिक और वार्षिक सूचीपत्र हम बहुत समय प्रकाशित करते हैं फिर भी उसमें बहुत सी पुस्तकें ठीक जानकारी न मिल सकने के कारण रह जाती हैं। अतः हमारा समस्त हिन्दी प्रकाशकों से निवेदन है कि वह अपने यहाँ से प्रकाशित पुस्तकों की दो प्रतियाँ 'साहित्य-सन्देश' में समालोचनार्थ अवश्य भेज दिया करें। यदि वह चाहें तो बिना ही आर्डर के अपने प्रकाशन की १० प्रतियाँ कमीशन सेल पर बिक्री के लिये भी भेज सकते हैं।

हमारे नवीन प्रकाशन

१—**हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास**—ले०—बा० गुलाबराय। उक्त पुस्तक का दसवाँ संस्करण दिसम्बर में छपा था और जनवरी में समाप्त हो गया। केवल कुछ ही प्रतियाँ शेष हैं। ११ वाँ संस्करण प्रेस में दे दिया गया है। जिन्हें जरूरत हो अभी से अपना आर्डर रजिस्टर्ड करादें।

२—**मुद्रा-राक्षस**—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के इस प्रसिद्ध नाटक का नवीन संस्करण अभी-अभी हमारे यहाँ छपकर तैयार हुआ है। नाटक के साथ श्री सत्येन्द्रजी की विद्वत्तापूर्ण भूमिका और जोड़ दी गई है।

३—**साकेत एक अध्ययन**—(ले० डा० नगेन्द्र) नवीन संस्करण तैयार है। मूल्य २॥)

४—**हिन्दी काव्य-विमर्श**—बा० गुलाबरायजी का नवीन ग्रन्थ है जिसमें हिन्दी के महाकवियों के जीवन वृत्त तथा साहित्य की उपयोगी आलोचनायें हैं। मूल्य ३॥)

५—**ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन**—ले० प्रो० सत्येन्द्र एम० ए०। हिन्दी में लोक-साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाला एकमात्र ग्रन्थ है जो लेखक ने पी० एच० डी० की डिग्री के लिये लिखा है। यह ग्रन्थ लगभग तैयार है।

६—**रसज्ञ-रञ्जन**—लेखक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रो० सत्येन्द्रजी कृत 'साहित्य की झाँकी' के नवीन संस्करण छप रहे हैं। शीघ्र ही छपने की आशा है।

७—बा० गुलाबरायजी कृत **'सिद्धान्त और अध्ययन'** तथा **'प्रसादजी की कला'** समाप्त हो गई हैं शीघ्र ही छपेंगी।

८—**प्रसादजी की ध्रुवस्वामिनी**—श्री कृष्णकुमार सिन्हा की नवीन आलोचनात्मक कृति छपने देदी गई है। फरवरी के अन्त तक छपने की आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १०] आगरा—फरवरी, १९४९ [अंक ८

धर्म और हिन्दी का जातीय साहित्य

लेखक—प्रो० वी० बी० योहन, बी० ए० ऑनर्स, एम० ए०

पुरातन काल से भारतीय-जीवन धर्म में केन्द्रित रहा है। जीवन की शाखाएँ इसी से रस ग्रहण करती रही हैं अतएव जीवन के सभी अङ्गों में उसे अभिव्यक्ति मिली है। यह अभिव्यक्ति इस सीमा तक पहुँच गई है कि वह उन्हीं अङ्गों में ऐसी मिश्रित हो गई है कि उसका पृथक अस्तित्व ही नहीं रहा। भारतीय जीवन सदा से धर्ममय रहा है। इस दृष्टि से समग्र विश्व में भारत का स्थान 'एकमेवाद्वितीयम्' रहा है। सदा से यह देश महान विचारकों और दार्शनिकों के अध्यवसाय का क्षेत्र रहा है। अतएव भारतीय दर्शन को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता। काव्य, विज्ञान, दर्शन सभी में उसकी व्यञ्जना और विकास है। साहित्य और विज्ञान का कोई क्षेत्र उससे अछूता नहीं रहा। अतः संसार को भारत की सबसे बड़ी देन उसके सर्वप्राचीन ग्रन्थ वेद-ब्राह्मण नहीं, किन्तु इन्हीं में प्रतिपादित धर्म और जीवन के एकीकरण की भावना है। संस्कृत का साहित्य-भाण्डार भारतीय विचारकों के विचारों और भावों का नाटक एक अखण्ड स्रोत है जिसे विभिन्न निर्दिष्ट खण्डों में नहीं बाँटा जा सकता। भारत का वैदिक साहित्य काव्य, दर्शन और आध्यात्मिकता का अनोखा सम्मिश्रण है।

धर्म में केवल किसी अमर तत्व अथवा मुक्ति की खोज ही सब कुछ नहीं और न केवल उसके विचार में ही धर्म का अस्तित्व है। उसे तो जीवन में ही अभिव्यक्ति मिलती है। आचार धर्म का एक मुख्य भाग है। मनु के विचार में 'आचारः परमो धर्मः।' भारत का पुरातन कथा-साहित्य (folk lore) नीति-सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। कथा के द्वारा नीति विशेष का प्रतिपादन भारतीय आख्यायिका की अद्भुत् विशेषता है जो संसार के दूसरे कथा-साहित्य में अप्राप्य नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। 'पञ्चतन्त्र', 'कथासरित्सागर', 'हितोपदेश' आदि ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। नाट्य-साहित्य की तो उत्पत्ति ही के मूल में धर्म-भावना है। नाटकों के विकास में भी उसका ण है। देवताओं की प्रसन्नता के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत्य और गान से ही नाटक की उत्पत्ति प्रमाणित होती है। 'गीतगोविन्द' नाटक के विकास की दूसरी अवस्था का द्योतक है जिसमें गान के साथ कथोपकथन का सम्मिश्रण किया गया है। आधुनिक नवटंकी में नाटक के विकास की यह अवस्था आज पर्यन्त सुरक्षित पाई जाती है। नाटक के आरम्भ का गान नान्दी देवताओं का स्तुति-गान ही तो है। कविता में भी धर्म का अपूर्व सहयोग और मिश्रण है, संस्कृत का सुभाषित साहित्य संसार का बड़ा ही धनी साहित्य है। नीति के सहस्रों सुन्दर पद इस साहित्य में उपलब्ध होते हैं। महाकाव्य के मङ्गलाचरण में, मध्य तथा अन्त में देवताओं की स्तुति के पद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार साहित्य की सभी श्रेणियों में धर्म की व्यञ्जना पाई जाती है। इसके अतिरिक्त भारतीय दर्शन तो धर्म पर ही आधारित है। अनित्य संसार में नित्य तत्व की खोज, मिथ्या लोक में चिरन्तन सत्य-सत्व का अनुसन्धान सदा से भारतीय विचारकों का प्रमुख विषय रहा है। ब्रह्म और जगत, आत्मा और परमात्मा, इहलोक और परलोक, सृष्टि उत्पत्ति तथा अन्त, ज्ञान, कर्म और भक्ति तथा चारों पुरुषार्थ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का विवेचन भारतीय दर्शन की खोज का परिणाम है। शङ्कराचार्य का दार्शनिक विवेचन धर्म से सम्बद्ध है। साहित्य की मूल प्रेरणा लोक-संग्रह की भावना है जिसको हम धर्म की सर्वतोमुखी रक्षा कह सकते हैं। अर्थ, धर्म और काम की प्राप्ति साहित्य की प्रधान प्रेरक शक्ति है। धर्म की अभिवृद्धि जीवन और साहित्य का लक्ष्य है।

भारतीय आलोचना के अनुसार साहित्य कोरा रञ्जन नहीं। वह जीवन के अर्थ है। अतएव यथार्थ चित्रण उसका एक मात्र आदर्श नहीं हो सकता। लोक-कल्याण उसका आदर्श है। भारतीय आचार्यों ने सदा धर्म, नीति और सदाचार का पाठ पढ़ाया है। व्याकरणाचार्यों की आज्ञा वाणी है कि अशुद्ध रूपों का अध्ययन व पाठ न करके प्रामाणिक शब्द अथवा शुद्ध रूप को ही स्मरण रखना चाहिये। इसी सिद्धान्त के अनुसार हमारे साहित्याचार्यों ने पाप की कालिमा के चित्र खींचकर तथा उसके भयङ्कर परिणाम दिखा कर अपने आदर्श स्थिर नहीं किये, कदाचित् हमारा मन उन्हीं में रम जाय और हम 'पेरेडाइस लोस्ट' के शतान की भाँति कहने लगें कि "नक का साम्राज्य स्वर्ग की सेवा से उत्तम है" किन्तु उन्होंने उज्ज्वल चरित्रों की सृष्टि तथा उनके सोत्साह गौरव-गान से आदर्शों की प्रतिष्ठा की। धर्म की जय-घोषणा भारतीय-साहित्य का सबसे तीव्र और प्रधान स्वर है। 'यतो धर्मः ततो जयः' महाभारत का नहीं भारतीय साहित्य और जीवन का मूलमन्त्र है। रावण तथा राक्षसों के पाशव-बल का महिमामय गान करके तथा उनके दुष्कृत्यों के गान से उनके दुष्परिणाम दिखाकर हम कल्पित आदर्शों की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया गया, राम के पावन चरित्र के महिमामय गान से ही, अपने इष्ट की पूर्ति की गई है। भारतीय साहित्य-सर्जना का ध्येय यही है। 'काव्येषुनाटक स्वयम्' का भी यही ध्येय है—धर्म की अभिवृद्धि और लोक संग्रह। रूपकों में विरोध-विकास को विचार-केन्द्र नहीं बनाया गया किन्तु लक्ष्य-प्राप्ति को। काव्य और इतिहास में जीवन के अनेक सम्बन्धों के मूर्तिमान साकार रूप खींचे गये और उनमें आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई। स्त्री-पुरुष में सदाचार की प्रतिष्ठा हुई। राम, कृष्ण में लोक-रक्षा के भावों की स्थापना हुई। उनके चरित्रों में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय किया गया। भरत, लक्ष्मण आदि में आदर्श भ्राता के रूप खींचे गये। नारी की महिमा और गरिमा से आर्य-साहित्य भरा पड़ा है। सीता, राधिका, अरुन्धती, गान्धारी, द्रौपदी, शकुन्तला आदि चरित्र भारतीय साहित्य की अमर सृष्टियाँ हैं। वाल्मीकि और वेदव्यास महान् तपस्वी और मुनि संस्कृत के सबसे बड़े महाकवि हैं। तपश्चर्या के अतिरिक्त इनकी साहित्यिक साधना ने संस्कृत साहित्य के दो अनमोल ग्रन्थ प्रस्तुत किये जिनमें भारतीय इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र दर्शन का काव्यात्मक निरूपण उपलब्ध होता । श्रीमद्भागवत् में धर्म का निरूपण अमूर्त अव्यावहारिक सिद्धान्तों के रूप में नहीं प्रत्युत दैनिक व्यवहार में आने योग्य धर्म-सिद्धान्तों का विवेचन है। सी-प्रकार गौतम का निर्वाण मार्ग बुद्ध का जीवन-र्शन है। उस सिद्धान्त का सम्बन्ध भी प्रकृत जीवन है। इह लोक में सुख और परलोक में शान्ति सका ध्येय है। दैनिक व्यवहार में किस प्रकार जीवन-यापन करना चाहिये यह उसका वर्ण्य विषय है।

हिन्दी- साहित्य में जातीय-साहित्य के गुण हैं। उसमें हिन्दू-जाति के विकास का व्यापक इतिहास है। यह हिन्दू जाति के मस्तिष्क की उपज है। हिन्दू जीवन और संस्कृति उसमें पूर्णतया सुरक्षित हैं। पुराण साहित्य की गरिमा तथा शक्ति से प्राणान्वित है! व-वाणी के अमर साहित्य की धर्म-विजय-घोषणा हिन्दी साहित्य में प्रतिध्वनित हो रही है। भक्ति-युग तो हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। भारतीयों की प्रिय आध्यात्मिकता शृङ्गार क्षेत्र में ही सीमित नहीं शृङ्गार क्षेत्र तक में प्रविष्ट हुई है। रहस्यवाद हिन्दी कविता का निजी प्रिय क्षेत्र रहा है और ईश्वर-प्रेम की व्यञ्जना उसका मुख्य विषय। हिन्दी साहित्य के आदि काल में भी विद्यापति की शृङ्गार मयी वाणी का मधुर स्वर सुनाई पड़ता है। यह मैथिल कोकिल की काकली है। विद्यापति जयदेव की ही कोटि के कवि हैं और उनका शृङ्गार भक्ति का साधन है। कृष्ण और राधिका का प्रेम कवि का वर्ण्य विषय है। इस दृष्टि से विद्यापति संत कवियों की श्रेणी में आ जाते हैं। डाक्टर ग्रियर्सन के मतानुसार राधा और कृष्ण के प्रेम को शृङ्गार के आधार पर व्यक्त किया जाता है।

भक्ति युग तो हिन्दी साहित्य का सबसे धनी और बहुमूल्य युग है ही। जायसी आदि प्रेमी कवियों ने कबीर, दादू आदि ज्ञान मार्गी कवियों ने तथा तुलसी, सूर आदि वैष्णव संप्रदाय के कवियों ने भक्ति के विभिन्न मार्ग अपनाकर भक्ति का ऐसा स्रोत प्रवाहित किया कि उस क्षेत्र और विषय में दूसरों के लिए कहने को प्रायः कुछ न रह गया। कबीर, सूर और तुलसी हिन्दी के श्रेष्ठ कवि प्रमाणित हुए। 'सूर सूर तुलसी ससी' इत्यादि तथा 'कविता रही सो कबिरा कहिगा' इत्यादि में लोक मत निहित है। इस क्षेत्र में तुलसीदास का प्रयत्न तो धर्म की पुनः प्रतिष्ठा ही है। उनकी कृति 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' है। भक्ति के एक सामान्य मार्ग की स्थापना तुलसी की कविता का लक्ष्य है। काव्य क्षेत्र में लोक संग्रह का यह प्रयत्न सब से महान् लोक सेवा है। अतएव इस विशेषता के साथ महाकवि की अन्य सब विशेषताओं की उपस्थिति से महात्मा तुलसीदास सचमुच हिन्दी साहित्य में सर्व श्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। 'राम चरित मानस' में राम की भक्ति का अपार स्रोत प्रवाहित किया गया है, और जन साधारण के लिए भक्ति का सीधा मार्ग प्रस्तुत किया गया है। सरल 'की तोहें लागें राम प्रिय की तू राम प्रिय होहि'। तुलसी दास कविता को जन और जीवन के ही अर्थ मानते हैं।— 'कीरति भणिति भूति भल सोई, सुरसरि सम सब करि हित होई'। बिना इस ध्येय के तो उन्हें एक शब्द भी नहीं कहना है। तुलसी-दर्शन भगवद्भक्ति का निरूपण है। डाक्टर बलदेव प्रसाद जी मिश्र ने इसी दर्शन का विद्वत्तामय विवेचन प्रस्तुत किया है।

आधुनिक युग में भी धर्म भावना की काव्य में सुन्दर व्यञ्जना मिली है। विज्ञान के इस हल-चल के युग में, संसार तथा देश की अव्यवस्था के समय में, गल्प तथा कथा साहित्य के युग में भी 'कामायनी', 'साकेत', 'प्रियप्रवास' तथा 'कृष्णायन' जैसे आदरणीय काव्यों का प्रणयन हुआ है। इनमें से प्रथम ग्रन्थ-धर्म और साहित्य के संबंध में है, भारतीयता का सच्चा प्रतिनिधि ग्रन्थ है, जिसमें ऐतिहासिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि के आधार पर मानवता के विकास का काव्यात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम तीन ग्रन्थ भक्ति भावना से ओत-प्रोत हैं। धर्म की मूल भावना आधारित ये ग्रन्थ अपने-अपने क्षेत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी साहित्यिक और सामाजिक विशेषताएँ रखते हैं। 'प्रियप्रवास' की न्यूनता (कथागत दोष) 'कृष्णायन' में दूर हुई है। अतएव सहित्यिक दृष्टि से 'कृष्णायन' सच्चा महाकाव्य ठहरता है। 'प्रियप्रवास' में संस्कृत अतुकान्त वर्ण वृत्तों का नवीन प्रयोग है और अनूठी पदावली की छटा पाई जाती हैं, किन्तु छन्द बन्धन के कारण भाषा की शिथिलता और ब्रज भाषा तथा फारसी का मेल आ गया है। उसके सन्देश में अवश्य उसका महाकाव्यत्व वर्तमान है राधिका और कृष्ण की कथा के सम्बन्ध में नवीन दृष्टिकोण तथा उनका सेवा मार्ग 'प्रियप्रवास' का युग को संदेश है। 'कृष्णायन' में अवधी का प्रांजल प्रयोग है। भाषा की शुद्धता के सम्बन्ध में मिश्र जी का लक्ष्य सप्रयोजन है और इस लक्ष्य का सर्वथा निर्वाह किया गया है। कृष्ण का कथा बद्ध पूर्ण चरित्र कविता में पहली बार प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से 'बन्दिन-तनय', 'बन्दी' द्वारा विरचित 'जननी-मुक्ति-हित' 'बन्दी-जन' का काव्य-ग्रन्थ 'कृष्णायन' हिन्दी का एक अद्वितीय ग्रन्थ ठहरता है। 'साकेत' में धर्म और आचार पर आधारित मानव मूल्यों का नवीन अङ्कन पाया जाता है जिससे कि 'साकेत' के साहित्यिक और सामाजिक मूल्य में अभिवृद्धि हुई है।

वर्तमान हिन्दी-साहित्य में रहस्यवादी कविता भी मूल धर्म-भावना से प्रेरित और पुष्ट है। कबीर की रहस्य-भावना आधुनिक रहस्यवादी कविता में उदित हुई है। छायावादी और रहस्यवादी कविता में यथार्थ दृष्टिगोचर बाह्य रूप तथा इतिवृत्तात्मकता से परे आन्तरिक संसार तथा उसके सत्य का निरूपण होता है। रहस्यवाद छायावाद के आगे की अवस्था है जिसमें सारे संसार के वस्तुजाल के नीचे एक ही चिरन्तन सत्य की अनुभूति पाई जाती है। आधुनिक हिन्दी-काव्य में छायावाद की गहरी नींव है। उसे रहस्यवाद, अभिव्यञ्जनावाद और प्रगतिवाद के साहित्य में नवीन व्यञ्जना तथा नव विकास मिल रहा है। आधुनिक काव्य में कबीर आदि रहस्यवादियों की उपदेश-वृत्ति भी प्राप्त होती है। कबीर सुधारक थे, दादू गूँगे का गुड़ खाकर हैरान थे, मीरा प्रियतम कृष्ण के विरह में विक्षिप्ता थीं। आधुनिक रहस्यवाद में उपदेश वृत्ति है पर कविता के बड़े ही रसीले आवरण में। अलौकिक प्रेम की व्यञ्जना में रूपक का आवरण 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' की भाँति झीना नहीं। दादू की हैरानी सैना से नहीं तो बैना से व्यक्त की गई है तथा साथ ही विरह की बड़ी अनूठी और हृदयग्राही व्यञ्जना की गई है। इस प्रकार वर्तमान रहस्यवाद मध्यकालीन रहस्यवाद ही का आधुनिक विकास है।

हिन्दी-कविता के आधुनिक युग में उपर्युक्त चार महाकाव्यों के प्रणयन से तथा आधुनिक रहस्यवादी कविता के विकास से भक्ति का स्वर्ण युग दुहराया गया है। भिन्नता यह है कि पूर्व भक्तियुग का महत्व स्थिर और चिरस्थायी हो चुका है और आधुनिक युग के काव्य को अभी काल की कसौटी पर चढ़ाया ही गया है। काल स्वयं इसके स्थायित्व का निर्णय करेगा। एक और प्रधान अन्तर यह है कि आधुनिक युग में धर्म-भावना पर आधारित इस अनूठे काव्य के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के अन्य अङ्गों का भी अप्रतिहत विकास हो रहा है और साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन साहित्य-चेतना तथा काव्य-साधना के आधार पर जीवन की सर्वाङ्गीण आलोचना हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन जीवन तथा भारतीय साहित्य की परम्परा

(श्री अरविन्द, एम० ए०)

साहित्य निरन्तर बदलते हुए युगों की अभिव्यक्ति करता है। एक समय था तब मानव-समाज शैशव में मिट्टी के घरौंदों से खेला करता था, के बदलते पटाक्षेप उसे आश्चर्याविभूत कर देते विद्युत की कड़क से वह आतङ्कित हो उठता और ऊषा के शुभ्र सौन्दर्य से मुग्ध। उस काल के वैदिक ऋचाओं को देखिए, उषा, सन्ध्या, आदि की प्रशस्तियाँ भरी पड़ी हैं। तब प्रकृति नगरों के कोलाहल की सर्जना नहीं हुई थी। खरखारों के विलासी वातावरण का भी आविर्भाव हुआ था। जीवन में दुरभि सन्धियाँ, समस्याएँ, तथा उलझनें नहीं आने पाई थीं। थोड़ी संख्या, प्रचुर भूमि आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित, का अनुभव ही किसे था सभ्यता के उस युग में?

ऊपर नीलाकाश, नीचे विपुला धरित्री, सघन अलस प्रवाहमान सरितायें उस काल का मानव था। प्रकृति, रहस्य के आवरण से आवृत्त, चमभित कर देती थी। कभी-कभी डरा भी देती कहीं असीम सौन्दर्य को देख वह श्रद्धान्वित हो था। दुःखों और अभावों से अपरिचित उस का जीवन सचमुच ही अखिल सृष्टि में परिव्याप्त विराट् सत्ता की सङ्गीतात्मक झंकृति से निनादित था। जीवन-सरिता की उसी मुक्त गति को कल निनाद साम सङ्गीत में मुखरित हो पड़ा।

किन्तु दुनिया आगे बढ़ी। मानव-जीवन स्रोत क्षिप्र गति से कलकल छलछल करती हुई गिरि-यों में भूलता-भटकता, उछलता-कूदता चला आ था, नीचे समतल में आ पड़ा। मन्द मन्थर गति आविर्भाव हुआ। मिट्टी से अधिकाधिक सम्पर्क होने से तट के तलहटी के मलवे, गदलापन आदि सभी से दूषित हो उठा उसका वक्षस्थल। गति में शिथिलता के साथ ही धारा में अनेकरूपता आयी। चौड़े कूल किनारे प्रशस्त तटी, विशाल वन प्रान्त उनमें खोई सी वन्या, गहराई बढ़ी। गम्भीरता जीवन को अन्तर्मुखी करने लगी। हमें उपनिषदों का धीर गम्भीर साहित्य मिला। ज्ञानगरिमा से साहित्य बोझिल सा हो उठा। युग का अन्त हुआ। मानव अब पृथ्वी पर बस चुका था। उसके जीवन की अस्वस्थ शिरायें जटिलतर होती जा रही थीं। मिट्टी में नीचे, सुदूर नीचे, उसके मूल तन्तु जीवन रस खोजने उतर चुके थे।

स्थिर लेकिन कब रहा है मानव-समाज? शीघ्र ही शत-शत धाराओं में विलीन सा होगया वह प्रखर जीवन स्रोत। ये सहस्रों परिधारायें जाने किस अज्ञात लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ीं। दूर, कहीं सुदूर पर, समुद्र का, उस अव्यक्त विराट् का गम्भीर, महोदधि लहराता होगा, उस विश्वात्मा की पुकार से स्पन्दित, आन्दोलित मानवात्मा सदा से क्षुब्ध, व्याकुल रही है। एक अव्यक्त अदम्य पिपासा उसे आगे की ओर उत्प्रेरित करती रहती है। सदा नूतन की तलाश उसे उद्विग्न रखती है। कोई चिरन्तन विरह व्यथा उसके गीतों में फूट पड़ती है। वह अपने को चिर अतृप्त, अपूर्ण पाता है। इसी तृप्त की तलाश वह कामिनी के आँचल में करता स्वर्ण राशि की चकाचौंध में करता है, उन्नत प्राचीरों में, आकाश चूमने वाली महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में करता है। किन्तु कहाँ मिलती है यह तृप्ति?

तो उसका साहित्य इसी अतृप्ति की अभिलाषा बन कर फलता फूलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

We fook before and after pine
for what is not
Our siuccrest laughter with some
pain is frought.

'एकोऽहम् बहुस्याम्' के मूल में इसी चिर अतृप्ति का अपनी अपूर्णता का आभास तो सन्निहित है। अतः आगे बढ़ने पर हमारा साहित्य जीवन के बहुमुखी स्त्रोतों- धाराओं उपधाराओं में कभी विभिन्न दिशाओं में, कभी समानान्तर, कभी विरोधी दिशाओं में भी प्रवाहमान होगया।

क्योंकि उपनिषद् काव्य के उपरान्त हमारा सामाजिक जीवन मुख्यतः दो भागों में विभक्त होगया सामन्तशाही के विकास तथा प्रभुत्व का वह स्वर्ग युग था। एक तो अभिजात वर्गों का ऊँचा स्तर तथा दूसरा सामान्य जन वर्ग की अपनी जीवन श्रृङ्खला। ये दोनों एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित रहते हुए पद्म पत्र की भाँति एक दूसरे को बहुत ही कम स्पश करते थे। अतः इनकी पृथक सत्ता अनेक शताब्दियों तक बनी रही।

इस लम्बे अस का साहित्य हमें मुख्यतः सामन्ती दरबारी कवियों तथा कलाकारों की कृतियों के रूप में उपलब्ध है। यों तो पौराणिक साहित्य भी समुद्रवत विशाल है पर अभी उस ओर बहुत ही कम खोज होने के तथा उसमें कल्पना, धर्म, राजनीत, दर्शन, समाजनीति, राजाओं की प्रशस्तियों आदि-दन्त कथाओं आदि के अद्भुत सम्मिश्रण हो जाने के कारण शुद्ध साहित्य या इतिहास के विद्यार्थी के लिए कम ही सामग्रियाँ उपलब्ध हो सकी हैं।

तो उस काल का जो साहित्य हमें उपलब्ध है वह मुख्यतः राज कवियों तथा तत्सम्बन्धी लोगों का ही है। कुछ लोक-गीत भी यत्र तत्र यथा 'हालकी सत्तसई' आदि बिखरे मिलते हैं पर उन में अतीत ही की छाप विशेष हैं।

संस्कृत काव्यधारा सामाजिक जीवन की विकृतियों से दूर ही रहीं। कारण भी स्पष्ट ही है। वह युग ही कुछ ऐसा था कि अभिजात वर्गों के अतिरिक्त इतर लोगों को कदाचित मानव समाज का सदस्य मानने से हिचक होती है। किसी सम्राट, राजा सर्दार राम या कृष्ण को ही काव्य के नायक का पद मिल सकता था अतः सारी की सारी पृष्ठभूमि तथा वातावरण साधारण जन वर्ग के जीवन स्तर से ऊपर ही रह जाता था। अपनी कृत्रिम मर्यादा के निर्वाह के लिये बड़ा से बड़ा अनय भी क्षम्य था। बस सारा साहित्य उस काल का राजाओं, राजकुमारों, कुमारियों, तथा देवों और दानवों से भरा पड़ा है।

उत्तर कालीन संस्कृत काव्य को तो यह जीवन स्त्रोत भी नसीब न हो सका। इस में तो फिर भी कुछ चमक चकाचौंध उष्णता तथा कोमलता है, पर इससे भी जब सम्पर्क छूट गया तो साहित्यकार शाब्दिक कला बाजो से ही अपना तन मन पोषण करने लगे। फिर तो अलंकारों की ऐसी बाढ़ आयी तथा रसों की ऐसी धारायें बहायी गयीं कि साहित्य का प्राण विचारी अनुभूति न जाने कहाँ डूबकर विलीन ही हो गयी। यदि कुछ न मिली तो घर में कामिनी तो थी ही, बस कवियों के लिये सारा संसार ही स्त्री मय हो गया।

बौद्धों की महायान शाखा जोरों पर थी। तान्त्रिकों का भी खूब चल बन चुकी थीं। एक ही रस और वह भी श्रृङ्गार की ध्वनि से सारा साहित्य-जगत गूँज उठा।

इसी ह्रासोन्मुख साहित्य के खण्डहरों पर हिन्दी का जन्म हुआ। मैथिली, बँगला, ब्रजभाषा आदि में इसी श्रृङ्गार की छटा दीख पड़ती है। यदि कभी समय बच गया तो उसी बहाने कुछ हरिचर्चा भी करली।

उस काल के लोकगीतकार यथा विद्यापति भी राजदरबारी ही थे। संस्कृत के पण्डित, राजनीतिज्ञ कुशल दरबारी के द्वारा लोक-जीवन की सर्वाङ्गीण अभिव्यक्ति कहाँ तक सम्भव हो सकती थी। हाँ बाट-घाट का सूक्ष्म निरीक्षण 'बदरीफल' से 'बीजक पोर'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक का चढ़ाव-उतराव की नाप-जोख अवश्य कर सके थे इसलिये शृङ्गार रस के अनुपम गीतों की रचना हुई है अवश्य इनके द्वारा।

वीरगाथा-काल के कवि भी अपने आश्रयदाताओं के इतने निकट सम्पर्क में रहते आये थे कि उनकी दृष्टि यद्यपि नारी के नख-शिख में ही नहीं उलझी रही, फिर भी तलवारों की खनखनाहट और बछों की सनसनाहट से दूर नहीं जा सकी। रणक्षेत्रों के पास ही किसानों की टूटी झोंपड़ियाँ भी थीं तथा उनमें भी जीवन का पूरा-पूरा आलम बसा था, इस ओर उनका ध्यान ही नहीं गया।

यह नहीं कि उस युग में मानव-समाज के कलाकारों की दृष्टि ही सीमित थी। लगभग उसी काल में इँगलैण्ड में चोसर 'कैण्टरबरी टेल्स' लिख रहा था, जिसमें वहाँ का तत्कालीन सारा का सारा समाज चित्रित है। और कितने सजीव थे ये चित्र!

बाद के साहित्य की स्पष्टतः दो धारायें हम देखते हैं। एक तो सन्तों और सूफियों की कृतियों में, दूसरे राजदरबार के आश्रित कवियों की रचनाओं में। दोनों ही तत्कालीन जनजीवन की विषमताओं से पराभूत पलायनवादी मनोवृत्ति के ही परिणाम थे। कठोर कर्मक्षेत्र से भाग कर मानव चाहे तो राम के चरणों में आश्रय खोजता है अथवा सुरा और सुन्दरी के विलास में अपनी व्यथा को, ग्लानि को भुला रखना चाहता है। अकर्मण्य विलासी राजाओं के दूषित मनोरञ्जन के लिये कविता कामिनी को हाव-भाव के साथ नचाया जाने लगा। कदाचित उस काल की जनता की अकर्मण्यता को भी नारी के आंचल में ही आश्रय मिला हो। तभी शायद सन्तों को नारी के विरुद्ध इतनी बातें कहनी पड़ीं। यहाँ तक कि नारी नरक का द्वार तक कह दी गयी।

फिर भी के अधिकांश कवि मध्यम वर्गों से ही आये थे। उन्होंने अभाव तथा जीवन के द्वन्दों को भी देखा था। अतः उनकी कृतियों में इनकी भी झलक यत्र-तत्र मिल ही जाती है। तुलसी ने कलियुग के वर्णन में अपने ही युग का चित्र तो खींचा है। और फिर प्रेमगीतों का क्या कहना? सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभाव भी चित्रित होने से वञ्चित नहीं रहे। उनका तो एक सारा समुद्र ही लहरा रहा है। कहीं भीषण तूफान, कहीं विरह का बड़वानल, कहीं शान्त लहरियाँ, कहीं निस्तब्धता में अव्यक्त आहें। कोमल भावनाओं का ऐसा विराट् प्रदर्शन अन्य किसी भी साहित्य में उपलब्ध नहीं।

लेकिन प्रेम का राग फिर भी पेट भरने पर ही अच्छा लगता है। वर्गचेतना के सर्वथा अभाव होने से, तथा नियतिवाद का गहरा रङ्ग चढ़े रहने से वर्ग वैषम्य एवम् समाज की मौलिक समस्याओं के प्रति हमारे कवि-मनीषियों का ध्यान आकृष्ट नहीं हो सका। साथ ही समाज के सभी स्तरों का चित्रण जैसा 'शेम्स पीटर' आदि में उपलब्ध है नहीं हो सका। रहीम आदि ने धोबिन, नाइन आदि नायिकाओं तथा कुछ अन्य कवियों ने उन्हीं वर्गों की दूतियों का गलत या सही कल्पना प्रसूत चित्रण अवश्य किया है पर काश इनकी नजर पोड़शियों के अतिरिक्त अन्यत्र भी पड़ी होती।

इस तरह हम साहित्य के आधुनिक काल में आते हैं तो पहली बार हरिश्चन्द्र जी को जन-जीवन के दुखों से दुखी होते पाते हैं। अब न राम में इतना विश्वास रह गया था कि उन्हीं पर सब कुछ छोड़ा जा सकता था और न कामिनी ही इतनी सस्ती थी कि उसी के अलकों में उलझ कर वर्तमान की विभीषिका को विस्मृत किया जा सकता। अतः अब साहित्यकारों को बरबस अपने घरौंदों से निकलना पड़ा। बाहर की खुली हवा लगते ही उनकी सारी वृत्तियाँ चैतन्य हो उठीं। हृदय की खिड़कियाँ जो बन्द थीं एक बारगी ही खुल पड़ीं तथा उन्मुक्त वायु के झोंकों से सारा दूषित वातावरण स्वच्छ हो गया।

भारतेन्दु युग का साहित्य इसी स्वस्थ्य वास्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकता के रस से परिपूर्ण है। भारत का विराट प्रकृति सौन्दर्य हीन देश-दशा, अभाव जर्जर जीवन सभी उनकी आँखों के समक्ष आते रहे। इस तरह हमारा साहित्य इस नई दिशा में पूरे विश्वास के साथ चल पड़ा। इधर मैथिली शरण की भारती गूँजी, उधर मौलाना हुसैन हाली के मॉसद्स। इन जोरदार आवाजों ने मध्यम वर्ग की तन्द्रा को बड़ी ही निर्ममता से तोड़ दिया। स्वर्णिम् अतीत की याद दिला कर दयनीय वर्तमान की ओर ध्यान खींचकर जन जीवन की चेतना को जाग्रत करने का अद्भुत श्रेय इन्हें प्राप्त है। अवश्य ही इन दोनों में भारतीय चेतना नहीं जग सकी। हिन्दू तथा मुसलमान संस्कारों को ही जगाया गया। कदाचित उस काल के वातावरण में यही सम्भव भी था और हिन्दू तथा मुसलमानों के सांस्कृतिक समस्याओं का कहीं स्थल भी तो दृष्टिगोचर नहीं होता।

किन्तु यह मुक्त धारा बहुत काल तक नहीं प्रवाहित हो सकी। अंग्रेजी साहित्य के रेमोण्टिसिज्म का बंगला रूप रंग लिये जो झोंका इधर आया उसने कुछ काल के लिये हिन्दी काव्य धारा को एक सर्वथा नई दिशा में ही मोड़ दिया। उस काल का वातावरण कुछ इसी के अनुकूल था। राजनैतिक क्षेत्र में जो निराशा छायी थी, समाज में नैतिक मर्यादा के जो बन्धन थे, तथा देश में बेकारी आदि की समस्या जिस भीषण रूप में थी, जीवन संघर्ष जितना उग्रतर हो उठा था, उस परिचिय में हमारे सुकुमार मति कवि—

ले चल मुझे भुलावा देकर,
मेरे नाविक धीरे धीरे।
जिस जगती में सागर लहरी,
अम्बर की कानो में गहरी।
अपनी प्रेम कथा कहती रे।

गाकर ही वर्तमान की विभीषिका को भुला सके। अवश्य ही ये 'कवि मनीषा परिभू स्वयम्भू' की कोटि में नहीं आ सकते थे। किन्तु यदि परिस्थितियों पर विजय पाने में असमर्थ हो तो पलायन के अतिरिक्त और सुगमतर मार्ग ही क्या है?

इस काल की कविता वेलि कल्पनाकाश में प्रसूत हो कर अधर में ही लटकती रही। हमारे कवियों ने पत्ती का मर्मर गान सुना ऊषा के कपोलों पर लाली देखी, ताराओं में जग की व्यथा अंकित पायी किन्तु अपने ही चारों ओर, अड़ोस पड़ोस के क्रन्दन चीत्कार हास परिहास जीवन की फैली हुई सारी शृङ्खला की ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी। उस काल की कठोर नैतिक मर्य्यादा के कारण नारी की ओर वे आँखें खोल कर नजर भर देख भी नहीं सकते थे, तथा अपनी उमर के तकाजों से लुब्ध उनकी प्रतिभा अपने अन्तस्तल से सर्वथा निकाल भी नहीं फेंक सकते थे। अतः उनकी यह अतृप्ति उन्हें लता वृक्षों के परिरम्भन, ऊषा के शृङ्गार, निशा के अभिसार आदि का चित्रण करा छोड़ती थी।

इस नाद के कुछ अतृप्त कवि रहस्यवाद की ओर भी मुड़े बहुत ही सुन्दर गीतों की रचना उन्होंने की। किन्तु वह क्रमशः दुरूहतर होती गयी उनकी वाणी। सुदूर कल्पना कानन के कुसुमों की पहचान भी कठिनता से कर सकती थी साधारण जनता, सुरभि तथा सौंदर्य की रसानुभूति से दूर रही। अतः इस काल की अधिकांश कविता हमारी प्रशंसा और प्रशस्तियाँ तो पाती रहीं पर यथार्थः हम उन में रम बहुत कम सके। आज भी प्रसाद और महादेवी के गीतों से हम अपरिचित हैं, जब कि सूर हो—

निशि दिन बरसत नैंन हमारे

हर सावनी झड़ी के साथ गूञ्ज उठता है।

इधर राजनैतिक रङ्गमञ्च पर परिवर्तन तेजी के साथ हो रहा था। विदेशी सत्ता के विरुद्ध देशव्यापी घृणा फैल रही थी। पृथ्वी के सातवें हिस्से पर जनता का राज्य कायम हो चुका था। महायुद्ध से लौटे हुए भारतीय सैनिकों के हृदय में स्वातन्त्र्य की ज्वाला जल चुकी थी। अँग्रेजी भाषा के अध्ययन के द्वारा मानव के मौलिक साम्य की भावना शिक्षित जन-समुदाय में भर रही थी। मार्क्स और लेनिन के विचारों का जोरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रसरण हो रहा था। सारे देश में एक कशमकश, बेचैनी, उथल-पुथल सी मची हुई थी। कभी यह निर्भयता से दब कर शान्त सी होती दीखती और कभी कैन्सर की तरह और भी इसकी ज्वाला अलक्ष्य रूप से फैलती, कभी मुखर हो उठती, विस्फोट सा होता। देश के नवयुवक दल तब निष्क्रिय नहीं रहना चाह रहा था। आँसू बहा कर और आहें भर कर ही अब उसे सन्तोष नहीं मिल रहा था।

इस सद्य जागरित होती हुई चेतना का प्रभाव साहित्य पर भी पड़े बिना कैसे रह सकता था? राष्ट्रीय गानों तथा कविताओं की शीघ्र ही झड़ी सी लग गयी। लोग देहातों में भी, यहाँ तक कि ब्याह आदि के अवसर पर भी कुछ गजलें, पक्की चीजें आदि सुन लेने के पश्चात् राष्ट्रीय फर्मायशें करते। यहाँ तक कि मङ्गलामुखियाँ भी तबले की ठनक पर महफिलों में इस तरह के गीत यदा-कदा गाती सुनी जातीं।

काव्य-गङ्गा स्वर्ग से भूमि पर उतरी। जनचेतना का प्रसार अब कुछ हो चुका था। वर्गचेतना भी शनैः शनैः जग रही थी। वैषम्य और अभाव के कारण कुछ-कुछ अब लोगों की समझ में आ रहा था। अतः हमारे साहित्य में भी प्रगतिशील विचारधाराओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा।

जमाने के बाद हमारा साहित्य जीवन की सर्वाङ्गीण समस्याओं से उलझ पड़ा। जीवन और जगत की प्रकृत भूमि पर उतरते ही उसकी शतसहस्र धारायें फूट पड़ीं। यद्यपि हिन्दी की किसी भी प्रान्त की बोल-चाल की भाषा नहीं होने के कारण तथा देशव्यापी निरक्षरता के कारण अभी भी जनसाहित्य की सी लोक-प्रियता नहीं प्राप्त हो सकी है इसे, किन्तु इधर इस दिशा में रचना पर्याप्त मात्रा में हो रही है।

हमारा आज का साहित्यकार जन जीवन के रूपों से परिचित हो चुका है। उसे आज किसी से घृणा नहीं, किसी की उपेक्षा नहीं। वह विकृतियों से न तो घबड़ाता है, न उनसे भागता ही है। अवश्य ही कविता से अधिक जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण कहानी तथा उपन्यासों में ही हो सका है, किन्तु जो भी है वह अभिनन्दनीय है, स्तुत्य है। हमारे जन साहित्य का यह मंगल प्रभात सुनहली रश्मियों के साथ अवतीर्ण हुआ है। साहित्य आदि ललित कलायें अब वर्ग विशेष की ही सम्पत्ति न रह पायेंगी। उनसे समस्त जन वर्ग को प्रेरणा, तथा प्राणरस मिलेगा।

इतना ही नहीं साहित्य हमें अब न केवल सस्ता मनोरञ्जन ही देकर सन्तुष्ट हो सकेगा, या किसी अलौकिक वा ब्रह्मानन्द सहोदर रस की तलाश में आकाश पाताल के कुलावे ही मिलेगा रहेगा, प्रत्युतः वह तो हमारे जीवन के प्रत्येक कदम पर हमारा दिग्दर्शन करेगा तथा पथ प्रदीप बन हमें प्रगति की राह पर परिचालित करता रहेगा।

आज समस्त संसार में जनवादी शक्तियाँ तथा उनके विरोधियों के पृथक-पृथक खेमे गढ़ चुके हैं। स्वतन्त्र भारत की तथाकथित प्रथम 'लोकप्रिय' सरकार ने भी अपना स्थान चुन लिया है। फिर भी जनता की शक्ति अजेय होती है। हमारा साहित्य इस नव जागरण में सहायक है। वह हमारे नव युग की मङ्गल-वाणी है। आज स्वान्तःसुखाय सब जन हिताय में समादित हो रहा है। और अब वह युग दूर नहीं जान पड़ता जब समस्त साहित्य जनता का साहित्य होगा।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनानन्द का काव्य-सौष्ठव

(ले०—श्री शिव बालक शुक्ल, एम० ए०, बी० ए० ऑनर्स)

भक्ति कालीन कविता—विष्णुपदी को केशव-भगीरथ ने रीतिकालीन कविता भगीरथी का स्वरूप प्रदान किया। प्रायः जलाधिक्य के कारण प्रावृटीय पयस्वनी दो या तीन पृथक-पृथक धाराओं में प्रवाहित होने लगती है उसी प्रकार रीति कालीन काव्यापगा दो स्रोतों में बह निकली। एक ओर केशव, मतिराम भूषण, देव तथा भिखारीदास प्रभृति कवि लक्षण ग्रन्थों का प्रणयन कर आचार्य कहलाने के उत्कट अभिलाषुक थे, दूसरी ओर 'लक्षण बद्ध रचना' से दूर हटे हुए स्वछन्द प्रवृति (Romantic Spirit) वाले कवियों का हृदय प्रेम-प्रलाप कर उठा। इस द्वितीय श्रेणी के प्रमुख कवि हैं बिहारी, रसनिधि, रसखान, बोधा, घनानन्द और ठाकुर। इन कवियों में घनानन्द का उनका निजी स्थान है।

शृङ्गार को काव्य-मनीषियों ने 'रसराज' माना है, और उसमें सुकवि विप्रलम्भ शृङ्गार की ओर ही अधिक आकृष्ट हुए हैं। वेदना जब द्रवीभूत होकर पलकों को गीला कर देती है तब कवि के अन्तराद्रि से काव्य परिस्यन्दन फूट पड़ता है। प्रेम का रूप गीली पलकों में निखरता है कारण कि "Love is loveliest when embalmed in tears" विरह के इन गायकों को हम तीन वर्गों के विभाजित कर सकते हैं।

(अ) प्रबन्ध-काव्य प्रणेता, जो अपने हृदगत भाव अपने ग्रन्थ की नायिका को मुख्य पात्र बनाकर व्यक्त करते हैं।

(ब) प्रेमी कवि जिनका विरह लौकिक आलम्बन पर आधृत व्यक्तिगत विरह का स्वरूप है।

(स कवि जिन का आलम्बन दिव्य है तथा जिन्होंने अपनी ईश्वर (प्रिय) विरहित आत्मा के अवसाद का स्पष्टीकरण किया है।

इस विभाजन में घनानन्द का विरह द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत आता है। मानव हृदय विभिन्न प्रकार की भावनाओं का केन्द्र है उसमें कब कैसे भाव उठते हैं कहा नहीं जा सकता। कहना न होगा कि—

है स्नेह-सबलता, संक्रामक-
दुर्बलता है मानव मनकी।

फिर मनुष्य होने के नाते घनानन्द इसके अपवाद कैसे होते? श्री इलाचन्द्र जोशी के शब्द समुद्धरणीय हैं, "संसार के प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों की जीवनियों से पता चलता है कि उन्होंने अपने जीवन में किसी न किसी स्त्री के उन्मादक प्रेम का अनुभव अवश्य किया है और उसी प्रेम की तीव्र अनुभूति से प्रेरित होकर वे अमर रचनायें लिखकर छोड़ गये हैं।" घनानन्द जी का मसृण और स्निग्ध हृदय 'सुजान' नामक वार-वनिता के सौंदर्य पर मुग्ध था। मुन्शी घनानन्द बादशाह मुहम्मद शाह के सामने पीठ करने की धृष्टता के अपराध में पदच्युत्त कर दिये गये, परन्तु सुजान-काव्य की प्रेरिका सुजान को वे भूल न सके। अतः प्रायः सभी छन्दों में 'सुजान' शब्द का प्रयोग सम्बोधन रूप में हुआ है। उनका काव्य दो कारणों से सुन्दर है। एक तो महाकवि अकबर के शब्दों में घनानन्द ने 'इश्क' को दिल में जगह दी है, यथा—

इश्क को दिल में दे जगह अकबर,
इल्म से शायरी नहीं आती।

और दूसरे उसमें रूठे हुए को उलाहना देकर मनाया जा रहा है—काश

रूठ जाये खुदा करे कोई—
हमको मौका मिले मनाने का

इस प्रकार 'सुजान' ही इस अनन्य प्रेमी की कविता का आधार है। ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि घनानन्द जी का विरह लौकिक आलम्बन (सुजान) पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित व्यक्तिगत विरह का स्वरूप है। किन्तु उनके काव्य-पठन से यह भी प्रतीत होता है कि कवि अलौकिक आलम्बन की ओर भी उन्मुख है। पर इनमें रहस्यमयी प्रवृत्ति होते हुए भी कृष्ण को ही लक्षित किया गया है; कारण कि कवि के हृदय-बाल बाल में कृष्ण-कृपा का कल्पतरु जो उगा है। फिर विरहिणी नायिका के नेत्रों में सखी द्वारा दावाग्नि देने वाले कृष्ण के स्वरूप की प्रतिष्ठा की गई है—

गोरी ! तेरे सरस दृग, किधौं श्याम घन आप ?
दावानल सों पान ये, करत विरह सन्ताप।

कहीं-कहीं पर प्रेम की विशद व्याख्या के साथ आध्यात्म प्रेम का भी दिग्दर्शन करा दिया है—

चन्दहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै एक देखिबे को रहै द्वै।

सचमुच प्रेम की पराकोटि पर पहुँच कर प्रिय और प्रेमी एक हो जाते हैं, जैसे कि ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञान की चरमस्थिति में अन्ततोगत्वा एक हो जाते हैं—

ज्ञानी त्वात्मैव मे गतम्।
—(गीता ७–१७)

अथवा—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
—(गीता ७–१८)

परमात्मा की व्यापक सत्ता का निदर्शन इससे अधिक क्या हो सकता है—

उघरौ, बरसौ, सरसौ तरसौ,
सब ठौर बसौ घर नाहिं कहूँ।

कहीं-कहीं पर होली दिवाली बसन्त आदि का भी वर्णन मिलता है। पर प्रमुखतः काव्य का विषय प्रेम ही है। चाहे उसका रूप कोई भी रहा हो।

अब भाषा पर आइये। घनानन्दजी की पूर्वीपन-लीना ब्रजभाषा में सरसता है, प्रौढ़ता है, माधुर्य है और है पाठक को वश में करने की अपूर्व मोहिनी शक्ति। भाषा में हरिद्वार से आगे प्रवाहित होने वाली जाह्नवी का सा प्रवाह है। हाँ कहीं-कहीं पर बजरी आदि के कारण जैसे गङ्गा का रूप केवल कहने के लिये बदलता है उसी प्रकार फारसी के दो-एक शब्द के प्रयोग से भाषा का स्वरूप भी बदला है। शब्दों के विकृत स्वरूपों का प्रयोग अलंकार काल की विशेषता ही रही है। ये विकृत शब्द पर्याप्त संख्या में यहाँ भी मिल जायँगे। जैसे—स्यावत, ज्यावत। और भी निम्न पंक्ति में रेखाङ्कित शब्द विचारणीय हैं—

हँसि हँसि रुवावत हौ छाहौं नाहिं
छ्यावत हौ, जागि-जागि स्वावत हौ....

फारसी क्रियाओं को अपने परिज्ञान का आश्रय दे हिन्दी के साँचे में ढाल लिया है, जैसे कसीसत फारसी के कशोदन मसदर से कशिश (खिंचाव) के अर्थ में आता है किन्तु उद्भावना-प्रवण मस्तिष्क उसकी क्रिया बनाकर खींचता है, अर्थ करता है ऐसे कई शब्दों को क्रिया स्वरूप देने में तुलसी और भूषण ने भी अपनी रुचि दिखलाई है।

यों तो 'भाव अनूठे चाहिये भाषा कोऊ होय' के अनुसार हमारा ध्यान भाव की उच्चता पर ही जाता है किन्तु ब्रज के छैल छबीले की लोकरञ्जनकारी लीलाओं की कथा जब हम भावानुरूपिणी भाषा में सुनते हैं तो उस मणिकाञ्चन संयोग से हृदय कण्टकित हो जाता है। भाव यदि कहीं पर वक्रोक्ति का आश्रय ग्रहण कर छींटे उछालते हैं तो वहाँ भाषा का स्वाभाविक प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। इस चलती हुई परिष्कृत ब्रजभाषा के दो एक उदाहरण पर्याप्त होंगे—

आरतिवन्त पपीहन को,
घन आनँद जू पहिचानौ कहा तुम ?

और—

मो गति बूझि परै जबही,
जब होहु घरीक ह्वै आपुते न्यारे।

तो क्या मैं लखनवी जुबान में अर्ज करूँ कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायर ने कलेजा निकाल कर रख दिया है। इमर्सन ने ठीक ही कहा है—

"We must be our own before we can be anothers"

फिर आगे बढ़िये तो—

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अबहीं करेजो किन कोरि ले।
दैड परे पापी ये कलापी निसि द्यौस ज्यौंहीं,
चातक रे घातक ह्वै तूहू कान फोरि ले॥

कोकिल कलापी और चातक को विश्व की अनुभूतियों को अपनी अनुभूति समझने वाला हृदय कदापि ऐसा ताना न दे पाता। बेचारी प्रोषितपतिका के व्याज से कवि हृदय का कोना-कोना स्पष्ट है। यह है घनानन्दजी की भाषा का सौष्ठव। नाद-सौन्दर्य का एक उदाहरण देकर यह प्रसङ्ग समाप्त किया जायगा। आँग्ल भाषा में भाव निर्देशक ध्वनि (sound echoing sense) के सुनने के अभ्यासी जरा इधर कान दें—

जगत के प्रान छोटे बड़े को समान,
घन आनँद-निधान सुखदान दुखियान दै।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'आनँदनिधान सुखदान दुखियानि दै' में मृदङ्ग की ध्वनि का बड़ा सुन्दर अनुकरण है। अतः 'यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। × × × अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यञ्जना के लिये भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं। भाषा के लक्षक और व्यञ्जक बल की सीमा कहाँ तक है इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास।)

सफल कलाकार मानव हृदय की अन्तःप्रकृति का ऐसा व्यापक विश्लेषण करते हैं कि उसे पढ़कर हमारे हृदय की रागात्मिका वृत्ति उसमें पूर्णतः लीन हो जाती है। अनुभूत घटना और दशा पर कल्पना का मुलम्मा अतीव सुन्दर प्रतीत होता है और यदि वह कुशल करों द्वारा हुआ तो पूर्णतया हृदयहारी होगा। घनानन्द ने अनुभव किया था कि वियोग-वेदना कैसी असह्य वस्तु है—

सब सह सकता है परोक्ष ही
नहीं सहन कर सकता प्रेम।
—गुप्तजी (पञ्चवटी)

किन्तु इससे क्या व्यापकता की प्रत्यक्षानुभूति तो विरह-वेदना ही में होती है। इसी वेदना की मार्मिक व्यञ्जना उनकी शैली का विशेष गुण है।

'मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत' के अनुसार इन्हें ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा प्राप्त थी। अतः ये काव्य-क्षेत्र में हृदय-पक्ष प्रधान रचना लेकर अवतीर्ण हुए। सौन्दर्य का चित्र कल्पना की तूलिका से रँगते समय वे विभाव पक्ष की ओर नहीं आकृष्ट हुए अपितु उसके प्रभाव से प्रभावित होने के साधन जुटाये हैं। लाक्षणिक व्यङ्ग-मूलक पद्धति पर चलने वाला कवि विरोध और विरोधाभास का प्रश्रय ग्रहण करता है—

गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दशा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है॥

ये विलक्षण लाक्षणिक प्रयोग थिर और चर, ढकी तथा उघरति और कल न परति, कल जो परति होय, विरोधाभास की चमक से उद्दीप्त हो उठे हैं। एक उदाहरण और ले जये—

न खुली मुँदी जानि परैं कछू ये,
दुखदाई जगे पर सोवति हैं।

बेचारी दुखमारी आँखें कब खुलीं और कब मुँदीं, जान ही नहीं मिलता। ये तो जगने पर भी सोती सी मालूम होती हैं कितनी सुष्ठु वर्णना है?

इतिवृत्तात्मकता के प्राचीन पथ पर चलता-चलता कवि-पथिक अब लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य के काव्य-प्रान्त में आ पहुँचा। प्रयोग-वैचित्र्य के दो नमूने देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ह्वै है सोऊ घरी भाग उघरी अनंद घन'

तथा—

'उघरो जग छाय रहे धन आनंद'

भाग उघरी घरी—खुले भाग्यवाली घड़ी—तथा उघरो जग—संसार जो चारों ओर घेरे था दृष्टि से हट गया—ये विशेषण विपर्यय अँगरेजी की walking stick से कहीं बढ़कर हैं।

अमूर्त में मूर्त विधान को पूर्ण प्रतिष्ठा कवि ने सफलतापूर्वक की है। साम्प्रतिक युग इसे अभिव्यञ्जनावाद के नाम से पुकारता है।* साङ्गरूपक युक्त अमूर्त में मूर्त विधान का उदाहरण लीजिये—

रूप-चमूप सज्यो दल देखि,
भज्यो तजि देसहिं धीर-मवासी।
नन मिले उरके पुर पैठत,
लाज लुटी न छुटो तिनका सी॥
प्रेम दुहाई फिरी घन आनँद,
बाँधि लिये कुलनेम गुढ़ासी।
रीझि-सुजान सची पट्रानी,
बचो बुधि बापुरी ह्वै करि दासी॥

इतना ही नहीं यहाँ तो कृपा के कान लगे हैं और पुकार मौन में है—

कृपा कान मधि नैन ज्यों त्यों पुकार मधि मौन॥

आज से लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व ऐसी रचना करने वाले कवि का आजकल 'वेदना के ही सुरीले हाथ से' सदृश कथन करने वाले कलाकार को कृतज्ञ होना चाहिए।

विरोध और विरोधाभास के प्रयोग से तो रचना में उत्कृष्टता आ ही गई है उक्ति के अर्थ की विशिष्टता भी कम नहीं दीखती—

मेरो मनोरथ हू वहिये अरु
हैं मो मनोरथ पूरनकारी।

'हू' अव्यय कितनी दूर की बात पर संकेत करता है। हे अर्जुन के सारथी मेरे भी मन रूपी मनोरथ को वहन करो। जिन पाठकों ने सूर के 'वरु ये बदराऊ बरसन आये' में वरु की व्यञ्जना और निरालाजी के 'जागो फिर एक बार' में फिर शब्द का संदेश समझ पाया है, उन्हें इस 'हू' में उससे अधिक आनन्द मिलेगा।

इनकी शैली का दूसरा विशेष गुण है अन्तर्वृत्ति निरूपण (Subjectivity) इस गुण का प्राधान्य रहने के कारण वाह्यार्थ विशिष्टता (Objectivity) के दर्शन कम होते हैं। ऐसे स्थल तो गोपी कृष्ण सम्वाद और होली पर्व वर्णन में ही प्राप्त हैं। वाह्य क्रियाओं, चेष्टाओं और व्यापारों का प्रदर्शन व्यर्थ था कारण कि उनका हृदय-वन प्रेम-दावानल से दग्ध हो रहा था। नीचे वाह्यार्थ विशिष्टता के लिए एक रूपचित्रण पर दृक्पात कीजिये—

हुलास भरी मुसकान लसै,
अधरानि ते आनि कपोलन जागै।
छुटीं अलकैं मृदु मज्जु मिहीं सुति,
मूल छलानि अनी मुरि लागै॥
बड़ी अँखियान में अञ्जन रेख,
लजीली चितौनि हिये रस पागै।
सुहाग सों ओपित भाल दिपै,
घन आनँद जान पिया अनुरागै॥

इनकी शैली में मुहाविरों का प्रयोग सुन्दर ढङ्ग से हुआ है। कभी-कभी एक ही छन्द में मुहाविरों की लड़ी सी पिरोयी गई है। उदाहरण के लिए—

× × × रीझ के हाथन हारिये।

तथा—

अवधि गुनै बढ़ाय, चोपनि चढ़ाय, कीनौ खेल,
हाथ साथ लाग्यो, समीप न कहूँ लह्यो।

यत्र तत्र शब्द या मात्राधिक्य जनित गतिभंग दोष के हटाने के लिए कविवर केशवदास की भाँति अ को ऽ लिखा है जैसे—

* देखिये शुधांशु लिखित काव्य में अभिव्यञ्जनावाद। —ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान प्यारे जोऊ कहूँ दीजियै स'देसौ तौऊ ब।

हिन्दी-साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में वृद्ध केशव अपने श्वेत केशों को कोसने लगे थे। वे कविता कामिनी के प्रेम-पाश में बँध कर उसे सभी यथेष्ट अलंकारों से समलंकृत करना चाहते थे, पर घनानन्द का यहाँ भी अपना राग है। उनके काव्य के नैसर्गिक सौन्दर्य में मन-मयूर को वैसे ही थिर कर देने की शक्ति है फिर अलकारों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर रखने में प्रतिभा का अपव्यय ही था—

'नहीं मुहताज जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी'

इतना होते हुए भी यत्र-तत्र उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अनुप्रास यमक श्लेष सन्देह, अपह्नुति, व्यतिरेक परिवृत्त, असंगति प्रभृति अलङ्कारों का उचित प्रयोग किया गया है। हाँ विरोध और विरोधाभास का तो सुतरां प्रयोग हुआ है। मैं तो कहूँगा कि विरोधाभास के प्रयोग में उन्हें एकाधिकार है। दो एक उदाहरण लीजिये—

(अ) त्यों पुकार मधि मौन।

(ब) थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।

(स) उजरनि बसी (लक्षणा के सहारे विरोध)।

श्लेष का एक नमूना देखिये—

नेह भीजी बातैं रसना पै उर आँच लागैं,
जागैं घन आनँद ज्यों पुञ्जनि मसाल हैं।*

यमक—

मोही[1] मोह जनाय के,
अहे अमोही जोहि।
सोही[3] मोही[2] भो कठिन,
क्यों करि सोही[4] तोहि॥

असंगति—

नैनन में लागै जाय जागै सु करेजे बीच,
या बस है जीव धरि होत लोट पोट।
रोम रोम पूरि परि व्याकुल सरीर महा.....

अपह्नुति—

जारति अंग अनंग की आँचनि,
जोन्ह नहीं सुनई अगिलाई।

व्यतिरेक—

नित ही अपूरब सुधाधर वदन आछो,
मित्र अंक आये जोति जालनि जगत है।
अमित कलान ऐन रैन द्यौस एक रस,
केस तम संग रंग राजनि पगत है॥
सुनि प्रानप्यारी! घन आनँद ते दूनां दिपै
लोचन चकोरनि सो चोपनि खगत है।
नीठि दीठि परे खरकत सो किरकिरी लौ;
तेरे आगे चन्द्रमा कलंकी सो लगत है॥

परिवृत्त के उत्कृष्ट उदाहरण पर दृक्पात कीजिये—

मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

मन—४० सेर का मन—लेते हो पर एक छटाँक अर्थात् उसका $\frac{१}{६४०}$ भाग भी नहीं देते। अथवा छटाँक का विपर्यय एक कटाक्ष भी नहीं देते। उपमा उत्प्रेक्षा और अनुप्रास के उद्धरण देना आवश्यक नहीं वे तो पर्याप्त रूप में विद्यमान हैं। सांग रूपक का उदाहरण 'रूपचमूप' में द्रष्टव्य है।

अब घनानन्दजी की प्रेम-व्यञ्जना को लीजिए। उर्दू के महाकवि नासिख ने इश्क का मापदण्ड अच्छा बनाया, वह फर्माते हैं—

आतिशे इश्क वो है,
जिसमें समन्दर* जल जाय।
इक शरर जाय जो पत्थर में,
तो पत्थर जल जाय॥

---

* नेह = प्रेम, तैल, बातें = बातचीत, बत्तियाँ।

१—मोहित किया। २—मुझसे (मेरी ओर से) कठोर हो गया। ३—वह हृदय। ४—शोभित हुआ।

* इस्लामी अकीदह के लिहाज से समुद्र का वह कीड़ा जो समुद्र का जल बड़वानल की भाँति सोखता है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस इसी प्रेम की एक स्फुलिंग ने घनानन्द के कुसुम से कोमल हृदय को दग्ध कर डाला। भगवान जानें दोनों ओर 'बेक़रारी' थी या नहीं। दोनों ओर बराबर आग लगी हुई थी किंवा नहीं। किन्तु शेली के ये शब्द अवश्य चरितार्थ होते हैं—

"When hearts have once mingled
Love first leaves the well built-nest
The weak one is singled.
To endure what it once possesst."
—P. B. Shelley.

प्रेमी ने प्यार करके छोड़ दिया। बेचारी नायिका यदि कपोत व्रत भी धारण करे तो भी दुख ही दुख है। अतः वेदना को अश्रु-व्याज से बहाना चाहती है। उसके प्राण अब तक निकल गये होते किन्तु—

एक बिसास की टेक गहे,
लगि आस रहे बसि प्रान बटोही।

और आज का कवि जिसने अपनी वेदना को नायिका के मुख में उड़ेल दिया है कहता है—

पिऊँ ला खाऊँ ला, सखि, पहनलूँ ला सब करूँ,
जिऊँ मैं जैसे हो यह अवधि का अर्णव तरूँ।
—गुप्तजी (साकेत)

प्रेम कई प्रकार से उत्पन्न होता है किन्तु उसकी पद्धतियाँ विशेषरूपेण चार हैं। प्रथम प्रकार का प्रेम विवाह सम्बन्ध सम्पादित होने पर दम्पति में होता है जिसका उत्कर्ष जीवन की भयानक परिस्थितियों में होता है। द्वितीय में नायक नायिका में दर्शनजन्य प्रेम, तृतीय राजाओं का चेटियों से प्रेम तथा चतुर्थ गुण श्रवण स्वप्न दर्शन जनित प्रेम है। इनमें द्वितीय श्रेणी का दर्शन जन्य प्रेम कभी-कभी बड़ा विकराल रूप धारण कर लेता है। घनानन्द की नायिका की क्या दशा हुई, उसी के शब्दों में सुनिये—

जब ते निहारे घन आनँद सुजान प्यारे,
तब ते अनोखी आगि लागि रही चाह की।

चाह की यह 'आगि' सामान्य आग नहीं। पानी बरसा करे पर यह कब बुझने की है। उधर आग लगी इधर पानी बरसा—

बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै,
नितही* अखियाँ उघरी बरसैं।

यदि आँखें बादलों के समान सामान्य जल गिरातीं तो सम्भव था कि यह आग बुझ भी जाती किन्तु यहाँ तो—

अँसुवा हिय-पै घिय धार परै,
उठि स्वास झरै सुठि आस गहौं।

जब आग पर घी ही पड़ रहा है तो वह क्यों न बढ़ेगी। 'प्रसादजी' का हृदय भी जल उठा—

शीतल ज्वाला जलती है ईंधन होता दृग जल का।

घनानन्द की आग उग्र रूप धारण किये है क्योंकि ईंधन तो 'घिय धार' के सहारे तेजी पकड़ता है और वहाँ घिय धार ही गिरती है।

कुछ भी हो प्रेमिका अपने प्रेमी के सौन्दर्य पर लट्टू है। उसकी अनुपमेय सुन्दरता से प्रभावित वह कह उठी—

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागति ज्यों ज्यों निहारिये।

मतिरामजी ने तो इसी प्रकार के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कहा था—

ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि,
त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई।

इसी सौन्दर्य से प्रभावित 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः' कहा और महामति कीट्स 'A thing of beauty i joy for ever' कह सन्तुष्ट हुए तथा बिहारी ने 'चतुर चितेरे क्रूर' बना डाले—

---

* निसि दिन बरसत नयन हमारे।
—(सूरदास) मिलाइये।

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भये अति निठुर मिटाय पहिचान दई।

प्रिय निष्ठुर हो गये। सारी पहिचान ही मिटादी। हृदय पटल पर नायिका की स्मृति धुँधली पड़ गई। शब्दों में कितना दैन्य भरा है। सच हैं Out of sight out of mind दृष्टि से ओझल मस्तिष्क से परे हो जाता है।

प्रेमी को प्रिय की प्रत्येक वस्तु प्यारी लगती है। उसकी चेष्टायें क्रियायें, व्यापार चाल सब कुछ उसे प्यारा है अतः उस पर वह न्यौछावर होता है देखिये—

जहाँ ते पधारे मेरे नैननि हीं पाँव धारे,
वारे ये विचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौं।

प्रिय दर्शन सुख में आँखों के पाँवड़े बिछना और पग पग पर प्राण न्यौछावर स्वाभाविक ही है।

प्रार्थी की प्रार्थना जब स्वीकार नहीं होती तब उस में अपूर्व साहस और बल का सञ्चार हो जाता है। प्रेमिका ने प्रण कर लिया कि बस अब तो प्रेमी के हृदय में दया उद्भूत कर के ही मानेगी। उपाय श्लाघ्य है—

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो सिल धरि छाती,
पूरे पन सिन्धु मैं न बूड़त सकाय हौं।
दुख-दव हियं जारि, अन्तर उदेग आँच,
रोम-रोम त्रासनि निरन्तर तचाय हौं॥
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आरे लौं चलाय हौं।
ऐसे घन आनँद गही है टेक मन माँहि,
ऐरे निरदई तोहि दया उपजाय हौं॥

सच्चा प्रेम तो इसी का नाम है कि उसको खाक कर स्वार्थ का रूप न दे दिया जाय। अच्छा वह तो जवाब ही नहीं देते मुझे क्या गरज पड़ी है जो बार-बार मिन्नत करूँ। मगर महाकवि ग़ालिब इसी उसूल के क़ायल हैं—

हम पुकारें और खुले, यूँ कौन जाय!
यार का दरवाजा पायें गर खुला।

विरहाकुला प्रेमिका को सारी सृष्टि उसी के समान दीखती है। संयोग में जो वस्तुयें कामोद्दीपक थीं आज वे ही भुलसी जा रही हैं। रसलीन के 'स्वेत स्याम रतनार' दृगों को देव ने 'वरुनी बघम्बर' पहना योगिनी बना डाला तो बेचारी गोपियाँ यदि अपनी मनोदशा में फाग का अप्राकृतिक रूप ही देख लें तो क्या बुरा है?

रङ्ग लियो अबलानि के अङ्ग तें,
च्वाय कियो चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सौंधे सकेलि,
मचाय दियो घन आनँद ढोवा॥
प्रान अबीरहि फेंट भरे अति,
छाक्यो फिरै मति की गनि खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी!
ब्रज मो बिरहा भयो फाग विभोवा॥

इसी में व्यापकता की भावना अन्तर्लीन हो गई है।

हम शब्दों के सामान्य अर्थ जान ही लेते हैं परन्तु घनानन्द जी ने उनके अर्थों की सार्थकता सिद्ध कर सजीव चित्र, गाकर और सप्राण वर्णन और भावनाओं का रूप रञ्जन किया है।

पर काजहि देह को धारि फिरौ,
पर जन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ,
सब ही विधि सज्जनता सरसौ॥
घन आनँद जीवन दायक हौ,
कछू मेरी हू पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के,
आँगन मो अँसुवानहि लै बरसौ॥

पर जन्य (दूसर के लिये जन्मा हुआ) जीवन (जल और जीवन) का मूल है। सागर का खारी जल अपने में लेकर मीठा कर देते हो। यदि नायिका के ऊपर तरस खाकर उसके खारी आँसू ले निर्दय के आँगन में मीठे जल रूप में बरस जाते तो अच्छा होता और निष्ठुर नायक के हृदय में भी प्रेम उमड़ने लगता। कालिदास जी ने भी तो मेघ ही को दूत बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियतमा के पास प्रेषित किया था। एक स्थल पर मन के रथ को वाहन करने के लिये अर्जुन सारथी से प्रार्थना की गई है।

प्रेमी चला गया और कोई तिथि नहीं बता गया कि अमुक तिथि तक वह प्रत्यावर्तित होगा, किन्तु आज भी नहीं आया। प्रतीक्षा के क्षण 'विधि के दिन लौं' बढ़ गये और—

जबते तुम आवन आस दई,
तबते तरफौं कब आइहौ जू?

इसी प्रतीक्षा में समय कट रहा है और वह जी रही है, कारण कि—

फ़िराके यार में इस आस पर हम जीते हैं,
वो अब आते हैं आते हैं वो अब आते हैं।

इसी से तो घनानन्द की नायिका का हृदय खण्ड विविध भावनाओं से अध्युषित है। वरुनियों में भी अभिलाषा भरी हुई है और वे "रुमांच ह्वै काँपति हैं।" बरौनियाँ खड़ी होगई हिलीं। यही तो आँखों का सात्विक भाव रोमाञ्च और कम्प है। प्रेमियों के हृदय को हुलसाने वाले ऋतुराज ने प्रोषितपतिका की क्या दशा कर डाली? उसके—

सुधारे हैं तूने प्रसून के सायक।

और फिर—

पौन तुरङ्ग चढ़्यो वनि यों,
बनितानि अहेरै कढ़्यौ दुखदायक।
हौं घन आनंद जान कहाँ,
रितुराज भयो रतिराज सहायक॥

लो पवन तुरंग पर आरोहण कर फूलों के बाण तूणीर में रख स्त्रियों के शिकार के हेतु बसन्त कामदेव का सहायक बन गया। कितना दैन्य भरा है इन पंक्तियों में। कामदेव के कुसुमायुध और पुष्प धनु की सार्थकता ऋतुराज के सम्पर्क के कारण कितनी सुन्दर बन पड़ी है। 'साकेत' में उर्मिला इसी प्रकार 'काम' से प्रार्थना करती है।

मुझे फूल मत मारो।

निर्बल का सहायक संसार में कोई नहीं। अभी बसन्त सता ही रहा था अब रात का व्यवहार देखिये—

कहा कहिये सजनी रजनी गति,
चन्द कढ़ै कि जियैं महिं काढ़ै।
× × ×
सु वा पति संग न जानति है,
घन आनँद जान विछोह की गाढ़ै।
वियोग में बैरिनि बाढ़ति जैसे,
कछू न घटै जु संजोग हू बाढ़ै॥

वियोग में तो रात बढ़ती है—काटे नहीं कटती, किन्तु संयोग में चिर वियोगियों के मिलने पर जान ही नहीं पड़ती। प्रेमचन्दजी ने ठीक ही कहा है—'वियोगियों के मिलन की रात बटोहियों के पड़ाव की रात है जो बातों में कट जाती है।' घनानन्द की 'वियोगिनी' के पास कोई साधन सूर की वियोगिनी गोपिकाओं का सा नहीं है, अन्यथा समय कट जाता।

प्रायः हमारा मन जिन विषयों में निरन्तर तल्लीन रहता है उन्हीं को हम स्वप्न में देखते हैं। वियोगिनी प्रिय का ही ध्यान किए हैं और कह उठी—

सोवत भाग जगे सजनी,
दिन कोटिक वा रजनी पर वारे।
नेह निधान सुजान सजीवन,
औचक ही उर बीच पधारे॥
सौतिन तें पिय पाय इकौसे,
भरे भुज स च कोच निवारे।
बैरिनि दीठि जरौ घन आनँद,
मो जिय लै पल-पाट उपारे॥

अन्तिम पंक्ति में वेदना भरी खीज द्रष्टव्य है। अच्छा ही हुआ पल-पाट उघर गये। सूर की गोपिका ने 'दीठि' के स्थान पर 'निदिया' को बैरिनि, और मतिराम की प्रेमिका ने 'भट्ट' से नींद को 'निगोड़ी' बताया था *।

मिलाइये *— कहा करौं बैरिनि भई निदिया निमिष न और रही। —सूर
और भट्ट न भई कछू बात गई इतने ही में नींद निगोड़ी। —मतिराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहाविरे का प्रयोग, अमूर्त में मूर्त विधान, हृदय का आकुल आवेग, कल्पना की ऊँची उड़ान और भाव की सुकुमारता एक साथ देखिए—

उत ऊतरु पाँय लगी मँहदी,
सु कहाँ लगि धीरज हाथ रहै।

उत्तर के पैर में मँहदी लगना धीरज का हाथ में रहना बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। पौराणिक कथानकों के आश्रय से सुन्दर भावाभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण लीजिये।

गोरी तेरे सरस दृग, किंधौ स्याम-घन आप।
दावानल सों पान में, करत विरह संताप॥

'सन्देह' का सहारा लेकर, कृष्ण के दावानल पान का प्रसंग छेड़कर आँखों को कृष्ण से उपमा दे दी। मैं समझता हूँ कि उनकी यह सखी कल्पना की साक्षात् मूर्ति थी, कारण कि ऐसा कह कर उसने लीलाधाम कृष्ण की मूर्ति को आँखों में सदा वर्तमान रहने की ओर संकेत किया है।

सांगरूपकों के द्वारा जो भावाभिव्यञ्जन हुआ है उसमें निष्प्राणों में भी प्राण डालने की शक्ति है। इसके लिए 'रूपचमूप' और 'आसागुन' से प्रारम्भ होने वाले पूर्वोद्धृत छन्द ही अलम होंगे।

अन्त में कवि की नायिका ने वियोग-वह्नि में धधकते हुए हृदय से अमाप्य दैन्य और वेदना भरी मनुहार प्रकट की—

मेरी सुधि भूलहि बिचारियै सुरतिनाथ!
चातिक उमाहै घन आनँद अचोन कौ।
ऐसी भूल हू सौ सुधि रावरी न भूलै क्यों हूँ,
ताहि जो बिसारै तो सहारौ फिरि कौन कौ॥

नहीं मालूम उसे—

जाकी मति गति औ सुरति सब हारिये जू,
ताहि कहौ केसे यौं बिसारि दीजियत है।

किन्तु अँगरेजी में कहा है 'Hope springs eternal in the human breast' अतः—

जीवते भई उदास तऊ है मिलन आस,
जीबहि जियाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे।

आगे चलकर 'साकेत' में गुप्तजी की 'उर्मिला' 'अवधि शिला' के 'गुरुभार' को 'दृगजल धार' से काट रही थी। मृत्यु हो जाने पर भी प्रेमिका का अटल विश्वास देखिये—

हेत खेत धूरि चूरि चूरि ह्वै मिलैगौ तब,
चलैगी कहानी घन आनँद तिहारे की।

नीचे इसीसे मिलता जुलता शायराना लतीफा क़ाबिले खयाल है—

पसे मुरदन बनाये जाँयगे सागर मेरी गिलके,
लबे जाँ बख्श के बोसे मिलेंगे खाक में मिलके।

घनानन्द की कहानी विश्वव्यापी है, और यहाँ अपनी आत्मतृप्ति तक ही उर्दू शायर सीमित होगया है। कोहनूर के प्रलोभन में नादिरशाह के सिपाहियों द्वारा प्रेमी घनानन्द का हाथ काट डाला गया। मरणासन्न घनानन्द ने कहा—

अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को।

प्रेमपूर्ण भावाभिव्यक्ति देख 'सरोजकार' के शब्द याद आते हैं, 'इनकी कविता सूर्य के समान असमान है' फिर इसे दीपक दिखाना व्यर्थ है तब भी हम सूर्य के समक्ष श्रद्धा-प्रदीप प्रकाशित कर उसका नीराजन करते हैं। भक्तमालाकार रघुराजसिंहजी ने कहा था—

घन आनँद के विपुल कविता,
अब लौं हरत कविन के चिन्ता।

इनकी कविता सामान्य नहीं है। समीक्षक की जड़ कलमुँही लेखनी उसका मूल्य हृदय पर बुद्धि का मस्तिष्क जनित चश्मा चढ़ाकर कैसे निर्धारित कर सकती है। घनानन्दजी के ही शब्द इस विषय में श्रोतव्य है।

समुझै कविता घन आनँद की,
हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिवाद की चेतना

(ले०—श्री मोहनलाल, एम० ए०, साहित्य-रत्न)

साहित्य समाज की चेतना में साँस लेता है। जब तक साहित्य में विशाल जन-राशि के प्राण नहीं बोलते, वह लोक की वस्तु नहीं हो सकता। सच्चा कलाकार युगद्रष्टा ऋषि की तरह जनता के भावों और विचारों को साधता है और उन्हें प्रगट करता है। उसकी अनुभूति में जनता अपनी प्रगति और अभिव्यक्ति खोजती है। युग की वास्तविकता से विलग होकर साहित्य निस्पन्द, शून्य और विषादमय हो जाता है, उसके स्वर गीले और गीत साश्रु हो जाते हैं। १९३६ में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक-संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचन्दजी ने कहा था—"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो—जो हममें गति और संघर्ष और बेचैनी पैदा करे; सुलाए नहीं; क्योंकि अब और अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है।" इस एक युग की अवधि में प्रेमचन्दजी की वाणी ने और भी अधिक शक्ति ग्रहण की है। हम यह अनुभव करते हैं कि प्रगतिवाद की चेतना में जीवन की सचाइयों का प्रकाश है, उसके जागरण में क्रान्ति का अनुराग है, उसके संघर्ष में जिहाद की ज्वाला है, उसका विकास ऊर्ध्व गतिशील है।

साहित्य को किस सीमा तक 'प्रगति' और 'प्रतिक्रिया' की तुला पर रखा जा सकता है, यह विचारणीय है। जैनेन्द्रजी की मान्यता है कि आगे बढ़ने का सीधा-सादा अर्थ अगर प्रगति शब्द से लिया जाय तो अपने प्रति ईमानदार लेखक प्रगतिशील है। अगर प्रगति को उसकी वादिता में जकड़ें और प्रगतिवाद को विदेशी प्रॉग्रेसिविज्म (Progressivism) का अनुवाद मात्र मानें तो प्रश्न है, क्या हमने इस डेढ़-दो युग के अन्दर ही चलना सीखा है अब तक जीवन क्या एकदम स्थावर निष्क्रिय था? साहित्य के क्षेत्र में क्या यह सम्भव है कि 'होजा और दुनिया बदल गई' की उक्ति चरितार्थ हो—कोई नवीन परिवर्तन अचानक, अनायास हो जाय? हमें यह देखना है कि प्रगतिवाद कहाँ तक 'साहित्य में राजनीतिक लैफ्टिज्म (Leftism) का रूप है और उसकी जड़ें संस्कृति में नहीं? किस अंश तक 'वह भविष्य को अतीत के विकास से अधिक उसके इन्कार के रूप में देखता है' और कहाँ तक 'वह वर्ग-विग्रह को बढ़ा कर वर्गहीनता लाने के मिथ्यावाद और भ्रम को पोषण देता है' किस सीमा तक, 'वह संचराचर प्रकृति के साथ सामञ्जस्य नहीं बल्कि संघर्ष बढ़ाने की परिभाषा में मनुष्य की उन्नति की कल्पना करता है' और क्या वास्तव में 'उसमें मनुष्य के लिए अपनी वासनाओं के नियमन और संयम का धर्म स्पष्ट स्वीकृत नहीं? और अगर वह इन प्रश्नों का हामी है तो क्यों? प्रगतिवाद वास्तव में कोई मतवाद नहीं, वह तो जीवन दर्शन का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। जीवन दर्शन के दृष्टिकोण सदैव से ही बदलते हैं। वैदिक ऋषियों ने जीवन की सार्थकता धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति में देखी थी और महाकाव्यकारों ने नीति परकता में। भक्त कवियों ने जीवन को दैवी अनुग्रह के लिए देखा, उस नियंता की निकटता प्राप्त करना ही उनका उद्देश्य था। शृङ्गारी कवियों के लिए वह 'राधिका कन्हाई सुमिरन' का बहाना बना, उन्होंने जीवन में माँसल सौंदर्य, मानसिक प्रेम और मनोरञ्जन को ही सर्वोपरि स्थान दिया। रहस्यवादी कवियों ने जीवन की सफलता उसकी क्षुद्र सीमाओं के अतिक्रमण में मानी। लेकिन इन में कोई भी दृष्टिकोण किसी मौलिक प्रश्न को छूने वाला नहीं था। युग-युग से चले आए उत्पीड़न और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोषण से मनुष्य के लिये वहाँ मुक्ति नहीं थी। अन्याय से क्षुब्ध, दमन से आक्रान्त, वह अपनी विवशता में छटपटा रहा था। उसकी प्रवृत्तियाँ सहज नहीं रहीं, उनमें विकृति के कीटाणु लग चुके थे। स्पष्टतः मनुष्य के उपचेतन मस्तिष्क में उसकी अवरुद्ध तड़प और पिपासा संग्रहीत होती गई और अन्त में अर्थ-विधान की दूषित व्यवस्था से विद्रोह कर मानव की अभाव-जनित अशान्ति साहित्य के नव जागरण में अपनी तीव्र अभिव्यक्ति खोजने लगी।

पीड़ित-दलित के प्रति सहानुभूति का भाव साहित्य के सभी कालों में किसी न किसी रूप में मिलता है। उत्पीड़ित के लिए इसने दया, ममता, करुणा दिखलाई, शोषक के विरुद्ध इसने विरोध का स्तूप खड़ा किया। कवि का हृदय व्याकुल था जब उसने 'पोषण फूल प्रताप सी' को स्वतंत्रता का अलख जगाए रखने के लिए उत्तेजना दी। तुलसी ने जब 'खेती न किसान की, भिखारी को न भीख' लिखा, उस समय उनका हृदय अवसाद से निश्चय ही व्यथित हो रहा होगा। सामाजिक दुर्व्यवस्था से कबीर, नानक आदि संत कवि भी विक्षुब्ध हुए थे। राजनीतिक अनाचार ने भूषण के काव्य को भी गति दी थी। परन्तु इन कवियों की यह सहानुभूति पूर्व प्रतिक्रिया किसी मौलिक दृष्टिकोण का परिणाम नहीं थी। वह इसलिए व्यक्त हुई थी क्योंकि उत्पीड़ित के प्रति संवेदना प्रगट करना मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध का एक आवश्यक अंग रहा है।

पश्चिम सम्पर्क होने भारतीय समाज और साहित्य में नवीन संघर्ष हुए। राजा राममोहनराय और स्वामी रामानन्द के उद्योग से सामाजिक क्षेत्र में जाग्रति की लहर दौड़ने लगी थी। राजनीतिक क्षेत्र में विदेशी पूँजीवाद साम्राज्यवाद के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। सुधार की ऊपरी टीमटाम दिखा वह शोषण का कार्य आराम से कर रहा था। पर युग के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरणा पा साहित्य ने सामाजिक और राजनीतिक जागरण के लिए कुछ विकलता प्रगट की। इस समय का साहित्य समझौते का साहित्य है। कवि की धारणा थी कि अँग्रेजी राज्य सभी भाँति सुखकारी है, दुख केवल इस बात का है भारत की लक्ष्मी विदेश चली जा रही है। आत्म-विश्वास की यह प्रवृत्ति द्विवेदी युग में भी अत्यन्त प्रबल बनी रही, क्योंकि लेखकों का एक बड़ा समूह संतोष के साथ बँधी हुई रूढ़ियों को अपना कर चल रहा था। 'हम क्या थे, क्या हो गये'—बताने में ही कवि ने अपनी वाणी की सार्थकता समझी। 'विगत हों नरपति, रहें नर मात्र' की आवश्यकता का अनुभव तो उसने बहुत बाद में किया। प्रथम महायुद्ध के बाद भारत की आशा और आकांक्षा को दमन के पाठ से निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया। राष्ट्रीय जीवन में बल पड़ने लगा। प्रश्नों की जटिलता बढ़ी। मुक्ति की माँग सक्षम हुई। विक्षोभ, व्यथा, अवसाद और अधीरता के कुण्ठित वातावरण में कवि की आत्मा तड़प उठी। क्रांति का संदेश लेकर छायावाद का कवि आया। 'जला रे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन' की आवाज उठी। निराला ने बादल गीतों में नूतन को निमन्त्रण दिया। पंत ने रवर्तन आह्वान किया। छायावाद के सम्बन्ध में महादेवी ने लिखा कि 'कलाकार निर्माण देकर ध्वंस का प्रश्न भाता है, ध्वंस देकर निर्माण का नहीं।' पर छायावादी कवि ने जीवन के यथार्थ स्तर पर न तो निर्माण ही किया और न ध्वंस ही। वस्तुतः क्रांति की मूल चेतना को वह समझ न सका। उसने 'आँसू' और 'अवसाद' को नैसर्गिक (Natural) मान कर अपनाया। अपने सूनेपन में वह 'प्राणों का दीप' जला कर प्रकाश करने लगा। वेदना का क्रय-विक्रय उसे प्रिय लगने लगा। एक 'नया संसार' बनाने की उसने अभिलाषा प्रगट की—

आओ बसावें एक नया संसार,
जहाँ सपने हों पहरेदार।
—प्रसाद

चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार।
—महादेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नए संसार के एकाँत में कवि की अन्तः-प्रेरणा अपने चारों ओर चक्कर काटने लगी, और धीरे-धीरे वह घोर वैयक्तिक तथा अहंवादी हो गई। पूँजीवादी व्यवस्था पर आश्रित मध्यवर्गी समाज उसे समझ सकने में असमर्थ था, इसलिए कवि ने उसकी उपेक्षा कर 'कला कला के लिए' के सिद्धान्त को अभय दिया। इस एकाँत में उसके तार टूट गए, आखें गीली हो चलीं—विषाद, शून्य और स्वप्न ही वहाँ संचित होते गए। कवि भूल गया कि कला का सम्बन्ध मानवता से है—उसकी जड़ें जनता के अंतर्तम में है, और उसका लक्ष्य जनता के भावों, विचारों और कामनाओं को व्यक्त करना है, जनता को ऊँचा उठाना है, उसके कलाकारों को जाग्रत करना है—विकसित करना है।* इसलिए साहित्य को उषा और ओस के लोक से इस पृथ्वी पर आना ही पड़ा। जहाँ उसे मामूली मिट्टी का स्वागत करना था और चिमनी के धुएँ का सत्कार। उसने 'दूषित, कलुषित, गर्हित' को अपने उर में 'चिर पावन' बनाने की इच्छा से अपनाया। सामूहिक जीवन विकास उसका लक्ष्य हुआ। मानव आत्मा को 'स्वर्ग पींजड़े' में बन्दी देख उसे तथाकथित 'सत्य, शिव सुन्दर' में कोई आकर्षण नहीं मिला, संस्कृति, कला और सदाचार के वाह्य आडम्बर से वह विरक्त हो उठा। उसने आवाज उठाई—

कवि नव युग की चुन भाव-राशि
नव छन्द आभरण रस-विधान।
तुम बन न सकोगे जन मन में,
जाग्रत भावों के गीत यान॥

—पन्त

इस तरह हम देखते हैं कि छायावाद ने अपने आरम्भ में जीवन की स्थविरता और निष्क्रियता से विरोध किया। पर अपने आन्तरिक विरोध (Contradiction) से वह स्वयं विषण्ण हो उठा। इस अवरोध से प्रगतिवाद निकला, पर इस कारण इसे छायावाद का परिपाक नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इसके अधिकाँश कवि छायावाद के कलाकार हैं, और उनकी शैली में वही लक्षणा और व्यञ्जना भी है। परन्तु प्रगतिवाद की भाव-वस्तु, विचार-वस्तु और विषय-वस्तु भिन्न हैं। एक शब्द में उसके मान अपने हैं। प्रगतिवाद को इस बात का गर्व है कि पंत और भगवतीचरण वर्मा उसके अपने बने। उसे गौरव है कि निराला की दार्शनिकता गतिशील हुई। बच्चन अपना परिपाक करने लगे और महादेवी ने 'बंग दर्शन' में जीवन के यथार्थ को स्वीकार किया। गुप्तजी तो अपने आप में ही एक वर्ग (Class) हैं। इन कवियों के अलावा दिनकर, अंचल और नई पीढ़ी के अनेक व्यक्तियों को भी विस्मृत नहीं कर देना चाहिए।

गद्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद छायावादी शैली से चिपट कर नहीं चलता। अभिव्यञ्जनावाद में उसकी व्याख्या नहीं। वह यथार्थवाद की उस शैली को भी प्रश्रय नहीं देता जो वस्तु का छाया-चित्र (Photographic picture) उपस्थित करती है। प्रगतिवाद तो समाजकी गति शीलता को व्यक्त करता है, अतः छाया-चित्रण से परे वह वस्तु के अन्तर्जगत में भी प्रवेश करता है। यह शैली-सामाजिक यथार्थवाद (Social-realism) की शैली है। इस शैली ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, उस पर अश्लीलता और दूषित नग्नता का अभियोग लोगों ने लगाया है। प्रगतिवाद गन्दगी का हामी नहीं। वह मनुष्य की वासनाओं के संयम और नियम का हामी है। नारी उसके लिये

* "Art belongs to the people. Its deepest roots must be sought in the very thick of the popular masses. It must voice the feelings, the thoughts and the will of these masses, must uplift them. It must awoken the artists in them and serve to develop them." —Lenin

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिवादी कवि चेतना रहित नहीं, वह यौन-समस्या की जटिलता को समझता है, और उस चिर वंदिनी को मनुष्य की बर्बरता से मुक्त करना चाहता है। जो लोग साहित्य में कीचड़ उछालते हैं, प्रगतिवाद उनके साथ समझौता नहीं करता।

प्रगतिवाद के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसने जीवन में केवल कुरूपता और विषमता को ही गहरा देखने का प्रयत्न किया है। वास्तव में यह आक्षेप प्रगतिवाद के भ्रामक अध्ययन का परिणाम है, जो या तो उसकी सृजनात्मक सचाई को स्वीकार नहीं करता अथवा उसे अपनी वैयक्तिक इकाई से विशेष मोह है। प्रलय के गीत गाने से सच-मुच कोई भी हिलोर इधर से या उधर से नहीं आती। उँगली में खून लगाकर कोई सच्चा शहीद नहीं बनता। साहित्यिक रूपकता (Literary pose) को कोई भी बुद्धिमान स्वीकार नहीं करेगा, पर जब कलाकार वास्तव में 'जन-मन के माँस खण्ड पर' सृजन का 'अमर सत्य' मुद्रित करना चाहता हो, तो उससे इन्कार करना भी अनुचित है। यह कहना गलत है कि प्रगतिवाद प्रकृति और आत्मा के सुन्दर स्वरूप को देखने की चेष्टा नहीं करता। प्रगतिवाद ने भूत को, जड़ को, पदार्थ को प्रधानता दी है, इसलिए वह जड़ता का ही पोषक हो, यह आवश्यक नहीं। अतः प्रगतिवाद की तथा कथित इतिवृत्तात्मकता या सुष्कता सौन्दर्य और रस को स्वीकार करती है। साहित्य की जो चेतना मानवता की मङ्गल भावना को लेकर चलती है, उसके लिए कोमलता, सरसता और स्निग्धता के स्रोत सूख नहीं गए हैं।

प्रगतिवाद में निश्चय भारतीय जीवन के स्वर बोले हैं, पर इसे स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि उसे रूस से प्रेरणा मिली है। साहित्य की धाराओं के लिए सांस्कृतिक व दार्शनिक आधार अपेक्षित माने गये हैं। अगर आवश्यक समझा जाय तो प्रगतिवाद के लिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical materialism) को स्वीकार किया जा सकता है। चूँकि यह आधार आदर्श-मूलक नहीं इसलिए भारतीय संस्कृति इसे ग्रहण नहीं कर सकती, यह कहना उचित न होगा। भारतीय संस्कृति पर विदेशी प्रभाव समय समय पर पड़ते रहे हैं और इसकी नमनीयता (Flexibility) ने उन्हें स्वीकार भी किया है। इसमें कितना भारतीय है कितना अभारतीय, यह बताना भी कठिन हो जायगा। इसने शिव को स्वीकार किया, मूर्ति को ग्रहण किया, सूफी मत के विचारों को अपनाया, तन्त्र-जन्त्र इसमें खप गए। विचारों का विनिमय और समन्वय अशुभ नहीं होता। भारतीय दर्शन अध्यात्म को प्रमुखता देता है, पर भौतिकवाद अपने को नास्तिक नहीं कहता। भारतीय दर्शन आत्मा की उन्नति में जीवन का सौन्दर्य देखता है, प्रगतिवाद जीवन के उत्कर्ष में आत्मा की सुन्दरता। यही उसकी मौलिकता है। जब तक जीवन में सुधा और क्षोभ है आत्मा अपना विकास नहीं कर सकती। विकृति और कलुष में आत्मा का सौन्दर्य प्रगट नहीं हो सकता कवि की आत्मा इसीलिए तड़प उठती है—

अभी नहीं चेतन मानव से,
भू जीवन मर्यादित।
अभी प्रकृति की तमस शक्ति से,
मनुज नियति अनुशासित॥

लेकिन कवि को अपने ऊपर विश्वास है। वह अपनी 'स्वर्ग धूलि' में निर्माण के तत्वों को संजोता है। सत्य, ज्योति अमृत में उसकी आस्था बढ़ जाती है—

'मुझे असत् से ले जाओ हे सत्य ओर,
मुझे तपस से उठा दिखाओ ज्योति छोर,
मुझे मृत्यु से बचा बनाओ अमृत भोर।'

निर्माण के इन महान तत्वों को लेकर प्रगतिवाद की चेतना मुखरित हो उठती है और युग-युग के तम को चीर कर वह ज्योति की नव-रश्मियाँ बिखेर देना चाहती है—"युगों का तामस हरण,
करे यह स्वर्ग किरण।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक घूँट'

(ले०—प्रो० नागरमल सहल, एम० ए०)

'एक घूँट' प्रसादजी का एकाङ्की नाटक है जिसमें दृश्य भी एक ही है। एक ही स्थान पर एक ही समय में घटना घटित होती है। विषय की परिधि में विचारों की एक अन्विति हमारे नाटकीय प्रभाव की वृद्धि में आश्चर्यजनक योग देती है। इस नाटक में घटनाओं का कहीं घटाटोप नहीं हैं। घटना-शून्य से ऐसे नाटकों में पाठक अथवा दर्शक की पर्याप्त रुचि बनाये रखने के लिए संभाषण का काव्यात्मक लचीलापन, संगीत तथा विचारों की प्रधानता प्रायः हुआ ही करती है। 'चन्द्रगुप्त' आदि ऐतिहासिक नाटकों में घटना-संकुलता के कारण पाठक नाटककार के साथ जैसे आगे बढ़ा चला जाता है और नाटकीय पात्रों की गतिविधि में सहज सोत्साह भाग लेने लगता है, पर 'एक घूँट' जैसे विचार-प्रधान नाटक में पाठक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सहानुभूति के साथ पहले कम से कम लेखक की विचार-परम्परा को समझता चले—सहमत, असहमत होने का प्रश्न तो बाद का है अन्यथा नाटक का वह रसास्वाद कर ही नहीं सकता।

प्रसादजी के पहले हिन्दी-नाटकों का शैशव-काल था। स्वयं प्रसादजी की प्रतिभा का क्रमिक विकास हुआ था और नाटकों में यथास्थान ओज, प्रसाद और माधुर्य के समुचित संचार के लिए प्रारंभ में उनको भी अनेक परीक्षण (Experiments) करने पड़े थे। 'एक घूँट' इसी परीक्षण-काल का नाटक है जिसमें चारित्रिक विकास का चित्रण प्रसादजी को इष्ट नहीं। एक अंक के एक दृश्य के नाटक में यह सब कुछ असंभव, अतएव अवाञ्छनीय भी था। इसमें तो विवाह की सहज आवश्यकता पर जोर दिया गया है। इसमें दिखाया गया है कि विवाहित जीवन कष्टमय होने पर भी स्पृहणीय है; विवाह-बन्धन को तोड़ कर मानवता के नाम पर सबसे समान प्रेम कर सकने की कल्पना मिथ्या दम्भ है जो समाज में कुत्सा और अनाचार की वृद्धि किए बिना नहीं रह सकता। पुरुष और नारी के सनातन एवं चिरन्तन सहज आकर्षण को अवरुद्ध करने की चेष्टा हास्यास्पद है।

इस नाटक का पात्र आनन्द एक घुमक्कड़ युवक है जो स्वतन्त्र प्रेम (Free love) का पक्षपाती है। वह संसार को दुःखमय नहीं मानता। दुःख का कारण वह समझता है विशिष्ट व्यक्ति के प्रति सीमित एवं केन्द्रित आसक्ति को। नियमबद्ध प्रेम-व्यापार उसकी दृष्टि में हेय है। अरुणाचल आश्रम (स्वास्थ्य, सरलता और सौन्दर्य जिसके आदर्श वाक्य (Motts) हैं) में तर्कशील मुकुल के यहाँ वह अतिथि-रूप में आया हुआ है। इसी विवाह-समस्या पर यहाँ तर्कानुसन्धान हुआ है जिसमें विचारक प्रसादजी वनलता के मुँह से अपने निश्चित भाव व्यक्त करते हुए मालूम होते हैं। इस नाटक में समोज के विभिन्न स्तरों के तीन जोड़े हैं जो विषम गार्हस्थ झंझटों के कारण त्रस्त एवं दुखी प्रतीत होते हैं। कवि रसाल की स्त्री वनलता को बराबर यह शिकायत है कि उसका पति उसकी तरफ से अत्यन्त उदासीन है। वन के पेड़ और लताओं से प्रेम कर सकने वाला यह सहृदय कवि अपनी सती साध्वी युवती स्त्री के हृदय को नहीं टटोल सका। इसी की टीस और तपन वनलता को है। दूसरा युग्म है झाड़ू वाले और झाड़ू वाली का। सरलता-प्रेमी झाड़ू वाला अपनी स्त्री से परेशान है जिसको आये दिन नई साड़ी और सितार की चाह बनी ही रहती है। उसके अभावों का भाण्डार कभी रिक्त होता ही नहीं। इस बेचारे ने आश्रम के आदर्श वाक्यों की तरफ देख कर यहाँ झाड़ू लगाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय किया था कि श्रीमतीजी पर भी उनका शायद कुछ अच्छा असर पड़ जाय, पर श्रीमतीजी के व्यवहार से आश्रम का खोखलापन स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है। झाड़ वाले की यह आफत है तो उच्चतर स्तर के पुरुषों की सरलता के नाम पर किन विपदाओं का सामना करना पड़ता होगा इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। विशिष्ट पर अव्यवहार्य सिद्धान्तों को लेकर चलने वाली संस्थाओं की यह दुःखद परिणति हुआ करती है इसी की तरफ मानो प्रसादजी का संकेत है। मनोविज्ञान के हिसाब से भी प्राकृतिक आवश्यकताओं की अवहेलना कर कल्पना के रंगीन स्वप्न-लोग से लिए हुए सिद्धान्तों में क्यों कर प्राण-प्रतिष्ठा की जा सकती है? मैंने देखा है कि जिस भवन में सम्पूर्ण गीता दीवालों पर उल्लिखित है उस घर के एक अधिवासी को गीता के एक श्लोक का शब्द-अर्थ ज्ञात नहीं। तीसरा जोड़ा है चँदुले का जो विदूषक होते हुए भी प्रयोजन विरोध को लेकर उपस्थित होता है। स्त्री ने मार मार कर इसकी तो खोपड़ी ही चँदुली करदी है पतिदेव को बस चौबीसों घंटे श्रीमतीजी के इङ्गित पर नाचना पड़ता है।

नाटक में चित्रित इस युग्म-त्रय का जीवन अवश्य दुःखी है, पर निरन्तर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम की एक घूँट उनके जीवन में सहज सामञ्जस्य का उत्स उन्मुक्त कर सकती है। 'एक घूँट' शीर्षक कविता लिख सकने वाला कवि रसाल अगर अपनी प्रेयसी को 'एक घूँट' पिला सके तो उनके जीवन में फिर किस बात की कमी रह जाय? 'एक घूँट' का आदान-प्रदान होते ही जड़ वस्तुओं में भी जीवन स्पन्दन देख सकने वाला यह कवि प्रेम-भरिता अपनी रमणी के अन्तर का क्या स्पर्श नहीं कर सकेगा? इन जोड़ों का जीवन अभावमय होते हुए भी आनन्द के जीवन से कहीं श्रेष्ठ दिखाया गया है। आनन्द की इच्छा है कि सरलता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य-आश्रम के इन तीन आदर्श वाक्यों के साथ चौथा एक निर्बाध-प्रेम और जुड़ जाय। प्रसादजी की दृष्टि में ऐसा अनियन्त्रित प्रेम कदर्थित दुराचार का सभ्य (?) रूपान्तर मात्र होगा। वनलता के अभाव का गान सुनकर सहानुभूति को बुरा समझने वाला आनन्द हठात् उसकी तरफ आकर्षित होता है और उससे प्रेम-प्रस्ताव भी कर बैठता है। मुकुल की दूर की बहिन प्रेमलता को भी सतृष्ण नयनों से देखने में उसे कोई संकोच नहीं। सोपाधिक प्रेम को बुरा बताने वाले ऐसे युवक पाशविक कामान्धता की तरफ सहज ही अग्रसर हो सकते हैं। वनलता और प्रेमलता से अधिक सुन्दर स्त्री को देख कर ऐसे लोग अपनी वासना का निग्रह कर सकेंगे यह धारणा थोथी कल्पना नहीं तो और क्या है? विशिष्ट नारी प्रेम को बुरा समझने का मतलब है मन की वासनाओं और कामनाओं का सतत व्यभिचार जो मनुष्य को कहीं निम्न भूमि पर पटकेगा। पाश्चात्य सभ्यता में उपलब्ध ऐसे प्रेम के नाटक कितने अनीप्सित और भयावह होते हैं यह किसी से छिपा नहीं। गार्हस्थ स्वास्थ्य का तो इसें बस अंतक ही समझिए।

मनुष्य के सुखी जीवन के लिए विवाह बन्धन आवश्यक ही नहीं श्रेयस्कर भी है— इसी विचार के महत्व प्रतिपादन के लिए आनन्द प्रेमलता से संयुक्त होता दिखाया गया है। आर्य-सभ्यता के नियमानुसार कोई आसानी से आश्रमभङ्ग नहीं कर सकता था— भगवान् शंकर सरीखे बहुत कम इस नियम के अपवाद हो सकते थे। विवाह की दिक्कतों से डर कर जैसे आज कल के शिक्षित समाज में कहीं कहीं देखा जाता है) अगर स्त्री-पुरुष विवाह करना छोड़दें— उनमें से कुछ अगर संन्यासी होने का ढोंग रचें (ढोंग इसलिए कि संन्यास तो स्वतः होता है, लिया नहीं जाता)—तो समाज में अनाचार और व्यभिचार के अड्डे ही तो जमेंगे। तैत्तिरीयोपनिषद् के दीक्षान्त भाषण में आचार्य ने साग्रह कहा था— 'प्रजातन्तुम् मा व्यवच्छेत्सीः' पुत्र के लिए (केवल काम वासना की तृप्ति के लिए नहीं) हमारे यहाँ विवाह किया जाता था। पुत्र न पात् था— पुत्र के बिना मनुष्य की सुगति नहीं हो सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका परलोक बिगड़ जाता है—ऐसी मान्यता थी। विवाह की प्राकृतिक सहज आवश्यकता को इस प्रकार धार्मिक महत्व हमारे यहाँ दिया गया था। समाज में शील बनाये रखने के लिए विवाह हर तरह से अनिवार्य समझा गया था। प्रसादजी इसको प्रेम और श्रेय दोनों मानते थे—सच्चा सन्यास भी साधारणतः वैवाहिक जीवन के खट्टे-मीठे को देख-समझ कर ही टिकाऊ हो सकता है अन्यथा मन का व्यभिचार कभी बन्द नहीं होता जो महा घातक और सब भयंकर रोगों की जड़ है।

इस तर्क में आनन्द फिसल जाता है क्योंकि उसका हृदय अन्य प्राणियों की तरह सरल, सीमित प्रेम का भूखा है। वन लता में औज है, जोश है और आनन्द सरीखे पथ भ्रष्ट युवकों को ठीक राह पर लाने की क्षमता है। अपने पति से असन्तुष्ट होते हुए भी वह उससे खिन्न या दूर नहीं है— इसी से उनको निकट आकर सुखी गृहस्थी के निर्माण में देर नहीं लगती। झाड़ू वाला भी क्या अपनी गृहिणी को छोड़ कर सुखी रह सकता था ? ऐसी कल्पना उस के मस्तिष्क में है ही नहीं। ये सभी जोड़े सुखी हो सकते हैं बस उनको 'एक घूँट' मिल जानी चाहिए। एक घूँट मिलते ही उनकी जीवन-तन्त्री में सुख और आनन्द के तार झनझना उठेंगे। प्रेमलता को पाकर आनन्द ने अपने को पा लिया, सच्चे आनन्द की प्राप्ति का यही सहज, सुन्दर मार्ग है। इसको विकृत बनाना ही मूर्खता है। शुष्कता जीवन को नीरस कर देती है, इसी से तो 'एक घूँट' की आवश्यकता है। भारत की यही गौरव पूर्ण प्राचीन विशिष्ट संस्कृति है। इसी में सुख का तत्व निहित है; विपन्नों के प्रति सच्ची सहानुभूति दिखाते हुए, दूसरों का कष्ट दूर करते हुए विशेष के प्रति अबाध प्रेम में ही मानवोचित गरिमा है।

प्रसादजी कवि और विचारक हैं। विचारक के नाते इस नाटक में समस्या का चित्रण है। कथा-वस्तु न के बराबर है पर समस्या के चिन्तन में भी प्रसादजी शुष्क नहीं हो गये हैं। काव्यमय भाषा, गान तथा भावुकता ने बराबर रुचि बनाये रखी है। 'एक घूँट' ही जीवन में सामञ्जस्य ला सकता है। उसके बिना सब विरस है, फीका है। उसी 'एक घूँट' का इस नाटक के एक दृश्य में मनोहर चित्रण है। इससे नामकरण भी सटीक और उपयुक्त हुआ है। वैवाहिक जीवन के कष्टों से डरकर विवाह से मुख मोड़ना कायरता है, नपुन्सकता है, विवाह के कष्टों को जानते हुए वैवाहिक जीवन का सफल निर्वाह ही अभ्युदय और निः श्रेयस् का सीधा सही मार्ग है। विवाह सब का कर्तव्य है, विवाह न करने से बढ़ कर दूसरा कोई अकर्त्तव्य अथवा पाप नहीं—यही इस नाटक का उद्दिष्ट कहा जा सकता है।

———

'प्रसाद' पर आलोचना साहित्य

कवि प्रसाद—डा० रामरतन भटनागर २॥)
प्रसाद और उनके नाटक—प्रो० केसरीकुमार एम.ए. २॥)
प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक— प्रो० राजेश्वर प्रसाद अर्गल २)
प्रसाद का नाट्य चिंतन—श्रीशिखरचन्द्र जैन २॥)
प्रसादजी के तीन नाटक—श्रीप्रेमनरायन टंडन १)
प्रसाद और उनका साहित्य—श्रीविनोद शंकर व्यास २)
प्रसाद जी की कला—श्रीगुलाबराय एम० ए० १॥)
कवि प्रसाद की काव्य साधना—श्रीरामनाथ सुमन ३॥)
प्रसाद जी के दो ऐतिहासिक नाटक—प्रो० कृष्णदत्त सहाय १॥)
प्रसाद के नाटकीय पात्र—श्रीजगदीशनरायन दीक्षित ४)
प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन— श्रीजगन्नाथप्रसाद शर्मा ४॥)

मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज के उपन्यास

(ले०—श्री मंगलबिहारीशरण सिन्हा, बी० ए० पटना कॉलेज)

आज के हिन्दी साहित्य से पूछिए, वह यही कहेगा कि हम आज महाकाव्य से उपन्यास की ओर बढ़े आ रहे हैं। महाकाव्य प्राचीनता के चरणों में आज भी सिर झुकाए रहता है—वह प्राचीनता के प्रति अन्ध श्रद्धा की भावना दिल से निकाल नहीं सकता। और आज मशीनों का मानव श्रद्धा को पहचानता ही नहीं। उसे यह अन्ध श्रद्धा आज ग्राह्य नहीं। इसीलिए बुद्धि के पीछे दीवाना मानव आज तेजी से महाकाव्य को छोड़ कर उपन्यास और कहानियों की दुनियाँ की ओर भाग रहा है।

मानव जाति बन्धन से दूर भागना चाहती है। महाकाव्य ने अपने चारों ओर परिभाषा की एक अच्छी खासी चहार दीवारी खींच ली है। पर सफल उपन्यास की पहली विशेषता यही है कि वह परिभाषा की सीमा के बाहर रहता है। नाटक के उपकरणों का सहारा लेकर हम नाटक की एक परिभाषा दे सकते हैं; संगीत और स्वर आदि के सहारे कविता की परिभाषा भी बनाई जा सकती है। पर उपन्यासकार और पाठक अपने बीच में उपकरणों को स्थान ही नहीं देते। नाटक और दर्शक के बीच रंगमञ्च रहता है, संगीत और श्रोता के बीच स्वर और वाद्य रहते हैं, पर अपने बिस्तरे में पाठक रहता है और उसके हाथों में उपन्यास। दोनों के बीच कोई तीसरी वस्तु आती ही नहीं। उपन्यासकार स्वयं ही पाठकों से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। यही कारण है कि उपन्यास सीमा के परे ही रहता है।

उपन्यास में विस्तृत जीवन-दर्शन रहता है। इसी से उपन्यासों की कला में समानता नहीं मिलती। जिसने जीवन को जिस दृष्टिकोण से देखा उसकी उपन्यास-कला उसी प्रकार की हुई। जीवन में आशावादी की कला कुछ और होगी, निराशावादी की कुछ और! यही कारण है कि Hardy, Hardy रह गया और प्रेमचन्द प्रेमचन्द! दोनों की कलाओं का अन्तर कभी भी कम नहीं हुआ—उनकी कलाएँ एक नहीं हो सकीं।

एक और भी चीज हम उपन्यासकार से माँग सकते हैं, कि वह जीवन की असाधारण घटनाओं का विवेचन करे। उसका उपन्यास घटना-प्रधान न हो। वह हमारा बौद्धिक चित्र दे, भौतिक चित्र नहीं।

आज के उपन्यासों के विवेचन के पूर्व हम उनके विकास-क्रम पर भी कुछ दृष्टि डाल लें। एक तो हम स्वभाव से ही चिंतनशील और गम्भीर-प्रिय होते हैं। फिर उपन्यास की सीधी-सादी बातों को हमारे जीवन में स्थान मिल ही कैसे सकता था? यही कारण है कि हमारे साहित्य में उपन्यास इतनी देर करके आया। और जब वह हमारे द्वार पर आकर खड़ा हुआ तब हमारे यहाँ रङ्गमञ्च का राज्य था, नाटकों की धूम थी। अगर हम कुछ इधर-उधर फिसलते भी थे तो लेख (essay) तक ही पहुँच पाते थे। जान्सन, लैम्ब आदि ने हमें बुरी तरह प्रभावित कर रक्खा था। यही कारण है कि हिन्दी उपन्यास का विकास क्रम इतना धीमा रहा।

हमारा उपन्यास-शिशु एक मुट्ठी में कौतूहल और दूसरी में मनोरञ्जन लेकर ही पैदा हुआ। समय की माँग भी इससे कुछ अधिक नहीं थी और हमने खुले दिल से उस नवजात शिशु का स्वागत किया। नन्हा सा बालक जीवन की कठोरता से घबड़ाता था—जीवन-दर्शन से दूर रहना चाहता था। इशारों से जादू की दुनियाँ ने उसे अपने पास बुलाया और खत्री की "चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता संतति"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे मिले। शैली के विचार से हम 'चन्द्रकान्ता' को चारण काल की पद्धति के भीतर रक्खेंगे। उसमें प्रतिपल हम एक नया कुतूहल तो पाते हैं पर मानवी भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई ही नहीं है। उपन्यास कला के विकास में भले ही इसका महत्व कुछ न हो, पर हिन्दी-सेवा के क्षेत्र में इस उपन्यास का और खत्रीजी का महत्व बहुत अधिक है। प्रथम प्रयास से हम इससे अधिक और माँग ही क्या सकते हैं?

खत्री ने चारण-काल की पद्धति के सहारे जो खाका खींचा उसमें किशोरीलाल की तूलिका ने रंग भरा। राजास्तुति के संग रातिकाल की प्रेम की कहानियाँ मिल गईं और उन्होंने हमारे जीवन में नया रस उड़ेल दिया। अब उपन्यासों ने हमारे दृश्यों से अपना सम्बन्ध जोड़ना प्रारम्भ किया। किशोरीजी की तूलिका ने चित्र को रंग कर सँवारा तो सही पर जीवन की सुधा से उसे अनुप्राणित नहीं किया। उसमें सजीवता अभी आने को ही थी। अन्य उपन्यासकारों ने उसमें नाटकीय तत्व दिए और उपन्यासों को एक कदम और आगे बढ़ाया।

उपन्यास आगे बढ़ रहा था अवश्य, पर वह जमाने से दूर था—मानव और मानव-अनुभूतियों से अलग था। सौभाग्य से हमारे उपन्यास जीवन के निशीथ में पूर्व की ओर 'शरत् चन्द्र' उदय हुआ और उसकी ज्योत्सना से हमारा पथ उज्ज्वलित हो उठा। उसकी सुधा ने सचमुच ही उपन्यासों में जीवन फूँक दिया। हमारी नौका उस शरत् के चाँद की सुधा से मतवाली बनी समय की लहरों के बीच आगे बढ़ी। फिर-उषा ने आकर उसका स्वागत किया। 'रवीन्द्र' की स्वर्णिम किरणों ने हमारे साहित्य को और भी चमका दिया।

सोने के दिन और चाँदी की रातों ने हमारे उपन्यास-साहित्य में एक क्रान्ति ला दी। हमने मनोविज्ञान के अध्ययन से अपने उपन्यासों को विभूषित किया। अब मानव व्यापारों में हमारी आस्था बढ़ी। दैवी शक्तियों को हमने दूर भगाना चाहा। देवी-देवता, भूत-प्रेत सब गौण हो चले और प्रमुख हुआ मस्तिष्क और मन! उधर शरत् और रवीन्द्र ने मनोवैज्ञानिक चित्रण का जो रास्ता हमें दिखाया उसे प्रेमचन्द ने अपनाया। उनका 'रङ्गभूमि' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। सन् १६२५ के बाद यह परम्परा बड़े जोरों से चली और आज भी हमारे बीच अभी चल ही रही है।

अब हम फिर आज के उपन्यासों की ओर मुड़ें।

प्राचीन उपन्यासों के हर कदम पर यही प्रश्न उठता था कि 'फिर?' वह आदि से अन्त तक कुतूहल से भरा हुआ था। आज भी उपन्यास अपनी उस पैतृक सम्पत्ति का तो जुगाए चल रहा है पर उसमें कुतूहल के साथ बुद्धितत्व और भावतत्व का भी पुष्टि आज हो रही है। उपन्यास में जीवन का क्षेत्र पहले से अधिक व्यापक हो उठा है। वह असाधारण जीवन को छोड़ कर आज साधारण से साधारण जीवों के प्रति भी अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहा है। एक समय था जब वह देवी-देवता और पशु-पक्षियों के जीवन से ही सम्बन्धित था, आज वह अधिकतर मनुष्य के क्षेत्र में केन्द्रस्थ हो गया है।

कौतूहल और परलोक के बाद प्रेमचन्द के हाथों उपन्यास सामाजिक और राजनैतिक रंग में रँग गया था। जहाँ प्रेमचन्द में समाज की विषमतायें और दिहात का सौन्दर्य मिलता है, वहाँ सन् ३० का राजनैतिक जागरण भी मुखरित हो उठा है। राजनीति और समाज के हिंडोले पर झूलता हुआ हमारा उपन्यास आज व्यक्ति-प्रधान हो उठा है। समाज उसमें गौण हो गया है। जैनेन्द्रजी इस वैयक्तिक अध्ययन के अग्रदूत हैं। उन्होंने उपन्यास को घटना प्रधान से पात्र-प्रधान बनाया और अन्तःकरण के द्वन्द्व में बैठने का सर्वप्रथम प्रयास किया। मन के सूक्ष्म भावों का चित्रण भी जैनेन्द्र में बड़ा सुन्दर हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर एक ओर तो जैनेन्द्र ने व्यक्ति को उपन्यास से मिलाया, उधर राहुलजी ने मार्क्सवाद से उसे परिचित कराया। और फिर मार्क्सवाद से प्रभावित लेखकों ने उसे आगे बढ़ाया। इस प्रकार आज समाज की विषमता भी हमारे उपन्यासों में सजीव हो उठी है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के साथ-साथ जैनेन्द्र ने हमारा नैतिक दृष्टि कोण भी बदला। प्राचीन नैतिक रूढ़ियों के प्रति विरोध की भावना उनमें प्रबल हो उठी है। आज तक हम पापी की छाया से भागते आए हैं। जैनेन्द्र का कहना है कि व्यक्ति के दोषों और पापों के लिए सामाजिक व्यवस्था दोषी है। पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। इस तरह हमारा उपन्यास गाँधीवाद के सम्पर्क में भी आ गया।

जैनेन्द्र ने राजनीति से केवल एक 'वाद' लिया और उसको पुष्टि की। भगवतीचरण वर्मा ने कई 'वाद' लिए और उनका तुलनात्मक अध्ययन किया उनकी समीक्षा की। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में गाँधीवाद, समाजवाद और क्रान्तिवाद का बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है। हमारा उपन्यास जहाँ अभी तक कौतूहल समाज और व्यक्ति तक पहुँचा था वह अब राजनीति से भी सम्बन्धित हो गया है।

मन के अन्तर्द्वन्द्व हमें जैनेन्द्र ने दिए और अज्ञेय ने उसमें मनोविश्लेषण का तत्व दिया। हमारी उपन्यास-कला अब सामाजिक के साथ-साथ वैज्ञानिक भी हो गई। कोरी कल्पना दूर हो गई। जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रमुख बन बैठा। दैवी घटनाओं के बदले जीवन की विवेचना और मनोविज्ञान की स्थापना हुई।

कला में सामाजिक मनोविज्ञान अपेक्षित होता है। अगर समाज का दिल कला के आइने में न चमका तो वह कला सफल हो ही नहीं सकती। उसमें तो वह शक्ति चाहिए जो, युद्ध में, शान्ति में, समाज के मन को व्यक्त कर सके। पश्चिम की कला इसका सुन्दर प्रमाण बन कर सामने आती है। युद्ध से थकी जाति अब युद्ध में ही आनन्द खोजती है। बमों के गिरने में भी उसे एक सौन्दर्य मिलता है। Black out के कारण ही हम चन्द्रिका की शुभ्र ज्योत्सना के बीच लन्दन का प्राकृतिक रूप देख पाते हैं। बल्ब की चकाचौंध के बीच यह सौभाग्य कहाँ हाथ लगता? जब बन्धन टूटता नहीं दीखता तो हम उसी पराधीनता में ही आनन्द ढूँढ़ते हैं। इसी प्रकार युद्धकाल के अँगरेजी साहित्य में हर जगह हम कलाकार के अस्थिर मस्तिष्क की प्रतिछाया पाते हैं।

समाज का मन परिस्थिति की लहरों पर चढ़कर चलता है। उसमें नित्य-प्रति परिवर्तन निश्चित है। इसी से कला में भी प्रतिदिन परिवर्तन होता रहता है। प्रेमचन्द के बाद वृन्दावनलाल वर्मा की रोमाण्टिक ऐतिहासिक प्रवृत्ति और जैनेन्द्र की दार्शनिक प्रवृत्ति हमारे यहाँ आईं, पर युग बदला और दोनों ही की दोनों मृत-प्राय हो गईं। आज जोशी की काम-प्रवृत्ति चल रही है—फ्रायड का सिद्धान्त बोल रहा है, और यशपाल की सामाजिक विचार-प्रवृत्ति चल रही है।

आज का युग बुद्धि-प्रधान हो गया है और इसी कारण उपन्यासों में बुद्धि-पक्ष का जोर है, भाव पक्ष और कला-पक्ष गौण हो गए हैं। भगवतीचरण जी की "चित्रलेखा" एक समस्या लेकर सामने आती है। जीवन का हर पहलू वहाँ तर्क की कसौटी पर ही कसा जाता है। आज हम विश्लेषण चाहते हैं, प्राचीन उपन्यासों की भाँति शिक्षा और नैतिकता नहीं। हमारे जीवन का संघर्ष हमारे उपन्यासों में भी आ गया है और फलस्वरूप वे संघर्षमय हो गये हैं।

आधुनिकता के प्रवाह में हमारे उपन्यासों का 'वस्तु' तो बहा ही उसकी शैली भी बदली। पहले कथा-वस्तु के लिये निश्चित सिद्धान्त थे। हम नायक किसी वर्ग-विशेष से ही ले सकते थे; प्रारम्भ किसी खास ढंग से ही कर सकते थे। विकास का क्रम भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादजी के नाटकों का सांस्कृतिक उद्देश्य

(ले०—विमलाकुमारी हुक्कू, एम० ए०, साहित्यरत्न)

प्रसादजी का सांस्कृतिक चिन्तन बहुत गहरा था, उनकी आत्मा पूर्णरूपेण उसमें रँग चुकी थी, वह उनकी आत्मा की जिज्ञासा बन चुकी थी, वही जिज्ञासा उनके काव्य तथा नाटकों में बह पड़ी है। प्रो० नगेन्द्र प्रसादजी के नाटकों का विवेचन करते हुए लिखते हैं "शान्त गम्भीर सागर जो अपनी व्याकुल तरङ्गों को दबा कर धूप में मुस्करा उठा है या फिर गहन आकाश जो झंझा और विद्युत को हृदय में समाकर चाँदनी की हँसी हँस रहा है—ऐसा ही कुछ प्रसादजी का व्यक्तित्व था"। कलाकार प्रसादजी की इन व्याकुल तरङ्गों तथा 'चाँदनी की हँसी' ही समझने के पश्चात् उनके सांस्कृतिक उद्देश्य की व्याख्या पूर्ण रूप से की जा सकती है, जो प्रतिभा 'सज्जन' से आरम्भ होकर 'ध्रुवस्वामिनी' के गौरू की सीमा तक पहुँच सकी है। मध्यकालीन कृतियों का सूक्ष्म निरीक्षण जो हमारे इतिहास का एक स्वर्ण युग रहा जिसकी प्रत्येक वस्तु पर हम गर्व कर सकते हैं जहाँ हमारा सम्पूर्ण दर्शन एक साथ सन्निहित है। प्रसादजी ने बौद्ध दर्शन तथा इतिहास का विस्तृत अध्ययन किया था, देश की उस परिस्थिति मे जब भगवान् बुद्ध को जन्म दिया जिसके द्वारा करुणा का सागर उद्वेलित हो उठा, अपने मूल में मानव की एक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया थी—संसार जानता है कि भगवान बुद्ध की करुणा रोगी, वृद्ध और मृतक को देख सजग हो उठी थी। यह एक प्रत्यक्ष सत्य है, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। संसार के प्राणी मात्र सुख चाहते हैं, अमर होना चाहते हैं, अपने मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति करना चाहते हैं, उसी भावना की पूर्ति के लिए अपनी कल्पना की उड़ान में उड़ा करते हैं—स्वर्ग की कल्पना तथा अनेक सामाजिक और राजनैतिक बन्धन उसी का एकमात्र प्रमाण है। परन्तु मानव ने एक दृष्टि अपने पीछे डाली, वह कहाँ तक पहुँच गया है,

---

बँधा हुआ था, निगनि और अन्त भी पूर्व-नियोजित थे। पर आज वह सिद्धान्त जैसे उस धारा-प्रवाह में बह गया और कथा-वस्तु बिखर-सी गई। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में कथा का कोई केन्द्र-विन्दु साफ नहीं दीखता पर इसमें कलाकार का दोष नहीं; युग का द्वन्द ही दोषी है। यशपाल के 'दादा कामरेड' में भी हम यही विशृङ्खलता पाते हैं।

कथा कहने की शैली भी धीरे-धीरे आगे बढ़ी। प्रारम्भ में कथा किसी को सम्बोधित करके कही जाती थी। फिर शैली वर्णनात्मक हुई और उसमें तटस्थता आई। मनोविज्ञान के प्रवेश से यह शैली और भी निखर उठी। 'रङ्गभूमि' में सूरदास की कुटी के वर्णन में जितनी ही यथार्थता है उतना ही मनोविज्ञान का तत्व भी।

कौशिक ने इस शैली में संभाषण ला दिया। चित्रण और व्यक्तीकरण पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। चित्रण से विभूषित वर्णनात्मक शैली का पूर्ण विकसित रूप प्रेमचन्द की शैली में हमें मिलता है।

संभाषण के बाद "चन्द हसीनों के खतूत" पत्रात्मक शैली लेकर हमारे सामने आया। डायरी ने भी उपन्यासों को अपनी सीमा ले में लिया। फिर आत्म-परक उपन्यास चल निकले। अज्ञेय का "शेखर" इसका सुन्दर उदाहरण है।

और आज का उपन्यास किसी भी शैली का बन्धन स्वीकार नहीं करता। वह स्वच्छन्द पंछी की भाँति उड़ता फिरता है, उसकी तबीयत आई जिस डाल पर बैठे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस स्थान पर उसे अपने चारों ओर छल, प्रवञ्चना, कपट और घृणा दिखाई दिए। अपने पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन यहाँ तक अपने राजनैतिक जीवन में उसे वही रूप दिखाई दिया, जिसके परिणाम स्वरूप उसमें चारों ओर एक विषाद, एक उदासीनता, एक ग्लानि छा गई। मानव की यह भावनाएँ जो उसे अपने जीवन, समाज और राज्य में दिखाई पड़ी थी भगवान बुद्ध की करुणा के रूप में प्रस्फुटित हो उठी। प्रसाद जिस काल में अवतरित हुए उसकी विभीषिकाओं को उन्होंने सहा था, पारिवारिक परिस्थितियों के कारण वह उनके प्राणों की जिज्ञासा बन बैठा, उनकी आत्मा को रह-रह कर विलोड़ित करने लगा। उनके दार्शनिक और कवि दोनों चिन्तक बन उठे। इसी मूल आधार का दिग्दर्शन भगवान बुद्ध की करुणा के साथ उनके नाटकों में एक धारा के रूप में बह उठा।

प्रसादजी की दूसरी धारा शैव धर्म के शिवत्व की है, वे मूल रूप से कवि थे—आनन्द उनका इष्ट था। वे शिव के उपासक थे। शिव का शिवत्व इसी में है कि देवताओं के विष को वे पचा सके। नन्ददुलारे वाजपेयी ने एक स्थान पर प्रसादजी की जीवन झाँकी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रेमचन्दजी के मृत्यु के अवसर पर वे प्रसादजी के 'बनारसी रङ्ग' को बहुत समय पश्चात् समझ सके। यह बनारसी रङ्ग उसी सानन्द नद की देन है जो उन्हें पुरातन की ओर, कल्पना की ओर ले जा सका, रोमाण्टिक बना सका है। यह चेतना उनके नाटकों में सदैव सजग रही किन्तु उसी के कारण उनकी करुणा अवसाद में परिणित नहीं हो सकी। उनके पात्रों को जीवन से निराश नहीं कर सकी। प्रो० शिलीमुख के शब्दों में 'प्रसाद की सुखान्त भावना प्रायः नैराश्यपूर्ण शान्ति होती है" वहाँ सुख दुख एक साथ बुना हुआ प्रतीत होता है। उनके नाटक प्रायः सुखान्त हैं। किन्तु उनके पढ़ने के पश्चात् क्या शान्ति अनुभव होती है? इसका मूल कारण उसमें छिपी हुई करुणा की प्रेरणा है, जो रह-रह कर उनके पात्रों में एक जिज्ञासा उत्पन्न कर देती है। सुख माता है, शृङ्गार के मधुवेष्ठित चित्र भी सजग हो उठते हैं किन्तु फिर वही करुणा पात्रों को घेर लेती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सुख-दुख एक दूसरे को छोड़ना ही नहीं चाहते, यह भावना बौद्ध और वैदिक दर्शन के [illegible] का परिणाम है। स्कन्दगुप्त में धातुसेन कहता है "अहङ्कार मूलक आत्मवाद का खण्डन करके गौतम ने विशादात्मक को नष्ट नहीं किया। यदि वैसा करते तो इतनी करुणा की क्या आवश्यकता थी। उपनिषदों के नेति-नेति से ही गौतम का आनन्दवाद पूर्ण है" यह समन्वय नाटकों का मुख्य सन्देश रहा। काव्य में सदैव सजग रहा और कामायनी में मानव इतिहास का एक पौराणिक आख्यान लेकर अपनी सीमा को पहुँच गया।

प्रसादजी हमारी भारतीय संस्कृति से सबसे बड़े सृष्टा थे, उस पर उनकी बहुत आस्था थी, उनका मनन भी बहुत विस्तृत था, उसका आधार पुरातत्व ज्ञान, पाणिनी-व्याकरण, पतञ्जलि योग, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, राजतरङ्गिणी पुराण, प्राचीन काव्य ग्रन्थ तथा प्राचीन शिला लेख थे। इन आधारों पर ही वे हमारे इतिहास में 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि पात्रों में महत्वपूर्ण खोज उपस्थित कर सके। इस इतिहास के पृष्ठों के साथ-साथ उनका दर्शन भी चलता गया, प्रत्येक काल का नाटक अपने साथ अपनी दार्शनिक भावनाएँ लाता है। प्रसादजी की नाटकीय प्रतिभा 'सजन' से आरम्भ हो उठी—'सजन', 'कल्याणी-परिणय', 'करुणालय' तथा 'प्रायश्चित' उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ हैं। 'राज्यश्री' के पश्चात् 'ध्रुवस्वामिनी' तक को उनकी कृतियों में उनके उद्देश्य पूर्ण रूप से स्फुटित हो उठे हैं। जिन आधारों पर भगवान बुद्ध की करुणा उदित हुई है उसी को लेकर 'अजातशत्रु' में 'बाजिरा' कहती है "प्रकृति से विद्रोह करके नए साधनों के लिए कितना प्रयास होता है। अन्धी जनता अँधेरे में दौड़ रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इतनी छीना झपटी, इतना स्वार्थ साधन कि सहज प्राप्य अन्तरात्मा के सुख शान्ति को भी खो बैठते हैं। भाई भाई से लड़ रहा है। पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है। स्त्रियाँ पतियों पर प्रेम नहीं किन्तु शासन करना चाहती हैं। मनुष्य, मनुष्य के प्राण लेने के लिए शस्त्र कला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओं को लेकर कवि कविता करते हैं। बर्बर स्तुति में और भी उष्ठता, उत्पन्न करते हैं" बाजिरा के इन शब्दों पर ही प्रायः उनके समस्त नाटकों का द्वन्द चलता है। स्कन्दगुप्त कह उठता है "इस साम्राज्य का बोझ किसके लिए, हृदय में सुशान्ति, राज्य में अशान्ति परिवार में अशान्ति" मानव जीवन का यही द्वन्द प्रसादजी के पात्रों को नियत तथा प्रकृति की ओर प्रेरित करता है। प्रकृति पर ही उसके समस्त कार्य निहित हैं मानव उसका अनुकरण करता है और विश्वास करने लगता है उसने विजय प्राप्त करली। परन्तु कितनी भूल है उसकी। तनिक सा प्रकृति का विद्रोह करते ही– जीवन में विद्रोह उत्पन्न हो उठता है। इसके साथ साथ चलती हैं 'नियति' मानव आज तक उसे छोड़ नहीं पाया है। भले ही वह किसी शक्ति के आस्तित्व को न माने फिर भी भविष्य की डोरी में तो वह बँधा ही रहता है। उस बन्धन को न तो वह तोड़ सकता है और न त्याग ही सका है। अध्ययन तथा मनन के पश्चात् प्रसादजी जिस आधार पर पहुँचे हैं वह प्रश्न करता है 'मनुष्य क्या है ?' उत्तर में केवल एक वाक्य मिलता है उनके पात्रों में 'प्रकृति का अनुचर और नियति का दास' यह सिद्धान्त अपने मूल में भले ही कोई पुराना बता सकता है किन्तु प्रसादजी यहाँ तक हमारे समस्त दर्शनों के अध्ययन के पश्चात पहुँचे हैं, जो शाश्वत सत्य है। मानव आज के युग तक उससे अपना सम्बन्ध नहीं दूर कर सका है, इस वैज्ञानिक युग में भी वह यद्यपि प्रकृति का अनुचर हो सकता है। किन्तु उसका विरोध क्या सम्बन्ध है। और नियति उसका तो एक ऐसा बन्धन है जिसमें बँधा हुआ मानव आज तक भूलता रहा है। प्रसाद के नाटकों के समस्त पात्र प्रायः इसी आधार पर तथा सत्य का अनुसरण करते हैं, चाहे वे वीर हो, नीतिज्ञ हों या कर्मठ ही क्यों न हो ? चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त जैसे वीर कर्मठ नेता बार बार 'प्रकृति और नियति' का स्मरण कर उठते हैं। कवि की आत्मा में स्वयं यह चेतना भर गई थी, वही यदा कदा उनके पात्रों में प्रस्फुटित हो उठी है। स्कन्दगुप्त जैसा पात्र कह उठता है "चेतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है उसी खिलवाड़ी वट-पत्र शायी बालक के हाथों का खिलौना है" मानव क्या नियति के हाथों का कन्दुक नहीं। जिधर फेंकी गई क्या वह उस ओर नहीं उछल जाती ! समस्त पात्रों के प्राणों में हम उसी स्पन्दन को सुनते हैं। 'चन्द्रगुप्त" नाटक में चाणक्य, सिंहरण तथा 'चन्द्रगुप्त' स्वयं जैसे 'नियति' शब्द को नहीं भूल सके हैं। चाणक्य भी कह सका है 'नियति सुन्दरी के भावों में बल पड़ने लगा है" ध्रुवस्वामिनी का 'चन्द्रगुप्त' भी कहता है 'विधान की स्याही का एक बिन्दु गिर कर भाग्यलिपि पर कालिमा चढ़ा देता है"

अस्तु 'प्रकृति तथा नियति' को लेकर प्रसादजी की बौद्ध कालीन करुणा जाग्रत हो उठी, नाटकों में अनेक सृष्टियाँ इस आधार पर बन पड़ीं। जीवन एक खेल था, खेल खेलना ही मानव का उद्देश्य था। चाहे वह रोकर खेले चाहे हँस कर मानव हँसकर खेलना भूल गया, हहाकार उठ खड़ा हुआ, संसार आतङ्कित हो उठा। उसी पाशवीवृत्ति को शान्त करने के लिए, मानवता के लिए ही मानो राज्य तथा समाज की अवतारना हुई किन्तु उसका प्रयत्न सफल न हो सका, अनेक नवीन अपराध सृष्टि में होने लगे। 'कामना' नाटक प्रसाद का उसी रूपक को लेकर उपस्थित किया गया है। जीवन की यही दुर्दनीयता करुणा को स्फुट करने की प्रेरणा दे सकी है। परन्तु इसके साथ साथ प्रसादजी का चलता है आनन्दवाद, सृष्टि के निर्माण का रहस्य, उसकी मूल प्रेरणा। 'जनमेजय के नाग यज्ञ' में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"सता कभी सुप्त भले ही हो जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु उसका नाश नहीं होता। गृह का रूप न रहेगा तो ईंट रहेगी, जिनके मिलने पर गृह बने थे। वह रूप भी परिवर्तित हुआ, तो मिट्टी हुई, राख हुई, परमाणु हुए। उस चेतना के आस्तित्व की सत्ता कहीं नहीं जाती" आज के वैज्ञानिक युग की धारणा, उसका आस्तित्व भी इन शब्दों के अन्तरगत आ सका है। परमाणुओं से ही सृष्टि का विकास है वस्तुओं का नाश नहीं, भले ही उसका रूप परवर्तित हो जावे। गीता के इस शाश्वत सत्य पर 'चन्द्रगुप्त' में सम्भवतः दण्डययान भावावेश में आकर कह उठे हैं 'देखते हो कोई किसी की सुनता है। मैं कहता हूँ—सिन्धु के एक बिन्दु धारा में न बह कर मेरी बात सुनने के लिए ठहर जा वह सुनता है। ठहरता है।" कदापि नहीं। संसार का प्रत्येक व्यापार एक अदृश्य शक्ति से प्रेरित होता रहता है। उस व्यापार में आनन्द की समष्टि है, मानव उसका विरोध कर सुखी नहीं रह सकता, उसी की प्राप्ति करना, उसी आनन्द गति में बहना प्रसादजी के पात्रों का शाश्वत सत्य है। 'सिंहरण' के शब्दों में 'अतीत सुखों के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा; फिर चिन्ता किस बात की। समस्त पात्र इसी के अनुकूल चलना अपना लक्ष्य रखते हैं, अपने पथ से डिग जाना उन्होंने सीखा ही नहीं, कैसी भी परिस्थितियाँ हों, कितने भी सङ्घर्ष उपस्थित रहें, अपने पथ से विमुख होना उनके साथ नहीं चलता। प्रत्येक पात्र को विश्वास है अपनी भुजाओं का नियति के वे अवश्य मानते हैं उसी के वशीभूत होकर कभी कभी उनके पात्र कह उठते हैं कि वे सम्राट न होकर किसी लतिका के वृन्त का पुष्प होते जहाँ संसार की तृप्ति उन पर न पड़ने पाती, सौरभ बिखेरने के पश्चात् अपने भाले में चू पड़ते। उनका संसार में अस्तित्व क्या? एक मात्र उनके लेकर चलने वाले द्वन्द्व से वे व्यथित हो उठते हैं, परन्तु अपने कर्तव्यों से च्युत नहीं हो सकते। प्रसादजी नारी पात्रों की अधिक सुन्दर सृष्टि कर सके हैं, वे प्रत्येक स्तर पर पुरुष वर्ग को उत्तेजित कर सकी है। चन्द्रगुप्त में 'अलका' एक शक्ति के रूप में अवतरित हुई है स्कन्दगुप्त में कमला कह सकी है "कौन कहता है तुम अकेले हो। समग्र संसार तुम्हारे साथ है। स्थानु-भूति को जाग्रत करो। यदि भविष्यत से डरते हो कि तुम्हारा पतन ही समीप है, तो तुम उस अनिवार्य स्रोत से लड़ जाओ। तुम्हारे प्रचण्ड और विश्वास पूर्ण पदाघात से विन्ध्य के समान कोई शैल उठ खड़ा होगा, जो उस विघ्न स्रोत को लौटा देगा। राम और कृष्ण के समान क्या तुम अवतार नहीं हो सकते। समझ लो जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझ कर करता है, वही ईश्वर का अवतार है। उठो स्कन्द। आसुरी वृत्तियो का नाश करो। सोने वालों को जगाओ और रोने वालों को हँसाओं" यही सौजन्य तथा शान्ति का साम्राज्य 'अजातशत्रु नाटक' के अन्तर्गत संघर्ष और कटु आक्षेपों को सहकर भी 'वासवी' तथा 'मल्लिका' बिखेर सकी है; पुरुष पात्रों को उस ओर लगा सकी हैं।

कर्तव्य परायणता का एक प्रमुख कारण है लेखक का ईष्ट आनन्द है, संसार का हाहाकार, पाशविक वृत्तियाँ उसे विचलित नहीं कर सकतीं, उसे शान्त करना, उसका नाश करना ही सृष्टि का रहस्य है, और उसी को प्राप्त करना उनके पात्रों के जीवन का मत है। स्कन्दगुप्त के शब्दों में " ऐसा जीवन ही बिडम्बना है, जिसके लिए रात दिन लड़ना पड़े। आकाश में जब शीतल शुभ्र शरद शशि का विकास हो तब भी दाँत पर दाँत रखे, मुट्ठियों को बाँधे हुए, लाल आँखों से एक दूसरे को घूरा करे। बसन्त के मनोहर प्रभात में निभृत कगारों में चुपचाप बहने वाली सरिताओं का स्रोत गरम रक्त बहाकर लाल कर दिया जाय। नहीं, नहीं चक्र। मेरी समझ में मानव जीवन का यही उद्देश्य नहीं है। संसार में दिखाई देती बर्बरता के पीछे एक निगूढ़ रहस्य है, उसी को खोज निकालना उस स्तर तक पहुँच जाना ही मानव जीवन का सत्य है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना और साहित्य

त्रिवेणी (एक परिचय)—लेखक—श्री प्रेम-प्रकाश, एम० ए०, एल० एल० बी० रिसर्च स्कालर। प्रकाशक—आगरा बुक स्टोर, आगरा। पृष्ठसंख्या १२३ मूल्य १॥)

यद्यपि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए शुक्लजी की त्रिवेणी का सार उपस्थित करने के अर्थ लिखी गई है तथापि इसकी रचना में लेखक ने विशेष साहित्यिक रुचि से काम लिया है। त्रिवेणी के सम्बन्ध में इस पुस्तक में सभी उपादेय जानकारी आ गई है। शुक्लजी की जायसी, सूर और तुलसी सम्बन्धी आलोचनाओं के सार के साथ इसमें उनमें आये हुए कठिन शब्दों और वाक्यों की व्याख्या भी की गई है और निबन्ध साहित्य को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में शुक्लजी के निबन्धों का मूल्याङ्कन करते हुए उनकी शैली पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखक ने आलोचना-शैली की अपेक्षा निबन्ध शैली पर अधिक प्रकाश डाला है। पुस्तक विद्यार्थियों के विशेष उपयोग की है।

—गुलाबराय

हिन्दी काव्य-विमर्श—लेखक—श्री गुलाबराय एम० ए०। प्रकाशक—प्रतिभा-प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली के लिए साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा। पृष्ठसंख्या ३२० मूल्य ३॥)

जिस प्रकार सिद्धान्त और अध्ययन (दोनों भागों) में बाबूजी ने सैद्धान्तिक आलोचना का सरल और सुबोध शैली में विवेचन किया है उसी प्रकार की प्रसाद पूर्ण शैली में प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी के प्रमुख कवियों की कृतियों की विद्यार्थियों के लिए उपयोगी आलोचनाएँ उपस्थित की हैं। इन आलोचनाओं में कवियों के संक्षिप्त जीवनवृत्त के अतिरिक्त उनके समय की राजनीतिक परिस्थितियों तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी उल्लेख किया गया है जिससे कवियों की रचना का मर्म समझने में विशेष सहायता मिलती है। इस ग्रन्थ में चन्द, पृथ्वीराजरासो की प्रमाणिकता और पद्मावती समय का काव्य-सौष्ठव, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी आदि प्राचीन कवियों के अतिरिक्त छायावाद के अन्तर्गत प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के संक्षिप्त अध्ययन उपस्थित किये गये हैं। उद्धवशतक और वैदेही-बनवास पर भी एक-एक अध्याय है।

इन आलोचनाओं में कवियों की कृतियों के भाव-पक्ष और कला पक्ष दोनों पर ही पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, यद्यपि लेखक का ध्यान विचार-धारा के उद्घाटन और तथ्य-निरूपण की ओर अधिक रहा है। ये आलोचनाएँ व्याख्यात्मक आलोचनाओं का सुन्दर आदर्श उपस्थित करती हैं। इनमें पाण्डित्य-प्रदर्शन की अपेक्षा विद्यार्थियों का अधिक ध्यान रक्खा गया है (वैसे साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं) इसीलिए साररूप से हरएक कवि की विशेषताएँ भी गिना दी गई हैं। यह एक प्रकार से बाबूजी के सुबोध इतिहास का पूरक ग्रन्थ है। सुबोध इतिहास की भूमिका में इसका अध्ययन विशेष लाभ-प्रद होगा।

—रामनारायन अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता

शेर ओ शायरी—सङ्कलनकर्ता–श्री अयोध्या-प्रसाद गोयलीय। प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठसंख्या ६१६, मूल्य ८)

यह पुस्तक सङ्कलनकर्त्ता ने लगभग अपना आधा जीवन खपा कर बड़े परिश्रम से तैयार की है। पुस्तक में उर्दू के जन्म से लेकर उसके आज तक के काव्य-साहित्य का विवेचनात्मक, रोचक किन्तु संक्षिप्त इति-हास और परिचय है। साथ ही इसमें उर्दू के ३१ लोकप्रिय प्रसिद्ध शायरों का जीवन परिचय और कवि-ताओं का सङ्कलन भी हुआ है। उर्दू काव्य के उद्गम से आज के प्रगतिशील युग तक आते-आते लेखक ने उर्दू काव्य के इतिहास को नौ खण्डों में उपस्थित किया है। अन्तिम १० वें खण्ड में उर्दू शायरी की जान 'इश्कबाजी' के वर्त्तमान शायरों की कशिश का इज़हार करके लेखक ने पुरानी और नयी कशिश का अन्तर स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

उर्दू साहित्य का इतिहास लगभग सन् १७६७ से आरम्भ होता है। इससे पूर्व इस शैली को 'रेख्ता' कहा जाता था। यद्यपि उर्दू का जन्म और विकास भारत में हुआ परन्तु उसमें अमीर खुसरो के बाद ही से भारतीयता का अभाव हो गया। वली के समय से ही उसके काव्योद्यान को सङ्कीर्णता के जल से सींचा जाने लगा और इस उद्यान में आम जामुन के रहते हुए भी खजूर और ताड़ के पेड़ लगाये गये तथा कोयल जैसे मधुर पक्षी का गला घोंट कर उसमें फारस से बुलबुल लाकर बसाई गई। हनुमान और अर्जुन जैसे वीरों के रहते उद्यान की सुरक्षा रुस्तम और साम को सौंप दी गई। जिसके परिणाम स्वरूप उद्यान में विदेशी रङ्ग छा गया और वह केवल कुछ विशेष मनोवृत्तियों का ही आकर्षण केन्द्र बन सका। नजीर अकबराबादी जैसे एक दो कलाकारों ने इस सङ्कीर्णता को दूर रखने का परामर्श देकर मानव मानव की समानता की घोषणा भी की कि—

दुनियाँ में बादशाह है, सो है वह भी आदमी।
और मुफलिस हो गया है, सो है वह भी आदमी॥
और टुकड़े जो माँगता है सो है वह भी आदमी॥

किन्तु उनकी यह बात उर्दू के उस्तादों को जँची नहीं। इस दवा से मर्ज उलटा बढ़ा ही। यहाँ तक कि जब शायर इकबाल राष्ट्रीयता का जामा उतार कर और साम्प्रदायवाद का बुर्का ओढ़कर विलायत से लौटे तो 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना' भूलकर उर्दू संसार पाकिस्तान की प्रेरक—

चीनो अरब हमारा, हिन्दोस्ताँ हमारा।
मुसलिम हैं हम वतन है, सारा जहाँ हमारा॥

जैसी मुस्लिम साम्राज्यवादी कल्पना में झूम उठा। इस साम्प्रदायिकता के रहते हुए भी पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' जैसे कुशल शायरों का कलाम उर्दू साहित्य को अलंकृत कर सका यह हर्ष की बात है। मुसलमान शायरों ने भी सदा ही साम्प्रदायिकता से अपने को आवृत नहीं रखा है। उन्होंने सभी विषयों पर लिखा है। उस्ताद जौक का एक व्यङ्ग्य देखिए—

फिरंगी से कहा पेन्शन भी लेकर बस यहीं रहिये।
कहा "जीने को आये हैं यहाँ मरने नहीं आये॥"

फिर भी अधिकांश उर्दू शायरी इश्क, गुलशन या मयखाना से भरी हुई है। भावों की सचाई की अपेक्षा ऊहा और काल्पनिक कलाबाजी ही उर्दू कविता की सफलता की कसौटी मानी जाती रही है—

नामे के पेच को जरा आहिस्ता खोलना।
लिपटा हुआ किसी का कहीं, इसमें दिल न हो॥

जैसे अगणित शेर उर्दू में भरे पड़े हैं। परन्तु अब उर्दू कविता में भी युग की छाप स्पष्ट रूप से बढ़ती जा रही है जहाँ पहले बकौल अकबर शायरी और इश्क पर्यायवाची शब्द हो रहे थे—

इश्क को दिल में दे जगह अकबर,
इल्म से शायरी नहीं आती॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ आज सागर निजामी जैसे प्रसिद्ध शंतराश अब उर्दू का कायाकल्प करके उसका नया संसार फिर से बना रहे हैं—

नया आदम बनाऊँगा, नई हव्वा बनाऊँगा।
नया माबूद ढालूँगा, नया बन्दा बनाऊँगा॥
इसी मिट्टी से इक हँसती हुई दुनियाँ बनाऊँगा॥

उनका यह सङ्कल्प स्तुत्य है, क्योंकि—

इक जर्रे के दिल में इक जहन्नुम सा दहकता है,
जाने खाक को कब से खुदा बनने का जज्बा है।

यदि हिन्दी कविता और उर्दू शायरी का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो वह अब एक दूसरे के समीप आते प्रतीत होते हैं।

यह पुस्तक उर्दू कविता के मर्म को हिन्दी के माध्यम से समझने का एकमात्र साधन है, इसलिये इसका लेखक सर्वथा बधाई का पात्र है। उर्दू और हिन्दी पर समान अधिकार होने के कारण गोयलीयजी इस पुस्तक को सर्वाङ्ग सुन्दर बना सके हैं। श्री राहुलजी ने प्रस्तावना में ठीक ही लिखा है कि "इस विषय पर ऐसा ग्रन्थ वे ही लिख सकते थे।"

—रामनारायण अग्रवाल

स्वर्ग-दहन—लेखक–प्रो० राम सञ्जीवन सिंह। प्रकाशक–गणेश दत्त कॉलिज, बेगू सराय (मूँगेर) पृष्ठ संख्या ५७ मूल्य १)

पुस्तक की अभिव्यक्ति में प्रो० वेणीमाधव मिश्र कहते हैं–'स्वर्ग-दहन' में काव्य भी है और प्रगतिवाद भी' यह वाक्य भ्राँतिमूलक है। मिश्रजी का मौन चिन्तन भले ही काव्य को प्रगतिवाद की वस्तु मानने की स्वीकृति न दे, पर प्रगतिवाद के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह काव्य के रस से पराङ्मुख हो। कवि का एक वर्ग विशेष प्रगतिवाद को छायावाद का विरोधी मानता है, सिद्धान्त की दृष्टि से मैं इससे सहमत नहीं, यद्यपि प्रगतिवाद की शैली और टेकनिक में छायावाद की लोच और मधुरता मिलती है। प्रगतिवाद में जीवन की सचाइयों का नवीन प्रकाश है, उस में जीवन दर्शन का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। 'स्वर्ग दहन' में नवीन चेतना के स्वर बोलते हैं।

'स्वर्ग-दहन' में वस्तु निर्देश करते हुए कवि कहता है—

मिट्टी का उद्बुद्ध, क्रान्ति का,
क्रुद्ध कुमार मचलता है।
भीषण स्फोट लिए उर में,
जलता अंगार मचलता है॥

वह धरती को पद-पद पर लाँछित, अपमानित, दलित और पराजित पाता है। विलास और वैभव का स्वर्ग पृथ्वी की प्रगति पर हावी हो गया है। अतः कवि चाहता है—

स्वर्ग फूँक दूँ, स्वर्ग भूमि का,
पाप लाँछना-मयहै।

स्वर्ग को पृथ्वी की लांछना वासना का प्रतीक मान कवि उसमें अपने उर की भीषण आग लगा देता है, भूमि की शक्ति देख देवता मनुज के पदों पर नमित हो जाता है। 'स्वर्ग-दहन में इस विचार विन्दु को सुन्दर अभिव्यक्ति मिल सकी है। यह सारी अभिव्यक्ति कल्पना प्रसूत है, अतः विवेचन की प्रौढ़ता इसमें नहीं मिलती। कवि ने शायद इसे वांछित भी नहीं समझा। आग की लपटों से ही वह खेलता है। पर यह निश्चित है कि उसके आकुल स्वर सच्चे और सक्षम हैं। —मोहनलाल, एम०ए०, साहित्य-रत्न

तीन आहुतियाँ—लेखक–श्री शिशुपालसिंह 'शिशु'। प्रकाशक–मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, हैदराबाद। पृष्ठ संख्या २१८, मूल्य २॥)

भारतीय इतिहास में राजपूतों की वीरगाथाएँ भरी पड़ी हैं। किसी कवि को जब वीर रस पर कुछ लिखने की प्रवृत्ति होती है तब उसे भारतीय इतिहास के इन पृष्ठों को पलटने पर सरलता से ही ऐसे कथानक प्राप्त हो जाते हैं जिनका वर्णन करके वह सूखी नसों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त का सञ्चार कर सकता है। हाँ, यह आवश्यक है कि उन शक्तिशाली कथानकों के समान ही कवि की लेखनी भी शक्तिशालिनी हो। सौभाग्य से 'शिशु'जी ने ओजपूर्ण भाषा शैली में राजपूत-युग के तीन कथानकों को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। उस काल की लड़ाई के विषय में कवि ने उचित ही कहा है—

हा ! आपस के मन-मुटाव से
बल को बुरा प्रयोग मिला।
जिससे निर्बलता को घर में
घुसने का संयोग मिला॥

किन्तु—

कुछ भी हो तब जाग्रत भारत,
मरने का अभ्यासी था।
मर्त्य-लोक में रह करके भी,
अमरपुरी का बासी था॥

हमारे राजपूत वीरों ने—

रण में केवल रिपुओं के ही
प्राण न लेना जाना था।
अवसर आने पर अपने को
बलि कर देना जाना था॥

और इसी प्रकार अपने को बलि कर देने वाले तीन वीरों की कथाएँ इसमें दी गई हैं। पहली कथा में पृथ्वीराज चौहान के सेनानी संजयराय, दूसरी में राणा प्रताप के सेनानी झाला राजा मानसिंह और तीसरी में हाड़ी रानी तथा चूड़ावत का वर्णन किया गया है।

इन कथाओं को लिखकर भारतीय युवकों की वीरता भरा सन्देश दिया गया है। कवि के शब्दों में नवयुवकों को अपनी भारत माता के लिये—

आने को खाद बनाकर अब
उसमें नव जीवन लाना।

जिससे—

लदजाय सुनहले सुमनों से
पौधे-पौधे की डाल-डाल॥

—सरोज, एम० ए०

खण्डहर—ले०—श्री चौहान 'चातक'। प्रकाशक—लक्ष्मीप्रेस, सदर, मेरठ। पृष्ठसंख्या ७। मूल्य १॥)

उक्त पुस्तक में कवि की ४० रचनाएँ संग्रहीत हैं। कविताओं की 'वस्तु', 'प्रकृति-चित्रण', 'राष्ट्र में घटित घटनाएँ' और 'प्रगतिवादी दृष्टिकोण' हैं। प्रकृति-चित्रण वाली रचनाओं में कवि ने हमारे संमुख प्रकृति का सजीव चित्रण उपस्थित कर दिया है, यथा—

क्षितिज से लगी गगन की ओर,
अरे ! क्यों सतरङ्गी सोपान,
कौन उतरेगा भू-पर आज
बिजलियाँ करतीं पथ द्युतिमान।

'नोआखाली के वनों में बापू' तथा 'हा उसमान' शीर्षक रचनाएँ अच्छी बन पड़ी हैं। 'धोबी', 'फूट', 'विधवा' शीर्षक रचनाएँ समाज के एक विस्तृत स्वरूप को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। कवि की प्रत्येक रचना में क्या उद्देश्य रहा है यह निम्न पंक्तियों से जाना जा सकता है—

इच्छा है पार क्षितिज के
लोक कहीं पर उड़ जाऊँ।
जग का यह क्रन्दन यह रोदन
मैं न जहाँ पर सुन पाऊँ॥

पुस्तक में भाषा का प्रयोग विषयानुकूल हुआ है, छपाई गेटअप साधारणतया अच्छा है।

—पद्मचन्द गर्ग, बी० ए०, सा० रत्न

कारागार—ले०—श्री देवीदास शर्मा 'निर्भय'। प्रकाशक—अतीतमहल, हाथरस यू० पी०। पृ० सं० ६५, मूल्य १)

कवि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' का सदस्य है। जन-मत या मत-विशेष के कारण यह सदस्यता 'अपराध की पृष्ठभूमि' बनी। उसे कारावास हुआ। उसने यह नियम सा ही बना लिया कि "प्रतिदिन कम से कम एक टूटी-फूटी कविता का निर्माण हो ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय।" कवि लिख तो बहुत कुछ गया, पर कुछ को ही उसने इस पुस्तक में सङ्कलित किया है।

यह पुस्तक एक ऐसे हृदय की आवाज है जो अपने को दलित और पीड़ित मानता है। अतः वह क्रान्ति को नए सिरे से अधिक अपेक्षित समझता है। वह अपनी परिस्थितियों को भी समझता है। इसलिए मुक्ति में बन्धन और बन्धन में मुक्ति देख कर सन्तोष कर लेता है। राष्ट्र में उसकी अनुरक्ति है इसलिए उसके स्वर में आक्रोश भी है। 'हिन्दू' की परिभाषा भी इस अर्थ को व्यक्त करती है—

राष्ट्र-कार्य प्रवत्त रूप त्रय
हिन्दू-परिभाषा यही है।

सोच-समझ कर चयन की जाने पर भी कुछ कविताएँ ऐसी संग्रहीत हैं, जिनका कविता की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं, कारावास में मन को उनसे विश्राम भले ही मिला हो—जैसे, खीर-रानी, शौचालय, युगल-तरुवर, हम और गधे। कुछ कविताएँ उपदेशात्मक भी हैं, यों उपदेश की ध्वनि प्रायः सारी कविताओं में है। सावधान, हिन्दू, सच्चा भारतीय, सारहीन जीवन, उठो भाई जागो, ऐसी ही कविताएँ हैं जो निम्न-कोटि की हैं।

कारागार की कविताएँ निर्भय हृदय की अभिव्यक्ति हैं पर उनमें अभी परिमार्जित रुचि और प्रौढ़-चिन्तन का अभाव है।

—मोहनलाल एम० ए० साहित्यरत्न।

कहानी

हँसते-हँसते जीना—लेखक—छगनलाल जैन, एम० ए०। प्रकाशक—प्रगति-प्रकाशन-मन्दिर, पलासबाड़ी, आसाम। पृ० सं० ६४। मूल्य १।)

पुस्तक में सब मिलाकर ग्यारह कहानियाँ हैं—[illegible] कहानी के शीर्षक पर ही कहानी पुस्तक का नामकरण किया गया है। महत्व की दृष्टि से भी इस कहानी का पुस्तक में विशिष्ट स्थान है।

टेकनीक की दृष्टि से कहानियाँ बड़ी शिथिल हैं। कुछ कहानियाँ तो ऐसी हैं जो वास्तव में रेखा-चित्र ही हैं जैसे—यह क्या हिन्दुस्तानी बहन नहीं?, अन्नदाता एक पैसा, गरीब हूँ तो क्या? एक विचार-विशेष की अभिव्यक्ति के कलात्मक होने के कारण ही इन चित्रों को सफलता मिल सकी है। लेकिन कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो अत्यन्त निम्न हैं जैसे—सौन्दर्य का चोर, उसकी आशा में, हृदय की चोट। इनमें न तो किसी भाव का शब्दचित्र ही है और न उसकी मार्मिकता।

लेखक अपनी बात को आग्रहपूर्वक कहना चाहता है। जीवन की विषम परिस्थितियों को वह सोचता है, और अपने आक्षोभ को प्रगट करना चाहता है। उसकी यह विकलता ही उसकी कहानियों का प्राण है। —मोहनलाल एम० ए०, साहित्यरत्न।

तीर्थयात्रा—ले०—श्री श्यामसुन्दर व्यास। प्रकाशक—दीनानाथ बुक डिपो, खजूरी बाजार, इन्दौर। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ।।।)

'तीर्थयात्रा' लेखक की ७ कहानियों का संग्रह है। संग्रह की सब कहानियाँ साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। 'देश की माँ' शीर्षक कहानी हमारे राष्ट्र के कोढ़ सम्प्रदायवाद के शिकार एक पत्रकार (हैदराबाद में रजाकारों द्वारा सम्पादक शोयबुल्ला की हत्या) के शहीद हो जाने के सूत्र को लेकर निर्मित हुई है।

'तीर्थयात्रा' कहानी में नायक रहमान का मनोवैज्ञानिक चित्रण सफल हुआ है। 'देश की माँ' शीर्षक कहानी अत्युत्तम है। 'दो घायल' तथा 'मानवता के पुजारी' शीर्षक कहानियाँ स्केच मात्र हैं। शेष कहानियाँ साधारणतया मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद है। चलती और मुहाविरेदार भाषा के प्रयोग से चित्रण सजीव-सा हो उठा है। मनोरञ्जन के लिए तो पुस्तक पठनीय है ही परन्तु 'साम्प्रदायिक ऐक्य' की भावना के प्रचार की दृष्टि से पुस्तक का विशेष महत्व है। —पद्मचन्द गर्ग, बी० ए०, साहित्यरत्न

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
113021

संग्रह और अनुवाद

विश्व-दर्शन—सग्रहकर्ता एवं अनुवादक—श्री बालकृष्ण बलदुआ, बी० ए०, एल० एल० बी०। प्रकाशक—लक्ष्मी-प्रकाशन मन्दिर, गोरखपुर—कानपुर दो भाग में मूल्य २॥) प्रति भाग।

इस पुस्तक में विश्व-साहित्य के मौक्तिक को हंस-वृत्ति से चुना गया है। अंग्रेजी में जहाँ प्रत्येक भाषा के गौरवास्पद ग्रन्थों का अनुवाद हुआ है वहाँ हिन्दी में संस्कृत के भी अच्छे ग्रन्थों के अनुवादों का अभाव सा है। विदेशी साहित्य की तो बात ही दूसरी है। यह पुस्तक हिन्दी भाषा भाषियों की इस कूप मण्डूकता को दूर करने में सहायक होगी। इस संग्रह में मिश्र, अरब, फारिस, यूनान, रोम, इटली, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, इँगलिस्तान, अमरीका, रूस आदि देशों के साहित्य से सङ्कलन किया गया है। अनुवाद गद्य और पद्य दोनों के ही हैं। पद्य की भाषा साधारण और सरल है। अनुवाद में हिन्दी के मुहावरों की अपेक्षा मूल के अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक है जैसे 'विद्वान-मूर्ख के कन्धे हैं टकराते।' व्याकरण में भी कहीं-कहीं विदेशीपन की छाप है किन्तु व्यापक और शाश्वत भावों में हम वही प्रेम-पीड़ा, त्याग और उच्चता की भावनाएँ देखते हैं जो अपने यहाँ मिलती हैं। गेटे की एक कविता का अनुवाद लीजिए—

और न अब तू मेरे निकट रही है।
रूप-रमणि तू मुझ से भाग गई है॥
मेरे अभ्यासी कानों में नहीं गूँजती।
एक राग भी एक तान भी तेरी॥
नीलाकाश बीच छिप ऊपर जाता,
अति स्वच्छन्द विहङ्गम तान गुँजाता,
उसे देखने प्रातःकाल में जैसे आँखें
किसी पथिक की व्यर्थ वायु में ताके।

इस पुस्तक के आरम्भ में एक छोटी सी भूमिका भी है जिसमें विभिन्न साहित्यों की कुछ विशेषताएँ दी गई हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

—गुलाबराय

पुरातत्व-इतिहास

पुरातत्व संग्रहालय मथुरा की 'परिचय-पुस्तक'—ले०—श्री मदनमोहन नागर एम० ए०। प्रकाशक—सुपरिन्टेन्डेण्ट प्रिंटिंग व स्टेशनरी, संयुक्तप्रान्त, इलाहाबाद। पृष्ठसंख्या ३२ + ३५ आर्ट पेपर पर छपे हुए चित्र-फलक। मूल्य ॥।)

हिन्दी में कला सम्बन्धी पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है। नागरजी की प्रस्तुत पुस्तक यद्यपि मथुरा के संग्रहालय की मूर्तियों से ही सम्बन्धित है। तथापि इसमें मूर्तियों और पुरातत्व सम्बन्धी उत्खनन कार्य के सम्बन्ध में पाठकों को व्यापक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। मथुरा की खुदाई का इतिहास सन् १८५३ से प्रारम्भ होता है और उसका श्रेय श्री कनिंघम महोदय को है। मथुरा संग्रहालय की स्थापना १८७४ ई० में ग्राउस महोदय द्वारा, जो वहाँ के कलक्टर थे, हुई थी। मथुरा की कला का आरम्भ ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से होता है। इसमें साँची और भारहुत की देशी कला के प्रभाव के साथ पश्चिमोत्तर भारत (गान्धार) में प्रचलित यूनानी कला का भी प्रभाव पड़ा है। यहाँ पर जैन, बुद्ध और वैष्णव सभी प्रकार की मूर्तियों के उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन मूर्तियों का क्रम तथा ब्यौरे के साथ वर्णन मिलता है। उसमें ऐतिहासिक विवरण के साथ कला-सम्बन्धी विवरण भी है। पुस्तक के अन्त में संग्रहालय में संगृहीत मूर्तियों के चित्र आर्ट पेपर के फलकों पर बड़े आकर्षक रूप में दिये गये हैं। पुस्तक अपने मूल्य के लिए बहुत सस्ती है।

—गुलाबराय, एम० ए०

राजनीति

स्वतन्त्र भारत का प्रथम वर्ष—ले०—श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी। प्रकाशक—माँ मन्दिर धनौरा, मण्डी। पृष्ठसंख्या १८४। मूल्य साधारण संस्करण २॥), जयपुर संस्करण ३,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक में राष्ट्रनिर्माण सम्बन्धी विभिन्न कार्य और आयोजनाएँ जो इस वर्ष में सञ्चालित की गई हैं उनका संक्षिप्त किन्तु आँकड़ों से पुष्ट प्रामाणिक विवरण है। यह एक प्रकार के आब्द-कोष (Year-books) का काम देगी। इसके देखने से ज्ञात होता है कि स्वतन्त्र भारत में देश के उत्थान के लिये बहु-मुखी प्रयत्न हो रहे हैं। यद्यपि इसमें अधिकतर उद्योग और व्यवसायों का ही उल्लेख है तथापि इसमें सामाजिक व राजनीतिक सुधारों की भी विवेचना की गई है। देश की व्यापक जानकारी के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। —गुलाबराय

जय काश्मीर—ले०—श्री अरुण एम० ए, प्रका०—निष्काम प्रकाशन, मेरठ। पृष्ठ संख्या ७६, मूल्य ॥=)

भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में काश्मीर और हैदराबाद दो बड़े महत्वपूर्ण परिच्छेद हैं, जिनमें से हैदराबाद प्रकरण तो अब प्रायः समाप्त हो चुका है, परन्तु काश्मीर का परिच्छेद युद्ध बन्द हो जाने के बाद भी अभी खुला है। इस परिच्छेद ने जहाँ वीर प्रसूता भारत माता के शूरवीर सैनिकों का अपूर्व पराक्रम फिर से अमर कर दिया है वहाँ बर्बर कबायलियों और पाकिस्तानियों की कुकीर्ति भी सदा के लिये क्षोभ और घृणा से अंकित करदी है। प्रस्तुत पुस्तक में कुछ ऐसी ही घटनाओं के चित्र हैं। साथ ही काश्मीर सम्बन्धी पं० नेहरू का एक भाषण, काश्मीर के नेताओं व जन साहित्यकारों का परिचय और वहाँ शहीद होने वाले ब्रगेडियर-उस्मान आदि वीर आत्माओं का चरित्र भी पुस्तक में संकलित है। कबायलियों की लोलुपता की झाँकी स्फुट रूप से अलग भी दी गई है। 'स्वर्ग शीर्षक अध्याय में काश्मीर का प्राचीन इतिहास और उसके प्राकृतिक वैभव का उल्लेख है। लेखक की यह उक्ति बड़ी सार्थक है कि [illegible] वालों ने स्वर्ग (काश्मीर) पर अधिकार किया किन्तु वे जहाँ गये, नरक उनके साथ गया, वे उससे अपना पीछा न छुड़ा सके.....लेकिन जनता अजेय है। आज स्वर्ग पर स्वर्गवासियों का ही अधिकार है और रहेगा।'

अच्छा होता यदि लेखक तत्थ निरूपण में भावुकता से कम काम लेते। इतिहास कविता की कोमल-भाषा में सफलता से नहीं लिखा जा सकता, इसीलिये पुस्तक कहीं-कहीं शिथिल हो गई है। अध्यायों का क्रम भी यदि कुछ बदल कर रक्खा जाता तो घटना-चक्र अधिक श्रङ्खलाबद्ध हो सकता था। उदाहरण के लिए यदि पुस्तक का अंतिम अध्याय आरम्भ में दे दिया गया होता तो घटना-क्रम समझने में पाठकों को अधिक सुविधा होती। —रामनारायण अग्रवाल

स्वराज्य रक्षा—लेखक—श्री राधाकृष्णप्रसाद ग्रामीण, प्रकाशक—ग्राम हितैषी कार्यालय, श्यामबाग, हाथरस, पृष्ठ २८, मूल्य ।=)

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। देश की वर्तमान राजनैतिक पार्टी और साम्प्रदायिक वैषम्य तथा भ्रष्टाचार का भी पुस्तक में वर्णन है। पुस्तक में काँग्रेसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए जनता को सरकार के हाथ मजबूत करने का परामर्श दिया गया है। —जमुनादास, अग्रवाल

विविध

प्रारम्भिक स्वास्थ्य—लेखक—गौरीशंकर गुप्त। प्रकाशक—श्यामसुन्दर रसायनशाला, गायघाट बनारस। पृष्ठ संख्या ३२, मूल्य ।=)

प्रत्येक स्त्री, पुरुष को अपने को और अपनी सन्तान को स्वस्थ्य रखना आवश्यक है। स्वास्थ्य ठीक रखने के सरल साधन इस पुस्तक में लेखक ने लिखे हैं। इससे छोटे बच्चे भी स्वयं साधारण स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का ज्ञान सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तक संग्रहणीय और उपयोगी है।

—जमुनादास अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय—

प्रचार की आवश्यकता—हिन्दी राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करती जा रही है क्योंकि वह देश की व्यापक भाषा है। किन्तु कुछ लोग उसकी सम्पन्नता में सन्देह प्रकट करने लग जाते हैं। वे पूँछने लग जाते हैं कि हिन्दी साहित्य हम को क्या दे सकता है जिसके लिए हम उसको पढ़ें। यद्यपि साहित्य-सन्देश की तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं द्वारा की हुई नवीन साहित्य की आलोचनाएँ इस बात को भली प्रकार प्रमाणित करती रहती हैं कि हमारे आधुनिक कवि नवीन विचार-धारा के प्रचार में किसी से पीछे नहीं हैं (सच तो यह है कि देश में गान्धीवादी विचारधारा के प्रसार में जितना हिन्दी साहित्य ने योग दिया है उतना और किसी साहित्य ने शायद ही दिया हो) तथापि साहित्य-सन्देश और हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने वाले हिन्दुस्तान की जनसंख्या के अनुपात से बहुत कम हैं। यह दुख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि आज भी अंग्रेजी के समाचारपत्रों और पत्रिकाओं का देश में प्राधान्य है। इसमें कुछ दोष हिन्दी पत्रकारों का भी है और कुछ दोष हमारी दास मनोवृत्ति के संस्कारों का। जो लोग हिन्दी से परिचित हैं वे तो धीरे-धीरे इस साहित्य की श्रेष्ठता को स्वीकार करते जाते हैं। इसमें प्रान्तीय भाव भी कुछ बाधक होता है। किन्तु जो लोग हिन्दी से परिचित नहीं हैं उनको हिन्दी की ओर आकर्षित करने के लिए हमको अङ्गरेजी का या भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं का सहारा लेना पड़ेगा। 'खग जाने खग ही की भाषा' हिन्दी के प्राचीन साहित्य की ओर तो अन्य भाषा भाषियों का कुछ ध्यान गया है किन्तु वे नवीन साहित्य से उदासीन हैं। यह बात नहीं कि हमारा नवीन साहित्य नई दुनिया को कुछ नहीं दे सकता। 'गुण ना हिरानो गुण ग्राहक हिरानो है।' गुण ग्राहक भी बेचारा क्या करे? जब तक माल उसके पास तक न पहुँचाया जाय। हमारे अंग्रेजी के राष्ट्रीय अखबार भी हिन्दी से कुछ उदासीन से हैं। न उनमें हिन्दी पुस्तकों की विस्तृत आलोचनाएँ छपती हैं और न हिन्दी अखबारों के उद्धरण आते हैं। अखबारों के सञ्चालकों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त हिन्दी की उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद अङ्गरेजी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में होना आवश्यक है। हिन्दी के प्रमुख कवियों की विचारधारा और कला पर अङ्गरेजी तथा प्रान्तीय भाषाओं में छोटे-छोटे ग्रन्थ निकालने की आवश्यकता है जिससे कि अन्य भाषा भाषी हिन्दी के सम्पर्क में आकर उसका मान करें। इधर हम अपने मौलिक विचारकों से भी नम्र निवेदन करेंगे कि वे हिन्दी को ऐसी पुस्तकें दें जिनको अन्य प्रान्त के लोग ही नहीं दुनियाँ के लोग लाभ के साथ पढ़ें।

श्री बी० वी० योहन का स्वर्गवास—हमने बड़े दुःख के साथ सुना है कि हमारे साहित्य-सन्देश के एक प्रतिभाशाली लेखक श्री बी० वी० योहन का स्वर्गवास हो गया। आप ने प्रसाद साहित्य का विशेष अध्ययन किया था और उस पर कई महत्वपूर्ण लेख भी लिखे थे जो साहित्य-सन्देश में प्रकाशित हो चुके हैं। उनके दो लेख अभी हमारे पास हैं। श्री योहनजी के वियुक्त परिवार तथा गोरखपुर के सेंट एण्ड्यूज कालेज से जहाँ वे अध्यापन कार्य करते थे हमारी पूर्ण सहानुभूति है। आशा है कि क्रिश्चियन कालेज अथवा और कोई संस्था उनके लेखों का क्रमबद्ध संग्रह करा कर उसे विलुप्त हो जाने से बचायेगी।

भूल-सुधार—

विगत अङ्क में एक 'भ्रमरगीत में सूरदास' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें लेखिका का नाम लिखने से रह गया है। प्रस्तुत लेख कुमारी लीला अग्रवाल बी० ए० का है। पाठकगण कृपया नोट करलें।

11302

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ी० जी० फ्रूट प्रिजर्विंग फैक्टरी

गर्मी और जाड़े

हर मौसम में

जी० जी० ब्रान्ड

वस्तुएँ

व्यवहार में लाइये

लाभ, स्वाद कोई कमी नहीं होती

फल पेय
नारङ्गी
लेमन
लेमन वार्ली
आम

फल शर्बत
सन्तरा, नीबू
स्ट्रोबेरी
फान्सा
मिक्स्ड फ्रूट

लाइमजूस कार्डियल जाम, केला, बादाम स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, सेब, अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेड (Orange Marmalade) तथा चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके फलों सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

जी० जी०

चाकलेट फैक्टरी

जी०जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।

नके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं॥

रधरगोपाल टिन फैक्टरी में
गैलन के टिन के अतिरिक्त
, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की
यों व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं
त्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है
जससे
सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टौय फैक्टरी

फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के अतिरिक्त आपके बच्चों की

शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये

सामग्री प्रस्तुत करती है।

खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मजबूत

आ
ग
रा

जी० जी० सेन्स डिपो:—
आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतकाल में सेवन योग्य

आयुर्वेद प्रणीत

शारंगधर की औषधियां

❀ पूर्ण चन्द्रोदय रस ❀

(अनुपान मिश्रित गोलियां)

बल्य, रसायन और शक्तिप्रद हैं।

❀ स्वर्ण घटित मकरध्वज रस ❀

दीपन, पाचन करने वाला, क्षय, खाँसी, कमजोरी को दूर करने वाला रसायन है।

❀ च्यवनप्राश अवलेह ❀

(अष्ट वर्ग युक्त)

बल और बुद्धि वर्द्धक, स्वादिष्ट और पौष्टिक खुराक।

जामनगर शार्ङ्गधर लेबोरेटरी लि०, जामनगर (सौराष्ट्र)

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

स्थापित १९३१

प्रधान कार्यालय : स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

१—सन् १९४७ में पूरा किया हुआ नया काय		३६,००,००० रु० से ऊपर
२—चालू बीमे	... ...	१ करोड़ रु० से ऊपर
३—जीवन बीमा फण्ड	... ...	लगभग १९,००,००० रु०
४—पूँजी (एसेट्स)	... ...	,, ३०,००,००० रु०

हमें अपना काम बढ़ाने के लिये कमीशन अथवा वेतन पर कुछ योग्य तथा उत्साही कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, बीमे की दरें व नियम अति उदार हैं।

स्मरण रहे कि "स्वदेशी" संयुक्त प्रान्त की सर्व प्रथम एवं प्रमुख बीमा कम्पनी है। हिन्दी में पत्र व्यवहार एवं पालिसी जारी करने वाली यह अकेली बीमा कम्पनी है।

कृपया लिखें या मिलें—

पं० गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर।

रामचरणलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में कृपा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा के प्रकाशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

29 JUL 1983
V.8/124 Q11 U1
B

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri